कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली

डॉक्टर अम्बाप्रसाद 'सुमन'

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

कृषक-जीवन-सम्बन्धी

ब्रजभाषा-शब्दावली

(अलीगढ़-क्षेत्र की बोली के आधार पर)

[चित्रों एवं रेखाचित्रों सहित]

(दो खण्डों में)

द्वितीय खण्ड

(प्रकरण १२ से १५ तक एवं व्याकरणिक परिशिष्ट)

लेखक

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

निर्देशक एवं भूमिका-लेखक

प्रो० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

अध्यक्ष, पुरातत्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने डाक्टर अम्बाप्रसाद 'सुमन' के शोध-प्रबन्ध "कृषक-जीवन सम्बन्धी व्रजभाषा-शब्दावली" के प्रथम खण्ड का प्रकाशन गत वर्ष जनवरी १६६० में किया था। ग्रन्थ के प्रथम खण्ड को देश-विदेश के विद्वानों तथा साधारण पाठकों ने जिस प्रेम और आदर से अपनाया है, उसे देखकर प्रसन्नता होती है। इसमें सन्देह नहीं कि डाक्टर 'सुमन' ने सही अर्थों में लोकभाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की अच्छी परम्परा चलाई है।

अब हम इस ग्रन्थ के दूसरे खण्ड को भी हिन्दी तथा अन्य भाषा-भाषियों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। विश्वास है कि भाषा के पंडित और प्रेमी इस खण्ड का भी वैसा ही स्वागत करेंगे जैसा उन्होंने पहले खण्ड का किया और डाक्टर 'सुमन' के अध्यवसाय की प्रशंसा करेंगे जिससे ऐसे अध्ययनशील कार्य करने वालों को प्रोत्साहन मिले और साथ ही साहित्य-भाण्डार के अभावों की पूर्ति हो।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

आत्मनिवेदन एवं आभार

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद के मंत्री, सहायक मन्त्री तथा अन्य विद्वान् सदस्यों की कृपा तथा स्नेह के फल-स्वरूप इस ग्रंथ का प्रथम खंड जनवरी सन् १६६० ई० में प्रकाशित हो चुका है। आज यह द्वितीय खंड भी विद्वानों तथा अन्य पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। प्रस्तुत खंड के पाठकों से मेरा निवेदन है कि इस खंड को पढ़ते समय वे प्रथम खंड को अपने पास अवश्य रख लें अन्यथा शब्दों की पूरी व्याख्या और उनके अर्थात्मक स्वरूप को वे पूर्णरूपेण न समझ सकेंगे क्योंकि ग्रंथ, स्थान, भाषा आदि से सम्बन्धित शब्द-संकेत 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' के प्रथम खंड में ही दिये गये हैं।

मुझे परम हर्ष है कि यूरोप, अमेरिका तथा भारत के मूर्धन्य भाषातत्ववेत्ताओं ने मेरी इस कृति का आदर किया है। कुछ मनीषी विद्वानों की सम्मतियों का यहाँ उल्लेख करना मैं अपना एक साहित्यिक धर्म मानता हूँ और उनकी इस कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हुए परमानुगृहीत हूँ। विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं--

"आपकी कृति 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' पाकर परम प्रसन्नता हुई। इस भेंट के लिए हार्दिक धन्यवाद ! अपने प्रकाश्य तुलनात्मक कोश के लिए मैं क्या-क्या सामग्री इससे संगृहीत कर सकता हूँ, इसका अवलोकन किया जा रहा है।

श्री सर जार्ज ग्रियर्सन से मैं बहुत अच्छी तरह से परिचित था। लगभग चालीस वर्ष तक पंडितों को मैं प्रेरित करता रहा कि वे भारतवर्ष के अन्य भागों पर भी वैसा शोध-कार्य करें जैसा कि ग्रियर्सन ने बिहार पर किया है। अब आप अनुमान लगा सकते हैं कि आपके इस ग्रन्थ को देखकर मुझे कितना हर्ष हुआ होगा !"

— (डा०) आर० एल० टनर (लंदन)

* * * *

"मैंने आपके 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' नामक ग्रन्थ का अवलोकन किया। इतने अधिक ज्ञान तथा परिश्रम से तैयार की हुई इस परमोपादेय कृति के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। ब्रजभाषा-क्षेत्र की ग्राम्य संस्कृति तथा ब्रजभाषा से सम्बन्धित आपका यह ग्रन्थ उतना ही अधिक मूल्यवान् सिद्ध होगा, जितना कि ग्रियर्सन कृत 'बिहार पेज़ेंट लाइफ़'।

आपके ग्रन्थ का शब्द-भाण्डार साहित्य-संदर्भों का आकर है और यह प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा तक के विकास से संबन्धित केवल भारतीय भाषातत्त्व का विश्लेषण ही नहीं करता, अपितु भारतीय नृवंशविज्ञान, मानवजातिविज्ञान, समाज शास्त्र तथा भारत के सांस्कृतिक इतिहास को भी प्रस्तुत करता है। आपके ग्रंथ की एक प्रमुख विशेषता जो मुझे बहुत अधिक पसन्द आयी है, वह उन शब्दों के अर्थों को बहुल रेखाचित्रों द्वारा बोधगम्य कराने की है, जिन्हें आपने ब्रज के जनपदीय जीवन तथा प्राचीन

मेरे शोध-ग्रंथ का साधना-मन्दिर श्री माहेश्वरी कालेज, अलीगढ़ रहा है। जो स्नेह और सहायता साधना-काल में मुझे आदरणीय प्रिंसिपल श्री गणेशीलाल जी माहेश्वरी तथा कालेज की प्रबंध कारिणी समिति से मिली है, उसके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देते हुए परमानुगृहीत हूँ। वस्तुतः उनकी विगत की प्रेरणा ही मेरे आगत का सोपान सिद्ध हुई है। आदरणीयवर डा० नगेन्द्र जी, डा० हरबंशलाल जी शर्मा और डा० सत्येन्द्र जी का स्नेह तो मुझ अनुज पर प्रारम्भ से ही अग्रज की भाँति रहा है। उनके भ्रातृत्वमय प्रेम एवं कृपा का तो मैं सदैव हृदय से आभारी रहूँगा।

ग्रंथ के दोनों खण्डों में जो शब्दानुक्रमणी दी गई है, उसके तैयार करने में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती बसन्तीदेवी और मेरी दो पुत्रियों (चि० शारदाकुमारी और चि० वीणा कुमारी) ने जो परिश्रम किया है, उसका मूल्यांकन वाणी का विषय नहीं बन सकता। धर्मपत्नी को धन्यवाद देना तो एक प्रकार से अपने को ही धन्यवाद देना है। माता वीणापाणि सरस्वती से यही प्रार्थना है कि वे अपनी कृपा का प्रसाद मेरी पुत्री शारदा और वीणा को भी देती रहें।

जिन विद्वान् लेखकों के ग्रंथों से मैंने सहायता ली है उनके प्रति मेरी प्रणामांजलि साभार सादर समर्पित है। अन्त में ग्रंथ की भूलों तथा त्रुटियों के लिए पुनः एक बार क्षमा-याचना! महाकवि भवभूति के शब्दों के वातायन से मेरे अन्तस् की यही अभिलाषा झाँक रही है कि—

"उत्पत्स्यते सपदि कोऽपि समानधर्मा।
कालोह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

हिन्दी-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

आभारनत
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

समर्पण

श्रद्धेयवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल को

जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ने मुझे ब्रजभाषा के जनपदीय शब्दों के विस्तृत अध्ययन के लिए प्रवृत्त किया और जिनके चरणों में बैठकर मैंने इस ग्रन्थ को लिखा।

विनीत
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

विषय-सूची

प्रकरण १ से ११ तक की विषय सामग्री इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड में है। इस द्वितीय खण्ड में प्रकरण १२ से १५ तक तथा व्याकरणिक परिशिष्ट की विषय-सामग्री दी गई है।

[द्वितीय खण्ड]

प्रकरण १२

जनपदीय व्यवसाय

प्रकरण १३

जनपदीय शिल्पकार

अध्याय—

प्रकरण १४

यात्रा के साधन

अध्याय—

प्रकरण १५

कृषक का धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन

अध्याय—

परिशिष्ट

अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के व्याकरण-संकेत

[पृ० ४३५ से ४६० तक]

पृष्ठ

प्रथम खंड तथा द्वितीय खंड की चित्र-सूची

[प्रथम खंड की चित्र-सूची]

[द्वितीय खंड की चित्र-सूची]

"अवैयाकरणस्त्वन्धः बधिरः कोश-विवर्जितः"

× × × ×

"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति ।"

—पंतजलि, व्या० महाभाष्य

× × × ×

"शब्द के नेत्र बाहर की ओर हैं। अर्थ की दृष्टि अन्तर की ओर होती है। अर्थ के पास पहुँचकर आनन्द के आँसुओं की झड़ी लग जाती है।"

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

——

प्रकरण १२

जनपदीय व्यवसाय

अध्याय १

मौहार मारना

§४६१—शहद की मक्खियों को **मौहार** या **मौहारि** कहते हैं। मौहारों के छत्ते को तोड़कर शहद निकालना **मौहार मारना** कहाता है। अलीगढ़ क्षेत्र में मौहार मारने का काम एक विशेष जाति करती है, जिसे **अहेरिया** (सं० आखेटकी) कहते हैं। मौहार का छत्ता जिसमें शहद भरा होता है, **पिड़िया** कहाता है। अहेरिये पिड़िया तोड़ने से पहले उस पर चिपटी हुई मौहरों को धुआँ देकर उड़ाते हैं। यह क्रिया **धूँअनी देना** कहाती है।

§४६२—**मौहार मारा** (मौहार मारनेवाला) धूँअनी देने के पश्चात् मौहार को कीलता है। कीलते समय वह एक पद्य-सी बोलता है, जिसे **कीला** (सं० कीलक=मंत्र का एक टुकड़ा) या **मन्तुर** (सं० मंत्र) कहते हैं। मंतुर की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।

> "अरं कीलूँ बरं कीलूँ, औ कीलूँ मौहार।
> हनूमान कौ नाम लैकैं, माल्लई मौहार॥" —कीला

§४६३—अहेरियों का कहना है कि कील देने पर मौहार न उड़ सकती है और न काट सकती है। मौहारों के छत्ते में जब धुआँ दिया जाता है, तब शहद की मक्खियाँ उड़ती हैं और मुँह से आवाज करती हैं। उनके पंखों से पैदा हुई ध्वनि को '**सर सर**' और मुँह की आवाज को '**भनन्-भनन्**' या '**भिन्भिन्**' कहते हैं। इनसे बनी हुई नाम क्रियाएँ **सरसराना** और **भिनभिनाना** प्रचलित हैं।

§४६४—**मौहार की जातियाँ** (१) देसी (२) डँगारा या पहाड़ू (३) पीरिया या पीरौंदी।

देसी मौहार छोटी और रंग में काली होती है। **डँगारा** लाल रंग की होती है और देह में देसी से बड़ी होती है। छेड़ देने पर डँगारा काटने के लिए आदमी का बहुत पीछा करती है। मौहार जब पीछा करती है, तब उसके लिए **दँगारना** क्रिया का प्रयोग होता है। पीले रंग की एक विशेष मौहार **पीरिया** या **पीरौंदी** कहाती है। देसी और डँगारा नाम की मक्खियाँ तो अपना छत्ता पेड़ की **गुद्दी** (शाखा) पर ही प्रायः रखती हैं; लेकिन पीरिया प्रायः अपना छत्ता **औलर** (दीवार में बना हुआ गहरा गड्ढा या छेद) में रखती है। देसी मौहार कभी-कभी **खौलर** (पेड़ के तने में बना हुआ गड्ढा) में भी रख लेती है। छत्ते में ही सदा रखनेवाली और अण्डे देनेवाली मक्खी **रानी** और फूलों का रस लानेवाली मक्खियाँ **बाँदी** कहाती हैं।

§४६५—शहद को जनपदीय ठेठ बोली में **सैत** कहते हैं। शहद की तीन किस्में खास हैं—(१) **दरेरा या दरदरा** (२) **चिकनिया** (३) **सौंधा**।

दरेरे शहद को **रवाबिया** (रवादार) भी कहते हैं। इसमें **मिठाप** (मिठास) कम होता है। चिकनिया शहद घी या तेल की तरह चिकना होता है। बसन्त ऋतु में इकट्ठे किये हुए रस (मकरन्द) से तैयार किया हुआ शहद **सौंधा** कहाता है। इसमें सुगन्ध भी होती है। सौंधा शहद प्रायः चैत में इकट्ठा किया जाता है; अतः इसे **चैती** या **चैतबारिया** शहद के नाम से भी पुकारते हैं।

§४६६—**मौहार मारने में काम आनेवाली वस्तुएँ**—(क) एक लंबे बाँस के सिरे पर कुछ गूदड़ लपेटकर उसमें आग लगा देते हैं। उस गूदड़ को **पलीता** (फा० फलीता[१]) कहते हैं। फिर जलती हुई **लोइ** को बुझा देते हैं, ताकि गूदड़ में से धुआँ निकलता रहे। उस बाँस को **धुमेंटी** कहते हैं। एक लंबा बाँस जिसके सिरे पर एक दराँत लगा रहता है, **डंगी** कहाता है। कभी-कभी अहेरिये मौहार मारने के लिए डंगी में भी **पलीता** बाँध लेते हैं। मौहार मारनेवाले मक्खियों के छतों पर पानी बड़े जोर से छिमकते (हलकी हालत में पानी छिड़कना **'छिमकना'** कहाता है) हैं। उस क्रिया को **छप्पा मारना** कहते हैं। जब कोई **अहेरिया मौहार** मारना आरंभ करता है, तब वह एक **पिछौरा** (एक मोटा चादरा) ओढ़ लेता है, जिसे **ओढ़ेला** या **उढ़ेला** कहते हैं। जब वह उस पिछौरे को एक खास तरह से तिकोना मोड़कर सिर और पीठ पर रख लेता है, तब उसे **खोइआ** या **खोइया** कहते हैं। **ओढ़ेला** अथवा **खोइया** मारकर अहेरिया मौहारों से अपना बचाव कर लेता है।

(ख) डँगारा का छत्ता बहुत बड़ा होता है। उसे **बकर छता** कहते हैं। डँगारा मौहार के बकरछते में से शहद निकालने के लिए एक पोला बाँस काम में लिया जाता है। शहद की जगह छत्ते में उस बाँस का सिरा गाड़ देते हैं और नीचे के सिरे को मिट्टी के बड़े-से बर्तन में रख देते हैं। पोले बाँस में से अन्दर बहता हुआ शहद नीचे बर्तन में इकट्ठा होता जाता है। उस बर्तन को **सितौड़ा** कहते हैं। वह पोला बाँस **नरुआ** या **नरुका** कहाता है।

(ग) मौहारमारा खोइया मारकर छत्ते के पास चुपचाप खड़ा हो जाता या बैठ जाता है। फिर मौका देखकर **पिड़िया** (शहद से भरा हुआ छत्ता) तोड़ता है। अतः जनपदीय बोली में खोइया मारकर चुपचाप खड़े हुए आदमी को **'मौहार मारा'** से उपमा भी दे दी जाती है। जैसे—

"जिको मौहारमारा-सौ ठाड़ौ ऐ।"[२]

ठल्लू—(बेकार) बैठे रहने के अर्थ में **मक्खी मारना** मुहावरा प्रचलित है। निन्दनीय या पापपूर्ण कृत्य करने पर भी उसे अनुभव न करना **'जीबती माखी निगलनौ' (निगलिबौ)** कहाता है।

अध्याय २

मछली पकड़ना

§४६७—मछली को **मछरी** या **मच्छी** (सं० मत्स्यिका > प्रा० मच्छिआ > मच्छी) भी कहते हैं। मछली पकड़नेवाला व्यक्ति **मछेरा** या **मछुआ** कहाता है। मुसलमान मछुए **मछेले** और हिन्दू मछुए **धीमर** (सं० धीवर) कहाते हैं।

[१] 'फलीता' शब्द को स्टाइनगास ने अरबी और फारसी दोनों भाषाओं का माना है। उनका मत है कि इसका विकास 'फतीला' से हुआ है। इसी अर्थ में एक शब्द अ० **फतीलत** भी है।
—इस्टाइनगास : पर्शियन इँगलिश डिक्शनरी

[२] यह कौन मौहारमारा के समान खड़ा है?

§४६८—मछलियाँ रखने की एक प्रकार की टोकरी **टापा** कहाती है। ठापों में मछलियों के ढेर बेचने के लिए रखनेवाले व्यक्तियों को **टपेरा** कहते हैं। मछलियों की मंडी का दलाल **पैकार** कहाता है। मछुए अपनी मछलियों को टपेरों के हाथ बेच देते हैं। वह कोठरी या स्थान जहाँ मछलियाँ बेचने के दृष्टिकोण से पानी में रक्खी जाती हैं, **टाप** कहाता है। प्रायः मछुए जाल से मछलियों को पकड़ते हैं। मछलियों का शिकार करनेवाले लोग एक लंबा और पतला बाँस रखते हैं। उसी से मछलियाँ पकड़ा करते हैं। वह बाँस **डंगी, लग्गी** या **बंसी**[1] (सं० वडिशी—मो० वि०) कहाता है।

§४६६—**बंसी और उससे सम्बन्धित वस्तुएँ**—डंगी के ऊपरी सिरे पर एक मजबूत **सूतरी** (सं० सूत्रिका) बँधी रहती है, जिसे **पौदा, डोर** या **डोरी** कहते हैं। डोरी के निचले सिरे पर लोहे की नोकदार तथा झुकी हुई एक कील बँधी रहती है, जो ऊपर की ओर कुछ मुड़ी रहती है। उसे **काँटौ** (सं० कण्टक) कहते हैं। काँटे की आकृति आँकड़े की भाँति होती है। काँटे के मुड़े हुए सिरे पर नीचे की ओर झुकी हुई टेढ़ी एक पतली कील लगी रहती है, जो **डाढ़** या **अड़ंगा** कहाती है। डाढ़ काँटे को मछली के मुँह में से बाहर नहीं निकलने देती। काँटे का एक गोल छेददार हिस्सा जिसमें बंसी की डोरी का निचला सिरा बँधा रहता है, **दुम्बाला** कहाता है। बंसी की डोरी में काँटे से हाथ-डेढ़ हाथ ऊपर काठ का एक छोटा-सा टुकड़ा बँधा रहता है, जिसे **तरन्ना** या **तरण्डा** कहते हैं। जब मछली काँटे पर मुँह मारती है, तब तरन्ना कुछ पानी में डूबता-सा दिखाई देता है। इससे मछली के शिकारी को पता लग जाता है कि मछली काँटे पर आ लगी है।

काँटे के अड़ंगे पर गेहूँ का आटा, गिड़ोया (केंचुआ), छोटी मेंड़की या खली लगाई जाती है। ये वस्तुएँ **चारौ, चेंपा,** या **ल्हासौ** (लासा=चिपकनेवाला पदार्थ) कहाती हैं। इन्हें खाने के लिए मछली काँटे पर मुँह मारती है और तभी उसके गले में काँटे का अड़ंगा अटक जाता है। हेमचन्द्र ने पेड़ के दूध के अर्थ में 'लसक' (दे० ना० मा० ७।१८) शब्द का उल्लेख किया है। **'लासे में रहनौ'** एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ है 'किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा और अभिलाषा में लगे रहना।'

ल्हासे या लासे में मछली बड़ी इच्छा से आकर मुँह मारती है। वह उससे बिलकुल चिपट-जाती है। वास्तव में लासा मछली के लिए विशेष आकर्षण है। अतः अलीगढ़-क्षेत्र की जनपदीय बोली में **ल्हासा** (लासा) शब्द **अभिलाषा** या आकर्षण के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है :—

सूने घर कौ खिरका खोल्यौ चौं मटुका सरकायौ।
अपनौ भेदु बताइदै कान्हा का **ल्हासे** में आयौ॥[2]

(तहसील कोल से प्राप्त)

---

[1] "मीन मानौ बेधि बंसी करत जल झकझोर।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, स्कन्ध १०, पद ३२८।
('बंसी' के मूल में सं० 'वंश' शब्द भी—सम्भव है।)

[2] हे कृष्ण! तूने घर को सूना जानकर भी क्यों खिरका (विशेष प्रकार की किवाड़ें) खोला है और मटका (मिट्टी का एक बर्तन) क्यों सरकाया है? तू अपना मतलब बता किस आकर्षण या इच्छा से इस घर में घुसा है?

महा कवि सूर ने लासे के अर्थ में '**चेंप**'[1] शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि 'लासा' चिपकदार होता है और चिड़ियाँ फँसाने में भी काम आता है।

§४७०—**मछेरों के जाल और उनकी किस्में** (क) एक जाल बहुत बड़ा होता है। लंबाई-चौड़ाई लगभग १५-१५ गज होती है। इसके बहुत छोटे खाने (छेद) होते हैं। इनमें से छोटी मछली भी निकलकर बाहर नहीं जा सकती। मछेरा इस जाल को तालाब या नदी में फेंककर बिछा देता है। इसके किनारों में लोहे के **गिट्ट** (मोटे छल्ले) पड़े रहते हैं, जिन्हें **गुटियाँ** (अनू० में), **गुड़ियाँ, मूँगे** (खुर्जा० में), **गुरियाँ** या **ढइया** (त० कोल में) कहते हैं। ढइयोंके बोझ से जाल नीचे बैठ जाता है। नीचे बैठ जाने पर इसमें मछलियाँ फँस जाती हैं। चूँकि यह जाल फेंककर मछली पकड़ने के काम में लाया जाता है, इसलिए इसे **फेंकउआ** जाल कहते हैं। इसीको **भँवरजाल, अदबकखा** या **भँवरा** (सं० भ्रमरक > भँवरअ > भँवरा) भी कहते हैं।

(ख) जिस जाल के छोर पकड़कर मछेरे पानी में चढ़ाव की ओर खींचते हैं, वह **छाँटी** (राज० में) या **कढ़ेरा जाल** कहाता है। इसे ही **खचेरा** या **पंडी** (त० कोल में) भी कहते हैं। पंडी जाल के **छेद** (सं० छिद्र > छिद्द > छेद) भँवरा जाल के छेदों से बड़े होते हैं। टैनिस खेल के जाल (नैट) में जैसे छेद होते हैं, लगभग वैसे ही छेद **पंडी जाल** में होते हैं।

छोटे-छोटे छेदों का छोटा-सा जाल जो **छाँई** नाम की बहुत छोटी मछलियों के मारने में काम आता है, **घोंटी** कहाता है। इसमें लोहे की गोल **कौंड़री** (सं० कुण्डलिका) या **छल्लियाँ** पड़ी रहती हैं।

(ग) बाँस की **खपंचों** (फच्चट = बाँस का चिरा हुआ टुकड़ा) या **सरकंडों** (सं० शरकाण्ड) से एक जाल बनाया जाता है, जो आकार में लम्बी और गहरी टोकरी-सा होता है। इसे मछेरा अपनी छाती के आगे दोनों हाथों से उठा उठाकर जगह-जगह पानी में रखता है। जब मछली फँस जाती है, तब उसे हाथ से पकड़ लेता है। इस जाल को **पिलना** (खुर्जा० में) या **खोंच** (त० कोल में) कहते हैं।

वह बड़ा जाल, जो बड़ी-बड़ी मछलियों के पकड़ने में काम आता है, **माघी** या **महाजाल** कहाता है।

वह बड़ा जाल जो बहते पानी में दीवार की भाँति सीधा खड़ा करके लगाया जाता है, **पटिया** कहाता है। पटिया जाल मछली को बहाव की ओर जाने से रोकता है।

बड़े-बड़े खानों का एक बड़ा जाल **रुधेरा** कहाता है। रुधेरे में बड़ी मछलियाँ ही फँसती हैं।

बड़ी मछलियों के पकड़ने के लिए एक जाल **चिरैला** भी होता है। इसके खाने गोल न होकर लम्बे-लम्बे आयताकार होते हैं। इसकी डोरी भी पतली और **चिरैमा** (चिरी हुई) होती है।

(घ) मुर्गियों को ढँकने वाले टापे की भाँति का डोरियों से बुना हुआ जाल **टापा, चक्करिया, कलक्का, खोरा** या **लुक्का** कहाता है। यह पानी में चक्कर बाँधकर नीचे बैठता है और जो मछलियाँ उसके नीचे आ जाती हैं, वे फँस जाती हैं। इसके ऊपर बीचोंबीच में एक रस्सी बँधी रहती है, जिससे जाल खिंचता है। उस रस्सी को **बिछासी** कहते हैं।

---

[1] **मुरली मधुर चेंप काँपा करि, मोरचन्द्र फँदवारि ॥**

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३१८९

एक जाल झोलीनुमा होता है, जिसके ऊपरी भाग में तीन डंडियाँ बँधी रहती हैं। उसे **हंसी** या **तिखूँटिया** कहते हैं। वह बन्द और उथले पानी में **भूड़ियाँ** (छोटी मछलियों की एक जाति) पकड़ने में काम आता है।

छोटी-छोटी मछलियाँ पकड़ने के लिए एक जाल और होता है, जिसके खाने भी बहुत छोटे और गोल होते हैं। उसे **छिंगा** कहते हैं।

[रेखा-चित्र २४४ से २४६ तक]

[रेखा-चित्र २४७ से २४६ तक]

[रेखा-चित्र २५०, २५१]
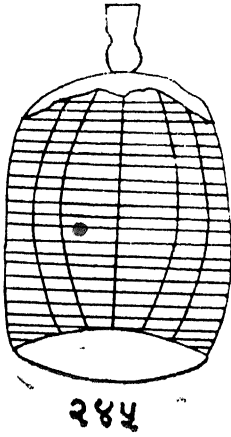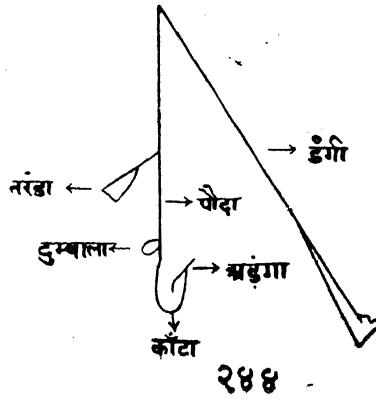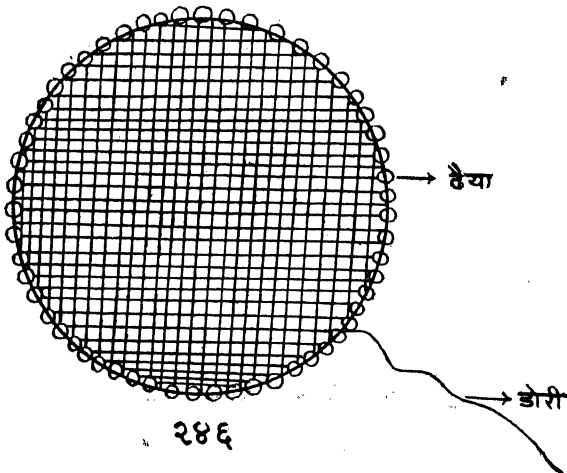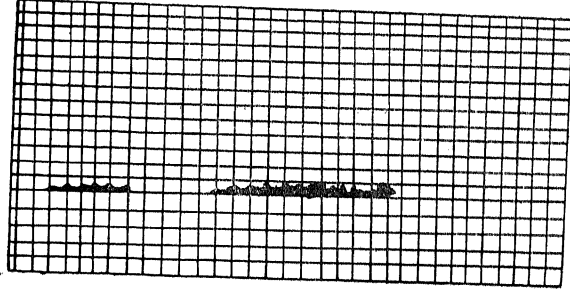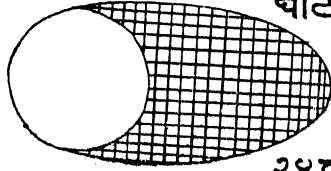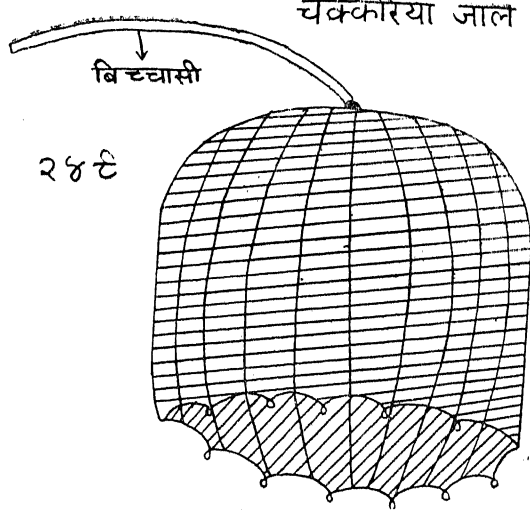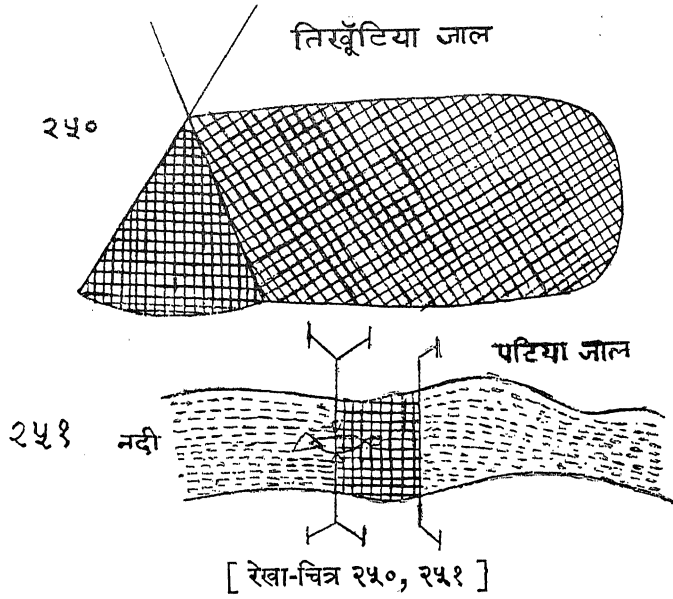
§४७१—**मछेरों की अन्य सामग्री** (क) मछेरों के पास एक बड़ी टोकरी होती है, जिसका पेट बड़ा और मुँह छोटा होता है। इसे **झल्ली, कंडी, कंडुरी, कुन्नी** या **कोन्नी** कहते हैं। कोन्नी में ही मछेरे मारी हुई मछलियों को इकट्ठी करते जाते हैं। 'कंडुरी' शब्द सं० कण्डोलिका से व्युत्पन्न है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में बाँस या बेत की टोकरी के अर्थ में 'कण्डोल' शब्द लिखा है (सं० कंडोलिका > कण्डोलिआ > कण्डोरिआ > कण्डोरी > कंडुरी)। छोटी झल्ली, जिसमें पकड़ते समय मछलियाँ रक्खी जाती है, **पल्लू** या **पालू** (सं० पलव = एक टोकरी—मो० वि० कोश) कहाती है।

कोन्नी शब्द सं० कुवेणी से सम्बन्धित ज्ञात होता है। अमरकोश ("मत्स्याधानी कुवेणी स्यात्"—अमर० १।१०।१६) में मछली रखने के पात्र के लिए 'कुवेणी' शब्द आया है। मछली के पेट में से आँतें आदि निकाली हुई चीजें **गिच्च** या **गिलचा** कहाती हैं। पोखर या नदी के किनारे मछेरे मछलियाँ फँसाने के लिए एक गड्ढा खोद लेते हैं, उसे **डबरा** या **खड्डा** कहते हैं। पानी के सहारे जहाँ मछलियाँ किनारे के पास अंडे देती हैं, वह जगह **थलिया** या **बिजना** कहाती है।

(ख) मारी हुई मछलियों को बहँगी में रखकर मछेरे घर ले आते हैं। मछेरों के पास चिरे हुए बाँस की एक छोटी बल्ली होती है। उसे **बहँगी** (सं० विहंगिका) कहते हैं। बहँगी के दोनों सिरों में से एक पर **सन** (सं० शण) की रस्सी का बना हुआ **छींका** (सं० शिक्यक > छिक्कअ > छिक्का > छींका > छींका) लटका रहता है। दूसरे सिरे पर एक छोटी-सी जालदार **झोली** (सं० झोलिका) लटको रहती है, जिसे **जलिया** या **जाली** (सं० जालिका) कहते हैं। मछेरा छींके में अपनी झल्ली या कोन्नी रखता है और जलिया में अपना खाना और कपड़े आदि रखलेता है।

§४७२ (क)—**मछलियों के नाम**—(१) किसी-किसी मछली की देह पर इकन्नी-दुअन्नी जैसे सफेद खोपटे बने रहते हैं। उन्हें **चित्ता, खपरा छिक्कल** (सं० शल्क) या **सिन्ना** कहते हैं। किसी-किसी के गालों पर या दूसरी जगह एक लंबी और सख्त नोंकीली चीज उठी

मछेरे की बहँगी
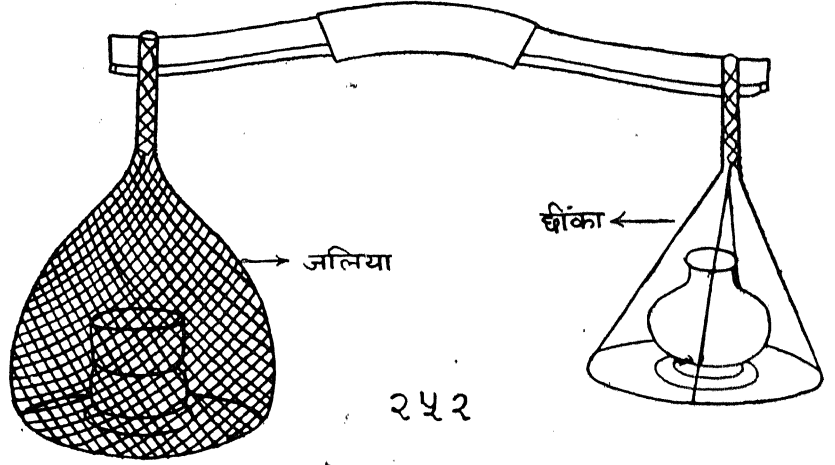
[रेखाचित्र २५२]

रहती है, जिसे **काँटा** कहते हैं। जिस मछली की देह पर छिक्कल नहीं होते, वह **नंगा** कही जाती है।

(२) **रोही** या **रोहू** मछली का मुँह गोल और छिक्कल लाल होता है। इसकी देह का रंग कुछ-कुछ सुनहरा होता है। मछेरों का कहना है कि यह स्वाद में बढ़िया होती है। रूप-रंग में रोहू से मिलती-जुलती एक मछली **कालबोस** कहाती है। एक बड़ी मछली जो वजन में २५ सेर के लगभग होती है, **पनडियास** कहाती है। लगभग १५ सेर की छिलकादार एक मछली को **मराकी** कहते हैं। यह रंग में लाल होती है।

(३) **सार** मछली रोहू की जाति में से ही है। इसकी देह के चित्ते या सिन्ने बड़े-बड़े होते हैं **'सार'** शब्द सं० शाल से व्युत्पन्न ज्ञात होता है। अमरकोशकार ने **'शाल'**[1] (अमर० १।१०। १६) शब्द एक खास मछली के लिए ही लिखा है।

चौड़े मुँह की सिन्नेदार मछली जिसका वजन ५ सेर के लगभग होता है, **मलली** कहाती है। तलवार की भाँति की एक मछली **हँसिया, अर्रा** या **तेगिया** कहाती है।

(४) जिस मछली की देह स्याह, पीली और सफेद रंग की होती है और इकन्नी की तरह के छिक्कल होते हैं वह **सौरी** या **सौर** कहाती है (सं० शकुल >सउर >सौर)। सौर से मिलती-जुलती एक मछली गिरई होती है। सौर और **गिरई** दोनों मीठे पानी की मछलियाँ हैं। लोकोक्ति हैं—"पानी में तौ पाउँ न दुंगो, लम्बौ सौरा मेरौ ऐ।"[2]

(५) **सिंगाड़ा** मछली देह में ऊपर काली और नीचे सफेद होती है। इस के गालों पर दाईं-बाईं ओर पैनी मूँछें-सी होती हैं और पीठ पर काँटा लगा रहता है। वजन २५ सेर होता है। सिंगाड़े की भाँति काँटा होने के कारण ही संभवतः इसे सिंगाड़ा (सं० शृंगाटक >प्रा० सिंघाडग > सिंघाडअ >सिंघाड़ा >सिंगाड़ा) नाम से पुकारते हैं।

---

[1] "रोहितो मद्गुरः शालो राजीवः शकुलस्तिमिः।"
—अमर० १।१०।१६

[2] पानी में पाँव न दूँगा, लेकिन लम्बे कद की सौरा मछली मेरी है अर्थात् बिना परिश्रम के फल प्राप्तकर्ता बनना।

(६) **रोहू**, सार और सिंगाड़ा नाम की मछलियाँ पानी में **पैंदे** (तली) पर रहती हैं। अतः भँवरा जाल से ही पकड़ी जा सकती हैं। रोहू की भाँति **नैन** और **हिलसा** कड़ी हड्डी की मछलियाँ हैं और मीठे पानी में रहती हैं।

(७) छोटी मछली, जिसका आकार मेंढ़को से कुछ बड़ा होता है, **सहरी** (सं० शफरी) कहाती है। तुलसीकृत 'कवितावली' में '**सहरी**' शब्द मछली के लिए ही आया है। रामचन्द्र जी के चरणामृत का प्रेमी केवट **सहरी** नाम की मछलियाँ मारा करता था।[1]

सेर सवा सेर वजन की एक सिन्नेदार मछली **दरम्मा** कहाती है। स्याहीमाइल एक छोटी मछली को **अंडैारी** कहते हैं।

(८) **लाँची** नाम की एक मछली होती है, जो **लीलेमन सेत** (सफेद रंग में कुछ नीले रँग की भी झलक होना) होती है। इसकी देह बड़ी चिकनी और चमकीली होती है। इसका मुँह चौड़ा होता है और मूँछें भी होती हैं।

(९) एक मछली, जिसकी सारी देह ऊपर-नीचे बिलकुल काली ही होती है, **कलौंट** कहलाती है।

(१०) एक मछली जिसकी देह पर छिक्कल होते हैं और रंग में सफेद होती है, **मोह, मोअ** या **मोइ**[2] कहाती है। यह लम्बाई में आध गज से कुछ अधिक होती है। वजन में लगभग २० सेर होती है। **खरखी** मछली भी मोइ से मिलती-जुलती होती है।

(११) **सेर** और **महासेर** (सं० महाशील) नाम की भी मछलियाँ होती हैं। सेर महासेर से छोटी होती है। महासेर रोहू से **सिजल** (बड़ी और भारी) होती है। यह रंग में स्याह और पीली होती है। लम्बाई दो-ढाई गज होती है।

अनूपशहर और राजघाट के बीच में गंगा नदी में एक विशेष प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं, जिन्हे **कचवा** कहते हैं।

(१२) छछूँदर के मुँह की भाँति लम्बे मुँह की मछली **सूँसा** कहाती है। अमरकोश (१।१०।१८) में 'शिशुक' शब्द मछली के अर्थ में ही लिखा है। संभवतः 'सूँसा' शब्द सं० शिशुक से ही संबन्धित है। सूँसा की बगल में **पखनों** (परों) की जगह पंजे होते हैं।

(१३) **पाढ़िन** या **पाढ़ीन** (सं० पाठीन > प्रा० पाठीण > पाढ़िन) मछली बड़ी होती है। इसके मुँह में कई **डाढ़ें** (सं० दंष्ट्रा) होती हैं। अमरकोशकार ने पाठीन को सहस्रदंष्ट्र (अमर० १।१०।१८) भी लिखा है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का गुह नाम का निषाद 'पाठीन' मछलियों की भेंट के साथ भरत जी से मिलने चला था।[3]

(१४) **सिंगी** (सं० शृङ्गी), **सींगा** या **सींग** मछली लाल रंग की होती है और गालों पर जबड़ों के पास काँटे होते हैं। यह आकार में छोटी और वजन में दो सेर होती है। **छिम्मा** भी

---

[1] "पातभरी **सहरी** सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइ हौं।"
—तुलसी ग्रंथावली खण्ड २, ना० प्र० सभा, कवितावली २।८

[2] 'टेंगनि **मोइ** टोइ सब काढ़े।'
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, ४४२।२

[3] "मीन पीन **पाठीन** पुराने। भरि भरि भार कहारन आने॥"
तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, १९६।२
पाठीण—पु० (पाठीन) मत्स्य की एक जाति—पाइअसद्दमहण्णवो कोश, पृ० ७२४

इसी जाति की मछली है। छिम्मा देह की गोल और चपटी होती है। गोल आकार की एक माँसदार मछली **लैटा** कहाती है। इसमें हड्डियाँ बहुत कम होती हैं और काँटे नहीं होते।

छिलकारहित काली और चौड़े मुँह की मछली **गूँज, गौंछ** या **गौंच** कहाती है।

(१५) **सेत** (सं० श्वेत) रंग की लंबी टाँगों वाली एक मछली **झींगा** कहाती है। बिज्जू (एक जानवर जो बिल्ली-सा होता है) की-सी शक्लवाली मछली **बिजुआ** कहाती है।

एक मछलो **पल्ला** भी कहाती है, जिसकी देह का रंग सुनहला होता है।

(१६) काले रंग की एक मछली जिसकी पीठ पर एक काँटा भी होता है, **केकड़ा** कहलाती है। **कंघी** नाम की मछली की रीढ़ में दोनों ओर कंघी के दाँतों की भाँति काँटे निकले रहते हैं।

बाम मछली साँप की तरह लंबी होती है। देह पर सफेद चित्तियाँ-सी चमकती हैं। यह डेढ़ फुट के लगभग लंबी होती है। देह का रंग **करछौंहा** (कुछ-कुछ काला) होता है। इसकी पीठ पर कंघीनुमा झालर होती है, जो पूँछ तक फैली रहती है।

बैंकड़ी मछली देह में लाँची की भाँति होती है। इसके **मूँछ** (सं० श्मश्रु) नहीं होती हैं।

(१७) **भाँगन** नाम की मछली चपटी और सफेद होती है, जो तोल में एक छटाँक होती है। मेंड़की के आकार के बराबर की भी मछलियाँ होती हैं, जिन्हें **छाई** या **भूँड़ी** कहते हैं। पाव सेर की एक छोटी मछली **पेपटा** कहाती है। **फुंका** भी पेपटा के समान ही होती है।

ललौंही देह की चौड़े मुँह और स्याह पेट वाली मछली **कटीला** कहाती है। एक मछली जिसकी गरदन के ऊपर एक काँटा होता है, **कटेरू** कहाती है। जिसके गोश्त में बहुत-से काँटे होते हैं, वह **कँटेला** कहाती है।

(१८) **केड़** या **केड़ल** नाम की मछली सफेद रंग की होती है और मुँह पर मूँछें उगी होती हैं। यह छोटी नस्ल की होती है। तोल में लगभग पाव सेर बैठती है।

साँप की-सी शक्ल की काले रंग की एक मछली **गैंड** कहाती है। **अंडला** नाम की मछली भी साँप-सी होती है। यह बाम की ही जाति की—है, जो नदी के किनारे की कीचड़ में रहती है।

नरैन मछली की देह पर इकन्नी के-से चित्ते होते हैं। आँखें बड़ी होती हैं। इसे **नैनी** भी कहते हैं। यह रोहू की जाति की भाँति बड़ी मछली है, जो तोल में लगभग २५ सेर होती है।

(१९) चपटी देह की काँटेदार एक मछली **पटरा** कहाती है।

गौंगना मछली नदी या ताल के **पेंदे** (तली) में रहती है। यह लंबी कम और मोटी अधिक होती है। **टैंगनी** भी आकार में **गौंगना** के समान ही होती है।

(२०) इनके अतिरिक्त **कलौंज, चाल्ह** या **चाली, नरिया, भद्दा, ककइया** और **कटिया** नाम की भी मछलयाँ होती हैं।

प्रत्येक मछली का शरीर तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है—(१) सिर (२) धड़ (३) पूँछ। धड़ की दाहिनी और बाई ओर पंखीनुमा पर होते हैं, जो तैरने में सहायक होते हैं। उन्हें **पखनियाँ** या **सुफने** कहते हैं। मछली की पूँछ पर भी सुफने होते हैं। छिलकोंवाली मछलियाँ **छिलकिया, सिन्नैली** या **खपरैली** कहाती हैं। **भेटकी, चँदवा** और **कवई** नाम की मछलियों के सुफने बड़े कड़े होते हैं।
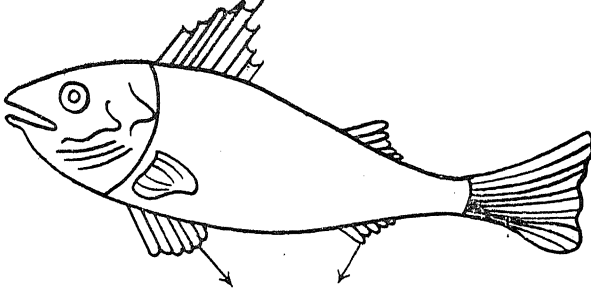
२५३

[रेखा-चित्र २५३]

§ ४७२ (ख)—**मछली के भाई-बन्द और बैरी** (१) **कछुओं** (सं० कच्छप) की एक विशेष जाति **पेतला या पातला** कहाती है। छिपकली की शक्ल का एक बड़ा जानवर **मगर मच्छ** (सं० मकरमत्स्य) या **भौंट** कहाता है।

(२) चींटे की शक्ल का एक पानी का कीड़ा जो मछलियों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता है, **झोला** कहाता है।

पानी का एक कीड़ा और होता है, जो मछलियों के अंडों को नष्ट कर देता है। उसे **पनचोर** या **पनचुरा** कहते हैं।

अध्याय ३

चिड़ीमार का काम और विभिन्न चिड़ियाँ

§४७३—चिड़ियों को मारनेवाला या जाल में फाँसकर उन्हें पकड़नेवाला व्यक्ति **बहेलिया** या **चिड़ीमार** कहाता है। छोटे कद की मादा चिड़िया को **चिरइआ** (सं० चटिका) और नर चिड़िया को **चिड़ा** या **चिरौटा** (सं० चटक+पोतलक>चड़अ+ओला>चड़ोला>चरौटा>चिरौटा) कहते हैं। घरों में पायी जाने वाली छोटी-सी नर चिड़िया भी, जिसकी आँखों में काला काजल-सा लगा रहता है, **चिरौटा** (गौरवा) कहाती है। बेधड़क होकर लम्बी-चौड़ी बातें बनाने के अर्थ में **'चिड़ा उड़ाना'** मुहावरे का प्रयोग होता है।

§४७४—**चिड़ियाँ मारने के साधन**—कुछ चिड़ीमार तीर-कमान से चिड़ियाँ मारते हैं। कमान बनानेवाला **कमंगर** (फा० कमानगर) कहाता है। कमंगर प्रायः जाति से मुलसमान

होते हैं। छोटी कमान **कमाँचा** या **कमच्चा** (फ़ा० कमानचा) कहाती है। एक बड़ी कमान जिसके **कमंठे** (बाँस की चौड़ी फार) में दुहरी डोरी बँधी रहती, **दोचिला** या **दुचिल्ला** कहाती है। दुचिल्ले के बीच में कपड़े की एक पट्टी-सी सिली रहती है, जिसे **लंगी** कहते हैं। लंगी में लगाकर एक खास तरह का तीर छोड़ा जाता है, जो **लंगा** कहाता है। लंगे के सिरे पर एक खमदार लोहे की पत्ती लगी रहती है, जिसमें **गिल्ला** (=ईंट का छोटा-सा टुकड़ा) रख लेते हैं। लंगा कमंठे के बीच के छेद में फँसा रहता है। उसके मध्य में तार का एक बन्द लगा रहता है, जिसे **रोका** कहते हैं। कमंठे के सिरे **'गोसा'** (फ़ा० गोशा) कहाते हैं। बिना नोक का तीर **संटा** या **तुक्का** कहाता है।
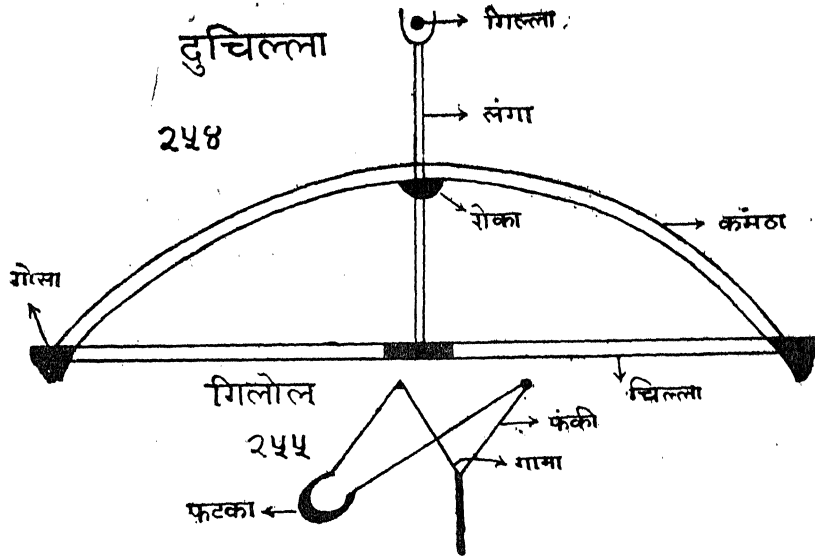
[रेखाचित्र २५४ से २५५ तक]

ईंट, कंकड़ या पत्थर का छोटा-सा ढेला जो गिलोल में रखकर फेंका जाता है, **गिल्ला** (फ़ा० गलूला—स्टाइन०) कहाता है। दुफंकी लकड़ी में रबड़ बाँधकर एक चीज बनाई जाती है, जिससे चिड़ीमार चिड़ियें मारते हैं। उसे **गिलोल** या **गुलेल** (फ़ा० गुलेल—स्टाइन०) कहते हैं। गिलोल का नीचे का भाग जिसे चिड़ीमार अपने बायें हाथ में पकड़ता है, **हत्ता** या **हत्था** कहाता है। हत्थे के ऊपर की दोनों लकड़ियाँ **फंकियाँ** कहाती हैं। दोनों **फंकियाँ** जहाँ आपस में मिली रहती हैं, वह जगह **गाभा** कहाती है। रबड़ की दोनों पटारें जिस चमड़े की पट्टी में जुड़ी रहती हैं, वह पट्टी **फटका** कहाती है। जहाँ गिलोल का **गिल्ला** गिरता है, उस जगह को **टिप्पा** कहते हैं।

चिड़ीमार चिड़ियों को अनेक प्रकार से तरह-तरह के जालों में फँसाते हैं। **जिनावर** (जानवर=पक्षी) को फाँसने के लिए उसके आगे जो बढ़िया खाजा डाला जाता है, उसे **चक्खी**, **ल्हासौ** या **लासौ** कहते हैं। घी मिले आटे की चक्खी **गौंदी** कहाती है। **घूआ** (एक कीड़ा) भी चक्खी के बतौर काम आता है।

---

१ "निपट निकाम जानि हम छाँड़ी ज्यौं कमान बिन **गोसनि**।"
—सूरदास, सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।४२२८

§४७५—**चिड़ियों को फाँसने के साधन**—(क) चुपचाप पीछे से आकर किसी बेखबर चिड़िया को मुट्ठी में पकड़ना **मुट्ठ मारनौ** कहाता है। छोटा-सा एक जाल होता है, जिसकी आकृति त्रिभुज की तरह होती है। उस तिखुंटे जाल को **छपका** कहते हैं। छपका छोटी चिड़िया फाँसने में काम आता है।
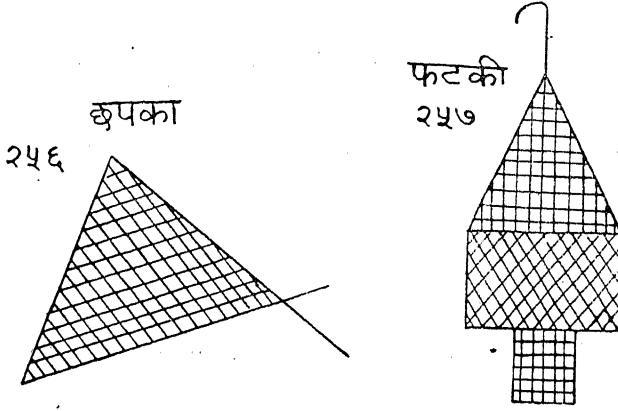
[रेखाचित्र २५६ से २५७]

(ख) बाँस की खपंचों का बना हुआ एक पिंजड़ा होता है, जिसके अन्दर एक कपड़ा बिछाकर उस पर कुछ दाने या गौंदिया डाल देते हैं, वहीं एक **तोरन**[1] (मिट्टी या काठ की बनावटी चिड़िया) रख देते हैं। बाहर की चिड़िया तोरन और दानों को देखकर पिंजड़े के दरवाजे में होकर ज्यों ही अन्दर पहुँचती है, त्यों ही एकदम से दरवाजा बन्द हो जाता है और 'फट' जैसी आवाज होती है। उस पिंजड़े को **फटकी** कहते हैं।

(ग) बाँस की फच्चटों से बने हुए खास तरह के अड्डे **चुगड्डा** और **कंपा** (त० माँट में)
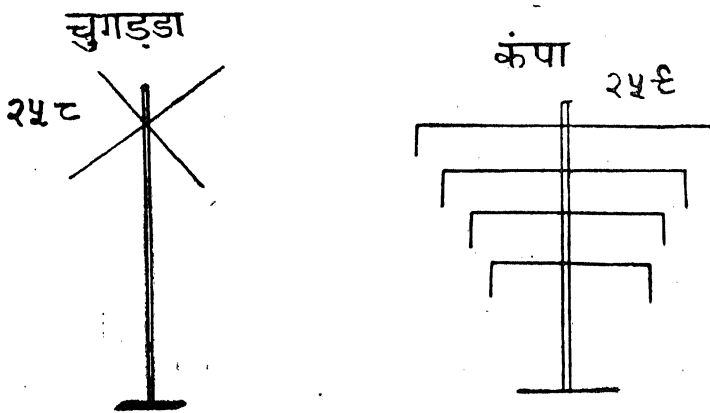
चुगड्डा और काँपा—[रेखाचित्र २५८ से २५९]

[1] जैनियों के विवाह के समय एक टेउला (नेगचार = रस्म) होता है, जिसे तोरन-बींदी कहते हैं। इसमें भाँवरों से पहले सन्ध्या के समय लड़का लकड़ीवाले के द्वार पर आता है और स्त्रियों द्वारा उसका स्वागत होता है। उस समय वह दरवाजे पर लटकी हुई लकड़ी की बनी एक चिड़िया में निशाना लगाता है। यह रस्म तोरन-बींदी कहाती है।

कहाते हैं। इनकी फच्चटों पर एक चिपकीली चीज चिपकाई जाती है, जिसे **चैंपा** कहते हैं। चिड़ियाँ जब फच्चटों पर बैठती हैं, तब उनके पंख और पंजे चैंपे में चिपक जाते हैं और वे उड़ने के लिए असमर्थ हो जाती हैं। सूर ने सूरसागर में कंपे के लिए **'काँपा'** और चैंपे के लिए **'चैंप'** शब्द का प्रयोग किया है।[१]

(घ) चिड़ियों के फाँसने का एक खास तरह का जाल या फन्दा **बँगुरा**[२] (सं० वागुरा) कहाता है। बँगुरा बनाने के लिए पहले दो खूँटे गाड़कर उनमें एक रस्सी बाँध दी जाती है। फिर उस रस्सी में जगह-जगह घोड़े की पूँछ के बाल बाँधकर या ताँतें बाँधकर उनमें सरकने वाले फन्दे लगाये जाते हैं। ताँत या बालों के फन्दे **फँदना** या **फँदान** कहाते हैं। सब फँदान सामूहिक रूप में **फँदावर** (सं० बन्धावलि > फंदावलि) कहाते हैं। बँगुरे के पास दाने डाल दिये जाते हैं। उन दानों को चुगने के लिए चिड़ियाँ आती हैं। उनके पंजे जब फँदानों में पड़ते हैं, तब उनमें फँस जाते हैं। बँगुरे के साथ-साथ जब **झाँपों** (डलियों) को भी काम में लाया जाता है, तब उसे **चिलौसा** कहते हैं। (देश० चिल्ला[= पत्ती] + सं० पाशक = जाल)। सं० समय **ओट** (आड़) करने के लिए टट्टी (देश० लट्टी—दे० ना० मा० ५।१) भी गाड़ी जाती है।

२६० बँगुरा
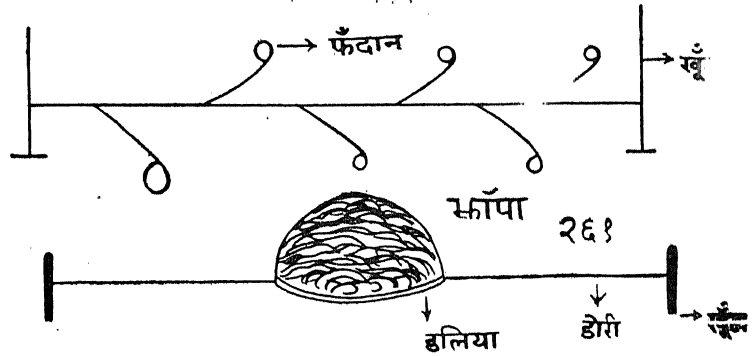
बँगुरा और झाँपा [रेखाचित्र २६० से २६१]

जायसी ने चिलौंसे के लिए **'चिल्हबाँस'**[३] (देश० चिल्ला[४]—दे० ना० मा० ३।६ = पत्ती + सं० पाश) शब्द का प्रयोग किया है। नये पकड़े हुए पत्ती की झिझक और डर दूर करने के लिए उसके कान में एक आवाज करते हैं, जिसे **कूक** कहते हैं। कूकों के असर से पत्ती

---

१ "मुरली मधुर चैंप काँपा करि, मोर चन्द्र फँदवारि।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३१८९

२ "तुलसिदास यह बिपति—बाँगुरो तुमहिं सौं बनै निबेरे।"
—रामचन्द्र शुक्ल (संपादक): तुलसी-ग्रंथावली, दूसरा भाग, काशी० ना० प्र० सभा, विनय पत्रिका, १८७।

३ "बैरिन सवति दीन्ह चिल्हबाँसू।"
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०): जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, ३५८।१

४ चिल्ला सउलीए = चिल्ला शकुनिकाख्यः पत्ती।
हेमचन्द्र, देशी नाममाला, ३।६

खाँयड़ (बिना डर या बिना झिझक का) हो जाता है। ऐसे पक्षी को लोग चिड़ीमार से मोल ले लेते हैं। प्रायः तीतरों और बटेरों को कूक मारकर खाँयड़ बनाया जाता है, ताकि वे कुश्तियाँ जीत सकें।

§४७६—**पक्षियों के अंडे-बच्चे**—(१) जब कोई मादा चिड़िया नर से बिना मिले ही बहार पर अंडा देती है, तब उसे **बैमातिया** (=बैमाता अर्थात् विधिमाता का अंडा **बैमातिया** कहाता है। बच्चों को जन्म देनेवाली माता—बैमाता—पूजी जाती है) **अंडा** या **खाकी अंडा** कहते हैं। अंडे के अन्दर का पीला रस **जरदी** और ऊपर का छिक्कल **पोपटा** कहाता है। **अंडे देने** की इच्छावाली (आसन्न प्रसवा) चिड़िया **अंडोसी** कहाती है। चिड़िया अंडे में से बच्चा निकालने के लिए अंडे को पंखों के नीचे दबाकर गर्मी पहुँचाती है। इस क्रिया को **अंडा सेना** कहते हैं।

(२) मादा चिड़िया जब अंडा देनेवाली होती है, तब वह **झोल** कहाती है। अंडे में से निकला हुआ वह बच्चा, जिसकी देह पर बाल या रूएँ नहीं होते, **गदेला** या **चिंगुला** कहाता है। बच्चा जब काफी बड़ा हो जाता है, तब **पंखों** (बाजू) से उड़ने लगता है। दोनों पंखों में जो छोटे-छोटे टुकड़े लगे रहते हैं और जिनमें से चार-छह कभी-कभी पंखों के फड़फड़ाने पर झड़ भी जाते हैं, **पर** कहाते हैं। 'पर' कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों की भाँति होते हैं और वे ऋतु विशेष में पक्षी की देह पर से अपने आप झड़ भी जाते हैं। तुलसीदास जी ने 'पर' के लिए ही 'कागर'[1] शब्द का प्रयोग किया है। चिड़िया की चोंच की चोट **ठोंग, ठोंक** या **खोंट**[2] (सं० कुट्ट) कहाती है और पंजों की चोट क **झपट्टा** कहते हैं। चील का झपट्टा बहुत प्रसिद्ध है। 'छीना-झपटी' के अर्थ में '**चील झपट्टा**' मुहावरा भी प्रचलित है। इसी नाम का एक खेल भी होता है।

(३) पक्षी के पखाने को **बीट** या **छेर** कहते हैं। कुछ चिड़ियाँ पेड़ के तने के छेद में रहती हैं। उन छेदों को **खोलर** (साहित्यिक नाम कोटर), **खोंतर** या **खोंता** कहते हैं। पेड़ों की डालों पर तिनकों से बनाया हुआ घर **घोंसा** या **घोंसला** कहाता है। पेड़ों पर या किसी दूसरी जगह एक रात के लिए चिड़ियों का रहना **रैन-बसेरा** कहाता है।

(४) किसी-किसी चिड़िया के पंजे में पीछे की ओर एक छोटी और मोटी डंडी-सी निकली रहती है, जो **अँगूठा** कहाती है। यह अँगूठा पेड़ की डाली पकड़ने में सहायक होता है। चिड़िया के पंजे के नीचे लगी हुई गद्दी-सी **तरवासा** कहाती है। वह चिड़िया जिसकी टाँगों पर पंजों तक बाल हों, वह **पमोजा** कहाती है। किसी-किसी चिड़िया की चोंच के आगे एक घुंडी-सी होती है, जो बचपन के बाद अपने आप गिर जाती है। उस घुंडी को **फूल** कहते हैं। मादा चिड़िया अपने छोटे बच्चे को जब कुछ खिलाती है, तब पहले वह अपनी चोंच में **भरन** (दाने) को रोंथकर मुलायम और लुआबदार बना लेती है; फिर बच्चे की चोंच में अपनी चोंच से देती है।

---

[1] "कीर के कागर ज्यौं नृपचीर बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।

—तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, काशी ना० प्र० सभा, कवितावली, अयो० कां०, छंद १।

[2] श्री हर्ष ने नैषध (२।४) में 'खोंट' के लिए 'कुट्टन' शब्द लिखा है और पाणिनि के एक सूत्र में भी 'कुट्ट' शब्द आया है—

"जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ्‌ षाकन्"।

—अष्टा० ३।२।१५५

यदि दाना कुछ सख्त होता है, तो बच्चा फिर उसे मादा की चोंच में वापस कर देता है। यह क्रिया **चुगा-पलटी** या **दाना-पलटी** कहाती है। घने और मोटे परों की चिड़िया, जो देह में हलकी और पतली हो, लेकिन देखने में मोटी और भारी-सी मालूम पड़े; **परेल** कहाती है। बड़ी उम्र का मोटा पक्षी जो चलने और उड़ने में फुर्तीला हो **मसील** कहाता है। यदि एक जगह पर चिड़ियों का झुंड नीचे को मुँह किये हुए बैठा हो, तो उसे **झुप्पा** कहते हैं।

§४७७—**पंखों और चोंच से संबंधित शब्दावली**—(१) परेशानी या डर के समय पक्षी जब जल्दी-जल्दी पंख मारता है, तब उस क्रिया को **फड़फड़ाना** कहते हैं; और वह आवाज़ **फड़फड़ाहट** कहाती है। पक्षी जब आसमान से अपने पंख एकदम बन्द करके नीचे उतरता है, तब उस हालत को **कुन्दा** कहते हैं। तीतर, बटेर आदि पक्षी एक बार में जितनी दूर उड़ सकते हैं, वह दूरी **उड़ान** कहाती है। कुछ चिड़ियाँ आसमान में **पाँती** (सं० पंक्ति) बनाकर उड़ती हैं। उस समय उनके परों की आवाज **सरारी, सर्रा** या **सर्राहट** कहाती है।

(२) खाने की खोज में बड़े या शिकारी पक्षियों का आसमान में चक्कर लगाना **मँड़राना** कहाता है। जब पक्षियों के पुराने पर गिरने लगते हैं, तब उस हालत को **कुरेच** कहते हैं। जब कोई चिड़िया पानी में डूबक मारती है, तब उसके पंख पानी से तर हो जाते हैं। उनमें से पानी निकालने के लिए वह चिड़िया धीरे-धीरे पंखों को हिलाती है। पंख की वह हिलावट **फुरैरी** या **भुरभुरी** कहाती है। कभी-कभी नई पकड़ी हुई चिड़िया के पंखों के **पर** (पंखों की किनारी जो आगे को झल्लर की तरह निकली होती है) काट दिये जाते हैं, ताकि वह उड़ न सके। तक उसे **परकटी** या **परकैंचिन** कहते हैं।

(३) कुछ चिड़ियाँ **ऐबीली** (ऐबदार = कुटेबवाली) होती हैं। प्रायः वे अपने परों को नोंचा करती हैं। उन्हें **पँखोरिन** कहते हैं। नया पक्षी जब पिंजड़े में बन्द किया जाता है, तब वह अपनी चोंच और पंजे पिंजड़े में मारता रहता है। ऐसा पक्षी **बुंडमार** या **ठुंगमार** कहाता है। पक्षी जब अपनी चोंच से पंखों को कुरेदता या खुजाता है, तब उस क्रिया को **कुरेल** और उस पक्षी को **कुरेला** कहते हैं। कुरेले हंस के लिए ही श्रीहर्ष ने नैषध (२।४) में 'कण्डुपंडित'[1] लिखा है। चोंच से मिट्टी कुरेदना या हटाना **ठोरना** कहाता है।

(४) जिस चिड़िया का माँस मुसलमानों के लिए वर्जित नहीं है, वह **हलाल** चिड़िया कहाती है। जिसे वे नहीं खा सकते, वे पक्षी **हराम** कहाते हैं। जो पक्षी शौकिया तौर पर पाले जाते हैं, वे **पालतू** कहाते हैं।

§४७८—**चिड़ियों के रोगों के नाम**—(१) **अलगा**—कबूतर की एक बीमारी जिसके कारण वह बेहोश पड़ा रहता है।

(२) **काँटा**—चिड़ियों की पूँछ के ऊपर एक फुन्सी-सी उठ आती है, जिसे **काँटा** कहते हैं। इस रोग से पक्षी की मृत्यु तक हो जाती है।

(३) **खुर्रा**—खाँसी की भाँति की एक बीमारी।

(४) **तुकमा**—कबूतर का एक रोग जिसमें उसकी गाँठें फूल जाती हैं।

(५) **पिया**—इस रोग में कबूतर की रीढ़ की हड्डी खराब हो जाती है।

---

[1] नुनुदे तनुकण्डुपण्डितः पटुचंचूपुटकोटिकुट्टनैः। —श्रीहर्ष : नैषध, २।४

(६) **पोटा**—जब पत्ती के पेट में खाना ठीक तरह से पचता नहीं, तब उस बीमारी को **पोटा** कहते हैं।

(७) **फूला**—इस रोग के कारण पत्ती के पर और पंख फूल जाते हैं।

(८) **बरदा**—एक बीमारी जिसमें चिड़ियों के पर गिर जाते हैं, और पंजे ठंडे हो जाते हैं।

(६) **रक्का**—कबूतर की खास बीमारी जिसमें उसका दाना-पानी छूट जाता है।

(१०) **रस**—एक रोग जिसके कारण पंखों की जड़ों में से पानी-सा निकलता है और फिर पंख बेकार हो जाते हैं।

(११) **रसभरा**—इस रोग में भी पंख बेकार हो जाते हैं। यह रोग गठियाबाई की भाँति जोड़ों में दर्द कर देता है।

(१२) **सीप**—इस बीमारी से पत्ती की छाती की हड्डियाँ सूखने लगती हैं।

§४७६—**चिड़ियों के नाम**—यहाँ पत्तियों के नाम अकारादि क्रम से लिखे जाते हैं। जो पालतू चिड़ियाँ हैं, उनके आगे कोष्ठक में (पा०) और जो शिकारी हैं, उनके आगे कोष्ठक में (शि०) लिख दिया गया है।

(१) अघन (पा०)—यह चिड़िया आकार में बया के बराबर होती है। इसे लोग पिंजड़े में रखते हैं।

(२) **अटी**—टिटहरी से मिलती-जुलती चिड़िया है, जिसके सिर पर छोटी-सी चोटी होती है।

(३) **अबाबील**—इसका रंग सामान्यतः मटमैला-सा होता है। इसका ऊपरी भाग नीला-पन लिए चमकीला काला; सिर के और बगल के हिस्से भूरे; गले के चारों ओर कत्थई पट्टी; नीचे का हिस्सा कत्थई-सा ललछौंहा; पूँछ लम्बी और दुफकी होती है। इसके पंजे में पीछे की ओर अँगूठा नहीं होता। इससे मिलती-जुलती एक चिड़िया **बतासी** कहाती है।

(४) **अललपंख**—इसका रंग कुछ काला और सफेद होता है।

(५) **उकाब** (शि०)—इसके शरीर का रंग भूरा या बादामी-सा होता है। पूँछ भूरे रंग की लेकिन सफेद आड़ी पट्टियाँ; पैर पीले; चोंच आगे की ओर पतली और झुकी हुई; सिर चपटा। आकार में उकाब चील से बड़ा होता है। आकृति में चील और बाज के मिले हुए रूप से समता रखता है। इसे **रगर** भी कहते हैं।

(६) उरू (सं० उलूक) या **म्होंमटक्का** (शि०)—इसे **घुग्घू** या **मरचिरइया** भी कहते हैं। इसकी दोनों आँखें अन्य चिड़ियों की भाँति कान के नीचे न होकर आदमी की तरह सामने होती हैं। छोटी जाति का एक तरह का उल्लू **खसखूसटा, कुचकुचवा** या **खूसटा** कहाता है। यह चील से छोटा होता है। मूर्ख और स्फूर्तिहीन व्यक्ति के लिए **'घुग्घूबसन्त'** शब्द का प्रयोग किया जाता है। उल्लू यदि किसी मकान पर आकर बैठता है, तो लोग उसे बैठने नहीं देते। गाँव वालों का कहना है कि उल्लू जिस घर की छत पर प्रति दिन बैठने लगे, तो उसका बहुत जल्दी **चौपट्टा** (सर्वनाश) हो जाता है। **खूसटा** दिन निकलते ही अपने घोंसले में छिप-जाता है।[1]

---

[1] होइ उँजियार बैठि जस तपी।
खूसट मुहँ न देखावहिं छपी॥
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक): जायसी ग्रंथावली पदमावत, हिंदुस्तानी एकेडेमी, ४३२।७

(७) **कठफोरी या खुटपामरी**—यह लंबी चोंच की चिड़िया है, जो पेड़ों के तनों पर अपनी चोंच से खुट-खुट करती रहती है, ताकि पेड़ की छाल के अन्दर रहनेवाले कीड़े-मकोड़ों को खा सके। नर-खुटपामरी का माथा लाल और गर्दन काली होती है। इसे **खुटबढ़इया** भी कहते हैं। इससे मिलती हुई एक चिड़िया **हुदहुद या साहसुलेमान** कहाती है, जिसके सिर पर गोलाईदार कलगी होती है।

(८) **कठघुमनी**—यह आकार में खुटपामरी के बराबर होती है, लेकिन इसकी चोंच खुटपामरी की चोंच से छोटी होती है। यह पेड़ के तने पर कीड़ों की **टोह** (तलाश) में इधर-उधर-घूमती ही रहती है। यह गौरइया के बराबर होती है और नीचे का भाग कत्थई होता है।

(९) **कत्तुरझा**—इसे **बसन्ता** भी कहते हैं। गर्दन, सिर और छाती भूरी होती है।

(१०) **कबूतर** (फा०)—यह पक्षी पाला भी जाता है। रूप, रंग और गुण के विचार से कबूतरों के नाम बहुत-से हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

(११) **काज**—लम्बी चोंच का बतख से बड़ा एक पक्षी।

(१२) **किलकिला**—यह लम्बी चोंच की छोटी-सी चिड़िया है, जो तालाब और नदी के पानी के ऊपर कीड़े-मकोड़े की टोह में उड़ती रहती है और कोड़े को देखकर एकदम झपट्टा मारती है। इसे **पनडुब्बा** भी कहते हैं। **कौड़िल्ला** भी इसी की जाति में से है।

(१३) **कुमरी** (फा०)—सफेद रंग का पक्षी जो कबूतर से कुछ छोटा होता है।

(१४) **कुर्री** (सं० कुररी)—इसे **कुरली** भी कहते हैं। नर पक्षी **कुरल** कहाता है। कुर्री की देह हलके सिलहटी रंग की होती है। इसे **धोबिन** भी कहते हैं। प्रायः पोखरों और तालाबों के किनारे रहती है। इसकी चोंच नारंगी और पाँव लाल होते हैं।

(१५) **कुलंग** (शि०)—आकार में यह सारस से मिलता-जुलता है। इसकी चोंच तथा टाँगें लम्बी होती हैं और देह चितकबरी। कुछ लोग इसे **लमचोंचा, नाऊ** या **नउआ** भी कहते हैं। **बुज्जा, मुंडा, लगलग, कड़कुल, जलमुर्गा, दाबिल, घोंघल, जाँघल, गैबर** और **सारङ्ग** पक्षी कुलंग के बिरादरी-भाई ही हैं और शिकारी भी, जो पोखर या तालाबों के किनारे पाये जाते हैं। पानी के सहारे रहनेवालों में **सारस** (इसे **रँगा** या **सत्तराम** भी कहते हैं), **बगुला** (सं० वक + सं० पोतलक >बगोला>बगुला) भी हैं। सारस की ऊँचाई लगभग ४ हाथ होती है। इसका रंग सफेदी लिए हुए सिलहटी होता है। टाँगें गुलाबी होती हैं। सारस पक्षी हर समय जोड़े (नर और मादा) से रहता है। यदि जोड़े में से एक नहीं रहता तो दूसरा जीवन भर जोड़ा नहीं बाँधता। सारस की जोड़ी में नर-मादा का पारस्परिक प्रेम प्रसिद्ध है। जायसी ने नागमती के विरह-वर्णन में इस प्रेम का संकेत किया है।[1]

बगुला चुपके से पानी के किनारे बैठकर मछली को गप्प से पकड़ लेता है। बनावटी साधु या दिखावटी भक्त के लिए '**बगुला भगत**' शब्द प्रसिद्ध है। **आँजन, मलङ्ग, गाय, करछिया,** और **सुरखिया** आदि बगुलों के ही भेद हैं।

(१६) **कुही या कुई** (शि०)—यह चील के बराबर होती है। बाज की तरह छोटी चिड़ियों का शिकार करती है। इससे मिलती-जुलती शिकारी चिड़ियों में **टीसा, तुरमुती, ढेंक या**

---

[1] "धनि सारस होइ ररि मुई, आइ समेटहु पंख।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत, ३५०।

गिद्ध (सं० गृध्र) **बहरी**[1], **बाज**, **चील**, **जुर्रा** (मादा बाज) और **सिकरा** प्रसिद्ध हैं। **तुरमुती**, **लगर** और **खेरमुतिया** बहरी की ही जातियाँ हैं। बहरी सिकरे से बड़ी और बाज से छोटी होती है। शिकारी लोग बाज को शिकार के लिए पालते भी हैं। बाज पालनेवाला शिकारी बाज के सिर और आँखों को ढँकने के लिए कपड़े का एक खोल-सा रखता है, जिसे **कुल्हा** (फा० कुलाह) कहते हैं। शिकारी बाज की आँखों को कुल्हे से ढँक देता है। जब शिकारी जंगल में शिकार खेलने जाता है, तब बाज की आँखों पर से **कुल्हा**[2] अलग कर देता है। बाज शिकार की चिड़िया को देखकर उसे घेर कर शिकारी की ओर लाता है, तब शिकारी बन्दूक से उस चिड़िया में छर्रा मार देता है।

चील (सं० चिल्ल) का रंग काला या सफेद-सा होता है। यह शिकारी चिड़िया है जो खूब गर्मी और तेज धूप में अंडा देती है। जेठ की धूप और गर्मी की भीषणता के लिए कहा जाता है कि—"**ऐसी टींक दुपैरी पे कै चील अण्डा छोड़ि रही ऐ।**"

काली चील से छोटी तथा कत्थई रंग की चील को **खेमकरी** कहते हैं, इसके देखने से सगुन बन जाता है। तुलसीदास ने दोहावली (दो० ४६०) में जहाँ शुभ सगुनवाले पक्षी लिखे हैं, वहाँ एक **छेमकरी**[3] (सं० क्षेमकरी) का भी उल्लेख है। वही खेमकरी नाम की चील है। खेमकरी को **चिल्होर**, **खैरी**, **धोबिया**, **सङ्करी** या **साहमुबारक** नाम से भी पुकारते हैं। चील से मिलता-जुलता बालोंदार पीली गर्दन का एक पक्षी **गोबर गिद्ध** कहाता है। यह **राजगिद्ध** या **ढेंक चौधरी** (सं० ढेङ्क + हि० चौधरी) से कद में छोटा होता है।

(१७) **केंका या केंकना** (सं० कृकण)—यह पक्षी मटमैले रंग का कबूतर से छोटा होता है। काफी देर तक 'कैं-कैं-कैं-कैं' की आवाज करता रहता है। **केंकने** की आवाज कानों को सुहाती नहीं है।

(१८) **कोइल**—यह आकार और रंग में काले कउए से मिलती है। इसकी आँख की पुतली लाल होती है। नैषधकार श्रीहर्ष ने कोयल की लाल आँखों का उल्लेख किया है।[4] कोयल अपने बच्चे कौओं से पलवाती है। आमों के बागों में बसन्त ऋतु में जब यह बोलती है, तब किसान कहते हैं कि यह 'सू अओ' कहकर तोते को बुलाती है। उस समय इसकी आवाज बड़ी मधुर होती है (सं० कोकिल > कोइल)।

---

[1] "तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।"
—तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, काशी, ना० प्र० सभा, कवितावली लंका काण्ड, छंद २६।

[2] "बात दढ़ाइ कुमति हँसि बोली।
कुमत कुविहग कुलह जनु खोली॥"
तुलसीदास : रामचरितमानस, गीताप्रेस, अयोध्या काण्ड, २८।४

[3] "नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष॥"
रामचन्द्र शुक्ल (संपादक) : तुलसी ग्रंथावली, दूसरा भाग, काशी ना० प्र० सभा, दोहावली ४६०।

[4] "दूतीव पान्थं शपतः पिकान् द्विजान्
सखेदमैक्षिष्ट स लोहितेक्षणान्।"
—श्रीहर्षः, नेषध, १।६०

(१६) **कोरिया**—कुछ-कुछ सुनहला रंग; कबूतर से छोटा, चोंच और पंजे मटियाले; बोलते समय 'तैंऊ-तैंऊ' करता है।

(२०) **कोढ़िया**—गलगलिया के बराबर और देह में गहरे सिलहटी रंग का पक्षी।

(२१) **कौआ (कउआ)**—यह दो तरह का होता है—(१) **सादा कउआ** जिसकी देह काली और गर्दन गहरी सिलहटी होती है। (२) **काला कउआ, डोम कउआ** या **पहाड़ी कउआ** जो पूरा ही काला होता है। कौए को **ढेंड़ा** भी कहते हैं। प्रातःकाल यदि घर पर आकर कउआ बोल जाय तो स्त्रियाँ किसी के आने की आशा करने लगती हैं और तब कौए से कहती हैं—"**कोई आबतु होइ तौ उड़ि जइयो।**" कौआ उड़ाने के लिए "**कउआ डो**" कहा जाता है।

(२२) **खंजन** (पा०)—यह गौरइया के आकार की एक सुन्दर चिड़िया है, जिसके रंग कई तरह के होते हैं—(१) सफेद (२) चितकबरा (३) भूरा (४) पीला। खंजन के पाँव और चोंच का रंग काला होता है। इसकी गहरी भूरी पुतली की गोल आँखें बहुत सुन्दर मानी गई हैं। यह पानी के किनारे रहनेवाली चिड़िया है। खंजन की आँखें काव्य में सुन्दर आँखों के लिए प्रसिद्ध उपमान हैं।[1]

(२३) **खुरदाँतरी**—लम्बी चोंच की चील से मिलती हुई एक चिड़िया जिसका बोलना अशुभ माना जाता है।

(२४) **गलगलिया**—आकार में कबूतर से छोटी होती है। यह उड़ते समय मुँह से कभी-कभी 'गलल-गलल' की आवाज करती है। चोंच पीली-सी और पूँछ काली होती है। बदन कुछ कत्थई-सा होता है। गलगलियों को साँप दिखाई दे जाय तो उसके ऊपर भुण्ड बनाकर आवाज करती हुई उड़ती रहती हैं।

(२५) **गौरइया** या **चिरइया**—यह प्रायः घरों में ही चीं-चीं करती रहती है। इसके पंख कुछ-कुछ कत्थई और मटियाले होते हैं। नर गौरइया को **चिरौटा** या **चिड़ा** कहते हैं। **चण्डूल** (पा०) **चिरई, सतबहनी, बसन्ता, तेलिन** (हल्के काले रंग की चिड़िया जो एक-एक मिनट में पूँछ उठाती रहती है) या **थरथरकँपनी, दँहगल, ललगँड़ी** और **दरजिन** या **फुदकी** नाम की चिड़ियाँ गौरइया के बराबर ही होती हैं।

(२६) **ग्वालिन**—इसे **महरी**[2] भी कहते हैं, जो 'दही-दही' की आवाज किया करती है।

(२७) **घ्याल-घप्पा** (शि०)—लाल रङ्ग की चिड़िया जो बाज से कुछ छोटी होती है, घ्याल-घप्पा कहाती है। इसके पंजे काले और चोंच लाल होती है।

(२८) **चंचल**—चितकबरे रङ्ग की दो-तीन अंगुल ऊँची चिड़िया जिसकी बोली मीठी मालूम देती है।

(२६) **चकोर**—(पा०) यह तीतर के समान कुछ-कुछ सफेद चित्तियों वाली काले रङ्ग की चिड़िया है। इसके पेट का रङ्ग कुछ सफेदी लिये हुए होता है। चोंच तथा आँखें लाल होती हैं।

---

[1] "खंजन नैन सुरँग रस माते।"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२६६७

[2] "महरि पुकारि लेहु रे दही।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत ३२८।६

इसकी चोंच कबूतर की चोंच से कुछ बड़ी होती है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह चन्द्रमा की किरणें पीती है या अँगार की चिनगारी चुगती है।

(३०) **चया या चहा**—लगभग कबूतर के बराबर होती है। रङ्ग चितकबरा; सिर और पूँछ काली; पूँछ का सिरा सफेद होता है। बहेलिये इसका शिकार करते हैं। चहा की भाँति **कबूतर, जङ्गली मुरगी, तीतर, फाख्ता, बटेर** और **भटतीतर** भी शिकार की चिड़ियाँ हैं।

(३१) **चरखी**—लगभग दस इंच की मटमैले रङ्ग की चिड़िया है, जिसकी चोंच और पाँव प्याजू रङ्ग के होते हैं। इसे **सतबहनी** भी कहते हैं, क्योंकि ये सात-आठ के झुण्ड में रहती हैं।

(३२) **चिमकातर (चिमगादड़)**—काले रङ्ग का पक्षी, जिसे दिन में दिखाई नहीं देता। इसे **पटादीबली** भी कहते हैं।

(३३) **चुपका**—भूरी और सफेद पींठ का एक पक्षी जो चहे की जाति में से है।

§४८०—**तालाबी चिड़ियों के नाम**—(१) **चैती**—इसे छोटी मुर्गाबी कहते हैं। सिर और गर्दन कत्थई रङ्ग की होती है। यह जाड़ों में दिखाई देती है। चैती की भाँति ही तालाबों में रहनेवाली निम्नांकित चिड़ियाँ हैं—**टिकरी, तिदारी, नकटा, बानवर, बुड़ार, सवन, सिलही, सीखपर, सुरखाब** और **हंसावर**।

§४८१—**अन्य विशिष्ट चिड़ियाँ**—(१) **छपका**—यह चिड़िया आकार में कबूतर से छोटी होती है। रंग मटियाला तथा बादामी-सा होता है। पूँछ लम्बी होती है और उस पूँछ का अंतिम भाग सफेद होता है। चोंच कुछ सफेद होती है।

(२) **जलकउआ**—सारस से छोटा और बगले से बड़ा होता है और रंग काला होता है। प्रायः तालाबों और पोखरों में मछली और मेंढ़की खाता है। इसे **जलमुर्गा** भी कहते हैं।

(३) **झाँपिल**—इसे **भुजंगा, कोतबाल, डौमला** या **तेलिया मैना** भी कहते हैं। यह बिलकुल काली होती है। कउए आदि पर भी यह हमला कर देती है। **पीलक** और **बबूना** नाम की चिड़ियाँ भी इसके साथ पेड़ों पर घोंसला बनाती हैं। इसकी पूँछ दुफंकी और लम्बी होती है। प्रातः चार बजे गाँवों में इसकी **'चीस-चीस'** की आवाज सुनकर स्त्रियाँ उठ पड़ती हैं और चक्की पीसने लगती हैं। स्त्रियों का कथन है कि झाँपिल हमसे कहती है—"उठि बहू पीस; उठि बहू पीस।"

झाँपिल आकार में कबूतर से छोटी होती है। जायसी ने इसके लिए **'तिलोरि'**[1] शब्द लिखा है। भुजंगे या झाँपिल की जाति का एक पक्षी **'भंगराज'** कहाता है।

(४) **झौंकुरा** (शि०)—आकार में झौंकुरा कबूतर से कुछ बड़ा होता है। देह का रंग सफेद-सा; चोंच लाल और पंजे काले होते हैं। अपने से कुछ छोटे पक्षियों पर हमला किया करता है।

(५) **टिटाटींगुली** (शि०)—इसी को **टिटहरी** भी कहते हैं। यह आकार में कबूतर से बड़ी होती है। प्रायः पोखरों के सहारे देखी जाती है। पंख और पींठ भूरी होती है, जिसमें लाल और हरे रंग की चमक भी मारती है। यह 'टिट्टिटिट्टिट्' की आवाज करती हुई गाँव के ऊपर

---

[1] पियर्‌ **तिलोरि** आव जलहंसा।

डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक): जायसी ग्रंथावली, पदमावत, हिंदुस्तानी एकेडेमी, २९८।७

होकर चली जाय तो लोग बड़ा असगुन मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि उस दिन गाँव में किसी की मौत होगी। अतः उस असगुन को रोकने के लिए उसकी आवाज सुनते ही लोग तीन बार थूक देते हैं।

(६) **टिकरी या टिकौरी**—यह आकार में लगभग बतख के बराबर होती है। बतख के पंजों की भाँति इसके पंजों में झिल्ली नहीं होती। टिकौरी का रंग सिलहटी और माथे पर सफेद टीका-सा होता है। टीके के कारण ही संभवतः इसे टिकौरी कहने लगे हैं। यह तालाबी चिड़िया है।

(७) **टीसा** (शि०)—भूरे रंग के पंखोंवाली चिड़िया है, जिसकी पीठ कत्थई-सी होती है। यह आकार में चील से मिलती-जुलती है।

(८) **टीड़ू या टिड्डू**—यह बया के बराबर होती है, जो प्रायः 'चींअ-चींअ' की आवाज करती है।

(९) **टील**—यह बया के बराबर पीले और लाल रंग की चिड़िया है। प्रायः बागों में पेड़ों पर रहती है।

(१०) **ठठेरा**—पीठ और पंख धानी रंग के, चोंच काली, पंजे लाल।

(११) **डौंकिला या डौंगला**—काली चिड़िया है, जो आकार में झाँपिल से मिलती-जुलती होती है।

(१२) **ढेंक** (सं० ढेङ्क)—इसे **गिज्झ** या **गिद्ध** (सं० गृध्र) भी कहते हैं। चील से बड़ा होता है और प्रायः मरे हुए पशुओं का मांस खाता है।

(१३) **तीतर**—(सं० तित्तिर) मटमैले रङ्ग का एक पक्षी जिसके पंखों पर चित्तियाँ-सी होती हैं।

(१४) **तोता**—इसे **सूआ** (सं० शुक) भी कहते हैं। रङ्ग हरा और चोंच लाल रङ्ग की खमदार होती है। इसकी चोंच बहुत सुन्दर मानी जाती है। सुन्दर नाक को 'सूआ की-सी नाक' कहते हैं।

(१५) **धनेस**—यह पेड़ की **खोलर** (कोटर) में रहता है, जो मिट्टी से ढँकी रहती है।

(१६) **पड़की या पड़कुलिया**—यह कबूतर से मिलती-जुलती चिड़िया होती है। इसका नर **पंडुका** या **पड़ुका** कहाता है। इसे **फाख्ता** भी कहते हैं। फाख्ता के पाँच भेद हैं—(१) **काल्हक** (२) **चितरोखा** (३) **धौरी** (४) **पड़ुकी** (५) **इंटकोहरी** या **सिरोटी**।

पड़ुकी का रङ्ग खाकी होता है। जायसी ने **धौरी** फाख्ता और **चितरोख** फाख्ता का उल्लेख किया है।[1]

(१७) **पतेना और पतरिंगा**—पतेना हरे रङ्ग का और पतरिंगा नीली पूँछ तथा कत्थई छाती का होता है। पतेना छोटे-छोटे पतंगे खाता है।

(१८) **पपइया या पपीहा**—यह 'पी कहाँ, पी कहाँ' की बोली बरसात में बोलता है। इसके पंखों और पीठ का रङ्ग हलका सिलहटी तथा भूरा होता है। चोंच हरापन लिये पीली होती

---

[1] "**धौरी** पंडुक कहु पिय ठाऊँ। जौं **चितरोख-न दोसर नाऊँ**॥"
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, ३२८।४

है। काला पपीहा **चातक** भी कहाता है। पपीहे के काले रंग की ओर सूरदास जी ने एक पद में संकेत किया है।[1] कवि-प्रसिद्धि है कि यह पक्षी स्वाति-नक्षत्र के बादल का ही जल पीता है।

(१९) **पिद्दा या पटकपोदना**—(पा०) प्रायः पिद्दे चितकबरे और पिद्दियाँ भूरी होती हैं। पिद्दी बया से भी छोटी होती है।

(२०) **पीलक**—सुन्दर चिड़िया है, जिसकी पूँछ और पंखों के बीच का हिस्सा काला होता है।

(२१) **पेंडू**—नीले रङ्ग की एक बिचौंदे कद की चिड़िया पेंडू कहाती है।

(२२) **फुदकी**—इसे **दरजिन** भी कहते हैं। यह घोंसला बनाने में दरजियों के कान काटती है। इसकी पींठ का रंग पीलापन लिये हुए हरा या धानी होती है।

(२३) **फुलचुही**—यह लम्बी और कुछ खमदार चोंच की होती है, जो फूलों पर बैठकर और उनके पेंदों में छेद करके रस चूस लेती है।

(२४) **बतख**—सफेद रङ्ग का पक्षी जिसकी चोंच और पंजे लाल होते हैं।

(२४) (अ) **बटेर**—(वर्तिका) तीतर के रूप-रङ्ग का पक्षी जिसकी आँखें बड़ी होती हैं। बड़ी और चमकती हुई सतर आँखों के लिए '**बटेर की-सी आँखें**' कहा जाता है।

(२५) **बनियाँ**—'कें-कें-कें-कें' करनेवाली मटियाले रङ्ग की कबूतर जैसी चिड़िया।

(२६) **बुलबुल**—(पा०) इसके तीन भेद हैं—(१) काँगड़ा (२) गुलदुम (३) सिपाही। बुलबुल का सिर और गला काला और बाकी शरीर गहरा भूरा होता है। लोग इसे पिंजड़े में पालते हैं।

(२७) **बेडौल**—लम्बी गर्दन की एक चिड़िया जिसका रंग सफेद और उसमें काली बूँदें होती हैं। इसकी गर्दन हिलती रहती है।

(२८) **बैआ या बया**—भूरे पंखों की छोटी चिड़िया है, जो काफी लम्बा-चौड़ा और बढ़िया घोंसला बनाकर पेड़ पर रहती है। लोक-वार्ता है कि बन्दर को सीख देने से बये का घोंसला नष्ट हो गया था। प्रसिद्ध है—

> "सीख वाई कूँ दीजिए, जाकूँ सीख सुहाय।
> सीख न दीजै बाँदरहि, जो घर बया कौ जाय॥"[2]

(२९) **मछमरनी**—काले रंग की चिड़िया है, जिसकी पूँछ के पर फूल की पंखड़ियों की तरह तीन ओर फैले रहते हैं। यह सिर, पूँछ और पंखों में से किसी एक को हिलाती रहती है।

(३०) **महोख**—शरीर काला और पंख कत्थई होते हैं। पूँछ कद के हिसाब से काफी बड़ी होती है। ईख के खेतों में 'कौ कौ कौ' करके घुस जाता है। इसकी आँखें लाल और चोंच तथा पैर काले होते हैं। इसे **हुक्का** या **हुक्कू** भी कहते हैं।

---

[1] "बहुत दिन जीवौ पपिहा प्यारौ।"
बासर रैनि नाम लै बोलत, भयौ बिरह जुर कारौ।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३३३७

[2] उपदेश पात्र को ही देना उचित है। अपात्र को सीख देना हानिप्रद है।

(३१) **मुटरी**—यह काले रंग की चिड़िया है, जिसकी पूँछ काफी लम्बी होती है।

(३२) **मुनियाँ** (पा०)—पिद्दी या लाल के बराबर की चिड़ियाँ हैं। मुनियाँ पिंजड़े में पाली जाती हैं।

(३३) **मूजैनी**—हल्के हरे रंग की चिड़िया जो प्रायः मूँज के झूँड़ में रहती है।

(३४) **मैना**—काले रंग की चिड़िया है, जिसके कान सफेद होते हैं। **अबलखा, किलनहिया, किलहटा** और **पवई** नाम मैनाओं के ही हैं।

(३५) **मोर** (सं० मयूर)—एक बड़ा पक्षी जिसके पंख नीले और कुछ हरे होते हैं। मोर बादल की गरज सुनकर 'मेओ-मेओ' कहता है। इसकी पूँछ में चँदोएदार **डढ़ीरें** लगी रहती हैं, जिन्हें नाचते समय वह ऊपर उठा लेता है।

(३६) **रोबिन**—रंग की काली और सफेद होती है। मीठी बोली बोलती है।

(३७) **लँगाड़ या लगर**—इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और गर्दन तथा गाल के नीचे का हिस्सा सफेद होता है। यह पक्षी देह में चील के बराबर होता है।

(३८) **लवा** (सं० लाव)—लवा रूप-रंग में तीतर से मिलती है, लेकिन आकार में तीतर से छोटी होती है। लवा भूरे रंग की होती है। नीचे के हिस्से में छोटी-छोटी काली बिन्दियाँ होती हैं। लवा १०-१२ के झुंड में निकलती हैं, और आहट पाकर तुरन्त छिप जाती हैं। तुलसीदास जी ने लवा के लुकने का उल्लेख किया है।[1]

(३९) **लहटोरा** (शि०)—यह दस इंच लम्बी सिलहटी और सफेद रंग की होती है। इसकी तीन जातियाँ हैं—(१) **दुधिया** (२) **मटिया** (३) **खरकठा**। लहटोरे की चोंच **सिकरे** की भाँति कुछ टेढ़ी होती है।

(४०) **लाल** (पा०)—लाल रंग की छोटी चिड़िया। इसे **लाल मुनिया**[2] भी कहते हैं। इसके उड़ने में और चाल में अनोखी फुर्ती होती है।

(४१) **लीलकंठ (नीलकंठ)**—इसका कंठ बहुत कम नीला होता है। पंखों का रंग नीला होता है। टाँगें गहरी बादामी होती हैं। आकार में कबूतर के बराबर होता है। जेठ के दशहरे के दिन इसके दर्शन शुभ माने जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि दशहरे के दिन नीलकंठ के दर्शन जिसे हो जायँ, उसे साल भर तक उसके प्रिय जनों के दर्शन मिलते रहते हैं। यदि कोई आदमी बहुत दिनों में मिले तो उससे कहा जाता है कि "आप तो नीलकण्ठ हो गये हैं।"

(४२) **श्यामा**—गौरइया के बराबर काली चिड़िया है जिस पर दो एक जगह सफेद चित्तियाँ भी होती हैं। इसको हरे पेड़ पर बैठे देखकर सगुन बन जाता है। कहावत प्रसिद्ध है—

"स्यामा दरसनन कूँ होत्यै, पूँछ उखारिबे के लैं नाइँ।"[3]

(४३) **सहेला**—पंखों के सिवा सारा शरीर लाल रंग का होता है।

---

[1] "देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु **लवा** लुकाने॥" —'मानस', बालकाण्ड २६८।२

[2] 'मनु लालमुनैयनि-पाँति, पिंजरा तोरि चली।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२४

[3] श्यामा चिड़िया दर्शनों के लिए होती है, पूँछ उखाड़ने के लिए नहीं।

(४४) **हारिल या हरियल**—यह "हरे रंग का कबूतर के बराबर होता है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब **हारिल**[1] धरती पर बैठता है, तब पंजों में लकड़ी दबा लेता है। गाँव के लोग इसे पूर्व जन्म का राजा हरिश्चन्द्र बताते हैं। गाँववालों का कहना है कि राजा हरिश्चन्द्र से सारी पृथ्वी विश्वामित्र ने दान में ले ली थी। इसीलिए अब यह दान की हुई धरती पर नहीं बैठता। हारिल शायद ही कभी जमीन पर उतरते हों। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि ये बन्दूक का छर्रा लगने पर मरकर भी डालों पर लटके रह जाते हैं।

(४५) **हैवसिन**—हलके काले रंग की चिड़िया, जिसकी चोंच कुछ टेढ़ी होती है। यह पानी के सहारे रहती है।

§४८२—कबूतरों से सम्बन्धित शब्दावली—कबूतर पालतू पक्षी है। मुसलमान लोग बहुत कबूतर पालते हैं और उनकी उड़ानों की शर्त बदते हैं। कबूतर पालनेवाले और उड़ानों की शर्तें लगानेवाले **कबूतरबाज** कहाते हैं। कबूतरों को कई जातियाँ हैं। स्थान, गुण, अवगुण, बोली, रूप और रंग के विचार से कबूतरों के अनेक नाम हैं। कबूतरों की एक उड़ान जो ऊँची और लम्बी होती है, **पल्ला** कहाती है।

§४८३—कबूतरों के सोने और बैठने के स्थान—(१) मिट्टी का बना हुआ बहुत छोटा-सा एक घर जिसमें एक ही दरवाजा होता है **धावली** कहाता है। धावली में अलग-अलग खाने नहीं होते, बल्कि कोठरी-नुमा पटी हुई एक जगह बनी रहती है, जिसमें सब कबूतर एक जगह रहते हैं। खानेदार काठ का घर **काबक** कहाता है। काबक का प्रत्येक खाना इतना बड़ा बनवाया जाता है कि उसमें कबूतर का एक जोड़ा आसानी से रह सके। काठ का बना हुआ बड़ा काबक **दरबा** कहाता है। कबूतरों को दरबे में घुसाने के लिए कबूतरबाज **'दरबे-दरबे'** कहते हैं और दरबे से बाहर निकालने के लिए **'दाने-दाने'** कहते हैं।

(२) एक लम्बा बाँस गाड़ते हैं और उसके सिरे पर आड़ी हालत में एक दूसरा बाँस बाँधते हैं, जिस पर कबूतर बैठते हैं। दोनों बाँसों को मिले हुए रूप में **पम्प** कहते हैं। गड़े हुए

[रेखा-चित्र २६२ से २६३ तक]

---
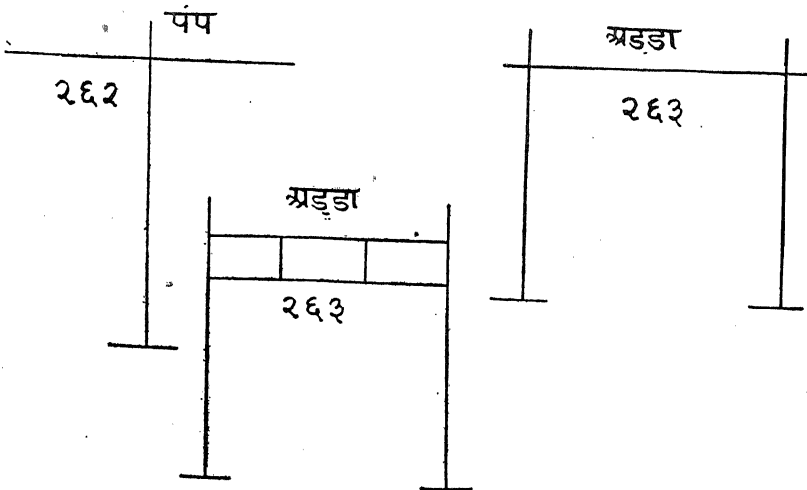
[1] "हमारैं हरि हारिल की लकरी।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३६८८

दो बाँसों के सिरों पर जब एक बाँस आड़ा बाँध दिया जाता है, तब वह **अड्डा** कहाता है। आयताकार अथवा गोल दशा में जब बाँसों की फच्चटों का जालीदार टट्टर-सा बनाया जाता है और उसके नीचे एक या चार बाँस साधने के लिए लगा देते हैं, तब वे **छतरी** कहाते हैं। जाल सहित छतरी **जालिया छतरी** कहाती है।
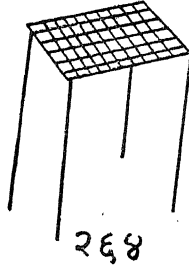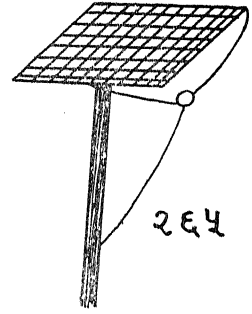
[रेखा-चित्र २६४ से २६५ तक]

§४८४—**स्थान के आधार पर कबूतरों के नाम (१) काबुली**—इस नस्ल के कबूतर प्रायः नीले होते हैं।

(२) **चीनिया**—सफेद रंग के कबूतर को चीनिया कहते हैं। इसकी आँख की पुतली भी सफेद-सी होती है। यह एक खास नस्ल है।

(३) **सिराजी**—सिराजी कबूतर प्रायः **अबलक** (सफेद रंग के साथ किसी अन्य रंग के योग वाला) होता है। शीराज ईरान में एक प्रसिद्ध नगर है। सिराजी की नस्ल वहीं से संबंध रखती है। इसीलिए इसे सिराजी (शीराजी) कहते हैं। सिराजियों में उन्नाबी और **लाखी** (मटैले लाल रंग के) भी होते हैं।

§४८५—**नस्ल के विचार से कबूतरों के नाम—पलकी, बबरा** और **रट्टा** नाम के कबूतरों की चोंचें लम्बी होती हैं। एक बड़ी जाति का कबूतर **कपोत** कहाता है।

§४८६—**गुण-अवगुण के आधार पर कबूतरों के नाम (१) अँसबहा**—इसकी आँखों के कोयों से पानी बहता रहता है। उस पानी को **आँसू** कहते हैं। इसीलिए ऐसे कबूतर को अँसबहा कहते हैं।

(२) **घिन्ना या घिरना**—कलाबाज कबूतरों में यह बहुत बढ़िया माना जाता है। इसकी आँखें गोल और लाल होती हैं। पंजों के ऊपर छोटे-छोटे बाल होते हैं, जिन्हें **पामोस** कहते हैं। यह आस्मान में ऊँची उड़ान लेता है। लेकिन अपनी कबूतरी को देखकर एकदम **खपची मारकर** (पंख बन्द करके) ढेले की तरह नीचे आता है। इससे अधिक जल्दी कोई कबूतर आस्मान से नहीं आ सकता। इसी कबूतर के लिए जायसी ने **'घिरिन परेवा'**[1] शब्द लिखा है। घिन्ना छतरी की सीध में ही ऊपर उड़ता है; इधर-उधर नहीं जाता।

---

[1] **घिरिन परेवा** आव जस, आइ परहु पिय टूटि। सं० डा० मा० प्र० गुप्त,
—जायसी-ग्रंथावली, पदमावत दो० ३५३

(३) **ताखी**—इसकी एक आँख पीली और एक काली होती है। यह **असैना** (सं० असहनीय) माना जाता है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"जानें पाल्यौ ताखी। घर में न छोड़ूयौ बाकी।"[1]

(४) **तिलबहा**—इसकी आँख का तिल बहकर नीचे की ओर बढ़ जाता है।

(५) **नामावर**—इस नस्ल के कबूतरों के पुरखे पुराने जमाने में चिट्ठियाँ ले जाया करते थे। कबूतरबाजों का कहना है कि नामावर जिस जगह को एक बार देख लेता है, उसे फिर कभी भूलता नहीं।

(६) **निसावड़ा**—यह भी कलाबाजों (गिरहबाजों) में प्रसिद्ध है। यह प्रायः **चित्तीदार** होता है। आँखों में **जरची** (पीलाई) और पूँछ **घोंघी** (अर्द्धवृत्ताकार) होती है। यह घिन्ने की भाँति ही ऊँचा उड़ता है।

(७) **लक्का**—खड़े होते समय लक्के की निराली धज और शान रहती है। वह छाती तानकर ऊपर उठी हुई पूँछ से सिर को मिलाते हुए नाचता हुआ मालूम पड़ता है। इसकी देह बड़ी लचीली होती है। यह उड़ान का न होकर **दिखनौटू** (दिखावे का) कबूतर है। यदि लक्के की टाँगों पर रूँए हों तो वह **पमोर्-लक्का** कहाता है।

(८) **लोटन**—प्रायः सफेद रंग का होता है। यदि इसे धरती पर लुड़का दिया जाय तो घण्टों लुड़कता ही रहता है। जब उसे पकड़कर उठा लिया जाता है, तब उसका लुड़कना बन्द होता है।

§४८७—बोली के आधार पर कबूतरों के नाम—(१) **अलीअली**—इसकी आवाज से ऐसा मालूम होता है कि यह 'अलीअली' कहता है। इसीलिए इसे 'अलीअली' कहते हैं। अली (अ०) मुसलमानों के चौथे खलीफा थे।

(२) **गफूरिया**—यह दिखनौटू कबूतर है। इसके सिर पर एक टूमनी-सी होती है और रङ्ग प्रायः सफेद होता है। कबूतरबाजों का कहना है कि यह सुबह उठकर 'गफ-गफ' की आवाज में ईश्वर से मालिक की बरकत के लिए प्रार्थना करता है।

(३) **रबरब**—ईश्वर को अरबी में 'रब' भी कहते हैं। यह कबूतर 'रबरब' की आवाज करता है।

(४) **याहू**—यह कबूतर मुँह से याहू (फा० याहू=ऐ खुदा) की आवाज करता है। सुबह में इसकी चहकन बड़ी प्यारी लगती है।

§४८८—रूप के विचार से कबूतरों के नाम—(१) **अनारचसम**—(अनार+फा० चश्म=आँख) इसकी आँख सफेद और पुतली अनार के दाने की तरह हल्की लाल-सी होती है।

(२) **कुलहइया**—इसका सिर काला और शेष सारा शरीर सफेद होता है। वह कालापन सिर पर टोपी (फा० कुलाह=टोपी) जैसा मालूम पड़ता है।

(३) **चोटिया**—इसके सिर पर एक चोटी होती है।

(४) **जर्चा**—शर्बती या पीली आँखों का कबूतर **जर्चा** कहाता है। यदि आँख अधिक लाल होती है तो उसे **खूनी जर्चा** कहते हैं।

---

[1] जिसने ताखी कबूतर पाला, उसके घर में कुछ नहीं बचा।

(५) **जालिया**—इसका सफेद रङ्ग होता है और उसमें काली चित्तियाँ होती हैं।

(६) **टैनी या गोला**—छोटे कद के गोल कबूतर **टैनी** या **गोला** कहाते हैं।

(७) **नकाबिया या नकाबपोस**—(अ० नकाबपोश=कपड़े से जो चेहरा ढके हुए हों) इस कबूतर की आँखों के ऊपर बड़े-बड़े रुएँ होते हैं, जो आँखों को कुछ-कुछ ढँक लेते हैं।

(८) **परचिरा**—इसके एक पंख में से दो-दो पर निकले हुए होते हैं।

(९) **बमना (बौना)**—यह कद में छोटा होता है। यह देशी और सिराजी से पैदा हुई दोगली नस्ल है।

(१०) **मको या मकोइया**—मकोइ एक जङ्गली पौधा (क्षुप) है, जिस पर लाल और पीले रङ्ग की छोटी-छोटी गोलियों की तरह के फल आते हैं। मकोइये की आँखें **गदली** (कुछ काली सी) और पुतलियाँ लाल या पीली होती हैं, जो मकोइ के फल के रङ्ग से मिलती हैं।

(११) **मुक्खी**—इसका मुँह सफेद और सारी देह काली या किसी भिन्न रङ्ग की होती है।

§४८९—**रङ्गों के आधार पर कबूतरों के नाम**—(१) **अम्बरसिरा**—इसका सिर और गर्दन आस्मानी (हलकी नीली) और शेष शरीर सफेद होता है। इनकी पूँछ भी काली होती है। यदि सिर अधिक काला हो तो उसे **कलसिरा** कहते हैं। काले पंखोंवाला **कलपरा** और काली पूँछवाला **कलदुमा** कहाता है। यदि पङ्ख और पूँछ काली हो तो उसे **कलपरा-कलदुमा** कहते हैं।

(२) **कबरा**—काले कबूतर पर सफेद चित्तियाँ हों तो वह **कबरा** कहाता है।

(३) **कलचीनी**—काले बदन पर सफेद धब्बे हों तो वह **कलचीनी** कहाता है। इसी प्रकार लाल बदन पर सफेद धब्बोंवाला **ललचीनी** कहाता है। यदि सफेद बदन पर लाल धब्बे हों तो उसे भी **ललचीनी** कहते हैं।

(४) **कलचोंचा**—रंग सफेद और चोंच तथा नाखून काले।

(५) **कागदी**—साधारण सफेद रंग का कबूतर जिसकी देह का रंग सफेद कागज से मिलता हो। बिलकुल सफेद को **चिट्टा** या **बेदागकागदी** कहते हैं। इससे भी अधिक सफेद **दूधिया** कहाता है।

(६) **कासनी**—जिसका सारा बदन गहरा सिलहटी और कुछ हरा-सा होता है। इसे **काछिया** भी कहते हैं। यह रंग में गहरा आस्मानी होता है।

(७) **खतङ्ग**—यह पँचरंगा होता है। इसका कुछ हिस्सा सफेद, कुछ लाल, कुछ काला और कुछ अन्य रंगों का होता है। यदि सारे बदन का रंग चमकीला सफेद हो और उस पर कई बड़े-बड़े धब्बे अन्य रंगों के हों तो उसे **चिलकिया खतङ्ग** कहते हैं। इसी प्रकार गुलाबी जमीन पर विभिन्न रंगों के धब्बोंवाला **गुलाबिया खतङ्ग** कहाता है। लाल जमीनवाले खतङ्ग को **बिजलिया खतङ्ग** कहते हैं।

(८) **खैरा**—कुछ काला और लाल रंग मिला हुआ खैरा कहाता है। सफेद रंग के कबूतर पर खैरे चित्त हों तो उसे **खैरा चीनी** कहते हैं।

(९) **गजरा**—इसकी देह पर बड़े-बड़े काले और सफेद आदि कई रंगों के लम्बे-लम्बे धब्बे होते हैं।

(१०) **गर्रा**—इसे **लाखी** भी कहते हैं। इसका रंग लाख का-सा (कुछ कालापन लिये लाल) होता है।

(११) **गोरा**—इसका रंग गेहूँ का-सा होता है।

(१२) **घाघरा**—लाल आँखवाला हल्के नीले रंग का कबूतर।

(१३) **जलउआ तामड़ा**—इसकी देह ताँबे की भाँति लाल होती है, लेकिन जले के निशान की भाँति जहाँ-तहाँ काले धब्बे भी होते हैं। देह और चोंच गहरी लाल हो तो उसे **सुर्ख तामड़ा** कहते ।

(१४) **जरद सिराजीत**—ऊपर का हिस्सा परों सहित लाल होता है और नीचे का हिस्सा सफेद होता है।

(१५) **दुबाज**—जिन कबूतरों के दोनों पंख सफेद और शेष भाग किसी अन्य रंग का होता है, वे **दुबाज** कहाते हैं यदि सफेद पंखों के साथ-साथ शेष शरीर काला हो तो उन्हें **काले दुबाज** कहते हैं। इसी प्रकार **'भूरा दुबाज'**, **सुर्ख दुबाज**, **लाखी दुबाज** और **कासनी दुबाज** नाम हैं।

(१६) **पीलिया**—इसका बदन तो सफेद-सा होता है, लेकिन उस पर पीली झाँई होती है।

(१७) **पेटल**—इसका बदन काला और पेट का हिस्सा सफेद होता है, जो दूर से ही साफ चमकता है।

(१८) **फुलसिरा**—इसके सिर पर फूल की-सी चित्तियाँ होती हैं।

(१९) **बजरा या बजरई**—देह का रंग सफेद या अन्य कोई एक रंग होता है, लेकिन उस पर खाकी, लाल या मटमैले रंग की छोटी-छोटी बूँदें पड़ी रहती हैं। वे कबूतर **बजरे** कहाते हैं।

(२०) **मक्खिया हरा**—इसकी देह पर काली बूँदें होती हैं।

(२१) **मूँगिया**—हरी देह होती है, लेकिन सिर या पंखों पर सफेद बूँदें दो-चार होती हैं।

(२२) **मोतीचूर**—सारा शरीर एकदम सफेद होता है, लेकिन आँख की पुतली काली होती है।

(२३) **लँगोटिया**—इसका सारा बदन सफेद होता है, लेकिन पूँछ के ऊपर नीचे का भाग काला होता है। पेट और पूँछ के बीच में नीचे की ओर भी उसके काली पट्टी-सी होती है।

(२४) **ललसिरा**—इसकी सारी देह सफेद; लेकिन सिर लाल होता है।

§४९०—तीतरों से संबंधित शब्दावली—

(१) तीतर की देह के कुछ चिन्हों के नाम—

बच्चा या छोटी उम्र के तीतर की टाँग में अनी का उभरा हुआ भाग दिखाई देता है, जिसे **मुक्की** कहते हैं। जब तीतर बड़ा हो जाता है, तब उस मुक्की में काँटे की-सी नोंक निकल आती है। उस समय उस मुक्की को **काँटा** कहते हैं। **डंके** (कुश्ती) से समय तीतर अपने दुश्मन तीतर की देह पर काँटे और चोंच से चोट मारता है। तीतरबाजी में कुश्ती जीतना **डंका-जीतना** कहाता है। जब एक तीतर अपने दुश्मन तीतर को मारकर दूर भगा देता है, तब वह क्रिया **खेदना** कहाती है।

(२) **तीतरों की किस्में—**

(क) **देसी; दोगला** और **दखिनी** ही खास किस्में हैं। दखिनी में **टैनी, बिंचकन** और **झाँपी** (बड़ा और भारी तीतर) नाम कद के विचार से हैं।

रंग के विचार से निम्नांकित नाम भी हैं—(१) **तेलिया तीतर—**इसकी पीठ पर चमकीले लाल धब्बे होते हैं।

(२) **पीला** (३) **भूरा** (४) **महदिया—**इस कबूतर की पींठ पर लाल चित्तियाँ होती हैं।

(५) **सुर्खा—**इसका लाल रंग होता है।

(६) **भट तीतर—**इसका ऊपरी भाग हलका सिलहटीपन लिये हुए बादामी होता है।

तीतर की एक खास नस्ल **गिरीफाल** कहाती है। देसी मादा और दोगले नर से पैदा हुआ तीतर **खिच्चर** कहाता है।

(ख) बड़े-बड़े खानों का बिना पेंदे का पिंजड़ा जिसके अन्दर तीतर लोट मारता है, **लोट** या **खाँचा** कहाता है। कुश्ती जीतने के बाद तीतर लोट में ही लोट मारकर अपनी थकान मिटाता है। कायर या डरपोक तीतर जो दूसरे तीतर को देखकर कुश्ती नहीं लड़ता या भाग जाता है, वह **कौड़ीलात** कहाता है। जो दुश्मन के आगे डटे रहने में हिम्मत दिखाता है और कुश्ती भी जीतता है वह **जीवटा** कहाता है। तीतरबाजों में कुश्ती की शर्त बदी जाती है, तब वह बदन **डंका** कहाती है। पचास रुपयों तक का भी डंका बदा जाता है।

§४६१—**तीतरों की कुश्तियों के दाव-पेंचों के नाम—कनैल या कनेर—**जब तीतर अपने दुश्मन तीतर को कनपुटी पर चोंच मारता है, तब वह चोट **कनैल** या **कनेर** कहाती है।

(२) **काँटा—**जब एक तीतर दूसरे को काँटा मारकर भगा दे तब वह दाव काँटा कहाता है।

(३) **कुलफ—**जब एक तीतर दूसरे तीतर की चोंच में अपनी चोंच डालकर पटक देता है, तब वह **दाव कुलफ** कहाता है।

(४) **कुलबबू—**दुश्मन तीतर की बगल में चोंच गड़ाकर उसे चित्त पटक देना।

(५) **गलखींची—**गले के नीचे की खाल चोंच से पकड़कर खींचना।

(६) **गलफू—**दुश्मन तीतर के गलेफू (आँख के नीचे और गाल से ऊपर) पर चोंच मारना।

(७) **चहरमार या चहया—**चहरे पर चोंच मारना।

(८) **जबूतरी—**गाल और होंठ के बीच की जगह नोंच लेना।

(९) **जाफ—**दुश्मन तीतर को बेहोश कर देना।

(१०) **टीक—**चोंच से खाल पकड़कर खींचना।

(११) **डङ्क या डङ्का—**दुश्मन तीतर के माथे में चोंच मारना।

(१२) **धरपटक—**दुश्मन कबूतर के पेट के नीचे घुसकर उसे चित्त हालत में उलट देना।

(१३) **पटक—**किसी एक जगह चोंच से पकड़कर गिरा देना।

(१४) **पट्टी—**गर्दन की दाईं या बाईं ओर चोंच मारना।

(१५) **पलकन—**पलक पकड़कर खींचना।

(१६) **पेचमुरैना—**गला पड़कर ऊपर उठाना।

(१७) **पोटा—**दुश्मन की छाती पर चोंच मारना।

(१८) **लेपटक—**पट्ट पड़कर दुश्मन तीतर की टाँगों को पकड़कर उठाना।

§४६२—**बटेर सम्बन्धी शब्दावली**—(क) बड़े कद की भारी बटेर **घाघस** और छोटे कद की **चिनिंग** कहाती है। काले रंग की नर बटेर जो बहुत ताकतवर होती है, **चिंगपोटा** कहाती है। यह नर बटेर जिसके जबड़े के नीचे परों का गुफ्फा होता है, **झालरा** कहाती है। यह कुश्ती के लिए अच्छी होती है।

(ख) बटेर की एक किस्म जिसके पंख भारी हों, लेकिन देह पतली हो, **परेल** कहाती है। यह लड़ती नहीं, **दिखनौट** होती है। कत्थई रंग की नर बटेर **खैरा** कहाती है। वह लड़ाकू बटेर जो अपने दुश्मन को भागने नहीं देती और उसे नोच-नोचकर घायल करती रहती है, **लिपटू** या **खेदा** कहाती है।

§४६३—**मुर्गी मुर्गे से सम्बन्धित शब्दावली—(क) मुर्गियों के नाम—**

(१) **घाघस**—बड़े कद की एक मुर्गी **घाघस** कहाती है।

(२) **टैनी**—देशी नस्ल की छोटे कद की मुर्गी।

(३) **मीनार**—यह देह की बड़ी और अधिक अण्डे देनेवाली है।

(४) **रोड**—खूबसूरत होती है, लेकिन अण्डे कम देती है।

§४६४—**अण्डे देने के विचार से मुर्गियों के नाम**—अण्डे सेने की इच्छा की पूर्ति **'कुड़क'** कहाती है। अण्डे बन्द कर देनेवाली मुर्गी **कुड़किन** कहाती है। जो अण्डा नहीं देती, उसे **थुरकुड़क** कहते हैं। **'मुर्गी कुड़क है गई'** या **'मुर्गी चिर्च है गई'** का अर्थ है कि मुर्गी ने अण्डे देना बन्द कर दिया।

मुर्गियाँ लकड़ियों के बने हुए खोल में बन्द की जाती हैं, जो **टापा** कहाता है।
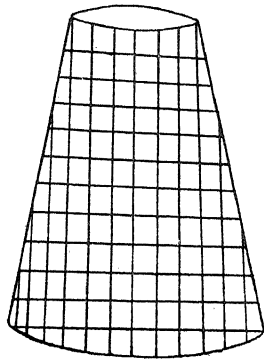
[रेखा-चित्र २६६]

§४६५—**मुर्गे की देह के चिन्हों के नाम**—(१) **अनी**—मुर्गे की टाँग में निकलनेवाला काँटा जो जवानी में निकलता है, अनी कहाता है। यदि अनी अच्छी तरह पक जाती है, तो उसे **छड़** कहते हैं।

(२) **घौगा या पोटा**—मुर्गे की छाती के पास अन्दर एक पोटली-सी होती है, जिसमें वह दाना-पानी भर लेता है।

(३) **दौल**—काँटे का प्रारम्भिक उभार जो टाँग में चने के दौल के बराबर होता है, दौल कहाता है।

(४) **बगबगी**—मुर्गे की डाढ़ी जो खाल के रूप में मुँह के नीचे लटकी रहती है।

(५) **लोलक**—मुर्गे के कान के पास की खाल जो लटकती रहती है।

§४६६—मुर्गों के नाम (क) जाति या नस्ल के विचार से—

(१) **असील**—यह बहुत उत्तम जाति का मुर्गा है। मुर्गे-मुर्गियाँ पालनेवालों का कहना है कि गिद्ध से मुर्गी को मिलाने पर असील पैदा होता है। इसकी छाती चौड़ी और कद बड़ा होता है। इसकी लोलक बहुत छोटी और कलगी भी छोटी तथा मोटी होती है। यह बड़ा **लड़न्ता** और जीवट का होता है।

(२) **औलंग**—बज्जी और हेटी जाति का एक मुर्गा औलंग कहाता है।

(३) **देसी**—छोटे कद का होता है।

(४) **मीनार**—केस छोटा, आँख मकोई जैसी और लोलक बड़ी।

(५) **बण्डम**—तीतर जैसा खूबसूरत होता है।

(६) **रोड**—रङ्ग पीला, केस छोटा, पूँछ मुड़ी हुई।

(७) **लखारन**—पीले रङ्ग का होता है और पैर का काँटा बड़ा होता है। यह **चीनी** का उल्टा है, क्योंकि चीनी के पाँव में काँटा नहीं होता।

(८) **सिन्ताला**—एक खास नस्ल का मुर्गा है।

(ख) काँटे के विचार से—

(१) **कलकँटिया**—जिसके पैर का काँटा काले रंग का होता है, वह मुर्गा कलकँटिया कहाता है।

(२) **चाबुका**—काँटा मारने में तेज और फुर्तीला मुर्गा।

(३) **मकना**—वह मुर्गा जिसके पाँव में काँटा न निकला हो या काट दिया गया हो।

(ग) विशेष चिन्हों के आधार पर—

जो एक पङ्ख झुकाकर चले वह **कँधौड़ा** और जो नरम बालों का ऊँचे कद का हो वह **घगसा** कहाता है। जिसकी नाक के सूराख बड़े हों वह **नकपोटा** कहाता है। एक खास नस्ल का छोटे कद का मुर्गा **बिछुआ** कहाता है। जिसकी गर्दन के नीचे बालों का गुप्फा हो, उसे **गलुआ** कहते हैं। छह महीने से लेकर साल भर तक का मुर्गा **पट्ठा** कहाता है। जिसकी पूँछ कमल के फूल की तरह घेरेदार हो, उसे **कमलपुच्छा** कहते हैं।

(घ) रङ्गों के आधार पर—

जिसके पङ्ख सफेद, सिर पीला और लाल; और बाकी देह काली हो, उस मुर्गे को **खजूरिया** कहते हैं। दो रङ्गों के पंखोंवाला मुर्गा **बाखला** कहाता है। लाल पंखोंवाले को **महँदिया** कहते हैं।

अध्याय ४

साग, तरकारी और फल बेचना

§४९७—गाँवों में पास के कस्बों या नगर से आकर प्रायः प्रति दिन कुछ लोग डलियों में साग और फल सिर पर रखकर बेचा करते हैं। वे लोग **बहेरेवारे** कहाते हैं। गाँव के निवासी प्रायः अनाज से ही साग-तरकारी खरीदते हैं। उस अनाज को **बल्दौरी** (माँट में) कहते हैं। यदि कोई मनुष्य संयोगवश पैसा-टका देकर कुछ खरीदता है, तो वे दाम **नगदाइस** कहाते हैं।

§४९८—बहेरेवाला बेचने के लिए जब पहली बार सिर से डलिया उतारता है, तब उसे **राम उतारी** कहते हैं। जहाँ राम उतारी होती है, वह जगह **गंगा कौंड़ी** कहाती है। सबसे प्रथम बार **बहेरेवाले** को जो अनाज या पैसे की आमदनी होती है, वह **बौहनी** या **बौहनी बट्टा** कहाती है। यदि कोई गाहक पहली **पोत** (बार) में भाव-ताव पूछकर ही रह जाय और साग-तरकारी कुछ न खरीदे, तो बहेरेवाला बुरा मानता है; क्योंकि उसे वह अपने लिए **अनैंठ** (सं० अनिष्ट) समझता है। दिन भर में कुछ भी न बिकना बहेरेवालों की बोली में "**ओर परिवा-उतरनौ**" कहाता है। तेज बेचने को **महँगा** या **अकरौ**[1] (अ० अक्रा—स्टाइन०) और सस्ता बेचने को **मन्दौ**[2] कहते हैं। साग-भाजी मन्दी न बिके और अच्छी आमदनी हो; इसी आशा से बहेरेवाला सिर पर डलिया रखकर अपने घर से चलते समय "**राम राम, हे गंगे माई**" कहता है। इसे **सगुन साइत** या **सुमिरन** (सं० स्मरण) कहते हैं (अ० साअ़त>साइत)।

§४९९—यदि अनाज के बजन के बराबर ही ठीक-ठीक कोई चीज तराजू में तौल दी जाती है, तो उस **जोख** (तौल) को **बरोबर** या **बरब्बर** (बराबर) कहते हैं। यदि बराबर साग-तरकारी तौलने से पहले अनाज में से एक मुट्ठी दाने बहेरेवाला निकाल लेता है, तो उन दानों को **लाब** (सं० लाभ) कहते हैं; और वह जोख "**लाब लै बरब्बर**" कहाती है। हथेली और अँगूठे-सहित चारों उँगलियाँ मिलाकर जब कुछ ऊपर की ओर मोड़ ली जाती हैं, तो हाथ के उस गड्ढेदार आकार को **खौंच** कहते हैं। कभी-कभी लाब खौंच भरकर भी लिया जाता है।

§५००—यदि अनाज के दो बराबर हिस्से करके फिर उनमें से एक हिस्से के बराबर साग-तरकारी तौली जाती है, तो उस तौल को **आधें-आध** कहते हैं। यदि अनाज के तीन बराबर के हिस्से किये जाते हैं, तो उन तीनों में से प्रत्येक हिस्सा **खूँट** कहाता है। जब बहेरेवाला अनाज के दो खूँट अपने **गड्ड** (कई तरह के मिले हुए अनाजों का ढेर) में डालकर तीसरे खूँट के बराबर साग-तरकारी तौलता है तो उस तौल को **तिखूँटी** कहते हैं। इसी प्रकार चार हिस्सों में से एक **चौ-खूँटी** और पाँच में से एक **पँचखूँटी** कहाती है।

§५०१—गाहक भी बहेरेवाले से हिसाब के अनुसार साग-तरकारी लेने के बाद कुछ और भी हठपूर्वक माँग लेता है। इस प्रकार गाहक द्वारा प्राप्त की हुई वस्तु **रूँक** (बनारसी बोली में **घलुआ**) कहाती है। जनपदीय क्रय-विक्रय में बहेरेवाले की ओर से 'लाब' लिया जाता है और गाहक की

---

[1] "नाम प्रताप महामहिमा अँकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े।"
—तुलसी; कवितावली (तुलसी ग्रंथावली, काशी ना० प्र० सभा, दूसरा भाग) उत्तर काण्ड १२७।

[2] "मुक्ति आनि मन्दे मैं मैली।"—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३७२४।

ओर से 'रूँक' ली जाती है। तरबूजे के अन्दर का हिस्सा लाल और पका हुआ है, यह दिखाने के लिए बहेरेवाले उसमें से एक चौकोर खाँप उतार लेते हैं जिसे **टाँची** कहते हैं।

§५०२—यदि बहेरेवाला अपनी चीज ऐसी साधकर तौलता है कि तराजू की **डाँड़ी** (डंडी) बिलकुल सीधी रहे तो उस तौल को गाहक की बोली में **सौनौ-पाट** कहते हैं। गाहक को **सोनौपाट तौल** अच्छी नहीं लगती। वह तो अपने लिए कुछ अधिक ही चाहता है। जिधर के पल्ले में साग-तरकारी रक्खी होती है, उधर की ओर डाँड़ी यदि झुकती है, तो उस तौल को **नबती-धुकती** कहते हैं। यदि बाटों या अनाज की तरफ डाँड़ी कुछ झुकी हुई रहे तो उसे **खिंचती जोख** कहते हैं। अँगूठे के **टहोके** (इशारा) से नबती-धुकती तौल दिखा देना **डाँड़ी मारना कहाता** है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

भाँड़ रिझावै भाँड़ी ते।
औ बनियाँ मारै डाँड़ी ते ॥[1]

अध्याय ५

नाई और नाइन के काम और नेग

§५०३—एक जाति जो हजामत बनाने का पेशा करती है, **नाऊ या नाई** (वै० स्नापित > सं० नापित > पा० नहापित > प्रा० नाइअ > नाई) कहाती है। नाई को **छत्तीसा** भी कहते हैं। नाई की स्त्री **नाइन** या **नइनियाँ** कहाती है। सेवा-कार्य के लिए **टहल** शब्द प्रचलित है। गाँवों में नाई एक खास **टहलुआ** (सेवक) है। नाई जिसकी टहल करता है, वह आदमी **जिजमान** (सं० यजमान) कहाता है। दस्ठौन और ब्याह आदि में नाई ही बाहर के गाँवों में **न्यौते** (निमंत्रण) देने जाता है। नाई के इस काम को **न्यौते पटाना** कहते हैं। समय-समय पर नाई अपने जिजमानों की हजामत भी बनाता है, जिसे **बार बनाना** कहते हैं। शरीर को थकान दूर करने के लिए वह जिजमान के पाँव भी मसकता है, जिसे **पैरचप्पी** कहते हैं। टहल के बदले में बैसाख के महीने में खेत की लाई में से जो लाँक नाई को मिलता है, वह **बकटौ** कहाता है। हर छह महीने पीछे कातिक और जेठ में जो अनाज मिलता है, उसे **छिमाई** कहते हैं। नाई के सम्बन्ध में लोकोक्ति है—

"बाम्हन कुत्ता नाऊ। जाति देखि घुर्राऊ ॥"[2]

§५०४—जिस घर के आदमियों की हजामत बनती है, उस घर से नाई को मजदूरी के

---

[1] भाँड़ भाँड़ी मारकर प्रसन्न करता है और बनियाँ तखरी की डाँड़ी से मारता है।

[2] ब्राह्मण, कुत्ता और नाई—ये तीनों अपनी जातिवाले को देखकर जलते हैं और उससे लड़ते-झगड़ते हैं।

रूप में दो रोटियाँ मिलती हैं। यह उजरत **बरेटी** कहाती है। त्यौहारों पर जो पूरी-पापड़ी मिलती हैं, उन्हें **त्यौहारी** कहते हैं। दस्ठौन, मुंडन, कनछेदन और ब्याह आदि में खास-खास कामों के बदले जो रुपया-पैसा मिलता है, वह **नेग** कहाता है।

नाई के नेगों के नाम—

§५०५—जिजमान के घर में जब बालक का मुण्डन-संस्कार कराया जाता है, तब नाई को जो नेग मिलता है, उसे **मुंडन** या **मूँडन** कहते हैं। उस दिन खुशी में कुछ स्त्रियाँ नाचती भी हैं। एक बड़ी-बूढ़ी प्रत्येक नाचनेवाली के ऊपर एक कटोरा नाज भरकर फिराती है और फिर उसे नाऊ या नाइन को दे देती है। उस नाज को **उआर-फेर** कहते हैं। यदि दुअन्नी, चौअन्नी, अठन्नी आदि फेरी जाती हैं, तो वे **न्यौछावर** कहाती हैं।

§५०६—दस्ठौन के दिन जब पुत्र का नाम रख जाता है तब नाई बच्चे के ताऊ, चाचा आदि के कानों पर **दूब** (सं० दूर्वा=एक काली घास) रखता है। इस रस्म को **दूबधरी** कहते हैं। इसके बदले में नाई को प्रायः एक रुपया मिलता है। वह **दूबधरी का नेग** कहाता है। नाई जब लड़केवाले के यहाँ **लगुन** (सं० लग्न) ले जाता है, तब लड़के वाला उसे पाँच कपड़े बिदा के समय पहनाता है। उसे **पहरामनी** कहते हैं और वे कपड़े **'सिरोपा'** भी कहाते हैं।

§५०७—कभी-कभी दस्ठौन आदि के अवसर पर **गोबर** (सं० गोमल) से आँगन को लीप कर नाई को गेहूँ के आटे से चौक पूरना पड़ता है। उसका **नेग** (दस्तूर) **चौक पुराई** कहाता है। किसी संस्कार के अवसर पर अन्य घरों के स्त्री-पुरुष बुलवाना **बुलउआ देना** कहाता है। बुलउआ देने का काम नाई ही करता है। जब लड़का अपने घर से ब्याहने के लिए घोड़ी पर चढ़ कर चलता है, तो उसे **निकरौसी** कहते हैं। **निकरौसी** से पहले उस लड़के की हजामत बनती है और न्हौं (नाखून) कटते हैं। इस लोकाचार को **केसौंड़ा** कहते हैं। तुलसीदास जी ने इस रस्म के लिए ही **नहछू**[1] शब्द का प्रयोग किया है।

§५०८—**फेरों** (भाँवरों) के समय बर के ऊपर नाई एक कपड़ा तानता है, जिसे **छात** कहते हैं। उस छात में जो पैसे डाले जाते हैं, वे भी **छात** कहाते हैं। छात के साथ में नाई को चार पैसे और मिलते हैं, जिसे **डुटकी** (दुटकी) कहते हैं।

§५०९—विवाह-मण्डप के नीचे होम के लिए अग्नि नाई ही लाता है, उसे **बैसान्दुर** (सं० वैश्वानर) कहते हैं। उसका नेग **एक टका** (दो पैसे) होता है, जिसे **बैसान्दुरी** कहते हैं। हवन के लिए लकड़ियाँ लाने के बदले नेग मिलता है, वह **समदई** (समिधा) कहाता है। विवाह मण्डप के नीचे भाँवरों से पहले वर को दही, बताशे खिलाते हैं, उन्हें **महूकी** कहते हैं। दही के जूठे दोने को कढ़ाई में डाल दिया जाता है, जिसे नाई उठा ले जाता है। इस काम का नेग **जसूठनी** या **कर्हइया-उठाई** कहाता है।

§५१०—ब्याह के दस दिन बाद लड़कीवाले की ओर से कुछ आदमी **छाक-मट्टे** (मिष्ठान्न-

---

[1] **"नहछु जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो।"**

—रामचन्द्र शुक्ल संपादक—तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा भाग, रामलला नहछू, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, छंद ६।

विशेष) लेकर लड़केवाले के घर जाते हैं। इस रस्म को **दसई** कहते हैं। लड़की की विदा का जो दिन निश्चित किया जाता है, वह **छेता** कहाता है। दसई और छेते का नेग भी इसी नाम से पुकारा जाता है। दसईवाले लोगों के पैर नाई ही धोता है, तब उसे जो दस्तूरी मिलती है, वह **पाँइधुवाई** या **पाँयध्वाई** कहाती है।
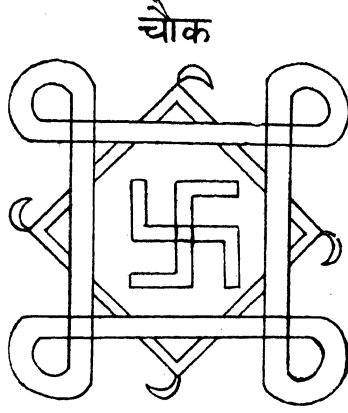
[रेखा-चित्र २६७]

§५११—गौने (द्विरागमन) के बाद जब लड़की सासुरे को जाती है, तो उसे **रौने की बिदा** कहते हैं। गौने का छेता छूँटना **आँचर सूझना** भी कहाता है। गौने और रौने पर जो नाई को मिलता है, वे **गौनियाये-रौनियाये नेग** कहाते हैं। प्राचीन प्रथा के अनुसार गौने में बहुत छोटी उम्र की लड़की पति से नहीं मिलती थी या केवल लोकाचार करके लौट आती थी। रौने में वह अधिक दिन रहकर पति से मिलती थी।

नाई की पेटी और औज़ार—

§५१२—नाई हजामत बनाने के औज़ारों को चमड़े के एक थैले में अथवा लोहे की एक सन्दूकी में रखता है। उसे **पेटी** (सं० पेटिका>पेटिश्र>पेटी) कहते हैं। **उस्तरा, कैंची, नहन्नी** (सं० नखहरणिका>नहहरणिश्र>नहरनी[1]>नहन्नी=नाखून काटने का औज़ार), **सीसा, कंघा, चिपिया** (वह छोटी कटोरी जिसमें बाल गलाने के लिए पानी भरा जाता है), **सिल्ली** (मसाले से बनी हुई बट्टी जिस पर उस्तरा पैनाया जाता है), **पैंता** या **चमौटा** (पान के आकार का चमड़ा जिस पर उस्तरे की धार ठीक की जाती है), **कुची** (साबुन लगाने का ब्रुश) और **फिसेटी** (सिर में से फ़्यास निकालने को गुठली) आदि चीजें पेटी में ही रक्खी जाती हैं। ऊनी पर्तदार थैली, जिसमें नाई प्रायः अपने उस्तरे रखते हैं, **लमदड़ी** कहाती है।

छोटा उस्तरा **उस्तरी** कहाता है। बड़े उस्तरे को **छुरा** (सं० क्षुरक) भी कहते हैं।

हजामत बनाना—

§५१३—**उस्तरे** (फा० उस्तुरा) की वह धार जो पतली और मोटी नहीं होती **गोल** कहाती है। गोल धार के उस्तरे से ही हजामत का काम ठीक तरह से होता है। सिल्ली और पैंते पर उस्तरे की धार ठीक करना **सिल्लियानौ** और **पैंतियानौ** या **पैंतानौ** कहाता है। नाई कभी-कभी उस्तरे की धार को ठीक रखने के लिए अपने हाथ पर भी धार को रगड़ लिया करता है। उस क्रिया को **उस्तरा झपकनौ** कहते हैं।

§५१४—**स्यामगर** (शान रखनेवाला) से उस्तरे और कैंचियों आदि को पैना कराना **धार-धरानौ** कहाता है। यदि पैंते और सिल्ली पर धार ठीक की जाती है, तो उसे क्रमशः **पैंताना** और **सिल्लियाना** या **धारलगानौ** कहते हैं। पैंते पर उस्तरे की धार को तिरछा रगड़ना **धार**

---

[1] "कनक-चुरिन सों लसित **नहरनी** लिय कर हो।"

रामचन्द्र शुक्ल संपादक—तुलसी-ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, रामललानहछू, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, छन्द १०।

लगानौ सीधा रगड़ना **धार काटनौ** और सीधा रगड़ने के बाद तुरन्त इधर-उधर तिरछा खींचना **धार घाट पै लानौ** कहाता है। तीनों क्रियाएँ सामूहिक रूप में **धारा चौंटाना** कहाती हैं। उस्तरे की धार को सीधा करके कपड़े पर रगड़ना **धार झपकना** कहाता है। झपकने से धार गोल बनी रहती है। गोल धार से ठोड़ी के बाल ठीक तरह बन जाते हैं। गोल धार न होने पर बाल बन जाने पर ठोड़ी में **चुनचुनी** सी लगती रहती हैं, उसे **ठोड़ी का कल्लाना** कहते हैं।

§५१५—उस्तरे से ठोड़ी और गालों पर के बाल बनाना **ठौड़ी बनाना** कहाता है। कान और आँख के बीच में गालों की ओर आते हुए सिर के बालों को काटना **कलम बनाना** कहाता है। जुड़ी हुई भौंओं के बीच में से बाल काटना **भौं खोलना** कहाता है। ठोड़ी बनाते समय नाई जब अपने अँगूठे और तर्जनी उँगली से खाल को खींचकर तानता है तो उस क्रिया को **चुकटी-भरना** कहते हैं। चुकटी दो तरह की होती है—

(१) **करीं या खिचैमा चुकटी** (२) **ढीली चुकटी**। ढीली चुकटी में जब कहीं थोड़ा सा उस्तरा लग जाता है और खून झलक आता है तब उसे उस्तरा की **चैंट** कहते हैं। बालों की छोटी-छोटी बेमालूम ठुंटी (बाल की छोटी नोंक) **ठुटी** कहाती है। ठुटी लेते समय यदि बाल की जड़ में खून झलक आता है तो उसे **ठुटी फटना** कहते हैं। कंघे और कैंची से बाल काटते समय सिर के बालों में जो उँचे-नीचे निशान बन जाते हैं, वे **बिलइयाँ** कहाते हैं। ठोड़ी पर से ठुटी निकाल देना **ठोड़ी चिकनाना** कहाता है। ठोड़ी बन जाने के बाद दूसरे या तीसरे दिन बालों की जो छोटी-छोटी नोंकें चमक आती हैं, उन्हें **खुंटी** कहते हैं।

सिर के बाल कटाना अथवा मुँड़ाना **हजामत बनवाना** कहाता है। हजामत कई तरह की होती है, जो कि उस्तरे से बनाई जाती है।

हजामत के भेद—

§५१६—बालक के जन्म से तीसरी या पाँचवीं साल में जब पहली बार उस्तरे से उसके सिर के बाल उतरवाये जाते हैं तो उसे **मुंडन** या **मूँड़न** कहते हैं। मूँड़न प्रायः गंगा जी पर या किसी देवी-देवता के मन्दिर में कराया जाता है। मूँड़न के बाद की हजामत, जिसमें बालक के सिर पर **चाँद** (सिर का मध्यस्थान) के भाग में और गर्दन से कुछ ऊपर थोड़े से बाल छोड़ दिये जाते हैं, वे **चुटिया-कुल्ला** कहाते हैं। सिर के बीचोबीच के बाल **चुटिया** और पीछे के **कुल्ला** कहाते हैं। बाप के मर जाने पर उसका बेटा और अन्य कुनबेवाले **गमी** (मौत) के दिन से तीसरे दिन बाल मुँड़वाते हैं, उसे **बरकटा** कहते हैं। **'चुटिया कुल्ला मूड़ना'** एक मुहावरा भी प्रचलित है, जिसका अर्थ है कि बातों में फाँसकर सब रुपया-पैसा ठग लेना।

§५१७—उस्तरे से जब सिर के बाल, डाढ़ी, मूँछ और भौं (भ्रू) साफ की जाती है, तब वह हजामत **भद्दरा** कहाती है। उस्तरे से केवल सिर के बालों की मुँड़ाई **घुटमुंडी** या **घोटा** कहाती है। धूल मिट्टी में काम करनेवाले किसान प्रायः घोटा हजामत ही बनवाते हैं। जब सिर के साथ-साथ डाढ़ी-मूँछ भी मुँड़ाई जाती है, तो उस हजामत को **बिन्दामनी** या **बिन्दावनी** कहते हैं। बिन्दावनी के साथ-साथ जब बगल, छाती, पेट और टाँगों पर के बाल भी मुँड़वा लिये जाते हैं, तो वह **सुन्दामनी** हजामत कहाती है। इसका नाम **बरबरी** भी है।

§५१८—जिस स्त्री के बच्चे पैदा होने के बाद दो-चार साल के अन्दर ही **छीज जाते** अर्थात् मर जाते हैं, वह **मरतजाई** (सं० मृतजाता) कहाती है। **मरतजाई** अपने बालक का मुंडन

तीसरी या पाँचवीं साल में न कराकर प्रायः सातवीं में कराती है। तब तक बालक के सिर के बाल काफी बड़े हो जाते हैं। बड़े-बड़े बालों का जूड़ा-सा बाँध दिया जाता है। लेकिन गर्दन और कान के पास कुछ छोटे-छोटे बाल ऐसे होते हैं, जो बँधने में नहीं आते। उन्हें कभी-कभी कैंची से कटवा दिया जाता है; इसे **ककोहा करना** कहते हैं। नाखून की किनारी के दायें-बायें सिरे जो खाल में दबे रहते हैं, **कोर** (सं० कोटि) कहाते हैं। नहन्नी से नाखून की कोर और किनारी काटने की क्रिया **नखोर** कहाती है। नखोर से नामधातु क्रिया **नखोरना** है। नाई अपने चेले को पहले **नखोरना** ही सिखाता है।

§५१९—**मुहार** (माथे के ऊपर सिर के आगे के बालों की किनारी) को उस्तरे से बनाना **सींक** या **टाप** कहाता है। **केसौंड़े**[1] (सं० केशमुंड) के समय प्रायः बरने की सींक ही बनवाई जाती है। सिर के तलुए पर से त्रिभुज के रूप में उस्तरे से बाल कटवा देना **पान छेकना** कहाता है। जब तलुए पर आयत या वर्ग के रूप में बाल मूँड़ दिये जाते हैं, तो उसे **चौक** कहते हैं। यदि माथे से लेकर चोटी तक बीच सिर में एक पट्टी-सी निकाल दी जाती है तो वह **लीक** या **सड़क** कहाती है। मुसलमानों में जो लोग डाढ़ी रखते हैं, वे नाक और डाढ़ी के बीच के बाल उस्तरे से बनवाते हैं; इस क्रिया को **चहरा बनाना** कहते हैं। सिर के बड़े-बड़े बाल जब पीछे की ओर और कान की लोर के पास से काट दिये जाते हैं तो उन्हें **पट्टे** कहते हैं। पट्टों के नीचे के बाल उस्तरे से बनाये जाते हैं। प्रायः मुसलमानों और महतरों में पट्टे रखने की रिवाज है। काले बाल **कच्चे** और सफेद **पक्के** कहाते हैं। कच्चे-पक्के मिले हुए बालों को **तिलचामरे** कहते हैं। तिलचामरे बाल आदमी की **ढरेती उमर** (ढलती आयु) को प्रकट कर देते हैं।

डाढ़ी-मूँछें—

§५२०—डाढ़ी रखानेवाला **डढ़ियल** और डाढ़ी मूछ मुँडवा देनेवाला **मुँछमुंडा** कहाता है। मुछमुंडे के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—"सौ गुंडा और एक मुछमुंडा" बराबर होते हैं।

जिस डाढ़ी के बाल घने और बड़े होने के साथ-साथ आपस में उलझे हुए हों तो वह **झूकटिया डाढ़ी** कही जाती है। गालों और ठोड़ी पर जहाँ बाल उगते हैं, वह जगह **खत** कहाती है। खत में बाल घने हों तो उसे **भरैमा डाढ़ी** या **पूरौखत** कहते हैं। जिस डाढ़ी में बाल दूर-दूर तथा बेगरे होते हैं, वह **छितरी** कहाती है।

§५२१—मुसलमानों में कुछ लोग ठोड़ी के बालों को उस्तरे से न मुँड़वाकर कैंची से कटवाते हैं, लेकिन गालों और गलपटों के बाल उस्तरे से बनवाते हैं। इस तरह उनकी ठोड़ी पर कुछ-कुछ बाल चमकते रहते हैं। उसे **खसखसी डाढ़ी** कहते हैं। वह डाढ़ी, जिसमें ठोड़ी ही पर १०-१५ बाल हों, **चुग्गी** कहाती है।

§५२२—मूँछों (सं० श्मश्रु) को **मौंछ** या **गौंछ** भी कहते हैं। मूँछों के बाल कैंची से कटवानेवाला **गुँछकटा** या **मुँछकट्टा** कहाता है। मूँछों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"गौंछनु की अजब कहानी।
जुटट्ठ कै सफाचट्ट, कै तमस्सुक की निसानी॥"[2]

---

[1] बरना जब हजामत बनवाकर और कपड़े पहनकर चौक पर बैठता है, तो उस लोकाचार को **केसौंड़ा** कहते हैं।

[2] मूँछों की कहानी अद्भुत है। कोई घनी और पूरी मूँछें रखता है, कोई सफाचट्ट कराता है और किसी के होंठ पर तमस्सुक की-सी अँगूठा-निशानी लगी रहती है।

"मर्द मुँछारौ। बर्ध सिंगारौ॥"[१]

§५२३—किशोरावस्था के उपरांत जब बालक जवानी में प्रवेश करता है, तब उसके होंठ पर बालों की काली रेखा दिखाई देने लगती है। उन बालों को **रेख** कहते हैं। अठारह-बीस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट जवान बालक **रेखिया पट्ठा** कहाता है।

§५२४—जिन मूँछों के दोनों सिरे गोलाई लिये हुए मुड़े रहते हैं, उन्हें **छल्लिया मूँछें** कहते हैं। कोरों की गोल मोड़ **छल्ला** कहाती है। जब मूँछों की **कोरें** उस्तरे से काटकर कुछ पतली और ऊपर को खमदार बना दी जाती हैं, तो उन्हें **तरवरिया मूँछ** कहते हैं।

§५२५—पूरी मूँछों की कोरों के पास बालों का गुद्दार गुच्छा-सा बना रहता है। वे मूँछें **गलगुच्छा** या **गलमुच्छा** कहाती हैं। गलमुच्छों से आदमी का चेहरा गम्भीर और रौबीला मालूम पड़ता है।

§५२६—यदि गलमुच्छों में कनपुटी के बाल भी मिल जायँ, तो उन्हें **गलमुच्छे** कहते हैं। गलमुच्छों से चेहरा और भी अधिक गम्भीर और रौबदार मालूम पड़ता है। जिन मूँछों की कोरें प्रायः नीचे को रहती हैं और कोरों के बीच के बाल भी मुँह की ओर झुके रहते हैं, उन्हें **'हाहा-खानी गौंछें'** कहते हैं।

§५२७—कुछ मुसलमान एक खास ढंग से मूँछें कटवाते है। होंठ के ऊपर इस तरह उस्तरा फेरा जाता है कि मूँछों की कोरों पर दस-बारह बाल छोड़ दिये जाते हैं। उन बालों को **लबटा** या **लब** कहते हैं।

§५२८—नाइन औरतों के काम करती है। **जिजमान** (सं० यजमान) के घर की बहू-बेटियों को न्हिलाना-धुलाना और उनके सिर के बाल गूँथना नाइन का ही काम है। गेहूँ के आटे में कुछ हल्दी और तेल मिलाकर **उबटन** (सं० उद्वर्तन) बनाते हैं, जो नहाने से पहले मैल उतारने के लिए शरीर पर मला जाता है। गर्म पानी को **तातौ (सं० तप्त) पानी** और ठण्डे को **सीरौ (सं० शीतल) पानी** कहते हैं। अधिक गर्म पानी को कुछ ठण्डा करने के लिए उसमें ठण्डा पानी मिलाते हैं। उसे **समोना** कहते हैं। जिस गर्म पानी की गर्मी शरीर सह सके उसे **सुहाँता पानी** कहते हैं। मामूली गर्म पानी **गुनगुना** या **कुनकुना** कहाता है। स्त्रियाँ प्रायः नहाते समय अपने पैरों का मैल पकी मिट्टी के एक खुरदरे टुकड़े से छुटाती हैं, उसे **रुगसना** या **झाँवाँ** कहते हैं। ठण्डा पानी देखकर एकदम बदन में हरकत होती है, जो **फुरैरी** या **फुरहरी**[२] कहाती है। ठंड के कारण शरीर के रोंगटों (बारीक बाल) का खड़ा हो जाना **रोंगटे ठर्राना** कहाता है।

§५२९—उँगलियाँ कुछ ऊपर को मोड़कर जो हथेली में गड्ढेदार आकृति बनाई जाती है, उसे **खौंच** या **चुल्लू** कहते हैं। खोंच में पानी भरकर मुँह पर मारना **छप्पा मारना** कहाता है। **बइयरबानियाँ** (स्त्रियाँ) मर्दों की अपेक्षा जल्दी नहा लेती हैं। उनके नहाने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि **'पड़ुकिया न्हान और तिरिया न्हान'** एक-सा होता है अर्थात् जिस तरह पडुकिया (एक तरह की कबूतरी, फाख्ता) थोड़ी-सी देर में नहा लेती है, उसी तरह औरत भी। नहाने के बाद किसी कपड़े से देह का पानी पोंछना और सुखाना **अँगौछना** कहाता है।

---

[१] बड़ी मूँछोंवाला मनुष्य और बड़े सींगों वाला बैल शोभनीय होते हैं।

[२] 'परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धँसति न नीर।'

—जगन्नाथदास रत्नाकर (संपादक) : बिहारी रत्नाकर, दो० ६४९।

अध्याय ६

कहार और कहारिन के काम

§५३०—हिन्दुओं में एक जाति जो पानी भरती है, बहँगी उठाती है और डोली-पालकी आदि उठाने का भी काम करती है, **कहार** (सं० काहारक[1]—मो० वि०) कहाती है। टर्नर ने **'कहार'** शब्द का सम्बन्ध पालि० 'काजहारको' से माना है। कहार को **महरा** या **धीमर** भी कहते हैं। **कहारिन महरी, मेहरी** या **महरिया** (सं० महिला > महल्लिका > महलिआ > महरिआ > महरिया > महरी > मेहरी[2]) और **धीमरी** भी कहाती है।

§५३१—गाँवों में पानी भरने का काम विशेष रूप से कहारिनें ही करती हैं। पानी भरने का काम करने के कारण कहारिन **पनिहारी** भी कहाती है। पनिहारी जिस रस्सी से कुएँ में गागर **फाँसती** (डालती) है, वह रस्सी **लेजू** (सं० रज्जु > प्रा० लज्जु) कहाती है। लेजू का सरकनेवाला फन्दा, जिससे गागर की गर्दन जकड़ दी जाती है, **साँफा** या **फाँसा** (सं० पाशक > प्रा० पासअ > पासा > फाँसा) कहाता है। पानी भरते समय कुएँ के पानी में घड़ा डुबाना **बुड़काना** कहाता है। पानी में डूबते समय घड़ा एक खास तरह की ध्वनि करता है, उसे **बुड़कन** कहते हैं। घड़े को पानी में से दो-तीन बार निकालना और डुबाना **झकोरना** कहाता है। झकोरने से पानी में जो हरकत होती है, उसे **हिलकोरा** कहते हैं। घड़े को ऊपर खींचते समय जब काफी लम्बे हाथ मारे जाते हैं, तो उस क्रिया को **सरँक मारना** कहते हैं। लेजू की रगड़ से लकड़ी के चौखटे में जो निशान पड़ जाते हैं, उन्हें **घिर्रा, घाँटन**, या **घिटना** कहते हैं। कुएँ के **मन खंडे** (कुएँ के चारों ओर ऊँचा उठा हुआ पक्का गोल घेरा) पर लगातार घड़े रखने से छोटे-छोटे गड्ढे बन जाते हैं। वे **घाँचा** या **गबैरा** कहाते हैं। पनिहारी कुएँ के किनारे जहाँ खड़ी होकर पानी खींचती है, वह जगह **पनघट** (सं० पानीयघट्ट) कहाती है। दीवाल या धरती पर पानी या अन्य किसी द्रव पदार्थ के जो निशान बन जाते हैं, वे **'ओग'** कहाते हैं। दीवालों पर ओग बुरे लगते हैं। घड़े आदि से किसी बर्तन में पानी उँड़ेलना **ओजना** कहाता है। बर्तन से पानी गिराने के लिए **औंधाना** क्रिया प्रचलित है।

§५३२—भरी हुई गागर को पनिहारी सिर पर रक्खी हुई **ईंडुरी** (वै० सं० इण्ड्र) पर साधती है। जब दो या दो से अधिक गागरें सिर पर **तर-ऊपर** (तले ऊपर) रख ली जाती हैं, तो उन्हें **जेहर** कहते हैं। यात्रा करते समय यदि यात्री के आगे भरी जेहर सहित पनिहारी आ जाती है, तो वह बहुत अच्छा सगुन माना जाता है। पनिहारी और ईंडुरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"गंजी पनिहारी पानी भरै। गोखरू की ईंड़ुरी धरै॥"[3]

---

[1] "तथा गारुडिका वीराः क्षुरकर्मोपजीविका।
व्याधाः **काहारकाः** पुष्टाः कृष्णं संवाहयन्ति ये॥"
जैमिनि कृत भारत संहिता, अश्वमेध पर्व, अध्याय १०।

[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३ सं० २००६।

[3] सिर की गंजी पनिहारी पानी भरते समय यदि गोखरू (एक प्रकार की रूखड़ी जिस पर काँटेदार घुंडियाँ-सी आती हैं) की ईंडुरी सिर पर रखती है, तो उसका कैसे भला होगा!

बड़ी इँडुरी **इँड़ा** या **इँडुरा** कहाती है। इँडुरी में पीछे को ओर बटी हुई मूँज की एक छोटी-सी रस्सी बँधी रहती है, जिसे **चुटिया** कहते हैं। चुटिया के सिरे पर रँगे हुए कपड़े की एक कत्तर लगी रहती है, जो **फुँदना** या **फुलना** कहाती है।

बहँगी और उसके अंग

§१३२ (अ)—चिरे हुए एक मोटे बाँस के दोनों सिरों पर रस्सियों में दो **टाले** (चारों कोनों पर रस्सियों से बँधे हुए लकड़ी के चौखटे) लटके रहते हैं। उस पूरे सामान को **बहँगी** (सं० विहंगिका>बिहंगिआ>बिहँगी>बहँगी) कहते हैं। **टालों** (चौखटों) के चारों कोनों पर बँधी हुई रस्सियाँ **जोतियाँ** कहाती हैं। बहँगी से बड़ा **बहँगीला** होता है। बहँगी उठानेवाला कहार **बहँगिया** कहाता है। बहँगिये के हाथ में बहँगी ले जाते समय एक बाँस की लाठी-सी होती है, जिसके सिरे पर **चिरइया** (खमदार एक चेड़ी लकड़ी) लगी रहती है। उस लाठी को **हथेटी** (सं० हस्त+सं० यष्टि) या **बैसाखी** कहते हैं। डोली-पालकी उठाने-वालों के पास भी **हतेटी** रहती है। बहँगी के बाँस को **बँड़ेरी** कहते है। बँड़ेरी को साधने के लिए बहँगिआ कभी-कभी उसके नीचे हथेटी लगा दिया करता है। बँड़ेरी कन्धे में न लगे, इसलिए बहँगिआ अपने कन्धे पर एक गद्दी-सी बनाकर रख लेता है उसे **गाछ** (खुर्जे में) **कँधेरी** या **कँधेर** कहते हैं। बहँगी को एक कन्धे से दूसरे पर लेना **कन्धा बदलना** कहाता है। बहँगी के बोझ से जब बहँगिए के कन्धे में दर्द होने लगता है, तब वह **'कन्धा कल्लाना'** कहाता है। जब वहँगी के असह्य बोझ से कन्धे में बहुत दर्द होने लगता है, तब उसे **कन्धा कटना** बोलते हैं। डोली या बहँगी उठाने के लिए नीचे कन्धा लगाना **'कन्धा देना'** कहाता है। किसानों के ब्याह, दस्ठौन आदि में बूरे की गठरियाँ और दही के **खमड़े** (घड़े से कुछ छोटा चौड़े मुँह का मिट्टी का एक बर्तन) प्रायः बहँगियों पर ही लाये जाते हैं। बँड़ेर (बहँगी का बाँस) यदि कमजोर होती हैं और बहँगिए को भारी वजन उठाना होता है, तो वह बाँस के ऊपर ठीक बीच भाग में चिरे हुए बाँस का दो हाथ लम्बा टुकड़ा बाँध लेता है। उस टुकड़े को **'मल्ला'** या **मल्लौ** कहते हैं। भारी बोझ से बहँगी की बँड़ेरी **लफ जाती है** (झुक जाती है); लेकिन मल्ले के कारण टूटती नहीं है।
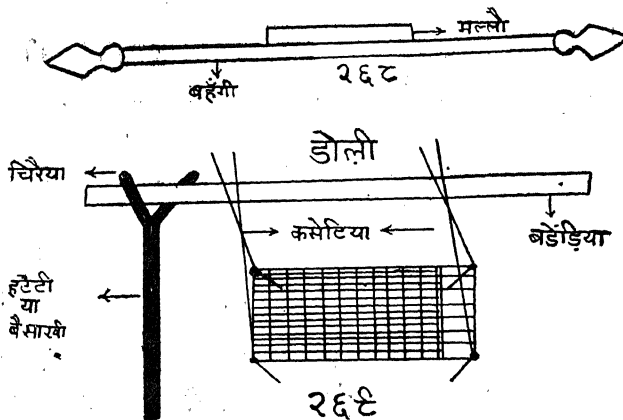
(रेखा-चित्र २६८ से २६९ तक)

डोली के अंग और कहारों के संकेत—

डोली उठाते हुए कहार (चित्र १७)

§५३३—डोली, पालकी आदि सवारियों को उठाने का काम आमतौर से कहार ही करते हैं, परन्तु अलीगढ़ जिले की तहसील कोल और हाथरस में एक और जाति भी है, जो डोली उठाती है। वे लोग अपने को **भोई-राज** कहते हैं। डोली उठाने के लिए दो आदमी लगते हैं— एक आगे और एक पीछे। आगेवाले के समान जब पीछेवाला भी उतना ही होशियार और ताकतवर होता है, तब वह आगेवाले का **जोड़िया** या **जोटिया** कहाता है। दोनों कहार एक दूसरे के लिए **जोटिया** शब्द का प्रयोग करते हैं।

§५३४—एक खटोले के चारों पायों में जोड़े से कैंचीनुमा लकड़ियाँ बाँधकर उन्हें ऊपर एक मोटे बाँस में कस देते हैं। कैंचीनुमा लकड़ियों के जोड़े को **कसेटिया** और बाँस को **बड़ेड़िया** कहते हैं। कसेटियों को बड़ेड़िये में बाँधने वाली रस्सियाँ **कसना** कहाती हैं। कसने को बहुत कसकर बाँधने के लिए **'हिरना'** क्रिया का प्रयोग होता है। हिरते समय रस्सी में न खुलनेवाली दुहरी मजबूत गाँठ लगाई जाती है, जिसे **घुरगाँठ** कहते हैं। जहाँ रस्सी को बहुत जल्दी खोलना होता है और बँधाई भी मामूली करनी होती है, वहाँ सरकनेवाली गाँठ लगाते हैं, जो **सरकफँद** कहाती हैं। जब खटोले में बँधे हुए कसेटियों के ऊपर बड़ेड़िया बँध जाता है, तब वह ढाँच **डोली** (सं० दोलिका) कहाता है। डोली में प्रायः मरीज और पर्देवाली स्त्रियाँ बैठती हैं। डोली से छोटी **खटोली** होती है, जिसमें केवल एक स्त्री ही बैठ सकती है। यह **पीढ़े** (रस्सी से बुनी हुई छोटी और वर्गाकार वस्तु जो बैठने के काम आती है) की बनाई जाती है। डोली के ऊपर जो कपड़ा उसे ढकने के लिए पड़ा रहता है, **ढाँप** कहाता है। डोली तइयार करके उसे किसी निश्चित स्थान पर लाना या अड्डे पर लाकर रखना **'डोली लगाना'** कहाता है। डोली के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

जो छिनरा और नंग। सो डोली के संग ॥[१]

§५३५—डोली को लेकर चलनेवाले कहारों को रास्ते में ऊँची-नीची, गीली-सूखी, रेतीली-कँकरीली, काँटे-खोबरेवाली तथा झाड़-झंकाड़वाली जमीन पर चलना पड़ता है। मकान और पेड़-पौधों से भी डोली को बचाना पड़ता है। अतः आगेवाला कहार अपने पिछले जोटिये को समय-समय पर चेताता रहता है, ताकि वह पहले से सँभल जाय। यह चेतावनी ऐसे सांकेतिक शब्दों में होती है जिसे **डोलियों** (डोली उठानेवाले कहार) के सिवाय दूसरा नहीं समझ पाता। यह शब्दावली उनकी जाति का अपना एक अलग और निराला कोश है। डोली या पालकी की आड़ से पीछेवाले को रास्ता दिखाई नहीं देता; इसीलिए शब्दावली प्रयुक्त होती है।

अगेटिया जोटिया (आगे का कहार) जिस शब्द को बोलकर चेतावनी देता है, **पिछेटिया जोटिया** (पीछेवाला कहार) उसे सुनकर खतरे से बचाव करने के लिए सँभल जाता है और उत्तर रूप में वह भी कुछ कहता है, जिसका अर्थ होता है कि पिछेटिये ने बात सुन ली और

---

[१] जो छिनरा (परस्त्रीगामी) और नंग है, वही डोली के साथ है।

वह **चेतन्त** (सचेत) हो गया। कहारों की कुछ सांकेतिक शब्दावली अपने मनोविनोद के लिए भी होती है, जिसकी सहायता से वे आनन्दपूर्वक रास्ता तै कर लेते हैं और समय-समय पर आपस में दिल्लगी-मजाक भी करते चलते हैं।

§५३६—डोली या पालकी उठाते समय आगे का कहार जब कन्धा देना आरम्भ करता है, तब वह **'हाँ भई'** कहता है। इसे सुनकर **पिछेटिया** (पीछे लगनेवाला) समझ लेता है कि मुझे भी डोली के बड़ेंड़िये के नीचे कन्धा लगाकर चलने को तैयार हो जाना चाहिए। डोली ले जाते समय रास्ते में यदि किसी मकान का कोना पड़ता है तो उसके लिए **अगेटिया** (आगे चलनेवाला) **'झड़प'** या **'झड़पन'** शब्द बोलता है। यदि दाहिनी या बाईं ओर कोई पेड़ अथवा खम्भा होगा तो पिछेटिये को सूचित करने के लिए अगेटिया **दाईं दड़कन** या **बाईं दड़कन** कहेगा। दीवाल की किनारी से बचाने के लिए अगेटिया **'रिगस'** या **'रिगड़'** बोलता है। यदि अगेटिया डोलिया तेज चलता है और पीछेवाले को भी तेज चलाना चाहता है, तो **'दयैं आ'** कहेगा। रुकने के लिए **'भारी हो,'** डोली जमीन पर रखने के लिए **राम बोल** या या **बोलदेउ** और चलने के लिए **'डोल जाओ'** शब्द प्रयुक्त होते हैं।

§५३७—यदि रास्ते में कोई कंकड़ या ईंट का टुकड़ा पड़ा होता है, तो अगेटिया डोलिया उसके लिए **'लोटन'** शब्द का प्रयोग करता है। पिछेटिया उत्तर में कहता है कि—**"लोटैगौ सूम की छाती पै, कै दाता के द्वार पै।"** इसका मंतव्य यह है कि पीछे का कहार सावधान है; वह ईंट के टुकड़े से अपने पाँवों को बचाकर रक्खेगा। इसी प्रकार रास्ते में पड़े हुए छोटे-से खपरे के लिए **उड़ान**, गीले गोबर या गीली लीद के लिए **हरी**, कम गहरे गड्ढे के लिए **धमक**, जाड़ों की वर्षा से हुई कीच के लिए **माहौटी**, गर्मियों की वर्षा से हुई कीच के लिए **चौमासी**, लोमड़ी, गीदड़ आदि के लिए **चमका**, और **जवासे** (सं० यवासक=एक कँटीला जंगली पौदा जिस पर बैसाख-जेठ में गुलाबी फूल और सफेद फली आती है) के लिए **गुलाबी** शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्षा में जवासा सूख जाता है और गर्मियों में हरियाता है। इसीलिए पहेली प्रसिद्ध है—

"जल में जरी अगिन में हरी। लाल फूल तापै सेत फरी॥"

गीली लीद के लिए आगे का कहार जब कहता है कि—**'हरी है'** तो पिछला कहार भी तुक मिलाते हुए कहता है—**'सब गुन भरी है।'**

§५३८—पत्तों सहित पेड़ की पतली और लम्बी डाली **लहरा** कहाती है। लहरे के लिए अगेटिया डोलिया **लपेट** (सं० लिप्त) शब्द प्रयुक्त करता है और लहरे से बचता हुआ पिछेटिया उत्तर में कहता है कि—**'लपेटैगौ बैरी कूँ।'** इसी तरह रास्ते में पड़ी हुई मोटी और बड़ी लकड़ी के लिए **बल्ली**, छोटी लकड़ी के लिए **कठैरी**, पानी के लिए **चलता**, गड़ी हुई ईंट के लिए **ठोकर जमाऊ**, सूखी और बिखरी लीद के लिए **दानेदार**, बड़े और गहरे गड्ढे के लिए **उठाबैठी**; **खोबरे** (काँटों की पखिया) के लिए **बरुआ** और लम्बे काँटे के लिए **'सूर'** (सं० शूल) शब्द का प्रयोग किया जाता है। यदि **कटेरी** (सं० कण्टकारी) के पीले काँटे रास्ते में पड़े हुए हों तो उनके लिए **सुनैरा** शब्द का प्रयोग होता है। **कीकर** (बबूल) के काँटे सफेद रंग के होते हैं। अतएव उनके लिए **'रुपैला'** शब्द बोला जाता है।

§५३९—ऊँची जगह पर चढ़ने से पहले **'सावधान'**, ढालू जगह पर उतरते समय **'बाग झटिकैं'**; ऊँची और चौड़ी मेंड़ के लिए **बाली** या **बलई** (फा० बालाई) और कूँड़ों से युक्त जुते

खेत के लिए **बैलाड़ी** शब्द बोले जाते हैं। यदि कहार चौरस और साफ धरती पर चले जा रहे हों और फिर एक छोटा गड्ढा ऐसा पड़े कि उसके आगे दो-तीन गड्ढे और हों तो उनके लिए **'मंझे खाली'** शब्दों का प्रयोग होता है (सं० मध्ये>मज्झे>मंझे)। यदि कोई दो-तीन हाथ का **ठूँठ** (सं० स्थाणु) खड़ा है, तो उसे **थुन्ना** बोला जायगा। गाय, भैंस आदि खुरवाले पशुओं के लिए **चौपा** और **कुत्ते** के लिए **घूँसन** (सं० √घुष् से घोषण) कहते हैं। मेंड़ उलाघने के लिए **बालीपार** बोला जाता है।

§५४०—बबूल की काँटेदार सूखी डालियों को **ढाँकर** या **झाँकर** कहते हैं। झाँकरों के लिए **झपटन** और **बेरिया** (एक पेड़ जिस पर बैर लगते हैं) केलिए **बकोटनी** बोलते हैं।

§५४१—यदि वर्षा के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से रास्ते में कीच हो गई हो तो उसके लिए **'चहला'** शब्द बोला जाता है। पेड़ की कुछ डालियाँ इतनी नीची हों कि उनमें डोली या पालकी के अड़जाने की आशंका हो तो उन डालियों के लिए **आगासी** (सं० आकाशिन्) कहा जाता है। इसी प्रकार जमीन से ऊपर उठी हुई पेड़ की जड़ के लिए **जरासूल**, दाहिनी या बाईं ओर के काँटेदार पेड़ के लिए **बगलमार**, **अकउआ** या **आक** (सं० अर्क=एक जंगली पौदा) के लिए **दुधारा**, जमीन पर पड़ी रस्सी के लिए **बाँधनी**; **बरहा** (पैर या बम्बे का पानी बहने का रास्ता-विशेष) के लिए **दुबासा**, पेड़ की छाया के लिए **छाँईं** या **झाँईं-माँईं**, ईख या ईख के गन्नों के लिए **चूसन** (सं० चूषण) और छोटी-छोटी कंकड़ियों के लिए **मानकी** बोला जाता है।

§५४२—यदि चढ़ाई अधिक हो और कुछ तेज भी चलना पड़े तो **सवाई** (सं० सपादिका) कहा जाता है। धीरे-धीरे चलने के लिए **मन्दे कदम** और लम्बी डगों के साथ तेज चलने के लिए **'भर-कदम'** शब्द का प्रयोग किया जाता है। यदि रेत या बालू ऐसी हो कि उसमें पाँव गड़ते हों तो उसके लिए **जाँगबल** (सं० जङ्घा+सं० बल) पुकारा जाता है।

§५४३—यदि किसी खेत में से अरहर कट गई हो लेकिन उसके ठूंठ खड़े हों तो उसके लिए अगेटिया डोलिया **कलम** (अ० क़लम) शब्द कहता है और बाद में पिछेटिया कहता है— **'लैइगौ कोई लिखइया।'** आगे से आदमी आ रहा हो तो उसकी सूचना देने के लिए कहार **'बोलता'** या **दुपाया-बोलता** शब्द कहता है। बच्चे के लिए **'बारा बोलता'** और स्त्री के लिए **'म्हौं ढाँप'** कहा जाता है। डोली को जमीन पर रखकर सस्ताना **'दम लेना'** कहाता है।

§५४४—**डोली से मिलती-जुलती अन्य सवारियाँ**—(१) पालकी[1] (२) नालकी (३) म्यान (४) झंपान (५) पिन्नस (६) तामझाम (७) डोला (८) चौंडोला (९) सुखपाल (१०) सिंहासन।

(१) **पालकी**—यह लकड़ी की बनी हुई होती है। इसकी छत कुछ गोलाईदार होती है। चारों ओर से बन्द होती है। इसमें छोटी-छोटी खिड़कियाँ भी बनी रहती हैं। इसमें अधिक से अधिक दो आदमी बैठ सकते हैं। प्रायः बरातों में दूल्हे ही **पालकी** (फा० पालकी—स्टाइन०) में बैठा करते हैं। पालकी में जहाँ बैठते हैं, वह जगह **बैठकी** कहाती है। पालकी में दो मोटे-मोटे बाँस लगे रहते

---

[1] 'मानसार' के अनुसार स्यन्दन, पालकी और रथ—संस्कृत में यान कहाते थे—
'आदिकं स्यन्दनं शिल्पिन् शिबिका च रथं तथा।
सर्वं यानमिति ख्यातं शयनं बध्यते तथा ॥'—डा० प्रसन्नकुमार आचार्य :
—मानसार (वास्तुशास्त्र), वास्तु प्रकरण, अध्याय ३। श्लोक ५।

हैं। पिछला बाँस कुछ नीचे की ओर झुका रहता है। इसे **धोक** कहते हैं। पालकी में दाईं-बाईं ओर हवादार खिड़कियाँ लगी रहती हैं, उन्हें **झिलमिली** या **झाँकी** कहते हैं।

पालकी
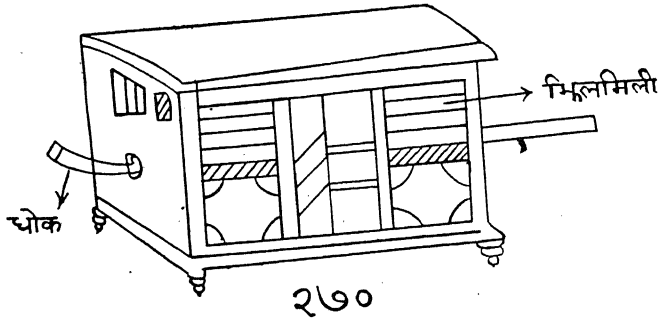
पालकी—[रेखा-चित्र २७०)
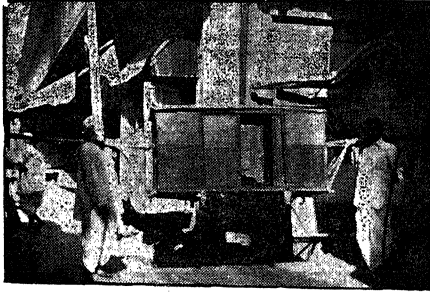
(चित्र १८)

(२) **नालकी**—लकड़ी के तख्ते के ऊपर एक आराम कुर्सी की भाँति की बैठकी बनाई जाती है। **नालकी** में पुरुष ही बैठते हैं। इसमें पीछे की ओर गद्दीदार पुश्त भी बनी रहती है। [र]ामलीला के अवसर पर काली के मेले में किसी बड़े राजा की सवारी आमतौर से नालकी पर ही [नि]काली जाती है।

नालकी
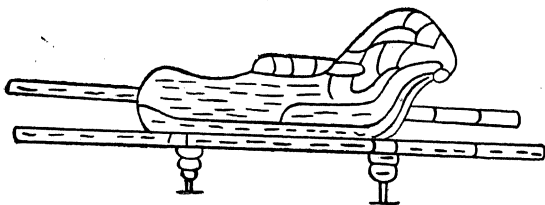
नालकी—(रेखा-चित्र २७१)

(३) **म्याना** (फा० मियाना-स्टाइन०)—महरावदार छतरी सहित सवारी जिसकी बड़ेंड़ी के नीचे अन्दर दो दर्वाजे-से भी बने रहते हैं, **म्याना** कहातो है। दर्वाजों की लकड़ी **डाँड़ा** या **सधैना** कहाती है। इसकी छतरी बाँस की फच्चटों या लकड़ियों की जालीनुमा होती है, जो **टट्टरी** कहाती है।

म्याना

टट्टरी

बँड़ेंड़ी

डाँड़ा या सधैना

बैठकी

२७२
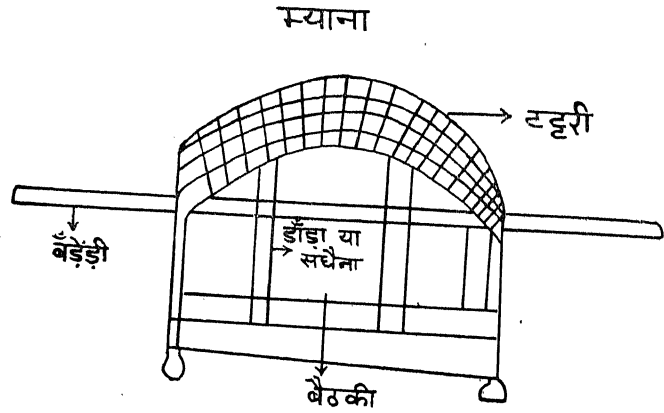
म्याना—(रेखा-चित्र २७२)

(४) **झंपान**—इसकी बनावट पालकी की तरह ही होती है, लेकिन पालकी से यह आकार में कुछ बड़ा होता है। प्रायः स्त्रियों के बैठने के काम आता है। बड़े घरानों की बहू-बेटियाँ झंपान में ही जाती हैं और साथ में दो-एक टहलनी भी बैठती हैं। झंपान का संस्कृत नाम **'याप्ययान'** है।
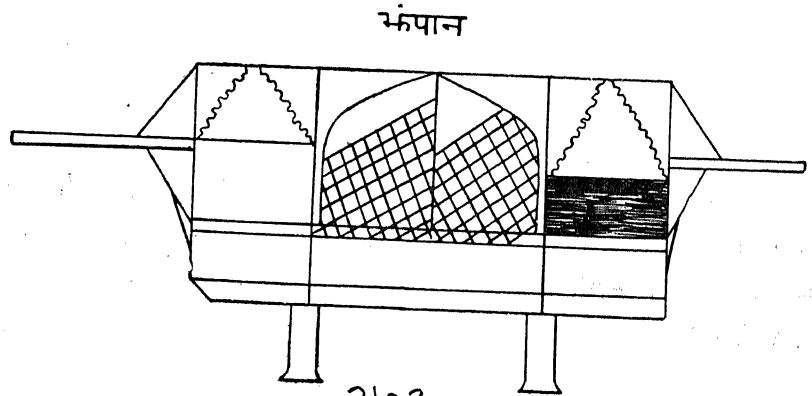
झंपान—(रेखा-चित्र २७३)

(५) **पिन्नस**—पिन्नस की बनावट म्याने से मिलती-जुलती होती है। अन्तर यह है कि पिन्नस में खिड़कियाँ लगी रहती हैं, जो बन्द हो जाती हैं। यह जनानी सवारी है।

(६) **तामझाम**—इसके ऊपर मामूली चौड़ाई की लकड़ी की महराव लगी रहती है। उस महराव में खूबसूरती के लिए फुँदने लटके रहते हैं। तामझाम पर पर्दा डालकर जनानी सवारी भी बना लेते हैं, वैसे यह मर्दानी तो होती ही है।
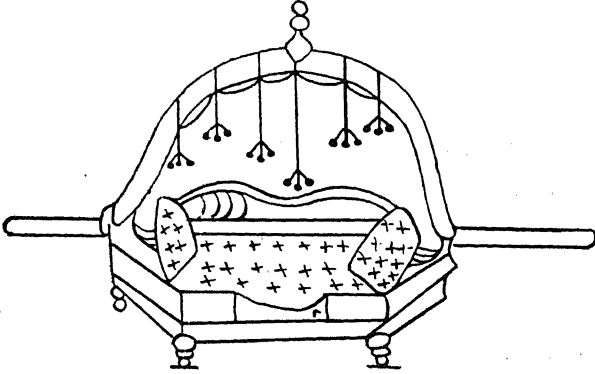
तामझाम—[रेखा-चित्र २७४]

(७) **डोला**—लकड़ी का इकदरा बना होता है, जिसकी छत चौरस होती है। उसमें बैठने के लिए एक बैंच-सी लगी रहती है। रामलीला में रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण जी ऐसे ही डोले में बिठाकर घुमाये जाते हैं।

(८) **चौंडोला** (सं० चतुर्दोल)—यह हाथी के हौदे या अम्बारी के आकार की सवारी होती है, जिसे चार आदमी उठाते हैं। इसे **चंडोला**[1] भी कहते हैं। 'चंडोल' के लिए उसमान कृत चित्रावली (५८९।२) में लिखा है—"चारि कहार बाँस धरि काँधा॥" जायसी ने भी 'चंडोल' का उल्लेख किया है।[2]

(९) **सुखपाल**—सुखपाल पालकी से ड्यौढ़ा-दूना बनाया जाता है। यह मर्दानी सवारी है। इसके बड़ेंड़े (बाँस) साँप की तरह टेढ़े होते हैं।

(१०) **सिंहासन**—डोले की भाँति का ही होता है, लेकिन छतरी गोल और ऊँची होती है। बीच का स्थान, जहाँ किसी देवता की मूर्ति रक्खी जाती है, ऊँचा और सीढ़ीदार होता है।

---

[1] सम्पा० जगन्मोहन वर्मा, उस्मानकृत चित्रावली, का० ना० प्र० सभा, सन् १९१२ ई०

[2] "पदुमावति चंडोल बईठी। पुनि गै उलटि सरग सौं डीठी॥"
डा० माताप्रसाद गुप्त : जायसी-ग्रंथावली, पदमावत, हिंदुस्तानी एकेडेमी ४२२।३

अध्याय ७

धोबी का काम

§४४५—मैले-कुचैले कपड़ों को धोकर अपनी जीविका का उपार्जन करनेवाली एक जाति **धोबी** (सं० धावी>प्रा० धुव्वी>धोबी) कहाती है। पा० स० म० नामक कोश में सं० धाव् (धावु गति शुद्ध्योः—सि० कौ०, उत्तरार्द्ध तिङन्ते भ्वादयः, धा० सं० ६४०) का प्राकृत रूप 'धुव' या 'धुब्ब' लिखा है। धोबी के लिए अथर्ववेद (१२।३।२१) में 'मलग' और धोबिन के लिए 'पल्पूली' (वा० यजु०, अध्याय ३०) शब्द आये हैं। धोबी कपड़ों की जानकारी और पहचान रखने के लिए उन पर जो काले निशान बनाते हैं, उन्हें **'भिलाया डालना'** कहते हैं। कपड़ों पर भिलाया डालने का काम **'भिलाई'** कहाता है। प्रत्येक घर के हिसाब से धोबी जब कपड़ों को छाँटकर एक-एक जगह एकत्र करके बाँधते हैं, तब वे बँधे हुए कपड़े **बाँट** कहाते हैं।

§४४६—कपड़े धोने का काम **धोब** या **धुवाई** (धुलाई) कहाता है। धुवाई दो तरह की होती है—(१) **ओलुआ या रैमुआ धोब** (२) **खौमिया धोब**।

जब पानी में **रेह** (एक प्रकार का चिकना और सफेद रेत) और **मैंगनी** (बकरी की लेंड़ी) मिला दी जाती हैं, तब वह घोल **रैम** या **राड़ा** कहाता है। रैम या राड़े में कपड़ा डालने के लिए **सौंदना** या **ओलना** क्रिया का प्रयोग होता है। रैम में कपड़े को डालकर जो धुलाई की जाती है, वह **ओल** (सं० आर्द्र>प्रा० ओल्ल[1]>ओल) या **सौंद** कहाती है। उसे **रैमुआ, रेहुआ** या **उलैमा** धोब भी कहते हैं।

पानी में कुछ-कुछ भीगा हुआ कपड़ा **आला, सर्द** या **सद्‌द** कहाता है। कपड़े में कड़ापन लाने के लिए उसमें जो आटा या चावल का पानी लगाया जाता है, वह **माड़ी** (सं० मण्डिका>मंडिआ>माँड़ी) कहाता है।

§५४७—जिस धुलाई से कपड़ा दूध की भाँति सफेद हो जाता है, वह **खौमिया धोब** कहाती है। जो कपड़े खौम पर धुलाये जाते हैं, माँड़ी लगने के बाद उन पर लोहा भी फिराया जाता है, ताकि कपड़े की **सरबट** (सलवटें=सिकुड़न, मोड़) दूर हो जायँ। इस कार्य को **इस्तिरी करना** भी कहते हैं। खौमिया धुलाई प्रायः रेशमी या रेशमी ढंग के बढ़िया कपड़ों के लिए ही बरती जाती थी।

§५४८—खौमिया धोब में कपड़ों की **गट्ठी** या **लादी** (लम्बे थैले के रूप में बँधा हुआ कपड़ों का एक गट्ठर) **भट्ठी** (सं० भ्राष्ट्रिका>भट्ठिआ>भट्ठी) पर चढ़ाई जाती है। धोबी कपड़ों की लादी को गधे या बैल की पीठ पर लादकर **घाट** (वह पोखर या नदी आदि का किनारा जहाँ धोबी कपड़े धोया करते हैं) को ले जाता है। लादी ढोनेवाले गधे के सम्बन्ध में एक लोक वार्ता भी प्रचलित है—

"एक धोबी कैं एक गधा औरु कुत्ता ओ। गधा लादी ढोबतो औरु कुत्ता घर रहतो।

---

[1] हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण १।८२;
सं० आर्द्र>ओल्ल—उल्ल—पा० स० म०, पृ० २२३;
सं० आर्द्रयण>प्रा० ओल्लण—पा० स० म०।

कुत्ता धोबी के घर मैं खूब मौज मारतो और साँझ-सबेरैं मालिक के जौरैं[१] आइकैं सुसीऊ खेलतो। मन मैं आवती तौ अपने पायँ मालिक की गोद में धरिकैं प्यारुऊ जतावतो। जब धोबी लत्ता धोइबे के लैं घाट पै चलौ जातो, तब कुत्ता ग्वाके पीछें घर पै रहतो और सबरे घर-बार की चौकसाई[२] रखतो। धोबीऊ कुत्ता पै पेट भरिकैं प्यारू करतो और ग्वाइ खूब माल खबाबतो। जि देखिकैं गधा नैं सोची—जौ मैंऊँ मालिक की गोद में पायँ धरिकैं प्यारु जताऊँ तौ मेरौ मालिकु मोऊऐ कुत्ता की हाँई[३] मौज में रक्खैगौ। जि सोचिकैं एकन्ना[४] गधा नैं धोबी की गोद में अपनी अगिल्ली टाँगैं धद्दई और हैंचू-हैंचू किल्लान[५] लगौ। धोबी नैं गधा की जि हरक्कति[६] देखिकैं मौटे डंडा ते ग्वामैं[७] खूब मार बजाई। तब गधा नैं मन में कई कै भैया ठीक बात ऐ—

जाकौ कामु ताईऐ छाजै। औरु करै तौ डंडा बाजै॥[८] (तह० कोल की बोली में)

धोबी पहले १५-२० कपड़ों को एक बड़े कपड़े में बाँध लेता है, जिसे **पोटरी** (देश० पोट्ट-लिय, पोट्टलिया, पोट्टलिगा—पा० स० म०, पृ० ७६३) कहते हैं। पोटरी से भी छोटा रूप **पुटरिया** कहाता है। पोटरी (पोटली) से बड़ी गठरी को **पोटरा** (देश० पोट्ट, पोट्टल) कहते हैं। जिस बड़े गट्ठर में कई पोटरे बाँध दिये जाते हैं, वह **लादी** कहाता है।

धोबी की भट्टी और उससे सम्बन्धित वस्तुएँ

§५४९—धोबी को भट्टी के ऊपरी भाग में लोहे की एक कढ़ाई-सी जमी रहती है, जिसके नीचे भट्टी में आग जलती रहती है। इस कढ़ाई को **लोहना** कहते हैं। भट्टी की **आँच** (सं० अर्चिस्) को ठीक करने के लिए लोहे की लम्बी एक सरइया होती है, जो **कड़ंगा** कहाती है। लोहना के चारों ओर मिट्टी को जमाकर एक चौरस चबूतरा-सा बनाया जाता है और उसके किनारे मिट्टी से कुछ-कुछ ऊपर को उठा दिये जाते हैं। वह चबूतरा **घेर** कहाता है। जब भट्टी में आग तेज होती है तब लपटें भट्टी के मुँह में से निकलकर ऊपर को जाती हैं। लपट की नोंक या सिरे को **झर** या **झड़** कहते हैं। झड़ें भट्टी के लोहना में रक्खी हुई लादी में न लगें, इसीलिए घेर में भट्टी के आगे के किनारे पर एक ऊँची **मेंड़नी** (किनारी) उठा दी जाती है। उसे **मठौटी** कहते हैं।

§५५०—खौम (सं० क्षौम > पा० खोम[१] > खौम) की **धोब** (सं० धाव > प्रा० धुव्व > धोब) में पहले धोबी कपड़ों को रेह और सोडा मिले पानी में डुबाने के लिए **'बोरना'** क्रिया प्रचलित है। कपड़ों को बोरने के बाद ऐंठा देकर निचोड़ लिया जाता है। निचुड़े हुए और ऐंठा लगे हुए कपड़े को **'बैंट'** कहते हैं। बैंटें जब भट्टी पर रखकर गर्म की जाती हैं, तब उस क्रिया को **'भट्टी झारना'** कहते हैं। वे बैंटें जो भट्टी पर गर्म हो जाती हैं, **भट्टीझार** कहाती हैं। चूँकि उनमें भट्टी की आग की झड़ (लपट) लग जाती है, संभवतः इसीलिए वे **भट्टीझार बैंटें** कहाती हैं। धोबी की कपड़ा धोने की पानी को कुंडी **पाघड़** या **पाघड़ी** कहाती है। पाघड़ के **रेहुआ पानी** (रेह घुला हुआ पानी) में भट्टीझार कपड़ों को धोते हैं और फिर उनमें **लील** (सं० नील) लगा देते हैं।

---

[१] पास; [२] रखवाली; [३] तरह, भाँति; [४] एक दिन, [५] चिल्लाने लगा, [६] हरकत, बदमाशी [७] उसमें। [८] जो काम जिसका होता है, वह उसे ही शोभा देता है। यदि अन्य व्यक्ति उसे करने लगता है, तो वह डंडे खाता है।

[१] राइस डेविड्स ने 'बुद्धिस्ट इंडिया' में लिखा है कि 'खोमदुस्स' ब्राह्मणों की बस्ती थी। क्षौम वस्त्र निर्माण का केन्द्र होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। संयुत्त निकाय : अँगरेजी अनुवाद १।२३३।
'खोमदुस्स' शाक्यों का प्रसिद्ध नगर था।' —डा० राधाकुमुद मुकर्जी : हिंदू सभ्यता, संस्क० १९५५, पृ० १९३

धुलाई में काम आनेवाली वस्तुएँ

§५५१—धोबी का एक मोटा डंडा, जो बड़े और भारी कपड़ों के पीटने में काम आता है, **मौंगरा** (सं० मुद्गरक) या **डासनी** (सं० ध्वंसनी) कहाता है। मौंगरा या डासनी ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः मोटी होती है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

तेलिन ते का धोबिन घाट। जाकैं मौंगरा न वाकैं लाठ ॥[1]

जिस पत्थर की पटिया या कंकड़ पर धोबी कपड़े धोते हैं, उसे **पाट** (सं० पट्ट) कहते हैं। अथर्ववेद में पाट के लिए 'ग्रावा' (अथर्व० १२।३।२१) शब्द आया है। पाट का एक सिरा ऊँचा करने के लिए धोबी उसके नीचे पत्थर का एक टुकड़ा लगा देते हैं, उसे **उड़ीसन** कहते हैं। **पोखर**[2] (सं० पुष्कर > प्रा० पुक्खर > पोखर) या **ताल** जहाँ पाट रक्खा रहता है, वहीं पर और उस पाट से चिपटा हुआ एक दूसरा छोटा-सा पत्थर भी रक्खा रहता है, जिस पर पाँव रखकर धोबी कपड़े धोया करते हैं। उस पत्थर को **पावड़** (सं० पादवट्ट) कहते हैं।

§५५२—कभी-कभी धोबी अपने घाट पर कपड़ों की बाँटों में नील लगाने के लिए **नँदोरा** (सं० नन्दा + पोतलक = नाँद का बच्चा अर्थात् छोटी नाँद) काम में लाते हैं। लील (सं० नील) को कपड़े के एक **टुकड़े** या **टूँक** (सं० स्तोक) में बाँधकर छोटी-सी पोटली बना ली जाती है। उस पोटली को **पोचारा** या **पुचारा** कहते हैं। पुचारे को पानी में डाल देते हैं और साथ में माँड़ (सं० मण्ड) भी। उसमें कपड़े को अच्छी तरह मलते और घमोलते हैं। पानी में कपड़े को बार-बार डुबाना और निकालना **घमोलना** कहाता है। घमोलने के बाद उसे निचोड़ लेते हैं। निचोड़े हुए कपड़े को झटके के साथ ऊपर से नीचे को हिलाना **फटकारना** कहाता है। कपड़े को अच्छी तरह फटकारने से उसका पानी झड़ जाता है और वह जल्दी सूख जाता है। धोबी कपड़ों को फटकारकर **तनाव** या **तनाइ** (धोबी के घाट पर तनी हुई दुहरी रस्सी जिसमें अलबेटा अर्थात् बल लगे रहते हैं) में हिलगाकर लटका देते हैं। तनाई जिन बाँसों या डंडियों पर सधती है, वे **टेका** या **जोड़ी** कहाती हैं।

कपड़ों को पूरी तरह न सुखाना **फरैरा करना** कहाता है। धोबी कभी-कभी **फरैरे** (कम गीले) कपडों को ही तनाय पर से उतारकर इकट्ठा कर लेते हैं, ताकि उन पर लोहा करने में आसानी रहे।

§५५३—धोबी अपने पाट पर जब किसी कपड़े को मारता है तब उस क्रिया को **पछारना** कहते हैं। पछारने में कपड़ा घुमाकर नीचे की ओर पाट पर मारा जाता है तो उसे **पछीटना** कहते हैं। प्रायः चौरस पाट पर ही कपड़ा ठीक पछीटा जा सकता है। धोबी प्रायः कपड़ों के धोने में तीन क्रियाएँ करते हैं—

(१) **पीटना** (२) **पछारना** (३) **बाँटना या बैंटना।**

डासनी से कपड़े को पीटते हैं। अकेले हलके कपड़े को पाट पर पछारते हैं और फिर निचोड़कर बाँटते हैं। ऐंठकर बाँट बनाकर फेंकते जाना **बाँटना** या **बैंटना** कहाता है।

---

[1] तेलिन से धोबिन कम नहीं है। धोबिन के पास कपड़े धोने के लिए मौंगरा नहीं है और तेलिन के कोल्हू में लाठ (एक मोटा डंडा) नहीं है। अर्थात् लापरवाही या दरिद्रता में एक दूसरी से बढ़कर हैं।

[2] मेरठ में जोहड़।

घाट पर तनी हुई तनाय से उतारे हुए कपड़ों का एक ढेर लगा दिया जाता है। उसे **ठेकी** कहते हैं। ठेकी की लादी बनाकर साँझ को घाट से घर ले आते हैं। **इस्तिरी** या **लोहा** करते समय कपड़े पर जो छींटे मारे जाते हैं या पुचारे से जो पानी लगाया जाता है, वह **नब** (फा० नम) कहाता है। इस तरह कपड़े को तर करना **नब लगाना** कहा जाता है।

धोबी के नेग-दस्तूर

§५५४—ब्याह में **बरातियों** (सं० वरयात्री) को **पाँति** (सं० पंक्ति>पंति>पाँति=दावत) खिलाने के लिए धोबी कपड़े के थान लाता है। थानों की उन पट्टियों की बिछाई की जाती है। उन पट्टियों को उस समय **बिछाई** ही कहते हैं। बिछाई का जो नेग धोबी को मिलता है, वह भी **बिछाई** कहाता है।

जच्चा (बच्चा जनने वाली स्त्री) की **सोबर** (सं० शोभागृह) या **सोहर** (सं० सूतिगृह > सूहहर* > सोहर) के कपड़े भी धोबी ही धोता है।

सोबर की धुलाई का नेग **न्हान-धोबन** कहाता है।

जिस दिन लड़का ब्याहने के लिए चला जाता है, उस रात को लड़के की माँ अपने घर में स्त्रियों को इकट्ठा करके ब्याह का नाटक-सा कराती हैं, वह **खोइया** कहाता है। खोइया में एक औरत दूल्हा और एक दुलहिन बनती है। उनकी भाँवरें पड़ती हैं। तब **कजैतिन** (वह स्त्री जिसके लड़के का विवाह होता है) खोइया में बननेवाले दूल्हा-दुलहिन पर कुछ नाज का उतारा करके धोबिन को दे देती है। उस नाज को **उआरफेर** कहते हैं। वह नेग **उआराफेरिया** कहाता है। उआराफेरिया लेकर धोबिन **असीस** (सं० आशिस्) देती है—

कुलवन्ती बहुअरि आवै। घरु दूध पूत ते छावै॥[1]

[रेखाचित्र २७५ से २७७ तक]

---
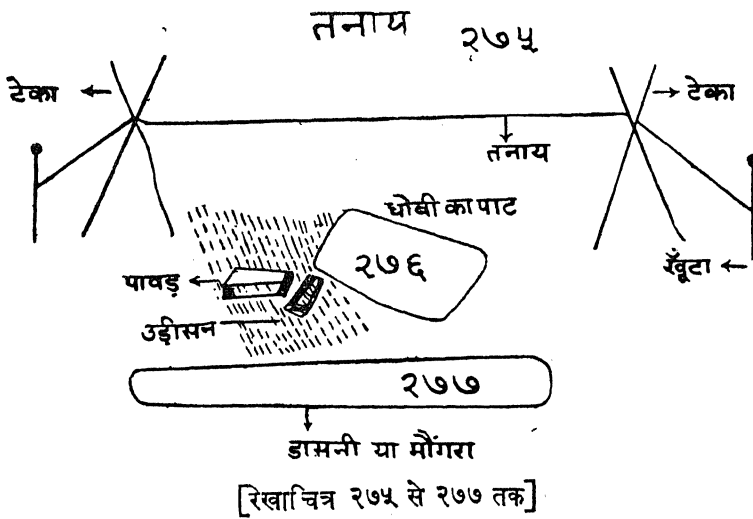
[1] कुलवती वधू आए और उसके आते ही घर दूध तथा पुत्रों से भरापूरा हो जाए।

अध्याय ८

खटीक का काम

§५५५—शूद्र वर्ण में एक छोटी जाति के लोग जो **चाकी** (सं० चक्रिका>चक्किआ> चक्की>चाकी) खोटने का काम करते हैं, **खटीक** (सं० खट्टिक>प्रा० खट्टिक्क>खटीक) कहाते हैं। हेमचन्द्र ने भी देशी नाममाला (२।७०) में 'खट्टिक्क' शब्द का उल्लेख किया है। 'खटीक' को **'चकहेरा'** भी कहते हैं।

§५५६—खटीक के पास एक औजार होता है, जिसमें दोनों ओर नोंक रहती है। उसे **अहोरा** कहते हैं। अहोरा की नोंक से चाकी के पाट में **गड्ढे** करना **रहाना** (खुर्जा में) या **खोटना** कहाता है। खोटते समय चक्की के पाट में से जो छोटे-छोटे कण झड़ते हैं, वे **खुटन** कहाते हैं। यदि अहोरा की नोंक के गड्ढे पाट में दूर-दूर किये जाते हैं तो वह **मोटी खोट** कहाती है और यदि घने किये जाते हैं तो वह **न्हैनी खोट** कही जाती है।

अहोरा के अतिरिक्त **छैनी** (सं० छेदनिका) **हथौड़ी** और **सुम्मी** नाम के औजार और होते हैं। गाँड़र की सीकों की बनी हुई **सोहनी** (सं० शोधनी=झाड़ू) से खटीक चक्की के पाटों को खोटने के बाद साफ करता है। उलटी सोहनी से खुटन को गड्ढों में से निकालना **खुर्राना** कहाता है। खुर्राने से खोट के गड्ढे साफ हो जाते हैं।

सुम्मी (सं० सूर्मी) लोहे की एक कील-सी होती है, जो छेद या गड्ढा करने के काम में आती है।
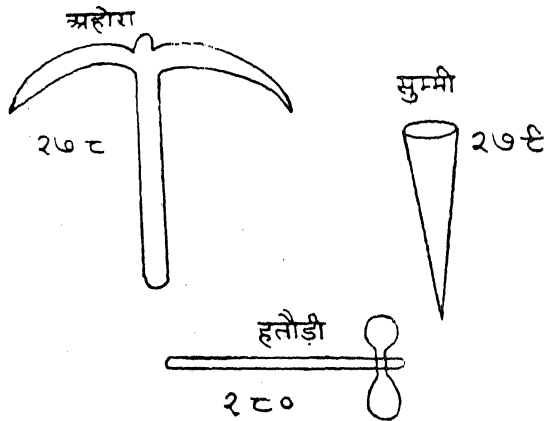
[रेखा-चित्र २७८ से २८० तक]

अध्याय ६

भेड़ पालना और ऊन तैयार करना

§५५७—**भेड़** (सं० मेड) पालनेवाला **गड़रिया** कहाता है। संस्कृत में भेड़ के लिए 'गड्डरिका' शब्द भी है। 'गड़रिया' शब्द सं० गड्डरिक से सम्बन्धित है। गड़रिया के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

'ओड़ गड़रिया नाऊ। जे भेदु न दिंगे काऊ॥'[1]

× × ×

'दिन फूल्यौ। गड़रिया ऊल्यौ।'[2]

अथर्ववेद में भेड़ के लिए 'अवि' (हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्—अथर्व० ६।७१।१) और वृहदारण्यक उपनिषद् में ऊन के लिए 'आविक' (वृहदारण्यक, २।३।६) शब्द आये हैं। ऋग्वेद (८।६७।३) में भेड़ को 'उर्णावती' भी कहा है।

भेड़ों के झुण्ड को **ठैना** या **'रेवड़'** कहते हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि 'रेवड़' शब्द बहुत प्राचीन परम्परा का है। अक्कदी भाषा में 'रेऊ' का अर्थ है 'भेड़'। वहाँ से यह शब्द अन्यान्य म्लेच्छ परिवार की भाषाओं में फैला और अरबी के माध्यम से हम तक पहुँचा[3]। भेड़ें जब भेड़ियों के डर से नीचे को गर्दन झुकाकर चुपचाप इकट्ठी हो जाती हैं, तब वह झुण्ड **झूकटा** कहाता है।

§५५८—**भेड़ों की जातियाँ**—अलीगढ़ क्षेत्र में प्रायः चार जातियाँ हैं—(१) **देसी** (२) **दक्खिनी** (३) **काबुली** (४) **पेसवारी**।

यहाँ की नसल **देसी** कहाती है। देसी भेड़ (सं० देशीय भेड़) की **पसमी** (फा० पश्म से स्त्रीलिंग) मोटी और कड़ी होती है। देसी की पसमी (बाल) से **बिछइया, कम्मर** (बिछाने के कंबल) बनते हैं।

दक्खिनी भेड़ें जयपुर के जंगल से ,यहाँ आती हैं। इनकी पसमी मुलायम और पतली होती है। प्रायः इससे **लोई** (सं० लोमिका) बनती है। एक प्रकार का बालदार कम्बल **लोई** कहाता है।

काबुली भेड़ काबुल की होती है। इसे **दुम्मी** कहते हैं, क्योंकि इसकी पूँछ अर्थात् दुम मोटी और चौड़ी होती है। चकरा की भाँति पीछे लटकी होती है।

पेशावर की भेड़ **पेसवारी** या **पेसावरी** (फा० पेशावरी) कहाती है। इसकी पूँछ छोटी होती है और तरबूजे की भाँति ऊपर को उठी रहती है। भेड़ के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

---

[1] ओड़, गड़रिया और नाई किसी को अपना भेद नहीं देते हैं।

[2] सूरज छिपने पर ही दिन फूलता है। उस समय पश्चिम दिशा में जो लाली छा जाती है, उसे बनपदीय बोली में दिनफूली या पछफूली कहते हैं। दिनफूली देखकर ही गड़रिया अपनी भेड़ों को घर की ओर मोड़ देता है और लौटने में उल्लास का अनुभव करता है।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल: हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३, संवत् २००६, पृ० १०७।

'ज्योंही भेड़ पसर में निकरी तब ही आइ गयो भिड़िआ ॥'[1]

§५५९—**रङ्गों के विचार से भेड़ों के नाम**—जिस भेड़ का सारा रङ्ग लाल होता है, वह **ललुई** कहाती है। यदि रङ्ग हल्का लाल होता है तो उसे **ललौंहीं** कहते हैं।

काले रङ्ग की भेड़ **कारी** और जो शरीर में कहीं काली और कहीं सफेद होती है, वह **कबरी या चितकबरी** कहाती है।

जिस भेड़ का मुँह सफेद तथा आँखों के चारों ओर कालापन होता है, वह **कजरी** (सं० कज्जलिका) कहाती है।

जिस भेड़ की देह का रङ्ग कत्थई और कुछ **भूरा** (सफेद-सा) होता है, वह **लक्खी** कहाती है।

जिसके मुँह पर सफेद रङ्ग की चौड़ी धारी हो, वह **मुँहपटो** या **म्हौंपटो** कहाती है।

जिस भेड़ की देह पर कई **रङ्गों** की बूँदें-सी पड़ी हुई हों, वह **छर्री** कहाती है। 'छिरकना' के लिए संस्कृत में क्षर धातु है। 'छर्री' शब्द के मूल में यही धातु है।

§५६०—**अङ्गों के विचार से भेड़ों के नाम**—जिस भेड़ के कान बचपन में काट दिये जाते हैं, वह **गुजनी** और पूरे कानों वाली **कनारी** कही जाती है। त० सिकन्दराराऊ में गुजनी को **गुजरी** भी कहते हैं।

§५६१—**आयु के विचार से भेड़ों के नाम**—भेड़ का बहुत छोटा नर बच्चा **उन्ना** कहाता है। भेड़ के छोटे बच्चे के लिए ऋग्वेद (१०।९५।३) में 'उरा' और शत-पथ ब्राह्मण तथा महाभारत में '**उरण**' शब्द आये हैं[2]।

सं० उरणक>उरणअ>उन्ना—यह विकास-क्रम ज्ञात होता है। भेड़ का मादा बच्चा **उनिया या उन्नी** (सं० उरणिका) कहाता है।

पूरी जवान् भेड़ जो गर्भ-धारण के योग्य हो जाती है, **पठिया** कहाती है। पठिया से कुछ छोटी उम्र की **घेंटी** या **घिटोर** कही जाती है। नर भेड़ को **भेड़ा** या **मेंढ़ा** कहते हैं। जब पठिया या घिटोर भेड़ा से मिलकर गर्भ-धारण कराती है, तब वह **नमी होना** कहाता है।

§५६२—**अन्य दृष्टिकोण से भेड़ों के नाम**—जो भेड़ भेड़ा से मिलने पर गर्भ-धारण नहीं करती वह **बैला** कहाती है। जिसे ब्याये हुए चार-छः दिन ही हुए हों, वह **अलब्यानी** और अधिक दिन की ब्यायी हुई **बाखरी** (सं० बष्कयणी) कहाती है। एक ब्यौंत से लेकर दूसरे ब्यांत (सं० बीजत्व) तक जो दूध देती रहती है, वह **खरी** और जो बीच में ही दूध बन्द कर दे वह **बज्जी** कही जाती है।

भेड़ को खा जानेवाला एक जंगली जानवर **भिड़िआ** (सं० भयेडक=भेड़िया) कहाता है। यदि भेड़िया छोटे-छोटे बच्चों को अधिक खाने लगता है तो उसे ही **लिरिया** कहते हैं।

---

[1] जब प्रातः में भेड़ बाहर जंगल में निकली कि तुरन्त उसे खाने के लिए भेड़िया आ गया अर्थात् काम के प्रारम्भ में ही विघ्न पड़ गया।

[2] डा० सूर्यकान्त : ग्रैमेटिकल डिक्शनरी आफ संस्कृत (वैदिक) तथा मोनियर विलियम्स कृत संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

§५६३—**भेड़ों को चराना**—भेड़ों के **टैने** (समूह) जंगल में चरते हैं। कोई-कोई किसान अपने खेत को उपजाऊ बनाने के लिये टैनों को एक रात खेत में बसाता है और गड़रियों को उसकी कीमत देता है। भेड़ों के टैनों का खेत में रात भर बसना **रहटानि** कहाता है। रहटानि की कीमत **बसैंत** कही जाती है। उस खेत में जो फसल होती है, उसे **टैनियाई हौन** कहते हैं। **परती धरती** (वह भूमि जो खेती के योग्य न हो) को **जुतैली** (खेती के योग्य) बनाने के लिये भी किसान भेड़ों की रहटानि कराते हैं।

गड़रियों के पास बाँस की एक लम्बी छड़ होती है, जिसके ऊपरी सिरे पर **दराँत** (वै० सं० दात्र ऋक्० ८।७८।१०) ठुका रहता है। उस छड़ को **डङ्गी** कहते हैं। डंगी से पेड़ों की **डुग्गी** (छोटी और पतली शाखा), **गुदलइया** (डुग्गी से छोटी और पतली शाखा) और **लहरे** (डंठलों सहित पत्ते) काट लिये जाते हैं।

गड़रिये भेड़ें चराते समय ऊन भी **ढेरते जाते हैं**। लकड़ी का एक औजार जिसमें चार **पखुरियाँ** (चौड़ी डण्डी) और एक **नरा** (एक डण्डी) लगा रहता है, **ढेरा** कहाता है। ऊन का लच्छा जब ढेरों से ऐंठा जाता है तब उसे **'ढेरना'** कहते हैं।

§५६४—**भेड़ों और गड़रियों से सम्बन्धित अन्य शब्दावली**—गड़रिये की स्त्री **गड़रनी** या **गड़न्नी** कहाती है। किसान के ब्याह में **बन्ना** (बरना=दूल्हा) के लिए गड़रनी ऊन के बटे हुए डोरे लाती है। बरने के हाथ में वही डोरा बाँधा जाता है। तब उसे **कँकना** या **काँकन** (सं० कंकण) कहते हैं।

चैत (सं० चैत्र) की नौदुर्गाओं में नौमी के दिन—अर्थात् चैत्र शुक्ला नवमी को गड़रिया बकरे का कान काटकर उसे **चामड़** (सं० चामुण्डा) पर चढ़ाता है। चामड़ों के मठ या स्थान प्रायः गाँव से बाहर ही पाये जाते हैं। डा० प्रसन्न कुमार आचार्य द्वारा सम्पादित 'मानसार' (६।७८-७६) में भी ऐसा ही उल्लेख है।[1] उस कटे हुए कान को **चमड़-भेट**[2] कहते हैं। जिस **गाम** (सं० ग्राम) की **चामड़** (किसानों की एक ग्रामदेवी) पर **चमड़-भेट** चढ़ जाती है, उस **गाम** (गाँव) के **पौहों** (पशुओं) में **मरी** (पशुओं का एक साथ अधिक संख्या में मरना) और **परी** (गाँव के पशुओं का अधिक संख्या में रोग में पड़ जाना) नहीं फैलती, ऐसी किसानों की धारणा है। इस प्रकार के जादू, टोटकों और टमनों की प्रक्रियाएँ और व्यापार वास्तव में लोक-जीवन के अपने अलिखित अथर्व वेद हैं।

---

[1] ग्रामस्य वप्रं तदबाह्ये किंचिद्दूरे उत्तरस्यां दिशि ॥७८॥
वैष्णव्याश्चाथ चामुण्डाया आलयं कारयेद् बुधः ॥७६॥
—डा० प्रसन्नकुमार आचार्य (संपा०) : मानसार, अ० ६। श्लोक ७८-७६।

[2] बाण ने कादम्बरी में चामड़ (सं० चामुण्डा) के मन्दिर का विस्तृत वर्णन किया है और हर्षचरित में भी विन्ध्यवन के एक जंगली गाँव का वर्णन करते हुए बाण ने चामुण्डा देवी के मण्डप का उल्लेख किया है। चामुण्डा शबर-निषाद संस्कृति की देवी थी, जो बलि लेकर प्रसन्न होती थी।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : विन्ध्यवन का एक जंगली गाँव, जनपद सं० १, अंक १, पृ० १७।

चमड़-भेंट के सिलसिले में जो कुछ **पूजा-पत्तिरी** आदि होती है, उसे **'चामड़िया टंट-घंट'** कहते हैं। वर्गाकार अथवा आयताकार एक बाड़ा, जिसकी दीवालें ढाई-तीन हाथ ऊँची होती हैं और जिसमें बकरियाँ तथा भेड़ों को बन्द कर दिया जाता है, **खरिक**[1] या **खिरक** कहाता है। खरिक का दरवाजा प्रायः **टटिया** (बाँस को फच्चटों की जालीनुमा रोक) की भाँति का होता है।

अध्याय १०

ईंट पाथना

§५६५—आयताकार **साँचे** में डालकर बनाया हुआ मिट्टी का चौखुंटा तथा छह रुखा टुकड़ा जो दीवार उठाने में काम आता है, **ईंट** (सं० इष्टका > प्रा० इट्टगा > इट्टआ > इट्टा > ईंट) कहाता है। ईंट के टुकड़े को **इंटोरा** (सं० इष्टका + पोतलक) कहते हैं। बड़ी ईंटा **ईंटा** कहाती है। जिस स्थान की धरती में से ईंटों के लिए मिट्टी खोदी जाती है, वह जगह **खनाना** कही जाती है।

साँचे की सहायता से मिट्टी को ईंट के रूप में बदलना, **ईंट पाथना** कहाता है। ईंट पाथनेवाले को **पथेरा** या **ईंटपथा** कहते हैं। जहाँ ईंटें पथती हैं, वह चौरस मैदान **फड़, पैर** या **चौक** कहाता है। ईंट पाथने के काम को **पथार** या **पथाई** कहते हैं।

ईंटें सामान्यतया दो प्रकार की होती हैं—(१) **कचिया ईंट** (कच्ची ईंट=वह ईंट जो आग में नहीं पकाई जाती) (२) पकिया ईंट (पक्की ईंट=जो आग में पका ली जाती है)। जिस भट्टे में ईंटें चिनकर पकाई जाती हैं, वह **पजाया** या **पजावा** (फा० पजाव) कहाता है। पक्की ईंट पजावे और **भट्टे** (चिमनीदार पजावा) में ही पकती है। पजावे की ईंट पर नम्बर या नाम नहीं पड़ता लेकिन भट्टे की ईंट पर नम्बर या नाम पड़ता है। इसलिए पक्की ईंटों के दो भेद हो जाते हैं—(१) **पजइया ईंट** (२) **नम्बरी ईंट**।

वह **पजइया ईंट** (पजावे में पकनेवाली ईंट) जो लगभग ६ इञ्च × ४॥ इञ्च होती है, **गुम्मा** कहाती है। छोटी ईंट जो ४ इञ्च × २॥ इञ्च के लगभग होती है और पजावे में पकती है, वह **ककइया** कही जाती जाती है।

---

[1] "हौं बलिजाऊँ मुखारबिन्द की, गोसुत मेलौ **खरिक** सम्हार।"
—सूरसागर, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, १०।४०३।

[2] 'इष्टका' बहुत पुराना शब्द है। यजुर्वेद और शतपथ में इसका उल्लेख हुआ है—
'इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका'—यजु० १७।२
'अस्थीनि वाऽइष्टका'—शत० ८।७।२।१०
'अहोरात्राणि वाऽइष्टका'—वही ६।१।२।१८

ईंट पक जाने पर बड़ी **आरबल** (उम्र) की हो जाती है। ईंट के सम्बन्ध में पहेली के रूप में लौकोक्ति प्रसिद्ध है—

'पानी ते पैदा भई, पानी लखि मरि जाय।
आगि लाइकैं फूँकि देउ, उमरि बड़ी है जाय॥'[1]

§५६६—नम्बरी ईंटों के नाम—पकाई और आकार की सफाई के विचार से ईंटों के कई नाम हैं।

बढ़िया, साफ और ठीक पकी हुई ईंट **अब्बल** (नम्बर एक की) कहाती है। उससे कुछ कम पकी हुई **दुब्बल** (नम्बर दो की) और दुब्बल से कुछ कम पकी **तिसरी** (नम्बर तीन की) कहाती है। दुब्बल और तिसरी के बीच की ईंट **लालपेटी** कही जाती है। लाल (सुर्ख) रङ्ग की ईंट जो मुलायम पकी हुई होती है, **लालपेटी** कहाती है। **राज** (मकान बनानेवाले कारीगर) घरों के **खम्भ** (सं० स्कम्भ) बनाने में जिस ईंट को काम में लाते हैं, उसे **छिलिया ईंट** कहते हैं। छिलिया को छीलकर और घिसकर राज दीवाल में बीच का जोड़ और **संध** मिलाते हैं। यह ईंट बढ़िया ईंटों में मानी जाती है। टुकड़ों के हिसाब से **पउआ, अद्धा** और **पौना** नाम ईंटों के ही हैं। ईंटों के छोटे-छोटे टुकड़े **इंटोरी** या **रोड़ी** कहाते हैं।

जो ईंट अन्दर तो पक जाती है, लेकिन ऊपर से कच्ची मालूम होती है, वह **तलसा** कहाती है। तलसा ईंट में **लौनी** (सं० लवणिका > लवनिआ > लउनी > लौनी) नहीं लगती। एक तरह का नमकीन रेत जो ईंटों पर जम जाता है **लौनी** कहाता है। उल्टी-सीधी भौंड़ी शक्ल की बहुत पकी हुई ईंट **खङ्गड़** कहाती है।

जो ईंट ठीक पकी हुई होती है, लेकिन पकते समय आग की गर्मी से बह जाती है, वह **खाँचा** कहाती है। टेढ़ के अर्थ में **खाँच** शब्द अलीगढ़-जनपद की बोली में बहुत चलता है। पुरानी ईंट जो लगभग ६ इंच लम्बी और ५ इञ्च चौड़ी होती है, **चौपैली** कहाती है। इसका जनपदीय नाप लगभग १८ अंगुल और १० अंगुल होता है।

जो ईंट इतनी अधिक पक जाती है कि आग की गर्मी से चटक जाती है, वह **चटखा** या **चटका** कहलाती है। दो-तीन जगह से टेढ़ी ईंट को **ऐंचकबैंची** या **खोर** कहते हैं।

जो ईंटें भट्टे के मुँह के पास लगती हैं, वे भट्टे की गर्मी और धुएँ से एक हिस्से में काली पड़ जाती हैं। उन ईंटों को **करमुँहीं** या **कलमुँही** कहते हैं। यह अब्बल के बराबर की मानी जाती है। **गुंगा, गुम्मा, लखौरी** ईंटों के ही नाम हैं। गुंगा आकार में गुम्मा से छोटी होती है। लखौरी **चौपैली** से छोटी होती है।

लालपेटी से जो रङ्ग में हलकी होती है अर्थात् लाल और पीली होती है, साथ ही साथ लालपेटी से कुछ कम पकी हुई होती है, वह ईंट **तेज-पीरा** या **तेजपीला** कही जाती है। **पीरा** ईंट से **तेजपीरा** अधिक पीली होती है और अधिक पकी हुई भी होती है।

---

[1] मिट्टी में पानी डालकर ही ईंट बनाई जाती है। बनी हुई कच्ची ईंट को यदि पानी में डाल दिया जाय तो नष्ट हो जाती है। यदि पजावे या भट्टे में पकाई जाय तो 'उसकी उम्र' बड़ी हो जाती है।

पकते समय जिस पर **कौला** (कोइला) और **मिट्टी** (सं० मृत्तिका > मट्टिआ > मिट्टी) ऐसी जम जाती है कि काले फफोले और दरदरी बूँदें-सी दिखाई देती हैं, वह ईंट **झामा** या **झम्मा** (सं० झामक) कहाती है।

भट्टे में पकते समय जो ईंट कुछ पक्की और कुछ कच्ची रह जाती है, वह **पीरा** या **कच्ची पीरा** कहाती है।

§५६७—**ईंटों के लिए मिट्टी तैयार करना**—जहाँ ईंटें पथती हैं, वहाँ मिट्टी खोदने के लिए एक गड्ढा होता है जिसे **गड़हेला** या **खन्वा** कहते हैं। पथेरे गड़हेले की सतह और **पारों** (गड्ढे की चारों ओर की दीवार या पक्खे) में से फावड़ों से मिट्टी खोदते हैं। पक्खों में फावड़े की चोट से बने हुए निशान **खुच्चा** कहाते हैं। गड़हेले की सतह के बीच में कच्ची ईंटों से चार **थमियाँ** (ईंटों के बने हुए दो-दो हाथ के खम्भे) बना ली जाती हैं जिन्हें **अड्डी** कहते हैं। गड़हेले के पास में ही पानी से भरा हुआ एक छोटा गड्ढा और होता है, जो **खंची** कहाता है। **फड़** (ईंट पथने का मैदान) से गड़हेले में जाने के लिए जो एक रास्ता बनाया जाता है, उसे **घटिया** कहते हैं। पथाई में प्रायः दो आदमी रहते हैं—एक **खोदा** (मिट्टी खोदनेवाला) और दूसरा **पथेरा** (ईंट पाथनेवाला)। खोदा एक बार की पथाई के लिए जितनी मिट्टी गड़हेले में से खोदकर एक ढेर के रूप में इकट्ठी कर लेता है, उसे **घानी** कहते हैं। घानी को भिगोने के लिए पानी खाँची में से पहुँचाया जाता है। मिट्टी के गल जाने पर उसे फावड़े से खूब मिलाते और बार-बार काटते हैं; इस क्रिया को **पौंटाना** कहते हैं। पौंटाने के बाद तैयार हुआ ढेर **पौंट** कहाता है। पतली अर्थात् पानीदार पौंट **गिलाई पौंट** कहाती है। ईंटों के लिए यह ठीक नहीं मानी जाती। अतः कुछ सूखी मिट्टी मिलाकर उसे कुछ सख्त बनाते हैं; तब उसे **गारिया पौंट** कहते हैं। ईंटों की पथाई में **गारिया पौंट** ही काम आती है। कई पौंटों को मिलाकर बनाया हुआ ढेर **घान** कहाता है। घान में से काट काटकर छोटी-छोटी ढेरियाँ बनायी जाती हैं, जो **काट** कही जाती हैं। काट में से ईंट के साँचे में भरने के लिए हाथों से कुछ मिट्टी निकालते हैं, जिसे **गौंदा** या **लोई** कहते हैं। पथेरे (ईंट पाथनेवाले) गौंदे को साँचे में भरकर ईंट का रूप दे देते हैं।

§५६८—**ईंट बनाने में काम आनेवाली मिट्टियाँ**—ईंट जिस मिट्टी से अच्छी बनती है वह कुछ चिकनी और पीली होती है। उसे **चिकपीरा** (सं० चिक्कण—पीत) कहते हैं। चिकपीरा मिट्टी में पानी मिलाकर पाँवों से उसे खूब खूँदते हैं। अच्छी तरह खुँदजाने पर वह **गारा** या **गिलाया** कहाती है। गारे को एक जगह इकट्ठा करके उसका चबूतरेनुमा ढेर कर देते हैं और उस ढेर के ऊपरी भाग को हाथ फेरकर चिकना देते हैं ताकि हवा से नीचे की मिट्टी सूखने न पावे। मिट्टी का यह ढेर **मटीला** (मट्टी + टीला) कहाता है। तहसील हाथरस में इसे **मटौंतरी** (मिट्टी + चौंतरी) भी कहते हैं।

जब पथेरे को ईंटें पाथनी होती हैं, तब मटीले में से वह लगभग ४-५ सेर वजन की १०-१५ ढेरियाँ फड़ पर लगा लेता है। प्रत्येक ढेरी को **गौंदा** या **लोई** (त० अत० में) कहते हैं। गौंदे को साँचे में डालकर ईंट बनाते हैं। लेकिन साँचे में डालने से पहले गौंदा **बारू** (बालू) या **पीरिया** (पीले रंग की रेतीली मिट्टी) में मला जाता है। यह काम **गौंदमलाई** या **गौंदामलाई** कहाता है। पीरिया को **रेती** या **रेता** भी कहते हैं। जब रेता में गौंदा मला जाता है तब उस क्रिया के लिए **रितियाना** क्रिय का प्रयोग होता है।

§५६९—**ईंट बनाने के औजार और अन्य सामग्री**—बाँस के छोटे-छोटे दो डंडों

में २०-२५ चिरे हुए बाँसों की फच्चटें बाँध ली जाती हैं। इसे **मंझी** या **पच्छी** कहते हैं। मंझी पर रखकर मिट्टी फड़ के पास डाली जाती है, जहाँ गौंदा बनाकर ईंटें पाथी जाती हैं। एक मंझी पर जितनी मिट्टी आती है, उतने वजन को भी **एक मंझी** कहते हैं।

मंझी शब्द सं० मध्यिका से व्युत्पन्न ज्ञात होता है (सं० मध्यिका > मज्झिअा > मज्झी > मंझी)। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (६।१) में 'पच्छी' शब्द को पिटिका (पिटारी) के अर्थ में प्रयुक्त किया है।
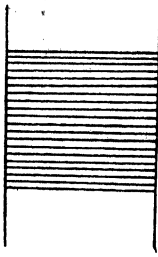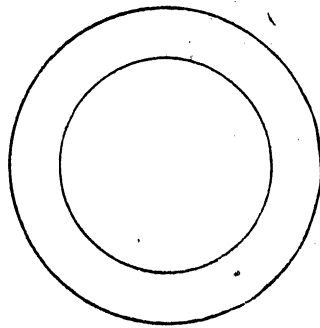
[रेखा-चित्र २८१ से २८२]

गिलाये या **गारे** की मिट्टी **पामरे** (फावड़ा) से काट काटकर मंझी पर रख दी जाती है। मिट्टी काटते-काटते फावड़े पर काफी मिट्टी जम जाती है। उस जमी हुई मिट्टी को बाँस की एक नोंकदार लकड़ी से खुरचते हैं। वह लकड़ी **खुच्चनी** या **खुरचनी** कहाती है। इसी से साँचे की मिट्टी भी खुरचते हैं।

लोहे की चौड़ी पत्ती का एक गोल पहिया-सा, जिससे **फड़** (ईंटों का मैदान) की सतह खुरचकर चौरस की जाती है, **घेरा** या **रौला** कहाता है।

लकड़ी का बना हुआ चौड़ा चौखटा जिसमें ईंटें बनती हैं, **साँचा** या **फरमा** (अँग० फ्रेम) कहाता है। **साँचे** के सम्बन्ध में एक पहेली है—

पोखरि की पारि पै एक अचम्भौ बीतौ।
पहलैं भरिलयौ खूब उठायौ तो रीतौ ॥[1]

साँचे की लम्बाई चौड़ाई से दूनी होती है। पक्की ईंटों का साँचा लगभग ९" × ४½" होता है। साँचे की लम्बाई-चौड़ाई के बराबर का एक तख्ता होता है, जिस पर लोहे की एक मोटी पत्ती जड़ी रहती है। उस पत्ती पर ईंट बनवानेवाले का नाम लिखा रहता है। वह पत्तीदार तख्ता **दिला** कहलाता है। दिला रखकर उस पर साँचा जमाया जाता है और फिर मिट्टी का गौंदा भर कर उसे **थपथपाते** हैं। अधिक मिट्टी को लोहे के एक तार से खुरचकर अलग कर देते हैं। उस तार को **कटारनी** या **कमानी** कहते हैं। साँचे में मिट्टी ठीक जम जाने पर उसे उलट देते हैं। उलटने से

[1] ईंट-पथाई के फड़ को पहेली में 'पोखरिया की पार' कहा गया है। साँचा पहले मिट्टी से भरा जाता है, फिर ईंट पाथने के लिए औंधा मारकर उसे खाली हालत में उठा लेते हैं।

दिला की छत ऊपर आ जाती है। फिर दिला और साँचा अलग कर लिया जाता है। ईंट की किनारी ठीक करने के लिए ईंट से कुछ बड़ी लकड़ी की एक वस्तु ईंट के ऊपर हलके ढंग से जमाई जाती है और फिर अलग कर दी जाती है। उसे **पटरी** कहते हैं।

साँचे को पानी से गीला करने के लिए एक कपड़ा होता है जो **पोचारा या पुचारा** कहाता है।

साँचे में से निकाल-निकालकर ईंटों की **पाँति** (सं० पंक्ति >प्रा० पंति >पाँति) जो फड़ पर लगाई जाती है, **धारी** या **धाई** कहाती है।

धारी जब सूख जाती है और आसानी से ईंटें उठ आती हैं, तब उन्हें दो-दो के हिसाब से तर-ऊपर तिरछी खड़ी करते हुए १० जोड़े चिन देते हैं। यह चिनाव **बीसा टामा** कहाता है। पच्चीस ईंटों का बनाया हुआ **पच्चीसा टामा** कहाता है। पाँच ईंटों की **अधघुड़िया,** दस ईंटों की **घुड़िया** और बीस अथवा पच्चीस का **टामा** बनता है। एक टामा में कुल २० या २५ ईंटें

[रेखा-चित्र २८३ से २८६ तक]
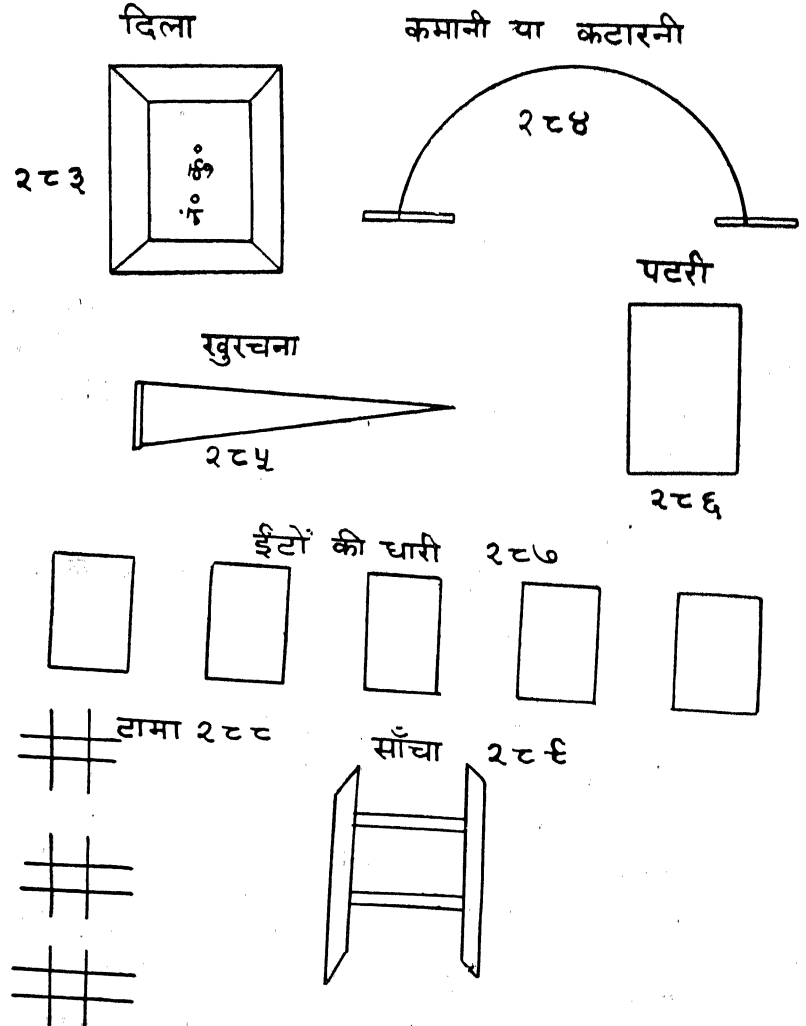
ही होती हैं और एक जोड़े के बीच में एक जाली-सी बन जाती है। टामा को त० हाथरस में **चिड़िया** भी कहते हैं।

अनेक टामों की लगी हुई लाइन **खिवार** या **टट्टी** कहाती है।

जब कई खिवारें तर-ऊपर लगा दी जाती हैं, तब वह **चट्टा** या **चिट्टा** कहाता है।

[चित्र १६]

अध्याय ११

खाल काढ़ना, पकाना तथा उससे जूते और पुर बनाना

(१) खाल काढ़ना

§५७०—मरे हुए पशु के शरीर से **खाल** (सं० खल्ल·मो० वि०) उतारना **खाल काढ़ना** कहाता है। चमड़े के अर्थ में 'खल्ला' (दे० ना० मा० २।६६) हेमचन्द्र ने देशज माना है। पाइअसद्दमहण्णवो नामक प्राकृत कोश में भी 'खल्लग' और खल्लय' शब्दों को देशज ही लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'खल्ला' अर्थात् 'खल्ल' शब्द मूलतः देशज है, किन्तु समय और अवसर पाकर यह पीछे के दरवाजे से संस्कृत में घुस गया है। मोनियर विलियम्स ने 'खल्ल' शब्द को संस्कृत का लिख तो दिया है; परन्तु उसे यह शब्द किसी प्रकाशित पाठ्य ग्रन्थ में नहीं मिला, केवल शब्द कोशों में मिलता है।

गाँव के वे लोग, जिनके पास खेत नहीं होते और जो किसानों की **महन्त मजूरी** (अ० मेहनत; फा० मजदूरी) करके अपना पेट पालते हैं, **औहतिया** कहाते हैं। गाँव में अभागे औहतिये का जीवन कष्टमय व्यतीत होता है। इसके सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"औहतिया खेती करै बद्धु मरै कै सूखा परै॥"[१]

---

[१] अभागा औहतिया यदि पट्टे पर खेत लेकर खेती करता है, तो या उसका बैल मर जाता या वर्षा न होने से खेती ही सूख जाती है। अर्थात् उसके ऊपर दुःख पर दुःख आते हैं।

किसान[१] की **टहल** (सेवा) तथा खेती से सम्बन्धित अन्य काम करनेवाले लोग **टहलुए** या **कमेरे** कहाते हैं। चमड़े के काम से रोजी कमानेवाला व्यक्ति **चमार** (सं० चर्मकार > चम्मआर > चम्मार > चमार) या **मोची** कहाता है। जो चमार किसान के मरे हुए **पौहे** (सं० पशु) उठाता है और उनकी खाल काढ़ता है, वह **सिटिआ** या **सटिआ** कहाता है। खाल (चमड़ा) पकानेवाले और रँगनेवाले को **रङ्गइआ** कहते हैं। चमड़े का एक बड़ा थैला-सा जिससे कुएँ में से पानी खिंचता है, **चरस** या **पुर** (सं० पुट—मो० वि०) कहाता है।

सटिआ या सिटिया मरे हुए पशुओं को उठाता भी है और उनका चमड़ा भी उतारता है। मरा हुआ पशु उठाने में जो मोटा-सा डंडा काम में आता है, उसे **सटक** या **सटका** या **सँगेटा** कहते हैं। जो मनुष्य बड़ी खुशामद और कहने-सुनने से किसी काम को करने के लिए उठता है, उसके लिए **'सँगेटो से उठना'** मुहावरे का प्रयोग होता है। 'सटिआ' शब्द का संबंध भी 'सटका' से मालूम पड़ता है।

§५७१—जिस **चाम** (सं० चर्म > चम्म > चाम) पर से बाल आदि हटा दिये जाते हैं, वह **मोच**[२] कहाता है। पुर और **पन्हा** (सं० प्रनद्धा > पनहा > पन्हा = जूता) मोच से ही बनाये जाते हैं। मोच का काम करनेवाला व्यक्ति **मोची**[३] कहाता है।

जो चमार सालभर तक किसी किसान के यहाँ **मजूरी** (मजदूरी) पर काम करता रहता है, वह **कमेरा** कहाता है। जो चमार सटिआ से खाल मोल लेकर किसी रँगइया को बेच देता है, उसे **फड़िआ** (त० हाथ० में) या **फरइया** (त० कोल० में) कहते हैं। इस प्रकार का काम **फड़िहाई** या **फरियाई** कहाता है। सिटिया का काम **सिटियाई** (त० कोल०) या **बेगार** या **टल्लेनवीसी** (त० हाथ०) कहाता है। इसीलिए सिटिया को **बेगारी** भी कहते हैं। सिटिया जिस किसान के यहाँ काम करता है, वह उसका **आसामी** कहाता है। मरे हुए पौहे उठाना घर की लिपाई-पुताई और फटे हुए जूते तथा पुर ठीक करना आदि काम सिटियाई के ही अन्तर्गत है। पुराने तथा फटे हुए जूतों को सीना या उनमें चमड़े की पत्ती लगाना **गाँठना** कहाता है।

सिटिया रँगइया (चमड़ा पकानेवाला और रँगनेवाला) से जब अपने किसान के लिए पुर (चरस) तैयार कराता है, तब उसे (सिटिया को) एक रुपया आठ आना मिलता है। यह **दस्तूरी** कहाती है। पुर तैयार कराना **'पुर चढ़वाना'** कहा जाता है।

चमार के सम्बन्ध में लौकोक्ति प्रसिद्ध है—

"कारौ बाह्मन गोरो चमार। इनते मानौ सबनैं हार ॥[४]

---

[१] 'किसान' के लिये ऋग्वेद (४।५७।८), यजुर्वेद (१२।६९) और तैत्तिरीय उपनिषद् (कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः—तैत्ति० २।४।८।७) में 'कीनाश' शब्द आया है।

[२] हेमचन्द्र कृत देशी नाममाला में 'मोच' (मोचं च अद्ध जंघीह)—दे० ना० भा० ६।१३९) का प्रयोग एक प्रकार के लम्बे जूते के अर्थ में किया गया है।

[३] 'मध्य फारसी भाषा का एक शब्द 'मोचक' (घुटनों तक का जूता) है, जिससे 'मोचिक'—'मोची' शब्द हिन्दी में आया है। 'मोचक' शब्द ही आगे चलकर फारसी में 'मोज़ा' बन गया।'

डा० उदय नारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० १८।

[४] काले रंग के ब्राह्मण और गोरे रंग के चमार से सब हार खा चुके हैं। ये बड़े चन्ट और चालाक होते हैं।

§५७२—**खाल की कढ़ाई और उसके औजार**—जिस पौहे के दाँत निकल आते हैं, वह **उदन्त** (सं० उद्दन्>उत्+दन्त>उदन्त) कहाता है। प्रायः दो-ढाई साल में सभी **अदन्त** (सं० अदन्) उदन्त हो जाते हैं। अदन्त **बछड़ा** या **बछिया**; अथवा अदन्त **पड़रा** (भैंस का नर बच्चा) या **पड़िया** (भैंस का मादा बच्चा) मर जाने पर **कटेला** या **पड़ेला** कहाता है। पड़रे को माह का जाड़ा बहुत सताता है। प्रतिवर्ष का माह मास (सं० माघ) पड़रे के लिए काल के समान है। प्रसिद्ध है—

'तीन माह जब पेले। तब भैंसिन में भैंसा खेलै ॥'[1]

कटेला या पड़ेला को सिटिया उठाकर नहीं, बल्कि रस्सी से कढ़ेरकर ले जाता है। एक मोटा रस्सा, जिसे कटेले के सींगों में बाँधकर उसे कढ़ेरते हैं, **कढ़न्न पैंड़ा** कहाता है। यदि बड़ा पौहा (पशु) मर जाता है तो वह मोटे-मोटे दो डंडों पर उठकर जाता है। वे डंडे **सँगेठे** या **सँगेटे** कहाते हैं। प्रत्येक सँगेठे की लम्बाई लगभग ५-६ हाथ होती है। जो आदमी बड़ी खातिर खुशामद तथा कहन-सुनन के बाद उठकर कोई काम करता है तो उसके लिए '**सँगेटे से उठना**' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

जहाँ मरे हुए पौहे की देह पर से खाल काढ़ी जाती है, वह जगह **कढ़नहार** कहाती है। कढ़नहार में जब सँगेटों पर उठाकर पौहे को ले जाते हैं, तब उस क्रिया को **साँग उठाना** या **साँग डालना** कहते हैं।

पौहे की देह पर से जब खाल काढ़ी जाती है, तब वहाँ चील, कउए और गिद्ध (सं० गृध्र) बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं। गिद्धों को '**ढेंक**' (सं० ढेङ्क) भी कहते हैं। ढेंकों का झुण्ड '**ढिंकार**' कहाता है।

मरे हुए पौहे के रीढ़े या बाँसिये (पीठ पर का रीढ़ खम्भ) के दोनों ओर सफेद पट्टी-सी जमी रहती है, उसे **नहार** (सं० स्नायु) कहते हैं। सिटिया खाल काढ़ते समय नहार को भी निकाल लेता है। नहार सूप बनाने और **कढ़ेरे** (धुना) के **पींजन** (रुई धुनने का यंत्र) में काम आती है।

पौहे की देह पर से काढ़ी हुई खाल में जो माँस (सं० मांस) आदि लगा रहता है, वह **मुरदार** कहाता है। मुरदार वाली खाल **कच्ची खाल** कही जाती है। मुरदार अलग करना '**जीलना**' कहाता है। जीलने में काम आनेवाला औजार **खुरचना** कहाता है। एक लकड़ी में लोहे की पैनी पत्ती लगी रहती है, उसे ही **खुरचना** या **खुचना** कहते हैं।

वह जगह जहाँ कच्ची खाल में से **मुरदार** अलग किया जाता है, **खारका** या **छारका** (त० हाथ० में) कहाता है। खारके के बाद खाल **राँगौछ** (खाल पकने और रँगने का स्थान) में भेजी जाती है। खारके में कच्ची खाल में कलई (चूना) लगाई जाती है, इसे **लेटा लगाना** कहते हैं। फिर वह **पनखारी** (एक कुंडी जिसमें बबूल की छाल का पानी भरा होता है) में साफ की जाती है। राँगौछ को **आड़ा** (त० सादाबाद में) और **तोड़का** भी कहते हैं।

काढ़ी हुई खाल के बीच में से जब दो हिस्से कर दिये जाते हैं, तब प्रत्येक हिस्सा **फाड़ी** या **अधौरी** कहाता है। भैंस आदि की पूरी खाल '**सगड़ैंड़ी**' कहाती है।

---

[1] यदि भैंस के बच्चे ने तीन साल के तीन माह (माघ) कष्ट पाकर बिता लिए तो फिर वह भैंसा बन जायगा और भैंसों (महिषी) में आनन्द करेगा।

खाल काढ़ने में प्रायः दो औजार ही काम आते हैं—(१) **राँपी** या **राँपा** (२) **छुरी**। खुरपी के अग्र भाग से मिलता-जुलता एक लोहे का औजार जो खाल काढ़ने में काम आता है, **राँपी** कहाता है। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत-व्याकरण (४।१६४—पिशेल संस्क०) में छीलने या पतला करने के अर्थ में 'रंपइ' क्रिया लिखी है। सम्भवतः प्राकृत की 'रंप' धातु से ही हिन्दी 'राँपी[1]' शब्द का निर्माण हुआ है।

राँपी से मिलता-जुलता एक औजार **छुरा** (सं० क्षुर[2] + क > छुरअ > छुरा) कहाता है। उससे भी चमार पशु की खाल उतारते हैं और माँस काटते हैं।
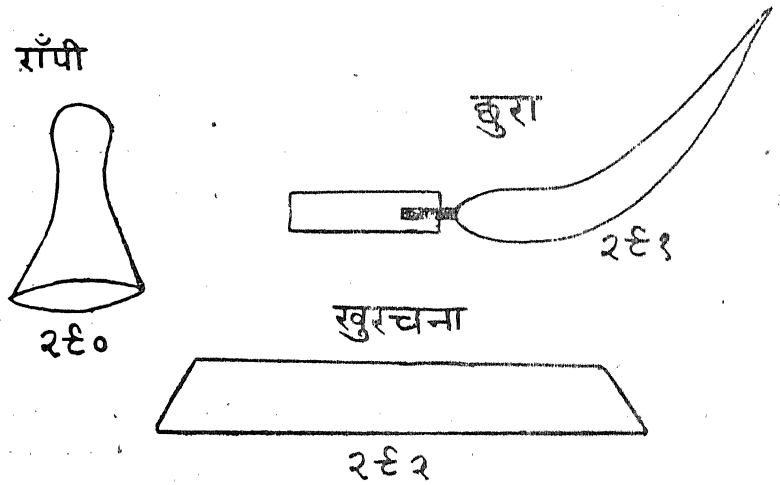
[रेखा-चित्र २९० से २९२ तक]

(२) खाल पकाना

§५७३—सटिया **कढ़नहार** (वह स्थान जहाँ खाल काढ़ी जाती है) से खाल लाकर रँगइया (खाल पकानेवाला और रँगनेवाला) को दे देता है। रँगइया उसे **खारके** (एक कुंडी जिसमें खाल धोई जाती है) में डाल देता है। फिर उस खाल में चूना लगाता है, जिससे खाल पर के बाल गल जाते हैं। चूना लगाने को **लेटा लगाना** और बाल उखाड़ने को **दुखार करना, रोंगटा सूँतना** या **रोंगटा मोचना** कहते हैं। सुँताई के बाद **जिलाई** या **लिहाई** (त० हाथ० में) होती है। जिलाई में खुरचनों (एक औजार) से **जीलन** या **मुरदार** (माँस) खाल से अलग किया जाता है। इसके लिए **'जीलना'** क्रिया का प्रयोग होता है। जीली हुई खाल **पनखारी** या **गोली** (एक कुंडी जिसमें साफ पानी भरा रहता है) में डाल दी जाती है। बबूल की छाल को **कस**

---

[1] हिन्दी-शब्दसागर में 'राँपी' शब्द को देशज माना है।

[2] छुरे के अर्थ में 'क्षुर' शब्द का प्रयोग वाल्मीकि रामायण और महाभारत में हुआ है—

"क्षुरोपमां नित्यमसत् प्रियंवदां,

प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीम् ।"—वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, पूर्वार्द्ध, रामनारायणलाल इलाहाबाद, १२।११२

"मधुदिग्धमिव क्षुरम्"

(महाभारत, द्रोण-पर्व, जयद्रथवध पर्व सातवलेकर संस्क० अध्याय ६४, श्लोक १४)। अर्थात् दुर्योधन द्रोणाचार्य से कहने लगा कि मैं नहीं समझता था कि आप मीठे छुरे के समान निकलेंगे।

कहते हैं। साफ पानी की कुंडी या साफ पानी **पनखारी** कहाता है। पनखारी में खाल की कलई (चूना) धुल जाती है।

पनखारी में से निकालकर खाल की **कुन्हाई** की जाती है। कस और अन्य मसाले मिले हुए पानी में खाल को डालना '**कुनाहना**' कहाता है। जिस पानी में खाल डाली जाती है, उस पानी को भी 'कुन्हाई' कहते हैं और खाल पकाने की वह क्रिया भी **कुन्हाई** कहाती है। दो बार कुन्हाई होने पर खाल की संज्ञा **चाम** हो जाती है।

पनखारी और कुन्हाई में जो खाल कच्ची रह जाती है, उसे **कचखारी** कहते हैं। कचखारी खाल के जूते या पुर नहीं बनाये जाते। उसमें से लम्बी और पतली पटारें उतारी जाती हैं, जिन्हें **बाद** कहते हैं।

जहाँ लेटा लगाने से लेकर कुन्हाई करने तक का काम होता है, वह जगह भी **खारका** कहाती है। खारके में बना हुआ ढलवां पक्का चबूतरा **चिट्टा** कहाता है। चिट्टों पर ही लेटा, दुखार और जिलाई की जाती है।

कुन्हाई के बाद चाम (सं० चर्म) की **गुथाई** होती है। मूँज (सं० मुंज) की तुरी जिस **पत्तुर** (सं० पत्र) में छिपी रहती है, वह **तौन** कहाता है। तौन को **साँति** (एक प्रकार की लोहे की मूसली) से कूट-पीटकर नँदोरों (सं० नन्दापोतलक) के पानी में भिगो देते हैं। **मँझोलों** (लोहे का नुकीला एक औजार) से चमड़े में छेद करके तौन पिरौते जाते हैं। इस क्रिया को '**गुथाई**' कहते हैं।

§५७४—एक कोठे में दीवालों में दो मोटे-मोटे डंडे गड़े रहते हैं, जो **बरंगा** कहाते हैं। गुथाई किये हुए चमड़े को बरंगों पर सूखा कस भरकर लटका देते हैं और फिर उसमें पानी भर देते हैं। इस क्रिया को **चाम-चढ़ाई** कहते हैं।

चाम चढ़ते समय एक बड़ी और लम्बी मुशक की तरह तन जाता है; क्योंकि उसमें कस और पानी भर दिया जाता है। यदि चाम बड़ा होता है और बरंगा पतला, तो **चोट** बाँध देते हैं। मूँज और सन की मिलावट से बनाई हुई रस्सी **चोट** कहाती है। जब उसे चाम के बीच में बाँध देते हैं, तब उस क्रिया को **चोटबँधाई** कहते हैं। चोट बँध जाने पर कस और पानी ऊपर के भाग में ही रहता है। चोट से ऊपर का हिस्सा जिसमें कस और पानी भरा रहता है, **पुरिया** (सं० पुटिका) कहाता है। जब पुरिया पक जाती है, तब नीचे के भाग में कस और पानी भर दिया जाता है।

§५७५—एक ओर चाम पक जाने पर चाम में लगे हुए तौन के टाँके काट दिये जाते हैं। तब उसका सारा पानी निकल जाता है। इस क्रिया को **छेवा लगाना** कहते हैं। छेवा लगाने के बाद चमड़े को उलटकर फिर गूथा जाता है और पहली तरह से ही फिर कस और पानी भरकर बरंगे पर लटकाया जाता है। इसे **चाम बदलाई** कहते हैं।

चामचढ़ाई और चाम बदलाई जिन बरंगों पर होती है, उनके नीचे एक आयताकार कुंडी बनी होती है, जिसमें चाम का पानी गिरता रहता है। उस कुंडी को **राँगौछ, आड़ा या तोड़का** कहते हैं। वह सारा कोठा भी **राँगौछ** कहाता है। कस का मैला पानी जिस गड्ढे में इकट्ठा किया जाता है, उसे **मैलखोरा** कहते हैं। चाम को कस मिले पानी में डुबाना '**रँगौछना**' कहाता

है। चाम रँगौछते समय कभी-कभी उस पर सफेदी-सी जम जाती है। उस सफेदी को **चैंपा** कहते हैं। वास्तव में चमड़े की फफूँड़ ही **चैंपा** कही जाती है।

§५७६—चाम की चढ़ाई करने के बाद वह पक जाता है और उसे उतार लेते हैं। पानी में से निकाले हुए कस के टुकड़े **बोचा** या **बाकली** कहाते हैं। राँगौछ की चौरस भूमि **पंसार** या **फड़** कहाती है। पंसार में बोचों को फैलाकर उन पर चाम फैला लिया जाता है और उसमें **नौंन** (सं० लवण) लगाया जाता है। इस क्रिया को **नौंन देना** या **खारी करना** कहते हैं। चाम में जिस ओर जिलाई की गई थी, उसी ओर नौंन लगाया जाता है।

§५७७—**चमड़ा पकाने में काम आनेवाली वस्तुएँ**—एक मोटा डंडा जिससे चमड़ा ऐंठकर निचोड़ा जाता है, **निचोन्ना** कहाता है।

एक प्रकार की बड़ी झाल, जो अरहर की लकड़ियों की बुनी होती है और जिसमें किनारा उठा हुआ नहीं होता, **झाबा** कहाती है। इस पर चमड़े को रखकर गुथाई की जाती है। झाबे को त० हाथरस में **चीतरा** भी कहते हैं।

एक प्रकार का लकड़ी का औजार जिससे चमड़े की सुँताई की जाती है, **बौंगा** या **फलका** कहाता है।

चार-चार अँगुल के चाम के टुकड़े जिनके सिरे चौड़े और नोंकें पतली होती हैं, **चैउआँ** कहाते हैं।
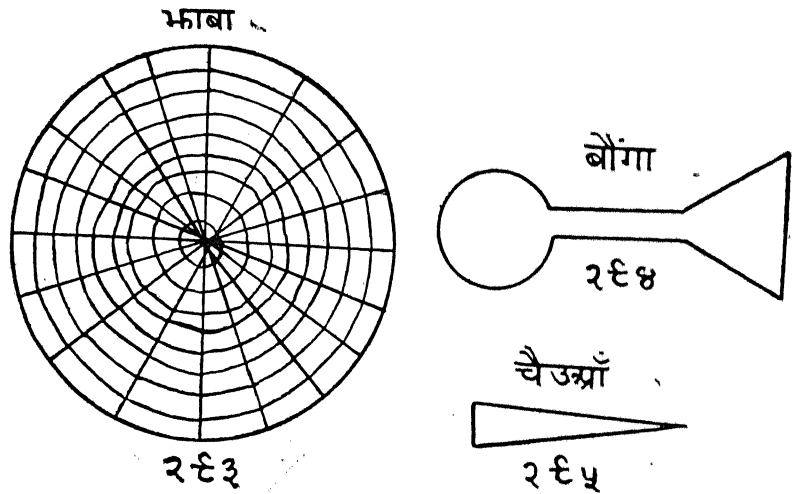
[रेखा-चित्र २६३ से २६५ तक]

(३) जूते बनाना

§५७८—किसान प्रायः देशी जूते ही पहनते हैं। उसे **'नरी का जूता'** भी कहते हैं। ऐसे जूते जनपदीय बोली में **पनहीं**[1] (सं० प्रनद्धिका > पनहिआ > पनहीं), **पनहाँ** या **पन्हाँ** कहते हैं।

[1] "पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।"
तुलसीदास : कवितावली, (टीकाकार, ला० भगवानदीन) रामनारायणलाल इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, बालकाण्ड, छंद ६।

पैरों की रक्षा करनेवाली वस्तुओं के लिए ऋग्वेद (१।१३३।२) में 'वटूरिणापाद' और अथर्ववेद (५।२१।१०) में 'पत्संगिनी' शब्द आये हैं। डा० सरकार का मत है कि 'पत्संगिनी' शब्द का अर्थ है—"पैरों में बाँधी जानेवाली पट्टी", जिसका व्यवहार पैदल सिपाही किया करते थे।[1]

'पनहाँ' के लिए वैदिक साहित्य में 'उपानह्' शब्द भी मिलता है। 'उपानह्' शब्द का सर्व-प्रथम उल्लेख यजुर्वेद (तै० सं० ५।४।४।४), अथर्ववेद (२०।१३३।४) और शतपथ ब्राह्मण (५।४।३।१६) में आया है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि यज्ञ के समय पहने जानेवाले जूते सूअर के चमड़े के बनते थे। पाणिनि ने भी 'उपानह्' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

पनहाँ जब पुरानी हो जाती है और फट जाती है, तब **लीतरा** या **खल्लरा** कहाती है। दो नये जूतों को **जोड़ा** या **जोड़ी** कहते हैं।

§५७६—जनानी पन्हाएँ प्रायः तीन तरह की होती हैं—(१) **जनानी** (२) **जनानी चढ़ैमा** (३) **सिलीपट**।

अँगरेजी ढंग पर बनी हुई जूतियाँ **सिलीपट** (अँग० स्लिपर) कहाती हैं। सिलीपट बहुत कमे हुए चमड़े के बनाये जाते हैं। पकी हुई देसी खाल की बनी हुई जूतियाँ, जिनकी एड़ी का चमड़ा तली पर ही मोड़ दिया जाता है और आगे पंजे का हिस्सा कुछ ऊपर को मुड़ा हुआ बनाया जाता है, **जनानी** कही जाती हैं। जब जनानियों की एड़ियाँ ऊपर को उठी हुई बनाई जाती हैं, तब वे ही **जनानी चढ़ैमा** कहाती हैं। प्रायः जाटनियाँ (जाटों की स्त्रियाँ) **जनानी चढ़ैमा** जूतियाँ ही पहनती हैं।

मर्दानी पनहाँ और जनानी चढ़ैमा में केवल आकार का अन्तर होता है। जनानी चढ़ैमा मर्दानी पनहाँ से छोटी होती है।

§५८०—मर्दाने जूते कई तरह के बनते हैं। सादा मर्दाना **देसी जूता**, जिसकी नोंक तलिया के साथ ही **छेक ली जाती है, सल्लमसाई** (फा० सलीमशाही) कहाता है। जिस जूते की नोंक या चोंच आगे की ओर बढ़ाकर फिर पीछे की ओर मोड़ दी जाती है और जिसकी किनारी कम ऊँची होती है, वह **पंजाबी घाट** कहाता है। बिना नोंक का जूता **नकटिया घाट** कहाता है। जिस जूते की नोंक ऊपर को तो उठी रहती है, लेकिन मोड़ी नहीं जाती, वह **मारवाड़ी** कहलाता है। जिस जूते के **पन्ने** (पंजे के ऊपर वाला चमड़ा) में नोंक या चोंच बिलकुल निकाली ही नहीं जाती बल्कि आगे से सपाट ही रक्खा जाता है, वह **'मुंडा'** या **गुरगावी** कहाता है। मुंडा देसी पनहाँ और अँगरेजी घाट के फुलस्लीपर के बीच का-सा होता है। मोनियर विलियम्स ने एक प्रकार के जूते के अर्थ में अपने संस्कृत-अँगरेजी कोश में 'मण्डपूल'[3] शब्द लिखा है। सल्लमसाई से मिलती-जुलती जूती जिसकी अड्डी सादा चमड़े की बनती है, **परेटी** कहाती है। परेटी के अगले सिरे पर लगी हुई चोंच को हटाकर उसका पूरा सिरा ही जब जनानी जूती को

---

[1] डा० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० २०

[2] 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः'
पा० अ० ५।४।१०७, गणपाठ, अ० ५।

[3] मण्डपूल = ए टाप-बूट, मोनियर विलियेम्स, संस्कृत इँगलिस डिक्शनरी, सन् १८६६, पृ० ७७५।

भाँति ऊपर को मोड़ दिया जाता है, तब उस घाट (डिजाइन) का जूता **गोलपंजा** कहाता है। खुर्जे के आस-पास के गाँवों में एक विशेष प्रकार की जूतियाँ बनती हैं, जिन्हें **बुलंदशहरी** (=बुलंदशहर की) कहते हैं। पंजाबी घाट की जूतियों में एक प्रकार की जूतियाँ **लुधियानी** कहलाती हैं। ये लम्बी चोंच और हलके वजन की होतीहैं।

§४८१—**जूते के अंग-प्रत्यंग**—जूते का नीचे का तला **तरिया** कहाता है। जूते के ऊपर का भाग, जो पाँव के पंजे को ढका हुआ रखता है, **पन्ना** (सं० पर्णक > पा० पण्णअ > पन्ना) कहाता है। पन्ने के दोनों ओर के मध्य भागों को **गिल्ली** कहते हैं। यह पन्ने की किनारी और जूते की तली के बीच में होती है। पंजाबी घाट के जूते की गिल्ली बहुत छोटी बनाई जाती है। अँग० के 'अपर' शब्द के लिए ही जनपदीय बोली का शब्द 'पन्ना' है। जूता पाँव में कुछ ढीला हो तो मोची उसमें तली के ऊपर एक हल्का-सा चमड़ा डाल देता है, जिसे **सुकतरा** या **पैंतापा** कहते हैं। **तरिया** (तली) और सुकतरे के बीच में जो चमड़ा लगाया जाता है, वह **बँदेला** कहाता है बँदेला तरिया से छोटा और हलका होता है। तरिया और बँदेले के बीच में जहाँ-तहाँ भराव के लिए पड़ी हुई चमड़े की कत्तलें **फाँस, चिंड़ाव** (हाथ० में) या **चेंड़** (इग० में) कहाती हैं। पाँव का नीचे का भाग **तरबा** (तलवा) कहाता है। तलवे का दुखना **'तखाना'** कहाता है। फांसों से भरी हुई तली का जूता पहनने से किसान के पांव तरबाते नहीं हैं। पन्ने के नीचे की ओर जो हलका **चाम** (सं० चर्म > चम्म > चाम) लगा रहता है, उसे **अस्तर** कहते हैं। जिस जूते के पन्ने में अस्तर लगा रहता है, उसे **दुपोस्ता पनहाँ** कहते हैं। दुपोस्ता पनहाँ की तली भी दुहरी होती है। जिस जूते में एक तली होती है और पन्ने में अस्तर नहीं होता, उसे **इकपोस्ता** जूता कहते हैं।

जूते की तली में पीछे की ओर एड़ी के नीचे चमड़े की जो तहें लगती हैं, वे **खुरी** या **एड़ी** कहाती हैं। आदमी की एड़ी से चिपटा हुआ जूते के पन्ने का पिछला भाग **अड्डी** कहाता है। यदि अड्डी ढीली और कमजोर होती है, तो जूता एड़ी पर से बार-बार उतर जाता है। अड्डी को सख्त और खड़ी दशा में रखने के लिए उस पर घोड़े की खाल लगती है। घोड़े की उस खाल को **कीमुखत** कहते हैं। एक प्रकार का पतला और सफेद चमड़ा जो बकरी या भेड़ की खाल से तैयार किया जाता है, **सफेदा** या **टिपका** कहाता है। अड्डी पर पीछे की ओर दाँए-बायें दो-दो अंगुल चौड़ाई में **टिपका** लगाया जाता है। यह भूरे रंग का कमा हुआ चमड़ा होता है। ऐसे चमड़े के लिए अथर्ववेद (१०।१३६।२) में 'पिशङ्गमला' शब्द आया है। सफेदे को मोची **गोट** (पन्ने की किनारी) और **मगजी** (अड्डी के पीछे ऊपर से नीचे तक बनी हुई एक गड्ढेदार रेखा) में भी लगाते हैं। जूते की अड्डी और आदमी की एड़ी के बीच में चमड़े की एक पत्ती लगी रहती है, जो **लँगोटा** (सं० लिंगपट्ट) कहाती है। लँगोटे के पीछे अड्डी के सिरे पर चमड़े की एक चोंच-सी लगी रहती है, जो **चोंटिया** कहाती है। चोंटिये को लँगोटे से सीं देते हैं।

तली पर पन्ना जमाकर बाईं ओर जो पहली बार सिलाई की जाती है, उसे **अगरती पवाई** कहते हैं। 'पवाई' को त० हाथरस में **गल्ली** भी कहते हैं। तली की दाहिनी ओर की हुई सिलाई **बगरती पवाई** कहाती है। **पवाई** (जूते की तली की सिलाई) करते समय तली को पानी में भीगे हुए कपड़े के टुकड़े से **तर** (गीला) कर लेते हैं। उस कपड़े को **पोचारा** या

हजारा कहते हैं। मोची का पोचारा हर समय पानी भरे **नँदोरे** (सं० नन्दा+पोतलक=नाँद का बच्चा अर्थात् बहुत छोटी नाँद) में पड़ा रहता है। तली के मध्य में पंजे के बीच से पीछे की ओर को की हुई सिलाई **खल्ला** कहाती है। पन्ने के पिछले भाग में अर्थात् अड्डी की बाहरी ओर एक चमकीली चीज लगाई जाती है, जिसे **लड़ी** या **तार** कहते हैं। चमकदार पीला, हरा और लाल-सा पत्ता **पन्नी** कहाता है। अड्डी के पास नीचे की ओर **खुरी** (तली की एड़ी) में इधर-उधर बाहर निकला हुआ चमड़ा **मुरदारिया किनाठी** कहाता है।

§५८२—**जूते बनाने के औजार**—जूता सीते समय छेद करने में काम आनेवाला एक प्रकार का लोहे का औजार **सुतारी** कहाता है। सुतारी से पतला एक औजार जिसके सिरे पर डोरा फाँसने के लिए एक गड्ढा-सा बना रहता है, **कटन्नी** (सं० कर्तनी) कहाता है। सुतारी से कुछ बड़े और चौड़े एक औजार को **मँझोला** कहते हैं।

लोहे का एक भारी तिसंखा अड्डा, जिस पर पुराने जूते को रखकर मोची दुरुस्त करते हैं, **बौड़म** कहाता है। नोंकदार लोहे का एक अड्डा, जिस पर नाल आदि का गोलाई ठीक की जाती है, **इकवाई** कहाता है। पत्थर के आयताकार या वर्गाकार एक चौरस टुकड़े को **पथरिया** कहते हैं। नये पके हुए चमड़े को एक विशेष औजार से खुरचकर साफ करते हैं। इस प्रकार साफ करने के लिए **'जीलना'** क्रिया प्रचलित है। जिस औजार से चमड़ा जीला जाता है, उसे **बेलचा** या **खैंचनी** कहते हैं। खैंचनी सुतारी से बड़ी होती है। सुतारी से कुछ बड़ा औजार जो छेद करने में काम आता है, **आर** कहाता है।

मोची के काम में आनेवाली लोहे की एक मूसली, जिसमें वह बौड़म या इकवाई पर जूते में चोभे आदि ठोकता है, **साँति** कहाती है। एक आयताकार लकड़ी का छोटा-सा तख्ता, जिस पर रखकर चमड़े को काटते और छीलते हैं, **फरई** (सं० फलहिका>फलहिआ[1]>फरहिआ>फरही>फरई) कहाता है। तख्ते के अर्थ में हेमचन्द्र (दे० ना० मा० ६।८२) ने 'फरअ' शब्द को देशज माना है। संस्कृत में 'फलक' और 'फलहक' शब्द तख्ते के अर्थ में आये हैं। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में लिखा है कि 'फलहक' शब्द 'कथासरित्सागर' और 'राजतरंगिणी' में प्रयुक्त हुआ है।

जूते का, पन्ना (ऊपरी भाग) बनाने के लिए चमड़े का एक **नापना** (नाप) **छाँदका** कहाता है। जब **पवाई** (तरिया और पन्ने की सिलाई) करते हैं, तब मोची लोग तरिया के पीछे के भाग में एक लोहे की कोल-सी गाड़ देते हैं, उसे **कीला** कहते हैं। बनी हुई जूती का चमड़ा सिकुड़ने न पाये, इसलिए उनके पन्ने में **कालबूत** (लकड़ी का फरमा=अँग० फ्रेम) लगा दिया जाता है। **कालबूत**[2] (फ़ा० कालबुद) लगाकर जूती की तरिया की किनारी चौरस और इकसार की जाती है। अन्दर पन्ने का चमड़ा **खेलनी** (लकड़ी की एक कलम-सी) को रगड़कर चिकनाया जाता है। इन क्रियाओं के लिए **'सपारना'** क्रिया का प्रयोग होता है। 'सपार' धातु बड़े महत्त्व की है। इसके लिए अँगरेजी-पर्याय 'टू फिनिश' है। **'सपार'** शब्द अँगरेजी के 'फिनिशिंग' का ही हमजोली है।

---

[1] पाइअसद्दमहण्णवो कोश, पृ० ७६६

[2] "**कालबूत** दूती बिना, जुरै न और उपाइ।"
बिहारी-रत्नाकर, दो० ३६६
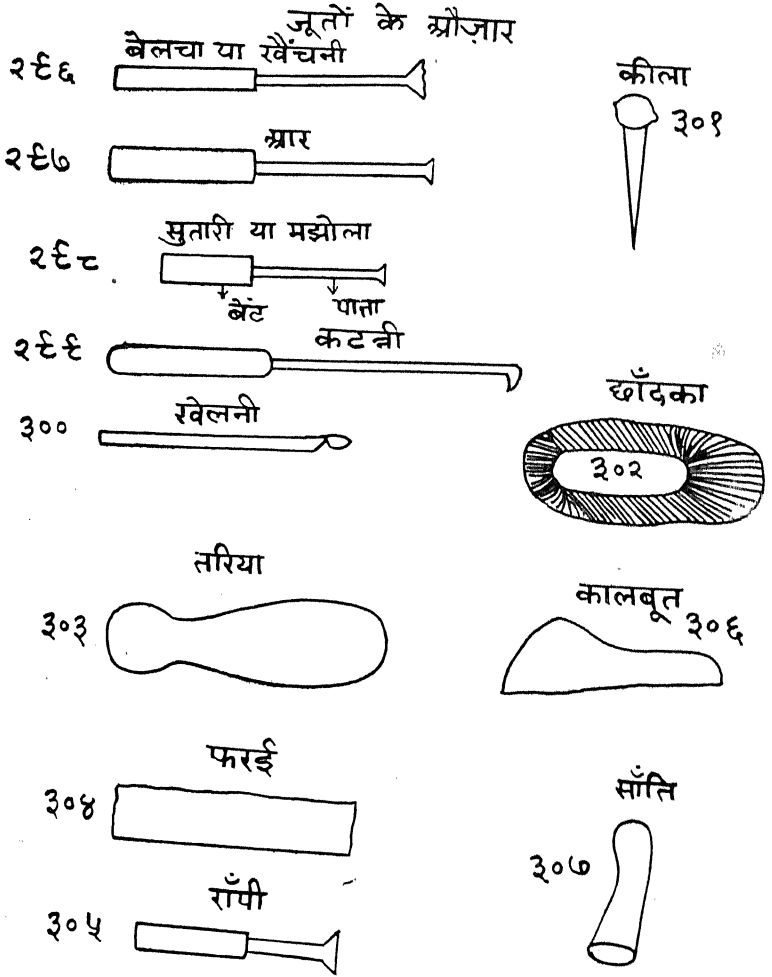
[रेखा-चित्र २९६ से ३०७ तक]

[चित्र २०]

(४) पुर बनाना

§५८३—**पुर** (सं० पुट—मो० वि०) प्रायः बैल के चमड़े का ही बनाया जाता है। बैल और गाँय के चमड़े को **'गोका'** कहते हैं। पुर बनाने के लिए गोकों को गोलाई में काटा जाता है।

भैंसा या भैंस का पूरा चमड़ा **'सगड़ैंड़ी'** कहाता है। जब गोकों में से पुर बनाना होता है तब राँगौछिश्रा (चमड़ा पकानेवाला और रँगनेवाला चमार) चमड़े को वृत्ताकार काटने के लिए एक ऐसा + धनात्मक निशान लगा लेता है, उसे **साँतिया** (सं० स्वस्तिक) कहते हैं। साँतिये के कटान-बिन्दु पर **डाँका** (बाँस की डंडी का नपाना) रखकर चमड़े की **घिराई** (परिधि) देखता है। त० हाथरस में डाँके को **'डंगा'** या **गज** कहते हैं। डाँके से चमड़े को नापना **'ब्योंतना'** कहाता है। 'ब्योंत (सं० व्याममात्रा) शब्द का प्रयोग 'नाप' के अर्थ में होता है। पं० सातवलेकर संपादित महाभारत (विराट पर्व, कीचक बध, अध्याय २३, श्लोक २२) में 'व्याम' शब्द ऊँचाई की नाप-विशेष के ही अर्थ में आया है।

ब्योंताई या घिराई के हिसाब से पुर दो तरह के होते हैं—(१) सतबिलंदिया (२) चौहते। जिस पुर का **नपना** (व्यास) सात **बिलायँद** (बालिश्त) का होता है, वह **सतबिलंदिया** पुर कहाता है। जिसका **नपना** (व्यास) चार हाथ का होता है, उसे **चौहता** (सं० चतुःहस्तक > चउहत्थश्र > चौहत्था > चौहता) कहते हैं।

गोके (गाय या बैल का चमड़ा) की ब्योंताई और कटाई के बाद सिर की तरफ का बचा हुआ चमड़ा **गलैमा** कहाता है। गलैमा-पुर की **पेटी** (अगल-बगल और पेट पर का चमड़ा) में जोड़ लगाने में काम आता है। गलैमों को चीरकर **साँटन** (लम्बी पची) बना लेते हैं। चमड़े की पतली और लम्बी पटारें जो पुरं गाँठने (सीने) में काम आती हैं, **गाँठन** (त० कोल में), **साँटन** (त० हाथरस में), या **कस** (सं० कस, कश, कशा) कहाती हैं।

§५८४—पुर की ब्योंताई और कटाई करते समय कभी-कभी उसमें सलवटें पड़ जाती हैं। **पुर बनइया** (पुरबनानेवाला) उन्हें **साँति** (लोहे की मूसली-सी) से वहीं ज्यों को त्यों पीट देता है। पिटी हुई सलवटें **गुंज** (त० कोल में), या **झोल** (त० हाथरस में) कहाती हैं। सलवट पीटने की क्रिया को **'गुंज मारना'** कहते हैं। गुंज को ठीक रखने के लिए कभी-कभी **चेंउआँ** या **कील** (चमड़े की छोटी और पतली कतरन) भी लगा देते हैं। कील ऊपर चौड़ी होती है और आगे सिरे से नोंक की ओर पतली होती चली जाती है।

पुर की सिलाई में जो गाँठन (कस) के निशान चमकते हैं, वे **टीप** कहाते हैं। टीप के टाँके ऊपर छोटे और नीचे बड़े होते हैं। टाँके लगाने के लिए गाँठन **टाँकों** (बैल की चारों टाँगों का चमड़ा) में से बनाये जाते हैं। गाँठन से टाँके लगाना **'टीप भरना'** कहलाता है। पुर में गाँठन की सिलाई को **'सीमन'** कहते हैं। पहली बार की सिलाई **'इकसरी सीमन'** कही जाती है। लगभग एक **आँगुर** (अंगुल) के फासले पर जब दूसरी सिलाई भी कर दी जाती है, तब उसे **दुहरी सीमन** कहते हैं।

§५८५—जब कोई पुर पुराना हो जाता है और फट जाता है, तब किसान उसे सिंचाई के काम में नहीं लाता। उसे **उतरा हुआ पुर** कहते हैं। उतरे हुए पुर का चमड़ा **पुढ़ैंड़ा** कहाता है। नये पुर में किनारे पर जो चमड़े की पत्तियाँ लगती हैं, उन्हें **कातरियाँ**, **कतरियाँ** (त० कोल में) या **खुरी** (त० हाथरस में) कहते हैं। कतरियाँ पुढ़ैंड़े में से काटकर ही लगायी जाती हैं। एक **कोठे** (चमड़े की चौड़ी एक कत्तर) के नीचे दो कतरियाँ लगायी जाती हैं। इस तरह पूरे पुर में २४ कोठे लगते हैं। **रँगइया** (पुर को रँगनेवाला तथा बनानेवाला) जब किसान को पुर बेचता है, तब उसे **पुर चढ़ाना** कहते हैं। पुर खरीदकर किसान उसमें तेल लगाता है। इस क्रिया को **'तिलि-याई'** कहते हैं। पुर के कोठों में जो छेद किये जाते हैं उन्हें **स्याल** या **भिल्ल** कहते हैं। 'भिल्ल'

शब्द सं० बिल से व्युत्पन्न है। आदि कवि वाल्मीकि ने किष्किन्धाकाण्ड में 'बिल' शब्द का प्रयोग छेद या सूराख के अर्थ में ही किया है।

"निश्वास भृशं सर्पो **बिलस्थ** इव रोषितः।"

(बाल्मीकि रामायण, अनुवादक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, रामनारायण लाल इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६। श्लोक १८।)[1]

नया पुर जब किसी कारण फट जाता है, तब उसमें **पुढ़ेंड़े** (पुराने पुर का चमड़ा) की पत्ती लगाई जाती है। उस पत्ती को **टिपुकी** (त० कोल में) या **टिकरी** (त० हाथरस में) कहते हैं। बना हुआ तैयार पुर जिस मौटे डण्डे पर टाँगा जाता है, उसे **पुट्टकना** (पुर टँगना) कहते हैं। बटा हुआ सन (सं० शण), जिससे **कौंड़र** (सं० कुण्डल=लोहे की गोल सरइया) पर मँढ़ाई होती है, **पैउआँ** कहाता है। पैंउआँ आगे को क्रमशः मोटे से पतला होता जाता है।

अध्याय १२

तेल पेलना

§५८६—हिन्दुओं और मुसलमानों में एक जाति, जो कोल्हू में तिल सरसों आदि पेलकर अपनी रोजी कमाती है, **तेली** (सं० तैलिक>प्रा० तेल्लिअ>तेली) कहाती है। तेली का वह बैल, जो कोल्हू में चलता है, **तेलिया बर्ध** या बद्ध कहाता है। तेलिया बर्ध कोल्हू में चलते-चलते एक वृताकार रास्ता-सा बना लेता है, जो **पाढ़** कहाता है।

तेलिया बर्ध की आँखों पर चमड़े की ऐनकनुमा चौड़ी पट्टी बाँध दी जाती है। उसे **अँधौटा** (सं० अन्धपट्ट>अंधवट्ट>अंधउट्ट+क>अँधौटा) कहते हैं। कोल्हू में **सरसों** (सं० सर्षप> अप० सरिसव>सरिसउ>सरसों), **तिल, अंडी** और **लहा** आदि को पेलकर तेल निकाला जाता है। एक बार में जितनी सरसों (अन्य बीज भी) कोल्हू में पिलने के लिए डाली जाती है, उतने परिमाण को एक **घानी** (सं० ग्रहणिका>घरिणआ>घन्निआ>घानी) कहते हैं। साधारणतया एक घानी का वज़न दस सेर होता है।

घानी पिल जाने पर जब तेल निकल आता है, तब उस बचे हुए फोकट को **खर, खल** या **खली** (सं० खलि) कहते हैं। हेमचन्द्र ने **'खली'** (दे० ना० मा० २।६६) शब्द को देशज माना है।

खरि (खली) को गोल-गोल आकार में बना लिया जाता है, जो **घेरा** कहाता है। त० इगलास में इसे **ढीया** भी कहते हैं। घेरा फोड़ने के लिए लोहे का एक औजार काम में आता है, उसे **साबर** कहते हैं। **'साबर'** शब्द सं० शर्वला से व्युत्पन्न है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का

---

[1] राम बिल में स्थित क्रोधित सर्प की भाँति साँसें छोड़ने लगे।

कथन है कि विक्रमांकदेवचरित १५।६४ की टीका में 'तोमर' का पर्याय 'शर्वला' दिया गया है।[1] 'सर्वला' शब्द को अमरकोशकार ने भी तोमर का पर्यायवाची लिखा है।[2]

[रेखा-चित्र ३०८ से ३०९ तक]

[चित्र २१]

§५८७—**कोल्हू के अंग-प्रत्यंग**—ओखली की भाँति की काठ की बनी हुई वस्तु **कोल्हू** कहाती है। 'कोल्हुअ' शब्द हेमचन्द्र ने देशज (देशी नाममाला, २।६५) माना है। कोल्हू का गड्ढा जिसमें घानी भरी जाती है, **ओखरी** (ओखली), **पाचर** या **हँड़िया** कहाता है। कोल्हू की ओखली के किनारे **'खरबारि'** कहलाते हैं।

ओखली के बाहर चारों ओर ऊपरी भाग में लोहे की गोल पत्ती जड़ी रहती है, जो **नेर** कहाती है। ओखली के ऊपर का चारों ओर का भाग **पारा** कहाता है।

ओखली काठ के कई हिस्सों से बनी होती है। प्रत्येक हिस्सा **'पाचरि'** कहाता है।
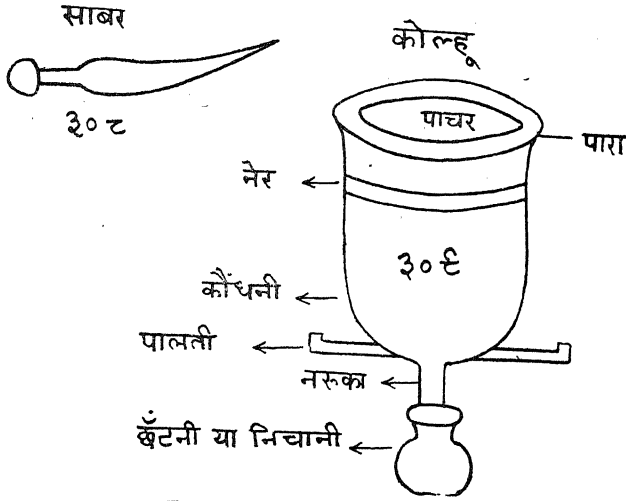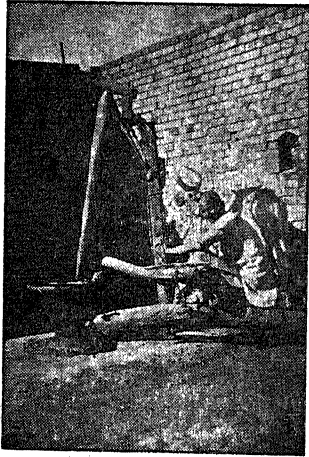
कोल्हू की ओखली जिस जगह पर जमी होती है, उसके आस-पास चारों ओर की धरती, जहाँ प्रायः तेली घूम-कर या खड़े होकर घानी ठीक करता रहता है, **मान्स पाढ़ि** (सं० मानुष + पाढ़ि) कहलाती है। कोल्हू एक चौरस और गोल लकड़ी पर जमाया जाता है। वह लकड़ी **मान्सपाढ़ि** के बीच में जमाई जाती है। उस लकड़ी को **पालती** (सं० पर्यस्तिका) कहते हैं। ओखली का बाहरी नींचे का भाग जो पालती से कुछ ऊपर होता है **कौंधनी** कहाता है।

पालती के पास एक गड्ढा होता है, जिसमें तेल का बर्तन रक्खा जाता है। गड्ढे को **कुंडी**

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति, ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३, पृ० १०८।

[2] "शल्यं शङ्कुर्ना सर्वला तोमरोऽस्त्रियाम्" (अमर० २।८।९३)। संस्कृत में सर्वला और 'शर्वला' दोनों ही प्रचलित है।

और तेल के बर्तन को **निचानी, निचनी** या **छटनी** कहते हैं। जिस बर्तन में तेल गर्म किया जाता है, वह **तावनी** कहाता है। गर्म तेल की लपट या धुआँ **झर** कहाता है।

कोल्हू की ओखली के नीचे के भाग में एक छेद होता है, जिसमें से पिला हुआ तेल बाहर निकलकर छटनी में इकट्ठा होता रहता है। इस छेद को **नरुका, नरुआ** या **नेरू** कहते हैं। नरुए के मुँह पर नीचे की ओर बनी हुई काठ की नाली-सी **पनारी** (सं० प्रणाली) कहाती है। नरुका को बन्द करने के लिए उसमें कपड़े का एक टुकड़ा ठूँस देते हैं, ताकि तेल निकलना बन्द हो जाय। इस कपड़े को **नता** या **काथा** कहते हैं। कपड़ा लगाना **'नता देना'** और कपड़ा निकालना **'नता लेना'** कहाता है।
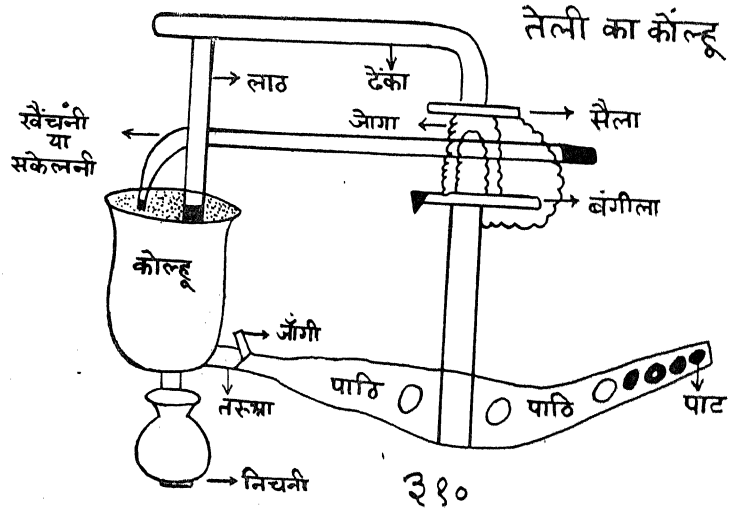
[रेखा-चित्र ३१०]

वह लकड़ी का तख्ता जिसको तेली का बैल खींचता है, **पाठि** कहाता है। पाठि में लगी हुई लकड़ी **तरुआ** और तरुए में लगी हुई छोटी लकड़ी **जाँगी** या **कनारि** कहाती है। पाठि के घूमने पर तरुआ और जाँगी ओखली की कौंधनी को रगड़ते हुए चलते हैं। यदि पाठि हलकी होती है, तो तेल नहीं निकलता। जब घानी में से तेल नहीं निकलता तब उसके लिए **'घानी अड़ना'** कहा जाता है। तेल निकलने पर **'घानी चलना'** कहा जाता है। घानी चलाने के लिए पाठि पर **पाट** (कंकड़-पत्थर) रखकर उसे बोझिल बनाया जाता है। बोझिल पाठि **पटौंदी पाठि** कहाती है।

वह रस्सा जो कोल्हू के बैल के दायें-बायें पड़ा रहता है, **कढ़ियायौ** या **काढ़** या **तनी** कहाता है। बैल की छाती के आगे तथा गले के नीचे बँधनेवाली रस्सी **तंगी** या **तनायौ** कहाती है। वह छोटा डंडा, जो **तनी** और **पाठि की रस्सी** के बीच में लगा रहता है, **गोखरू** कहाता है। एक लकड़ी, जिस पर कपड़ा लिपटा रहता है, बैल के कंधे पर रक्खी जाती है, उसे **कँधैली** कहते हैं। बिना लकड़ी की गद्दी को **बिड़ी** या **बीड़ी** कहते हैं।

पाठि में काठ का एक मोटा डंडा लगा रहता है, जिसे **मलखम** (सं० मल्ल + सं० स्कंभ) कहते हैं।

मलखम के ऊपर एक टेढ़ा डंडा होता है, जो ढेंका कहाता है। इसकी आकृति **ढेंक** (गृध्र = एक पक्षी) की-सी होती है। ओखली में भरी हुई घानी से तेल निकालने के लिए उसी ओखली और ढेंके के बीच में एक मोटी सोठ-सी होती है, जिसे **कोल्हू की लाठ** कहते हैं। लाठ का ऊपरी सिरा, जो ढेंके में ठुका रहता है, **चूर** या **चूरिया** कहाता है। लाठ के नीचे के सिरे को **नरी** कहते हैं।

दली हुई सरसों या लहा का कण **फार** कहाता है। घानी की फार को **सकेरने** अर्थात् खींचने के लिए ओखली की खरबारि के सहारे-सहारे ढेंके के साथ-साथ एक लकड़ी घूमती रहती है, उसे **खैंचनी** या **सकेलनी** कहते हैं।

ढेंके के साधने के लिए एक डण्डा होता है, जिसे **सैला** कहते हैं। मलखम के ऊपर का डण्डा **बंगीला** कहाता है। सैला और बंगीला को आपस में सम्बन्धित करनेवाली रस्सी **जोगा** कहाती है। जोगे से ही खैंचनी का भी सम्बन्ध रहता है।

§४८८—**घानी तथा अन्य वस्तुएँ**—यदि घानी को तेली जल्दी पेलना चाहता है तो उसकी **मिंगी** बनाता है। कुटी हुई या दली हुई घानी **मिंगिया घानी** कहाती है। जब घानी में से कुछ-कुछ तेल निकलने लगता है, तब वह **तिलारी घानी** कही जाती है। धुले हुए और फूलों में बसाये हुए तिल **तिली** कहाते हैं। तिली में से जब तेल निकल जाता है, तब बचा हुआ छूँछा **फोकट** या **फोक** कहाता है।

कटार की भाँति की लकड़ी जो घानी को ओखली में झाड़ने और कुरेदने के काम आती है, **कुरेदनी** या **करछुली** कहाती है। तेल उँड़ेलने में काम आनेवाली टिन की बनी हुई एक वस्तु **फूल** कहाती है जो आकार में फूल-सी ही होती है।

छटनी (तेल का एक बर्तन) में जो तेल इकट्ठा होता है, उसमें मैल-मिट्टी भी मिली रहती है। उस मैल-मिट्टी को **गाद** या **तलछट** कहते हैं। पुरानी चिपकदार गाद **चीकट** या **कीचट** कहाती है।

लम्बी गर्दन का मिट्टी का एक बर्तन, जिसमें तेली तेल भर लेता है, **टिरिया** कहाता है। टिरिया से कुछ बड़े बर्तन को **मौन** या **मौनि** कहते हैं। छोटे मुँह के बर्तन में से एक वस्तु से तेल खींचकर निकाला जाता है, वह **तेल-खैंचनी** या **तेलकस** कहाती है। लोहे का बना हुआ **नपना** (नापने की वस्तु) जिससे तेली तेल का परिमाण मालूम करते हैं, **परी** कहाता है। प्रसिद्ध है—

"नोंन डरी-डरी। तेल परी-परी॥"[1]

§४८९—तेली दो-तीन सेर या इससे अधिक तेल को **तराजू** (फा० तराज़ू) में बाटों से **जोखता** (तौलता) है। तराज़ू को **तखरी** या **नरजा** भी कहते हैं। बाटों में पाव छटंकी से लेकर पंसेरी तक होते हैं। दो छटाँक का एक बाट **अदपई** (सं० अर्धपादिका) कहाता है। चार छटाँक के बाट को **पौसेरा**; और आठ छटाँक के बाट को **अस्सेरा** या **अधसेरा** कहते हैं। तीन पौसेरों को मिलाकर **तिपउआ** बोलते हैं। एक सेर और पौसेरा मिलकर **सबइया** कहाता है। अधसेरा

---

[1] **नमक डली-डली करके और तेल परी-परी करके समाप्त हो जाता है। सारांश यह कि थोड़े-थोड़े खर्च से बड़ा भण्डार भी खाली हो जाता है।**

ओर सेर को मिलाकर **डिड़सेरी** कहते हैं। जिस बाट का वजन दो सेर और आधा सेर होता है, वह **ढइया** या **अढ़इया** कहाता है। पाँच सेर के बाट को **धरी; धड़ी** या **पंसेरी** कहते हैं। दस सेर का बाट **धँसेरा** और बीस सेर का **अधनौटा** कहाता है। चालीस सेर अर्थात् एक मन[1] के बाट को **मनौटा** कहते हैं।

तराजू की डण्डी को **डाँड़ी** कहते हैं। डाँड़ी के बीच का एक छेद **बिचौना** कहाता है। बिचौने में जो डोरी पड़ी रहती है, उसके ऊपर कपड़े का एक टुकड़ा बाँध दिया जाता है, ताकि तोलते समय आसानी से तराजू उठ सके। उस कपड़े सहित डोरी को **पौदा** कहते हैं। डाँड़ी के सिरों पर के छेद **नकुए** कहाते हैं। जिस सिरे पर नकुए बने होते हैं उसे **झुकानी** कहते हैं। झुकानियों के नकुओं में ही **जोतियाँ** (डोरियाँ) डाली जाती हैं। जोतियों में तराजू के दोनों पल्ले लटकाये जाते हैं। प्रत्येक पल्ले में तीन जोतियाँ बँधती हैं।
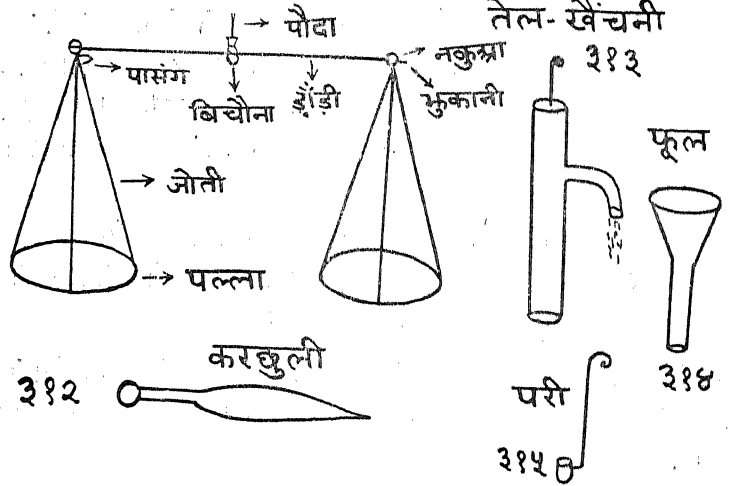
[रेखा-चित्र ३११ से ३१५ तक]

तराजू में तेल तोलते समय यदि कोई एक पल्ला भारी होने के कारण दूसरे पल्ले से अधिक झुका हुआ रहता है, तो उस दशा को **पासंग** कहते हैं। पासंग निकाल देने के लिए खिलाफ पल्लेवाली जोती के ऊपरी भाग में कोई **इंटोरा** (ईंट का टुकड़ा) अथवा लोहे का छल्ला बाँध देते हैं। उसे भी **पासङ्ग** ही कहते हैं। **जोख** (तोल) के समय यदि तेल वाला पल्ला बाट-वाले पल्ले की अपेक्षा नीचे झुकता हुआ रहे तो उसे **नबती-धुकती** जोख कहते हैं। यदि तेल-वाला पल्ला ऊपर उठा हुआ रहे तो उसे **खिंचती जोख, उठती जोख** या **कमती जोख** कहते हैं।

कोई-कोई चालाक बनियाँ या तेली अँगूठे के सहारे से तराजू की डाँड़ी का वह सिरा झुका देता है जिस ओर उसकी बिकरी का सामान होता है। इस प्रकार झुकाने को **डाँड़ी मारना** कहते हैं। डाँड़ी मारने के सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है—

[1] "स चा मना हिरण्यया" (ऋक०) अर्थात् सोने के मन से। इसी मन से हमारा ४० सेर का मन हुआ। यह तोल भारत में असीरिया से आई। (डा० हेमचन्द्र जोशी, हिन्दी परम्परा और विदेशी शब्द-सम्पत्ति, सरस्वती, मार्च ४८ ई०)।

"कछू हाथ कौ झोलना, कछु डाँड़ी को फेर।
औरन को जो तीन पा, सो बनिये को सेर॥"[1]

अध्याय १३

मालीगीरी, घासें तथा पेड़ पौधे

§५६०—हिन्दुओं में एक जाति, जिसका काम फूलों की मालाएँ बनाना और बाग-बगीचों में पेड़-पौधे लगाना है, **माली** कहाती है। माली दो तरह के पाये जाते हैं—(१) **फूलमाली**—ये प्रायः फूलों की मालाएँ बनाकर बेचते हैं और उससे अपनी रोजी कमाते हैं। (२) **काछी माली**—ये प्रायः बगीचों में **फुलवार** (फूलोंवाले पौधे) उगाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। जिन पौधों पर केवल महीने-**डेढ़** महीने फूल आते हैं वे पौधे **कच्ची फुलवार** कहाते हैं। कच्ची फुलवार कुछ दिन बहार दिखाकर स्वयं समाप्त हो जाती है। यदि बाग में पेड़ बहुत पास-पास हों और उनकी **गुदलइयाँ** (शाखाएँ) आपस में फँस रही हों तो उसे **फँसार** कहते हैं। बगीचे में काफी फासले पर पौधे उगाना **बेगरी पौद लगाना** कहाता है। यदि किसी बाग में आम, जामुन, नीम आदि के पेड़ **झालरे** या **झाबरे** (बहुत शाखाओंवाले और घनी पत्तियोंवाले) हों और उनके **गुद्द** (शाखाएँ) झुककर जमीन को छूते हों तो वह बाग **लोटना** कहाता है। यदि कोई पेड़ ऊँचा हो और उसमें चार-छह शाखाएँ हों, लेकिन उन शाखाओं का रुख ऊपर की ही ओर हो, तो उस पेड़ को **सतला** या **सरउआ** कहते हैं। जिस पेड़ की डालियाँ **तिरक बिर्री** (चारों तरफ उलटी-सीधी फैली हुई) हों लेकिन वे घनी पत्तियों से लदी हुई हों तो वह पेड़ **झब्दा संखिया** कहाता है। जिस पेड़ की शाखाएँ ऐसे ढंग से फैली हुई हों कि वे छतरी की भाँति दिखाई दें और उन पर पत्ते भी घने हों तो वह पेड़ **गुमटिया** (गुमटीदार) कहाता है। गुमटिये पेड़ देखने में अच्छे लगते हैं। कोई छोटा पौधा फावड़े या खुरपी से खोदकर जब जड़ और मिट्टी सहित **बेलचा** (एक औजार) से उठाया जाता है, तब उसे **थापी** कहते हैं। थापी को मनचाही जगह पर जमा दिया जाता है। नई उगी हुई लाल पत्ती **किल्ली** या **गिद्दी** कहाती है। पत्तीदार टहनी को **लहरौ** कहते हैं। पेड़ की चोटी **टुलकी** कहाती है। कभी-कभी काछी माली आम के पेड़ पर आम तोड़ने के लिए चढ़ जाते हैं। फल गिराने के लिए हाथ-पैर से डाली को हिलाना **लकलकी लगाना** कहाता है।

§५६१—बाग को कभी-कभी चार भागों में बाँट लिया जाता है। बीच में **रौसें** (फा० रविश) बना दी जाती हैं। रौसों द्वारा बँटे हुए हिस्से **तख्ते** कहाते हैं। बाग के चारों ओर उठी हुई ऊँची मेंड़ें **ढोरा** या **डोरा** कहाती हैं।

बाग के पेड़ों में पानी लगाने के लिए **बरहा** (ऊँची उठी हुई दो मेंड़ों के बीच में पानी बहने

---

[1] कुछ हाथ से झोला देकर और कुछ डाँड़ी के पासङ्ग के कारण तीन पाव वस्तु को बनियाँ सेर भर करके तोल देता है। इस प्रकार पाव भर वस्तु डाँड़ी मारकर बचा ली जाती है।
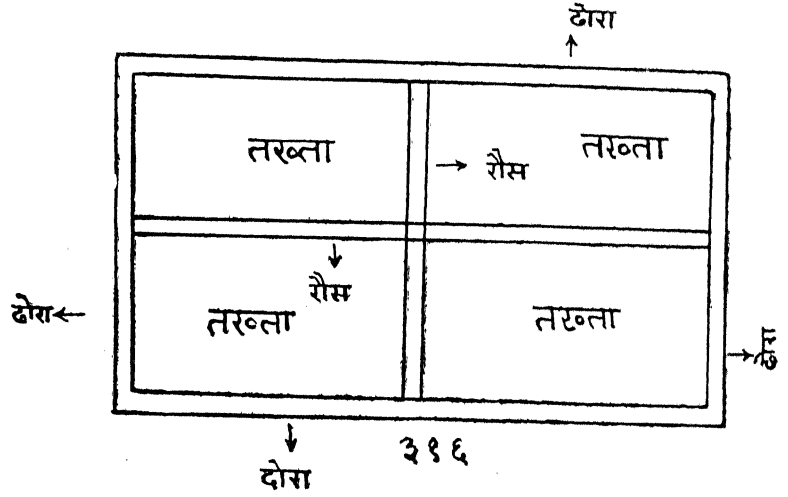
[रेखा-चित्र ३१६]

का रास्ता) बनाया जाता है। पेड़ के चारों ओर गोलाई में ऊँची मेंड़ बनाई जाती है, ताकि उसमें पानी भरा रहे। उस गोल घेरे को **गबचा** (खुर्जा में), **घिरोला** या **थामरा** कहते हैं। किसी-किसी बाग में दो-चार पेड़ ऐसें भी होते हैं जो देवता के रूप में पूजे जाते हैं, जैसे आँवला। ऐसे पेड़ के चारों ओर ऊँचा गोल चबूतरा बना दिया जाता है, जो **थान** कहाता है। नये उगे हुए छोटे-छोटे पौधों पर धूप और पाला असर न कर सके, इसलिए काछीमाली आमतौर से प्रत्येक पौधे के चारों ओर चार-चार डंडियाँ गाड़कर उन पर छप्परी-सी छा देते हैं, जो **छावटी, छवाटी,** या **गोफा** (खुर्जा में) कहाती है। छावटी के नीचे पौधे सुरक्षित रहते हैं। जिन नये उगे हुए छोटे-छोटे पौधों में लाल-लाल कल्लियाँ निकल रही हों, वे पौधे **कच्ची कलवार** कहाते हैं। गोफा या छावटी कच्ची कलवार के लिए बड़ी आवश्यक है।

§५९२—आम के छोटे-से पौधे के तने को बीच से तिरछा काटकर उसमें दूसरी किस्म के आम की डाली बाँध देते हैं। उस बँधान को **पैबन्द** कहते हैं। वह क्रिया **कलम लगाना** कहाती है। कलमी आम कलम लगाने से ही होता है। कलमी आम की डाली का सहयोग देशी आम के तने से करके **कलमी आम** उगाया जाता है। इसीलिए तो संस्कृत में 'सहकार[१]' शब्द आम के लिए आता है। कलमी आम (सहकार) में बड़ी **खसबोई** (खुशबू) होती है।

§५९३—किसी-किसी बाग में तख्तों के चारों ओर **धुरंटा** (एक प्रकार का पौधा) उगाया जाता है। उसे ऊपर से इकसार छाँटने के लिए जो लम्बी कैंची काम में आती है, उसे **काँती, कतरनी** अथवा **छाँटनी** कहते हैं। एक प्रकार की लम्बी दराँती **लिची** (सं० लवित्रिका[२] > लवित्तिआ > लइत्ती > लित्ती) कहाती है। काछीमाली पौधों के पास उगी हुई घासों को खुरपी से

---

[१] "रसालः असौ सहकारोऽतिसौरभः।" (अमर० २।४।३३)

[२] "अर्तिलूधूसूखन सहचर इत्रः"

—पाणिनिः अष्टा०, ३।२।१८४

"लवित्त = घास काटने का एक औजार—दे० ना० मा० १।८२; पा० स० म०, पृ० ८९६

खोदकर अलग करते हैं और धरती को **फोक** (नरम) बनाते हैं। उस समय मिट्टी और रेत में खुरपी का संचलन **भुड़कइयाँ** कहाता है। खुरपी के सम्बन्ध में पहेली है—

"भूड़ में भुड़कइयाँ मारै, पूँछ मेरे हाथ में।[1]"

§५६४—लगभग तीन हाथ ऊँचा पौधा **बोझा** (साहित्यिक नाम क्षुप) कहाता है। घास के जिस पौधे की जड़ एक हो, उसमें तना न हो और उसमें से अनेक पत्तियाँ भी एक साथ निकल पड़ें, तो उसे **फट्ट, झूँड़, झुंड** या **झूकटी** कहते हैं। काँटेदार छोटा पौधा, जिसकी टहनियाँ आपस में मिली हुई हों, **झंकाड़, झरकटी, झाड़** या **झाड़ी** कहाता है। जिस घास की पत्तियाँ धरती से निकलते ही चारों ओर फैल जाती हैं, वह **छतीली घास** कहाती है। बहुत बड़ा पेड़ जिस पर आदमी चढ़ सके और टूटे नहीं तथा लम्बाई भी लगभग ३०-४० हाथ हो तो उसे **दरखत** (दरख्त) कहते हैं। जिन पेड़-पौधों पर खाने योग्य फल आते हैं, वे **फलूचे** कहाते हैं, जैसे **सपड़ी** (अमरूद)। खट्टे फलवाले पौधों को **तुरसावर** कहते हैं; जैसे नीबू आदि। जो घासें रोगों में औषधि के रूप में काम आती हैं, वे **जड़ी-बूटी** या **रूखड़ी** कहाती हैं। जङ्गली पेड़ जो न फल-फूल के मतलब के होते हैं और न छाया ही ठीक तरह करते हैं, **रूखड़ा** या **रूख** (वै० रूक्ष > प्रा० रुक्ख > रूख) कहाते हैं।

§५६५—फूलमालियों की मालाएँ—सोने-चाँदी के आभूषणों की भाँति फूलों के भी गहने बनाये जाते हैं, जो **फुलगहने** कहाते हैं। सुई से जिस विधि से गहने तैयार किये जाते हैं वह **फुलगुथनी** कहाती है। अनेक तरह के फूलों की एक बहुत बड़ी माला फूलमाली बनाते हैं, जो पहननेवाले के घुटनों तक लटकती है। उसे वे **राममाला** या **बिसुनमाला** (सं० विष्णुमाला) कहते हैं। सम्भवतः यह 'वनमाला' का वर्तमान प्रतिरूप है।

फूलों की गुथाई कई तरह से होती है। फूल के डंठल को **डाँड़ी** कहते हैं। डाँड़ी पोली हो तो उसके मध्यवर्ती आर-पार सूराख को **नरुका** कहते हैं। फूल के दल **पंखी** या **पंखुरी** कहाते हैं। पंखुरियों के पीछे जो हरी पत्तियाँ-सी लगी रहती हैं, वे **अँखुरी** कहाती हैं। अँखुरियाँ जिस
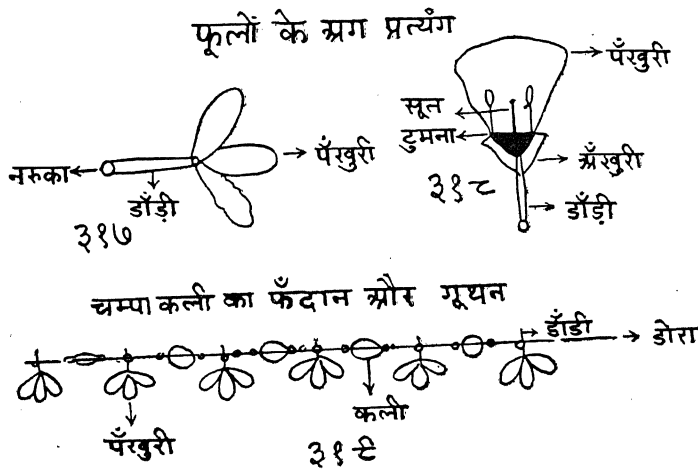
[रेखा-चित्र ३१७ से ३१९ तक]

[1] वह भूड़ (रेत) में तो सरपट भरती है, लेकिन उसकी पूँछ (खुरपी का बेंट या हत्था) मेरे हाथ में रहती है।

उभरे हुए भाग पर रहती हैं वह **ढूमा** या **ढुमना** कहाता है। ढुमने के ऊपर पँखुरियों के अन्दर के खड़े हुए तन्तु **सूत** कहाते हैं। अँखुरी के लिए अँग० में 'सैपल' और पँखुरी के लिए 'पैटल' कहते हैं। सुई-डोरे से फूलों को किसी क्रम से लगाना **गूथना** या **गुथनी करना** कहाता है। यदि बिना सुई के केवल डोरे से ही फन्दों में फाँसकर फूल लगाये जायँ तो वह क्रिया **फँदना** या **फँदान** कहाती है।

§५९६—फँदान और फुलगहने—(१) गले का एक फुलगहना **चम्पाकली** बनाया जाता है। इसके बनाने में सुई का प्रयोग भी किया जाता है। फूलों की डाँड़ियों में डोरे से फँदानें पड़ती हैं। डोरे को दोनों पाँवों के बीच में तानकर डोरे के गोल फन्दे में फूलों की डाँड़ियाँ फाँसते चलते हैं। परन्तु यदि एक डाँड़ी का रुख नीचे को होता है तो दूसरी का भी नीचे की ओर ही रहता है। इसी क्रम से सारी चम्पाकली में फूलों का फँदान किया जाता है। दो डाँड़ियों के बीच में एक **घूई** अर्थात् **कली** (मुँहबन्द फूल जो खिला न हो) गूथी जाती है।

(२) कोहनी से ऊपर बाँह में पहना जानेवाला एक फुलगहना **बाजू** बनता है। इसमें गुथाई नहीं होती केवल फँदानें ही पड़ती हैं। फूलों की डाँड़ियों की फँदानें चम्पाकली से भिन्न ढंग पर डाली जाती हैं अर्थात् एक डाँड़ी ऊपर और दूसरी नीचे को रहती है।

(३) एक विशेष फँदान जो फूल की पंखुरियों (पङ्खड़ियों) में डाली जाती है, **पङ्खी लर** कहाती है। इसमें बाजू के ढङ्ग पर एक पंखड़ी का रुख नीचे की ओर और दूसरी का ऊपर को होता है। पंखड़ियों में जो विशेष फंदा पड़ता है, वह हाथ से डाला जाता है और **दरफेंट फन्दा** कहाता है।

(४) कभी-कभी डोरे की जगह लचकदार पतला तार (लोहे का) काम में लिया जाता है। उससे **झाड़** बनाये जाते हैं, जो मंडप या छत में लटका दिये जाते हैं। लोहे के तारों के फन्दे **तारफन्द** कहाते हैं। झाड़ प्रायः गेंदों के फूलों से बनते हैं। फूल-पत्तियों से **बकुचन, फूलदान** या **गुलदस्ते** (फा० गुलदस्तह्) भी बनाये जाते हैं।

[रेखा-चित्र ३२० से ३२३ तक]
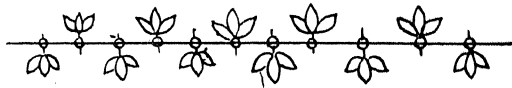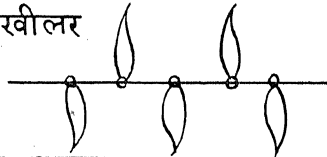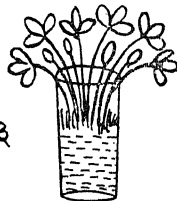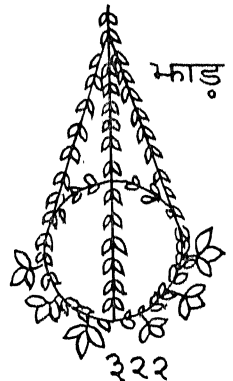
§५६७—**गुथनी और फुलगहने**—(१) फूलमाली बरात के स्वागत में काम आनेवाली हलकी मालाएँ बनाते हैं, जिन्हें **फूलमाला** या **लड़ी** कहते हैं। इनकी गुथाई में पंखड़ियों का रुख एक ओर ही रहता है और सुई डाँड़ी के नरुका में होकर पीछे से आगे को निकाली जाती है। **हार** में माला के विरुद्ध गुथाई होती है। **हार** में एक फूल की पंखड़ी से दूसरे फूल की पंखड़ी मिला देते हैं।

(२) जब दो फूलों की डाँड़ियाँ एक दूसरे से भिन्न रुख में गूथी जाती हैं, तो उसे **दुकलिया गुथाई** कहते हैं। इस गुथाई में सुई डाँड़ी में तिरछी छेदी जाती है। गले का **लड़ा** या **गजरा** नाम का फुलगहना इसी गुथाई द्वारा ही तैयार होता है। जब लड़ी और गजरे की गुथाई मिलाकर की जाती है, तब **कंठा** (गले का फुलगहना) बन जाता है। कंठे में **चौकलिया गुथाई** होती है। दुकलिया गुथाई में दो फूल और चौकलिया में चार फूल पास-पास गूँथे जाते हैं।
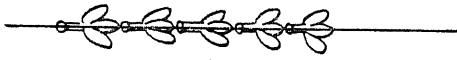
[रेखा-चित्र ३२४ से ३२७ तक]

(३) जब खिले फूलों की जगह बन्द फूलों को लड़ी के ढङ्ग पर गूथा जाता है, तब वह लड़ी **कलकतिया** कहाती है। **कलकतिया** लड़ी प्रायः बन्द बेले या बन्द गुलाब की बनाई जाती है।

(४) एक खास तरह की गुथाई **गुंजा** या **गूँजा** कहाती है। इसमें अधिकतर तो गुथाई लड़ी की भाँति होती है, लेकिन बीच-बीच में कहीं-कहीं गजरे की गुथाई भी कर दी जाती है।

(५) एक खास तरह का हार **लखनउआ** कहाता है। इसके बीच में जगह-जगह **गंडे** (बन्द फूलों की कलियाँ) और **झरडे** (खिले फूलों की चहुँमुखी गूथन) भी गूथे जाते हैं। नीचे ठीक बीच में **झब्बा** भी लटकाया जाता है। प्रायः बरात की चढ़त पर दुल्हे के गले में **लखनउआ** पहनाया जाता है। उसमें माला की भाँति फूल गूथे जाते हैं।

(६) एक प्रकार का हार जो जनेऊ या तलवार की पटार की भाँति शरीर में डाला जाता है **बद्धी** कहाता है। बद्धी के लिए ही प्राचीन संस्कृत में 'वैकक्ष्यक' शब्द प्रयुक्त होता था। माथे और मुँह के आगे लटकता हुआ एक फुलगहना **सेहरा** या **मुहेर** कहाता है। इसी प्रकार **कंगन, इकलरी, दुलरी, झुब्बी** और **कनौंझी** नाम के फुलगहने भी फूलमाली बनाते हैं। कंगन हाथ में, दुलरी गले में और झुब्बी तथा कनौंझी कानों में पहनी जाती हैं।

३२८ गुंजा या गूँजा

लखनौआ

झंडा झंडा

३२९

गंडा गंडा

झब्बा
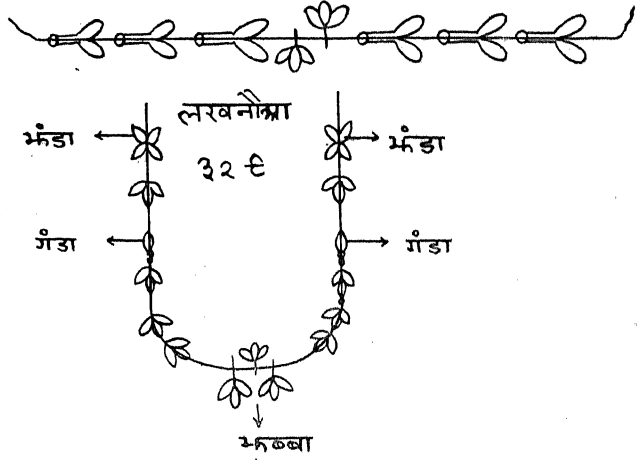
[रेखा-चित्र ३२८ से ३२९ तक]

§५९८ **फुलवार के विभिन्न पेड़-पौधों और बेलों के नाम**—जिन फूलों से फूलमाली मालाएँ और गहने बनाते हैं, उनके पेड़-पौधे फुलवार कहाते हैं। उन पेड़-पौधों के नाम यहाँ अकारादिक्रम से लिखे जाते हैं—

(१) **अंसिगार**—इसके पत्ते शहतूत की भाँति चौड़े होते हैं। इस पर फूल दो तरह के आते हैं—लाल और सफेद रङ्ग के।

(२) **अड़हुल** (सं० ओड्र + सं० फुल्ल)—यह लाल फूल का पौधा है, जो बरसात में फूलता है। इसी का साहित्यिक नाम '**जपा**[१]' है। इसे **बन्धूक, गुलदुपहरिया** या **गुड़हल** भी कहते हैं।

(३) **अर्जुन**—लगभग १० हाथ ऊँचा होता है। पत्ते पाँच अंगुल चौड़े होते हैं। फूल सुनहले और कत्थई रङ्ग का आता है।

(४) **कचनार**—लगभग १५-२० हाथ ऊँचा, पत्ता गोल, फूल लाल या गुलाबी फागुन-चैत में। इस पर फलियाँ आती हैं।

(५) **कटसरइया**—इसे **कँटीला पियाबाँसा** भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'कुरबक' है। फागुन-चैत में इस पर सफेद और लाल फूल आता है। मेघदूत में वर्णित अलका की बधुएँ इसी के फूलों से अपने जूड़े सजाती थीं।[२] कवि प्रसिद्धि के अनुसार कुरबक स्त्रियों के आलिंगन से पुष्पित होता है।[३]

(६) **कटेलिया**—इस पर दुरंगा फूल आता है, जिसमें बीच में पीलाई और आस-पास लाली होती है।

(७) **कनेर या कन्नेर**—इस पर अलग-अलग तीन तरह के फूल आते हैं। फूलों के

---

१ "सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः"

—कालिदास : पूर्व मेघ०, श्लोक ३६

२ "चूडापाशे नव कुरबकं चारुकर्णे शिरीषम्।"—कालिदास : उत्तर मेघ०, श्लोक २

३ "तिलककुरबकौ वाक्षणालिंगनाभ्याम्"—मल्लिनाथी टीका, उत्तर मेघ०, श्लोक १९

रंगों के विचार से इसके तीन नाम हैं—(१) **सफेद कनेर** (२) **पीली कनेर** (३) **लाल कनेर**। पौधा लगभग ६-७ हाथ ऊँचा, पत्ती लम्बी तथा नुकीली, फूल फागुन-चैत में। कवि प्रसिद्धि के अनुसार 'कर्णिकार' वृक्ष पद्मिनी जाति की नारियों के नृत्य से पुष्पित होता है।[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २३७) कर्णिकार को कनेर से पृथक् वृक्ष मानते हैं। उनके मत से संस्कृत का कर्णिकार हिन्दी में अमलतास है। हिन्दी में कन्नेर नाम का पौधा गुल्म जाति का है और संस्कृत में कर्णिकार वृक्ष जाति का है।

(८) **कमल**—इसके पत्ते को **पुरैन** और तने को **नाल** कहते हैं। कमल की जड़, जिसका साग भी बनता है, **भसींड़ा** कहाती है। बन्द फूल को **कली कमल** और अधखिले फूल को **आरंग कमल** कहते हैं। इस पौधे पर लाल, नीले, सफेद और पीले रंगों के अलग-अलग फूल आते हैं।

(९) **कुण्ड**—इसकी पानी में बेल चलती है। पत्ते मेथी की आकृति के होते हैं। फूल सफेद, बारहमासी।

(१०) **कुन्द**[2] **और कुन्दी**—यह पौधा लगभग ५ हाथ ऊँचा होता है। पत्ती लम्बी, फूल सफेद, अगहन-पूस में। प्रारम्भ में पंखड़ी का नीचे का भाग कुछ लाल होता है।

(११) **कुमोदनी या कमोदनी** (सं० कुमुदिनी)—लगभग हाथ भर का पौधा, फूल सफेद।

(१२) **केली या केरी** (सं० कदलिका > कयलिया > कइली > केली)—आकृति में पत्ते केले की भाँति लेकिन आकार में छोटे, पौधा लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा, फूल सफेद भी और पीले भी।

(१३) **कोचिया**—दो हाथ ऊँचा, पत्ती सूत या डोरे की भाँति।

(१४) **कौआ (कउआ)**—इस पौधे पर काले रङ्ग का फूल आता है।

(१५) **गुड़हर**[3], **गुढ़ैर या गुड़हल**—इस पौधे पर लाल फूल आता है। अधिक लाल फूल की **मिरचौनी गुढ़ैर** कहाती है। माली इसके फूल को मालाओं में नहीं लगाते। उनका कहना है कि **सेह** (एक जन्तु) का काँटा और **गुढ़ैर** का फूल जिस घर में होगा उसमें लड़ाई हो जायगी।

(१६) **गुलअसरफी**—पौधा डेढ़ बालिश्त ऊँचा; पत्ते पालक के-से; फूल पीले रङ्ग का गोल पंखड़ीदार, लेकिन उसके बीच में लाल घुंडी-सी होती है। फूल माह के महीने में आता है।

(१७) **गुलखैरा**—लगभग तीन हाथ ऊँचा; पत्ती गोल, फूल गुलाबी, माह-फागुन में।

(१८) **गुलतुर्रा**—पौधा आठ हाथ ऊँचा, पत्ती लंबी, फूल झब्बादार हलका लाल, माह-पूस में।

(१९) **गुलदाऊ**—पौधा दो-तीन बालिश्त ऊँचा, पत्ती डोरे की तरह पतली, फूल लाल, पीले और सफेद, माह-पूस में।

(२०) **गुलफन्नूस**—लगभग सात हाथ ऊँचा, पत्ती गोल और कुछ लंबी; बैसाख में दो तरह के फूल आते हैं—गुलाबी और सफेद।

---

[1] "पुरोनर्तनात् कर्णिकारः।"—मल्लिनाथी टीका, उत्तर मेघ०, श्लोक १५

[2] "हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं"
—कालिदास : उत्तर मेघ०, श्लोक २

[3] "भलैं पधारे पाहुने, ह्वै गुड़हर कौ फूलु।"
—जगन्नाथदास रत्नाकर (संपा०) : बिहारी-रत्नाकर, दो० ५६५

(२१) **गुलफिरङ्ग**—लगभग आठ हाथ ऊँचा, फूल गुलाबी रङ्ग का, माह-फागुन में।

(२२) **गुलबकावली**—सफेद फूल का एक पौधा।

(२३) **गुलमनियाँ**—पत्ती लंबी और नुकीली, फूल लाल।

(२४) **गुलमहँदी**—पत्ता लंबा कटावदार, फूल तीन रंगों के—पीले, लाल और गुलाबी।

(२५) **गुलमौर**—लगभग तीस-चालीस हाथ ऊँचा पेड़, पत्ते पतले सिरस की भाँति, लाल फूल झुग्गादार।

(२६) **गुललाला** (फा० गुलेलालह्)—लगभग दो हाथ ऊँचा पौधा, पत्ता गोलाईदार, फूल लाल रंग का।

(२७) **गुलसब्बो** (फा० गुलशब्बो)—रात में खिलनेवाले सुगंधित फूलों का एक पौधा।

(२८) **गुलाचीनी**—ऊँचाई पन्द्रह हाथ, झब्बादार फूल जो ऊपर पीला और नीचे सफेद होता है। फूल माह में आता है।

(२९) **गुलाब**—काँटेदार पौधा लगभग ५-६ हाथ ऊँचा, फूल लाल, सफेद, और हलका लाल। फूल पूस-माह में और चैत में भी आता है। **चैतिया गुलाब** पर चैत में फूल आता है। गुलाब के बन्द फूल को फूलमाली **बटनगुलाब** और बड़ी किस्म के गुलाब को **पहाड़ी** कहते हैं। पीले गुलाब को **मारसन्दी** कहते हैं। कुछ लोग लल फूल के गुलाब का संस्कृत नाम 'कुरबक' कहते हैं।

(३०) **गुलैबाँस** (फा० गुल + अ० अब्बास)—लगभग २ हाथ ऊँचा पौधा, फूल लाल, इस पर कालीमिर्च की भाँति बीज आता है। यह पौधा सावन-भादों में खूब **झाबरा** (पत्तों से परिपूर्ण) हो जाता है और तभी फूल आता है।

(३१) **गेंदा**—लगभग २ हाथ ऊँचा पौधा; फूल पीला पूस-माह में। यह तीन तरह का होता है—(१) **हजारा या ढप्पू**—बड़े फूल का गेंदा (२) **टिर्री**—छोटे फूल का गेंदा (३) **ठुड्डी**-यह **टिर्री** से छोटा जिसके फूल में पंखड़ियाँ बहुत कम होती हैं और फूल बन्द-सा होता है।

(३२) **घुंडी**—इस पौधे पर पीले रंग का फूल आता है, जिसकी आकृति घुंडी की तरह होती है।

(३३) **चंपा**—(सं० चम्पक)—लगभग ८ हाथ ऊँचा पौधा, पत्ता जामुन से मिलता-जुलता फूल चैत में पीले रंग का। कवि प्रसिद्धि के अनुसार चम्पा का पेड़ पद्मिनियों के हँसने से पुष्पित होता है।[1] यह भी कविप्रसिद्धि है कि इसके फूल पर भौंरा नहीं बैठता।[2] अमलतास पेड़ को संस्कृत में 'कनकचम्पा' कहते हैं।

(३४) **चमेली**—लगभग २ हाथ ऊँचा पौधा, फूल सफेद रंग का। इसको संस्कृत में 'जाती' या 'मालती' भी कहते हैं।[3] यह क्षुप जाति में है।

(३५) **चाँदनी**—५ हाथ ऊँचा पौधा, पत्ती अमरूद की भाँति कुछ लम्बी-सी, फूल सफेद रंग का पूस-माह में।

(३६) **जनेरा**—३ हाथ ऊँचा पौधा, फूल सफेद, गुलाबी, पीले और लाल; फूल क्वार-कातिक में आते हैं।

---

[1] "मृदु हसनात् चम्पको।" मल्लिनाथी टीका, उत्तर मेघ०, श्लोक १४।

[2] "चम्पा प्रीति न भौंरहि दिन-दिन आगरि बास।"
रामचंद्र शुक्ल (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, काशी ना० प्र० सभा, पद्मावत, २७।२२।

[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य की भूमिका, पृ० २९२।

(३७) **जाफरी**—इसका पौधा गेंदे से मिलता है। फूल लाल रंग का पूस-माह में।

(३८) **जुही**—इस पौधे के फूल का रंग सफेद और डंडी लाल रंग की होती है। इसे संस्कृत में 'माधवी' या वासन्ती कहते हैं।

(३९) **टगर**—इसका फूल सफेद होता है।

(४०) **टसर**—लगभग ५ हाथ ऊँचा, फूल सफेद, चैत में।

(४१) **डील**—इस पर पीयाबाँसे की भाँति बसन्ती रंग का फूल आता है।

(४२) **तिकौनिया**—इस पौधे पर पीला फूल आता है।

(४३) **तिलसटिया**—नुकीली पत्ती का ६ हाथ ऊँचा पौधा, फूल पीला बन्द मंजरी की भाँति, चारों ओर पत्तियाँ-सी होती हैं, और बीच में बन्द कली का फूल होता है।

(४४) **दंदना**—पौधा लगभग १ हाथ ऊँचा, गाजर के-से पत्ते, फूल नीले रंग का पूस-माह में।

(४५) **दिन का राजा**—गोल पत्तियों का ६ हाथ ऊँचा पौधा, फूल सफेद क्वार-कातिक में।

(४६) **दुपहरिया**[1] **या धौपरिया**—इसका साहित्यिक नाम 'बन्धूक' है। सावन मास में इस पर लाल रंग का फूल आता है। इसी को गुलदुपहरिया कहते हैं।

(४७) **दौना (सं० दमनक) या दौनामरुआ**—लगभग दो हाथ ऊँचा, गुलाबी रंग का फूल, चैत के महीने में।

(४८) **धुरंटा**—बाग में रोसों के सहारे उगाते हैं। ऊँचाई ४-५ हाथ; महँदी के से पत्ते, फूल बैंजनी, मकोई का-सा, छोटी गोली की भाँति फल। इसको **नरकरी** या **रेलिया** भी कहते हैं।

(४९) **नक्केसर**—पौधा डेढ़ बालिश्त ऊँचा, लाल और पीले फूल पूस-माह में आते हैं।

(५०) **नरगिस**—लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा पौधा, फूल लाल या सफेद लेकिन बीच में पीला।

(५१) **निवाड़ौं**—लगभग ५ हाथ ऊँचा, सफेद फूल चैत में।

(५२) **नीलोफर**—एक तरह का कमल जिसका फूल नीला होता है। संभवतः इसी को संस्कृत में 'नीलोत्पल' कहते हैं।

(५३) **परबीना**—यह कच्ची फुलवार का पौधा है। इस पर सफेद रंग का फूल आता है।

(५४) **पेंजी**—एक बालिश्त ऊँचा पौधा, पीला और सफेद फूल, पूस-माह में।

(५५) **फुलवा**—कच्ची फुलवार का पौधा, ऊँचाई २ हाथ, फूल लाल और सफेद।

(५६) **बेला** (सं० विचकिल > प्रा० बिअइल्ल > बइल्ल + क > बेला > हि० श० नि०) पौधा दो हाथ ऊँचा, पत्ती गोल, फूल सफेद, बैसाख-जेठ में। बेला के कई भेद हैं—(१) **मोतिया** (२) **चमरुआ** (३) **पथरिया** (४) **मदनमोहन** (५) **रायबेल** (६) **गठिया** (७) **मोगरा** (८) **इकहरा**। मोतिया का भी साहित्यिक नाम माधवी[2] है।

(५७) **बेलिया**—एक विशेष तरह की बेल जिस पर लाल फूल आते हैं।

(५८) **मचकन्द** (सं० मुचकुन्द)—इसके फूल पीले होते हैं, जो दवा में भी काम आते हैं।

---

[1] "ठौर-ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।"
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४६०।

[2] "प्रत्यासन्नौ कुरबकवृते माधवी मण्डपस्य।"
—कालिदास : उत्तर मेघ०, श्लोक १५।

(५९) **मरुआ** (सं० मरुवक, मरुबक)—इस पर सफेद और लाल फूल फागुन-चैत में आते हैं।

(६०) **माँकरीट**—लगभग तीन हाथ का पौधा, फूल पीले और सफेद, फागुन में।

(६१) **मिरचौनी**—लाल फूल का पौधा। फूल का रंग और आकार लाल मिर्च का-सा होता है।

(६२) **मौलसिरी**—इस पेड़ पर पीले फूल आते हैं। इसको संस्कृत में 'बकुल' भी कहते हैं। कवि प्रसिद्धि के अनुसार यह सुन्दरियों के कुल्ले के जल से पुष्पित होता है।[1]

(६३) **रातरानी**—इस पौधे पर फूल पीली घुंडी-सा आता है। फूल पूस-माह में लगता है।

(६४) **लटर**—यह बेल है जिस पर झुग्गादार लाल फूल माह-पूस में आता है।

(६५) **लटेरिया**—बेल, फूल का ऊपरी भाग लाल नीचे का सफेद, फूल चौमासे में आते हैं।

(६६) **लिपटइया**—एक प्रकार की बेल है।

(६७) **ललटैना**—इसकी पत्तियाँ छोटे पान की भाँति होती हैं। इस पर तीन रंग के फूल आते हैं—लाल, पीले और सफेद। प्रायः हर महीने में फूल आते हैं।

(६८) **लिलिया**—पौधा लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा, फूल नीला।

(६९) **लीलोफर**—नीले फूल का पौधा।

(७०) **लौनिया**—लाल फूल आता है।

(७१) **सदासुहागिल**—१ हाथ का पौधा, फूल सफेद तथा लाल।

(७२) **सनेरिया**—पौधा दो हाथ, फूल कई तरह से आते हैं—पीले, लाल और सफेद।

(७३) **सुर्खगेंदी**—पौधा दो हाथ, पत्ते कटावदार; फूल लाल रंग का।

(७४) **सूरजमुखी**—पौधा ४-५ हाथ ऊँचा, फूल पीला, अगहन-पूस में।

(७५) **हारसिंगार**—पौधा लगभग ८-१० हाथ ऊँचा, फूल की पंखड़ियाँ सफेद और डंडी लाल होती है। फूलों की गंध बड़ी अच्छी लगती है। फूल क्वार और चैत में आते हैं। इसी को संस्कृत में 'शेफालिका' कहते हैं।

§५९९—**विभिन्न घासों, बेलों और रूखड़ियों के नाम**—(१) **अकउआ या आक (सं० अर्क)** इसकी ऊँचाई लगभग दो-ढाई हाथ होती है। पत्ते पान के-से होते हैं, दूध निकलता है। सफेद फूल आता है। उसके बीच में एक घुंडी-सी होती है, जिसे **टैमनी** या **कैरकी** कहते हैं, इस पर **डोड़ा** या **बौंड़ी** आती है, जिसमें रुई-सी निकलती है। आक का पौधा अकउआछठ (सावन सुदी छठ) को स्त्रियों द्वारा पूजा भी जाता है।

(२) **अकरकरा**—(अ० अक़रक़रहा)—ऊँचाई लगभग डेढ़ हाथ, पत्ती लम्बी और चौड़ी फूल लाल रंग का माह में। प्रायः जो-गेहूँ के खेतों में उग आता है।

(३) **अकसंद या अकसन**—लगभग दो हाथ ऊँचा पौधा, पत्ता गोल, फूल सफेद, माह-फागुन में।

---

[1] "विकसित बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्"—कविप्रसिद्धि के अनुसार।

(४) **अकोला**—कँटीली झरकटी; काँटा लम्बा, पत्ती लम्बी नुकीली, गिलास की आकृति का पीला फूल, फागुन में।

(५) **अखजौं**—ऊँचाई एक हाथ, शहतूत की तरह सफेद रंग की बालें चैत-बैसाख में आती हैं, फोड़े-फुंसियों पर इसे पीसकर लगाते हैं। इसे पशु नहीं खाते (सं० अखाद्य > हिं०अखजा)।

(६) **अगिनबूटी**—यह रूखड़ी बंजर खेत में उगती है; इस पर सफेद फूल आता है।

(७) **अड़ूसा**—(सं० अटरूष[1]) इसको **पीयाबांसा** भी कहते हैं। इस पर सफेद फूल आता है। खाँसी में इसके पत्तों का रस लाभ पहुँचाता है। एक **कँटीला पीयाबाँसा (पीया-बाँसा काँटेदार)** भी होता है। यह पौधा भी लगभग दो हाथ का होता है। इस पर लाल और पीला फूल आता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से कँटीला पियाबाँसा ही कुरबक है।[2]

(८) **अन्नी या अरनी**—झुंडदार घास जो ३-४ हाथ ऊँची होती है। फूल सफेद रंग का और पत्ते बेरिया के-से होते हैं।

(९) **अनाचुनी**—यह बेलदार घास है। इस पर बैजनी रंग का फूल पूस-माह में आता है।

(१०) **अमरबेल**—यह विचित्र घास है, जिसका रंग पीला-सा होता है। यह जमीन में नहीं उगती। बबूल, बेरिया आदि पेड़ों पर ही फैली रहती है। इस पर पत्ते नहीं होते, केवल सूत-सी ही होती है। रहीम ने अपनी दोहावली में इस घास के सम्बन्ध में लिखा है।[3] **अमरबेल** को **आकासबेल** भी कहते हैं।

(११) **अफोइ**—बेलदार घास, सावन-भादों में सफेद फूल, इसके पत्तों को पानी में ओटा-कर उस पानी से उन बच्चों को नहलाते हैं, जिनके शरीर पर फोड़े-फुंसियाँ निकली हुई हों।

(१२) **अलसी**—यह पानी के सहारे उगनेवाली घास है। इसके पत्ते महँदी के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं।

(१३) **आधाझारा**—इसे **औंगा** (सं० अपामार्ग) या **बलिया चिरचिटा** भी कहते हैं। ऊँचाई लगभग डेढ़-दो हाथ; इसमें पतली और कँटीली-सी लंबी बाल लगती है। शैतान बालक इसकी बाल को किसी भोले बालक से मजाक में पकड़वाते हैं और उसे दिन में तारई (तारे) दिखाने के लिए बाल को एक साथ खींच देते हैं। ऐसा करने से भोले बालक के हाथ में काँटे चुभ जाते हैं। वे काँटे मोटे जीरे की तरह के होते हैं।

(१४) **उसीड़**—दो हाथ ऊँचा पौधा। इसे पशुओं को खिलाते हैं। इस पर मटमैला-सा सफेद फूल और सफेद रंग की बाल आती है।

(१५) **ऊँटकटेरा**—लगभग डेढ़ हाथ की कँटीली झुंडदार रूखड़ी; फूल सफेद; फल छोटे आलू-सा गोल आता है।

(१६) **एंठफरी**—यह बेलदार घास है। पत्ते सेम के-से और फलियाँ मटर की भाँति लेकिन सिकुड़ी और इँठी-सी आती हैं।

---

[1] "वृषोऽटरूषः सिंहास्यो"—अमर० २।४।१०३

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २४१।

[3] "अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥"
मायाशंकर याज्ञिक (संपा०) : रहीम रत्नावली, दोहावली, दो० ७।

(१७) **ओंदफरी**—बेलदार घास; पत्ता गोल और छोटा महँदी के समान; फूल पीला सावन-भादों में; पतली फलियाँ आती हैं।

(१८) **ओंधेरी या ओंधेली**—तिकोना पत्ता, लौंग की आकृति का लाल फूल असाढ़-सावन में, यह घास छतीली-सी पौधे की तरह होती है।

(१६) **ओजनि**—लगभग दो हाथ ऊँचा पौधा; पत्ते और बालें चिरचिटा की-सी होती हैं।

(२०) **ओंधाझार**—बारीक तिकोनी पत्ती; फूल लाल आता है।

(२१) **कंजा**—इस घास की बेल चलती है। पत्ती छोटी और **बौर** (मंजरी) पीला आता है।

(२२) **ककरौंदा**—यह छतीली घास है जिसके पत्ते रूँएदार होते हैं। इस पर बैंजनी फूल आता है, जो सूखने पर सफेद हो जाता है। इस घास में बदबू मारती है। प्रायः इसे **बवासीर** (अर्श) के रोग में काम में लाते हैं। नीबू के पौधे से मिलता-जुलता एक पौधा होता है, जिस पर छोटे बेर की भाँति फल आते हैं। उसे भी **ककरौंदा** (सं० कर्कन्धु) या **करौंदा** (सं० करमर्दक[1]) कहते हैं।

(२३) **ककइया फुलसन या ककइया सन**—यह खेती का पौधा है। इस पर बुंडीदार पीला फूल आता है।

(२४) **कटीला**—यह कँटीली घास है, जिस पर पूस-माह में पीला फूल आता है।

(२५) **कटेरी या कटेहरी**—(सं० कंटकारिका, सं० कंटकारी)—यह कँटीली रूखड़ी है। जमीन पर छत्ता-सा मारकर फैल जाती है। फूल बैंजनी रंग का; लेकिन बीच में पीला, फल गोल-गोल और पीला। कटेरी को **फल कटेरी** और **भटकटइया** भी कहते हैं।

(२६) **कठुला** या **कटुला**—इसकी बेल चलती है। पत्ती नोंकदार और गोल होती है। फूल सफेद और लाल रंग का क्वार में।

(२७) **कठफूला या छतरी**—बरसात में लकड़ी के सड़ जाने से सफेद रंग का छतरी जैसा पौधा उग आता है। इसकी ऊँचाई लगभग ५-६ अंगुल होती है। इस पौधे को **कुकुरमुत्ता** और **गगनधूर** भी कहते हैं।

(२८) **कनकउआ**—यह मक्का, ज्वार और बाजरे के खेतों में चौमासों में उग आता है। प्रायः एक हाथ ऊँचा होता है। नीला-सा फूल आता है और शहतूत-सी बाल।

(२६) **कपसू**—पानी के सहारे उगनेवाला पौधा; ऊँचाई लगलग डेढ़ हाथ; फूल सफेद, फल में से रुई-सी निकलती है। इसके पत्ते को पीसकर ततइया या बर्रे द्वारा काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

(३०) **कबरा**—यह पौधा ३-४ हाथ का होता है। पत्ता लम्बा और फल तिल की तरह का होता है।

(३१) **करील**—इस पर पत्ते नहीं आते और छोटे-छोटे गुलाबी रंग का फूल चैत में आता है। गोली-सा फल आता है जो **टेंटी** कहाता है। यह काँटेदार झाड़ी की तरह होता है और बसन्त ऋतु में फूलता-फलता नहीं। इसके सम्बन्ध में प्रचलित है कि—

---

[1] कृष्णपाकफलाविग्नसुषेणाः करमर्दके।
अमर० २।४।६७

करीलु जौ न फूलै । बसन्तु चौं न ऊलै ।।[1]

तहसील माँट और हाथरस में क़रील अधिक हैं। यह ब्रज का क्षेत्र भी है। लोकोक्ति प्रचलित है—

कहूँ-कहूँ भगवान की गई सिटिलपौं नाइँ ।
काबुल में मेवा दई ब्रज में टैंटी खाइँ ।।[2]

पकी हुई लाल टेंटी **पैंचू** कहाती है। टेंटियों का **अचार** (फ़ा० अचार) पड़ता है। पैंचुओं के तोड़ने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है, क्योंकि उसकी झाड़ी पर काँटे अधिक होते हैं। अतः कष्ट न देने के लिए कहा जाता है—"बैठौ रहि, सबु तेरे पैंचू ही हैं।"

(३२) **कर्र**—खेती का एक पौधा। इसका फूल **कसूम** (सं० कुसुम्भ) कहाता है, जो रंग में लाल और पीला होता है।

(३३) **कारी घास**—पत्ती लम्बी और पतली; वर्षा में अधिक उग आती है। इसे घोड़े बड़े स्वाद से खाते हैं। यह घास बहुत **पौंड़ती** है (बहुत बीच में फैल जाती है)।

(३४) **कारौ धतूरौ**—पौधा लगभग ३-४ हाथ ऊँचा; फूल काला; क्वार—कातिक में। फल गोल आता है।

(३५) **कारौ भाँगरौ और भँगर्रा**—पौधा छोटा-सा ही होता है। काले भाँगरे पर काला फूल आता है और सादा भँगर्रा सफेद फूल का होता है।

(३६) **कारी मकोई**—लगभग डेढ़-दो हाथ का पौधा होता है। फूल सफेद और फल काले पोली-गोली-से लगे रहते हैं। इसी तरह की लाल फलवाली **लाल मकोई** भी होती है।

(३७) **काँस** (सं० कास)—झूँड़दार घास जो ३-४ हाथ ऊँची होती है। इस पर क्वार में सफेद बाल आती है। बाल आना **'काँस फूलना'** कहाता है।

(३८) **काँसी**—एक पौधा दो हाथ ऊँचा; पत्ते काले-से।

(३९) **कासिनी**—लगभग ४ हाथ ऊँची; बैंजनी रंग का फूल आता है। इसकी एक किस्म **जंगली-कासिनी** कहाती है, जो किसी पोखर या तालाब में उगती है।

(४०) **किलक**—यह झूँड़दार घास है। इसकी पत्तियाँ बहुत लम्बी होती हैं।

(४१) **कुँदरू** (सं० कुन्दुरु)—इसकी बेल चलती है और पत्ते तोरई के-से होते हैं। फूल पीले रंग का आषाढ़-श्रावण में आता है। फल रंग में पहले हरा और आकार में गोल होता है, जो पकने के समय लाल हो जाता है। इसके फल को संस्कृत में बिम्ब या बिम्बक और बेल को बिम्बिका[3] भी कहते हैं। साहित्य में कुँदरू (बिम्ब)[4] का फल होठों का उपमान बनकर बहुत

---

[1] यदि करील बसन्त ऋतु में फूलता नहीं है, तो बसन्त अपना उल्लास क्यों व्यक्त न करे। उसमें बसन्त का दोष ही क्या है?

[2] कहीं कहीं पर भगवान् की सिटिलपौं (बेकायदे की बातें या अनुचित बातें) जाती नहीं हैं। उन्होंने काबुल में तो मेवा दे दी और ब्रज के लोग टेंटी खाते हैं। कहाँ का न्याय है?

[3] 'तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बिका'—अमर० २।४।१३६

[4] 'तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी'।
कालिदास : उत्तर मेघ० श्लोक १९।
'उडुपति, विद्रुम, बिम्ब, खिसाने दामिनि अधिक डरी।'
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।६५६

प्रयुक्त होता है। बिम्ब फल के लिए हेमचन्द्र (दे० ना० मा० २।३९) ने 'कुंदीर' शब्द लिखा है।

(४२) **कुलफा** (अ० कुलफह) इस पौधे के पत्तों का साग बनता है। इसके फूल लाल-पीले और पत्ते बिना नोंक के होते हैं। पत्ते हरे और डंठल लाल होता है। इसे खेत में पालक की भाँति उगाया जाता है; चैत-बैसाख में।

(४३) **कुसा या कुस** (सं० कुश)—यह झूँड़दार घास है। पत्ती पतली और लम्बी होती है। कुस की पत्तियों के आसन बनते हैं। कुस की एक किस्म **दाब** (सं० दर्भ) भी है। दाब से श्राद्धों में पितरों का दर्पण करते हैं। दाब की पत्ती कुस से कुछ चौड़ी होती है, लेकिन दाब का झुण्ड कुस के से छोटा होता है।

(४४) **केतकी**—इसे **रामबान** भी कहते हैं। इसका पत्ता मोटा और तलवार की तरह का होता है। पत्ते की नोंक पर काँटा होता है। केतकी का **गाभा** (सं० गर्भ > प्रा० गब्भ > गाभा = नया नरम पत्ता) कुछ पीलापन लिए सफेद होता है। केतकी में एक लम्बी डण्डी-सी निकलती है, उसी के सिरे पर लम्बे आकार का बन्द फूल लगता है, जिसका रंग सफेद होता है। यह फूल शिव जी की मूर्ति पर नहीं चढ़ाया जाता। फूल क्वार के महीने में आता है। भवभूति ने सीता के उपमान के रूप में उत्तररामचरित में केतकी के गाभे का वर्णन किया है[1]।

केतकी अर्थात् रामबान को कूटकर रस्सी भी बनाई जाती है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

'जीमिंगे तो सीमिंगे। नहीं जेल में रामबान कूटिंगे ॥"[2]

(४५) **केलखप या कीलखप**—इसकी टहनियाँ कील की तरह होती हैं और पत्तियों के स्थान पर छोटी-छोटी घुंडियाँ-सी लगी रहती हैं।

(४६) **केवड़ा**—ईख की-सी पत्तियों का झुण्ड। इस पर सफेद बाल आती है।

(४७) **कैंच**—(सं० कपिकच्छु[3]) इस पर रूँयेदार फली आती है, जिसे शरीर से छुला दिया जाय तो बड़े जोर की खुजली मचती है। कैंच की बेल चलती है और उसकी फली अँगूठे के बराबर मोटी और लगभग आठ अंगुल लम्बी होती है।

(४८) **कौआ तोरई (कउआ तोरई)**—यह छोटा-सा पौधा होता है। इस पर लम्बी फली आती है। फूल कुछ-कुछ लाल-सा होता है।

(४९) **कौआ चेंच (कउआ चेंच)**—पौधा दो हाथ ऊँचा, फली लगभग एक बालिश्त लम्गी, पीले रंग का फूल क्वार में आता है।

(५०) **कौड़ीला**—यह घास ठंडी तासीरवाली होतो है। **चैतबारे** (चैत-बैसाख) में सफेद फूल आता है।

---

[1] "शरदिज इव घर्मः केतकी गर्भपत्रम्।'
भवभूति, उत्तररामचरित, अंक ३, श्लोक ९।

[2] जब तक जीवेंगे, तब तक काम करेंगे, नहीं तो जेल में रामबान कूटकर रस्सी बटते रहेंगे।

[3] कपिकच्छु—एक प्रकार की बेलदार वनस्पति।
मोनियर विलियम्स : संस्कृत इँगलिश डिक्शनरी।

(५१) **कौवरी**—एक हाथ ऊँचा पौधा; कटी हुई किनारी के नीम जैसे पत्ते; घुण्डीदार पीले रंग का फूल आता है।

(५२) **खटाचोपरी**—इस घास का पौधा बहुत छोटा होता है। मेथी के-से पत्ते आते हैं जो स्वाद में खट्टे होते हैं। इस पर पीला फूल लगता है। इसका साहित्यिक नाम 'अम्ल-लोणिका (अमर० २।४।१४०) है।

(५३) **खड़ई**—पौधा एक बालिश्त ऊँचा; फूल पीला; माह-पूस में यह घास उगती है। **तराई** (पानी की धरती) में यह पौधा पनपता है।

(५४) **खरतुआ**—प्रायः गेहूँ और जौ के खेतों में खरतुआ उग आता है। इस पौधे की ऊँचाई एक हाथ होती है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"गैहुँन के संग में खरतुआऊऐ पानी लगि जात्वै ॥"[१]

(५५) **खरपी**—बेल चलती है। पत्ती गोल और फूल पीला होता है।

(५६) **खरैटी या खरैटिया**—इसका पौधा लगभग एक हाथ ऊँचा, पत्ते गोल, फूल सफेद रंग के आते हैं।

(५७) **खिरकिटी**—यह झूँड़दार घास है, जिसकी पत्तियाँ लम्बी होती हैं। इस पर पीला फूल आता है। यह घास मक्का-बाजरा के खेत में भी उग आती है।

(५८) **खीरखप्पर**—इस पौधे की ऊँचाई दो हाथ; अरहर के पत्ते की तरह का पत्ता; सफेद फूल आते हैं।

(५९) **गंगालहरी**—बेलदार घास; पानी के सहारे गर्मी में उगती है।

(६०) **गधरचटा**—काँटेदार एक हाथ का पौधा; चौमासों में उगता है।

(६१) **गाँड़र**—यह झूँड़दार घास है। इसकी जड़ को **खस** कहते हैं, जिसकी बनी हुई टट्टियाँ गर्मियों में लगाई जाती हैं। झाड़ू की पीली **सींकें** (सं० इषीका) गाँड़र में से ही निकलती हैं। सरसों का नया पौधा भी जो एक हाथ का होता है **'गाँड़र'** कहाता है। इसकी भुजिया या साग बनता है।

(६२) **गाधसट्ट या गधैसट्ट**—बेल; लाल, पीले और सफेद फूल जो झंपादार होते हैं।

(६३) **गाँजा**—एक प्रकार की घास जो पौधे के रूप में होती है।

(६४) **गुआर का पट्ठा या ग्वार का पट्ठा**—इसकी पत्तियाँ केतकी की तरह ही होती हैं, लेकिन उनका दल मोटा होता है। इसके गूदे को आटे में मिलाकर लोग लड्डू बनवाते हैं। इस पौधे को **घीग्वार** भी कहते हैं।

(६५) **गुलोइ या गिलोइ**—एक बेल जिसका डंठल दवाइयों में काम आता है। यह स्वाद में बड़ी कड़वी होती है। कहावत है—

"एक तौ गिलोइ करुगी, ताऊ पै नीब चढ़ी।"[२]

गिलोइ अनेक रोगों में लाभ करती है। इसको **अमरती** भी कहते हैं (सं० अमृतिका>अमृतिआ>अमरतिआ>अमरती)।

---

[१] गेहूँ के साथ में खरतुए को भी पानी लग जाता है, अर्थात् बड़े के साथ में छोटे को भी मान मिल जाता है।

[२] प्रथम तो गिलोइ कड़वी थी ही, फिर नीम पर और चढ़ गई हो, तब तो उसके कड़वेपन की हद हो जायगी।

(६६) **गुरगेहूँ या गुरगेहुआँ**—यह घास ऊँचाई में एक बालिश्त होती है। इसकी जड़ में गेहूँ जैसा फल चिपका रहता है, जिसे लोग खाते भी हैं। यह सावन-भादों में उगती है। एक विशेष घास के लिए शतपथ ब्राह्मण (६।१।१।८) में 'गवेधुका' शब्द आया है।

(६७) **गुलकाँक या गुलकाँकरी**—इसकी बेल चलती है। प्रायः हींसों और करीलों पर फैली रहती है। पत्ती मिर्च की-सी; फूल और फल लाल रंग के होते हैं। कच्चे फल का रंग तो हरा ही रहता है, लेकिन पकने पर लाल हो जाता है।

(६८) **गूमा**—पौधा लगभग दो हाथ ऊँचा, पत्ते छोटे; गेंदे की आकृति के सफेद फूल लगते हैं।

(६९) **गोखरू या देसी गोखरू**—इसकी बेल चलती है। पत्ते बहुत छोटे और फूल गुलाबी रंग के होते हैं। इस पर काँटेदार घुंडियाँ-सी आती हैं। एक **पर्बती गोखरू** भी होता है, जिसके पत्ते बथुए के से होते हैं और फूल पीला।

(७०) **गोभी**—छत्तादार घास है, जिस पर पीले रंग के फूल आते हैं। जौ-गेहूँ के खेतों में उग आती है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"गयौ राजु जहाँ राजा लोभी। गयौ खेतु जहाँ जामी गोभी॥"[1]

(७१) **गोरखमुंडी**—घास छतीली (छत्तादार); फूल घुंडी-सा आता है, जिसका बैंजनी रंग होता है।

(७२) **गौंदड़**—बेल पानी के सहारे; पीपल का-सा पत्ता; लाल फूल।

(७३) **घमोइ**[2]—एक काँटेदार घास जो प्रायः कँकरीली धरती में उगती है। बाँस की जड़ के लिए यह दीमक का काम करती है।

(७४) **घीयर**—बेल चलती है, कटे किनारोंवाली गोल पत्तियाँ; फूल सफेद; फल मटर जैसा आता है।

(७५) **घुंडी**—पानी के सहारे उगती है। इस घास का पौधा दो-तीन अंगुल का होता है। इस पर घुंडी-सी लगती है।

(७६) **घूँगा (घूँघा)**—सावन में **नगपाँचें** (सं० नागपंचमी) को कोरी हँड़ियों या सकोरों में जौ बोये जाते हैं, जिन्हें सलूने के दिन सिराते हैं। जौओं के वे अंकुर **घूँगा** कहाते हैं। इन्हें सलूने के दिन बहनें भाइयों के कानों पर रखती हैं।

(७७) **घेघसा**—पानी के सहारे इसकी बेल चलती है। पत्तियाँ छोटी और नुकीली होती हैं। फूल सफेद और फल गोल आता है।

(७८) **चन्दन बथुआ**—यह अधिक से अधिक डेढ़ हाथ ऊँचा बढ़ता है। जौ-गेहूँ के खेतों में उग आता है। इसके पत्ते बथुए के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं, लेकिन लाल रंग के होते हैं।

---

[1] जिस राज्य में राजा लोभी हो तो वह राज्य जल्दी नष्ट हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस खेत में गोभी घास उग आती है, उस खेत की फसल भी जल्दी नष्ट हो जाती है।

[2] "बेनुमूल सुत भयहु घमोई।"—तुलसी : रामचरितमानस, लंकाकाण्ड गीता प्रेस १०।२ "देखेउँ तोरे मँदिल घमोई।"—डा० माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रंथावली, पदमावत ३६८।२

(७९) **चँचड़ा**—इस पर लम्बी और मोटी फली आती है। उन फलियों की तरकारी बनती है। इसकी बेल चलती है और तोरई के फूल से मिलता हुआ पीला फूल आता है। गाँवों के लोग इसकी फलियों के आगे दीपक दिखाते हैं, ताकि वे जल्दी बढ़ जायँ।

(८०) **चटरी**—यह घास जौ-गेहूँ के खेतों में अगहन-पूस में उग आती है। पत्ते छोटे-छोटे और फूल बैंजनी रंग के होते हैं। **चटरी** पशुओं को खिलाई जाती है। इसकी बेल चलती है। एक छोटी चटरी होती है, जिसे **ठिंगनी चटरी** कहते हैं। इस पर सफेद-सा फूल आता है।

(८१) **चिमचू**—यह पौधा दो हाथ ऊँचा बढ़ जाता है! पत्ते बैंगन के-से होते हैं। फूल सफेद और फल की आकृति बेर की गुठली जैसी होती है।

(८२) **चिरचिटा**—इसकी दो किस्में हैं—(१) **सीधा चिरचिटा** (२) **उलटा चिरचिटा** सीधा चिरचिटा लगभग दो हाथ बढ़ता है। इस पर बाल आती है, जिस पर रूएँ और बाल-से होते हैं। इसकी बाल कपड़ों से चिपट जाती है। अतः बच्चे एक दूसरे के कपड़ों में चुपके-से बालों को चिपटाते हैं और **खिलकोरी** (दिल्लगी-मजाक) की **हौंस** बुझाते हैं। यह घास चौमासों में अपने आप उग आती है। इसे **ओंगा** (सं० अपामार्ग) भी कहते हैं। उल्टा चिरचिटा आकार और आकृति में गेहूँ के पौधे की तरह होता है।

(८३) **चिलमिली या चिलबिली**—इस घास का पौधा लगभग डेढ़-दो हाथ का होता है। इस पर लाली और सफेदी मिली हुई बालें आती हैं, जिनमें काले बीज सरसों जैसे निकलते हैं। आग पर डालने पर वे बारूद की तरह चटकते और उछटते हैं। इसीलिए बालक इन्हें आग में जलाकर खेल खेलते हैं। चिलमिली को कुछ लोग **सिलमिली** भी कहते हैं।

(८४) **चीती**—गोल पत्ते; फूल सफेद; गोलाईदार छोटा फल आता है, जो **ढैमना** कहाता है।

(८५) **चौटनी**—यह बेलदार घास है। इसके पत्ते आकृति में पान से मिलते-जुलते होते हैं। फूल सफेद और फल घुंडी जैसा आता है।

(८६) **चौधारा**—यह पौधा घास के रूप में नहीं होता। आकृति में इसका तना चौपहलू बहुत मोटी पत्ती की तरह होता है। इस पर चौमासों में सफेद फूल आता है। काछी—मालियों का कहना है कि यह **नागफनी** की ही एक जाति है।

(८७) **चौराई या चौरइया**—इस पौधे के दो भेद हैं—(१) **चिकनी चौराई** (२) **कँटीली चौराई**। चिकनी चौराई के पत्ते आकृति में बिसखपरे से मिलते-जुलते होते हैं। इनका साग भी बनता है। चौराई पर सफेद फूल आता है। चौराई का पौधा एक हाथ का होता है, जो चौमासों में उगता है। बन के खेत में एक पौधा और उगाया जाता है, जिसके तने और पत्ते लाल होते हैं। उसे भी **चौराई, मालकाँगनी, रामदाना** या **बहेरी बथुआ** कहते हैं। उस पर सफेद बीज-सा आता है जिसके लड्डू बनते हैं।

(८८) **छुईमुई**—बहुत छोटा-सा पौधा होता है, लगभग एक बालिश्त लम्बा, इस पर गुलाबी सा फूल आता है। यह पौधा उँगली लगाने पर मुर्झा जाता है।

(८९) **जरगा**—एक प्रकार की बेल जो चौमासों में उगती है।

(९०) **जलजमनी**—एक प्रकार की बेल जो हींस आदि झाड़ियों पर छाई रहती है। पान की आकृति का पत्ता और फूल गुलाबी आता है। इस बेल के पत्ते के रस को पानी में निचोड़ दिया जाय तो पानी जमा हुआ-सा दिखाई देने लगता है।

(९१) **जवासा** (सं० यवासक)—कँटीला पौधा जो हाथ भर ऊँचा होता है। प्रायः बैसाख जेठ में हरा-भरा दिखाई देता है, बरसात में मर जाता है। जवासे पर लाल फूल और सफेद फलियाँ आती हैं।

(९२) **जोड़ा-तोड़ा**—यह पौधा लगभग ढाई-तीन हाथ ऊँचा होता है। इसमें सींकें-सी होती हैं। इसे गाँठ पर से यदि तोड़ दिया जाय तो फिर चिपकाया जा सकता है। संभवतः इसी-लिए इसे **जोड़ा-तोड़ा** कहते हैं।

(९३) **जैंती**—यह रूखड़ी एक क्षुप है, जो पानी के सहारे उगती है। पत्ता छोटा और फूल सफेद रंग का घुंडीदार आता है। इसे ऊँट-बकरियाँ अधिक खाती हैं।

(९४) **झरबेरिया**—यह एक प्रकार की **झरकटी** (झाड़ी) है। इसका पौधा काँटेदार होता है, जिसकी ऊँचाई लगभग डेढ़-दो हाथ होती है। छोटे-छोटे **गोला** बेर झरबेरियों पर ही आते हैं। झरबेरी पर अगहन-पूस में बौर की तरह का पीला फूल आता है।

(९५) **झाऊ**—नदी के खादर में उगनेवाला ५-६ हाथ का पौधा जिस पर सूत-सी पत्तियाँ आती हैं। इसके तने को डलिया, छबड़ा बनाने में भी काम लाते हैं।

(९६) **झील**—गंगा और जमुना के **निमाने** (नदी के पास की नीची भूमि जहाँ पानी भरा रहता है) में यह पौधा पैदा होता है। ऊँचाई लगभग ३-४ हाथ, पत्तियाँ पतली सुई की भाँति।

(९७) **झोझुरू**—यह पौधा दो-तीन हाथ का होता हैं, जिस पर गोल-गोल पीली घुंडी-सी आती है, जिसमें बीज भरे रहते हैं। प्रायः अरहर के खेत में अगहन-पूस में स्वतः उग आता है।

(९८) **टीकुला**—यह छत्तेदार घास है, जिसपर सफेद फूल आता है।

(९९) **ढड़ियाइन या ढराइन**—यह पौधा लगभग एक—डेढ़ बालिश्त ऊँचा होता है। प्रायः ज्वार, बाजरा के खेतों में उग आता है। इस पर पीला फूल आता है और उर्द-मूँग की फली से मिलती हुई फली आती है।

(१००) **तड़ा**—छत्तेदार बनस्पति; नीले रंग का फूल; गोल बीज की फली आती है।

(१०१) **तरातेज**—दो हाथ ऊँचा पौधा, मेथी के खेत में उग आता है। इसकी पत्तियाँ धनिये की पत्तियों की भाँति होती हैं। खाने में कुछ मीठा और चरपरा होता है। इसमें खुशबू भी आती है। **तरातेज, धनिये** और **पोदीने** की पत्तियों की चटनी बनती है।

(१०२) **तुलसा या तुलसी**—इसकी दो किस्में हैं (१) **घर-तुलसा** (२) **बनतुलसा** बनतुलसा के पत्ते कुछ बड़े होते हैं। इसका पौधा २-३ हाथ ही बढ़ता है। इसका फूल **मंजरी** कहाता है।

(१०३) **तौरा या त्यौरा**—छोटे पत्तों का पौधा; ऊँचाई में लगभग डेढ़ हाथ, गुलाबी-सा फूल और चपटी-सी फली। फूल पूस-माह में आता है।

(१०४) **दाभ या दाब**—एक प्रकार की भूँड़दार घास जिसकी पत्ती **कुसा** (सं० कुश) से अधिक चौड़ी होती है। **पतेल, मूँज** (सं० मुंज), **कुसा, दाभ** (सं० दर्भ) और **गाँड़र** नाम की घासें भूँड़दार ही होती हैं और इनकी पत्तियाँ बहुत लम्बी होती हैं। ऋग्वेद (१।१९१।३) में

विषैले जन्तुओं के वर्णन में उक्त घासों का नाम संकेत हुआ है[१]। दाभ से श्राद्धों में पितरों का तर्पण किया जाता है।

(१०५) **तालमखाना**—एक हाथ ऊँचा काँटेदार पौधा, कुछ-कुछ सफेद और गुलाबी रंग का फूल आता है। इसे **तालमखाना** भी कहते हैं। इस पर फल आलू-सा फाँकदार आता है।

(१०६) **दुद्धी** (सं० दुग्धिका[२] >दुद्धिआ > दुद्धी)—यह छत्तेदार घास है, लेकिन कुछ बेल रूप में भी बढ़ती है। पत्तियाँ छोटी-छोटी लाल रंग की होती हैं। प्रायः **रुजके** (एक प्रकार का पशुओं का चारा) के खेत में उग आती है। इसके डंठल में दूध-सा रस होता है। इस पर लाल फूल आता है। दुद्धी की दो किस्में हैं—(१) **न्हैंनी दुद्धी** या छोटी दुद्धी (२) **बड़ी दुद्धी**। दुद्धी को **लिलगोदी** भी कहते हैं।

(१०७) **दूब** (सं० दूर्वा)—यह एक प्रकार की बेलदार घास है, जिसे **कारी घास** भी कहते हैं। यह कुओं के सहारे भी उग आती है। बालक के जन्म के समय और विवाह में लग्न-पत्रिका बाँधते समय दूबघास काम आती है। पंडित जी लड़की के ब्याह में जब **पीरी चिट्ठी** या **लगुनपत्री** लिख लेते हैं, तब उसमें दूबघास अवश्य रखते हैं और उसके साथ हल्दी की गाँठें चावल और सुपाड़ियाँ भी रखते हैं। दही और दूब हमारे लोकाचारों की मांगलिक वस्तुएँ हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (८।८) में दूब को उत्तम ओषधी बताया है[३]। सूरदास ने कृष्णजन्म के समय चावल, **दूब**, हल्दी और दही का उल्लेख किया है।[४]

(१०८) **धतूरा**—यह पौधा लगभग दो-तीन हाथ ऊँचा बढ़ता है। फूल सफेद; फल गोल-गोल हरे रंग का आता है, जिस पर चारों ओर काँटे-से उठे रहते हैं। इसके बीज बहुत नशीले होते हैं। आक और धतूरे के फूल शंकरजी की मूर्ति पर चढ़ाये जाते हैं (सं० धत्तूर > हिं० धतूरा)।

(१०९) **नकछिकनी**—तालाबों के सहारे बेल के रूप में उगती है। इसका पत्ता चने के पत्ते से मिलता है, जिसका कि रंग लाल होता है। इसके पत्ते **हुलास** (नाक से सूँघकर छींक लेना) लेने में काम आते हैं।

(११०) **नरसल**—पानी के सहारे उगनेवाली भूँड़दार घास।

(१११) **नागदौन** (सं० नागदमन)—इसके पत्ते केतकी और ग्वार के पट्ठे के पत्तों से कुछ-कुछ मिलते हैं। उन पर साँपों की-सी काली धारियाँ बनी रहती हैं। पत्ते की लम्बाई लगभग हाथ, डेढ़ हाथ होती है।

---

१ "शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकंन्यलिप्सत।"
—ऋक्० १।१९१।३

२ "अथ क्षीरावी दुग्धिका समे।"
—अमर० २।४।१००

३ "क्षत्रं वा-एतदोषधीनां यद् दूर्वा।"
ऐत० ब्रा० ८।८

४ "अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े बारनि बन्दनबार बँधाई।
छिरकत हरद दही हिय हरषत गिरत अंक भर लेत उठाई॥"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।१९

(११२) **नागफनी**—इसमें पत्ते ही होते हैं तना नहीं। इसके पत्ते बड़े मोटे और चौड़े होते हैं, जिन पर काँटे खड़े रहते हैं। देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी विशाल फनवाले नाग ने अपनी जीभें बाहर निकाल रक्खी हों।

(११३) **नागरमोथा**—झूँड़दार घास है जो पानी के सहारे उगकर लगभग डेढ़ हाथ तक बढ़ जाती है। इसकी जड़ में बेर-सा काला फल लगता है। इसी से मिलती एक घास जो गेहूँ-जौ के खेतों में उग आती है, **मोथा** (सं० मुस्तक) कहाती है।

(११४) **नारी**—नोंकदार पत्तों की बेल; गुलाबीपन लिए सफेद फूल; गोल फल। यह पानी के सहारे उगती है।

(११५) **निरगुंडी**—यह घास चौमासों में ज्वार-बाजरे के खेतों में हो जाती है।

(११६) **पटेर**—यह लम्बी पत्तियों की झूँड़दार घास है। इसकी पत्तियाँ ईख की-सी होती हैं, जिन्हें कूटकर रस्सी बनाई जाती है।

(११७) **पतेल**—लम्बी और चौड़ी पत्तियों का झूँड़, इसकी डंडी **सेंटा** या **सरकंडा** (सं० शरकाण्ड) कहाती है।

(११८) **निरबिसी**—लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा पौधा; पत्ता अरहर के पत्ते के समान; पीले व सफेद रंग का फूल पूस-माह में आता है।

(११९) **नीबोला**—यह बेलदार घास है। पत्ती कुछ लम्बी; फूल सफेद भादों-क्वार में। फल घुंडी-सा।

(१२०) **पउनार या पौनार**—पौधा एक हाथ ऊँचा, सफेद फूल माह-फागुन में। ढैमने आते हैं।

(१२१) **पगुला**—पानी में बेल चलती है। सफेद रंग का पंखड़ीदार बड़ा फूल आता है। इसे **पघुला** भी कहते हैं। बिहारी ने इसी के लिए 'पहुला'[1] शब्द का प्रयोग किया है।

(१२२) **पटेर**—काँस की जाति की घास जिसकी पत्तियाँ चौड़ी और लंबी होती हैं। इसकी रस्सी बनती है।

(१२३) **पड़कना**—एक बालिश्त ऊँचा पौधा, पोदीना जैसे पत्ते, लेकिन उन पर सिकुड़न नहीं होती।

(१२४) **पतरचटा**—लगभग २-३ हाथ का पौधा; पत्ती लम्बी; फूल सफेद; चौमासे में उगता है। पतरचटा का पत्ता दवा के रूप में फोड़े पर भी बाँधा जाता है।

(१२५) **पतरसगा**—एक बालिश्त का पौधा; चारे में पशुओं को खिलाया जाता है। पालक के से पत्ते।

(१२६) **पनाचुनी या पनाचुरी**—छतीली (छत्तेदार) घास है। फूल सफेद व पीले रंग का; यह चौमासे में उगती है।

(१२७) **पपोटन**—बेल; पत्ता गोल; फूल सफेद आता है।

(१२८) **पर्बती गोखरू**—देशी गोखरू से इसका पत्ता बड़ा होता है।

(१२९) **पहाड़िया**—बेल; नोंकदार चौड़ा पत्ता; चौमासों में पीला फूल आता है।

---

[1] "पहुला-हारु हियैं लसै, सन की बेंदी भाल।" बिहारी रत्नाकर, दो० २४८।

(१३०) **पसाई**—चावल के पौधे की एक जाति। इसका चावल जैसा दाना होता है।

(१३१) **पानखानी**—छत्तेदार घास है, जिस पर फूल सफेद और फली छोटी-सी आती है। इसके पत्तों को **बबरूती** (बबूल के पत्ते) के साथ खाने से मुँह पान जैसा रच जाता है।

(१३२) **पानियाँ**—पतेल की जाति का पौधा; पत्ते लम्बे होते हैं।

(१३३) **पापड़ी**—एक बालिश्त का पौधा; पत्ती लम्बी, फूल सफेद होता है।

(१३४) **प्यार**—इसका पौधा पानी में उगता है। इसकी आकृति गेहूँ के पौधे से मिलती-जुलती होती है।

(१३५) **पियाबाँसा**—काँटेदार पौधा; ऊँचाई लगभग दो हाथ। फूल लाल या पीले रंग का आता है। इसे **कँटीला पीयाबाँसा** भी कहते हैं।

(१३६) **पीतपापरा या पित्त पापड़ा**—एक बालिश्त ऊँचा पौधा; इस पर गुलाबी रंग का फूल चौमासों में आता है।

(१३७) **पीपर**—बेलदार घास है; बरसात में अधिक हो जाती है। इस पर गोल पत्तियाँ और गुलाबी फूल आते हैं।

(१३८) **पीसकोरा**—बेल चलती है; पत्ती गोल; फूल सफेद।

(१३९) **पूरबी मेंथी**—यह खेतों में पूस में उगाई जाती है। पत्ते छोटे पान के-से; फूल पीला आता है।

(१४०) **पैंतिया**—इसकी बेल चलती हैं; पत्ते मेहँदी के-से; फूल सफेद। इसका साग बनता है। यह चौमासों में ज्वार-बाजरा के खेतों में भी उग आता है।

(१४१) **पोला (पोलंगा)**—यह घास लगभग दो बालिश्त ऊँची झूँड़ के से रूप में ही बढ़ती है। पत्तियाँ नहीं होतीं बल्कि एक साथ कई तने ही पोली और लम्बी पत्तियों के रूप में उगते हैं, जिन पर छोटी-छोटी गोलियाँ-सी लगती हैं। पोले पर सफेद फूल आता है। यह घास प्रायः जौ-गेहूँ के खेतों में उग आती है। यदि गाय-भैंस को पोला अधिक खिला दिया जाय तो **ढाँड़ा** (पतला गोबर) चल जाता है।

(१४२) **फफूला**—(सं० प्रफुल्ल)—यह पौधा पानी में पैदा होता है। पानी में से एक डंडी-सी उगती है और उसके ऊपर सफेद फूल लगता है। डंडी का ऊपरी सिरा ही फूल में परिवर्तित हो जाता है।

(१४३) **फरफेंदुआ**—इसे **कौहरा** या **इनारिन**[1] (सं० इन्द्राणिका) भी कहते हैं। यह बेल है जो भूड़रों (रेतीले खेतों) में चैत-बैसाख में उग आती है। इसके पत्ते तरबूजे की भाँति कटावदार; और फल टमाटर के समान गोल होता है। फल बहुत कड़ुआ होता है। फूल पीलापन लिए हुए सफेद रंग का आता है।

(१४४) **फुलेल**—यह छत्तेदार घास है जिस पर गोल पत्ते और सफेद फूल आते हैं।

(१४५) **फुलैदी या फुलैदिया**—यह एक हाथ ऊँचा पौधा होता है, जिस पर सफेद रंग की बाल-सी लगती है।

---

[1] "अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै।"
भारतेन्दु ग्रंथावली भाग २, काशी ना० प्र० सभा, प्रेमफुलवारी, पद २०

(१४६) **फूलना या फुल्लना**—यह दो तरह का होता है—(१) **पीरिया**—पीले फूल का, (२) **सेत फुला**—सफेद फूल का। इस पौधे की ऊँचाई लगभग दो हाथ; पत्ते बेरिया के से। खरीफ की फसल में उग आता है।

(१४७) **बट्ट**—इसे **जरनावा** भी कहते हैं। लम्बी नुकीली पत्ती होती है। इस घास की बेल चलती है।

(१४८) **बथुआ**—(सं० वास्तूक) जौ-गेहूँ के खेतों में उग आता है। इसका पौधा एक बालिश्त ऊँचा बढ़ता है। इसके पत्तों का साग और रायता बनता है। किसी को तुच्छ बताते हुए कहते हैं—"तू को खेत कौ बथुआ ऐ!"

(१४९) **बनकचरिया**—इसकी बेल चलती है। पत्ते कटी हुई किनारी के होते हैं। फल लाल और गोल जो चखने में कड़ुआ होता है। फूल सफेद आता है।

(१५०) **बनकरेला**—बेल चलती है। करैले के-से पत्ते और फूल सफेद रंग का चौमासों में आता है। इसे **बनतोरई** भी कहते हैं।

(१५१) **बनमूरी**—इसे **सहंसमूरी** (सं० सहस्रमूलिका) भी कहते हैं। यह मूली की भाँति होती है, लेकिन इसकी जड़ में अनेक मूलियाँ-सी निकलती हैं।

(१५२) **बनरक**—यह झूँड़दार घास है, जो पतेल से मिलती-जुलती होती है। इसमें पोली डंडी निकलती है, जिसकी नगालियाँ (हुक्के की नै) भी बनती है।

(१५३) **बनहल्दी**—यह पौधा प्रायः बन और ईख के खेतों में पाया जाता है। फूल पीला और पत्ते तिकौने-से होते हैं।

(१५४) **बबुरिया कुंड**—यह पानी की बेल है, जिसमें बबूल के से पत्ते लगते हैं। फूल सफेद रंग का आता है।

(१५५) **बरू**—बाजरे के खेत में होता है। पौधे की ऊँचाई लगभग ५ हाथ होती है। बाल छितरी हुई होती है। पशुओं को खिलाते हैं।

(१५६) **बलिया घास या बलिया समाँ**—यह एक प्रकार की घास है, जो लगभग डेढ़ हाथ ऊँची बढ़ जाती है। इस पर सफेद दानों की लम्बी बालें लगती हैं।

(१५७) **बसीला**—एक हाथ ऊँचा पौधा जिसके पत्ते मेहँदी के-से होते हैं।

(१५८) **बाइसुरई**—एक हाथ ऊँचा पौधा है जिस पर बैंजनी रंग के फूल और छोटी-छोटी गोलियों के समान फल बैसाख-जेठ में आते हैं।

(१५९) **बाकला**—हाथ भर ऊँचा एक प्रकार का पौधा जिस पर पूस-माह में फलियाँ आती हैं। उन फलियों का साग बनता है। मटर की फलियों के समान उनमें से भी **मकौने** (गोल दाने) निकलते हैं। बाकले के पौधे खेतों में उगाये जाते हैं।

(१६०) **बाँगरन अरहर**—यह बेलदार घास है जिसके पत्ते और फलियाँ सेम की-सी होती है।

(१६१) **बारहमासी**—एक छत्तेदार घास जिस पर नीम के से पत्ते और बैंजनी (**बैंगनी**) रंग का फूल आता है।

(१६२) **बालछड़ी**—बारीक और पतले पत्तों का दो हाथ ऊँचा पौधा, जो बरसात में उगता है।

(१६३) **बाबरी**—यह एक बालिश्त का पौधा है, जिस पर सफेद फूल आता है। यह घास **बवासीर** (अर्श) के रोग में काम आती है। कुछ भ्रमित मति के व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि—"बाबरी घास नाँखि आयौ है।[1]"

(१६४) **बाँसी**—एक प्रकार की झूँड़दार घास है।

(१६५) **बिरमी या ब्रह्मी** (सं० ब्राह्मी)—पानी के सहारे बेल चलती है। इसके पत्ते गोल और फूल लाल-सा आता है। यह ठंडी तासीरवाली रूखड़ी है।

(१६६) **बिरम डंडी**—कँटीली झूकटी-सी; पत्ता छोटा; फूल पीला।

(१६७) **बिसखपरा**—बेलदार घास है। पत्ते गोलाईदार और फूल सफेद होता है। चौमासों में उगती है।

(१६८) **बीछू या बीछूफल**—इसका पौधा तीन हाथ ऊँचा होता है। ढाक के-से पत्ते और फूल पीला सावन-भादों में।

(१६९) **बुचबुचा**—लगभग डेढ़ बालिश्त का पौधा जिस पर बैंजनी-सा फूल आता है। यह घास सावन-भादों में उगती है।

(१७०) **बुरबुरी या भुरभुरिया**—एक बालिश्त ऊँचा पौधा जिस पर सफेद फूल आता है। इस पौधे को **भुड़भुड़ी** या **भुड़भुड़िया** भी कहते हैं। यह बन-मक्का की फसल के साथ उग आता है।

(१७१) **बूना या बुआ**—लगभग ५-६ अंगुल की झूँड़दार घास, जिस पर सफेद फूल आता है।

(१७२) **बेलगिरी**—बेल चलती है। इस पर लाल फूल और गोल फल आता है।

(१७३) **भँगरा या भाँगरौ**—यह **भाँग** (भंग) को ही एक जाति है। पौधा लगभग दो-ढाई हाथ ऊँचा होता है, जिस पर सफेद फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ बड़ी नशीली होती हैं। काले गोल बीज आते हैं। भँगरे की पत्तियाँ और बीज भाँग की तरह ही नशीले होते हैं।

(१७४) **भाँगर**—छत्तेदार घास; सफेद फूल; चावल-सा बीज आता है।

(१७५) **भाभर**—यह झूँड़दार ऊँची घास है जिसकी रस्सी बनती है।

(१७६) **भुरीं या भूरी घास**—इसका रंग कुछ सफेद-सा होता है। काली घास के पत्तों से कुछ अधिक चौड़े पत्ते होते हैं। इस घास की बेल चलती है।

(१७७) **भेड़िया**—बेल चलती है। बालों की भाँति पतली पत्तियाँ और पीले फूल चौमासों में आते हैं।

(१७८) **मकरकरा**—इस घास का पौधा लगभग एक हाथ बढ़ता है। इसे पशु खाते हैं।

(१७९) **मकरा या मकरीली घास**—इसकी बेल चलती है। पत्ती लंबी और फूल कुछ-कुछ लाल-सा आता है।

(१८०) **मकोई**—इसका पौधा दो हाथ का होता है। छोटी-छोटी गोलियाँ-सी आती हैं। मकोई दो तरह की होती है (१) **काली मकोई** (२) **लाल मकोई**।

(१८१) **मछेछी**—छत्तेदार होती है लेकिन कुछ बेल भी चलती है। इस घास पर फूल गुलाबी और फल घुंडी-सा आता है।

---

[1] **सं० उल्लंघन>हिं० लाँघना। इस क्रिया के लिए अलीगढ़ की बोली में 'नाँखना' शब्द चालू है।**

(१८२) **मटरी**—बेल चलती है। फूल पीला और फली पतली आती है। पत्तियाँ मटर की-सी होती है।

(१८३) **मड़ुओ**—यह घास प्रायः भादों-क्वार में मक्का-बाजरे के खेतों में उग आती है।

(१८४) **मरोर फरी**—बेलदार घास है जिस पर छोटी फली मटर की-सी आती है, लेकिन वह फली इँठी हुई सी होती है।

(१८५) **महाबर**—बेलदार घास जिस पर तिकौने पत्ते और लाल फूल आता है।

(१८६) **मिस्सी**—लगभग एक बालिश्त के बीच में छत्ता मारकर फैल जाती है। इस घास पर जो बाल आती है, उस पर जीरे के-से दाने लगे रहते हैं।

(१८७) **मूँज** (सं० मुंज)—झूँड़दार (झुंडदार) घास जिसकी रस्सी बनती है।

(१८८) **मेंमड़ी**—लगभग दो-ढाई हाथ का पौधा जिसके पत्ते कुछ-कुछ अमरूद के पत्तों से मिलते हैं।

(१८९) **मोख**—झूकटी-सी होती है जिस पर चौमासों में गुलाबी फूल आता है। पौधा लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा होता है।

(१९०) **मोथा**—झूँड़दार घास जो लगभग एक बालिश्त ऊँची होती है। फल जौ के आकार का होता है, जो जड़ में चिपटा हुआ होता है। जड़ के अन्तिम सिरे पर काली गाँठ-सी लगी रहती है। यह घास प्रायः जौ-गेहूँ के खेतों में उग आती है। इस पर लाल-सा फल आता है। मोथे (सं० मुस्तक)[1] को पशु खाते हैं।

(१९१) **मोरैला या मोरहरा**—गोल पत्तियों का एक बालिश्त का पौधा जो पूस-माह में उग आता है। इस पर पीला फूल और बादामी रंग का मेथी का-सा बीज आता है। इस घास को पशु खाते हैं।

(१९२) **रतनजोति**—यह छत्तेदार घास है जिस पर पीला फूल चौमासों में आता है।

(१९३) **रतालू**—इसकी बेल आलू या शकरकन्दी की भाँति होती है। गंगा नदी के पास लोग उसे उगाते हैं। रतालू की बेल **लबगुरनियाँ** कहाती है।

(१९३) (अ) **रतुआ**—लगभग दो हाथ ऊँचा पौधा; फूल पीला चौमासों में; फली लगभग एक बालिश्त लम्बी आती है।

(१९४) **रमासिन**—पीले फूल का डेढ़-दो हाथ ऊँचा पौधा जिस पर कातिक में फली आती है। इसका पौधा धुरंटे पौधे से कुछ मिलता-जुलता होता है।

(१९५) **रसभरी**—कुछ छत्तेदार लेकिन बेल चलती है। पत्ते गोल और फूल सफेद और पीले आते हैं।

(१९६) **राइसेंना**—हाथ भर का पौधा, जिस पर चैत में लाल फूल और फिर **ढेंमने** (छोटे गोल फल) आते हैं।

(१९७) **राम की गुड़िया**—एक बालिश्त ऊँचा पौधा जिस पर बैंजनी फूल आता है।

(१९८) **रामचना**—यह घास झूँड़ के रूप में; एक बालिश्त ऊँची बढ़ती है। पत्ते चने के-से जो साग में काम आते हैं।

---

[1] "सभद्रमुस्तं परिशुष्क कर्दमं सरः खनन्नायतपोत्रमण्डलैः।"

—कालिदास, ऋतुसंहारम्, ग्रीष्मवर्णनम् १।१७

(१९९) **लजमन्ती**—इस घास का पौधा हाथ भर ऊँचा होता है, जिस पर चौमासों में पीला फूल आता है।

(२००) **लड़सी** या **लड़सौ**—पानी में चौपतिये तने का दो हाथ ऊँचा पौधा उगता है, जिस पर सफेद फूल आता है।

(२०१) **लहसुआ** या **ल्हेसुआ**—हाथ भर ऊँचा पौधा; लाल फूल; चौमासों में मक्का-ज्वार के खेतों में।

(२०२) **ल्हैदर**—छतीली घास, सफेद फूल, गोल घुण्डी सी आती है, जिसमें बीज निकलते हैं।

(२०३) **लौनिखा** या **नौनखा**—यह बेलदार छतीली घास है जिसके पत्तों का स्वाद नमकीन होता है। फूल पीला आता है, सावन-भादों में।

(२०४) **लौनियाँ**—यह बेलदार घास है, जिस पर लाल और पीले फूल चौमासों में आते हैं।

(२०५) **संखाहोली** या **संकाहोली**—यह छत्तेदार घास है, जिसकी बेल चलती है। चने के से पत्ते और फूल सफेद और गुलाबी रंग का होता है। यह घास दवा में काम आती है। इसे **संखपुसपी** (शंखपुष्पी) भी कहते हैं।

(२०६) **संटन**—बेलदार गुलाबी फूल की घास है, जो कुओं की कोठियों में भी उग आती है। दवा में काम आती है।

(२०७) **समा** या **सवाँ** (सं० श्यामाक) यह **बहेरू धान** (जंगली चावल) भी कहाता है। इसका पौधा लगभग एक-डेढ़ बालिश्त का होता है, जिसकी बाल में भादों-क्वार में छोटे-छोटे दाने आते हैं। (सं० कोद्रव—श्यामाक > हिं० कोदों-सवाँ)।

(२०८) **समाई**—यह पौधा लगभग डेढ़ हाथ ऊँचा होता है, जिस पर चौमासों में सफेद फूल आता है।

(२०९) **सत्यानासी**—यह काँटेदार जंगली पौधा है, जिसकी ऊँचाई लगभग दो हाथ होती है। गर्मियों में पीला फूल आता है। इसे **कँटीला भरभण्डा** भी कहते हैं।

(२१०) **सहदेई** या **सैदेई**—यह छतीली घास है जिस पर बैंजनी रंग का फूल आता है।

(२११) **सरफोंसा**—एक विशेष प्रकार की घास।

(२१२) **साँट** या **साँठ**—गुलाबी फूल की बेलदार घास। पत्ते अठन्नी की भाँति गोल और फूल गुलाबी। प्रसव काल में बच्चा जल्दी हो जाने के लिए गर्भवती की कमर से इस घास को बाँध देते हैं।

(२१३) **सितावर** (शतावर)—एक घास विशेष जिसकी बेल चलती है।

(२१४) **सिवार** (सं० शेवाल)—पानी की एक बेल जो काई के रूप में तालाब या नदियों के किनारों पर जम जाती है।

(२१५) **सिवलिंग**—छतीली घास जिस पर लम्बा फूल आता है।

(२१६) **सीता-माता**—एक हाथ ऊँचो घास जिसे पशु खाते हैं। इस पर गोली-सा फल लगता है। यह जौ-गेहूँ के खेतों में उगती है।

(२१७) **सीता सरसों**—एक-डेढ़ हाथ ऊँची घास जिस पर घुंडी-सी लगती है और उसमें से सरसों जैसे छोटे और गोल बीज निकलते हैं।

(२१८) **सीता सोंहनी**—लगभग दो हाथ का पौधा जिसमें से ऊपर को सींकें-सी निकलती हैं।

(२१९) **सुकलाई**—यह लगभग पाँच-छः हाथ ऊँचा रूएँदार पौधा होता है। रस और गुड़ बनाने में इसका निखार लगता है। तिल के पौधे की फलियों के बराबर ही सुकलाई की फलियाँ होती हैं।

(२२०) **सुखदेई**—बैंजनी फूल की दो बालिश्त की घास जो चौमासों में होती है।

(२२१) **सुरदासन या सुदर्सन**—झुण्ड के रूप में उगनेवाला पौधा जिसकी पत्तियाँ तलवार की भाँति होती हैं। इस पर सफेद फूल लगता है। कान के दर्द में सुदर्सन के पत्ते का रस लाभ करता है।

(२२२) **संजा**—पीले फूल की हाथ भर ऊँची घास।

(२२३) **सेंठा**—यह घास एक बालिश्त की होती है। सेंठा एक गहना भी है जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं। यह गोल होता है। सेंठा घास पर पीले रंग का सेंठा नाम के आभूषण-सा फूल आता है। अतः इस घास को भी **सेंठा** कहते हैं।

(२२४) **सेतफूली**—सफेद फूल की बेलदार घास।

(२२५) **सेंद**—मक्का-ज्वार की फसल में एक बेल उग आती है, जिस पर अंडाकार फल आता है।

(२२६) **सैलरा या सौलरा**—सफेद फूल की बेल जिस पर तोरई से पतला फल आता है। किसान के बैलों के जूए में जो **सैल** (एक तरह की छोटी लकड़ी) पड़ती है, उसी के समान फल होता है। संभवतः इसीलिए इस घास को **सैलरा** कहते हैं।

(२२७) **हंसराज**—यह बेलदार घास है, जो कुएँ की कोठी में उग आती है। परछाँव के फोड़ों के लिए यह अच्छी दवा है। इस पर गुलाबी फूल आता है।

(२२८) **हजारदाना**—झोझुरू की भाँति इस पर हजारों बीज आते हैं। इसका पौधा एक बालिश्त का होता है।

(२२९) **हड़जुरी**—सफेद फूल की एक बालिश्त ऊँची घास।

(२३०) **हरदी**—इसे उगाते हैं। इसका पौधा डेढ़ हाथ का केली की भाँति होता है।

(२३१) **हाथीचक**—इसे उगाते हैं। हथेली का-सा पत्ता और फूल पीला आता है।

(२३२) **हाथी चिंघार** या **हाथी चिक्कार**—चने से के पत्ते वाली बेल जिस पर पीला फूल आता है।

(२३३) **हिन्नखुरी**—इस घास की बेल चलती है। फूल नीचे गुलाबी ऊपर सफेद। पशुओं को खिलाई जाती है। इसके पत्तों की बनावट हिरन के खुरों के समान होती है।

(२३४) **हींस**—यह झाड़ीदार पौधा है जिस पर सफेद फूल और लाल फल मटर जैसा गोल आता है। उस फल को **हींसा** कहते हैं। मुहावरे में मूर्ख आदमी को **'हींस का सूआ'** भी कहा जाता है। **'हींस का काँटा'** प्रसिद्ध मुहावरा है। हींस का काँटा उलटा लगता है।

(२३५) **हुलहुल**—इसकी ऊँचाई दो हाथ होती है। सफेद फूल और सरसों जैसी फली आती है।

पेड़-पौधे

§६००—**तुरसावरों के नाम**—जिन पेड़-पौधों पर खट्टे रस की फलियाँ और फल आते हैं, वे **तुरसावर** कहाते हैं। तुरसावरों के नाम यहाँ अकारादि क्रम से दिये जाते हैं।

(१) **अनार**—लाल फूल का पौधा। यह तीन तरह का होता है—(१) **कन्धारी** (२) **देसी** (३) **बीदाना**। खट्टे अनार को मीठे फल का बनाने के लिए उसकी जड़ में माली **खाती** (बकरे का गोश्त और खून) लगाते हैं। श्रीहर्ष ने नैषध में इस ओर संकेत किया है।[१] एक वस्तु के पाने के लिए जब कई व्यक्ति इच्छुक हों तो कहा जाता है—**"एकु अनारु सौ बीमार।"**

(२) **आमरौ**—यह तीस-चालीस हाथ ऊँचा पेड़ होता है। फागुन सुदी एकादशी के दिन आमरे (सं० आमलक) की पूजा देवता के रूप में की जाती है। इस पर स्त्रियाँ बेर, सिंगाड़ी और जल चढ़ाती हैं। **अखै नौमी** (कार्तिक शुक्ला नवमी) के दिन भी ब्रह्मा के रूप में इसकी पूजा की जाती है।

(३) **इमली**—इस पेड़ के पत्ते बहुत छोटे होते हैं। कहावत के रूप में **टोंक** (व्यंग्य) मारने के समय कह दिया जाता है—

"लल्लोचप्पो में कहा धरौ। इमली के पत्ता पै मौज करौ।"[२]

इमली की कच्ची फली को **चोइया** या **फउआ** कहते हैं। पके हुए फउए **कटारे** कहाते हैं।

(४) **ककरौंदा या करौंदा**—कँटीला पौधा है, जिसके पत्ते नीबू से मिलते-जुलते हैं। इस पर फल लाल और हरे रंग के छोटे बेर-से आते हैं, जिनका अचार पड़ता है।

(५) **कमरख**—इस पर खाँपदार लंबोतरा-सा फल आता है, जिसका अचार पड़ता है।

(६) **कैत** (सं० कपित्थ)—इस पेड़ पर कड़े खोपटे के गोल फल आते हैं, जिनका गूदा बड़ा खट्टा होता है। इसकी तासीर ठंडी होती है।

(७) **खट्टा**—इसका पौधा नीबू या मिट्ठे से मिलता-जुलता होता है। गोल पत्ता; पीला फूल।

(८) **खटाई**—कँटीला पौधा जो हींस के पौधे की तरह होता है।

(९) **चकोतरा या तुरंज**—नीबू के पौधे से मिलता-जुलता पौधा जिस पर सन्तरे से बड़ा फल आता है।

(१०) **जम्हीरी**—नीबू की जाति का पौधा जिस पर गोल फल आता है (सं० जंभीर > जम्हीर > स्त्री० जम्हीरी)।

(११) **नारङ्गी**—लाल गोल फल का पौधा (सं० नागरंग; अ०; फा० नारंज = नारंगी[३])।

(१२) **नीबू**—इसकी तीन जातियाँ हैं—

(१) **बिजौरा** (सं० बीजपूर) बड़े फल का पेड़।

(२) **कागजी नीबू**—पतले छिलके का नीबू।

---

[१] "फलानि धूमस्य धयानधोमुखान्
स दाडिमे दोहद धूपिनि द्रुमे।"
श्रीहर्ष : नैषध० १।८२

[२] खुशामद करने में क्या रक्खा है? अब तो इमली के पत्ते पर बैठकर आनन्द कीजिए।

[३] 'भर जोबन एह नारँग साखा'—डा० माताप्रसाद गुप्त, जायसी-ग्रंथावली पद्मावत ३४३।७

(१२) **कठा नीबू**—कड़े छिलके का नीबू। बिजौरे को **कोलियायौ नीबू** भी कहते हैं। इस पर दो बार फल आता है। साल में जिन पौधों पर दो बार फूल-फल आते हैं, वे **दुबरेजी** कहाते हैं (सं० निम्बू, फा० लेमूँ = नीबू)।

(१३) **फालसा**—लगभग दो तीन हाथ का पौधा जिस पर मटर-से हरे फल लगते हैं और वे पकने पर लाल तथा काले हो जाते हैं।

(१४) **मिट्ठा**—कच्चे मिट्ठे का रस कुछ खट्टा-सा होता है। इसका पौधा नीबू के से मिलता-जुलता है। मिट्ठे के पत्ते नीबू के पत्तों से कुछ बड़े होते हैं।

(१५) **मुसम्मी**—यह मिट्ठे की जाति से मिलता हुआ पौधा है। छोटी गोल पत्ती नीबू की-सी।

(१६) **लुकाट**—यह अमरूद के पेड़ के बराबर ऊँचा होता है, जिस पर आम के-से पत्ते और पीले फल आते हैं।

(१७) **सन्तरा**—नारंगी से मिलती हुई जाति का पौधा जिस पर रसीली फाँकों का गोल फल आता है (पुर्त० संगतरा>संतरा)।

(१८) **सहसूत या सैतूत** (फा० शहतूत, तूत)—इस पेड़ पर गुलाबी या सफेद रंग का फल, जो बाल की तरह होता है, गर्मियों में आता है। बुड्ढे लोग भी इसको खा सकते हैं। इसीलिए शहतूत के सम्बन्ध में प्रचलित भी है—

"सैतूत गुलाबी मेवा। तू कर बूढ़े की सेवा॥[१]

(१९) **सिलहैट**—नीबू से मिलता-जुलता पौधा जिस पर गोल फल आता है।

§६०१—**फलूचों के नाम**—जिन पेड़ों के फल बिना उबाले हुए ही खाये जाते हैं वे पेड़ **फलूचे** कहाते हैं, जैसे अमरूद और आम। यहाँ फलूचों के नाम अकारादि क्रम से लिखे जाते हैं।

(१) **अंगूर**—इसकी बेल चलती है।

(२) **अंजीर**—(अ० इंजीर)—सफेद फूल का पौधा। फल गोल सुपाड़ी-सा।

(३) **अंडखरबूजा**—इसका पौधा अंडउए से मिलता-जुलता होता है। इसे **पपीता** भी कहते हैं।

(४) **अमरूद या सपड़ी**—बिचौंदा पेड़ जिसका तना सफेद-सा होता है। इसे मुरादाबाद में **असपरी** भी कहते हैं। मालवा की मालवी बोली में यह **जाम** कहाता है।

(५) **अलूचा**—गोल फल और पत्तियाँ मिर्च की-सी।

(६) **आड़ू**—खट-मिट्ठे फल का एक पौधा।

(७) **आम**—इसके कई भेद हैं—(१) **देसी या बीजू** (२) **कलमी** (३) **लँगड़ा** (४) **फजली** (५) **दसैरी** (६) **मालदा** (७) **टिकारी** (८) **तुखमी** (९) **बंबई** (१०) **किसन भोग** (११) **तोतापरी** (१२) **क्वारिया** (१३) **चौसा** (१४) **जाफरान** (१५) **तमंचा** (१६) **सफेदा**। आम का फूल **बौर** कहाता है। आम के बौर में सरसों के बराबर लगा हुआ फल **सरसई**, और सरसई से कुछ बड़ा **टिकोरा** कहाता है। नई अमिया के अन्दर की मींग **बिजुली** कहाती है। आम की गुठली को जब जमीन में गाड़ दिया जाता है, तब उसमें से कुछ दिन बाद **कुल्ला** या **किल्ला** (अंकुर) फूट पड़ता है। उस समय उसके अन्दर की गुठली को **पपइया** कहते हैं। सावन-भादों में बालक उसे पीपनी की भाँति बजाया भी करते हैं। उसे घिसकर बजाने योग्य बनाते

[१] शहतूत गुलाबी रंग की मेवा है। उन्हें खिलाकर तू बुड्ढे पुरुषों की सेवा कर।

समय बालक कहा करते हैं—"मेरौ पपइया आम कौ, काम कौ खट्टे बबूर सौ, कोइल[1] बोलै पट पीं पट पीं।"

आम के फल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—"नर कैं ते नारी जनमी है गरभु पेट में लाई ऐ।"[2]

जिस अमिया पर काला दाग-सा लग जाता है, उसे **कोइलपादी** कहते हैं। आमों के पेड़ों का समूह **अमराई** (सं० आम्रराजि) कहाता है। जिस बाग में एक लाख आम के पेड़ हों, उस बाग को **लखपेड़ा** कहते हैं। देसी आमों में रंग के विचार से **पीरिया** (पीला) और **सिंदूरिया** (=जिसका कुछ हिस्सा लाल रंग का हो) बहुत प्रसिद्ध हैं। आम के फल में डंठल का भाग **टोपी** कहाता है। टोपी के निम्न भाग में से जो सफेद रस-सा निकलता है, वह **चैंप** कहाता है।

(८) **केरा**—इस पर लगी हुई फलियों का गुच्छा **गहर** या **गैर** कहाता है। इस पौधे पर लाल रंग का बड़ा-सा फूल लगता है। एक बार ही गैर आती है, अतः दुबारा गैर पाने के लिए केले के तने को काट देते हैं। वह फिर बढ़ता है तब गैर आती है। केले के तने के ऊपर पर्त होते हैं जो **गाभा** कहाते हैं। स्त्रियाँ वृहस्पति के दिन चने की दाल से केले की पूजा करती हैं।

(९) **खिन्नी** या **खिरनी**—इस पर निबौरी के बराबर पीला फल आता है, जिसमें कुछ-कुछ मीठा दूध-जैसा रस भरा रहता है। खिरनी पर फागुन-चैत में सफेद फूल आता है।

(१०) **जामुन** (सं० जम्बू) यह पेड़ दो तरह का होता है—(१) **असाढ़ा जामुन** (२) **भदइयाँ जामुन**। असाढ़ा जामुन के फल असाढ़ में, भदइयाँ के भादों में पक जाते हैं। भदइयाँ का फल असाढ़ा से छोटा होता है।

(११) **नाग** या **नख**—यह नासपाती की एक जाति है।

(१२) **लीचू**—गोल फलों का एक पेड़।

(१३) **सीताफल**—उठी हुई बिन्दियों के गोल फलों का एक पेड़ **सीताफल** या **सरीफा** कहाता है।

(१४) **सेब**—नाशपाती से मिलता-जुलता लाल चित्तियों के गोल फलों का एक पौधा।

§६०२—सामान्य पौधों और पेड़ों के नाम—जिस पौधे की ऊँचाई कम से कम ८-१० हाथ हो और जो आदमी का बोझ भी साध ले उस पौधे को काछी-माली **पेड़** नाम से ही पुकारते हैं। लेकिन बहुत मोटे और लंबे-चौड़े पेड़ को वे **दरखत** (दरख्त) कहते हैं। उनकी बोली में अमरूद पेड़ है और पीपल दरखत।

(१) **अंडउआ या अंड** (सं० एरण्ड)—एक पौधा जिस पर अंडी नाम के गोल फल लगते हैं। प्रत्येक फल में **चीये** (अंडी के बीज) निकलते हैं, जिनसे तेल निकाला जाता है। बहुत छोटे नये फलों का लंबा गुच्छा **गौर** कहाता है। जब गौर बढ़ जाती है तो उसे **गवा** या **अंडी** कहते हैं। अंडउए का फूल **बौर** कहाता है। गवे का अकेला गोल फल **ढैंमना** और उसका १।३ भाग **औंगना** कहाता है। एक औंगने में से एक चीया निकलता है।

(२) **अंड सितारा**—एक पौधा जिस पर लाल फूल आता है।

(३) **अकोला**—गुमटीदार पेड़ जिसके फल हिलते हुए दाँतों को जमाने में लाभ पहुँचाते हैं।

---

[1] **कोइल** = पपइये के अन्दर की गुठली भी **पपइया** या **कोइली** कहाती है।

[2] आम का फल पुंलिंग है। उसके अन्दर की कोइल सहित गुठली स्त्री लिंग है।

(४) **अजान**—यह बिचौंदे कद का पेड़ है, जिसकी पत्तियाँ उँगली के बराबर होती हैं।

(५) **अमरख**—गोल पत्तों का एक पेड़ जिस पर पीला फूल आता है।

(६) **अमलतास**—इस पेड़ पर काली मोटी फलियाँ आती हैं, जिन्हें **नागफरी** कहते हैं। नागफरी दवा में काम आती है। अमलतास की पत्तियाँ जामुन की-सी होती हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे ही (हिन्दी साहित्य की 'भूमिका पृ० २३६) 'कर्णिकार' बताया है। अमलतास के लिए संस्कृत में 'आरग्वध' शब्द भी है।

(७) **अरंड ककड़ी**—चौड़ी कटावदार पत्तियों का एक पेड़।

(८) **अरलू या उरू** (सं० अरलु)—इसके पत्ते नीम के-से और फल नीम की निबौरी-सा होता है। छाल संग्रहणी रोग में काम आती है।

(९) **अलउआ**—इस पेड़ पर सफेद फूल और सिंगाड़े-सा फल आता है।

(१०) **अलौंड़ौ**—गोल पत्तियों का पेड़ है, जिस पर पीला फूल आता है।

(११) **असोक** (अशोक)—इस पर आम के-से लेकिन लहरदार किनारीवाले पत्ते आते हैं। अशोक वृक्ष के सम्बन्ध में कवि-प्रसिद्धि है कि सुन्दरियों की लात से यह फूल उठता है।[१] जामुन का सा गुच्छेदार सुनहरी पीला बोर इस पर बैसाख में आता है। फल आकृति में नीम की निबौरी-सा होता है, जो रंग में हरा लेकिन असाढ़ में पकते समय वह फल कुछ काला-सा पड़ जाता है। बीज का रंग लाल होता है।

(१२) **आबनूस या तेंदू**—यह जंगली पेड़ है, जिसकी लकड़ी काली होती है। कोई-कोई इसे बाग में भी लगाते हैं। इसे संस्कृत में 'कोविदार' कहते हैं।

(१३) **इलाइची**—इस पेड़ पर पीला फूल आता है। पत्तियों में सुगन्ध आती है।

(१४) **इलीची**—एक पेड़ जिस पर पीला फूल आता है।

(१५) **उसबा** (फा० उशबह्)—इसकी छाल और पत्तियों से खून साफ करने की दवा बनती है।

(१६) **ककइया**—इस पर फागुन में पीला बोर आता है।

(१७) **कठगूलर या कठूमर**—गूलर की भाँति ही इस पर गोल फल लगते हैं, लेकिन वे सख्त होते हैं। गूलर के सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि इस पेड़ पर फूल नहीं आता। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"गूलर रोई फूल कूँ, फल कूँ रोयौ फरास।
बंझा रोई कोखि कूँ, देखि बिरानी आस ॥"[२]

---

[१] 'पादाघातादशोकः"। —मल्लिनाथी टीका मेघ० २।१९
"स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात् पादाघातादशोकस्तिलक कुरबकौ वाक्षणालिंगनाभ्याम्। मन्दारोनर्मवाक्यात् पटु मृदुहसनाच्चम्पको बक्त्रबाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः।" —दोहदप्रसिद्धिः; मल्लिनाथो टीका, उत्तर मेघ०, श्लोक १९

[२] गूलर फूल के लिए और फरास (एक पेड़) फल के लिए रोया। उसी प्रकार बन्ध्या नारी दूसरे का पुत्र देखकर अपनी कोख (सं० कुक्षि) के लिए रोने लगी।

(१८) **कठैर** (सं० कण्टकि फल > कंटइहल > कँटेहर > कठैर) इसके तने पर बड़े-बड़े फल बन्दर की तरह लटके रहते हैं। कठैर (कटहल) के फल का साग बनता है। फल के ऊपर कुछ काँटे-से उठे रहते हैं। इसे संस्कृत में 'पनस' भी कहते हैं।

(१६) **कदम** (सं० कदम्ब)—इस पेड़ पर पीलापन लिए हुए सफेद फूल लगते हैं। यह सावन-भादों में फूलता है। फूलने के समय का संकेत कालिदास ने मेघदूत में किया है।[१] कदम्ब के फूल पर छोटे-छोटे बाल-से उठे रहते हैं। तभी तो बिहारी ने नायिका के रोमांचित शरीर को कदम्ब की माला बताया है।[२]

(२०) **करूँखाँ**—यह छोटी पत्ती और सफेद फूल का पेड़ है, जिस पर आलू जैसा गोल फल आता है।

(२१) **कीकर या बबूर** (सं० बब्बूल)—इसकी छाल **कस** और पत्तियाँ **बबरूती** कहाती हैं। पीला फूल आता है और सफेद-सी फली। जब किसी किसान को **तिजारी** (तीसरे दिन आनेवाला ज्वर) या **चौथइया** (चौथे दिन आनेवाला ज्वर) आने लगता है, तब वह शुक्रवार या शनिवार को **अंटोक** (किसी से न टोका हुआ) बबूर के पेड़ से गले मिलता है और कहता है—

"मेरौ महमान तेरैं आवै। आउ-बैठना मन कौ पावै॥"[३]

गाँववालों का विश्वास है कि ऐसा करने से जाड़ा-बुखार दूर हो जाता है। बिना काँटों का एक बबूर **मकना** भी कहाता है। बबूल की कटी हुई काँटेदार सूखी शाखाएँ **ढाँकर** या **झाँकर** कहाती है।

(२२) **कौड़िया ढाक**—गोल **पेंपने** (पत्ते) और पीले फूलों का एक पौधा जो ढाक की ही जाति में से है। ढाक के फूल **टेसू** या **केसू** (सं० किंशुक) कहाते हैं। टेसू के रंगीन पानी से गाँवों में होली खेली जाती है। ढाक के नये पत्तों को भी **पेंपना** कहते हैं। **कनागत**[४] (सं० कन्यागत) के दिनों में **कागौर** (काकबलि) ढाक के पत्तों पर ही डाली जाती है।

(२३) **खंडार** या **खडारि**—लगभग पाँच हाथ ऊँचा पौधा; मामूली लम्बा पत्ता; फूल पीला चौमासों में।

(२४) **खजूर**—(सं० खर्जूर) ताड़ की तरह का पेड़ जिसके फल पीले रंग के बेर के बराबर होते हैं। खजूर के पत्तों को **पलिंगा** कहते हैं। **ताड़** (सं० ताल) का तना लम्बा और सपाट-सा होता है, लेकिन खजूर के तने में पत्तियों के डंठलों के ठूँठ से लगे रहते हैं और वह ताड़ से छोटा होता है। ताड़ के सिरे पर पत्ते होते हैं। वहाँ से एक रस-सा निकलता है, जो **ताड़ी** कहाता है। ताड़ को **तालबिच्छ** (सं० तालवृक्ष) भी कहते हैं।

(२५) **गूलर**—यह जंगली पेड़ है जिसके फल में उड़नेवाले छोटे-छोटे कीड़े निकलते हैं, जिन्हें **भिनुगा** कहते हैं। (अप० गुल्लर>हिं० गूलर। अप० ढक्क>हिं० ढाक)।[५]

---

[१] "सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं बधूनाम्।"—कालिदास, मेघ०, २।२

[२] "लहि प्रसाद-माला जु भौ, तनु कदम्ब की माल॥"
—बिहारी रत्नाकर, दो० ४७०।

[३] मेरा महमान तेरे यहाँ आएगा। तू उसे अच्छी तरह आउ-बैठना देना अर्थात् स्वागत करना।

[४] भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा से लेकर आश्विन कृष्णा अमावस्या तक के श्राद्धदिवस।

[५] सन्देशरासक, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४५ ई०, छन्द ४७,४८

(२६) **गौंदी**—इसकी छाल से मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं। स्त्रियाँ कभी-कभी अपने होंठ रँगने के लिए गोंदी की दाँतुन भी करती हैं।

(२७) **चारचरबी**—इस पेड़ पर शीशम के से छोटे गोल पत्ते और फली पतली पपड़ी सी आती है।

(२८) **छोंकरा**—इस पर इमली के से पत्ते, फूल पीला और गाँठदार फली आती है। इसका साहित्यिक नाम 'शमी' है। दशहरे के दिन (क्वार सुदी दशमी) स्त्रियाँ छोंकरे को पूजती हैं।

(२६) **जंगलजलेबी**—इमली के से पत्ते और फूल पीला, इसकी फली जलेबी की भाँति होती है।

(३०) **डूँगरा**—यह भी एक वृक्ष विशेष है। इसे **पीलू** भी कहते हैं।

(३१) **तुन** (सं० तुन्न)—एक पेड़ जिसकी लकड़ी बड़ी हलकी और कमजोर होती है।

(३२) **तेंदू** (सं० तिन्दुक)—इस पेड़ का **सार** (हीर) काले रंग का होता है जो कि आबनूस से मिलता-जुलता है। कोई-कोई तेंदू को 'आबनूस' कहते हैं।

(३३) **थूअर या थूहड़**—जंगली पौधा जिसकी पत्तियाँ पतली डंडी-सी होती हैं। इसमें से दूध-सा रस निकलता है जिसकी तासीर बड़ी गर्म होती है।

(३४) **दौनाबर—बर** (सं० वट) के-से पत्तों का बिचौंदा पेड़। मालियों का कहना है कि कन्हइया जी दौनाबर के पत्तों पर ही गोपियों से दही लेकर खाया करते थे।

(३५) **धूमर**—एक पेड़ विशेष।

(३६) **नीब या नीम**—सफेद बौर, पीले फल का पेड़। इसका फल **निबौरी** (सं० निम्ब-कपर्दिका>निंबकौड़ी>निबौरी) कहाता है। कच्ची निबौरी[1] बहुत कड़वी होती है। एक मीठा नीम भी होता है, जिसका पेड़ छोटा होता है और लाल बौर आता है।

(३७) **पसेंदू**—गुमटीदार बिचौंदा पेड़ होता है जिस पर गूलर जैसा गोल फल आता है।

(३८) **पाकड़ी** (सं० पर्कटी)—बिचौंदे आकार का एक पेड़।

(३८ अ) **पाड़रि**—हलके लाल रँग के फूलों का वृक्ष विशेष। पाणिनि (४।३।१३६) ने 'पाटली' नाम के एक वृक्ष का उल्लेख किया है। पउम चरिउ (३।१।८) में भी 'पाडली' नाम आया है।

(३६) **पापड़ी**—पीले फूल वाला एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ आम की पत्तियों से कुछ-कुछ मिलती हैं।

(४०) **पिलखुन** (सं० पीलुकुणा—पाणिनि ४।१।८६)—एक पेड़ जिस पर **बरगुदों** (=बरी के फल) के समान गोल फल आता है।

(४१) **पिलू या पीलू** (सं० पीलु)—इसके फल से मसूड़े और होंठ लाल हो जाते हैं। गाँव की स्त्रियाँ पीलू के फल से अपने होंठ कभी-कभी लाल किया करती हैं। पीलू का फल **लखौटे** (लाल लेप जो होठों पर किया जाता है) का काम करता है। पीलू के पेड़ को **'डूँगर'**; फूल को **बगर**; कच्चे फल को **घिर्री**; और पके फल को **पीलू** कहते हैं। डूँगर से मिलता-जुलता ही **'खड़ियान'** पेड़ होता है।

(४२) **पीपर** (सं० पिप्पल)—माली की बोली में यह दरखत है। इस पर लाल-सा गोंद

---

[1] "जीभ **निबौरी** क्यौं लगै; बौरी, चाखि अँगूर।"

—बिहारी-रत्नाकर, दो० १६७।

आता है, जिसे **लाख** कहते हैं। पीपल का छोटा और गोल फल **पीपरी** कहाता है जो बैसाख-जेठ में पकता है। पीपल को स्त्रियाँ इतवार और बैसाख सुदी पूरनमासी के दिन पूजती हैं। इसे संस्कृत में 'चलदल' भी कहते हैं।

(४३) **फरास**—यह एक जंगली पेड़ है, जिस पर फल नहीं आता। जब कोई मनुष्य रोग अथवा बुढ़ापे के कारण बहुत दुर्बल हो जाता है और उसको जिन्दगी का डेरा चलताऊ मालूम पड़ता है, तब उसकी हालत को बताने के लिए **'अधकाटे[1] फरास'** मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

(४४) **बकाइन या बकाइँद**—नीम के-से दाँतेदार पत्ते, फल निबौरी जैसे झुरेंदार आते हैं।

(४५) **बढ़ैर या बड़हल**—आलू जैसे खट-मिट्ठे फल का पेड़। फल चैत-बैसाख में आता है।

(४६) **बन्ना**—यह खिचौंदा पेड़ है, जिस पर अमरूद जैसा फल आता है।

(४७) **बर, बरी या बरगद**—बर (सं० वट) सबसे बड़ा दरखत (दरख्त) है। इसकी शाखाओं में से **लटें** निकलती हैं, जो जमीन में घुस जाती हैं। बर पर लाल तथा गोल फल आते हैं, जो **बरगुदा** कहाते हैं। **बरमावस** (ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या) को स्त्रियाँ बर की पूजा करती हैं।

(४८) **बहेड़ा**—गोल फल का एक पेड़। (सं० विभीतक>प्रा० बहेड़अ>बहेड़ा)।

(४९) **बाँस**—यह जंगली पेड़ है। बाँस के पेड़ों का समूह **बाँसी** कहाता है। किसी-किसी बाँस में से सफेद छोटी डेली-सी निकलती है जिसे **बंसलोचन** कहते हैं। लोगों का कहना है कि स्वाति नक्षत्र की बूँद बाँस में जब पड़ जाती है तब **बंसलोचन** बन जाती है।

(५०) **बेरिया**—काँटेदार पेड़ जिस पर बेर (सं० बदर>बयर>बइर>बेर) आते हैं। इसकी दो जातियाँ हैं—(१) **गोला** (२) **पैमदीं**। **बेरिया सातें** (माघ शुक्ल सप्तमी) को बेरिया की पूजा होती है। भैयाद्‌यौज (कातिक सुदी द्‌यौज) के दिन स्त्रियाँ ओखली में एक पूड़ी पर बेरिया के पत्ते रखकर उन्हें उल्टे धनकुटे से कूटती हैं और कहती जाती हैं—"ए.....(किसी पुरुष का नाम लेकर) के धरमारे बैरियरा। उल्टे धरमारे बैरियरा।"[2]

(५१) **बेल या बेलपत्थर** (सं० बिल्वपत्र)—यह एक कँटीला पेड़ है जिस पर बहुत कड़े खोपटे का बड़ा फल आता है। सावन में बेल के पत्ते शंकर जी की मूर्ति पर चढ़ाये जाते हैं।

(५२) **बोतलबुरस** या **हमा**—इस पर बालोंदार लम्बा फूल लाल रंग का आता है। इसकी पत्तियाँ बारीक होती हैं।

(५२ क) **भौरि**—पीले फूल का एक पेड़।

(५३) **महँदी**—लगभग चार हाथ का पौधा जिसकी पत्तियों को पीसकर स्त्रियाँ सावन में तीज और सलूने के दिन अपने हाथ रचाती हैं। इस पर छोटी गोलियाँ-सी आती हैं।

(५४) **मखिया**—गोल पत्तों का पौधा जिसकी लकड़ी बड़ी **पोच** (फा० पून=कमजोर) होती है।

(५५) **मनोकामना**—सफेद फूलों का चार-पाँच हाथ का पौधा।

(५६) **महुआ** (सं० मधूक)—पीले और सुगन्धित फूलों का पेड़, जिसका फल **गिलौंठा** कहाता है। महुए के फूलों में मीठी महँक आती है।[3]

---

[1] अधकाटे फरास होना=मृत्यु के निकट होना।

[2] अमुक व्यक्ति के बैरी पकड़कर उल्टे मार दिये।

[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महुए के फूलों की मीठी महँक का वर्णन करते हुए अपने बाबू टाइप साथी की प्रकृतिखान—शून्यता पर हलका पर भीतरी व्यंग्य कसा है।

(५७) **मानसरोवर**—इसका पौधा केला जैसा होता है और पत्ते भी आकार में केले के-से लम्बे और चौड़े होते हैं। मानसरोवर की जड़ में एक डोरा-सा निकलता है, जिसे **सुना** कहते हैं। यही पौधे का बीज होता है।

(५८) **मोरपंखी**—इसे बागों में शोभा के लिए लगाते हैं। इसकी पत्तियाँ नाचते हुए मोर के पंखों-सी दिखाई देती हैं। इस पर गोल फल आता है।

(५९) **रमासिन**—यह पीले फूल का पेड़ है।

(६०) **रीठा**—(सं० अरिष्ठ) इस पेड़ पर गोल पत्ते और पीले फल आते हैं।

(६१) **रैंमजा**—इमली या छौंकरे की-सी पत्तियोंवाला एक पेड़।

(६२) **लड़उआ**—बिचौंदे आकार का एक पेड़।

(६३) **लहबेड़ा या लभेड़ा**—गोल फल का पेड़ है। इसके फल पकने पर कुछ हल्के गुलाबी या बादामी हो जाते हैं, जिन्हें **रेंटा** भी कहते हैं। इनमें चिपकीला रस होता है।

(६४) **लोद** (सं० लोध्र)—पीले फूलों का पेड़। इस पर पूस-माह में फूल आते हैं। कालिदास के मेघदूत में वर्णित अलका की बधुएँ इसी का पराग मुँह पर लगाती थीं।[1]

(६५) **समालू**—सफेद फूल का छै-सात हाथ ऊँचा पौधा जिस पर मिर्च का-सा पत्ता और सफेद फूल आता है। टाँग में **सरै** (राध और खून का निकलना) चलने पर समालू की पत्तियों का **भपारा** (भाप की गर्मी) देते हैं।

(६६) **सरों**—मोरपंखियों से मिलते-जुलते एक पेड़ को सरों कहते हैं। यह बाग में सुन्दरता के लिए लगाया जाता है।

(६७) **सार**—(सं० शाल)—एक लंबा पेड़ जिसकी लकड़ी बढ़िया होती है। इसे **साखू** या **सखुआ** भी कहते हैं।

(६८) **सिरस** (सं० शिरीष)—इस पेड़ पर भूमका (कान का एक भूषण) जैसा पीला फूल आता है। यह पेड़ बैसाख-जेठ में फूलों से लदबदा जाता है। कालिदास के काव्यों में सिरस का फूल नारियों के कानों के आभूषण के रूप में बहुत प्रयुक्त हुआ है।[2]

(६९) **सिहोरा**—सफेद फूल और गोल पत्तियों का एक पेड़। इसमें दूध-सा रस निकलता है।

(७०) **सीसों** (सं० शिंशपा)—पीले बौर का एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और सुन्दर होती है (सं० शिंशया > अप० सीसव > सीसउ > सीसों)।

(७१) **सेंजना या सहजना** (सं० शोभांजन)—इस पेड़ पर सफेद फूल और फलियाँ आती हैं। फलियों का अचार भी पड़ता है।

(७२) **सैमर** (सं० शाल्मलि)—इस पेड़ पर लाल रंग का फल आता है, जो देखने में सुन्दर होता है, लेकिन अन्दर रुई होती है। सूए (तोते) स्वाद के लिए चोंच मारते हैं, लेकिन मिलती है सूखी रूई।

---

[1] "नीतालोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।"—कालिदास : उत्तर मेघ० श्लोक २।
"प्रफुल्ल लोध्रः परिपक्वशालिः"—कालिदास, ऋतुसंहारम्, हेमन्तवर्णनम् ४।१

[2] 'चूड़ापाशे नवकुरबकं चारुकर्णे शिरीषम्।"
—कालिदास : उत्तर मेघ० श्लोक २।

(७३) **सैंहड़**[1] (सं० सिहुण्ड)—काँटेदार पौधा जिसमें से दूध-सा रस निकलता है। किसी बलवान से जब कमजोर भिड़ जाता है तब 'सैंहड़ ते पींठ रिगसत्वै' मुहावरे का प्रयोग होता है।

(७४) **हर्दू**—इसकी **पींड़** (तना) काफी ऊँचा और **सल्ला** (सीधा) होता है। प्रायः सोठें और शहतीर हर्दू के तने में से बनते हैं।

(७५) **हिंगोट** (सं० इंगुद)—एक पेड़ जिसके फलों में से तेल निकलता है। शकुन्तला नाटक में कालिदास ने इसका वर्णन किया है।[2]

अध्याय १४

नालबन्दी

§६०३—प्रायः बैलों, भैंसों और घोड़ों के पाँवों में खुरी और नालें ठोकी जाती हैं। बैलों और भैंसों के खुरों (वै० सं० त्तुर—ऋक्० १०।२८।६) में जो अर्द्ध चन्द्राकार लोहे की पत्ती ठोकी जाती है, वह **खुरी** कहाती है। घोड़े के **नाल** (अ० नाल) ठुकती है। बैल की पिछली दोनों टाँगों में अलग-अलग दो-दो खुरियाँ ठोकी जाती हैं। अगली टाँगों में एक-एक खुरी ही ठोकी जाती है। बैल के खुर के दो भाग होते हैं। प्रत्येक भाग **खुरी** कहाता है। आगे की बाईं टाँग की बाईं खुरी में ही एक **खुरी** (नाल) ठुकती है। इसे **बाहरी खुरी** कहते हैं। आगे की दाहिनी टाँग की दाहिनी **खुरी** में जो नाल ठुकती है, वह भी **बाहरी खुरी** कहाती है, क्योंकि यह बाहर की ओर रहती है। चलने में खुर से खुर लग जाने को **नेबर** या **नेबड़ लगना** कहते हैं। बाहरी खुरी से नेबड़ लगने पर कोई **जोखों** (हानि) नहीं आती।

बैलों के खुरी ठोकनेवाले **खुरबँधा** और घोड़ों के सुमों में नाल ठोकनेवाले **नालबन्द** कहाते हैं। नाल ठोकने का काम **नालबन्दी** और **खुरबाँधने** का काम **खुरबँधाई** कहाता है। खुरों में नाल (खुरी) ठोकने के लिए **'बाँधना'** क्रिया और सुमों में नाल ठोकने के लिए **'बन्दना'** क्रिया का प्रचलन है।

नाल और खुरी में आकार और मोड़ का अंतर है। अर्द्ध अण्डाकार रूप में नाल और अर्द्ध चन्द्राकार रूप में खुरी होती है। दोनों ही में नाली का-सा गड्ढा होता है। उस गड्ढे को **चापन** कहते हैं। चापन में ही छेद होते हैं, जिन्हें **सुल्ला** कहते हैं। उन सुल्लों में होकर जो घुंडीदार छोटी-छोटी कीलें ठोकी जाती हैं, वे **मेख** (फा० मेख़) कहलाती हैं। मेख की घुंडी **मुंडी** और पतली नोंक **अन्नी** कहाती है। मेख को **परेग, कील** और **चोभा** भी कहते हैं।

---

[1] "बिरह-तचैं उघर्‌यौ सु अब, सेंहुड़ कैसो आँकु।"
जगन्नाथदास रत्नाकर (सम्पादक) : बिहारी रत्नाकर, दो० ४५७

[2] "प्रस्निग्धाः क्वचिदिंगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।"
कालिदास : अभिज्ञान शाकुंतलम्, अंक १, श्लोक १३ (निर्णय सागर, अष्टम संस्करण)

यदि बैल की खुरियाँ अधिक घिस गई हों और मेखें अधिक लम्बी हों तो गाड़ने में कभी-कभी उनकी नोंकें मांस में चुभ जाती हैं। उसे खुरी की **कच्ची बाँध** कहते हैं। कच्ची बाँध में बैल मेख ठुकने पर बिलबिला जाता है और मुँह से एक आवाज करता है, जिसे **'करहार'** कहते हैं। 'करहार' में कुछ-कुछ रँभाने की-सी आवाज निकलती है। **अताई खुरबँधा** (अयोग्य और जल्दबाज खुरी ठोकनेवाला) कभी-कभी कच्ची बाँध की खुरी बाँध देता है। जब मेख की नोंकें खुरी में ही रहती हैं, तब वह **पक्की बाँध** कहाती है।
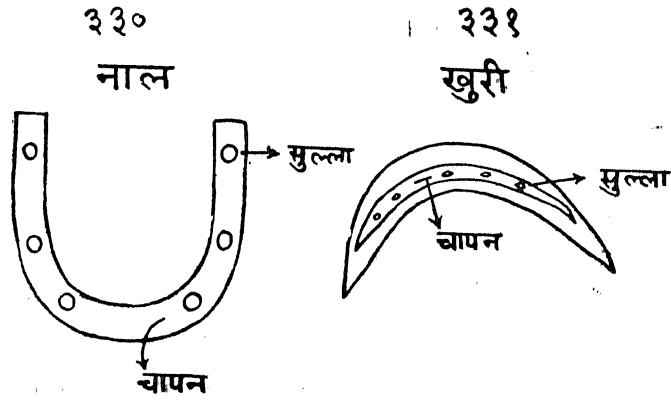
[रेखा-चित्र ३३० से ३३१ तक]

§६०४—**मेख और खुरी ठीक करने में काम आनेवाले औज़ार**—लोहार के यहाँ से जो खुरियाँ और नालें आती हैं, उनमें सुल्ला (छेद) नहीं होते। उनमें छेद करने के लिए **नालबन्द** और **खुरबँधा** अपने कुछ औज़ार काम में लाते हैं।

एक मूसलीनुना पोले लोहे का औज़ार होता है, जिसमें छेद होते हैं। उसे **मिखसाँचा** (मेख बनाने का साँचा) कहते हैं। उसके छेदों में मेख डालते हैं और फिर उस मेख का घुंडीदार सिर ठोकते हैं। ऐसा करने से मेख की **मुंडी** और **अन्नी** ठीक हो जाती हैं।

नाल या खुरी की चापन में छेद करने के लिए **पोगर** और **बीरी** या **बीड़ी** से काम लिया जाता है। मोटी कील जिसकी शक्ल नोंकदार मूसली की भाँति होती है, **पोगर** कहाती है। एक वर्गाकार मोटी भारी लोहे की पत्ती जिसके बीच में छेद होता है **बीरी** या **बीड़ी** कहाती है। नाल या खुरी को बीरी पर रखकर और पोगर की नोंक को **चापन** में जमाकर ऊपर से **हथौड़ा** मार देते हैं। हथौड़े की चोट से पोगर चापन में **सुल्ला** (सूराख) कर देती है। बीरी **इकबाई** (लोहे का एक भारी औज़ार जिस पर रखकर नाल, खुरी आदि की ठोका-पीटी करते हैं) पर रखी रहती है। इसलिए पोगर की नोंक को रोकने के लिए इकबाई **लाग** का काम करती है। चोट और धमक को रोकने के लिए जिससे सहायता ली जाती है, वह वस्तु **लाग** कहाती है।

§६०५—**खुर बँधाई और नालबन्दी के औज़ार**—खुरबँधा के पास मोटी और लम्बी एक रस्सी होती है, उसे **अड़गोड़री** कहते हैं। जिस बैल के खुरों में खुरी बँधती हैं, उसे पहले धरती पर गिराया जाता है। इस ढंग को **गिरियाढब बाँध** कहते हैं। घोड़े के सुमों में जब नालें ठोकी जाती हैं, तब वह खड़ा रहता है। खड़ी हालत में नाल ठोकना **ठड़िया ढब बन्द** कहाता है। धरती पर गिराने के लिए वही रस्सी उसके पेट पर होकर डाली जाती है। पेट पर के फन्दों
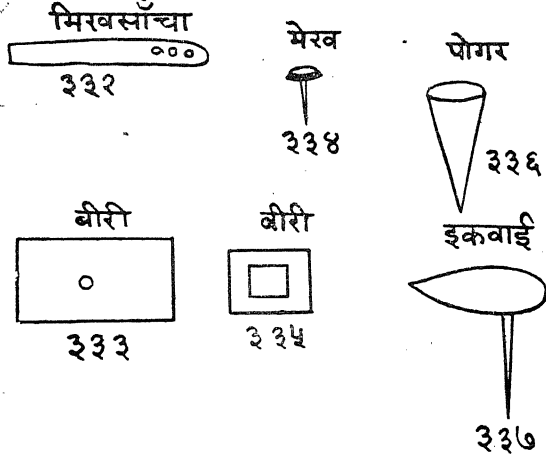
[रेखा-चित्र ३३२ से ३३७ तक]

को **पेटी** कहते हैं। 'खुरी बाँधने में पहले तीन टाँगों को एक जगह बाँधा जाता है। दो पिछली टाँगों के साथ बाईं ओर की एक अगली टाँग को अड़गोड़री (=रस्सी) से बाँध दिया जाता है। तीनों टाँगों के इस बँधाव को **तिगोड़ी** कहते हैं। 'खुर बँधा' की **अड़गोड़री** (एक रस्सी) पेटी और तिगोड़ी के काम में ही आती है।

एक **दुसंखी** नाम की लकड़ी होती है, जिसमें दो संखियाँ निकली रहती हैं। दुसंखी पर **तिगोड़ी** रखकर खुरी बाँधी जाती है।

मेख उखाड़ने अथवा तोड़ने के लिए सड़ाँसीनुमा एक औजार होता है, जो **जम्बूर** (अ० ज़न्बूर) या **सँड़ासा** (सं० संदंशक > संडासअ > संडासा > सँड़ासा) कहाता है। जम्बूर के दोनों डंडे **'पर'** कहलाते हैं।

खुरी और नाल ठीक करने के लिए **हतौड़ा** (हथौड़ा) होता है। इससे छोटी **हतौड़ी** होती है। इसे **बालखा** भी कहते हैं। खुरी में ठुकी हुई मेख की निकली हुई नोकें **हथौड़ी** या **हथौड़िया** से ठोककर टेढ़ी और गोल हालत में मोड़ दी जाती हैं। इस प्रकार मोड़ने के लिए महत्त्वपूर्ण क्रिया **'माँठना'** है। मेख माँठने के लिए ही हथौड़िया काम में आती है।

घोड़े की **पुतली** (सं० पादुतलिका[1] = टाप की तली) साफ करने तथा **सुम्म** या सुम **छीलने** के लिए **छुरी** (सं० छुरिका) होती है, जिसका **फल** आगे सिरे पर कुछ मुड़ा होता है। **सुमों**[2] को (फा० सुम) काटने के ही लिए लोहे का एक औजार **छैनी** (सं० छेदनिका > छेअणिआ > छेअणी > छैनी) होता है।

मेख या नाल को ठोक देने पर मेखों की जो नोंकें कुछ निकली रहती हैं, उन्हें जिस औजार से घिसते हैं, वह **रेत** कहाता है। रेत से घिसने के लिए **'रेतना'** क्रिया चलती है। रेत लोहे की चौड़ी, मोटी और लम्बी पत्ती होती है, जिसमें तीन ओर **मट्ठा** और तीन ओर ही **खुर्रा**

---

१ निघण्टु कोश (४।२) में 'पादु' को पाँव का पर्याय ही लिखा गया है।

२ सुम के लिए यजुर्वेद (१२।४) में 'शफ' शब्द आया है—
"यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः (यजु० १२।४)।

होता है। रेत में बनी हुई लम्बी-लम्बी रेखाएँ **मट्ठा,** और **कद्दूकस** (घीयाकस या बिलइया) की भाँति के गड्ढेदार उठे हुए छेद **खुर्रा** कहाते हैं। रेत के ऊपर-नीचे के धरातल दो-दो भागों में बँटे रहते हैं। प्रत्येक भाग **टकाई** कहाता है। इस तरह दोनों धरातलों में चार टकाइयाँ होती हैं। एक टकाई में मट्ठा और तीन टकाइयों में **खुर्रा** होता है। इधर-उधर के दोनों बाजुओं में भी **मट्ठा** ढला होता है। पूरे रेत में कुल छह पक्खे (सं० पक्ष + क) होते हैं अर्थात् चार बाजू और दो **जमीनें** या **धरतियाँ** (धरातल)। घोड़े की टाप को रेतते समय उसे एक लकड़ी के गोल तख्ते पर रख लेते हैं। उस तख्ते को **पोड़, पावड़** या **पाँता** कहते हैं।

[रेखा-चित्र ३३८ से ३४३ तक]
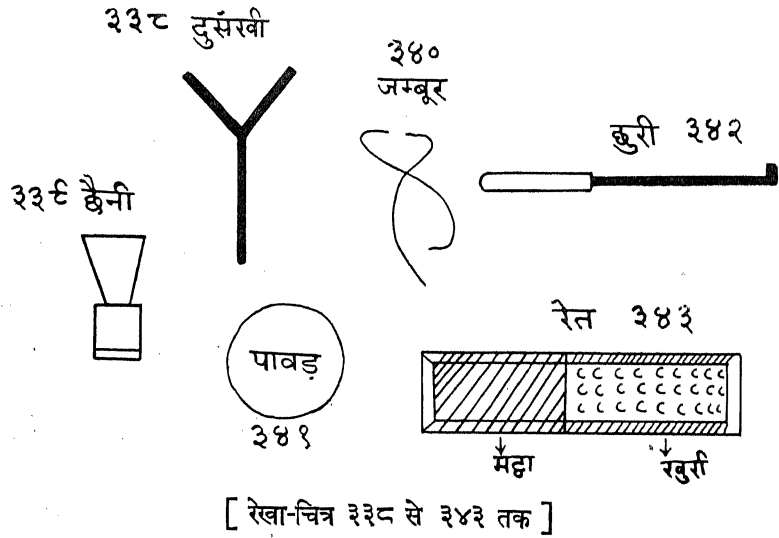
लोहे का लम्बा तथा भारी खूँटा, जिससे घोड़े की टाँग बाँधी जाती है, **परेघा** या **परेगा** (सं० परिघ[१]) कहाता है।

अध्याय १५

मन्दिर और पूजा

§६०९—देवी-देवता का स्थान विशेष, कोठा अथवा घर **मन्दिर** कहाता है। इसे जनपदीय बोली में **मन्दिल, मन्दुर** या **मन्दुल** भी कहते हैं। मन्दिर में सर्वप्रथम देव-मूर्ति का

[१] "निघ्नंतः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः।"
महाभारत, प्रकाशक श्री पाददामोदर सातवलेकर, विराट पर्व, गोहरण, ३२।११

रखना **'पधराना'** कहाता है। मूर्ति जहाँ पधराई जाती है, वह स्थान **निज मन्दिर** कहाता है। राम, कृष्ण, शिव, सीता, राधा और दुर्गा आदि की मूर्तियाँ निज मन्दिर में जिस चौकी पर रक्खी जाती हैं, उसे **सिंहासन** कहते हैं। राम या कृष्ण की मूर्ति **'ठाकुर जी'** भी कही जाती है। 'ठाकुर' शब्द प्राचीन तुर्की 'तेगिन्'[1] से व्युत्पन्न है। पुजारी का निज मन्दिर में रहना **सेवा में रहिबौ** या **अपरस में रहिबो** (सं० अस्पर्श > अपरस) कहाता है। अपरस-वास के समय ठाकुर जी का सेवक (पुजारी) ऊनी अथवा रेशमी कपड़े ही पहनता है। किसी अन्य व्यक्ति को छूता भी नहीं है। काले रंग की छोटी **बटिया** (पत्थर का गोल टुकड़ा) **सालिगराम** (सं० शालग्राम) कहाती है। इसे विष्णु मानकर पूजते हैं। प्रायः दुर्गा देवी के निज मन्दिर में मूर्ति के आगे एक कपड़ा लटका रहता है, जिसे **पट** कहते हैं। पूजा के उपरान्त पुजारी जब पट डालकर मूर्ति को ढकना चाहता है, उससे कुछ क्षण पहले वह मूर्ति के आगे झुककर धरती से सिर लगाता है। पुजारी की यह क्रिया **सिर-धारना** कहाती है। देवी के प्रयाण के समय ही 'सिर धारने' की क्रिया की जाती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जाने के अर्थ में हिन्दी को **'सिधारना'** क्रिया के मूल में **'सिर धारना'** ही है। सिर धारने के बाद वह पट डाल देता है और सेवा-कार्य से मुक्ति पा जाता है।

§६०७—निज मन्दिर की चौखट के आगे जो पटावदार हिस्सा होता है, उसे **जगमोहन** कहते हैं। पुजारी लोग प्रायः जगमोहन में बैठकर ही भगवान् का **चिन्नामित्त** (सं० चरणामृत) अथवा प्रसाद का **पंचामित्त** (सं० पंचामृत = देवताओं के स्नान कराने और चढ़ाने के काम का एक पेय पदार्थ जो गाय के दूध, दही, घी, शहद और तुलसी के पत्तों सहित बनाया जाता है। शहद के अभाव में बूरा भी डाल दिया जाता है) बाँटते हैं। मन्दिर के जगमोहन के आगे का चौकोर फड़ **चौक** (सं० चतुष्क > चउक्क > चौक) कहाता है। चौक में चारों ओर जो कमरे या बरामदे बने होते हैं, वे **चौसल्ला** (सं० चतुश्शाल) कहाते हैं। बाण ने हर्षचरित (निर्णयसागर प्रेस, पंचम संस्करण, पृ० १५५) में चौसल्ले के लिए 'संजवन' शब्द का प्रयोग किया है।[2]

निज मन्दिर के चारों ओर गोल अथवा वर्गाकार एक गली-सी बनी रहती है, जिसमें भगत लोग (सं० भक्त-लोक) हाथ जोड़कर घूमते हैं। वह घूमना **परिकम्मा** (सं० परिक्रमा) लगाना कहाता है। उस गली को भी **परिकम्मा** कहते हैं। परिकम्मा लगाने के बाद **भगत** या **जाती** (सं० यात्री) देवी या देवता की मूर्ति के आगे लम्बी हालत में पट्ट पड़ जाते हैं और अपने **माथे** (सं० मस्तक > मत्थअ > मत्था > माथा) जगमोहन की धरती के तल से लगा देते हैं। इसे **धोक, ढोक** या **डंडौती** कहते हैं। डंडौती करते समय दोनों हाथ आगे को फैले हुए धरती पर पट्ट हालत में रहते हैं।

§६०८—फाटक अर्थात् मन्दिर के बड़े द्वार के दोनों ओर बने हुए तीन दरवाजों के **दल्लान** (दालान) **तिदरी** कहाते हैं। बड़ा मुख्य द्वार **ड्यौढ़ी** भी कहाता है। ड्यौढ़ी के ऊपर

---

[1] "स्व० प्रो० सिलवैंलेवी के मतानुसार 'ठाकुर' या 'ठक्कुर' शब्द प्राचीन तुर्की शब्द 'तेगिन्' से विकसित है।" —डा० एस० के० चाटुर्ज्या : भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, प्रथम संस्क०, १९५४, पृ० १०१।

[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०८।

बनी हुई जालीदार तिदरियाँ **गौख** (सं० गवाक्ष्>गवाक्ख>गवक्ख>गउक्ख>गौख) कहाती हैं।

§६०६—निज मन्दिर की छत के ऊपर बना हुआ भाग **सिखर** (सं० शिखर) कहाता है। सिखर के मध्य भाग को **छतरी** (सं० छत्रिका) और सबसे ऊपर के नोंकीले भाग को **थूपी**, **कलसी** या **सुर्री**[1] कहते हैं। छतरी और कलस के बीच के भाग को **बुरज** कहते हैं। बुर्ज के पहलों में **मनोवत** (फूल-पत्ते) भी बने होते हैं (अ०बुर्ज > बुरज)।

महादेव (शंकर) के मन्दिर में जहाँ **पिंडी** (शिवलिंग) की **थापना** (सं० स्थापना) होती है, वहाँ मूर्ति (लिंग) के चारों ओर एक गोल तथा नालीदार चीज बनी होती है, उसे **अरगा** (अरघा) या **जलहली** कहते हैं। जलहली के चारों ओर बना हुआ ऊँचा-ऊँचा गोल घेरा **पार** या **पारि** (सं० पालि>पारि>पार) कहाता है।
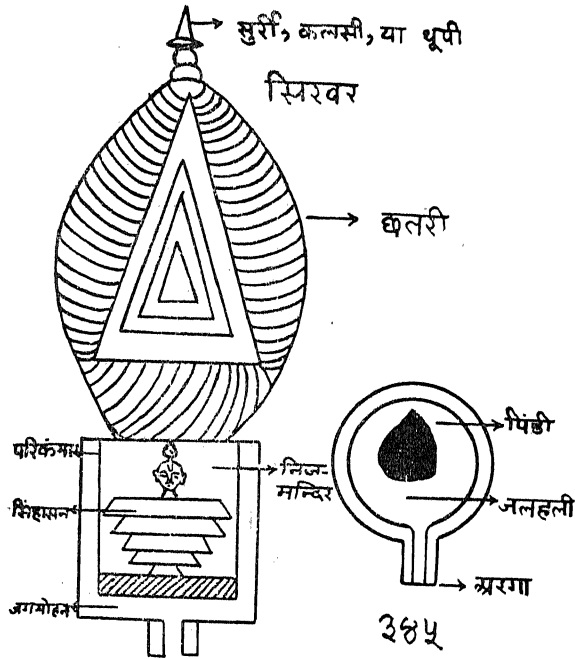
[रेखा-चित्र ३४४ से ३४५ तक]

[1] सुर्री=मीनार की नोंक या सिरा। (अ० मनार=आग का स्थान)। 'मीनार' शब्द अ० मनार से व्युत्पन्न है। अरब में अँधेरी रातों में यात्रियों को ऊँचे टीलों पर जलती हुई आग से ही मार्ग का ज्ञान होता था। कालान्तर में वे आग (रोशनी) के टीले अर्थात् मनार (म+नार=आग की जगह) देश-काल के अन्तर से 'मीनार' शब्द के रूप में पुकारे जाने लगे।
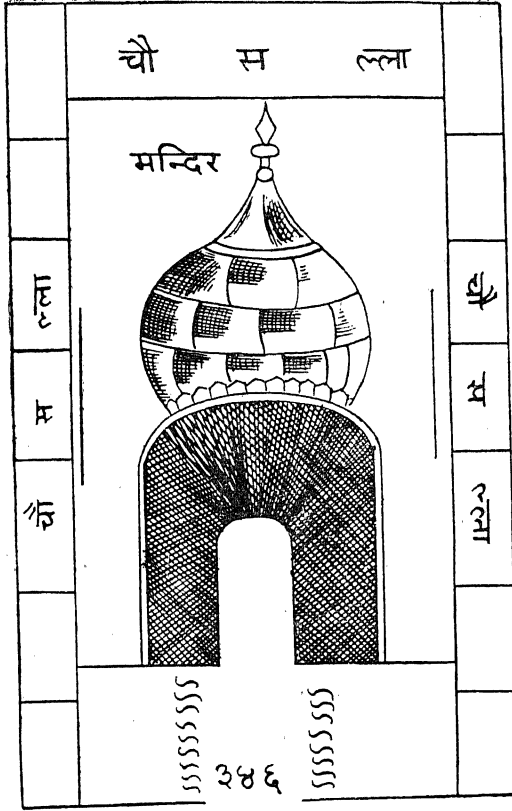
चौसल्ले के बीच बना हुआ मन्दिर [रेखा-चित्र ३४६]

पूजा में काम आनेवाले पात्र और अन्य सामग्री

§६१०—ठाकुर जी को ताँबे (सं० ताम्र) की एक बिलिया में न्हिलाया जाता है, उसे **तस्टा, चन्नोदकी** या **चरनोदकी** (सं० चरणोदकी) कहते हैं। ठाकुर जी के ऊपर जल एक शंखी से डाला जाता है। उस शंखी को एक गोल और गहरी ताँबे की कटोरी से भर देते हैं। उस कटोरी को **कोपर** कहते हैं। **तस्टा** या **चरनोदकी** के जल को एक गोल और ऊँचे **किनाठे** के बर्तन में कर लिया जाता है। उस बर्तन को **पंचपात्तर** (सं० पंचपात्र) कहते हैं, पंचपात्र का ढक्कन '**संपुट**' कहाता है। पंचपात्र में एक छोटी चम्मच रहती है, जो **अचौनी** (सं० आचमनी) कहाती है। अचोनी में लेकर चरणामृत या चरणोदक भगवान् के **भगतों** (भक्तों) को दिया जाता है। भक्तजन उसे अपने हाथ की **खौंच** (हथेली और आपस में मिली उँगलियों को मोड़कर बनाया हुआ गड्ढेदार आकार) में लेते हैं। इस खौंच को **अंजुरी** या **अँजरी** (सं० अंजलि) कहते हैं।

भादों लगत आठें (अष्टमी) को श्रीकृष्णजी का जन्म माना जाता है। वह दिन **जनमाठैं** या **जनमट्ठमी** (सं० जन्माष्टमी) कहाता है। ठाकुर जी के स्नान कराने और चढ़ाने के काम का एक पीने का पदार्थ जो गाय के दूध, दही, घी, शहद और बूरे के योग से बनाया जाता है, वह **पंचामित्त** (सं० पंचामृत) कहाता है। एक छोटी कटोरी जिससे पंचामृत दिया जाता है, **परघी** कहाती है।

जो भोजन भगवान् के लिए दिया जाता है, वह **भोग** कहाता है। ठाकुर जी की सेवा में भोग अर्पित करना **'भोग लगाना'** कहाता है। ठाकुर जी के आगे भोग रखने के समय पुजारी शङ्खी से जल को भोग के चारों ओर गिरा देता है। इस प्रकार गिरे हुए जल से बनी हुई गोल रेखा को **मण्डल** कहते हैं। भगवान् के आगे भोग रखना **परोसना** (सं० परिवेषण) कहाता है। भोग लग जाने के बाद वह पदार्थ **परसाद** (सं० प्रसाद) कहाता है।

एक छोटी शङ्खी होती है, जिसमें जल भरकर मूर्ति के आगे आरती के समय डालते जाते हैं। उस शङ्खी को **अरघ संखी** (सं० अर्घ्य शङ्खी) कहते हैं। अरघसङ्खी एक छोटी चौकी पर रख दी जाती है, वह **संखि चौकी** कहाती है।

पीतल की बनी हुई वस्तु जिसमें सात-आठ दीये बने रहते हैं, **आरती** कहाती है। ठाकुर जी के आगे आरती घुमाना भी **'आरती'** कहाता है।

§६११—आरती के समय पुजारी बाँयें हाथ से एक छोटा-सा घंटा बजाता है, जिसे **टल्लरिया, घंटरिया** या **टनटनियाँ** कहते हैं। इसमें नीचे एक घुण्डीदार कील लटकी हुई होती है, जिससे घंटरिया बजती है। उस कील को **टुनटुनी** या **टुलटुली** कहते हैं। **घंटरिया** से बड़ा घण्टा **गरुड़घण्ट** कहाता है। इसकी मूठ के ऊपर हाथ जोड़े हुए गरुड़ की मूर्ति बनी रहती है। इसी लिए यह संभवतः **गरुड़घण्ट** कहाता है।

भगवान् के सिंहासन पर एक ओर सुराहीनुमा अथवा गंगा-सागर जैसा ताँबे का एक पात्र रक्खा रहता है, उसे **झारी** कहते हैं। ताँबे की छोटी **गड़ई** (लुटिया) घंटी कहाती है और बड़े पेट तथा छोटे मुँह का लोटा **बन्टा** कहाता है। इनमें पूजा का जल रहता है। (वै० कद्रुक > गड्डुक > गड़ुआ—स्त्री० गड़ई)।

पत्थर का गोल चकला जिस पर चन्दन घिसा जाता है, **हुल्सा** या **हुरसा** कहाता है। जो लकड़ी घिसी जाती है, वह **चन्दनमुट्ठा** या **चन्दनमूठा** कहाती है। चन्दन ठाकुर जी की मूर्ति पर लगाया जाता है। चन्दन लगाने के लिए **चन्दन चरचना** कहते हैं।

पुजारी भी अपने माथे पर चन्दन चरचता है। माथे पर चन्दन की पड़ी या खड़ी रेखा **तिलक** और बहुत-सी बूँदें **छापा** कहाती हैं।

§६१२—तीन पड़ी रेखाएँ **तिरपुण्ड** (सं० त्रिपुण्ड्र) कहाती हैं। खड़ी और पतली रेखा **सिरी** (सं० श्री) कही जाती है। अँगरेजी अक्षर यू (U) में यदि खड़ी रेखा खींच दी जाती है तो वह तिलक **उरधपुण्ड** (सं० ऊर्ध्वपुण्ड्र) कहाता है। केवल 'यू' अक्षर का-सा लाल तिलक **बल्लभिया तिलक** कहाता है। निम्बार्किया तिलक सफेद होता है और यू (U) के आकार में भौंहों से नीचे नाक पर से ऊपर को घूम जाता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्र यदि नीचे की ओर और बना दिया जाता है, तो वह **रामानन्दी तिलक** कहाता है। रामानन्दी में बीच की रेखा लाल और **ओरपास** (इधर-उधर) की दोनों सफेद होती हैं।

माधुआ (सं० माध्वक) तिलक नाक पर भी आ जाता है। इसका ऊपरी भाग अँग० 'यू' अक्षर की भाँति ही होता है। यदि माधुआ तिलक के बीच में एक खड़ी रेखा और खींच दी जाती है तो उसे **गौड़िया तिलक** कहते हैं। कोई-कोई गौड़िया तिलक में माथे पर अलग-अलग दो रेखाएँ ही बनाते हैं, लेकिन कुछ लोग बीच में जगह छोड़कर नाक पर त्रिभुज-सा बनाकर चीतते हैं।

माथे पर आड़ी रेखा के दोनों ओर जब बारीक रेखाएँ खिंची होती हैं, तब उस तिलक को **मछली** या **मछरी** कहते हैं। आड़ी और चौड़ी एक ही रेखा **खौर**[1] कहाती हैं।
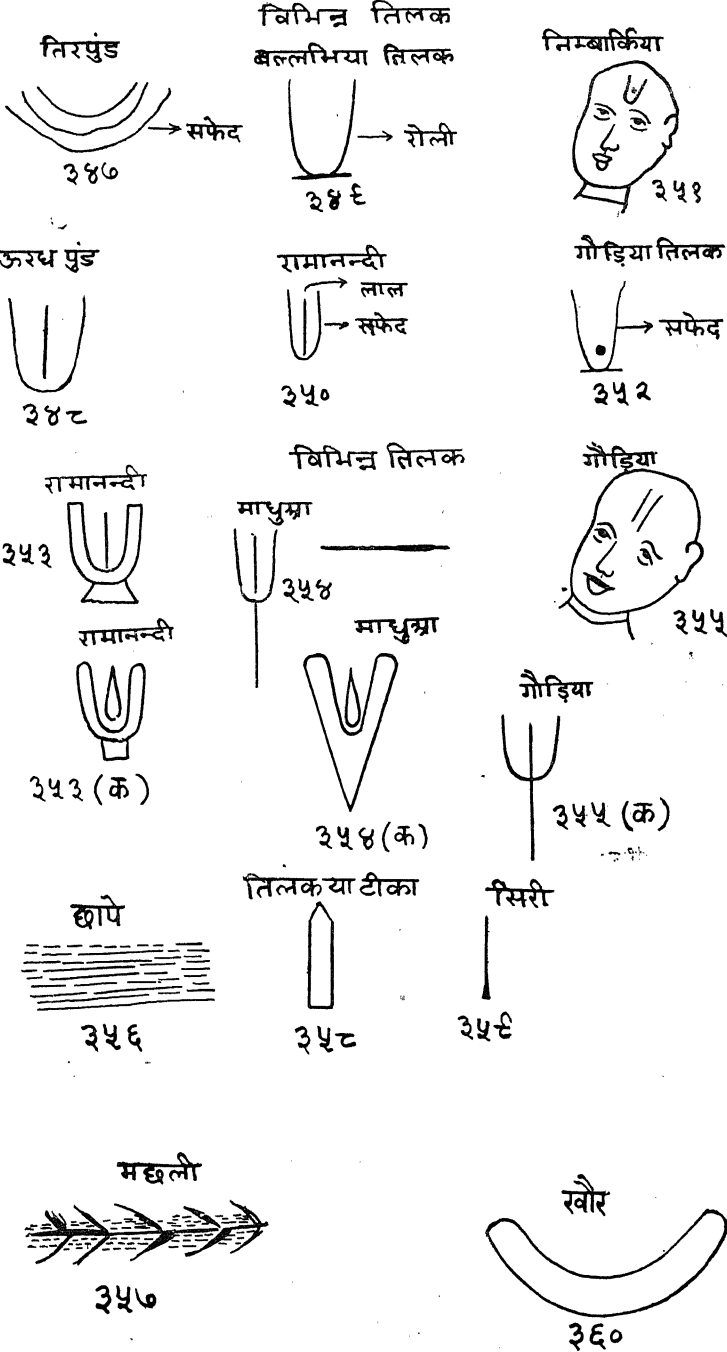
[रेखा-चित्र ३४७ से ३६० तक]

---

१ "खौरि-पनिच भृकुटी-धनुषु, बधिकु समरु, तजि कानि।"
बिहारी-रत्नाकर दो० १०४।

§६१३—माला को **सुमिरनी** या **सुमरनी** भी कहते हैं। इसमें १०८ **दाने** या **मूँगे** होते हैं। इन्हें **मनका** भी कहते हैं। एक दाना ऊपर के फुँदना में रहता है। इसे **सुमेर** (सं० सुमेरु) कहते हैं। रुद्राक्ष, चन्दन, तुलसी, कमल आदि की मालाएँ बनती हैं।

गऊ के मुख के आकार की एक थैली होती है, जिसमें हाथ डालकर माला से **जप** (मौन भजन) करते हैं। उस थैली को **गऊमुखी** (सं० गोमुखी) कहते हैं।

§६१४—सावन-भादों में मन्दिरों में **हिंडोले** (सं० हिन्दोलक) पड़ते हैं। हिंडोला एक प्रकार का झूला होता है, जिसमें श्रीकृष्ण की मूर्ति पधराई जाती है। जब मूर्ति के दर्शन थोड़ी-थोड़ी देर बाद कराये जाते हैं तब उसे **झाँकी** कहते हैं। मन्दिरों की दीपमालिका की शोभा तथा अन्य छटा **जगरमगर** कहाती है। हर्ष से भरे हुए **शोरगुल को चौल** कहते हैं।

§६१५—**आरती और कीर्तन आदि के समय मन्दिर में बजनेवाले बाजे**—(१) **लकड़ी के बाजों के नाम—खटतार** (सं० काष्ठताल), बाँसुरी या बंसी, ढोल, ढोलक, तबला, सारङ्गी, चिकाड़ा, नगाड़ा, पखावज, बम्ब, इसराज, बेला, इकतारा, सितार, तानपूरा, नफीरी या तुरई। तुरई और नगाड़ा जब एक साथ बजते हैं तो '**नौबत**' कहाते हैं। उन सबकी मिली हुई ध्वनि '**नौबतिया घोर**' कहाती है।

(२) **मिट्टी के बने हुए बाजे**—झील, मिरदङ्ग, तबला, ताँसे, जलतरङ्ग।

(३) **काँसे पीतल आदि के बाजे**—विजयघण्ट या झालर, घड़ियाल (काँसे के बेला की भाँति का बाजा), झाँझ, मँजीरा (दो कटोरियाँ-सी जिनमें बीच में छेद होता है), शङ्ख। झालर या घड़ियाल जिससे बजाया जाता है, वह लकड़ी की वस्तु **मोंगरी** या **डंका** कहाती है। ऐलानिया बात कहने के अर्थ में '**डंके की चोट कहना**' मुहावरा इसी से सम्बन्ध रखता है।

§६१६—**मूर्तियों का सिंगार**—(१) श्रीकृष्ण की मूर्ति को एक ऐसा पहनावा पहनाया जाता है, जिसमें लहँगा-सा और सलूका-सा आपस में जुड़े रहते हैं। यह **पोसाक** (पोशाक) **बागा** कहाती है। कन्धों पर पड़ी हुई कपड़े की पट्टी **पटुका** कहाती है।

(२) श्रीकृष्ण और रामचन्द्र जी की मूर्तियों को **मुकट** (सं० मुकुट) पहनाये जाते हैं। राधिका जी का एक विशेष प्रकार का मुकुट **चन्द्रिका** कहाता है।

विभिन्न मुकुटों के नाम

[रेखा-चित्र ३६१ से ३६३ तक]
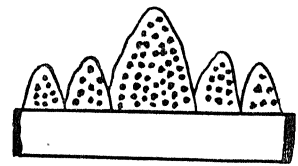
(३) मुकट कई तरह के होते हैं। बढ़िया और सुन्दर एक मुकट **ब्रजरतन** कहलाता है। इसमें मुकट, बाँकड़े और पंखियाँ तथा फुँदने सब एक-ही में रहते हैं।

(४) **किरीट मुकट**—इसमें बीच में पान की शक्ल का एक बड़ा मुकुट और दोनों ओर छोटे-छोटे मुकुट बने रहते हैं। नीचे आयताकार एक पट्टी रहती है। अर्जुन किरीट पहनता था। महाभारत (द्रोणपर्व, जयद्रथबध, अध्याय ६२। श्लोक १६) में 'किरीट'[१] शब्द आया है। किरीटों की पंक्ति **किरीटमाल** कहाती है।

(५) **मोरपंखी मुकट**—इस मुकुट में तीन मोरपंख लगे रहते हैं।

(६) **रासमुकट**—इसमें कुण्डल, बाँकड़े, पंखियाँ और बीच का तेज मुकट होता है, लेकिन सब अलग-अलग होते हैं। इस पर सोने के सलमा, सितारे और गिजाई का काम किया जाता है।

[रेखा-चित्र ३६४ से ३६५ तक]

(७) **सहरा**—इस मुकट में एक पट्टी के ऊपर कई नोंकें-सी निकली रहती हैं। उन नोंकों में मोती पड़े रहते हैं।

अध्याय १६

छप्पर छवाई

§६१७—**गाँड़र**—(एक प्रकार की घास जिसकी जड़ खस कहाती है) या **नरई** (गेहूँ के पौधे का सूखा हुआ तना) की छोटी-छोटी गड्डियों को **पूरा** (सं० पूलक) कहते हैं। गाँड़र या नरई के पूरों से जो छाजना तैयार किया जाता है, उसे **छान** (सं० छादन > प्रा० छायणि > छाइनि >

---

[१] "किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत्।"
महाभारत, द्रोणपर्व, जयद्रथबध, प्रका० श्रीपाद दा० सातवलेकर, १९२७, ९२।१६

छानि > छान) या **छप्पर** (देश० छिप्पीर—दे० ना० मा० ३।२८) कहते हैं। हेमचन्द्र ने छप्पर के अर्थ में 'छाणी' (दे० ना० मा० ३।२४) शब्द को देशी माना है। छान के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"छई छान रूपौ भयौ ब्याहु। रुकत न देख्यौ कबहूँ काहु॥"[1]

§६१८—छप्पर बनाने की विधि को **छवाई, छावटा** या छाजन कहते हैं। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में निरन्तर दस दिन तक (आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक) खूब गर्मी, धूप और लू का साम्राज्य रहता है। उस वातावरण को **तपा-तपना** कहते हैं। दस नक्षत्रों की दस तपाएँ प्रसिद्ध हैं। तपाएँ तपती हुई देखकर किसान **छावटा** (छप्परों की छवाई) आरम्भ कर देते हैं, क्योंकि तपाओं के उपरान्त ही वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। छप्पर के अर्थ में 'छान' शब्द का प्रयोग सूर ने और 'छाजनि' का जायसी ने भी किया है।[2]

§६१९—छप्पर की छवाई **मूँज** (सं० मुंज[3]), **काँस** (सं० काश) और **पतेल** (सरकण्डों की पत्तियाँ) की पत्तियों से भी की जाती है। गाँड़र का ऊपरी भाग **ठाँठर** (गाँड़र का तना) कहाता है। ठाँठर के ऊपरी पत्तर को **पन्नी** कहते हैं। पन्नी के नीचे का भाग **सींक** (सं० इषीका) कहाता है। सीकें प्रायः पीले रंग की होती हैं और घर में झाड़ू का काम देती हैं। **पूरों** (पूलों) का बहुत बड़ा ढेर **कुरी** (त० अत० में), **गरी** (त० कोल-हाथ० में) या **गंजी** (त० खैर में) कहाता है। 'गंजी' शब्द फा० गंज=ढेर, खजाना) से सम्बन्धित है। फारसी-साहित्य में गंजे कारूँ (=कारूँ का खजाना) कुवेर-कोश की भाँति ही प्रसिद्ध है।

गरी की अगल-बगल (दाहिनी-बाँई ओर की चौड़ाई) **पक्खे** कहाती है। गरी के ढेर की लम्बाई जो आगे की ओर होती है, **म्हौड़ा** और पीछे की ओर की **पछीत** या **पछाद** कहाती है। एक गरी में एक म्हौड़ा, एक पछीत और दो पक्खे होते हैं।

§६२०—पूलों को सिरों पर बाँधनेवाली छोटी और पतली जुट्टी **मोरा** कहाती है। गाँडर के ढाई सौ पूलों का ढेर एक **बोझ** कहाता है। दस-दस पूलों को मिलाकर जब एक जगह बाँध दिया जाता है, तब वह बँधा हुआ रूप **जुट्टा** कहाता है।

गरी को प्रायः जुट्टों से ही बनाते हैं। जुट्टों को ऐसे ढंग से चिना जाता है कि गरी में वर्षा का पानी नीचे न जा सके। इस प्रकार की बनावट या चिनाई **चैंका** कही जाती है।

छप्पर छानेवाला **छवइया** कहाता है। छान (छप्पर) को रस्सी से जगह-जगह बाँधनेवाला **तंगइया** कहलाता है।

---

[1] छवाया हुआ छप्पर और पक्का किया हुआ विवाह कभी किसी ने रुकते हुए नहीं देखे अर्थात् छवा हुआ छप्पर अवश्य उठता है और निश्चित रूपेण तय किया हुआ विवाह होकर रहता है।

[2] "तपै लाग अब जेठ-असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी॥"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, ३५६।१
"कलि मैं नामा प्रगट ताकि छान छवावै।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, स्कन्ध, १, पद ४

[3] "एवारोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्।"
—अथर्व० काण्ड १, सूक्त २, मंत्र ४।

छप्पर के अंग और उसके भेद

§६२१—छप्पर छाते समय सबसे पहले बिना चिरे बाँस (सं० वंश) धरती पर बिछा लिये जाते हैं और उनके सिरों को **जून** (वै० सं० यून) के बने हुए **बींड़ा** या **गूल** (भीगी हुई नरई को ऐंठकर बनाई हुई मोटी रस्सी जो दुहरी होती है) में फाँस दिया जाता है। उन बिना चिरे बाँसों को **'कोरे'** कहते हैं। त० सादाबाद में इन्हें **कोरये** भी कहते हैं।

कोरे के ऊपरी सिरे जिस तरह बींड़ा में फँसे रहते हैं, उसी तरह नीचे के सिरों को **म्हौरी** या **बता** (सरकण्डों का मुट्ठा जो छप्पर के आगे के भाग में लगाया जाता है) में फँसाया जाता है।

बता और बींड़ा के बीज में कोरों (बिना चिरे बाँस) के ऊपर चिरे हुए बाँसों की फच्चटें आड़ी करके बाँधी जाती हैं। ये **फच्चटें** (खपंचें) **बाती** कहाती हैं। फच्चटों के भाव में अरहर की **लौंदें** (लकड़ियाँ) भी बाँध ली जाती हैं।

जब कोरों के ऊपर बातियाँ बँध जाती हैं तब वह ढाँचा **ठाट, टट्टर** या **ठट्टर** कहाता है। जायसी ने भी 'कोरे' और 'ठाट' शब्द प्रयुक्त किये हैं।[1]

§६२२—ठाट के दाँये-बाँये **बिंडौरी** (पतेल के सरकण्डों की जुट्टी) सहित बाँस की फच्चटें सीधे रुख में बाँधी जाती हैं, उन्हें **मखौता** या **मखौदा** कहते हैं।

कोरे, बाती, बींड़ा, बता और मखौता बँध जाने के बाद ही ठाट पर फूँस पूरा जाता है। छप्पर की छवाई म्हौरी या बता के रास से शुरू होती है। इस जगह को **ओर** कहते हैं। इसीलिए फूँस की पहली **फिटकिरी** (बिछावन) जो ओर की पहली बाती पर बिछाई जाती है, **ओलबाती** या **औलबाती** कहाती है। इसी तरह छाते-छाते जब छप्पर के ऊपरी भाग में उल्टी **फिटकिरी** बिछाते हैं, तब वह **मगर** कहाती है। छप्पर की छवाई औलबाती की ओर से मगर की ओर को होती है। जायसी ने अवध की जनपदीय बोली में **'ओरी'**[2] शब्द औलबाती के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है।

कोरे पर बाती बाँधने के लिए मूँज की **जेवरी** (रस्सी) काम में आती है, जिसे **लपेटन** या **लपेट** कहते हैं। यदि लपेट खाट की पुरानी रस्सी की होती है, जो **झौंगा** कहाती है। जायसी ने नागमती के वियोग-वर्णन में जो बारहमासा लिखा है, उसके अन्तर्गत आये हुए असाढ़ के महीने में जो शब्दावली नागमती के मुँह से निकलती है, उसमें श्लेषालंकार में लिपटी हुई विरह-दशा भी है और छप्पर के अंगों-प्रत्यंगों के नाम भी हैं (देखिए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत के कुछ विशेषस्थल, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ३, पृ० १७५)।

जनपदीय अवधी के कवि जायसी ने औलवाती के अर्थ में **'आगरि'**,[3] बता के अर्थ में **'बात'**[4] सरकंडे के मखौता के अर्थ में **'साँठि'**[5] और लपेट के लिए **जिय**[6] (सं० ज्या=रस्सी)

---

[1] "**कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा॥**"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी-ग्रंथावली, पदमावत, ३४६।७

[2] "**बरिसै मघा झँकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी॥**"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत, ३४६।४

[3] **तन तिनुवर भा झूरौं खरी। भै बिरहा आगरि सिर परी।**

[4], [5], [6] **साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा।**
बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा॥"
वही, २४६।२-३

शब्द लिखे है। विरह-वेदना के साथ-साथ कवि ने छप्पर के अंगों का भी वर्णन पूरी तरह कर दिया है।

§६२३—फिटकिरी (फूँस का बिछावन) के ऊपर भी दाबने के लिए बाँस की **फच्चटें** या **कैने** बाँधे जाते हैं। चिरा हुआ बाँस **फच्चट** (खपंच या खपच्च) और पानी में गीली की हुई अरहर की लकड़ियाँ **कैने** कहाती हैं। इन फच्चटों या कैनों को भी **बाती** कहते हैं। ये बातियाँ नई **जेवरी** या **रस्सी** (सं० रस्मि > प्रा० रस्सि > रस्सी) से ठाट की बातियों से सम्बन्धित कर दी जाती हैं। जगह-जगह बँधी हुई यह नई रस्सी **तंग, गुंथ, घूत** या **भूत** कहाती है। ब्याह की एक रस्म 'पलिका चारे, के समय दूल्हे से लोग **माँड़बे** (सं० मंडप) के **घूत** खुलवाते हैं। घूत-खुलाई में ही घोड़ी, भैंस, गाय आदि चीजें दूल्हे को दी जाती हैं।

§६२४—बींड़ी या गूल की ओर से बता की ओर बातियों की गिनती करने पर जो दूसरी बाती होती है, उसपर छप्पर-छवइया जूना और मूँज की रस्सी लपेट देता है। जूने से ढकी हुई वह बाती **गूलन** कहाती है। गूलन के ऊपर फूँस की जो बिछावन होती है, उसे **मगर** कहते हैं। मगर बाँधने में **फूँस** की **फुलकें** नीचे की ओर अर्थात् बता की ओर रक्खी जाती हैं, लेकिन **फिट-किरी** में फूँस की फुलकें ऊपर की ओर रक्खी जाती हैं। **उल्ला-पुल्ला** की छवाई में फिटकिरियाँ एक-दूसरी के खिलाफ पूरी जाती हैं। एक फिटकिरी के फूँस की **फुलक** (नुकीला सिरा) ऊपर को है तो दूसरी फिटकिरी के फूँस की फुलक नीचे को होगी। उल्ला-पुल्ला की छवाई के छप्पर घरों पर नहीं पड़ते बल्कि ओट (आड़) करने के लिए छवाये जाते हैं। गूलन के पास छप्पर में एक तरह से कुछ-कुछ उल्ला-पुल्ला की छवाई ही की जाती है। फिटकिरी और मगर के फूँस का बिछावन एक दूसरे का उल्टा होता है। इसीलिए वह कुछ-कुछ उल्ला-पुल्ला की छवाई से मिलता-जुलता होता है। छप्पर में ऊपर की तीन बातियों पर प्रायः **मगर** बाँधा जाता है।

§६२५—सबसे छोटा छप्पर, जिसमें लगभग ८-१० **कोरे** (बिना चिरे बाँस) और ७-८ बातियाँ लगती हैं, **पंजरा** कहाता है। पंजरे की छवाई भी हलकी की जाती है अर्थात् उसमें **फूँस** (नरई या गाँड़र की पत्तियाँ जो छप्पर में लगती हैं) के पर्त हलके और पतले लगाये जाते हैं।

§६२६—जो **छान** (छप्पर) चौड़ाई में लगभग १६-२० बातियों की होती है, उसे **उसारा** (सं० अपसरक) कहते हैं। हेमचन्द्र ने उसारे के अर्थ में 'ओसरिआ' (दे० ना० मा० १।१६१) शब्द देशज माना है। उसारे को साधने के लिए उसके **नीचे** जो मोटी-मोटी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं, उन्हें **खम्भ** या **खम्म** (सं० स्कम्भ>प्रा० खम्भ>खम्भ>खम्म) कहते हैं। कभी-कभी मिट्टी के खम्भ-से बनाये जाते हैं, जो **थम्प** या **थाम** (सं० स्तम्भ) कहाते हैं। उसारे के खम्भों के सिरों पर एक बल्ली-सी रक्खी जाती है, जिसे **बरङ्गा**, **बलैंड़ा**[1] या **बड़ैंड़ा** कहते हैं। दुसंखे खम्भ को **सर** कहते हैं। बड़ैंड़ा प्रायः सर पर ही रक्खा जाता है। जब खम्भे और बड़ैंड़े अधिक मजबूत दिखाई नहीं देते तो किसान छप्पर के नीचे दीवाल के सहारे छोटी और पतली लकड़ियाँ लगा देते हैं, जिन्हें **कुड़क, थुनकी** (सं० स्थूणिका) या **थुनकिया** कहते हैं। उसारा कोठे के द्वार के आगे डाला जाता है। किसान की बैठक

---

[1] **"समै उड़ानी भ्रम की टाटी रहै न माइआ बाँधी।**
दुचिते की दुई थूनि गिरानी मोहु बलैंड़ा टूटा॥"
डा० रामकुमार वर्मा (संपा०) : सन्त कबीर, सन् १९४७, पृ० ४६।

चौपाल (सं० चतुःपालि) कहाती है। अपने बैठने-उठने के लिए किसान चौपाल पर उसारा ही छवाते हैं।

§६२७—**दुपलिया छान,** जिसके नीचे तीन ओर मिट्टी के पाखे (सं० पक्ष>पक्ख>पाखा) बने रहते हैं। 'टाप' कहाती है। इसमें १०-१२ बातियाँ लगती हैं। **टाप** के द्वार के आगे अरहर या बन (कपास) की लकड़ियों का एक दरवाजा-सा बनाते हैं, जिसे **टटिया** कहते हैं। कभी-कभी खेतों में किसान लोग या **ग्वारिये** (पशु चरानेवाले) चार बाँस गाड़कर उनके ऊपर वर्गाकार दशा में छोटा-सा छप्पर छा लेते हैं, जिसे **टपरिया, छपरिया** (अत०—कोल० में) या **छपरी** (खुर्जे में) कहते हैं। वर्षा के समय पशु चरानेवाले ग्वाले टपरिया के नीचे बैठ जाते है और पशु खेतों में चरते रहते हैं।

§६२८—गुम्बदनुमा ढालू और चौपहलू छप्पर **बँगला** कहाता है। **छोटे बँगले** की भाँति के छप्पर को **कुंज** कहते हैं। मिट्टी के चार गोल थामों पर कुंज नामक छप्पर की छवाई होती है। इसमें ८-६ बातियाँ हर तरफ लगती हैं। प्रायः सभी छप्पर पहले धरती पर छाये जाते हैं, फिर उठाकर ऊपर रक्खे जाते हैं; लेकिन **बँगले** और **कुंज** की छवाई ऊपर ही ऊपर अपने निर्दिष्ट स्थान पर ही की जाती है।

§६२६—पहले दो **सर** (दुसंखे दो खम्भ) धरती में एक सीध में गाड़ लिये जाते हैं। फिर उन पर एक मोटी बल्ली रख देते हैं। उस बल्ली की दाईं-बाईं ओर छान रहती है। इसे **गधइया छान** कहते हैं। जैसे गधइया की पीठ पर **गौन** (दुपल्लू हालत में सिला हुआ दुरुखा बोरा जिसमें अनाज भरकर गधे या गधी पर लादते हैं) रहती है, ठीक उसी तरह बल्ली पर **गधइया छान** रहती है। इसे **दुपलिया छान** या **दुपल्लू छप्पर** भी कहते हैं। इसकी **औलवाती** (वर्षा का पानी बहकर नीचे गिरने का किनारा) दो तरफ होती है। औलवाती के नीचे दो-एक थुनकी भी लगा दी जाती है। थुनकी के लिए पहलवी भाषा में 'स्तून' शब्द है। गधइया छान में पास-पास दो मगर बँधते हैं। कंजड़ और हाबूड़ा नाम की जातियों के लोग प्रायः गधइया छान छवाकर ही अपना जीवन बिताते हैं। गधइया छान के घरों में ही वे रोटी बनाते हैं। उनके घरों की छान में धुआँ निकलने के लिए एक छेद बना रहता है, जिसे **नैनुआँ** कहते हैं (सं० धूमनेत्र>पा० धूमनेत)।

§६३०—गधइया छान से मिलती-जुलती एक **मढ़इया छान** होती है। मढ़इया छान को औलवाती के नीचे लगा हुआ बता धरती से कुल डेढ़-दो हाथ ऊँचा रहता है। आमों के बागों में फसल के समय आम रखानेवाले ब्यापारी मढ़इया छान छाकर ही आमों की फसल रखाते हैं और उस **मढ़इया** में ही आम पकाने के लिए **पाल** (आम पकाने की विधि) रखते हैं। उसी के छप्पर पर उनकी **खरिया** (रस्सी की जालीदार छोटी-सी झोली जिसमें आम रक्खे जाते हैं) और **खोंचा** (लम्बी डंगी में बँधी हुई छोटी-सी खरिया) रक्खे जाते हैं।

§६३१—पुराने छप्पर का फूँस हवा से जब जहाँ-तहाँ उड़ जाता है, तब उन खाली जगहों को **उड़ान** कहते हैं। मगर के नीचे लगे बाँस और बाती जिन रस्सियों से दीवाल के छेदों में बाँधे जाते हैं, वे रस्सियाँ **औंद** कहाती हैं।

§६३२—**छप्पर छाने में काम आनेवाली चीजें और औजार**—बाँस चीरने के लिए **दराँत** या **हँसिया** काम आता है। त० इगलास में हँसिया को **हँसिया** भी कहते हैं। श्रौतसूत्रों

में हँसिया के लिए 'असिद' शब्द आया है। 'दराँत' शब्द वै० सं० दात्र[१] से व्युत्पन्न है। काशिकाकार ने भी पाणिनि के सूत्र (१।३।६७) की व्यास्था में 'दात्र'[२] शब्द लिखा है।

एक लकड़ी का औजार जिससे छप्पर की **फिटकिरी** (पूलों के बिछावन का किनारा) थपियाई जाती है, उसे **थपिया** कहते हैं। फूँस की किनारी इकसार करना **थपियाना** कहाता है।

बाँस या लोहे की एक पत्ती, जिसके छेद में गूथ की जेबरी (रस्सी) पोह लेते हैं, **गूथ फोरनी, अँकुरिया** या **हँसुली** कहाती है।

[रेखा-चित्र ३६६ से ३७० तक]
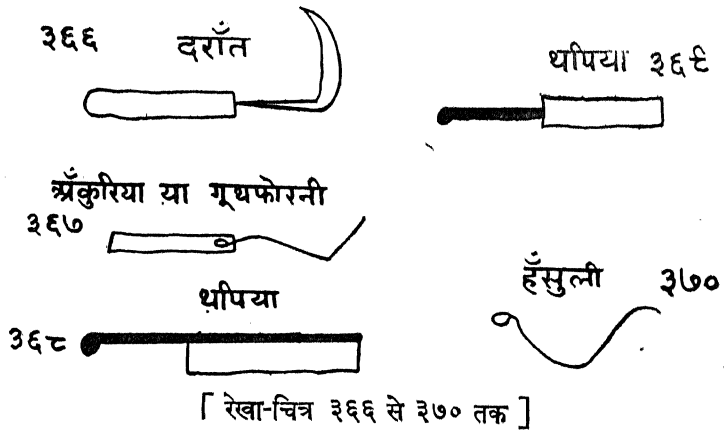
अध्याय १७

कढ़ेरे का काम

§६३३—रुई धुननेवाले को **कढ़ेरा** या **धुना** कहते हैं। कोरी (कोली) और कढ़ेरे की जाति बहुत छोटी मानी जाती है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"कोदौं-मड़आ अन्न नाहिं। कोरी-कढ़ेरे जन्न नाहिं ॥[३]

§६३४—**कढ़ेरा** (धुना, धुनियाँ) किसान के **टहलुओं** (टहल अर्थात् सेवा करनेवाला) में

---

[१] "तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं च नाददे।"
अर्थ—हे इन्द्र। तेरे ऊपर विश्वास रखकर ही मैं यह दात्र (दराँत) अपने हाथ में ले रहा हूँ।

[२] "कर्मग्रहणांकिम्, लुनाति दात्रेण।"
जयादित्य विरचित काशिका का अध्याय १, प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय बनारस, सन् १९५२, अ० १, पा० ३, सू० ६७, पृ० ५७

[३] कोदों (सं० कोद्रव—एक प्रकार का बहुत घटिया चावल) और मड़ुए की गिनती अन्नों में नहीं है। उसी प्रकार कोली और धुने गिनती-शुमार के आदमी नहीं माने जाते।

से है। अन्य टहलुओं की भाँति कढ़ेरे को भी किसान के घर से कातिक-बैसाख (हर छिमाही) में टहल के बदले अनाज मिलता है, जिसे **फसलाना** कहते हैं। हर फसल में निश्चित और नियमित रूप से मिलने के कारण वह अनाज फसलाना कहाता है। कढ़ेरा किसान की **रुई धुनता है** और जाड़ों के दिनों में कपड़ों में रुई भरता है। **रजाई** ओर **सौर** (ओढ़ने के काम आनेवाले रुईदार कपड़े) आदि में से निकली हुई पुरानी रुई **नामा** कहाती है। नामे के टुकड़ों को हाथ से कुछ पोला सा बना दिया जाता है, उसे **रूअड़** कहते हैं। धुना नामे या रूअड़ को धुनने से पहले जब उसके टुकड़े करके हाथ से उन्हें पोला और **फोक** (नरम) बनाता है, तब उस काम के लिए **'बिचूरना'** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। नामा प्रायः बिचूरने के उपरान्त ही धुना जाता है।

§६३५—धुना लकड़ी के जिस यंत्र से रुई धुनता है, उसे **पींजन** (सं० पिंजन > पिंजण > पींजन), **पिन्नी, धुनकी** या **धनस** (सं० धनुस्) कहते हैं। संस्कृत की √पिजि = √पिञ्ज् धातु का अर्थ 'ध्वनि करना' है। पींजन में से तुन्न-तुन्न जैसी ध्वनि निकलती है। उस ध्वनि को **तुन्ना** या **टंकार** कहते हैं। संस्कृत में 'पिञ्ज'[1] शब्द का अर्थ रुई भी है।

§६३६—लकड़ी का बना हुआ लगभग एक हाथ लम्बा एक औजार, जिससे पींजन की **ताँत** (सं० तंत्री > तंती[2] > ताँति > तांत = पशुओं की अंतड़ियों को बटकर बनाया हुआ एक प्रकार का लम्बा डोरा जो पींजन में बँधता है।) में चोट मारी जाती है, **मुठिया, तुनकी या बान** कहाता है। कढ़ेरे अपने पूर्वजों के गौरव और बलपूर्ण वीरता की प्रशंसा करते हुए प्रायः कहते हैं, कि यह (पींजन की ओर संकेत करते हुए) हमारा **धनुख** या **धनस** है और यह (मुठिया को हाथ में उठाते हुए) है हमारा **बान**। जायसी ने इसी अर्थ में 'धनुक' और 'बान' शब्दों का उल्लेख किया है।[3] धुने की मुठिया के मध्य भाग में गोलाईदार एक खाँचा-सा बना रहता है, जिसे **खपचा** कहते हैं। मुठिया पकड़ते समय धुने का हाथ खपचे पर ही रहता है। पींजन पर बँधी हुई ताँत **रौदा** भी कहाती है।

पींजन की ताँत पर मुठिया से चोट मारते हुए रुई के **छार** (टुकड़े) उछालना **धुनना** कहाता है। बड़ी जल्दी-डल्दी और जोर से जब ताँत पर चोटें लगाई जाती हैं, तब उसे **छुरना** कहते हैं। ताँत के ऊपर-नीचे एक खास ढंग से जब धीरे-धीरे चोट मारी जाती है, तब उसके लिए **'तुनकना'** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। 'तुन-तुन' की ध्वनि के कारण उस तरह चोट मारने के लिए 'तुनकना' नाम धातु क्रिया बन गई है।

रुई धुननेवाले कढ़ेरे के सम्बन्ध में एक पहेली भी प्रसिद्ध है—

"काँधे धनस हाथ में बाना। कहाँ चले सौरीपत राना।"[4]

---

[1] √पिजि + अच् = पिञ्ज अर्थात् रुई।

[2] पं० हरगोबिन्द दास त्रिकमचन्द्र शेठ (संपा०) : विपाकश्रुत, कलकत्ता संस्क० सं० १९७६, श्रुतस्कन्ध १, अध्या० ६। सुर सुन्दरी चरिअ, जैन विविध साहित्यशास्त्र-माला बनारस १९१६, परिच्छेद, ३—गाथा १३७।

[3] "छुरिकै जाइहि बान लै, धनुक छाँड़ि तोहि हाथ।"
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत दोहा क्र० ६६३।६

[4] हे सौरीपति (सौड़ भरनेवाला धुना) राणा ! कन्धे पर धनुष और हाथ में बाण लेकर तुम कहाँ जा रहे हो ?

§६३७—किसी-किसी रुई में बन की सूखी पत्तियों के काले रंग के **छोटे-छोटे** कण मिले रहते हैं, जो **किरी** या **किर्रा** कहाते हैं। रुई में जहाँ-तहाँ टूटा हुआ बिनौला लग रहता है, जिसे **चब्बा** कहते हैं। तुनकने से रुई ताँत के ऊपर लिपट जाती है और फिर **छरने** से ऊपर उछटती है। इस तरह क्रमशः तुनकने और छरने से रुई का चब्बा निकल जाता है। उछटती हुई रुई के बड़े टुकड़े को **छार** या **छाल** कहते हैं। बहुत बारीक रेशे **फुआर** कहाते हैं। छाल और फुआर छिटकाने की क्रिया को **'झमारा देना'** कहते हैं। इससे पहली क्रिया **'तरी बाँधना'** कहाती है, जिसमें धरती पर रुई बिछा दी जाती है।

§६३८—जब रुई ताँत से लिपटकर इकट्ठी होती है, तब उसे **सूदी धुनाई** (सीधी धुनाई) कहते हैं। जब मुठिया ताँत के नीचे से ऊपर की ओर मारी जाती है, तब ताँत पर लिपटी हुई रुई बिखरती है। उसे **उलटी धुनाई** कहते हैं।

पींजन के अंग-प्रत्यंग

§६३९—कढ़ेरे की छत के **कौंड़र** (सं० कुण्डल > कौंड़र = लोहे का मोटा, गोल और बड़ा छल्ला-सा) में लोहे का एक आँकड़ा पड़ा रहता है। उस आँकड़े में बाँस की खपच्च से बनी हुई एक कमान लटका दी जाती है, जिसे **कमंठा** या **धनइयाँ** कहते हैं। कमंठे के दोनों सिरों पर खाँचे होते हैं, जिन पर सूत की डोरी बाँधी जाती है। उन खाँचेदार सिरों को **गोसा** (फा० गोशा) कहते हैं। कमंठे की डोरी चिल्ला कहाती है। सूरदास ने 'गोसा' शब्द का प्रयोग धनुष की कोटि के अर्थ में किया है।[1]

चिल्ले के बीच में एक लम्बी और पतली रस्सी बाँधते हैं, जिसके निचले सिरे में पींजन बाँध दिया जाता है। पींजन को साधनेवाली उस लम्बी रस्सी को **सधैनी** या **बगडोर** कहते हैं। पींजन का मोटा तथा लम्बा डंडा **नार** कहाता है। सधैनी का निचला सिरा नार के मध्य भाग में बँधा रहता है।

§६४०—नार के बाईं ओर के सिरे पर लगा हुआ छोटा-सा तख्ता **पटा** (सं० पट्टक) या **पंखा** कहाता है। पटा प्रायः शीशम की लकड़ी का होता है।

§६४१—पटे के बाईं ओर के कोने को **ठोड़ी** कहते हैं। ठोड़ी पर जो चमड़ा चढ़ा रहता है, उसे **बाजनी** (सं० वादनिका) कहते हैं। उस चमड़े के कारण ही पींजन पर चढ़ी हुई ताँत बजती है। बाजनी के नीचे एक गट्टक लगी रहती है, जिसे **बीड़ी** कहते हैं। यही बाजनी के बजने में सहायक बनती है।

नार के दाहिने सिरे पर शीशम की लकड़ी की बनी हुई एक चीज लगी रहती है, जो **करई** या **करइआ** कहाती है। करई पर चमड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा भी चढ़ा रहता है, जिसे **म्हौरक** कहते हैं। त० खैर में इसे **सिर ढाली** या **ढाली** भी कहते हैं।

§६४२—करई का वह मुड़ा हुआ हिस्सा जिस पर ताँत नहीं होती **भार** कहलाता है।

§६४३—बाजनी जिस ताँत से पटे में बँधी रहती है, वह ताँत **अमेंड़ी** या **कौंधनी** (सं० कायबन्धनी) कहाती है।

§६४४—पटे के बाजनीवाले हिस्से में होकर एक रस्सी नार में बाँधी जाती है, उस रस्सी को **कासनी** कहते हैं। कासनी पटे को पींजन से कसा हुआ रखती है।

---

[1] "निपट निकाम जानि हम छाँड़ीं ज्यों कमान बिन गोसनि।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, स्कंध १०, पद ४२५८।

§६४५—पटे में एक छोटी-सी ताँत और डंडियाँ लगी रहती हैं। डंडियों में **बँधी हुई** उस ताँत को **लगाम** कहते हैं। लगाम और अमेंड़ी में **अलबेटा** (एँठा) लगाये जाते हैं।

§६४६—जिन दो रस्सियों से लगाम बँधी रहती है, वे दुटँगा कहाती हैं। दुटँगे प्रायः छल्लेनुमा होते हैं। पटे के ऊपर ताँत से बँधी हुई डंडी **घुड़िया** कहाती है। घुड़िया के पास ही धुनियाँ का बायाँ हाथ रहता है।

§६४७—गद्दीदार मोटा एक कपड़ा या सूत की एक अटिया पींजन की नार और पटे में बँधी रहती है, जिसे **हतवासा** (सं० हस्तपाशक > हत्थवासअ>हथवासा > हतवासा), **तरतश्रा, तरौनी** (हाथ० में), **हतौंई** (सं० हस्तवामिका) या **दस्ताना** कहते हैं। धुना रुई धुनते समय हतवासे में अपना बायाँ हाथ डालकर उससे पींजन की नार पकड़ लेता है और दायें हाथ में मुठिया लेकर ताँत पर चोट मारता है।
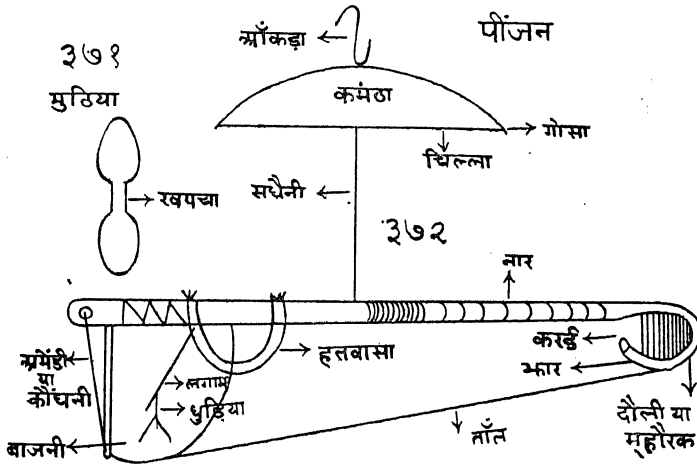
पींजन और उसके अंग—[रेखा-चित्र ३७१, ३७२]
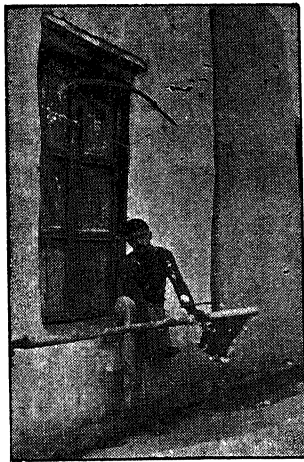
पींजन से रुई धुनता हुआ धुना [चित्र २२]

अध्याय १८

सूप बनाने का काम

§६४८—वह वस्तु, जिससे अनाज साफ किया जाता और फटका जाता है, **सूप** (सं० शूर्प>प्रा० सुप्प>सूप) कहाती है। 'शूर्प'[1] शब्द अथर्व वेद में भी प्रयुक्त हुआ है, अतः बहुत पुराना शब्द है।

अलीगढ़ जिले के गाँवों में तीलियों से सूप बनाने का काम कंजड़ और **भंगी** (महतर) करते हैं। कंजड़ लोग सूप को **छुज्ज** या **छाज** कहते हैं। सूप का प्रारम्भिक ढाँचा, जब तक कि वह मोड़ा नहीं जाता **छज** कहाता है। सूप बनानेवाले को **सुपेरा** या **सुपहेरा** कहते हैं।

सूप बनाने की विधि और सूप के विभिन्न अंग

§६४९—मूँज या पतेल नाम की झूँड़दार ऊँची घास का तना **दरकना, दरकंडा, डरकंडा** या **सरकंडा** (सं० शरकाण्ड) कहाता है। सरकंडे के ऊपरी पतले भाग को **तीर, तुरी, तिल्ली, तीली** या **सिरकी** कहते हैं। जितनी तिल्लियाँ एक मुट्ठी में आ जाती हैं, उन्हें **मुट्ठा** कहते हैं। सूप बनाने से पहले सुपेरा तिल्लियों के मुट्ठे को पानी में गलाता है। इस प्रक्रिया के लिए **आलना, भिजोना** या **भिगोना** क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

सुपेरा जब तिल्लियों को पानी में से निकालकर हवा और धूप में कुछ-कुछ सुखा लेता है, तब उन अधसूखी तिल्लियों को **फरहरी** या **फरैरी तिल्लियाँ** कहते हैं। तिल्लियों को अलग-अलग करके लम्बाई में मेल मिलाना **बीनना** कहा जाता है।

वह ताँत, जो सूप गाँठने में काम आती है, **नहार** या **धाई** कहाती है। सूप गाँठने के लिए '**कठियाना**' क्रिपा भी प्रचलित है। धाई में जहाँ गाँठें लगती हैं, उन्हें **बन्देजा, बन्द** या **बँद** कहते हैं।

सूप की सतह अर्थात् मध्यवर्ती भाग का ऊपरी धरातल, जहाँ अनाज के दाने फटकते समय इधर-उधर हिलते-डुलते हैं, **छजना** या **छज** कहाता है। छज में आमने-सामने रुख में जो तिल्लियाँ लगाई जाती हैं, उन तिल्लियों को **बाढ़ा** कहते हैं। बाढ़े के दायें-बायें लगी हुई बाँस की पतली खपंचें **कमियाँ** कहाती हैं। **भौड़ा, डुल्ली** और **पूरन** जिस बाढ़े पर लगे रहते हैं, वही **छज** कहाता है। छज की ऊपर की सतह **उपरा** और नीचे की **तल्ला** कहाती है। यह भाग ही सबसे पहले बनाया जाता है।

§६५०—सूप के मुख्य भाग तीन होते हैं—(१) **छज** (२) **जीभ** (३) **मुरकामन** या **पचकामन**।

छज के आगे का भाग **जीभा** (सं० जिह्वा) कहाता है। जीभा के ऊपर किनारे पर बाँस की एक **फच्चट** (चिरा हुआ बाँस का टुकड़ा) लगी रहती है। उसे **म्हौरामन** या **जिभीबन्द** कहते हैं। त० सादाबाद में इसे **कसपरा** भी कहते हैं।

---

[1] "**शूर्पे तण्डुलः कणाः**"
अथर्व वेद १०।६।२६

काली और मोटी सूत सी वस्तु (जिससे **जिभीबन्द** कठियाया जाता है = गाँठा जाता है), **लिब्बा** कहाती है। यह गाय-भैंस आदि की गर्दन में से निकलती है।

छज से पीछे का भाग जो ऊपर की ओर मुड़ा रहता है, **मुरकामन** या **पचकामन** कहाता है। मुरकामन का ऊपरी भाग **सिरा** और नीचे का **चीरा** कहाता है, क्योंकि **कटन्नी** (एक प्रकार की छुरी जो सिरकी काटने और चीरने में काम आती है) से चीरते हुए छज के पीछे के हिस्से को ऊपर को मोड़ देते हैं। कटन्नी से **सिरकियों** (तिल्लियों) में काटती हुई-सी एक लाइन बनाना **चीरा देना** कहाता है। पचकामन बनाना **लचाना** कहाता है। भीगे हुए छज को ही लचाया जाता है।

सिरे के दाईं-बाईं ओर सूप के दोनों कोने **कन्ने** कहाते हैं। एक कन्ने में **माल** (काला डोरा) का बना हुआ एक गोल छल्ला बँधा रहता है, जो सूप लटकाने के काम में आता है। उस छल्ले को **लटकन** या **लटकना** कहते हैं। कन्नों में बँधी हुई माल या धाई **कनौचा** कहाती है।

सूप की मुरकामन के सिरे पर ऊपर नीचे ५-५ तिल्लियों का एक जुट्टा-सा बाँधा जाता है। उस जुट्टे को **भौड़ा** कहते हैं। पचकामन में पीछे और आगे की ओर बाढ़े पर तीन-तीन सिरकियों की एक जुट्टी बाँधी जाती है, जो **पूरन** कहाती है। पूरन और भौड़े के बीच पचकामन में ही आगे-पीछे दो-दो तीलियों की दो जुट्टियाँ बाँधी जाती हैं, जिन्हें **डुल्ली** कहते हैं। डुल्ली और भौड़े के बीच में बँधी हुई जुट्टी **तलील** कहाती है। **भौड़ा, तलील, डुल्ली** और **पूरन** पचकामन को मजबूत तथा सुरक्षित रखते हैं।

पूरन, डुल्ली और भौड़ा आदि में **धाई** (एक प्रकार की ताँत) के ही बन्द लगते हैं। लगातार बन्द लगाते जाना **तलीलना** कहाता है। यदि **लिब्बा** (एक प्रकार की मोटी ताँत) से सिरकियाँ सुई की बखिया की भाँति एक दूसरी से सम्बन्धित की जाती हैं, तो वह क्रिया **कठियाना** या **गाँठना** कही जाती है। सारे सूप में दो क्रियाएँ ही की जाती हैं—(१) **कठियाना** (२) **तलीलना**। **काठन** (सूप के नीचे के भाग में लगी हुई सात तीलियों की जुट्टी) कठियाया जाता है और पूरन तलीला जाता है। प्रत्येक सूप के तल्ले में दो काठन लगते हैं। दोनों काठनों के बीच में छोटी सी बाँस की एक फच्चट लगती है, जिसे **बच्ची** कहते हैं। अगली काठन और जीभा के बीच में तल्ले पर दो तीलियों की एक जुट्टी बँधती है, जो **मल्ला** कहाती है। मल्ले के आगे और अगल-बगल लिब्बे से फूल, पान, चिड़ी भी बनाये जाते हैं।

छज की दाईं-बाईं मोड़ **गलौटा** या **गलपटा** कहाती है। छज के नीचे की ओर बीचों-बीच में बाँस की एक फच्चट (खपंच = चिरे हुए बाँस का टुकड़ा) लगती है। वह **फाड़ी** या **कठियानी** कहाती है। कठियानी से छज मजबूत रहता है। कठियानी या फाड़ी के आगे-पीछे जो दो जुट्टियाँ सिरकियों की लगाई जाती हैं, वे **कठियान तिल्लियाँ** कहाती हैं। सूप के तल्ले में दो **काठनें, बच्ची, फाड़ी, मल्ला** और **जीभतरी** (जो भाके नीचे लगी हुई सात तीलियों की जुट्टी) ही लगती हैं।

§६५१—**सूप बनाने के खास औजार**—(१) हँसिया या छुरी की भाँति का एक औजार जिससे सिरकी काटने और चीरने का काम लिया जाता है, **रैंखन** कहाता है। इसे **कटन्नी** भी कहते हैं।
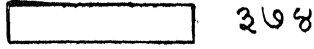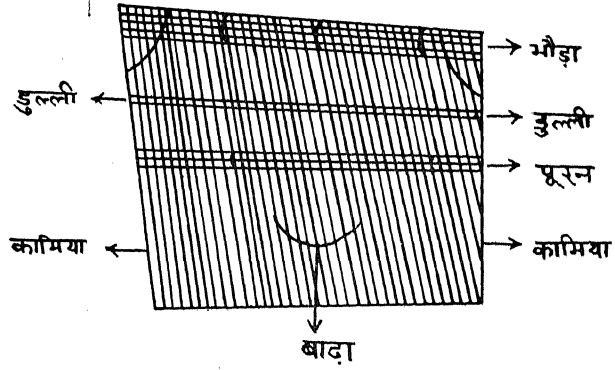
[रेखा-चित्र ३७३ से ३७६ तक]

(२) काठ की पटली की भाँति की लकड़ी, जिस पर रखकर सुपेरा सूप बनाता है, **परैंठ** कहाती है।

(३) छोटी और पतली छुरी जिससे सूप की गँठाई की जाती है, **लिब्बिया छुरी** कही जाती है।

सूप
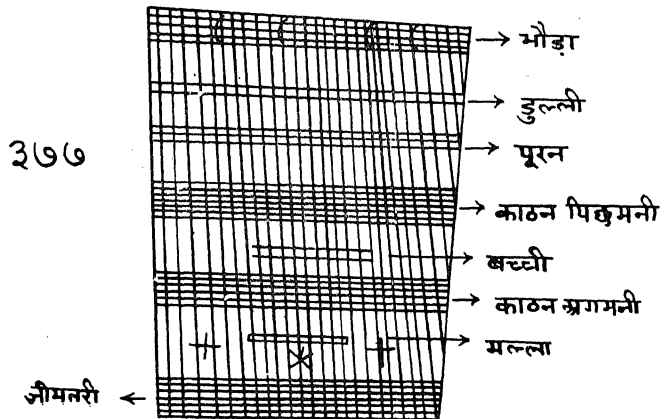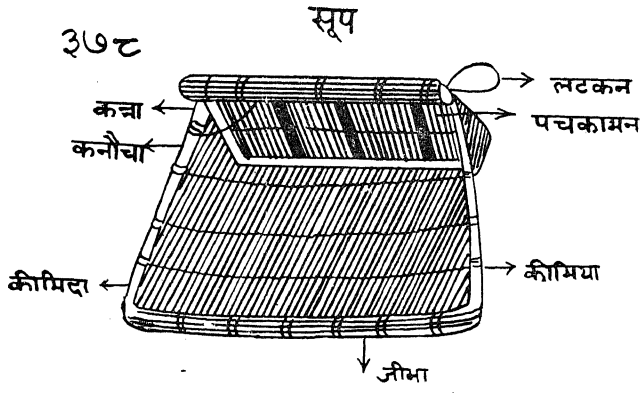
सूप और उसके विभिन्न अंग [रेखा-चित्र ३७७ से ३७८ तक]

अध्याय १६

मल्लाही

नाव खेता हुआ मल्लाह—
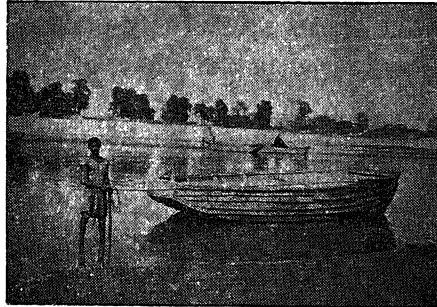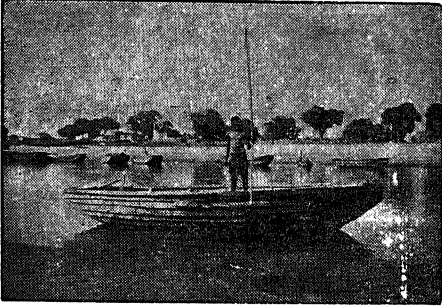
[चित्र २३, २४, २५]

§६५२—नाव चलाने को **नाव खेना** कहते हैं। हिंदुओं में एक जाति जो नाव खेकर

अपनी रोजी कमाती है **मल्हा** या **मलहा** (अ० मल्लाह) कहाती है। नाव चलानेवाले को **खिवइया** भी कहते हैं। अलीगढ़ क्षेत्र में प्रचलित निम्नांकित लोक-गीत में 'खिवइया' शब्द आया है—

"लइयो-लइयो रे खिवइया भइया, नाव।
जवइया पल्ली पारि के॥"[1]

जायसी ने 'खिवइया' के लिए ही 'खेवक'[2] शब्द का प्रयोग किया है। समय के फेर और दुनिया के परिवर्तन को बतानेवाली एक लोकोक्ति नाव के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"कबहूँ गाड़ी नाव पै और कबहूँ नाव गाड़ी पै॥"[3]

मल्लाहों को **कनिहार** (सं० कर्णधार) और **करिया** (सं० कर्णिक > करिणक > करिया) भी कहते हैं।

§६५३—नाव चलाने का काम या मल्लाह की मजदूरी **मल्लाही** कहाती है। नदी में पानी अधिक होने पर **मँझधार** (बीच की धार) में जिन लहरों के लगने से नाव डगमगाती है, उन्हें **हिलकोरे** कहते हैं। तेज धार में पानी की उठती हुई उछाल **लपेटा** कहाती है। उछाल सहित पानी का बहना नदी का **लपेटा मारना** कहाता है। पानी के धरातल पर बने हुए चक्कर-दार गड्ढे **भँवर** (सं० भ्रमर) कहाते हैं। पानी की बहती धार यदि कहीं रोक ही जाय तो वह स्थान **टक्कर** कहाता है। रुका हुआ पानो जब ऊपर से नीचे को गिरकर आगे बहता है, तब उसे **झाल** कहते हैं। वह गहराई जो नापी जा सके **थाह** कहाती है। कम गहरा पानी **ऊथरा** (सं० उत्स्थल) पानी कहाता है। नदी के दायें-बायें किनारों के पास की निचली जमीन, जहाँ बाढ़ का पानी भर जाता है, **खादर** (सं० खाततर>खात्तर>खाद्दर>खादर) कहाती हैं। नदी-नाले में गहरा गड्ढा **औंड़ा कुंडा** (सं० अवट>औंड़ा) कहाता है।

§६५४—नदी के रेतीले किनारे जो पानी की लहरों से दिन-दिन कटकर गिरते रहते हैं, **चोर पार** कहाते हैं। नदी के किनारे पर गीली धरती में यदि गड्ढा खोदा जाय तो उसमें बहुत कम गहराई पर ही पानी निकल आता है। उस गड्ढे को **चोआ** कहते हैं। जिस जमीन में चोआ खोदा जाता है, वह जमीन **चुआन** कहाती है। नदी की सूखी रेती, जहाँ दूर से देखने पर पानी-सा मालूम पड़े, **चिलकन** कहाती है। नदी के किनारों का वह स्थान जहाँ आदमी इस पार से उस पार जाते और आते हैं, **घाट** कहाता है। घाटों पर चन्दन के तिलक-छापे लगाकर पैसा पाने-वाले **घटवारिया** कहाते हैं। मल्लाह जब घाट पर एक पार से दूसरी पार पर यात्रियों को पहुँचा देता है, तब उसको उस काम के बदले में मिली हुई मजदूरी **उतराई** कहाती है। जब नाव धार के खिलाफ चलती है, तब वह **चढ़ाव** और धार के बहाव की ओर को चलना **उतार** कहाता है। नदी की लहर जो नाव के रुख के खिलाफ होती है **मैंढ़ी** कहाती है। **मैंढ़ी** नाव चलाने में कठि-नाई पैदा करती है।

---

[1] हे नाव खेनेवाले भाई, नाव को यहाँ लाओ। हम उस पार के जानेवाले यात्री हैं।

[2] "मोर नाव खेवक बिनु थाकी।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त (सं०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत, ३४२।७

[3] कभी गाड़ी नाव पर रक्खी जाती है और कभी नाव गाड़ी पर रक्खी जाती है।

नाव की चालों के नाम

§६५५—मल्लाह जब शीघ्रतापूर्वक एक झटके के साथ नाव चलाना आरम्भ करता है, तब उस हरकत को **हेला** कहते हैं। नावों की दौड़ के समय बैठनेवाली सवारी को हेला का अनुभव खूब होता है। बन्द पानी या तालाब में जब नाव बिलकुल स्थिर हो जाती है, तब उसे **सोई नाव** कहते हैं। जब नाव पानी के बहाव के सहारे ही अपने आप धीरे-धीरे बहती है, तब वह चाल **रैंगा** कहाती है। नाव की वह मध्यम चाल जिसमें सवारियों को **हाल** (धक्का) न लगे **सुहाँती** कहाती है। सावन-भादों की नदी जब लपेटा मार रही हो और उसमें मल्लाह नाव खे रहा हो तो वह चाल **कुदकुदिया** कहाती है। कुदकुदिया से तेज चाल को **ऊलनी** कहते हैं। जब नाव पूरी ताकत से जल्दी-जल्दी दौड़ाकर चलाई जाती है, तब वह चाल **सरँका** कहाती है। यही चाल सबसे अधिक तेज होती है।

§६५६—जब नाव नदी में डूबती है, तब वह अपने चारों ओर का पानी समेटती हुई डूबती है। उस समय चारों ओर से पानी का वेग नाव की ओर आता है। उस वेगवान् प्रवाह के साथ नाव डूबने को **घप्पा** कहते हैं।

मल्लाहों का पानी में कूदना और गोता मारना

§६५७—एक करवट से पानी में गिरते हुए डूबक मारना **पाखा गिरना** कहाता है। पींठ के बल गिरने को **भींत गिरना** कहते हैं। यदि नदी के पानी में मल्लाह ऊपर को हाथ सतर करते हुए खड़ा हो जाय और पानी में हाथ डूब जाय तो पानी की वह गहराई **एक पुरख** (सं० पुरुष) मानी जाती है। कहीं-कहीं **हाथीडुबान** पानी भी होता है। कोई-कोई मल्लाह पानी में एक-डेढ़ घण्टे तक डूबे रहने का अभ्यास कर लेता है। वह **पनडूबा** कहाता है। पनडूबे गहनेवाली स्त्रियों को घाट पर नहाते देखकर चुपके-से उनकी टाँगें खींचकर पानी के अन्दर ले जाते हैं और उनका जेबर उतार लेते हैं। ऊपर को उछलकर पानी में डुबकी लगाना **गुप्पी मारना** कहाता है। पानी पर खूब तैरनेवाला व्यक्ति **पैरा** (तैराक) कहाता है। मल्लाह कभी-कभी मनोविनोद के लिए एक खेल खेलते हैं। तीन-चार मल्लाह गोलाई बाँधकर नदी में खड़े हो जाते हैं। उनमें से एक मल्लाह एक ईंट को पानी में डालता है और फिर वे सब गोता मारकर उस ईंट को लाने की कोशिश करते हैं। जो ईंट लेकर सबसे पहले पानी से ऊपर आ जाता है, वही विजयी माना जाता है। इस खेल को **लालबहू** कहते हैं। पानी में खेला जानेवाला एक खेल **बगुली-बगुला** कहाता है। इसमें पानी के धरातल पर हाथ की तर्जनी उँगली और अँगूठे को मिलाकर चुटकी मारी जाती है। जिसकी चुटकी आवाज नहीं करती वह व्यक्ति बगुली माना जाता है और बगुले को छूता है।

§६५८—पार पर सीधा खड़ा होना और सीधी देह रखते हुए पानी में कूदना **ठड्डी कूद** कहाती है। हाथ, पाँव और सिर को एक जगह करके पार पर से पानी में लुड़क जाना **गठरिया-फेंक** कहाता है। पार पर से पानी में इस तरह डूबक लेना कि उलटे घूमते हुए पहले दोनों पाँव और फिर ऊपर का शरीर पानी में जाय तो उसे **कलामुंडी** कहते हैं। पार पर बैठकर चुपके-से पानी में पट्ट हालत में घुस जाना **कछुवा डूबक** कहाता है। भागते हुए आकर पार से पानी में कूदकर गोता मारना **ठेका कूद** कहाता है। ऊँची पार पर से कूदते हुए **कुदइया** (कूदनेवाला) दोनों हाथों को आगे और दोनों टाँगों को पीछे करके कूदता है। सिर दोनों हाथों के बीच में

रहता है। पानी में कुछ-कुछ सिर के बल जाता है। इस क्रिया को **उड़ी मारना** कहते हैं। खड़ी दशा में कूदते हुए पालती मार लेना **अंटा मारना** कहाता है।

§६५६—तैरने की क्रिया **पैराई** कहाती है। पैराई के कई प्रकार हैं। एक तरह की पैराई **ठड्डी बैठी** कहाती है। इसमें तैराक की देह कुछ बैठी दशा में और कुछ खड़ी हुई दशा में रहती है। **कूकुरा पैराई** में पैरा (तैराक) अपनी गर्दन तो पानी के ऊपर रखता है, लेकिन हाथ और पाँव पानी के अन्दर चलाता रहता है। **मछरिया पैराई** में तैरनेवाला एक करवट के बल कुछ-कुछ चित्त-सा लेटकर सरपट-भरता है। पानी में तली पर जाकर बैठना **तरी बैठक** कहाता है। पानी पर चित्त लेटकर तैरना और ऊपर से एक कपड़ा ओढ़ लेना **मुर्दा पैराई** कहाती है। जब तैराक चित्त तैरते हुए टाँगों में तनी हुई छतरी भी लगा लेता है, तब उसे **जहाजिया पैराई** कहते हैं।

नाव चलाने के साधन और वस्तुएँ

खिवार पकड़े हुए मल्लाह [चित्र २३]

६६०—बहुत लम्बा और मोटा बाँस जिसे नदी में गाड़कर नाव आगे को चलाई जाती है, **बल्ली** कहाता है। एक बाँस के सिरे पर चौड़ा तख्ता-सा लगा रहता है। तख्ते सहित उस बाँस को **हतवाई, डाँड़ा, चप्पू** या **खिवार** कहते हैं। डाँड़े के बाँस की लम्बाई निश्चित रूप से नौ फ़ुट होती है, लेकिन हतवाई का बाँस अनुमानतः ७-८ फ़ुट का होता है। एक लकड़ी जो आगे को क्रमशः कुछ चौड़ी-सी होती है, **पाता** कहाती है। छोटी और हल्की नाव पातों से ही चलाई जाती है। आगे को नाव चलाने के लिए जब पीछे की ओर बल्ली गाड़ी जाती है, तब उसे **बल्ली-दाबना** कहते हैं। यदि नाव रोकने या मोड़ने के लिए बल्ली आगे की ओर गाड़ी जाती है, तो वह **बल्ली अड़ाना** या **बल्ली टेकना** कहाता है। मोटी रस्सी जिसे नाव में बाँधकर नाव को चढ़ाई की ओर खींचते हैं, **गुनी** कहाती है। गुनी की लम्बाई **बौ** में नापी जाती है। एक मल्लाह खड़ा होकर दाईं-बाईं ओर अपने हाथ सतर कर लेता है। दूसरे मल्लाह द्वारा रस्सी के सिरे को दाएँ हाथ की बीच की अँगुली के सिरे पर लगाया जाता है और फिर रस्सी को सतर करके बाएँ हाथ की बीच की अँगुलो के सिरे तक फैलाया जाता है। तब सिरे से लेकर बाएँ हाथ की बीच की अँगुली के सिरे तक की रस्सी को लम्बाई **एक बौ** (दोनों हाथों की लम्बाई और छाती की चौड़ाई =१ बौ) कहाती है। यदि नाव की **सँधों** में होकर पानी नाव के अन्दर आ जाता है तो उसे मिट्टी के एक बर्तन द्वारा फेंका जाता है जिसको **सोतुआ** कहते हैं। नाव को रोकने के लिए लोहे का एक भारी काँटा काम में आता है, जिसे मल्लाह मोटी रस्सी में बाँधकर नदी में फेंक देता

है। वह तह में जाकर गड़ जाता है और नाव वहाँ की वहीं रुकी रहती है। उस काँटे को **लंगड़** (फा० लंगर) कहते हैं। पाल बाँधने के लिए नाव में एक मोटा तथा भारी बाँस खड़ा लगाया जाता है, जिसे **गुनरखा** (सं० गुण + वै० रुक्ष गुनरुक्ख > गुनरुखा > गुनरखा) कहते हैं। गुनरखे के सिरे और नाव के अग्रभाग में बँधनेवाली रस्सी **नकलेल** कहाती है। बीच की रस्सी **सोहर** और पीछे की ओर बँधनेवाली दो रस्सियाँ **जंघा** कहाती हैं।

गूनी से नाव खींचता हुआ मल्लाह [चित्र २४]
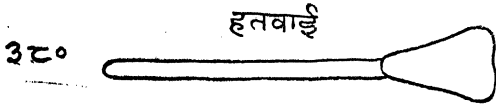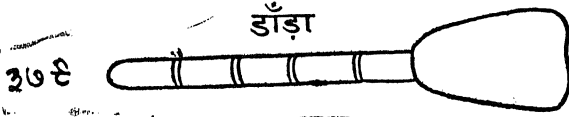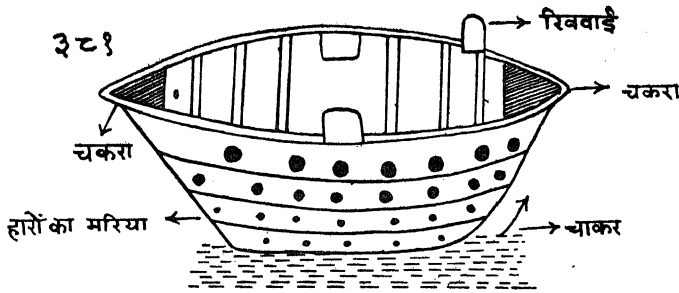
[रेखा-चित्र ३७९ से ३८१ तक]

§६६१—नाव का पैंदा जो पानी के धरातल पर रहता है, बहुत मजबूत तख्तों से बनाया जाता है। ये तख्ते नाव की लम्बाई में जड़े रहते हैं। वह पैंदा मल्लाहों की बोली में **सहरा** या **चाकर** कहाता है। चाकर पानी में जल्दी न गल सके, इसलिए उस पर एक तरह का रोगन कर दिया जाता है। उस रोगन को **लेआ** कहते हैं। चाकर से कुछ ऊपर की ओर नाव के पक्खों में तले-ऊपर अगल-बगल जड़े हुए **हार** (तख्ते) **मइया** कहाते हैं। हार नाव में आड़े जड़े जाते हैं। मरियों के ऊपर दुहरे पर्त के रूप में नाव में अन्दर के रुख पर लम्बाई में लगे हुए दाईं-बाईं ओर के तख्ते **दुवट** कहाते हैं। हारों के ऊपर नाव में अगल-बगल से किनारी लगी रहती है। उसे
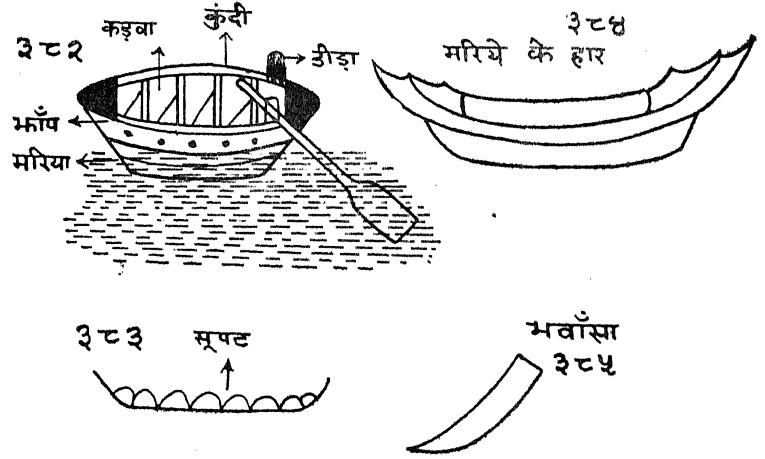
[रेखा-चित्र ३८२ से ३८५ तक]

झाँप कहते हैं। मरिये के हारों और झाँप को बनाते समय उनकी **सँधों** (सं० संधि) में **गाँसा** या **गहाई** (ढाक की कुटी हुई जड़) भर दी जाती है, ताकि नाव में बाहर से तख्तों की सँधों में होकर पानी न जा सके। नाव में अन्दर तली के ऊपर चौड़ाई में भी एक दूसरे से सटे हुए तख्ते जड़े जाते हैं, ताकि नाव की तली मजबूत और कुछ भारी हो जाय। उन तख्तों के जड़ाव को **सूपट** कहते हैं जो कँगूरे के आकार में जड़े जाते हैं। नाव के अन्दर अगल-बगल से ढ़ुवट के नीचे खड़ी हालत में जड़े हुए तख्ते **भवाँसे** या **भभासे** कहाते हैं। जिस तरह नाव की बाहरी ओर हार होते हैं, उसी प्रकार नाव में अन्दर की ओर ऊपर **ढुवट** और नीचे **भवाँसे** होते हैं। नाव में छत पाटी जाती है जिसे **पटाव** कहते हैं। प्रायः सभी सवारियाँ पटाव पर ही बैठती हैं। सूवटवाला छत के नीचे का भाग तो खाली पड़ा रहता है। छत पाटने से पहले नाव की चौड़ाई में कुछ सोठें लगाई जाती हैं, उन पर छत के पटाव के लिए तख्ते जड़े जाते हैं। उन सोठों को **कुन्दी** और कुन्दियों के ऊपर के तख्तों को **पटाव** कहते हैं। कुन्दियों को साधने के लिए उनके नीचे सात-आठ खूँटे लगे रहते हैं, जो **कड़वा** कहाते हैं। नाव की **अगाई** में छत के पटाव के एक सिरे के पास एक खूँटा होता है, जिसे **खिवाई** कहते हैं। जब नाव को चढ़ाव की ओर खींचना होता है, तो मल्लाह **गूनी** या **गूने** (सं० गुण > गूना = एक मोटी रस्सी) का एक सिरा खिवाई में बाँधता है और दूसरा सिरा अपनी कमर से लपेटकर नाव खींचता है। खींचनेवाला वह व्यक्ति उस समय **गुनेरा** कहाता है।

[चित्र २५]
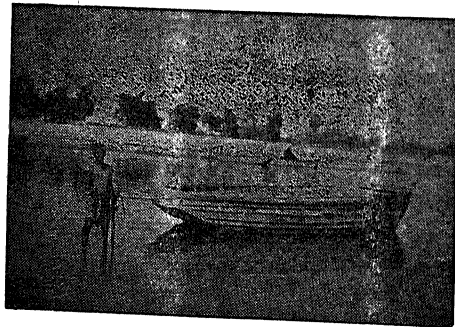
§६६२—नाव की दोनों किनारियों के ऊपर की चौड़ाई **बारिग** कहाती है। किनारियों से चिपटी हुई पटाव में ढक्कनदार एक जगह बनी रहती है, जिसे **कुठिया** कहते हैं। नाव में सूपट पर भरा हुआ पानी कुठियों में से बाहर फेंका जाता है। खिवाई के ऊपर चमड़े का एक खोल-सा चढ़ाया जाता है, जो **डीड़ा** कहाता है। डाँड़े को डीड़े के छेद में फाँसकर चौमासों में नाव चलाते हैं।

§६६३—नाव के बाहर **चाकर** और मरिये के बीच में नाव की दाईं-बाईं ओर लगा हुआ एक चौड़ा तख्ता **बेढ़न** कहाता है। बेढ़न के ऊपर जड़ा हुआ तख्ता **सुहावटी** कहाता है। नाव के आगे मरिये के पास त्रिभुजाकार रूप में जड़े हुए तख्ते **पान** कहाते हैं। नाव के आगे-पीछे के सिरे पर लगे हुए तख्ते **चकरा** कहाते हैं। नाव का अग्र भाग **गलही** कहाता है। खिवाई के पास पटाव के एक सिरे पर लगा हुआ चकरा (तख्ता) **मथारी** या **डाँड़ पट्टा** भी कहाता है। मल्लाह उसी के ऊपर खड़े होकर प्रायः नाव चलाता है। डाँड़ पट्टे की भिन्न दिशा में पटाव के सिरे पर पीछे के चकरे के पास एक सन्दूकी-सी होती है, जिसमें मल्लाह यात्रियों के जूते रख देता है। उस सन्दूकी को **भण्डारी** कहते हैं। डाँड़-पट्टे के पास ही बगल में लकड़ी की एक गुल्लक बनी रहती है, जिसमें मल्लाह अपनी मल्लाही के **दाम-टुक्कड़** रखता है। उस गुल्लाक को मल्लाहों की बोली में **गोलची** या **गुलेची** कहते हैं। सबसे प्रथम बार जो उतराई मिलती है, उसे **बौहनी** कहते हैं। बौहनी के पैसे गोलची में डालने से पहले मल्लाह उन पैसों को गोलची में मारते हुए खुट-खुट करता है और उन्हें गोलची में डालकर ऊपर से नदी[1] के पानी की भी दो-चार बूँदें डाल देता है। मल्लाह **भैरों** (सं० भैरव) को पूजते हैं। इसलिए उनकी नाव पर भी सिंदूर से दो त्रिभुजों का ⨳ ऐसा चिह्न बना रहता है, जिसे वे **भैरों की मनौती** कहते हैं (सं० भैरव > भैरउ > भैरों)।

नावों के नाम

§६६४—कुछ नावों के आगे आकृति में पक्षियों के मुँह लकड़ी के बना देते हैं। उनके आधार पर ही उनके नाम पड़ जाते हैं। **मोरपंखी, गरौड़ी, हंसगौनी** और **कोइलिया** नाम इसी प्रकार के हैं। गाय के से मुखवाली नाव **गऊमुखी** कहाती है। छोटी और हलकी नाव जिसमें ४-५ आदमी ही बैठ सकते हैं, **सैलानी** कहाती है। बड़ी नाव जो बोझा ढोने के काम आती है, **पटेला** कहाती है। हलकी और बहुत छोटी एक नाव जिसमें दो-तीन आदमी बैठते हैं, **उरुआ** कहाती है।

§६६५—आकार के विचार से सबसे बड़ी नाव **बजरा** या **ढप्पाल** कहाती है, इस पर काठ के छोटे-छोटे कमरे बने रहते हैं। उससे कुछ छोटी **डौंगा** और उससे भी छोटी **डौंगी** कहाती है। लेकिन डौंगी आकार में सैलानी से बड़ी होती है।

मैया ! तेरे री बल पै डौंगा दयौऐ समद में डारि।
माइ ! नैंक बल्ली लैलै **टहोका** ते लगाइदै पल्ली पारि ॥[2]

---

[1] यहाँ नदी से अभिप्राय विशेषतः गंगा जी से है, क्योंकि लेखक ने उक्त शब्दावली को अनूपशहर और राजघाट (जि० बुलंदशहर) के मल्लाहों से संगृहीत किया है।

[2] हे दुर्गे मा ! मैंने तेरे ही बल पर अपना डोंगा समुद्र में डाल दिया है।
हे माता ! बल्ली के सहारे से उसे पार पर लगा दो।
टहोका = बगल के मुड्ढे या कूल्हे से लगाया हुआ धक्का।

अध्याय २०

डेरा-तम्बू गाड़ना

§६६६—डेरा-तम्बू गाड़नेवाला नौकर **खल्लासी** कहाता है। 'खल्लासी' शब्द अ० 'खलास' (=छुटकारा) से सम्बन्धित है। डेरे को साधने के लिए जो बल्ली लगाई जाती है, वह **चोब** कहाती है। जिस **छोलदारी** (एक किस्म का छोटा डेरा) में एक चोब लगती है, वह **इकचोबिया** और जिसमें दो चोबें लगती हैं, वह **दुचोबिया छोलदारी** कहाती है। दुचोबिया छोलदारी में दोनों चोबों के ऊपर एक बल्ली आड़ो हालत में रक्खी जाती है, जिसे **बड़ेंड़ा, तीरा** या **कमरबल्ला** कहते हैं। डेरा जिन डोरियों से ताना जाता है, वे **तनाय** कहाती हैं। तनायों के निचले सिरों पर गोल-गोल फन्दे बने रहते हैं, उन्हें **बाले** कहते हैं। जिन खूँटों में डेरा बाँधा जाता है वे **मेख** कहाते हैं। बालों में पड़ी हुई रस्सी **बँधान** कहाती है। जो रस्सी बाले और मेख के बीच में बँधती है, वह भी **बँधान** कहाती है। चोब के सिरे पर एक कील ठुकी रहती है। डेरा तानते समय उस कील को डेरे के जिस छेद में डाला जाता है, वह **खीसा, टोपी** या **गुल** कहाता है। मेख गाड़ने में काम आनेवाला लकड़ी का एक औजार **मोंगरी** (सं० मुद्‌गरिका) कहाता है।
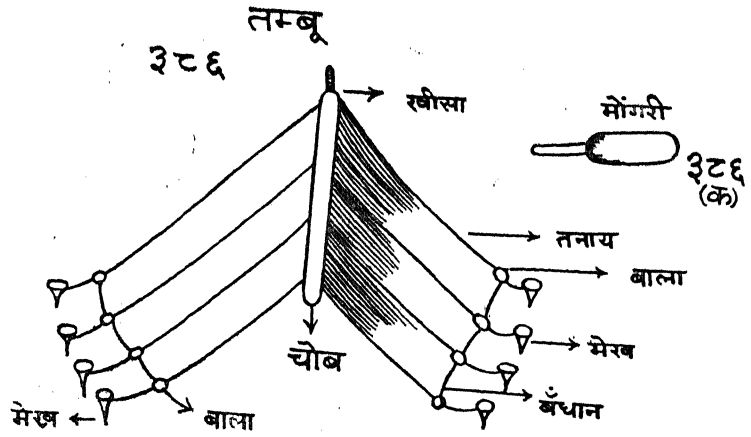
इकचोजिया छोलदारी के हिस्से [रेखा-चित्र ३८६]

डेरों की किस्में

§६६७—इकचोबिया छोलदारी से मिलता-जुलता डेरा **सिपाईपाल** कहाता है। सिपाई-पाल छोलदारी से बड़ा होता है। सिपाईपाल में कम से कम ७-८ आदमी आराम से सो सकते हैं। यदि बड़ा मोमजामा चारों कोनों पर बाँधकर तान दिया जाय तो वह **तिरपाल** कहाता है। तिरपाल के नीचे बाँस नहीं लगाये जाते। यदि बाँसों पर तिरपाल-सा ताना जाय तो उसे **शामि-याना** कहते हैं। एक या दो दरवाजों का तम्बू जो चारों ओर कनातों से बन्द हो **पाल** या **दुदरी** (=दो दरवाजों का) कहाता है। यदि वर्गाकार कपड़े का तम्बू बाँसों पर तान दिया जाय और उसमें **कनातें** (बाँसों की सहायता से बनाई गई कपड़े की दीवाल या आड़) आदि कुछ न

हों तो उसे **ओसिया** कहते हैं। छोटा ओसिया **उसेटी** कहाता है। शामियाने की छत के किनारों से लगी हुई जो **झल्लर** लटकी रहती हैं, वह **म्हौरक** कहाती है। चारों ओर से बन्द चार दरवाजों का बरामदेदार बड़ा तम्बू जिसमें कई कमरे-से बने रहते हैं, **कोठी** कहाता है। जिस शामियाने में बीच भाग में ऊपर की ओर हॉल की-सी छत उठी हुई हो और ८-१० दरवाजे बड़े-बड़े हों तो उसे **दरबारी** कहते हैं। बीच की ऊँची छत सहित बरामदेदार दुचोबिया तम्बू **रावटी**[1] कहाता है। शाही शामियाना जो बरामदेदार होता है, **मंडल** या **कलालबार** कहाता है। चौकीदार आदि छोटे नौकरों के रहने के लिए छोटी छोलदारी **डेरी** या **कलन्दरी** कहाती है कुछ समय के लिए रहना **डेरा डालना** कहाता है।
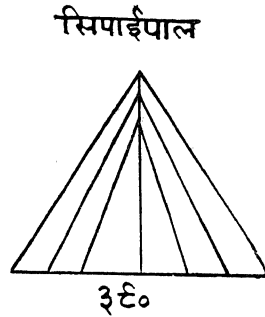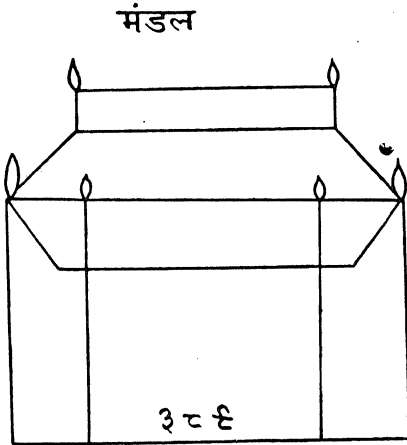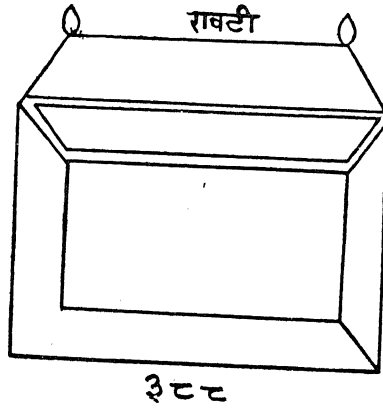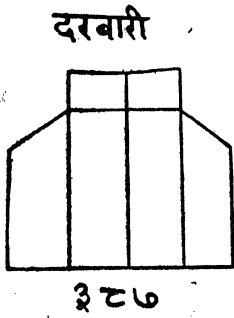
[रेखा-चित्र ३८७ से ३९० तक]

[1] "तिहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।"
बिहारी रत्नाकर, दो० २४४।

अध्याय २१

चूना पीसना और पत्थर काटना

(१) चूने का काम

§६६८—कंकड़ों को भट्टे में पकाने के बाद जब चक्की में पीस लिया जाता है, तब वह पिसी हुई चीज **चूना** (सं० चूर्णक) कहाती है। कंकड़ जिस जमीन में से निकाले जाते हैं, वह जमीन **कँकार** कहाती है। कँकार में से बड़े-छोटे कई तरह के कंकड़ निकलते हैं। बड़ा और भारी कंकड़, जो वजन में कम से कम ५ सेर होता है, **भंटा** कहाता है। भंटे से छोटा कंकड़ **भंटी** और भंटी से छोटा **कँकरा** कहाता है। कँकरे से छोटे को **कंकरी** कहते हैं। कँकार में से कंकड़ खोदने के लिए **औलना** क्रिया का प्रयोग होता है। कंकड़ों की खुदाई **'औल'** कहाती है। भट्टे में जलकर जो कंकड़ या भंटा बहुत काला पड़ जाता है, उसे **खङ्गड़** कहते हैं।

औल में काम आनेवाले औज़ार

§६६९—कँकार में से कंकड़ औलते समय प्रायः दो औजार काम आते हैं—(१) **औली या कुदारी** (२) गैंती या जैंती। कंकड़ इकट्ठा करने में अन्य औजार भी काम आते हैं।

औली में दो-ढाई हाथ का एक बेंट पड़ा रहता है। इसकी आकृति कुछ-कुछ कुल्हाड़ी जैसी होती है, लेकिन औली की नोंक पतली और पैनी होती है। **गैंती या जैंती** में ऊपर-नीचे दोनों ओर नोंकें निकली रहती हैं। प्रायः भंटों को औली से और छोटे कंकड़ों को गैंती से खोदा जाता है। भंटों को फोड़कर कंकड़ बनाने में एक औजार काम आता है, जिसे **धुरमट** कहते हैं। धुरमट में नीचे बड़ा भारी लोहा रहता है, जिससे भंटा फोड़ा जाता है। उस लोहे की नाल में तीन-चार हाथ का मोटा डण्डा पकड़ने के लिए लगाया जाता है। सड़कों पर कंकड़ों को धुरमट से ही जमाया जाता है। खुदे हुए छोटे-छोटे कंकड़ों को एक जगह करने के लिए **पंजी** काम में आती है। पंजी में नीचे पाँच मोटी कीलें-सी लगी रहती हैं और लकड़ी का एक बेंट ऊपर लगा रहता है। कंकड़ इकट्ठे करने में **बेलचा** (फाबड़े की भाँति का एक औजार) और **पामरौ** (फाबड़ा) भी काम आता है।

[रेखा-चित्र ३६१ से ३६५ तक]
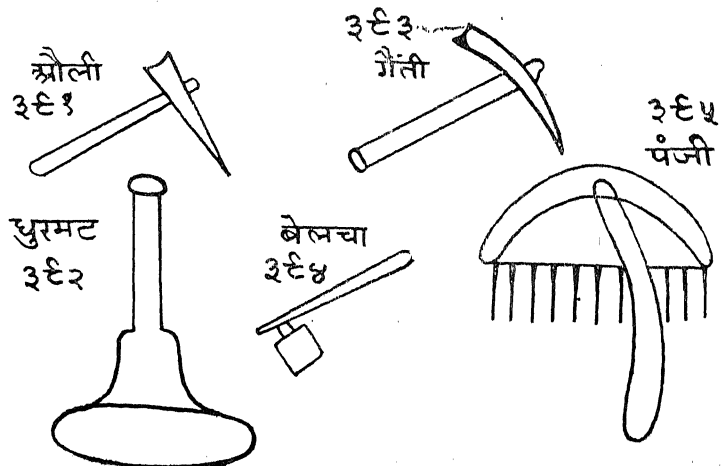
चूने की चक्की और चूना
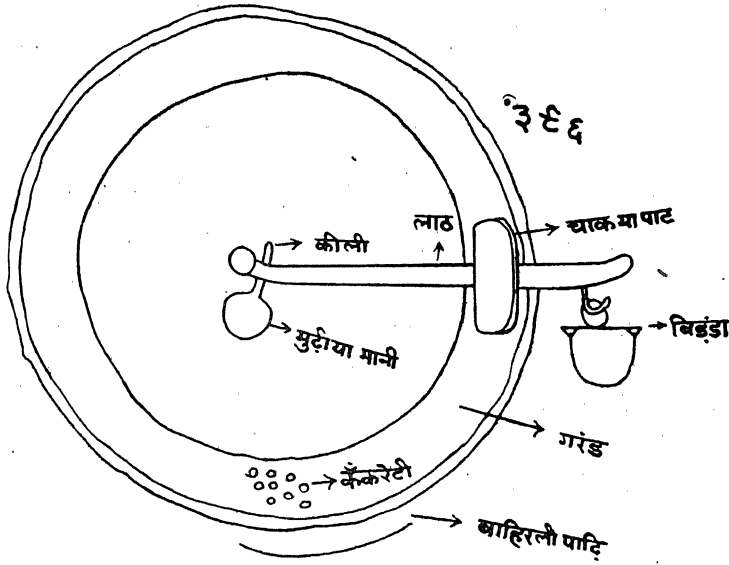
[रेखा-चित्र ३६६]

§६७०—चूने की चक्की में चूना पीसनेवाले मज़दूर को **चुनपत** कहते हैं। एक वृत्त के रूप में ईंटों की नाली-सी बना ली जाती है। उसी में पत्थर के पाट से पके हुए चूने की कँकरेटी पिसती है, जैसा कि ऊपर चित्र में दिखाया गया है। यही चूना पीसने की चक्की है।

चूने की चक्की के हिस्से

§६७१—तीस-चालीस मन का गोल पत्थर जिसमें **लाठ** (एक मोटी और छोटी बल्ली) ठुकी रहती है, **चाक** या **पाट** कहाता है। भट्टे में से निकाले हुए छोटे-छोटे पके कंकड़ **कँकरेटी** कहाते हैं। कँकरेटी जिस नाली में बिछाई जाती है, वह **गिरंट** या **गरंड** कहाती है। गरंड के दोनों ओर की किनारी **भिर** कहाती है। बाहरी भिर से दाहिनी ओर को जगह, जहाँ चक्की खींचनेवाला भैंसा चलता है, बाहिरली **पाढ़** या **बाहिल्ली पाढ़ि** कहाती है। इसी प्रकार भीतरी भिर से बाईं ओर की जगह **भीतल्ली पाढ़ि** कहाती है। गरंड में पड़ी हुई कँकरेटी को भी **गरंड** कहते हैं।

§६७२—भीतर की पाढ़ के केन्द्र-स्थान में **मुढ़ी** या **मानी** (एक मोटी गोल लकड़ी) गड़ी रहती है, जिसमें कील ठोककर लाठ घूमने के लिए इन्तज़ाम कर दिया जाता है। लाठ के सिरे पर एक आँकड़े में एक डण्डा पड़ा रहता है, जिसे **बिड़ंडा** कहते हैं। बिड़ंडे में बँधी हुई रस्सी **बीड़** कहाती है। बीड़ पर कपड़ा भी लिपटा रहता है। बीड़ को ही भैंसे के कन्धे पर रख देते हैं। चुनपत भैंसे को हाँकता रहता है और पाट से गरंड में चूना पिसता रहता है।

चूना तैयार करना

§६७३—पिसा हुआ चूना तारों से बने हुए जालीदार **चलने** में छाना जाता है। छने हुए चूने को नापने के लिए जो पैमाना काम में लाया जाता है, उसे **नपना** या **नपाना** कहते हैं। यह बिना ढक्कन और पैंदे का लकड़ी का बना हुआ एक सन्दूक-सा होता है, जिसमें चूने को भरकर फ़ुटों में नापते हैं।

§६७४—छनने के बाद चूने के छाँटन में कई तरह की छोटी-बड़ी डेलियाँ रह जाती हैं। मोटी डेली **टोड़** कहाती है। टोड़ से छोटी **रुड़िया**, रुड़िया से छोटी **कँकरिया** और कंकरिया से छोटी **बजरी** कहाती है। इस छाँटन को पिसने के लिए फिर गरंड में ही डाल दिया जाता है। उपर्युक्त शब्दों से जनपदीय भाषा की शक्ति ज्ञात होती है।

(२) पत्थर का काम

§६७५—पत्थर को काट-छाँटकर इमारत के योग्य बनानेवाले कारीगर **पथरछिता** या **संगतरास** कहाते हैं। खान से निकले हुए पत्थर को काट-छाँटकर किसी खास शक्ल में लाना **घड़ना** कहाता है। जब किसी पत्थर पर छिताई करके फूल-पत्तियाँ बनाई जाती हैं तो उस काम को **मनोवत** कहते हैं। पत्थर के बट्टों और सिलों में **टाँकी** (एक औजार) से गुच्चे करना **खोटना** और छीलना **टाँकना** या **राहना** कहाता है। संगतराश एक किस्म के पत्थर की सतह में गहराईदार हरफ, फूल और पत्तियाँ आदि खोदते हैं और फिर उनमें उसी आकार के कटे हुए विभिन्न रंगों के पत्थर ऐसे जमाते हैं कि जोड़ मालूम नहीं पड़ता। इस काम को **चौरसाई** या **पच्चीकारी** कहते हैं। वास्तव में चौरसाई सबसे अधिक मुश्किल काम है।

पत्थर की छिताई और औज़ार

§६७६—पत्थर की पटिया या सिल की मोटाई का रुख संगतराशों की बोली में **टक्कर** कहाता है। मकान के फर्श में यदि पटियाँ लगानी हों तो एक से दूसरी पटिया को मिलाने के लिए उनकी टक्करों को चौरस करना पड़ेगा। **दासे** (बरामदों में खम्भों के ऊपर लगनेवाली लम्बी, पर कम चौड़ी पटियाँ) टक्कर ठीक होने पर ही एक दूसरे से मिल पाते हैं। संगतराश पटियों और दासों की जोड़ियाँ बनाते हैं। बराबर की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के दो पत्थरों को **तर-ऊपर** (तले-ऊपर) रखकर संगतराश उनकी टक्करों के **खाँचे** औजार से दूर करते हैं और टक्करों को इकसार बनाते हैं। इस काम को **पटकाई** कहते हैं। इसी से **पटकाना** नाम धातु क्रिया बनी है, जिसका अर्थ 'टक्कर इकसार बनाना' है। दो पटियों को तले-ऊपर रखकर चारों ओर से एक सीध में मिलाना **बीड़ी बनाना** कहाता है। इस तरह की जुड़ाई **बीड़ी** कहाती है।

§६७७—खम्भे के रूप में लम्बा और गोल पत्थर, जो खुरदरा तथा ऊँची-नीची सतह का होता है, **डौल** कहाता है। डौल को साफ और चिकना-सा बनाना **झौड़ना** कहाता है। झौड़ाई के बाद औजार की हलकी चोट से **चुनकाई** होती है। पत्थर की सतह में से पहली बार में ऊँची-ऊँची ठेरें निकाल देना **दौंचना** कहाता है। दौंचने के बाद पत्थर की सतह को चिकना बनाना **माठना** (सं० मृष्ट > मट्ठ > माठना) कहाता है। मनोवत के काम में फूल-पत्तियों को अधिक हलकी और पोली बनाना **नुकाना** कहाता है। नुकाई वास्तव में झुड़ाई, चुनकाई, दुँचाई और मठाई से बारीक काम है। नुकाई में ही संगतराश की कारीगरी मालूम पड़ती है। नुकाई, चौरसाई और मनोवत का काम करनेवाले कारीगर **परचीनिया** (पच्चीकार) कहाते हैं।

§६७८—पत्थर के छेतने में **हतौड़ी** और **टाँकी** अर्थात् **छैनी** आमतौर से काम आती है। नोंकदार टाँकी जो पत्थर की झुड़ाई में काम आती है, **तकला** कहाती है। यह उँगली के बराबर मोटा और नुकीला औजार पत्थर छाँटने में काम आता है। चौड़े पाते की टाँकी जो मठाई में काम देती है, **तकली** कहाती है। यह औजार खासतौर से नरम पत्थर के छेतने में काम आता

है। चौड़े पाते की टाँकी जो शुरू में डौल झौड़ने में काम आती है, **गुट्ठा** कहाती है। इसी से टक्करों की पटकाई होती है।

[रेखा-चित्र ३६७ से ३६६ तक]

§६७९—छैनी की भाँति का एक औज़ार जो पत्थर काटने और उसे चौरस करने में काम आता है, **मोंटा** कहाता है। तकली से मिलता-जुलता औज़ार **थलकी** होता है, जिससे पत्थर की सतह चिकनी बनाई जाती है। चौड़े पाते की एक टाँकी जो मनोवत को पोली करने में काम आती है, **भैंपड़ा** कहाती है। सिल या चक्की के पाट को खोटने में **टकोरा** काम आता है। पाते की धार की चौड़ाई को **टक्कर** कहते हैं। चौड़े पाते की चौड़ी टक्करवाली टाँकी जो कड़े पत्थर को छेतती है, **पिच्चड़** कहाती है। **मनोवन** (फूल-पत्ती) बनाने में काम आनेवाली गोल नोंकदार टाँकी **नरजा** और चौड़े पाते की टाँकी **नरजी** कहाती है।
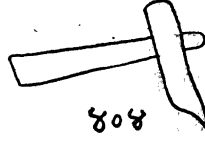
[रेखा-चित्र ४०० से ४०४ तक]

नाप के औज़ार

§६८०—लोहे की चौड़ी पत्ती का बना हुआ समकोणनुमा एक पैमाना **गुनिया** कहाता है। यह पत्थर का **मौहरा** (लम्बाई और मोटाई) और **बहोड़ा** (चौड़ाई) की सीध देखने और नाप मालूम करने में काम आता है। इस पर **तसू** (=इमारती गज का २४वाँ भाग जो सवा इंच के लगभग होता है) के निशान लगे होते हैं।

गोला खींचने के लिए **गोलची** (परकार) होती है। चौड़ी पत्ती की बनी हुई दोनों टाँगें गोलची के **पर** कहाती हैं।

भुड़ाई याछिताई आदि में पत्थर में से निकले हुए टुकड़े और कण **टूटन** कहाते हैं।

खान से निकले हुए पत्थर

§६८१—जो पत्थर खान में से साधारणतया आयत या वर्ग के रूप में निकलते हैं, वे **पर्त** कहाते हैं। गोल या गाँठ के रूप में जो पत्थर निकलता है, उसे **ढिम्मा** कहते हैं। लट्ठे की भाँति लम्बा और कुछ-कुछ गोलाईदार पत्थर **डौल** कहाता है। मकानों के खम्भे डौल में से ही बनाये जाते हैं। बहुत बड़ी डौल जिसमें से एक बड़ा खम्भा बन सके **ठेवा** कहाती है। बहुत बड़ा पत्थर जिसमें से कई दासे और खम्भे निकल सकें **जिला** कहाता है।

पत्थरों के नाम

§६८२—स्थान, गुण और रूप-रंग के विचार से पत्थरों के अनेक नाम हैं—

पत्थर की एक किस्म **डामरा** कहाती है। डामरा पत्थर रबे में सख्त और ठोस होता है। यह रंग में गुलाबी होता है। फतहपुर के निकट डामर की खान से निकलने के कारण ही यह पत्थर डामरा कहाता है। **बियाना** नाम का पत्थर सफेद और भर्रा होता है। **बंसी पहाड़पुर** नाम के पत्थर का रबा मोटा होता है। यह जरेंदार और सख्त होता है। इसमें से कुछ लाल होते हैं और कुछ सफेद। जिला झाँसी में धौर्रा खान से निकाला हुआ पत्थर **धौर्रा** कहाता है। सफेद धारियोंवाला काला पत्थर, जिसकी मालाएँ भी बनती हैं, **सुलैमानियाँ** कहाता है। इसे **गोदन्ता** भी कहते हैं। मकराना (जोधपुर राज्य में) एक प्रसिद्ध स्थान है। इसकी खान से निकला हुआ पत्थर **मकरानिया** या **संगमरमर** कहाता है। यह बहुत हलका गुलाबीपन लिये हुए सफेद होता है। इसका रबा सख्त होता है। **ताँतपुरिया** पत्थर ताँतपुर रियासत धौलपुर में निकलता है। इसमें तीन रंग पाये जाते हैं—लाल, गुलाबी और सफेद। प्रायः देहर, दासे, खम्भ और पटाव इसी के बनते हैं इसका रबा मुलायम और छींटदार होता है। रबे में **बुँदका** (सफेद कण) कम होता है।

§६८३—एक तरह का मजबूत पत्थर जिसके दासे बनते हैं, **टूली** कहाता है। जिसमें से छेतने पर रेत-सा झड़ता है, वह **खारा**, **रेतिया**, या **भुरभुरा** पत्थर कहाता है। बहुत सख्त पत्थर जो **सान** (सं० शाण) के काम में आता है, **कुरंट** कहाता है। दूधिया रंग का सख्त पत्थर **खारा** (फा० खारः) कहाता है। एक **चकमक** (तु० चकमाक) पत्थर होता है, जिसमें से आग निकलती है। मटमैले रंग का पत्थर, जिसमें पर्त नहीं होता अर्थात् जो ठोस होता है, **पातरी** कहाता है। लाल या पीले रंग का ठोस पत्थर **बासी** कहाता है। यह संगरौली और फतहपुर सीकरी में अधिक पाया जाता है। दिल्ली के लाल किले में भी बासी पत्थर बहुत लगा है जो कि लाल रंग का है।

§६८४—वह **कैड़ा** (सख्त) पत्थर जो रंग में **भर्रा** (मटमैला सफेद) होता है और चक्की के पाट आदि में काम आता है, **गर्रा** कहाता है। **बरौलिया** नाम का पत्थर गहरा लाल और सफेद होता है। एक किस्म का बहुत ठोस पत्थर **झावन** कहाता है। यह अरवली पहाड़ में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

§६८५—नरम और बिलकुल सफेद पत्थर **दूधिया;** हरापन लिये हुए सफेद पत्थर **जहर-**

मौरा और स्याहीमायल सफेद पत्थर **डौसा** कहाता है। **पीरिया** पत्थर रंग में पीला और रबे का नर्म होता है। यह मूर्तियों के काम में आता है। एक प्रकार का काला पत्थर **संगमूसा** कहाता है। हरा और पीला पत्थर **एवरी** कहाता है। काले पत्थरों में एक को **भैंसराना** भी कहते हैं। जिस इमारती पत्थर में लाल और सफेद धारी साथ-साथ होती है, वह **भर्रा** कहाता है। **एवरी, जहरमौरा** और **डौसा** नाम के पत्थर प्रायः पच्चीकारी में काम आते हैं।

पत्थर पर बने हुए निशान

§६८६—पत्थर पर धारीदार पतला निशान, जो दूसरी किस्म के पत्थर के बीच में आ जाने के कारण बन जाता है, **जनेऊ** या **रग** कहाता है। किसी रंग के पत्थर पर उससे भिन्न रंग की बूँदें **बुँदके** या **छींटें** कहाती हैं।

पत्थर की टूटन के नाम

§६८७—जब छैनी से पत्थर छेता जाता है, तब उसमें से जो टूटन झड़ती है, उसके कई नाम हैं। जो रेत-सा होता है, वह **भस** (सं० भस्म > भस्स > भस) कहाता है। छोटे-छोटे कण **छिटका** या **रेजा** कहाते हैं। तोले, दो तोले का टुकड़ा **कत्तल** कहाता है। कत्तल से बड़े टुकड़े को **गिट्टी** कहते हैं।

मनोवत के विभिन्न काम

§६८८—पत्थर की पटिया या खम्भे में जब गहराईदार नाली-सी बनानी पड़ती है, तो वह संगतराशों की बोली में **पनारी** कहाती है। फूल-पत्ती को **बूटा** और खड़ी रेखा के ऊपर-नीचे अर्द्ध वृत्तों को **बन्द** कहते हैं। टाँकी के गड्ढे **खोट** या **गुच्चा** कहाते हैं। सिल पर चौखटेनुमा गहरी लाइन बनाना **कस लगाना** कहाता है।

§६८९—**छिते हुए इमारती पत्थरों के नाम**—(१) टोड़ा (२) दासा (३) देहर (४) अलीन या पखवाई (५) खम्भ या खम्ब (खम्भा) (६) मुतक्का (७) सागिर्दी (८) फरमेंड़ा (९) जाली।
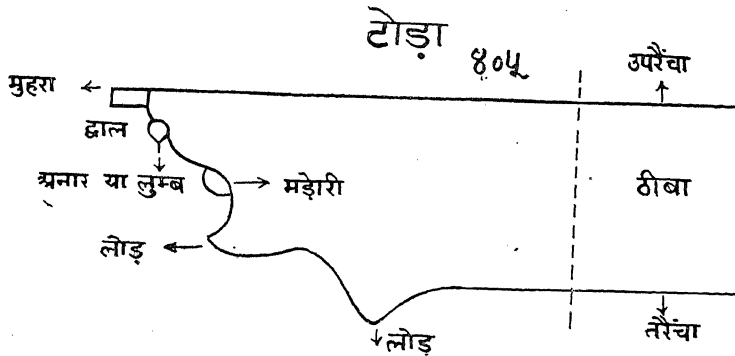
[रेखा-चित्र ४०५]

(१) **टोड़े के अंग**—टोड़े का वह हिस्सा जो दीवाल में दबा रहता है, **ठीबा** कहाता है। ठीबे का ऊपरी भाग **उपरैंचा** और नीचे का **तरैंचा** कहाता है, टोड़े के आगे एक नोंक-सी निकली रहती है, जिसके सामने के भाग को **मुहरा** और नीचे की किनारी को **ढाल** कहते हैं। ढाल से पीछे अनार की भाँति एक नोंक का लट्टू-सा बना रहता है, जिसे **लुम्बी, लुम्बा** या **अनार** कहते हैं। किसी-किसी टोड़े में लुम्ब की जगह गोल **मड़ोरी** बनी रहती है। लुम्ब या मड़ोरी से पीछे एक

चौड़ी गोलाईदार नोंक-सी निकली रहती है, जिसे **लोड़** कहते हैं। प्रायः प्रत्येक टोड़े में दो लोड़ें होती हैं। इसे अँगरेजी में वौल्यूट (Volute) कहते हैं।

(२) **दासे के अंग**—दासे की किनारी की चौड़ाई (दासे की मोटाई) को **रुकार** या **टक्कर** कहते हैं। टक्कर में पीपल के पत्ते की भाँति का कटाव **आँट** कहाता है। दासे की टक्कर जब फूल-पत्ती की आकृति में नीचे को लटकाकर बनाई जाती है तो उसे **मौरहक** कहाती है।

यदि टक्कर गोल बनाई जाती है तो उसे **गोलिया दासा** कहते हैं। यदि फूल-पत्ती काटी जाती है तो वह **बूटिया दासा** कहाता है।

जो पटिया जमीन पर देहली में लगती है, **देहर** कहाती है। दालान के पाखों से सटाकर लगाये जानेवाले चिरे हुए खम्भे **पखवाई** या **अलीन** (अ० अलीन) कहाते हैं। अलीनें दरवाजे के बाजू में भी लगती हैं। इनमें भी खम्भों की भाँति **बरगा, भरना, डाँड़ी** और **कुर्सी** नाम के हिस्से होते हैं।
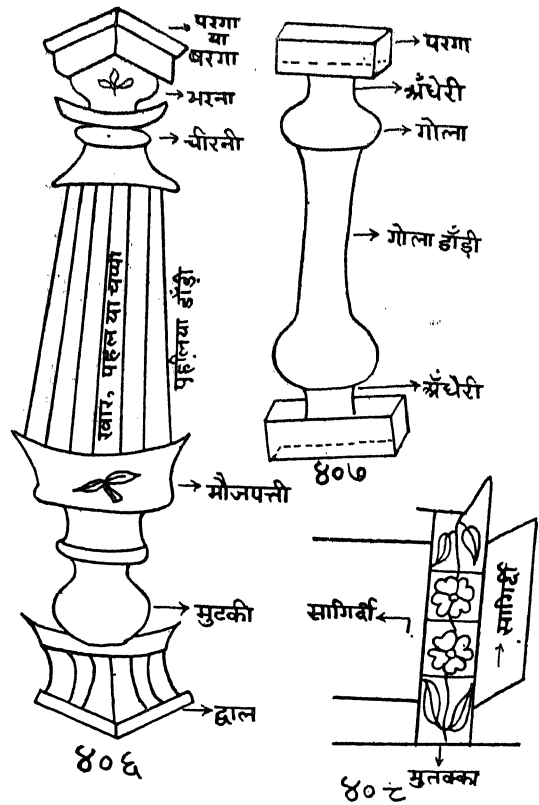
[रेखा-चित्र ४०६, से ४०८ तक]

§६६०—**खंभ और उसके हिस्से**—(१) बरगा या परगा (२) भरना (३) डाँड़ी (४) कुर्सी—ये चार मुख्य हिस्से खम्भे के ही हैं।

खम्भे को डौल में से बनाकर तैयार किया जाता है। इसके ऊपर का वर्गाकार भाग जिसपर दासा या डाट रहती है, **बरगा** या **परगा** कहाता है। बरगे के नीचे का हिस्सा जिसमें मनोवत (फूल, पत्तियाँ, बूटे आदि) बनी रहती हैं, **भरना** कहाता है। भरने में ही **मुरें** (बल खाते हुए

पत्ते और फूलों की पङ्खड़ियाँ) बनाये जाते हैं। भरने के नीचे प्रायः **गोला** या **चिन्नी** बनाई जाती है। बड़ी गोलाईदार मेंड़-सी **गोला** और पतली तथा उठी हुई छोटी मेंड़-सी **चिन्नी** या **चीरनी** कहाती है। चिन्नी से पतली **पोपची** होती है। गोलिया डाँड़ी के खम्भों में परगों और गोलों के बीच में **अँधेरी** भी छेकी जाती है। बनाने के अर्थ में **छेकना** धातु भी प्रचलित है।

खंभे का मध्य भाग **डाँड़ी** कहाता है। डाँड़ी की ऊँचाई में गहराईदार जगह **खार, पहल,** या **चप्पी** कहाती है। पहलोंवाली डाँड़ी **पहलिया डाँड़ी** या **खारदार डाँड़ी** कहाती है।

डाँड़ी से नीचे का भाग **कुर्सी** कहाता है। कुर्सी में बहुत-सी चीजें बनी रहती हैं। दो गोलों के बीच में बना हुआ गोलाईदार भाग **कुम्ब** (कुम्भ = खुंभिया) कहाता है। दो गोलों के बीच का गड्ढेदार भाग **गल्ता** कहाता है। डाँड़ी के नीचे बनी हुई फूल-पत्तियों को **मौज-पत्ती** भी कहते हैं। यदि कुम्ब का ऊपरी भाग कुछ-कुछ घड़े की बनावट से मिलता हो, तो उसे **मुटकी** या **मटुकी** कहते हैं। बिलकुल नीचे का हिस्सा जो जमीन पर रहता है, **बरगा** कहाता है। बरगे से कुछ ऊपर का हिस्सा **ढाल** या **टाप** कहाता है।

मकान की कुर्सी के सहारे जमीन से लेकर कुर्सी के फर्श तक जो छोटा-सा खंभा लगता है, उसे **मुतक्का** कहते हैं। मुतक्के के दोनों ओर खड़ी हालत में जो पत्थर लगाये जाते हैं, **सागिर्दी** कहाते हैं।

इमारत की कुर्सी में आगे की ओर लगनेवाला पत्थर **फरमेंड़ा** कहाता है। पत्थर के धरातल में गोल, आयताकार, वर्गाकार, छह पहलू और अठपहलू छेद किये जाते हैं, जिन्हें **जाली** या **गौखी** (सं० गवाक्षिका) कहते हैं।

§६६१—**पत्थर के बर्तन**—दाल-आटे के काम में आनेवाला पत्थर का एक बड़ा बर्तन जिसका आकार परात की भाँति होता है, **पथरौटा** कहाता है। गाँवों में पथरौटे में आटा भी गूँधा जाता है। **कूँड़ी, खरल, सिल-बट्टा, चक्की का पाट** भी पत्थर के ही बनते हैं। छतों में डालने के लिए पत्थर के **बेलन** भी बनते हैं। इनमें झूला डालकर सावन में स्त्रियाँ झूलती हैं। लगभग ५ फुट लम्बा, ३ फुट चौड़ा और २ इंच मोटा पत्थर का टुकड़ा **चौका** कहाता है।

———

अध्याय २२

चिकें बनाना

§६६२—बाँस की तिलियों को मिलाकर बनाये हुए पर्दे जो दरवाजे और खिड़कियों पर लटकाये जाते हैं, **चिक** कहाते हैं। चिकें बनानेवाला कारीगर **'चिकसाज'** कहाता है। चिक बुनने को **चिक साजना** कहते हैं। [तु० चिक़ = चिलमन]।

§६६३—**चिक साजने में काम आनेवाले औज़ार**—बाँसों को फाड़ने के लिए लोहे

का एक औजार काम में आता है, जिसे **रौंखन** कहते हैं। इसकी आकृति छुरी या दराँत से मिलती-जुलती होती है। साजी हुई चिक को रँगने के लिए मिट्टी का एक बर्तन होता है, जिसमें रंग घोला जाता है। उस बर्तन को **रँगैंड़ी** (सं० रङ्ग + सं० भाण्डिका) कहते हैं। रँगैंड़ी में कपड़े का एक टुकड़ा पड़ा रहता है, जिसे **पोचारा** कहते हैं। पोचारा फिराकर ही चिक रँगी जाती है। रंग दो रूपों में होता है—(१) आला (२) पिसन। रङ्ग की डेली को **आला** और घिसे हुए रंग को **पिसन** (सं० पेषण) कहते हैं।

लम्बा, मोटा और मामूली चौड़ा लकड़ी का तख्ता जिस पर बाँसों को चीरा जाता है, **डेंगरी** कहाता है। चिकें सूत के डोरों से साजी जाती हैं। ईंट का छोटा-सा टुकड़ा चिकसाजों की बोली में **ढीमा** या **ढीम** कहाता है। चिक बुनने के लिए चिकसाज ढीमे पर सूत लपेट लेते हैं। सूत से लिपटा हुआ ढीमा **लंगड़** या **फिंकना** कहाता है। चिक बुनते समय चिकसाज चिक में दो लङ्गड़ डालता है और क्रम से उन्हें इधर-उधर फेंकते हुए चिक में सूत के फन्दे डालता चलता है। चूँकि लङ्गड़ इधर से उधर फेंका जाता है, इसीलिए उसे **फिंकना** भी कहते हैं। फिंकने चिक बनाते समय अड्डे पर ही फेंके जाते हैं। लकड़ी के जिस ढाँचे पर चिक बुनी जाती है, उसे **अड्डी** या **अड्डा** कहते हैं। फिंकने के संबंध में प्रसिद्ध है—

जौ फिंकना फैंकि न आवै। चिक सजिया मूढ़ कहावै ॥[1]

[रेखा-चित्र ४०९ से ४१०]
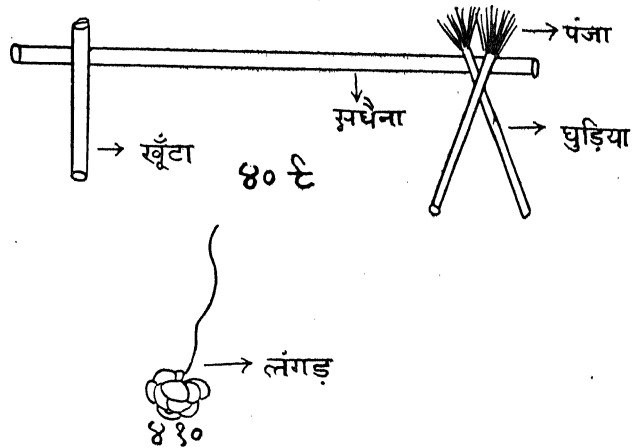
§६९४—**अड्डे के अंग-प्रत्यंग**—पहले जमीन में लकड़ी का एक खूँटा गाड़ा जाता है, फिर चिकसाज अपनी बाईं ओर छोटे-छोटे दो बाँस के टुकड़े कैंचीनुमा बाँधकर जमा लेता है। इन्हें **घुड़िया** कहते हैं। घुड़िया के ऊपरी हिस्से चिरे रहते हैं जो **पंजा** कहाते हैं। पंजे की उँगलियाँ एक दूसरी में फँसी रहती हैं। खूँटे और घुड़िया के ऊपर एक **साबित** (बिना चिरा) बाँस बाँध दिया जाता है, जिसे **सधैना** कहते हैं। बुनी जानेवाली चिक सधैने पर ही रहती है। वह इस पर सधी भी रहती है और कुछ नीचे लटकी भी रहती है। बुना हुआ हिस्सा जमीन पर रहता है और जो हिस्सा बुना जा रहा होता है, वह सधैने पर सधा हुआ रहता है।

[1] यदि चिकसाज फिंकना फेंकना नहीं जानता तो वह मूर्ख कहलाता है।

§६६५—**चिक में काम आनेवाले बाँस के विभिन्न रूप**—(१) समग्गा (२) फार (३) तोड़ (४) चीड़ (५) गंठिल (६) पुट्ठी (७) डार (८) तिल्ली या तीली।

बिना चिरे साबित बाँस को **समग्गा** (सं० समग्र > प्रा० समग्गा > समग्गा) कहते हैं। समग्गे को रौंखन से चीरकर जब दो बराबर भागों में किया जाता है तब प्रत्येक भाग **फार** कहाता है। फार में से जब दो-दो हाथ के टुकड़े काट लिये जाते हैं, तब उन्हें **तोड़** कहते हैं। तोड़ में से बिना गाँठों की निकाली हुई खंपचें **चीड़** कहाती हैं। तोड़ को चीरकर जब उसमें से गाँठदार फच्चट अलग निकाल ली जाती है तो उस गँठीली फच्चट को **गंठिल** (सं० ग्रन्थिल) कहते हैं। चीड़ में से जब गूदा निकाल दिया जाता है, तब शेष भाग **पुट्ठी** (सं० पृष्ठिका) कहाता है। पुट्ठी को जब दो भागों में चीर दिया जाता है, तब प्रत्येक भाग को **डार** कहते हैं। डार में से चीरकर जब दो-तीन पतले-पतले हिस्से किये जाते हैं, तब वे पतले हिस्से **तिल्लियाँ या तीलियाँ** कहाते हैं।

§६६६—**चिकों की बुनावटें**—चिक साजने में मुख्यतः दो बुनावटें होती हैं—(१) **सादा** (२) **जालिया**। **सादा** बुनावट में सीधा डोरा चलता है, लेकिन **जालिया** में डोरों से जाल-जैसे बनते चले जाते हैं। चिक की जालिया बुनाई के कई भेद हैं—

§६६७—**जालिया बुनाई के भेद और उनके विभिन्न चित्र**—
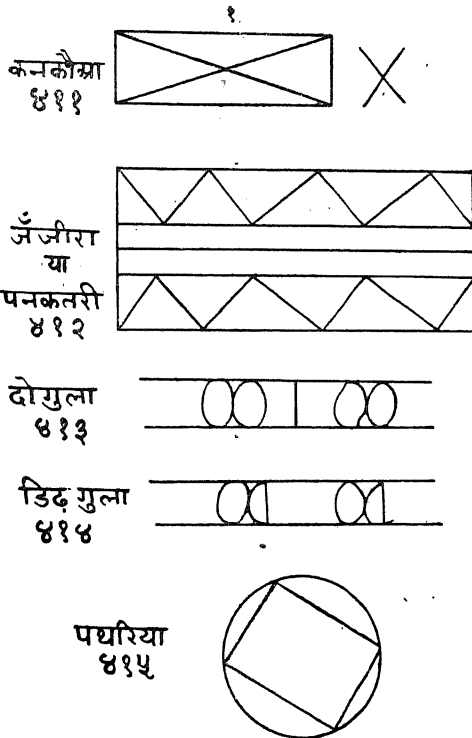
बुनाई के भेद तथा रेखा-चित्र-संख्या

(१) कनकउआ ४११, (२) जँजीरा या पनकतरी ४१२, (३) दुगुला या दो गुला ४१३, (४) डिढ़गुला ४१४, (५) पथरिया ४१५।
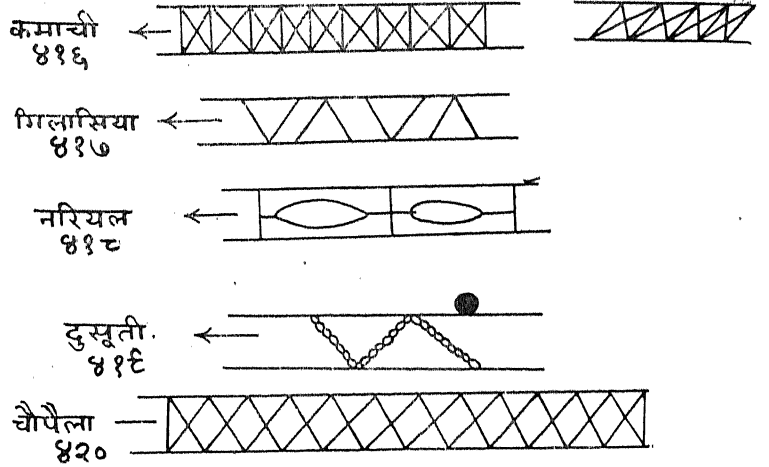
(६) कमाची ४१६, (७) गिलासिया ४१७, (८) नरियल ४१८, (९) दुसूती ४१९, (१०) चौपैला ४२०।

§६९८—चिक के **कनकउए** जाल में डोरों द्वारा गुणित के से निशान बनते जाते हैं। **जँजीरे** या **पनकतरी** में लहरें-सी पड़ती हैं। **दुगले** में दो गोले और डिढ़गुले में डेढ़ गोला बनता है। **पथरिया** जाली में एक वृत्त के अन्दर चतुर्भुज बनता है। कमाची में आयत के कर्ण से मिलते जाते हैं। **गिलासिया** में गिलास और **नरियल** में नारियल का-सा आकार बनता है। **दुसूती** में दुहरा सूत पड़ता है। **चौपैले** में चतुर्भुज बनते चले जाते है। चतुर्भुज की एक रेखा (कंतार) **पहल या पैल** कहाती है।

[रेखा-चित्र ४२१]
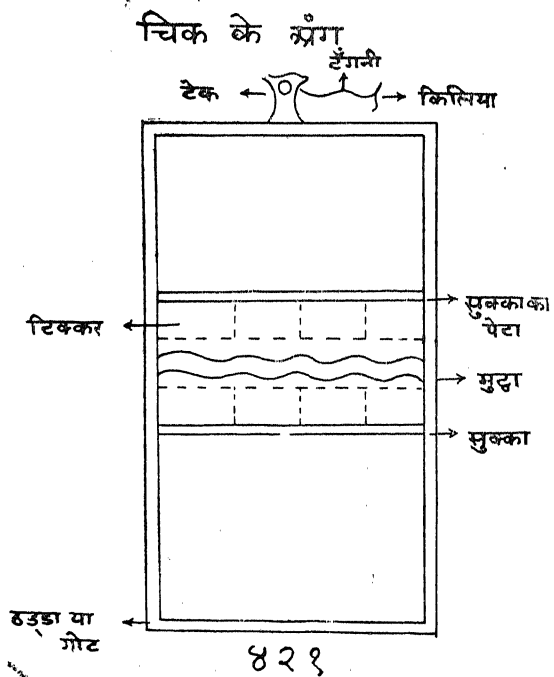
§६६६—**चिक की वस्तुओं के नाम**—चिक में ऊपर और नीचे किनारों पर दो चीड़ें लगाई जाती हैं, जिन्हें **गोट** या **ठड्डा** कहते हैं। इनके ऊपर कपड़ा या निवाड़ भी चढ़ा दी जाती है; वह भी **गोट** ही कहाती है। चिक के बीच में हाथ-डेढ़ हाथ के फासले पर दो खपंचे लगाई जाती हैं, जिन्हें **सुक्का** या **पेटा** कहते हैं। दोनों सुक्कों के बीच की खास बुनावटें **टिक्कर** और **मुट्ठा** कहाती हैं। टिक्कर के डोरों की रेखाएँ लम्ब रूप में और मुट्ठे की धारियाँ आधार रूप में होती हैं।

निवाड़ का छेददार टुकड़ा, जो चिक की ऊपरी गोट में टाँका जाता है, **टेक** कहाता है। टेक में एक डोरी बँधी रहती है, जिसे **टँगनी** कहते हैं। टँगनी के सिरे पर बाँस की एक छोटी लकड़ी लगी रहती है, जो **किलिया** कहाती है। टेक, टँगनी और किलिया की सहायता से लिपटी हुई चिक ऊपर सधी रहती है। चिक बुनजाने पर चोड़ाई में तीलियों की नोंकें इधर-उधर निकली रह जाती हैं, उन्हें **कैंतरा** कहते हैं। चिकसाज कैंतरों को काटकर किनारी पर गोट चढ़ा देते हैं। किसी-किसी चिक में मजबूती के लिए चीड़ डालकर उसके ऊपर निवाड़ चढ़ा दी जाती है। उस निवाड़ को **बद्धी** (सं० बद्ध्री) कहते हैं। जिस चिक में चपटी तीलियाँ ही लगाई जाती हैं, वह **पटरिया चिक** कहाती है।

अध्याय २३

चूड़ियाँ बेचना और पहनाना

§७००—चूड़ी को **चुरी, चूरी** या **चुड़ी** नाम से भी पुकारते हैं। चूड़ियाँ पहनाने का पेशा एक विशेष जाति करती है, जो **मनिहार** कहाती है। मनिहार लोग एक तरह की चूड़ियों को इकट्ठा करके एक डोरी में बाँध लेते हैं। वह गड्डी **लरा** या **लड़ा** कहाती है। कई तरह की चूड़ियों के बहुत-से लड़े तर-ऊपर रक्खे जाते हैं और उन्हें एक कपड़े में बाँध लिया जाता है। इस तरह बनाई हुई गठरी मनिहार की बोली में **झोरी** कहाती है। झोरी के अतिरिक्त छोटी-सी एक गठरी और होती है, जिसमें नमूना दिखाने के लिए चार-चार या छह-छह सभी किस्मों की चूड़ियाँ रहती हैं। उस गठरी को **कँधेल** कहते हैं। कँधेल प्रायः हाथ में या कन्धे पर रहती है। वह डंडा जिस पर मनिहार अपनी झोरी और कभी-कभी कँधेल भी लटकाता है, **सोटा** कहाता है। मामूली चूड़ियों का ढेर, जिसमें कई किस्में हों, **गड्डु** कहाता है।

§७०१—चूड़ी टूट जाने पर उसके प्रत्येक टुकड़े को **डंक** कहते हैं। डंक को गोलाई में जोड़ देने से ही चूड़ी बन जाती है। डंकों की मोटाई, चौड़ाई, गोलाई तथा रंगों की भिन्नता के कारण ही चूड़ियों के अनेक नाम पड़ गये हैं। मनिहार जब किसी स्त्री को चूड़ियाँ पहना रहा हो और संयोग से दो-तीन चूड़ियाँ पहनाते समय टूट जायँ तो उनके लिए **'मौरना'** या **'चटकना'** क्रिया का ही प्रयोग किया जायगा, **'फूटना'** का नहीं। पति के मरने के समय ही स्त्रियाँ अपनी चूड़ियों को फोड़ती हैं, अतः पति के मर जाने पर जब स्त्री अपनी चूड़ियाँ फोड़ती हैं, तभी 'फूटना'

क्रिया का प्रयोग होता है। मौरी हुई चूड़ी को तोड़कर स्त्रियाँ अपने ऊपर पति का प्यार देखती हैं। तोड़ने पर चूड़ी के टुकड़े के सिरे पर यदि नोंक-सी निकल आवे तो स्त्रियाँ उसे प्यार का चिह्न समझती हैं। यदि कोई चूड़ी ऐसी बेमालूम-सी मौरे कि उसके डंक पर बहुत बारीक रेखा पड़ जाय तो उस रेखा को **बार** कहते हैं। बार से कुछ अधिक चौड़ा निशान **तिरकन** कहाता है। तिरकने से अधिक चौड़ा निशान पड़ना **खिलना** कहाता है। कई तरह की टूटी हुई चूड़ियों के डंकों का ढेर **भँगार** कहलाता है। **'भँगार भरना'** एक मुहावरा भी है जो रद्दी-सद्दी व्यर्थ की चीजों के एकत्र करने पर प्रयुक्त होता है।

आकार के विचार से चूड़ियों के नाम

§७०२—जिस चूड़ी का डंक पतला होता है, वह **डार** और जिसका चौड़ा और मोटा होता है, वह **पाटला** (सं० पट्ट=एक प्रकार का कंगन) कहाती है। गोल डंकवाली चूड़ी को **गोला** और चिरी हुई को **लच्छा** कहते हैं। लच्छा चूड़ी का डंक यदि बहुत पतला हो तो वह **काँप** कहाती है। जिस चूड़ी का डंक जगह-जगह टेढ़ा और ख़मदार हो, उसे **बाँक** (सं० वक्र) कहते हैं।

§७०३—चूड़ी के डंक पर जो सुनहरी रेखाएँ, फूल और बूँदें होती हैं, वे **काम** कहाती हैं। कामदार चूड़ियाँ जिन पर कुछ उठे हुए फूल बने रहते हैं, **छुन** कहाती हैं। मोटी और चौड़ी चूड़ी, जिसके डंक में एक नाली-सी बनी रहती है और उस नाली में सुनहरी रंग होता है, **चूड़ा** कहाती है। यदि चूड़े की नाली में जगह-जगह मोती-से लगे रहते हैं, तो उसे **कंगन** या **कँकना** कहते हैं। मोटी और गोल चूड़ी **कड़ा** (सं० कटक) कहाती है। जिस चूड़ी का डंक चौड़ा हो और उस पर उठी हुई बूँदें एक-दूसरी से मिली हुई बनाई गई हों तो उस चूड़ी को **मुठिया** कहते हैं। आधे अंगुल चौड़ी चूड़ी **बेल** कहाती है। बेल चूड़ियों के बीच में दोनों हाथों में एक-एक ही पहनी जाती है।

रूप-रंग के विचार से चूड़ियों के नाम

§७०४—ब्याह-शादियों और तीज-त्यौहारों पर प्रायः सभी **ब्याँहता** (विवाहिता) स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनती हैं। पुरानी चूड़ियों के स्थान पर नई चूड़ियाँ पहनना **चूड़ियाँ बढ़वाना** कहाता है। ब्याह के समय **लाड़ी** (बरनी) और लाड़ी की माँ खासतौर से हरी चूड़ियाँ ही पहनती हैं। हरी चूड़ियों को **धानी** या **तोतई** भी कहते हैं। लगुन, ब्याह, गौने आदि शुभअवसरों पर तोतई चूड़ियों को मनिहार लोग **भागमन्ती** या **भागमान** नाम से भी पुकारते हैं।

§७०४—ललाई लिये हुए काले रंग की चूड़ी **ऊदी** (अ० ऊदी=ऊद रंग की) कहाती है। हरे में यदि कुछ कालापन हो तो उसे **गहरा हरा** कहते हैं। गहरे हरे डंकवाली चूड़ियाँ **मिस्रा** कहाती हैं। तोतई चूड़ियों के डंकों में यदि सफेद-सी झलक मारे तो उन्हें **पोत करेला** कहते हैं। खाकी रंग की चूड़ी **जंगाली**, सफेद और लाल रंगों की झलकवाली **हीरामानिक**, हलके गुलाबी रंग की **फाल्सई** और कुछ पीलापन लिये हुए बादामी रंग की गोल चूड़ी **सरबती** कहलाती है।

§७०६—जिस चूड़ी के डंक में चार-पाँच रंगों के डोरे दिखाई देते हों उसे **धनुखी** या **इन्दरधनुखी** कहते हैं। यदि किसी चूड़ी के डंक में लहरदार रेखा हो तो वह **लहरिया** कहाती है। बिलकुल सफेद रंग की चूड़ी **बिल्लौरी** और कुछ कम सफेद **रेसमी** कहाती है।

§७०७—जिस चूड़ी के डंक को देखते समय एक रंग के साथ काला रंग भी दिखाई पड़े वह **परछाई** कहाती है। जिसके डंक में लाल-नीली झलक मारती हो उस चूड़ी को **धूपछाँह** कहते हैं। काली चूड़ी पर सफेद बूँदें हों तो वह **तितली** कहाती है। पीले रंग की पोली चूड़ी **बिजुरी** या **बिजलिया** कहाती है। जिसके डंक पर चौड़ाई में गड्ढेदार रेखाएँ हों वह **गहना** (सं० ग्रहणक), जिस पर कामदार नोकें बनी हों, वह **कंघी**, जिसमें डंक से भिन्न रंग की दो रेखाएँ हों वह **डोरिया** और कुछ रेखाएँ **चौपहलू डंक** पर हों तो उसे **चौपैल डोरिया** कहते हैं। यदि चूड़ी पीली हो और डंक दो-तीन जगह से खमदार हो तो उसे **आड़ी बेल** कहते हैं।

इसी प्रकार **बुँदकी** (बूँदोंदार), **खिरकिया** (चौखानोंदार) **झरोखनी** (गोलखानोंदार) **सूरजमुखी** (सूरज के निशानोंवाली), **हरीदरसन**, **चन्दा-तारई** (छोटे-बड़े निशानोंवाली) और **लोक तारनी** (हरी और लाल रेखाओं वाली) नाम की कामदार चूड़ियाँ होती हैं।
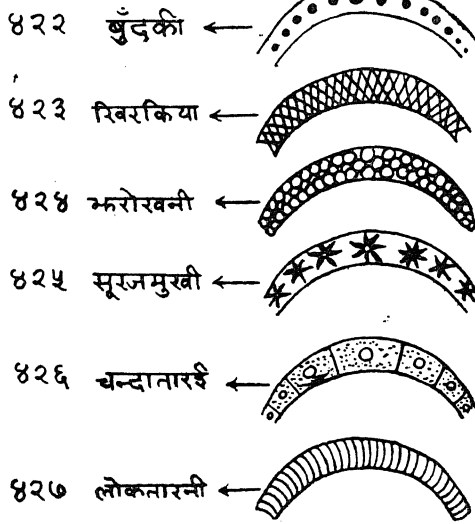
कामदार चूड़ियाँ तथा रेखा-चित्र

बुँदकी ४२२, खिरकिया ४२३, झरोखनी ४२४, सूरजमुखी ४२५, चन्दातारई ४२६, लोकतारनी ४२७।

चूड़ियों का पहनाव

§७०८—यदि पहुँचे में इतनी चूड़ियाँ पहन ली जायँ कि उनकी चौड़ाई लगभग दो-तीन अंगुल ही हो तो चूड़ियों के उस पहनावे को **करइया** कहते हैं। करइया से चौड़ा **पंजो** कहाता है। पंजे से बड़ा पहनावा **हतपूरी** कहाता है। इसे **पूरनभाग** (खैर०, इग० में) भी कहते हैं।

§७०९—उक्त तीनों रूप प्रायः दो ढंगों में देखे जाते हैं। एक ढंग **इकसरा** और दूसरा **बन्द** कहाता है। इकसरे ढंग में एक रंग की एक-सी चूड़ियाँ ही पहनी जाती हैं, लेकिन बन्द में भिन्न-भिन्न रंगों की चूड़ियाँ पहनी जाती हैं। यदि एक लाल, एक हरी, एक पीली और फिर एक लाल चूड़ी पहनी जाय तो यह ढंग **डार बन्द** कहाता है। डारबंद में अलग-अलग रंग की एक-एक चूड़ी ही पहनी जाती है। यदि लगातार दो चूड़ियाँ लाल, फिर दो हरी और फिर दो लाल

पहनी जायँ तो यह **जोड़ा बन्द** कहा जायगा। यदि क्रमशः निरन्तर चार लाल, फिर चार हरी और फिर चार लाल पहनी जायँ तो उसे **चौक बन्द** कहेंगे। इसी प्रकार गिन्तियों के आधार पर बन्दों के नाम पुकारे जाते हैं। चूड़ियों का अलग-अलग रंग अपना बन्द रखता है। उक्त उदाहरण के चौक बन्द में पहले लाल चौक बन्द, फिर हरा चौक बन्द और उसके बाद लाल चौक बन्द कहायेगा। बन्द के ढंग में यह आवश्यक है कि आगे और पीछे एक ही रंग की चूड़ियाँ रहती हैं। बीच में विभिन्न रंग पहने जाते हैं।

§७१०—चाहे इकसरा ढंग हो और चाहे बन्द का; बायें हाथ में सबसे आगे के स्थान पर मनिहार पृथक् रंग की एक चूड़ी अवश्य पहनाता है, जिसे **असीस की चूड़ी** कहते हैं। इस चूड़ी के दाम मनिहार कभी नहीं लेता। सधवा स्त्री असीस की चूड़ी पहनने के बाद अपना सिर झुकाकर मनिहार को चूड़ियों की झोरी को दोनों हाथों से छूती है और फिर दोनों हाथों को एक साथ अपने माथे से लगाती है। इस क्रिया को **सुहाग-धोक** कहते हैं।

नामकरण, लगुन और ब्याह के समय प्रायः हरे रंग की ही सात-सात या नौ-नौ चूड़ियाँ पहनी जाती हैं। उन्हें **सोबे की चुरियाँ** कहते हैं। चूड़ियों की संख्या दोनों हाथों में ७-७ के हिसाब से चौदह हो तो उसे **सात का जोड़ा** कहेंगे। समय पर मनिहार न आ सके, इसलिए कुछ स्त्रियाँ चूड़ियों के जोड़े पहले-से ही खरीदकर रख लेती हैं। उन जोड़ों को पीले रंग के कच्चे सूत में बाँध दिया जाता है। उस धागे को **तागा**[1] या **तागौ** कहते हैं। आधा लाल और आधा पीला कच्चा धागा **कलायौ** कहाता है। सोबे की चूड़ियाँ प्रायः कलाये से ही बाँधी जाती हैं। स्त्रियाँ चूड़ियों को कलाये में बाँधकर बाँस की बनी हुई ढकनदार गोल कंडिया में रखती हैं, जिसे **टिपारी** या **पिटारी** कहते हैं। चूड़ियों की पिटारी खास तौर से **सुहाग टिपारी** कहाती है।

अध्याय २४

सूअर घेरना और पालना

§७११—जंगल में या गाँव के पास के खेतों में सूअरों को चराना **सूअर घेरना** कहाता है। सूअर घेरने का काम प्रायः **महतर** (सं० महत्तर) ही करते हैं, जिन्हें **भङ्गी** भी कहते हैं। मुसलमान महतरों के एक महात्मा या सिद्ध पुरुष **लालबेग** हो गये हैं, जिन्हें वे होली और दीवाली के दिन पूजते हैं।

§७१२—**आयु के विचार से सूअरों के नाम**—सूअरिया के पेट से पैदा हुआ बच्चा **घटा** या **घैंटी** कहाता है। जवान सूअरिया **सरकिया** कहाती है। जो सूअरिया गर्भ धारण

---

[1] पह० ताक > फा० ताग > तागा।
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४, अंक २-३

करने योग्य हो अथवा ब्या पड़े वही **सूअरिया** नाम से पुकारी जाती है। जवान सूअर, जिसे खस्सी न किया गया हो, **अड़ुआ** कहाता है।

§७१३—**स्थान के विचार से सूअरों के नाम**—घरों में रहनेवाले सूअर **घरेलू** और जंगल में रहनेवाले **बरहेलू** या **बरहेली** कहाते हैं। सूअरों के **इस्टेरिया, अमरीखी, बिलायती** और **देसी** नाम स्थान के दृष्टिकोण से ही हैं।

§७१४—**सूअरों के अन्य नाम**—जिस सूअर की मा देशी और बाप विलायती हो, वह **खिचरा, दोगला** या **दुरस्सा** कहाता है। ऊँचे और लम्बे कद का सूअर **ठड्डा** या **खिचार** कहाता है। गट्टुआ (छोटे कद वाला) सूअर को **चुनिया** कहते हैं। लम्बी देह का एक खास किस्म का सूअर **सतोल** कहाता है। यह प्रायः दीवालों में टक्कर मारा करता है और अपनी थूथनी से कच्ची दीवालों को **पुलार** डालता है। पोला करने के अर्थ में जनपदीय क्रिया **'पुलारना'** है। खस्सी हुए सूअर को **चिरैला** बोलते हैं।

कद का गट्टा और गोल सूअर **गुटक** कहाता है। जिसकी देह पर बाल बहुत कम होते हैं वह **घुटमुंडा** और जिसके कान सदा नीचे की ओर लटके रहते हैं, वह **कंतरी** कहाता है। कंतरी के कानों का रुख भी नीचे को ही होता है। छोटे कद का माँसदार सूअर **झबदा** कहाता है। यदि बड़े कद का हो और देह पर माँस भी बहुत हो तो उसे **झोट** कहते हैं। झोट में लगभग एक मन गोश्त निकलता है। जिसका पेट बड़ा हो और नीचे की ओर लटकता हो उस सूअर को **झोरिया** कहते हैं।

बिलकुल काले रंग का सूअर **करुआ,** काला और सफेद **कबरा,** छोटी-छोटी काली बूँदों-दार **छिंटैला,** सफेद देह पर बड़ी-बड़ी बूँदोंवाला **चितैरा** और बिलकुल सफेद **भर्रा** कहाता है। जिसकी देह कुछ मटमैली-सी हो, उसे **भकभूसड़ा** कहते हैं। सफेद खाल और लाल बाल हों वह **लोहरा** कहाता है।

§७१५—**सूअरों के रहने का स्थान**—एक छोटा-सा कोठा जिसमें सूअर रक्खे जाते हैं, **खुड़ी** कहाता है। खुड़ी में एक छोटा-सा दरवाज़ा होता है, जिसे **मुहार** कहते हैं। सूअर खुड़ी में से बाहर न निकल सकें, इसलिए मुहार में आड़ी हालत में तीन-चार लकड़ियाँ अड़ा दी जाती हैं, जो **डढ़ैरी** कहाती हैं।

§७१६—**सूअर की आवाजें**—भूखा सूअर रोटी देखकर एक खास तरह की घुर्र-घुर्र करता है, जिसे **किल्लाहट** कहते हैं। जब महतर गोश्त खाने के लिए सूअर को बाँधकर मारते हैं, तब वह जो चीख मारता है, उसे **चिक्करी** कहते हैं। चिक्करी मारते-मारते वह बेहोश-सा भी हो जाता है। सूअर की वह बेहोशी **तांबड़ौ** या **तमाड़ौ** कहाती है। सूरदास ने **'ताँवरौ**[१]' शब्द का प्रयोग किया है। सूअरों को महतर लोग अपने पास कुछ खिलाने के लिए बुलाना चाहते हैं, तब वे एक खास तरह की बोली बोलते हैं। उसे **डहकाना** कहते हैं। डहकाने में सूअर को ऐसा खिंचाव मालूम होता है कि सब ओर से ध्यान हटाकर बोली को सुनने लगता है और फिर तुरन्त **डहकिये** (डहकानेवाला) के पास आ जाता है। बोली को सुनकर खुर-खुर करते हुए

---

[१] "उड़िगयौ तूल **ताँवरौ** आयौ।

सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १।३२६

सूअर का आना और घूमना **'डहकना'** कहाता है। कबीर ग्रंथावली और सूरसागर में भी 'डहकाना'[१] शब्द प्रयुक्त हुआ है।

§७१७—**सूअर की देह के अंदर के भाग**—सूअर का दिल महतरों की बोली में **हीयौ** कहाता है। सूअर के पेट का वह भाग जिसमें खाना रहता है, **पोटा** कहाता है। रीढ़ के पास गोश्त की मोटी तह निकलती है, उसे **सुरैरा** कहते हैं। सुरेरा पीछे की ओर रीढ़ के दायें-बायें होता है। गोश्त को **लाली** और चर्बी को **चीकना** कहते हैं। गोश्त को जब खूब कुचल दिया जाता है, तो वह **कीमा** (अ० क़ीमा) कहाता है। घेंटे के मुलायम बाल **रुँगटा** कहाते हैं। सूअर जंगली के मुँह में दो टेढ़े दाँत होते हैं, जिनसे वह शिकार को चीर डालता है। वे दाँत **काँप** कहाते हैं।

अध्याय २५

सोने-चाँदी के बरक बनाने का काम तथा सोने चाँदी की अन्य वस्तुएँ

§७१८—कूट-पीटकर पतली हालत में बनाये हुए सोने-चाँदी के पत्तर **बरख** (अ० बरक़) कहाते हैं। बरक बनानेवाला **बरककूटा** कहाता है।

§७१९—**बरक बनाने में काम आनेवाले औजार**—बरक कूटनेवाला बरकों की गडडी जिस तिपाई पर रखता है, वह बरकसाज की बोली में **अड्डी** या **ठीया** कहाती है। बरकसाज़ों
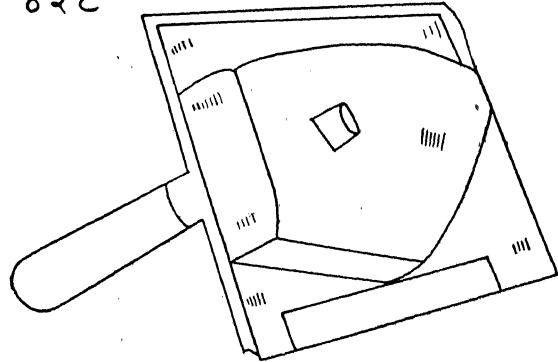
दफ़्तरी और हथौड़ा [रेखा-चित्र ४२८]

---

[१] धोखैं ही धोखैं डहकायौ।"
सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, १।३२६
"बार-बार जम पैं डहकावै हरि कौ ह्वै न रहै रे।"
डा० श्यामसुन्दरदास (सम्पादक) : कबीर ग्रंथावली, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, पदावली, ३१०।

के पास एक किताब-सी होती है, जिसमें हिरन की झिल्ली से बने हुए सैकड़ों कागज से लगे रहते हैं और उनके ऊपर **साबर** (बकरे की खाल) का पर्त लगा रहता है। उस किताब के हर एक पन्ने पर बरक पहले जमाये जाते हैं, तब कूटे जाते हैं। बरकसाजों की बोली में वह किताब **औजार, थड़ा या अबरा** कहाती है। साबर की बनी हुई जिस थैली में औजार रक्खा जाता है, उसे **बुलबुली, दफ्तरी** या **कजक्कू** कहते हैं। बरक कूटते समय कजक्कू के ऊपर ही हथौड़े की चोटें मारी जाती हैं।

जमीन में गड़ी हुई पत्थर की छोटी पटिया, जिस पर दफ्तरी को रखकर बरकों की कुटाई होती है, **टीप** कहाती है। लोहे की एक चीमटी-सी, जो साबर के अबरे के अन्दर रक्खे हुए पन्नों को दाब लेती है, **चीक** कहाती है। कुटे हुए बरकों को लोहे की एक पत्ती से उठाया जाता है। उस पत्ती को **फलुआ** कहते हैं। बारीक चमड़े का एक खोल, जिसे बरकसाज पन्ना पलटते समय अपनी उँगलियों पर चढ़ा लेता है, **पोरुआ** या **पोटुआ** कहाता है। सेलखरी का चूरा झिल्लियों के पन्नों पर बुरक दिया जाता है, ताकि बरक न चिपटें। उस चूरे को **मखोल** कहते हैं। दफ़्तरी पर हथौड़े की इकसार चोट मारना **हमला बोलना** या **कुट्टा करना** कहाता है।

§७२०—**बरकों के विभिन्न रूप**—एक तोले वजन की चाँदी की लम्बी पत्ती **अलगा** कहाती है। आमतौर से अलगे की लम्बाई १२ फुट और चौड़ाई पौन इंच होती है। अलगे में से टुकड़े करके **गुच्छी** बनाई जाती है। गुच्छी में से काटे हुए २-३ अंगुल लम्बे टुकड़े **नुकारा** कहाते हैं। नुकारे ही पन्नों पर जमाकर कूटे जाते हैं। नुकारे पर हथौड़े की चोट पड़ने से जब वह फैल जाता है, तो उसे **लट** कहते हैं। बरक की सतह में जो बिना कुटी उभरी जगह दिखाई देती है, वह **गाँठ** कहाती है। कुटे हुए बरकों से झड़ी हुई किनारी के कण **बूर** कहाते हैं। बरकों का चूरा, जो तोल से ही मालूम किया जाता है, **तोल** कहाता है। तैयार बरकों की गड्डी, जो मोंमी कागजों पर जमाई हुई होती है, **जुट्टी** कहाती है।

जब १५० नुकारे पन्नों पर कूटने के लिए जमाये जाते हैं, तब वे **एक घान** कहाते हैं। एक तोले चाँदी में १५० बरक बनते हैं। कुटे हुए डेढ़ सौ बरकों की **एक ढाली** कहाती है। सौ ढालियों का एक **मण्डल** होता है।

यदि ताँबा और पीतल आदि का पत्तर बनाया जाय तो वह **पन्नी** कहाता है। चाँदी के बरकों की बूर और तोल को कभी-कभी पन्नियों में भी रख लेते हैं।

सोने-चाँदी के तार खींचना

§७२१—सोने या चाँदी को गलाकर उसकी लम्बी-सी एक डण्डी बनाई जाती है, जिसे **रैनी** कहते हैं। रैनी को ठोक-पीटकर और अधिक लम्बा और पतला बनाया जाता है। उसे जब गोलाकार रूप में लपेट दिया जाता है, तब वह रूप **लच्छी** कहाता है। लच्छी से ही पतला तार बनता है। तार बनाने वाले को **तार-खिंचइया** कहते हैं।

तार खींचने के औजार

§७२२—लकड़ी के जिस अड्डे की सहायता से तार खिंचता है, उसे **चरख** कहते हैं। जहाँ तार-खिंचइया बैठता है, वह चबूतरी-सी **ठीआ** कहाती है। उसी के पास एक गड्ढे में चरख लगा रहता है। चरख के अग्रभाग में धरती में दुसंखी लकड़ी गड़ी रहती है, जो **मुन्ना** कहाती

है। मुन्ने के सहारे जन्ती या जंतरी [लोहे की एक मोटी पत्ती जिसमें छोटे-बड़े अनेक छेद होते हैं। उन्हीं छेदों में होकर जब लच्छी का तार खिंचता है तभी **गहनाऊ तार** (आभूषण बनने के योग्य तार) बनता है] में लच्छी का तार पो दिया जाता है। उसके सिरे को जंबूर में जकड़ दिया जाता है। वह जंबूर **खैंचे** (एक साँकर) में पड़ा रहता है, जिसका संबंध चरख के **मदरे** (चरख का गोल और लम्बा भाग जिसमें खूँटे ठुके रहते हैं) से होता है। खूँटों को हाथ-पाँव से तार-खिंचइया घुमाता चलता है और तार जंतरी के छेद में से निकलकर चरख के मदरे पर लिपटता चलता है। जो मनुष्य मुन्ने के पास जंतरी को मुन्ने के दोनों खूँटों से अड़ाये रखता है, वह **जरगर** (फा० ज़रगर) कहाता है। यदि जंतरी मुन्ने के खूँटों की दूरी की अपेक्षा छोटी होती है तो सहायता के लिए एक बड़ी जंतरी भी आगे लगा ली जाती है, जो **आगर** कहाती है।
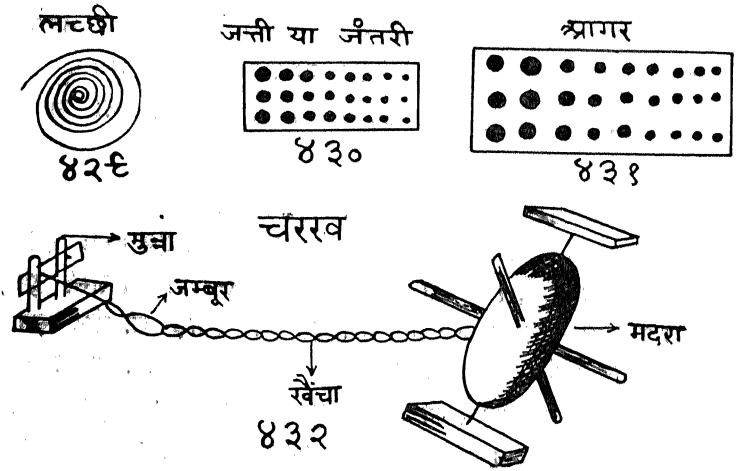
[रेखा-चित्र ४२६ से ४३२ तक]

पक्के बारीक तार और कलाबत्तू

§७२३—चाँदी का बहुत पतला तार जब पोली हालत में मोड़कर सूत जैसा बना दिया जाता है, तब वह **गिजाई** कहाता है। यदि कुछ बेगरा मोड़ा जाता है, तो **सलमा** कहाता है। गोल पत्ती जिसके बीच में एक छेद होता है, **सितारा** कहाती है। चाँदी के सलमे के ऊपर जब सोने का पानी चढ़ा दिया जाता है, तब उसे **सुनहरी सलमा** कहते हैं।

§७२४—जब सूती या रेशमी डोरे पर सोने-चाँदी के तार घने रूप में लपेट दिये जाते हैं, तब वह **कलाबत्तू** कहाता है। बनावट की विभिन्नता के कारण कलाबत्तुओं की वस्तुएँ कई तरह की होती हैं, जैसे—गोटा, चम्पाकली, डोरी, पैमक या लैस और बाँकड़ा।

(१) **गोटा**—यह एक या दो अंगुल चौड़ी पट्टी-सी होती है, जिसका ताना चाँदी के तारों का और बाना रेशम के तारों का होता है।

(२) **चंपाकली**—तिखुंटे सकलपारों का गोटा जिसमें ताना चाँदी का और बाना डोरे का होता है।

(३) **डोरी**—डोरी के रूप में गफ बुना हुआ कलाबत्तू **डोरी** कहाता है।

(४) **पैमक**—कलाबत्तू के ताने-बाने से बुनी हुई तीन-चार अंगुल चौड़ी पट्टी **पैमक** या **लैस** कहाती है।

(५) **बाँकड़ा**—इसमें कलाबत्तू की बुनावट टेढ़ी-मेढ़ी हालत में होती है, जो देखने में सुन्दर प्रतीत होती है। ब्याह-शादियों में दिखाये की **तीहर** (लहँगा—ओढ़ना) पर गोटा, पैमक और बाँकड़ा आदि टाँके जाते हैं।

——

अध्याय २६

रंग-रोगन करना

§७२५—अलमारी, मेज, कुर्सी आदि काठ के सामान पर रँग-रोगन करनेवाला कारीगर **रँगेरा** कहाता है। अलमारी, किवाड़ आदि पर जो बहुत बारीक रेखा होती है, वह **बार** कहाती है। बार से अधिक चौड़ी रेखा **तिरकन** और तिरकन से चौड़ी **संध** कहाती है। एक जगह बना हुआ गड्ढा-सा **खाँच** कहाता है। लकड़ी की सतह में कहीं तिरकनदार गाँठ हो तो उसे **गठेंस** कहते हैं। यदि लकड़ी का धरातल सफेद हो और उस सफेदी में जहाँ-तहाँ काली-सी धारियाँ हों तो उन काली धारियों को **अबरा या रचौर** कहते हैं।

§७२६—बार, तिरकन, सँध, खाँच आदि की खराबी को ढकने के लिए रँगेरा जो मसाला लगाता है, उसे **भरान** या **अस्तर** कहते हैं। भरान करना **अबर फेरना** भी कहाता है। एक तरह की चिपकदार चीज जो गाय, भैंस, बैल आदि पशुओं का चमड़ा औटाने से निकलती है, **सरेस** कहाती है। भरान या रोगन में सरेस मिलाया जाता है, ताकि भरान सँधों में चिपक जाए। लकड़ी के बुरादे से बनाया हुआ चिपकदार मसाला जो लकड़ी की सँध या खाँच में **खोट** (लकड़ी की खराबी) ढकने के लिए भर दिया जाता है, **चूरी** या **बुरैनी** कहाता है। एक प्रकार का काला-सा गोंद जो छिपकदार होता है, **रार** कहाता है। कुछ अलसी में थोड़ा-सा सफेदा मिलाकर किसी रंग में डाल देते हैं। इस तरह बने हुए घोल को **रुगनिया रँग** कहते हैं।

§७२७—अदद की जमीन का खुरदरापन दूर करने के लिए उस पर एक ऐसा कागज रगड़ते हैं, जिसकी एक सतह पर दरदरा मसाला लगा रहता है। उस कागज को **रेगमाल** कहते हैं। बालों का बना हुआ छोटा ब्रुश, जिससे सरेस या रोगन **सँधों** (दराज) में भरते हैं, **कुचिया** (सं० कूर्चिका) कहाता है। रोगन करने का बड़ा ब्रुश **बरौंची** या **कुची** कहाता है। भरान भरने के लिए कपड़े का जो टुकड़ा काम में आता है, उसे **पुचारा** कहते हैं। लाख से बनाया हुआ रोगन **लखौटा** कहाता है। यह लाल होता है।

§७२८—रँग की पतली रेखा **धारी** और चौड़ी **लीक** कहाती है। चारों ओर लीक बनाना **चौखटा** कहाता है। झाड़ू की सींक की भाँति पतली धारी जो रोगन के बाद भिन्न रंग से अदद पर बनाई जाती है, **सींकन** कहाती है। रंग को इकसार लगाने में और चमकदार करने में जो कुची चलाई जाती है, उसे **सफाई का हाथ** कहते हैं। रोगन करने के बाद में पोता जाने वाला

मसाला, जो अदद को चमकाता है, **चमकन** कहाता है। कभी-कभी रोगन करने के बाद काँच की एक बट्टी से अदद को रगड़ते हैं। उस क्रिया को **घुटाई** या **सुताई** कहते हैं। काँच की वह बट्टी **घोंटा** कहाती है।

अध्याय २७

ताला-ताली बनाना

§७२६—ताले और तालियाँ बनाने का व्यवसाय तहसील कोल और हाथरस के बहुत-से कस्बों और गाँवों में होता है। अलीगढ़ के ताले अपनी मजबूती के लिए सारे भारत में प्रसिद्ध हैं। ताले को **तारौ** (सं० तालक>तालअ>ताला>तारा, तारौ) और ताली को **तारी**, **चाबी** या **कूँची** कहते हैं। तालों का व्यापार करनेवाले तालों के **रुजगारी** कहाते हैं। दो-दो या एक-एक करके ताले बेचनेवाले **फूटाहेरी रुजगारी** और इकट्ठा बेचनेवाले व्यापारी **थोकिया** कहाते हैं।

ताले के हिस्सों के नाम

§७३०—ताले में खास तौर से **दो पत्ते**, **एक घेर**, अन्दर एक **हुड़का** और उस पर लगी हुई **भरें** और **कड़ा** या **कौंड़ा** होता है। यदि ताले में से **कड़ा** निकाल लिया जाए तो शेष ताला **डिबिया** कहाता है।
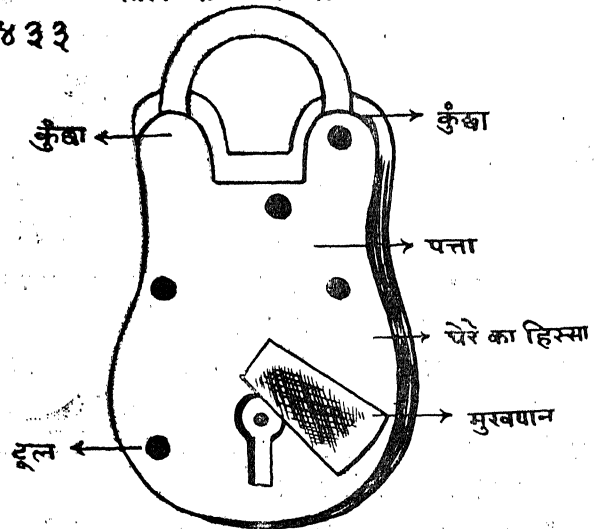
ताले के ऊपरी हिस्से [रेखा-चित्र ४३३]

§७३१—लुहार आग में गर्म करके और ठोक-पीटकर जिस लोहे के टुकड़े को किसी शक्ल में बनाता है, वह लोहे की चीज **डौरी** (अँग० में रौटआइरन) कहाती है। यदि लोहे को गलाकर

साँचे के द्वारा किसी शक्ल में बनाया जाता है तो उसे **ढरी** (अँग० में कास्ट आइरन) कहते हैं। ताले में सब चीजें ढौरी हुई ही पड़ती हैं।

§७३२—सबसे पहले ताले बनानेवाला लोहे का खाँचदार एक पल्ला लेता है, जिसे तालेवालों की बोली में **पत्ता** कहते हैं। पत्ते में ऊपर की ओर उठे हुए हिस्से **कुंछे** कहाते हैं। दाहिनी ओर के कुंछे में कड़े का **फुन्दा** (कड़े का गोल और छेददार हिस्सा जिसमें एक कील फँसी रहती है) कील से फँसा दिया जाता है। कड़े के बाईं ओर सिरे पर बनी हुई खाँच **कड़े की डाढ़** कहाती है। फुंदे और डाढ़ के बीच का भाग कड़े की **डाँड़ी** कहाता है।
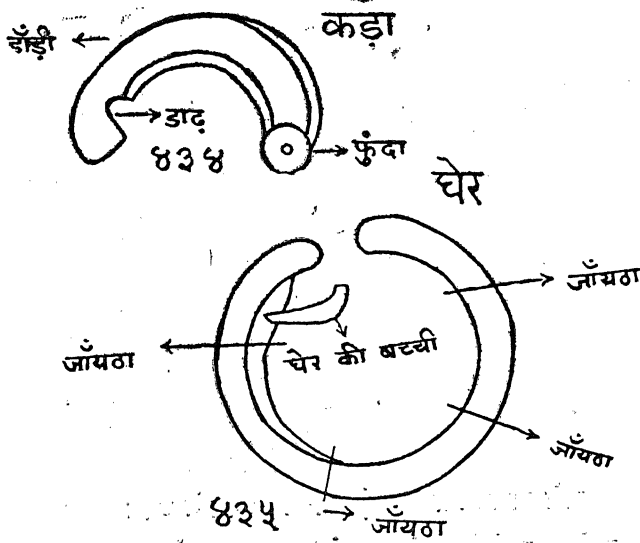
ताले का कड़ा तथा घेर [रेखा-चित्र ४३४ से ४३५ तक]

§७३३—पत्ते के ऊपर **घेर** (लोहे का गोल छोटा पहिया-सा जिसका ऊपरी हिस्सा कटा रहता है) इस तरह जमाया जाता है कि घेर की **बच्ची** (एक खास पत्ती) पत्ते की बाईं कुंछी के कुछ नीचे रहती है। घेर के नीचे रक्खा हुआ यह पत्ता बड़े काम का होता है। इसमें ही तीन **खुंटियाँ** (पतली और छोटी कीलें) गाड़ी जाती हैं। एक खुंटी बच्ची के ठीक नीचे और दो बीच पत्ते में बराबर-बराबर ठोकी जाती हैं। खुंटियाँ ठोकने से पहले ताला बनानेवाला निश्चित स्थानों पर गेरू से निशान लगाता है। उन निशानों को **बुद्धिका** कहते हैं। निशान जिस लकड़ी से लगाये जाते हैं, वह **कलम** कहाती है। पत्ते में ठुकी हुई ऊपर की कील **बच्ची की खुंटी** और बराबर-बराबर ठुकी हुई दोनों कीलें **हुड़के** (ताले का विशेष पुर्जा जिसकी हरकत से ताला खुलता है और बन्द होता है) की **खुंटियाँ** कहाती हैं। घेर में जो खुंटियाँ आर-पार ठोकी जाती हैं, उन्हें **जाँयठा** कहते हैं। बराबर की दोनों खुंटियों में ही हुड़के की दोनों **झिरियाँ** (बीच में कटा हुआ खाली हिस्सा) फाँस दी जाती है। हुड़के का ऊपरी हिस्सा **मत्था** कहाता है, जो बच्ची के घर के आधे भाग में रहता है। ताला बन्द होते समय वही मत्था आगे बढ़कर कड़े की डाढ़ में अड़ जाता है। हुड़के के ऊपर उन्हीं बराबर की खुंटियों में **झरें** (लीवरें) फँसाई जाती हैं। तालों में कम से कम एक और अधिक से अधिक बारह झरें तक लगती हैं। जितनी अधिक झरें होंगी ताला उतना ही बढ़िया और मजबूत माना जायगा। हुड़का और झर मिलकर **छत्ता** या **सामान** कहाता है। हुड़के के नीचे के हिस्से में चाबी घूमने के लिए खाँच करने से पहले चाबी की **डाढ़** (चाबी की

डण्डी के सिरे पर उठा हुआ हिस्सा) से एक गहरा निशान किया जाता है, उसे **खीस** कहते हैं। खीस पर ही हुड़के को रेतकर खाँच बना लेते हैं और फिर चाबी की सहायता से हुड़का हरकत करने लगता है। झर की झिरी में निकला हुआ नोंकदार हिस्सा **हाक** कहाता है। झर के बाईं ओर गोल गड्ढेदार हिस्सा **गल्ता** कहाता है। रेती से घिसकर गल्ते को चिकना बनाया जाता है। झर के ऊपर का तार **कमानी** कहाता है। कमानी की ऊपरी नोंक बच्ची की खुंटी में अड़ा दी जाती है।
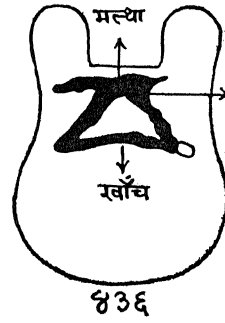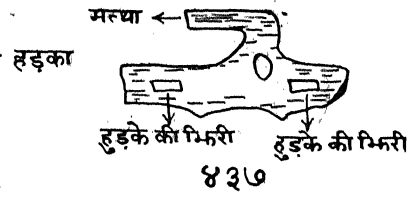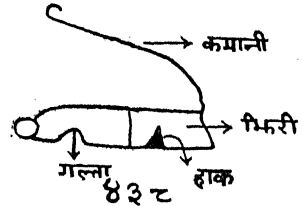
ताले का निचला पत्ता [रेखा-चित्र ४३६ से ४३८ तक]

§७३४—हुड़के के खाँचे के नीचे जो खुंटी ठुकती है, उसे **चाबी की खुंटी** कहते हैं। जिस समय चाबी से ताला खोला जाता है, उस समय यह खुंटी चाबी के **लट्ठे** या **डाँड़ी** के छेद में रहती है। ताली के निचले और ऊपरी पत्तों पर उठी हुई-सी बूँदें **टूल** कहाती हैं।

§७३५—ताले के ऊपरी पत्ते के बीच में जो छेद चाबी डालने के लिए बनाया जाता है, उसे **चाबी की डाढ़ का घर** कहते हैं। उस घर के ऊपर ढक्कन रूप में एक चौड़ी-सी पत्ती लगा दी जाती है, जो **मुखपान** (सं० मुखपर्ण) कहाती है। मुखपान लगाने से ताले के अन्दर धूल-मिट्टी नहीं जा सकती।
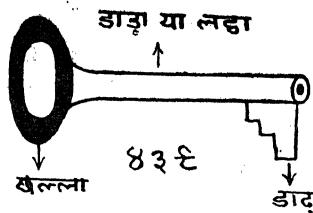
[रेखा-चित्र ४३९]

ताली के हिस्से

§७३६—ताली का ऊपरी भाग **छल्ला**, बीच का भाग **लट्ठा** या **डाँड़ी** और डाँड़ी पर सिरे के पास उठी हुई पत्ती **डाढ़** कहाती है।

ताले बनाने में काम आनेवाले औजार

§७३७—सबसे पहले **हतौड़ा, हतौड़ी** और **निहाई** काम में आती हैं। एक तख्ता जिसमें **हतकल** या **बाँक** (एक औजार जिसमें दो पलइयाँ लगी रहती हैं और वे घेरनी नाम की लोहे की डण्डी के घुमाने से खुलती तथा बन्द होती हैं) लगा रहता है, **ठीआ** कहाता है। एक खास तरह की आरी **हेका** कहाती है, जो भर की **भिरी** और हाक बनाने में काम आती है। एक लोहे की ठोस डण्डी **सरिया** कहाती है, जो घेर की गोलाई ठीक करने में काम आती है।

§७३८—ताले के पुर्जे और पत्त आदि घिसने के लिए जो रेत और रेती काम में आती हैं, वे कई तरह की होती हैं। जिस रेती से चाबी की डाढ़ में खाँचा किया जाता है, उसे **डाढ़ खाँदनी रेती** कहते हैं। जिस रेती से ताले के गोल और चौरस पुर्जे रेते जाते हैं, वह **बादामी** कहाती है। एक रेती लम्बी और गोल होती है, जो गोल सूराखों को रेतती है, उसे **गोल रेती** कहते हैं। जिस रेत की धरती पर चौड़े और बड़े दाँते बने रहते हैं, वह **खुर्रा** कहाता है। और बारीक दाँतों का रेत **मट्ठा** कहाता है। रेत पर खुर्रे और मट्ठे दाँते बनाना **टकाई करना** कहाता है। बारीक टकाई का रेत छोटी और बढ़िया चीजों को चमकाने तथा चिकनाने में काम आता है। ताले के ऊपरी पत्त पर नाम या अंक खोदने का औजार **उकेरनी** कहाता है। उकेरनी से की हुई खुदाई **उकेर** (सं० उत्कीर्य > उक्कइर > उकेर)[1] कहाती है।

§७३९—लोहे की नुकीली कील-सी जिससे ताले के पत्ते में छेद किया जाता है, **सुम्मी** कहाती है। सुम्मी से कुछ अधिक मोटा और बड़ा औजार **सुम्मा** होता है। एक चौपहलू औजार जिससे ताली की डाढ़ का घर बनता है **चापन** कहाता है।

§७४०—एक औजार **डाढ़ कटन्ना** कहाता है जिससे कड़े की डाढ़ काटी जाती है। यह चौपहलू और नोंक पर रेबदार होता है। ढालू धार को **रेब** या **दासा** कहते हैं।

§७४१—**'सींकचा'** नाम के औजार से घेर के सूराख आर-पार किये जाते हैं। यह लम्बा और गोल होता है। छेद करने में **बरमा** और **कमानी** काम आती है। कमानी की डोरी से बरमा घूमता है। बरमे के ऊपर जिस लकड़ी से दाब लगाई जाती है, उसे **दाब** कहते हैं। बरमे
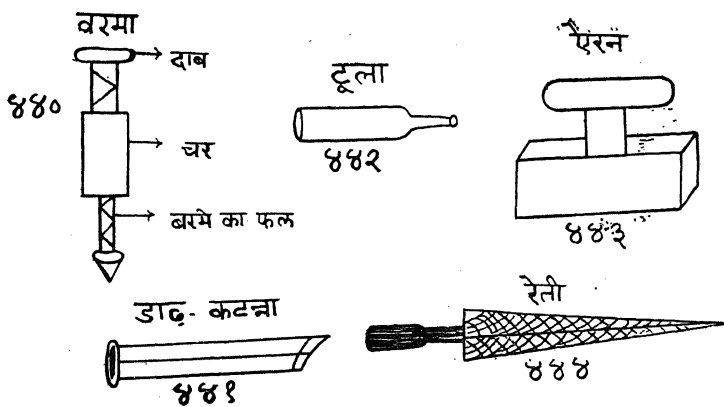
[रेखा-चित्र ४४० से ४४४ तक]

[1] डा० वासुदेव शरण गुप्त अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अङ्क २-३, सं० २००६, पृ० ६९।

की कील बरमा और ऊपर की गोल लम्बी लकड़ी **चर** कहाती है। बरमे को घुमाने के लिए डोरी से चर ही घुमाई जाती है।

§७४२—लोहे को काटने में **छैनी** काम आती है। चौपहलू छैनी जिससे घेर का मुँह काटा जाता है, **घेर-काटनी** या **घेर-कटनी** कहाती है।

§७४३—एक छोटा-सा औजार **टूला** कहाता है। यह गोल होता है और सिरे पर मामूली गहरा गड्ढा होता है। इससे ताले के पत्ते पर **टूल** (उठी हुई बूँदें) माठे जाते हैं। उठी हुई बूँदें बनाना **टूल माँठना** कहाता है।
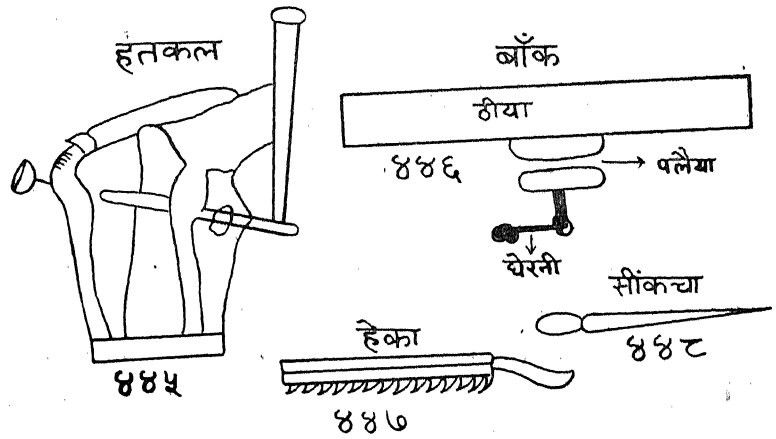
ताले के विभिन्न औजार—[रेखा-चित्र ४४५ से ४४८ तक]

अध्याय २८

औजारों पर सान लगाना

§७४४—उस्तरा, चाकू, कैंची आदि पर **सान** (सं० शाण=एक पत्थर) लगाना **पैनाना, चाँड़ना** या **धार-धरना** कहाता है। सान लगानेवाला **सानगर** कहाता है। सानगर जहाँ बैठकर औजार पर धार धरता है, वह जगह **ठीआ** कहाती है। धार धरते समय अदद के पाते की किनारी को पतला करके **पैना** (तीक्ष्ण) बनाया जाता है। उस पतली किनारी को **धार** कहते हैं। धार और पाते के बीच में किनारे-किनारे ढलावदार एक पट्टी-सी नोंक तक बनती चली जाती है, उसे **लाँप, सलामी** या **धार का मैदान** कहते हैं। लाँप में से ही धार निकाली जाती है। धार में यदि कोई कटा हुआ हिस्सा बन जाता है, तो उसे **दाँता** कहते हैं। यदि काम में अधिक दिन बरतने के कारण कोई औजार काम नहीं देता तो वह **मोंथरा, खुट्टल** या **खोटा** कहाता है। पत्थर की जिस गोल पटिया पर सान रक्खी जाती है, वह **चाका** या **गिरदा** कहाती है। चाकू या कैंची की नोंक जो पतली-सी होकर एक अंगुल आगे को निकली रहती है, **फल** कहाती है। **उस्तरे** या **चक्कू** (चाकू) की नीचे की लकड़ी **बेंटी** कहाती है।

चाका और उसकी सहायक वस्तुएँ

§७४५—जिस लकड़ी में चाक लगा रहता है, वह **बेलन** या **धुरा** कहाती है। धुरे में दोनों ओर पतली कीलें ठुकी रहती हैं, जो खूँटों के छेदों में घूमती हैं। उन कीलों को **धुरी** कहते हैं। चाक की किनारी जिस पर औज़ार घिसकर पैना किया जाता है, **कुरंड** (सं० कुरुविन्द), **बार** या **बाड़** कहाती है। बाड़ और बेलन के बीच में चाक का हिस्सा **पटिया** कहाता है। बेलन में चमड़े की एक पटार लगी रहती है, जिसके खिंचने से सान का चाक घूमता है। उस पटार को **माल** कहते हैं। 'सान' के लिए **स्याम** शब्द भी प्रचलित है। जब सानगर किसी औज़ार पर सान लगाता है, तब चाक की बाड़ से ईंट का टुकड़ा भी रिगड़ता चलता है, ताकि बाड़ चिकनी न होने पाये। उस ईंट को **लाग** कहते हैं। बाड़ पर औज़ार की धार कुछ खुरदरी बनती है। उसे चिकनी बनाने के लिए एक छोटी पत्थर की सिल्ली पर घिसा जाता है। उस सिल्ली को **पथरिया** कहते हैं।

सान या चाका
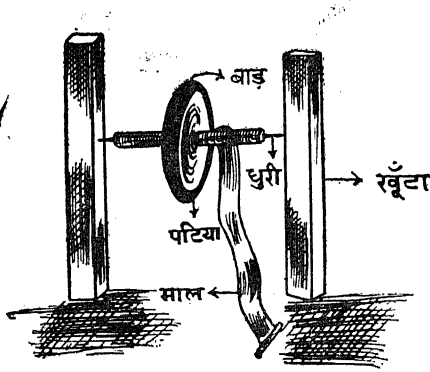
सान का चाका—[रेखा-चित्र ४४६]

—

अध्याय २६

किताब-मढ़ाई

§७४६—किताबों को सींकर और **पट्ठा** (गत्ता) आदि लगाकर उनको सुरक्षित बनाने-वाला कारीगर **किताब-मढ़इया** या **जिल्दसाज** कहाता है। किताब मढ़ने का काम या उसकी मजदूरी को **किताब-मढ़ाई** कहते हैं। धार्मिक किताब को **पोथी** (सं० पुस्तिका[1] > पुत्थिआ >

[1] "पहलवी भाषा में 'पुस्त' का अर्थ खोल है। ईरान में चमड़े (पार्चमेन्ट) पर ग्रंथ लिखे जाते थे, इसी कारण 'पुस्तक' का अर्थ ग्रंथ हुआ।"
डा० वसुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४२।

पोथी) कहते हैं। पोथी की मढ़ाई इस तरह से की जाती है कि पन्ने पूरे खुले रहें और किताब हाथ से पकड़नी न पड़े। अतः जिल्दसाज पोथी को मढ़कर उसे **टिखटी** (काठ की एक वस्तु जिस पर किताब खोलकर पढ़ते हैं। इसमें दो तख्ते कैंचीनुमा फँसे होते हैं) पर रखकर देखता है।

किताब मढ़ने में काम आनेवाली वस्तुएँ और मढ़ाई

§७४७—चिपकाने के लिए बनाया हुआ चिपकदार आटा **लेई** और रंगीन कागज **अबरी** कहाता है। किताब के ऊपर जो जिल्द मढ़ी जाती है, उसे **मढ़ेल** कहते हैं। मढ़ेल में दो **पट्ठे** लगते हैं। पट्ठों की ऊपरी सतह **पाखा** या **बगलिया** कहाती है। पाखों के दूसरी तरफ की अंदरूनी सतह **भीतरा** कहाती है। भीतरे पर जो सादा कागज चिपकाया जाता है, उसे **अस्तर** कहते हैं। पाखे पर अबरी लगाई जाती है। पाखों के ऊपरी दोनों कोनों पर त्रिभुजाकार रूप में कपड़ा या अबरी लगाई जाती है, जो **कन्ना** या **कनौंचा** कहाती है। पाखों में नीचे की ओर जुजों पर बने हुए खाँचे जिनमें सिलाई की **लच्छी** (मिले हुए डोरे) बैठाये जाते हैं, **घाट** कहाते हैं। घाटों और छेदों में पड़े हुए डोरों के फन्दे **सिमाई** या **सीमन** कहाते हैं। मढ़ाई में जब किताब का एक-एक **ताव** (फरमा) सिलाई में भरा जाता है, तब वह **जुजबन्दी** की सिलाई कहाती है। जुजबन्दी की मजबूती के लिए एक सिलाई **लपेट** कहाती है। इसमें किताब पूरी तरह से खुलती है और ऊपर नीचे किताब के पन्ने ठीक जगह जमे रहते हैं। **टीच** या **टीस** (सादा आर-पार सिलाई) में छेद करने में काम आनेवाली लोहे की चीज **सुम्मी, बाटकील,** या **छेदनी** कहाती है। जुजबन्दी की **सूजी** (एक प्रकार की मोटी और बड़ी सुई) को **सुतारी** कहते हैं। कागज काटने की एक छुरी, जिसमें दोनों ओर धार होती है, **सैफिया** (फा० सैफ, सं० स्फ्य) कहाती है। एक लकड़ी का औजार, जिससे कागजों की किनारी एक सीध में की जाती है, **थपिया** कहाता है। लकड़ी का एक छोटा पट्टा, जिस पर कागज या किताब को रखकर मढ़ते हैं, **मस्तर** या **पटरी** कहाता है। मढ़ी हुई किताब जिस चौखटे में दबाई जाती है, वह **गेर** या **सिकंजा** कहाता है। कागज काटने में सैफिया की खराबी से या काटनेवाले की भूल से जो रेखाओं के रूप में ऊँचे-नीचे निशान बन जाते हैं, वे **बिलइयाँ** कहाते हैं।

§७४८—मढ़ी हुई किताब के नीचे का हिस्सा **पींठ** कहाता है। पींठ पर जो कपड़ा चढ़ता
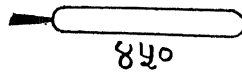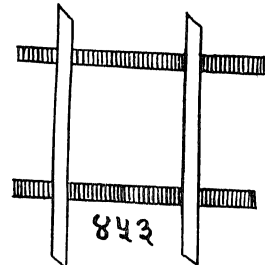
किताब मढ़ने के औजार [रेखा-चित्र ४५० से ४५३ तक]

हैं, उसे **लंगोट** कहते हैं। **खोल** (फाइल) में जो गत्तेदार ढकन लगाया जाता है, वह **बैनी** कहाता है। लंगोट की वह किनारी जो पाखे की अबरी को छूती है, **कग्गरी** या **चोल** कहाती है। कग्गरी और लंगोट के बीच की मामूली-सी दबी हुई रेखा **नाली** कही जाती है। **फरमें** (प्रेस के छपे हुए पूरे कागज) को किताब या मैगजीन के साइज में मोड़नेवाला मजदूर **दफ्तरी** कहाता है। दफ्तरी ही फरमों को मोड़ता है। फरमों को एक-एक करके निश्चित साइज में मोड़ना **भाँजना** कहाता है। भाँजे हुए फरमों को क्रमशः उठाकर किताब के रूप में गड्डी बनाना **मिसिल उठाना** कहाता है। दस जुज की एक गड्डी **लग्गा** कहाती है।
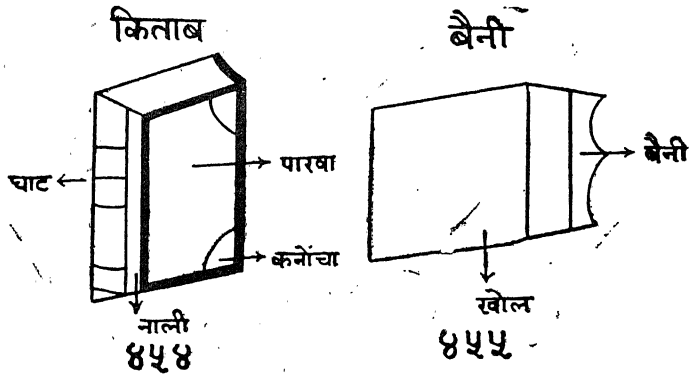
किताब और बैनी [रेखा-चित्र ४५४ से ४५५ तक]

अध्याय ३०

आतिशबाजी

§७४६—बरात और मेलों में बारूद में आग लगाकर खेल दिखानेवाला आदमी **आतिसबाज** (फ० आतिशबाज़) कहाता है। बारूद भरकर बनाये हुए खिलौने **आतिशबाजी** कहाते हैं। बारूद के खेलों को भी **आतिशबाजी** कहते हैं। आतिशबाज के पास लोहे का एक औजार होता है, जिससे वह बाँस या मिट्टी के बर्तन में छेद करता है। उसे **बरमा** या **पुलेरा** कहते हैं। लोहे की पोली चीज, जिसमें पैंदा होता है और उस पैंदे से कुछ ऊपर छोटा-सा छेद होता है, ताकि उसमें होकर अन्दर आग पहुँच सके, **नाल** कहाती है। नाल के छेद की डाट को **ठेक** कहते हैं।

आतिशबाजियों के नाम

§७५०—एक किस्म की आतिशबाजी जो गोल-गोल पत्ती-सी होती है, **ततइया** कहाती है। ततइये को पत्थर पर घिसकर छोड़ देते हैं तो वह बहुत देर तक फुदकता रहता है और चटर-चटर करता रहता है। ततइये से कुछ बड़ा पत्ता **चकचूँदर** कहाता है। एक बत्ती-सी आतिशबाजी **नसफलिया** कहाती है। टेढ़ी-मेढ़ी केंचुये की भाँति की एक चीज **टोंटा** कहाती है। ताँबे या

लोहे के तार पर मसाला लगा रहता है। उसमें आग लगाने पर लाल, पीले, हरे फूल-से झड़ते हैं, उसे **फुलझड़ी** कहते हैं। आतिशबाजी **दारू** (बारूद), **मलसन** और **पुटास** से तैयार की जाती है। कई रंगों का बदलना पुटास का ही काम है। एक आतिशबाजी जिसमें आग लगने पर नीले और पीले फूल बनते हैं, **पटबीजना** कहाती है। सफेद और हरे फूलों की **गंगाजमनी** कही जाती है।

§७५१—बाँसों की खपच्चों का एक गोल ढाँचा बनाया जाता है। उस पर रद्दी कागज मढ़ दिया जाता है। उसके ऊपरी भाग में एक डंडी पर मसाले को इस तरह जमाया जाता है कि ढाँचे में आग लगने पर डंडी के सिरे पर सफेद गोलाई में नीलापन दिखाई देता है। इस खेल को **चंदागहन** कहते हैं। बाँस के एक गोल चक्कर पर एक स्त्री की मूर्ति बनाई जाती है। उसके हाथों, पंखों और मुँह में मसाला भरा जाता है। आग लगने पर उन जगहों से कई रंग के फूल झड़ते हैं और मूर्ति घूमती भी है; उसे **परी** कहते हैं। एक दरवाजा-सा बनाया जाता है। उसमें आग लगने पर बीच में आदमी-सा बन जाता है, उसे **द्वारी** या **ड्योढ़ी** कहते हैं।

§७५२—कागज में बारूद भरकर एक गोला बनाया जाता है, जिसे **धमाका** कहते हैं। धमाके को छोड़ने से पहले नाल में कुछ बारूद भर लेते हैं और फिर उसमें धमाके को डाल देते हैं। आतिशबाज अपने हाथ में जलती हुई रस्सी रखता है। नाल के छेद में होकर रस्सी की आग को अन्दर पहुँचा देता है और अलग खड़ा हो जाता है। बारूद में आग लग जाने पर धमाका जोर की आवाज करता हुआ ऊपर जाता है। यदि वह ऊपर भी दुबारा आवाज करते हुए चमकता है तो उसे **दुफुट्टा धमाका** कहते हैं। (सं० द्विस्फोटक > दुफुट्टा)। दुफुट्टे धमाके में यदि दुबारा फूटते समय लाल, सफेद, हरे आदि रंगों के फूल झड़ें तो वह **तारामंडली** कहाता है और उन फूलों को **तारामंडल** कहते हैं।

§७५३—एक किस्म की आतिशबाजी जो अँगूठे से अधिक मोटी होती है और रंग-बिरंगी रोशनी करती है, **चन्दमुखी** या **महताबी** कहाती है। लगभग तोले भर वजन की गोली जो कागज में बारूद भरकर बनाई जाती है, **पटाका** या **पटाखा** कहाती है। पटाखे को पक्की जगह पर फेंककर मारते हैं तो काफी जोर से आवाज होती है। महताबी की बारूद का कागज **खोली** कहाता है।

§७५४—गोलाईदार और कुछ लम्बे मिट्टी के बने हुए बन्द कुल्हड़-से **अनार** कहाते हैं। इनमें मसाला भरा रहता है और आग की चिनगारी अन्दर जाने के लिए एक छेद होता है। अनार छूटते समय एक पौदा-सा बनता है और उस पर लाल फूल से दिखाई देते हैं।

§७५५—एक घेरा बाँस की फच्चटों से बनाया जाता है। इसके बीच में एक पोले बाँस की नली-सी लगती है, जिसे **चौंगी** कहते हैं। घेरे के सहारे बारूद से भरी हुई बाँस की नलियाँ बँधती हैं, जिन्हें **पोरियाँ** कहते हैं। इस आतिशबाजी को **चक्करबान** कहते हैं। चक्करबान की आकृति पहिये की तरह होती है। नाई की भाँति चौंगी लगी रहती है। आतिशबाज चक्करबान चलाते समय चौंगी में लोहे की सराई डाल लेता है। बारूद के मसाले में लिपटा हुआ एक डोरा पोरियों से सम्बन्धित रहता है। उस डोरे को आतिशबाज की बोली में **दौड़का** या **सिताबा** कहते हैं। दौड़के में ही पहले आग लगाई जाती है। फिर वह धीरे-धीरे पोलियों में भी लग जाती है और चक्करबान घूमने लगता है। उसमें से जलते समय चारों ओर फूल झड़ते हैं। दौड़के में सीलन न लगे, इसलिए उसके ऊपर एक कागज लगाया जाता है, जो **पोलक** कहाता है।

§७५६—एक चक्करबान ऐसा बनाया जाता है, जो घूमते समय रेल की-सी सीटी देता है, उसे **सीटिया चक्करबान** या **कोकिया चक्करबान** कहते हैं। जब दो चक्करबान साथ-साथ एक ही सरिया पर एक दूसरे के विरुद्ध घूमते हैं, तो वे **दाँते की जोड़ी** कहाते हैं।

§७५७—एक **पंखा** (त्रिभुजाकार एक ढाँचा) बाँस की फच्चटों का बनाया जाता है। उसमें ऊपर की ओर एक पंक्ति में छह या आठ मिट्टी की चिलमें-सी लगती हैं। वे चिलमें **जुट्टी** कहाती हैं। जब जुट्टियों में दौड़के के सहारे आग लगती है, तब उनमें से रोशनी की धार-सी नीचे को गिरती है। उस आतिशबाजी को **सामन भादौं, फुआर** या **बरसात** कहते हैं।

§७५८—एक चक्करबान में चारों ओर नीचे की ओर भी रोशनी होती है, उसे **लटकन** कहते हैं। यदि एक चक्करबान पर मोर बना दिया जाता है और चक्करबान घूमते समय मोर के पंखों में से रोशनी छूटती है तो उसे **मोरचक्कर** कहते हैं। सुर्र-सी आवाज करती हुई एक आतिश-बाजी ऊपर को चली जाती है, उसे **सुर्री** कहते हैं। एक चीज सुर्री से भी अधिक ऊँची आस्मान में सररररर करती हुई चली जाती है, जो **हिवाई** या **सरगबान** (सं० स्वर्गबाण) कहाती है।

§७५९—कागज में लगभग पाव भर मसाला भर देते हैं। उसमें कोने पर बाँस की फच्चटें लगाकर ऊपर से मूँज की रस्सी से कस देते हैं। उन्हें **धूरगोला** या **अगिनगोला** कहते हैं। इसके छूटने पर बहुत भारी आवाज होती है, जो दो-दो कोस तक सुनाई पड़ती है। इसके छूटने पर बारूद की धूल-सी छा जाती है। झूले की आकृति की आतिशबाजी **अगिन हिंडोला** (सं० अग्नि हिन्दोलक) कहाती है।

§७६०—चन्दमुखी की भाँति की आतिशबाजी जिसमें सफेद रोशनी अधिक होती है, **सूरजमुखी** कहाती है। त्रिभुजाकार बना हुआ पत्ते की तरह का पटाखा **सिंघाड़िया** कहाता है। हाथ में पकड़कर चलाई जानेवाली या जलाई जानेवाली आतिशबाजी **हथफूल** कहाती है। अनार की किस्म की एक आतिशबाजी **नासपाल** कहाती है।

§७६१—कंडील की भाँति रात में आसमान में उड़ाई जानेवाली एक चीज **बुर्ज** कहाती है। एक आतिशबाजी **पेड़** कहाती है। इसके जलने पर चिनगारियों का पेड़-सा बन जाता है।
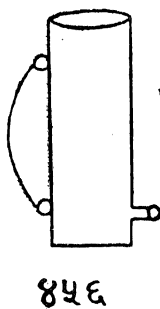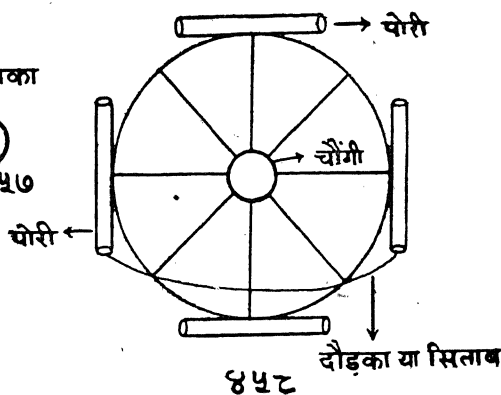
[रेखा-चित्र ४५६ से ४५८ तक]

§७६२—एक ढोल-सा खपच्चों का बनाया जाता है। उसमें एक आदमी-सा बनाया जाता है। आग लगने पर ढोल-सा नीचे रह जाता है और बहुत लम्बा-चौड़ा आदमी चिनगारियों के रूप में खड़ा दिखाई देता है। उसे **देवपिटारा** कहते हैं। आतिशबाज **किला** भी दिखाते हैं।

§७६३—एक मकान बनाया जाता है और एक बन्दर की मूर्ति बनाई जाती है। मकान और बन्दर के बीच में तार लगाया जाता है। आग लगने पर तार के सहारे बन्दर आगे बढ़ता है और मकान में आग लगा देता है। इस आतिशबाजी को **लङ्का-हनूमान** कहते हैं।
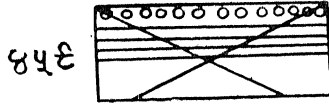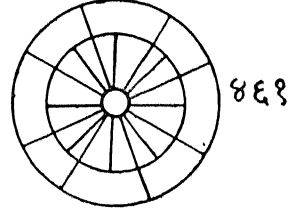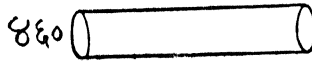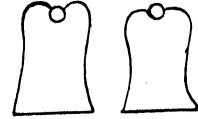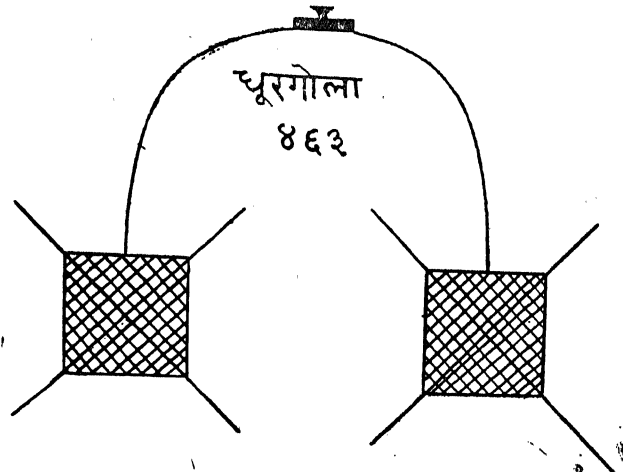
आतिशबाजी की विभिन्न वस्तुएँ [रेखा-चित्र ४५६ से ४६३ तक]

अध्याय ३१

नटनी का नाच और नट की कलाबाजी

§७६४—नट एक जाति है, जिसके पुरुष **कलाएँ** (शरीर की कसरतें) दिखाकर और स्त्रियाँ नाच-गाकर अपनी रोजी कमाती हैं। नट के द्वारा शरीर की अनेक कसरतें और कूद-फाँद दिखाने का काम **कलाबाजी** कहाता है। सिर को नीचा करके पीछे से शरीर को आगे उलटना **कलामुंडी खाना** कहाता है। नट की स्त्री **बेड़नी** या **नटनी** कहाती है। नटनी के गीत, जो आदमियों के आगे उसके द्वारा गाये जाते हैं, **मुजरा** कहाते हैं। गीत सुनाने के बदले नटनी को जो अनाज-पैसे आदि मिलते हैं, उन्हें **मुजराई** कहते हैं। नट जहाँ कलाबाजी दिखाते हैं, वह जगह **अखाड़ा**[1] कहाती है।

नटनी के नाचों के नाम

§७६५—नटनी एक विशेष नाच नाचती है, जो दो लाठियों पर होता है। दो आदमी आमने-सामने खड़े हो जाते हैं और अपने कन्धों पर लाठियाँ रख लेते हैं। उन दोनों लाठियों पर खड़े होकर नटनी नाचती है, उसे **आगासी-नाच** कहते हैं और जब **घुमेर** (शरीर को चारों ओर घुमाना) मारती हुई नटनी लाठियों से नीचे कूदती है, तब वह कूदना **परीनाच** कहाता है। होली के दिनों में नट लोग गाँवों में बेड़नियों को नचाने लाते हैं। गाँव के लोगों की भीड़ में बेड़नी उस समय गीत गाती हुई नाचती है। उस नाच को **राई** कहते हैं।

§७६६—खड़ी हुई हालत में एक नाच नाचा जाता है जो **झुमका** कहाता है। इसमें गर्दन झुकी हुई हालत में चारों ओर घुमाई जाती है। लेकिन कमर और गर्दन दोनों ही जब झुकी हुई हालत में फिराई जाती हैं, तब वह नाच **लहरका** कहाता है। इन दोनों नाचों में चार-पाँच कदम के बीच में **चलगत** (पद-संचालन) भी होती रहती है। जब नटनी एक स्थान पर खड़े-खड़े पाँव चलाती रहती है, तब वह **ठुमका नाच** कहाता है। एक **नाच गलइयाँ** कहाता है, जिसमें ठुमका-सा मारती हुई नटनी आगे को सरपट भरती है और अपना दाहिना हाथ आगे को फैलाकर तथा बायाँ छाती के आगे मोड़ती हुई दाहिनी बगल में लगा लेती है।

§७६७—बैठी हुई हालत में एक नाच नाचा जाता है जिसे **करिहा** कहते हैं। चित्त लेटते हुए एक नाच नाचा जाता है जो **पसरा** कहाता है।

नट की कलाओं के नाम

§७६८—नट जब कलाएँ दिखाता है तब उसके साथ एक **ढोलिया** (ढोलक बजाने वाला) भी रहता है जिसके कहने के अनुसार कलाबाज नट कलाएँ दिखाता है। नट का ढोलिया **दन्नी** या **खलीफा** कहाता है और उस नट को **सिताबी** या **खिलारी** कहते हैं।

खिलारी की कलाओं के नाम यहाँ अकारादि क्रम से दिये जाते हैं—

(१) **अधार**—इसमें पहले तो कलाबाज नट पंजों के बल धरती पर बैठ जाता है। फिर धरती पर बिना हाथ टेके हुए एक साथ ऊपर को उछलता है और ऊपर ही ऊपर शरीर को पूरा घुमाकर उसी हालत में उसी जगह आ बैठता है। यह कला **अधार** कहाती है।

---

[1] "नट नाटक पतुरिनि औ बाजा। आनि अखार सबै तहँ साजा॥"
डा० माताप्रसाद गुप्त (सम्पा०): जायसी ग्रन्थावली, पदमावत, ४४७।४

(२) **अलक**—नट पहले दौड़ता हुआ एक नियत स्थान तक आता है फिर शरीर को टेढ़ा करके बगल की ओर घूम और चक्कर लेते हुए ऊपर उछल जाता है।

(३) **आगौन**—इस कला में पहले नट धरती पर बैठता है फिर ऊपर उछलकर अपने सिर को आगे की ओर झुकाते हुए और टाँगों को पीछे की ओर फेंकते हुए ऊपर ही ऊपर पूरी तरह शरीर को घुमा देता है और अपनी जगह आकर वैसा ही बैठ जाता है।

(४) **पेंठला पाठौन**—इस कला में नट अपने शरीर को तिरछा करके ऊपर फेंकता है और ऊपर तिरछी हालत में ही पूरा घूमकर अपनी जगह पर आ जाता है।

(५) **बलबला कुलाँट**—एक ऊँट खड़ा कर लिया जाता है। नट उसकी दाईं या बाईं ओर खड़ा होकर ऊपर को **कुलाँच** (उछाल या उछट्टी) मारते हुए ऊँट को फलाँग जाता है। इसी प्रकार हाथी को फलाँगना **फीलफलाँग** कहाता है (फा० पील, अ० फील = हाथी + हिं० फलाँग)।

(६) **कंडी**—मोटे और लम्बे एक बाँस में ऊपर की ओर एक डंडा आड़ा बाँध दिया जाता है। उस आड़े डंडे पर खड़े होकर नट जो कलाएँ दिखाता है, वे **कंडी** कहाती हैं। वह डंडा भी **कंडी** कहाता है।
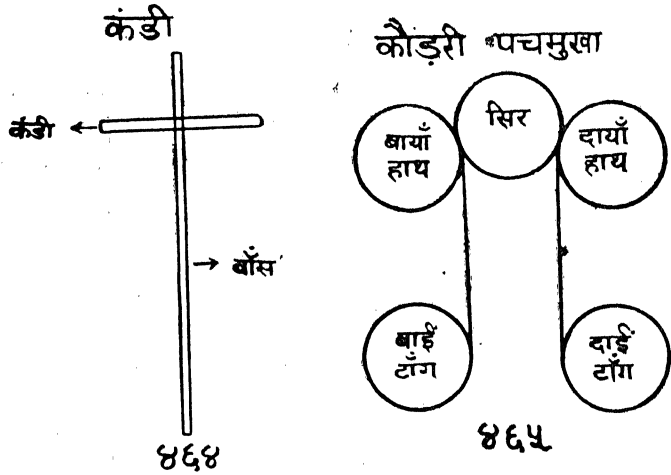
[रेखा-चित्र ४६४ से ४६५ तक]

(७) **कन्तर**—इसमें कान के रुख पर अर्थात् दायें या बायें रुख अपने शरीर को ऊपर घुमाते हुए नट अपनी जगह पर खड़ा हो जाता है।

(८) **करौत पिट्ठ** (सं० कर-पत्र-पृष्ठ)—धरती पर एक आरा रख दिया जाता है। नट कंडी पर चढ़ जाता है। वहाँ से ऐसा कूदता है कि आरे की धार पर उसकी पीठ आती है, लेकिन आरे की दाँती पीठ में छिद नहीं पाती।

(९) **केर**—तिरछे रुख से धरती पर से ऊपर को उछलना और उसी रुख पर आगे को बढ़ते जाना केर कहाता है। इसे कोई-कोई नट **केर-बाटी** भी कहता है।

(१०) **कौंड़री पँचमुखा**—बेत की बनी हुई गोल वस्तु **कौंड़री** (सं० कुंडलिका) कहाती है। पाँच कौंड़रियाँ एक खास ढंग से आपस में बँधी रहती हैं, जो **कौंड़री पँचमुखा** कहाती है।

कौंड़री पँचमुखे को लेकर नट बैठता है। फिर ऊपर उछलकर ऊपर ही ऊपर कौंड़रियों में अपने दोनों हाथ, दोनों टाँगें और सिर फँसाकर अपनी जगह आ जाता है।

(११) **कौंड़र-काढ़ी**—लोहे का एक गोल पहिया होता है, जिसके चारों ओर मिट्टी के तेल का कपड़ा लपेट दिया जाता है। दो आदमी लोहे की शलाखों से उस पहिये को खींचे रहते हैं। जब पहिये में आग लगा दी जाती है, तब उस पहिये के बीच में होकर नट निकल जाता है। वह पहिया **कौंड़र** और वह **कला कौंड़र-काढ़ी** कहाती है। इस कला की ओर रहीम ने 'रहीमरत्नावली' में संकेत किया है।[1] कौंड़र-काढ़ी नाम की कला **माँड़र** (सं० मण्डल) भी कहाती है।
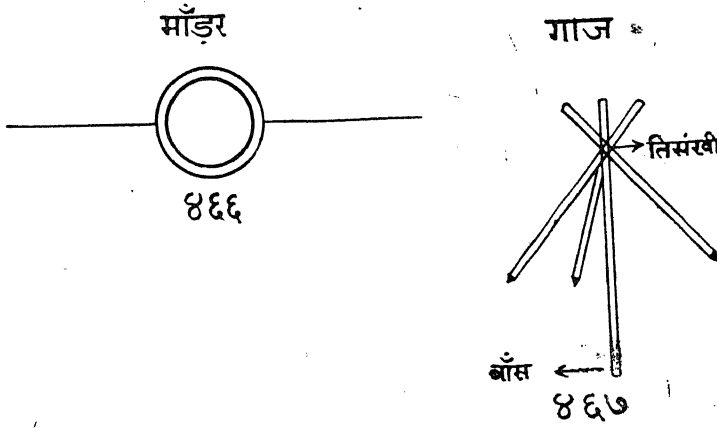
[रेखा-चित्र ४६६ से ४६७ तक]

(१२) **छकड़कुदी**—बड़ी बैलगाड़ी जिसमें प्रायः सामान ढोया जाता है, **छकड़ा** (सं० शकट) कहाती है। कला मारते हुए नट जब छकड़े के ऊपर से कूद जाता है, तब वह कला **छकड़कुदी** कहाती है।

(१३) **गाड़ी पटेल** या **लाढ़ी पटेल**—एक लढ़िया (लम्बी-सी एक बैलगाड़ी) में १०-१५ आदमी बैठ जाते हैं। नट उसके जूए के बीच में एक भाला जमाकर उस भाले की नोंक से अपना माथा लगाता है और गाड़ी को पीछे हटा देता है। इसी को **पेल** नाम की कला भी कहते हैं। यह **माथा सीगड़ी** भी कहाती है।

(१४) **गाज**—एक जगह तीन फाले बाँध दिये जाते हैं और उन्हें एक बाँस की नोंक पर रक्खा जाता है। नट उस **तिसंखी** (तीन फाले) को बाँस से ऊपर उछालकर उनके नीचे एकदम ऐसा लेटता है कि एक फाला टाँगों के बीच में और दो कमर से दायें-बायें रहते हैं।

(१५) **गोलापटारी** या **गोलापटरी**—नट गले में एक तख्ती लटका लेता है। कभी उसे छाती पर और कभी पीठ पर लटकाकर लकड़ी के गोले क्रमशः ऊपर फेंकता है। गोले नीचे **पटारी** (तख्ती) में ही लगते हैं।

---

१ "ज्यों रहीम नटकुण्डली सिमिटि कूदि कढ़ि जायँ।"
रहीम रत्नावली, सम्पा० मायाशङ्कर याज्ञिक, साहित्य सेवासदन, बुलानाला काशी, १९८९ वि०, दोहावली, दो० ६६।
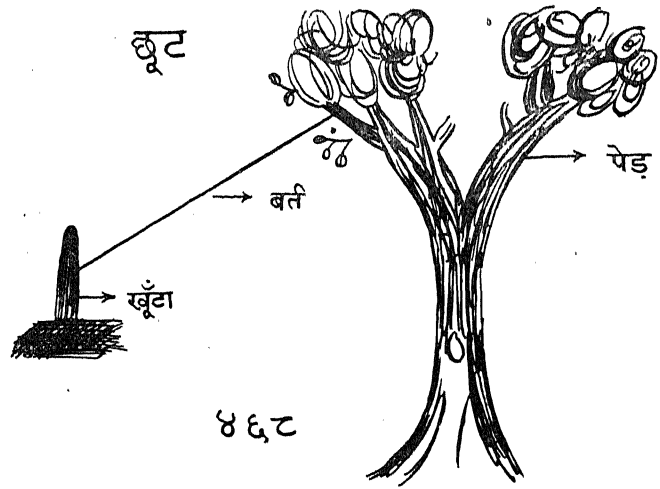
[रेखा-चित्र ४६८]

(१६) **छूट**—चित्र ४६८ के अनुसार एक पेड़ और एक खूँटे के बीच में ढालू रुख पर एक बर्त बाँध दी जाती है। नट अपनी छाती के ऊपर चमड़े का टुकड़ा बाँधकर और पट्ट लेटकर बर्त पर पेड़ से खूँटे तक रिगड़ता हुआ सरकता है। चूँकि इस कला में नट ऊपर से छूटकर खूँटे तक आता है, इसलिए इसे **छूट** कहते हैं।

(१७) **झटक**—धरती में **पटेले** (चौड़ी और भारी लकड़ी जिससे जुता हुआ खेत चौरस किया जाता है) को सीधा गाड़ दिया जाता है। नट उस पर शीघ्रता से चढ़ता है और अनेक कलाएँ दिखाता है।

(१८) **तोब के टका**—दो नट मिलकर इस कला को दिखाते हैं। एक नट खड़ा हो जाता है और वह दूसरे को अपने पेट-छाती के सहारे उल्टा उठा लेता है। फिर उठा हुआ नट अपनी टाँगों को पीछे फेंकते हुए पहले नट के पीछे चला जाता है। इसी प्रकार दूसरा नट पहले को उठाता है। यह कलाबाजी क्रमशः दोनों के द्वारा दिखाई जाती है।

(१६) **दोबरी** या **दोहरी**—शरीर को तिरछा करके एक कला धरती पर और दूसरी धरती से ऊपर खाना **दोबरी** या **दोहरी** कहाता है। इसी से कुछ मिलती हुई एक कला को **'दुघड़िया'** भी कहते हैं। **'दुघड़िया'** कला में नट ऊपर ही ऊपर दो बार सिर से पाँवों की ओर चक्कर मारता है, तब नीचे धरती पर आता है।

(२०) **नवल**—नट ऊपर उछलकर टाँगें सिर पर से पीछे को ले जाता है। इसी तरह लगातार पीछे की ओर ५-६ कलाएँ खाता जाता है।

(२१) **निहार पलका**—एक पलंग को भाले पर उठाते हैं और भाले को होंठ पर रखते हैं। नट इसे दिखाते हुए चारों ओर घूम जाता है।

(२२) **निहार** या **हरनिहार**—नट हल सहित फाले को डाढ़ पर साधकर उठाता है। यह कला **हरनिहार** कहाती है।

(२३) **पटेला** या **सहेरा**—दो डंडे धरती में गाड़कर उनके सिरों पर एक मोटा बाँस बाँध दिया जाता है। उस बाँस के सहारे एक 'पटेला' रख दिया जाता है। नट दौड़कर आता है और
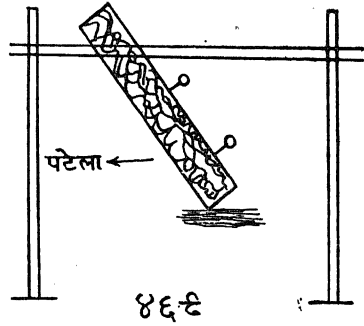
पटेला या सहेरा

[रेखा-चित्र ४६६]

पटेले (एक तख्ता) पर चढ़ता हुआ बाँस पर पहुँच जाता है। वहाँ कई तरह की उछल-कूद दिखाता है। वास्तव में जुती हुई धरती को चौरस करनेवाला एक लम्बा-सा तख्ता सुहागा, पटेला या साहिर कहाता है। उसी के आधार पर इस कला का भी नाम पड़ गया है।

(२४) **पलानी**—यह कला 'पटेला' नाम की कला से कुछ मिलती-जुलती है। इसमें पटेला बाँस के सहारे नहीं लगता बल्कि बाँस के ऊपर बीच में एक गद्दा डाल दिया जाता है। उसी पर नट कला दिखाता है। वह गद्दा **पलान** और कला **पलानी** कहाती है। वास्तव में गधे की पीठ पर जो मोटी-सी झूल पड़ती है, वह **पलान** कहाती है। बाँस पर रक्खा हुआ गद्दा पलान के समान ही होता है। अतः यह कला **पलानी** कहाती है।

(२५) **पाछौंद** या **पाछौन**—इसमें नट उछलकर टाँगों को आगे से सिर की ओर मोड़ता हुआ पीछे को कला खाता है। यदि पालती मारकर नट बैठा हो और उसी हालत में पाछौन की तरह पीछे को कला खाए, तो उसे **पालती-पछौन** कहते हैं। इसे **पलती पाछौंद** या **पलौती पछौंद** भी कहते हैं।

(२६) **फरका**—जब पहले आगौन और फिर पाछौन कला क्रमशः साथ-साथ खाई जाती हैं, तब उसे **फरका** कहते हैं।

आटेसौं
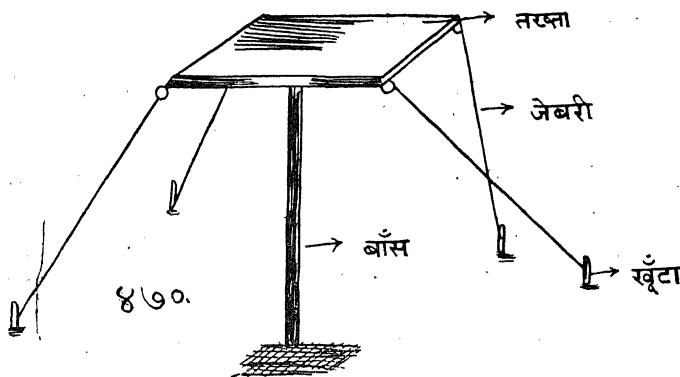
[रेखा-चित्र ४७०]

(२७) **बादरेसा**—एक आयताकार तख्ते में बाँस ठुका रहता है। उस तख्ते के चारों कोनों पर चार रस्सियाँ बाँधकर उन्हें खूँटों से जकड़ दिया जाता है। नट उस 'तख्ते' पर चढ़कर कसरतें दिखाता है, जो **बादरेसा** कहाती है।

(२८) **बिच्छू कला**—नट पट्ट पड़कर अपने दोनों हाथों पर शरीर का वजन साध लेता है। फिर दोनों टाँगें मिली हुई हालत में ऊपर की ओर मोड़ देता है, जिसका आकार बिच्छू के डंक की भाँति मालूम पड़ता है।

(२९) **बेसरी या बैसुरी**—दाहिने हाथ के रुख पर कला खाते हुए ऊपर उछलना और ऊपर भी एक कला खाकर फिर वहीं आ जाना।

(३०) **बेरंचा या बरंचा**—बर्त तानकर नट उसके ऊपर नाचते हुए कला दिखाता है। तनी हुई बर्त पर जो नाच दिखाया जाता है, वह **बरंचा** कहाता है।

(३१) **ब्यौर**—एक साधारण कला जो धरती पर ही दिखाई जाती है, **ब्यौर** कहाती है। इसमें नट अपनी जगह पर ऊपर को उछलता है और ऊपर ही ऊपर शरीर को एक-दो बार घुमाकर फिर अपनी जगह पर आकर खड़ा हो जाता है।

(३२) **मगरछालौ**—नट पट्ट-सा पड़कर हाथ धरती पर टेकते हुए ऊपर को उछाल मारता है।

(३३) **मथेली**—नट पीछे की ओर रीढ़ और पीठ झुकाता जाता है और फिर अंत में धरती पर हाथ टेक देता है। माथे को धरती से लगाकर फिर उलटकर **कला** (कलामुंडी=पूरा शरीर घुमाना) खाता है।

(३४) **मैंढ़ासिंगी**—हल की हर्स को धरती में इस तरह गाड़ते हैं कि हल का कुड़ और पनिहारी ऊपर रहे। फिर कुड़ के ऊपर नट सिर के बल उलटा खड़ा हो जाता है। यह कला **मैंढ़ासिंगी** कहाती है।

(३५) **राड़ी**—धरती पर से कलामुंडी सहित ऊपर को उछलना **राड़ी** कहाता है। टाँगें पीछे से ऊपर को होती हुई आगे आती हैं।

(३६) **लंगूरी**—इसमें लंगूर की तरह छलाँग मारी जाती है। एक बार आगे को कला खाकर फिर वहाँ से नवल की भाँति पीछे को कला खाई जाती है।

(३७) **सूत के मोर**—दो कलाबाज नट एक साथ कला दिखाते हैं। दोनों पट्ट पड़कर आमने-सामने रुख पर अपना सिर एक दूसरे से मिलाकर जमा लेते हैं। फिर अपनी-अपनी दोनों टाँगें उल्टी उठा लेते हैं। उनकी टाँगें नाचते हुए मोरों के पंखों के समान बन जाती हैं।

(३८) **सैंपड़ी**—इसमें हाथों के बल उल्टा खड़ा होकर नट कुछ दूर चलता भी है।

(३९) **सौपुरी**—ऊपर उछलकर ऊपर ही ऊपर लगातार तीन कलामुंडी खाना और फिर धरती पर आना।

§४०—इन कलाओं के अतिरिक्त नट एक तमाशा भी दिखाते हैं जिसे **सुआगिलोल** कहते हैं। लकड़ी के तोते की चोंच में एक लकड़ी डालकर उस लकड़ी के सिरों पर बराबर-बराबर वजन दोनों ओर लटकाकर दिखाते हैं। तब नट कहता है कि सूआ वज़न तोल रहा है।
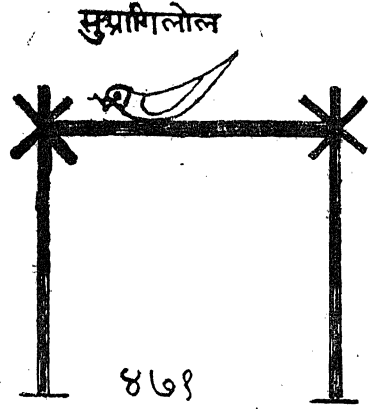
[रेखा-चित्र ४७१]

§४१—इनके अतिरिक्त **हेलड़** (गाड़ी फलाँगने से सम्बन्धित एक कला), **भूँकर** (तख्ते की सहायता से हाथी फलाँगने की एक कला), **केरबान** (तीन या तीन से अधिक ऊँटों को फलाँगने से सम्बन्धित एक कला), **बाँगड़** (दो नटों का साथ-साथ कला मारकर ऊपर उछलना), और **ठौड़का** (बैठकर आगे की ओर उछलने की एक कला) नाम की भी कलाएँ हैं। लगातार कला मारते हुए एक सीध में आगे को बढ़ते जाना नटों की बोली में **टका भरना** कहलाता है। दो नटों का साथ-साथ टका भरना **बाट लेना** कहाता है।

अध्याय ३२

बेगड़ी और जड़िये का काम

§७६९—चमकीले तथा मूल्यवान् पत्थर जो प्रायः आभूषणों में जड़े जाते हैं, **नग**, **नगीना**, **रतन** या **जवाहरात** कहाते हैं। बिना खराद का पत्थर, जो भद्दा और अनघड़ होता है, **खड़** कहाता है। खड़ में चमक नहीं होती और कई कोने तथा नोकें निकली रहती हैं। खराद पर चढ़ा हुआ चमकीला पत्थर **असल नग** और चमकरहित बेआब का पत्थर **गुम्मनग** कहाता है। **स्यान** (सं० शाण) पर चढ़ाकर नगों में जब घिसे हुए चमकीले निशान बनाये जाते हैं, तब वे **पहल** कहाते हैं। खड़ की नोकों तथा उभरे हुए भागों को घिसने के लिए **'कोरना'** क्रिया प्रचलित है। नग के रूप में परिवर्तित करने के लिए खड़ को पहले चीरा जाता है और फिर कोरा जाता है। कोरने के उपरान्त नग बन जाने पर उसमें पहल कटते हैं। जब नग आभूषण में इस प्रकार जड़ दिया जाता है कि जड़ाई का जोड़ मालूम न हो तथा हाथ फेरने पर आभूषण की सतह और नग ऊँचे-नीचे न प्रतीत हों, तब वह कला **पच्चीकारी** कहाती है। इसके लिए **'पचना'** क्रिया प्रयोग

में आती है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में **चीरना, कोरना** और **पचना** क्रियाओं का उल्लेख किया है।[1]

कुरंट पत्थर की शान पर नगों में पहल काटनेवाले कारीगर **बेगड़ी** (सं० वैकटिक > अप० बेगडिअ > बेगड़ी) कहाते हैं। सोने और चाँदी के गहनों में नग जड़नेवाले कारीगरों को **'जड़िया'** कहते हैं। जड़िये बेगड़ियों से पहलदार नग लाकर गहनों में जड़ा करते हैं। कुरंट पत्थर की शान **तेज स्यान** और **मानिक** (सं० माणिक्य) और हीरे की शान **मीठी स्यान** कहाती है। सोने के गहनों पर चमक लाने के लिए जड़िया पहले अपनी सलाई को मीठी स्यान पर घिस लेता है, तब काम में लाता है। जब जड़िया हीरे की मीठी स्यान पर सलाई घिसकर गहने में उससे पहल काटता है, तब उसमें उत्तम तथा स्थायी चमक आती है।

§७७०—नग पर पहल बनाना—बेगड़ी पहले **खड़** को घिसकर यह देखता है कि यह पत्थर बिलकुल गुम्म खड़ है अथवा इसमें नग बनने के तत्त्व हैं। जब उसमें चमक दिखाई दे जाती है, तब अपनी **काड़ी** (लकड़ी की एक कलम-सी जिसके गोल सिरे पर चपड़ा और लाख लगा रहता है) पर उस पत्थर को चिपका लेता है। कुरंट पत्थर की शान का पहिया घूमता रहता है और बेगड़ी उस **पत्थर** (नग) में पहल बनाता रहता है। दुपहलू, तिपहलू से लेकर बारह पहलू तक नग तैयार होते हैं। गुण, रूप और रंग के विचार से नग कई तरह के होते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि राशि के अनुकूल नगों को धारण करनेवाला व्यक्ति बड़े आनन्द में रहता है। नग खानों से और **मोती** (सं० मौक्तिक) सीपियों में से निकाले जाते हैं। मोती में छेद करना **मोती बींधना** कहाता है। कहावत प्रसिद्ध है—

"बिंधिजाइ सो मोती, रहिजाइ सो सिकुला।"[2]

§७७१—नगों के नाम—(१) **ओपल** (सं० उपल)[3]—इस नग में सफेद और हलके गुलाबी रंग की झलक मारती है। इसका रंग धूपछाहीं कहाता है। किसी-किसी में सफेदी और नीलापन दिखाई देता है।

(२) **गोमेदक** (सं० गोमेद)—यह पत्थर पीलापन लिये हुए गहरा लाल होता है।

(३) **चुन्नी**—गुलाबी रंग का एक पत्थर **चुन्नी** कहाता है।

(४) **तामड़ा**—यह कत्थई रंग का होता है।

(५) **दाने फिरंग**—इसका रंग हरा होता है।

(६) **नीलम** या **इन्दरलील** (सं० इन्द्रनील)—इस नग का रंग नीला होता है।

---

[1] "मानिक[1] मरकत[2] कुलिस[3] पिरोजा[4]। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥"
—तुलसीदास : रामचरितमानस, बालकाण्ड, गीता प्रेस, २८८।२
१ = लाल रंग का ; २ = हरे रंग का ; ३ = सफेद रंग का ; ४ = हल्के नीले रंग का।

[2] कष्ट झेलकर समय पर जो सफल हो जाता है, वह मान-प्रतिष्ठा पाता है; लेकिन कष्ट न उठानेवाला उपेक्षित एवं तिरस्कृत रहता है। मोती बिंधकर नाक, कान और गले में स्थान पाता है, लेकिन सिकुला (शंख की बनावट की भदमैली छोटी-सी सीपी जो पोखरों में पाई जाती है) गन्दे स्थान पर ही पड़ा रहता है।

[3] "शुकाङ्ग नीलोपल निर्मितानाम्।"—शिशुपाल-वध, ३।४८

(७) **पन्ना**—इसका रंग हरा होता है। मुसलमान इसे ही **जमुर्रद** कहते हैं। यही संस्कृत में 'मरकत'[1] कहाता है।

(८) **पिरोजा** (फा० फीरोज़ा)—इसका रंग हलका नीला होता है।

(६) **पुखराज**—यह सफेद और पीले रंग का होता है।

(१०) **मानिक** (सं० माणिक्य)—यह लाल रंग का पत्थर होता है। कुछ लोग इसे **'लाल'** कहते हैं।

(११) **मूँगा**—इसका रंग हलका लाल और गुलाबीपन लिये हुए होता है। इसमें चमक नहीं होती (प्रा० मुङ्ग[2] > हिं० मूँगा) मूँगे के लिए संस्कृत-शब्द 'प्रवाल' और 'विद्रुम' हैं।

(१२) **लहसनियाँ**—इसका रंग कुछ-कुछ मुलतानी मिट्टी से मिलता-जुलता होता है। इसमें लहसन की-सी धारियाँ होती हैं।

(१३) **लाल** या **याक़ूत**—इसका रंग गहरा लाल होता है। गुलाबी रंग के लाल को **जिगरी याक़ूत** भी कहते हैं। इसी का संस्कृत नाम 'पद्मराग'[3] है।

(१४) **हकीक** (अ० अक़ीक़—स्टाइन०)—इसका रंग कई तरह का होता है। सफेदी लिये हुए पीले या सफेदी लिये हुए लाल रंग के हकीक पत्थर अधिक मिलते हैं।

(१५) **हीरा**—इसके कई रंग होते हैं। कोई सफेद, कोई पीला, कोई लाल और **तेलिया** (गहरा लाल) रंग का होता है। इसे संस्कृत में 'कुलिश' भी कहते हैं।

---

१ "गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः।" —अमर० २।६।६२

"हरिन्मणि श्यामतृणाभिरामैः" —शिशुपालवध, ३।४६

२ डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, १०५४, पृ० १००

३ "शोणरत्नं लोहितकः पद्मरागः।" —अमर० २।६।६२

"पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।"

—केशव कृत रामचन्द्रिका, प्रका० रामनरायन लाल, सं० १६८६ वि०, प्रकाश ५। छंद १२

प्रकरण १३

जनपदीय शिल्पकार

अध्याय १

बढ़ई

§७७२—लकड़ी का काम करनेवाले कारीगर को **बढ़ई** (सं० वर्धकि[1] >प्रा० बड्ढइ > बढ़ई) कहते हैं। लकड़ी के काम में अनाड़ी या बहुत कम जानकार बढ़ई **कठबिगरा, ठोट**[2] या **ठोटुआ** कहाता है। एक ज्वारे (दो बैलों को एक ज्वारा या एक हल कहते हैं) पर बढ़ई को मज-
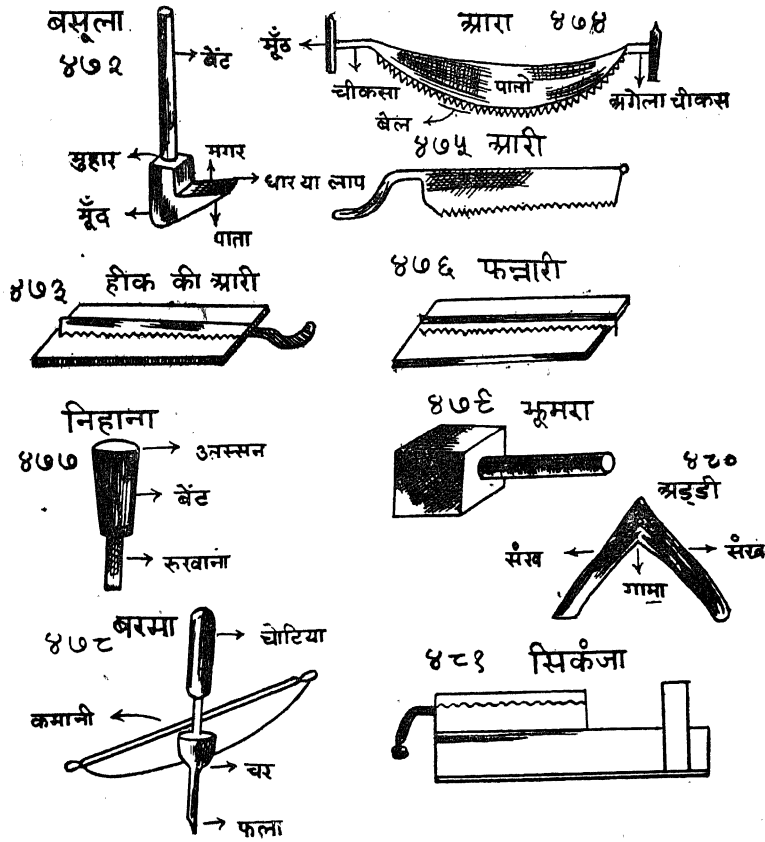
[रेखा-चित्र ४७२ से ४८१ तक]

---

१ वर्धकिन् या वर्धकि—मो० वि०।

"अथाऽऽजगाम परशुं स्कन्धेनाऽऽदाय वर्धकिः।"

—महाभारत, उद्योगपर्व, सेनोद्योग, अ० ९।२७।

अर्थात् इन्द्र ने जब त्रिशिरा के शिर में वज्र मारा तभी वर्धकि कन्धे पर कुल्हाड़ी रखे हुए आ गया।

२ "तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ 'सूर' कूर कवि **ठोट**।"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० स०, १।१३२

दूरी के रूप में किसान के यहाँ से कातिक-बैसाख में एक-एक मन अनाज मिलता है उसे **बँधौरी** या **फसलाना** कहते हैं।

बढ़ई के औज़ार

§७७३—मोटे और भारी लक्कड़ों को फाड़ने में जो विशेष औज़ार काम आता है वह **कुल्हाड़ी** या **कुढ़ारी** (सं० कुठारिका) कहाता है। छोटी कुढ़ारी को **कुढ़रका** कहते हैं। लकड़ी की छोटी-छोटी चीजों को छीलने में जो औज़ार विशेष काम आता है, उसे **बसूला** कहते हैं। छीलने के अर्थ में **ताछना** क्रिया का भी प्रयोग होता है। बसूले की **लाप** (धार) के पीछे का चौड़ा हिस्सा **पाता** कहाता है। पाते के पीछे का हिस्सा जो काफी मोटा होता है और कुछ ऊपर को उभरा हुआ होता है **मगर** कहाता है। बसूले के पीछे के भाग को **मूँद** (सं० मुद्रा) कहते हैं। मूँद से ऊपर **मुहार** होती है जिसमें लकड़ी का **बैंटा** (डेढ़ हाथ लम्बी लकड़ी) पड़ा रहता है।

§७७४—बड़ी-बड़ी **पींड़ों** (पेड़ के मोटे तने) में से जब शहतीर या सोटें निकाली जाती हैं तो उन्हें चीरने के लिए जो पाँच-छह फीट लम्बा दाँतेदार एक औज़ार काम में आता है; उसे **आरा** या **करौंत** (सं० करपत्र > करवत > करउत > करोत > करौंत) कहते हैं। आरे के दाँतों की पाँती **बेल** कहाती हैं। एक दाँते को **आर** कहते हैं। बेल से ऊपर लोहे का चौड़ा पत्ता **पाता** कहाता है। पाते के दोनों सिरों पर एक-एक छेद होता है; उसमें एक कील की सहायता से एक लकड़ी (यह लकड़ी आकार में अँगरेजी अक्षर टी (T) की भाँति होती है) डाली जाती है। उस लकड़ी को **हथिया** कहते हैं। हथिये के आगे का हिस्सा **अगेला** या **चौकसा** (हाथ० में) और पीछे का **पछिया** कहाता है।

आरे से छोटी **आरी** होती है। एक तरह की छोटी आरी **मुछाब** कहाती है। चौखटे-दार आरी **फआरी** कहाती है। एक छोटी आरी जिसमें लोहे का चौखटा होता है; **हीक की आरी** कहाती है।

§७७५—चारपाई या गाड़ी के पहिये में चौखुंटे सूराख करने में एकक औज़ार काम में आता है जिसे **निहाना** कहते हैं। छोटा और पतला निहाना **निहानी** कहाता है। लकड़ी के बेंट में लोहे की मोटी, चौड़ी और लम्बी पत्ती ठुकी रहती है जो सिरे पर पैनी होती है। लोहे की पत्ती **रुखाना**[1] कहाती है। बेंट के सिरे पर चारों ओर लोहे का तार मढ़ा रहता है ताकि बसूले की चोट से बेंट फटे नहीं। उस तार को **उतस्सन** कहते हैं। चौड़ी पत्ती की निहानी **चौरसी** या **पटासी** कहाती है। सूराख साफ करने का एक पतली पत्ती का औज़ार **सींकचा** कहाता है। लकड़ी पर निहाने की धार से बना हुआ गहरा निशान **गुच्चा** या **गोचा** कहाता है। गोचे में से निकली हुई लकड़ी **गिदाया** कहाती है।

§७७६—घन की भाँति लोहे का ठोस और भारी औज़ार जिसमें लकड़ी का बेंट ठुका रहता है **भूमरा** कहाता है। गाड़ी के पहिये के हिस्सों को ठोकते समय भूमरे से **लाग** (= सहारा) का काम लिया जाता है।

---

[1] "सुजन सुतरु बन ऊख सम, खल टंकिका **रुखान**।"

—रामचन्द्र शुक्ल (सम्पादक) : तुलसी-ग्रंथावली, दोहावली, भाग दो, काशी ना० प्र० सभा, दो० ३४२।

§७७७—लकड़ी पर सीधी रेखा खींचने का एक औजार **खसरिया या खतकस** (अ० ख़त + फा० कश) कहाता है। पहिये का गोल घेरा **चका** कहाता है जो कई पुट्ठियों के मेल से बनता है। पुट्ठियों को गोलाई में बनाया जाता है। इनकी गोलाई के नापने में जो विशेष औजार काम आता है, उसे **परौता** कहते हैं। गुनियाँ की भाँति लकड़ी का एक औजार **खाँची** कहाता है। इससे लकड़ी की **कैंच** (टेढ़) या सीध देखी जाती है। लकड़ी के धरातल में गड्ढा या टेढ़ हो तो उसे **खाँच** या **रैछ** कहते हैं। रैछ का पता-**रेबल** (एक यन्त्र) से लगता है।

§७७८—सूराख़ करने का एक औजार **बरमा** कहाता है जो कमानी से घूमता है। इसका ऊपर का भाग **चोटिया,** चोटिये से नीचे की लकड़ी **चर** और चर में लगी हुई लोहे की लम्बी कील **फला** कहाती है।

§७७९—पेचदार लोहे का एक औजार जिसके द्वारा दिलादार किवाड़ों या चौखटों की चूलें मजबूती से कसी जाती है **टिकटिकी** या **सिकंजा** कहाता है। दिलों में कील की तरह ठुकनेवाली छोटी लकड़ी **गुलजक** कहाती है।

§७८०—लकड़ी को चौरस और चिकना बनाने के लिए एक विशेष औजार **रन्दा** कहाता है। बड़े रन्दे को **पलन्दी-रन्दा** कहते हैं। इसके ऊपर का भाग जिसमें लोहे के **तेग** और उसके साथ में लकड़ी की **डाट** ठुकी रहती है, **बादरी** कहाता है। आगे का हिस्सा **ठेक** कहाता है। रन्दे के पेंदे में तेग की धार निकली रहती है। उसी से लकड़ी रन्दी जाती है। रन्दने से लकड़ी की जो छीलन निकलती है उसे **रंदनि** कहते हैं। रन्दने की क्रिया **रंदई** कहाती है। जैसी वस्तु होती है उसी के अनुसार रन्दा भी काम आता है। अतः बढ़इयों के पास कई तरह के रन्दे होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) **गोलची**
(२) **गुटका**
(३) **झिरी का रंदा**
(४) **पतामी**
(५) **गोजिया**
(६) **गल्तिया**
(७) **इकदस्ती**
(८) **कोर का रन्दा**
(९) **गुज्जखाँपिया।**

§७८१—एक लोहे का औजार जिससे पत्तियाँ जमाते हैं **चाँपन** कहाता है। पहिये की पुट्ठियों के सूराखों की सफाई और आकार देखने में काम आनेवाला एक औजार **टँगीला** कहाता है। वर्गाकार और मोटी लोहे की गट्टक-सी **बीरी** कहाती है। इसके बीच में बड़ा-सा छेद होता है। यदि किसी पत्ती में छेद किया जाता है तो उस पत्ती को बीरी पर रख लेते हैं और **सुम्मी** (सं० सूर्मी) से छेद करते हैं। लोहे की भारी चौखुंटी वस्तु जो जमीन में गड़ी रहती है **अहेरन** या **निहाई** कहाती है। लकड़ी की अहेरन **मुढ़ी** कहाती है। लोहे का काम निहाई पर और लकड़ी का मुढ़ी पर किया जाता है। एक गड्ढेदार लकड़ी जिस पर किसी लकड़ी को रखकर काटते, चीरते या छीलते हैं, वह **खँदैल** या **ठीया** कहाती है। आरे से जिस लकड़ी को चीरते हैं, उसे पहले दुसंखी लकड़ी के **गाभे** (दो शाखा जहाँ मिली होती हैं वह स्थान गाभा कहाता है) में अड़ा

लेते हैं। उस दुसंखी लकड़ी को उस समय **अटकी, अड्डी** या **थोक** कहते हैं। आयताकार मोटा तख्ता जिस पर बढ़ई बैठता है, **पटरा** या **पट्टा** कहाता है।

लकड़ी के विभिन्न रूप

§७८२—पेड़ की हालत में लकड़ी के नाम अलग-अलग हैं। पेड़ का सबसे ऊँचा हिस्सा **टुलक, टुलकी** या **टुलकइया** कहाता है। पेड़ की मोटी शाखाएँ **गुद्दा** और पतली **गुदलइया** कहाती हैं। पत्तोंदार हलकी और बहुत पतली टहनी **लहरा** कहाती है। लहरे का सिरा **फुलक** कहाता है। टहनी पर उगी हुई लाल-लाल नई कोमल पत्तियाँ **गिदी** या **गीदी** कहाती हैं। पेड़ का तना **पींड़** कहाता है। जो भाग जमीन में रहता है, उसे **जर** या **जड़** कहते हैं। जड़ में जो जड़ें होती पतली और लम्बी हैं, वे **जरासूल** या **जरासूर** कहाती हैं।

§७८३—कटे हुए पेड़ की लकड़ी कई रूपों में बढ़ई द्वारा बना ली जाती है। पेड़ की वह सम्पूर्ण जड़ जिसमें से सब जरासूल काट कर अलग कर दिये जाते हैं, **जरौंदा** कहाती है। कटी हुई **पींड़** (तने) में से जब छोटे-छोटे हिस्से कर लिये जाते हैं, तब प्रत्येक भाग **बोटा** कहाता है। बोटे में से किये हुए छोटे टुकड़े को **मुड्ढा** कहते हैं। यदि बोटा साफ न हो बल्कि उसमें **गाँठें** हों तो उसे **गाँठ** ही कहते हैं। बोटों या शाखाओं को कुल्हाड़ी से फाड़ कर लम्बे-लम्बे टुकड़े कर लिए जाते हैं, जो **फार** या **चहला** कहाते हैं। मोटी शाखाओं के सीधे और छोटे टुकड़े **डंडे** और पतली शाखाओं के टुकड़े **डंडियाँ** कहाते हैं। बबूल आदि कुछ पेड़ों की डालों पर से छाल उचेली जाती हैं। उस उचली हुई छाल को **पटार** या **खपटार** कहते हैं। बबूल की छाल **कस** कहाती है। बबूल की काँटेदार सूखी शाखा को **झाँकर** या **ढाँकर** कहते हैं। जुड़े हुए दो या चार काँटे **खोबरा** या **पखिया** कहाते हैं।

§७८४—जब लकड़ी कुल्हाड़ी से फाड़ी जाती है या बसूले से छीली जाती है, तब उसमें से छोटे-छोटे टुकड़े निकल पड़ते हैं जो **छीपटी** कहाते हैं। छीपटियों का ढेर **खौरा** कहाता है। छीपटियों के छोटे-छोटे टुकड़े **झोरा** कहाते हैं। बसूले से उतारी हुई बारीक तथा पर्त-सी छोटी छीपटी **छीलन** या **छिलपिन** कहाती है। रन्दे से उतारी हुई छीलन **रन्दन** कहाती है। तने पर से गिरी हुई छाल **बक्कल** (सं० वल्कल) कहाती है। आरे द्वारा लकड़ी के चिरने पर जो लकड़ी का चूरा झड़ता है वह **चिराया** या **बुरादा** कहाता है। लम्बा तना यदि लम्बाई में चीरा जाता है तो चिरा हुआ भाग **फारी** कहाता है। लगभग दो इंच मोटा और चार इंच चौड़ा चिरा हुआ तख्ता **फरकौटा** कहाता है। आरे से जिस लकड़ी को चीरते हैं, उसके चिरे हुए भाग की सँध में लकड़ी का एक टुकड़ा ठोक देते हैं जो **फन्नी** या **फानी** कहाता है। बोटे को चीरते समय बढ़ई उसे नीचे बिना चिरा छोड़ देते हैं। उस बिना चिरे भाग को **तल्ला** या **म्हौड़ी** कहते हैं।

§७८५—यदि एक तख्ता लगभग ६ फुट लम्बा, १० इंच चौड़ा और ५ इंच मोटा हो तो उसे **सिलापट** कहते हैं। उसे चीरने के लिए जो रेखाएँ खींची जाती हैं, वे **सूत** कहाती हैं। छत में लगनेवाली लकड़ियों में सबसे अधिक मोटी **सहतीर** और उससे पतली **सोठ** या **कड़ी** होती है। कड़ियों के ऊपर वर्गाकार तख्ते भी लगते हैं जिन्हें **बरंगा** कहते हैं। बरंगों की जगह छोटे-छोटे टुकड़े भी लगाये जाते हैं, जो **किरचा** या **किचा** कहाते हैं।

§७८६—किसी-किसी चिरी हुई लकड़ी की सतह में जहाँ-तहाँ ऊपर उठी हुई जगह होती है, उसे **ठेल** कहते है। ऊँची-नीची सतह **डबकीली** सतह कहाती है। किसी तख्ते में यदि दो तीन इंच लम्बी फटी हुई रेखा हो तो वह **तेर** या **मंजीर** कहाती है।

§७८७—किसी-किसी पेड़ की पीड़ (तना) के अन्दर मध्यवर्ती भाग में कुछ लकड़ी गहरी कत्थई या काली पड़ जाती है, उसे **सार, सीकुर, मींग, पकौट, सुरखी, हीर** या **राच** (सं० रक्त > प्रा० रच्च > राच) कहते है। सेनापति ने 'सार[1]' शब्द का उल्लेख किया है। सार नाम की लकड़ी बहुत मजबूत और ठोस होती है। सार के चारों ओर जो सफेद लकड़ी होती है, वह **कचौट** कहाती है। लकड़ी की सतह पर जो काली-सी धारियाँ होती हैं, वे **अबर** या **अबरा** कही जाती है।

§७८८—तने या **बोटे** (तने का छोटा टुकड़ा) में यदि बड़ा सूराख आर-पार निकल आता है तो वह **पोल** या **खोखल** कहाता है। कभी-कभी लकड़ी अन्दर ही अन्दर सड़ जाती है। उस पर बूँदोंदार निशान बन जाते हैं। वह सड़ी लकड़ी **फोस या गाजी** कहाती है।

§७८९—नीम के पेड़ के तने में से कभी-कभी एक रस-सा बहता रहता है, जिसे **रोज** या **आँसू** कहते हैं। नीम या बबूल आदि की कुछ गीली लकड़ियों को आग में जलाने पर कभी-कभी किसी लकड़ी में से पानी-सा निकलता है और वह सुन-सुन की आवाज भी करता है। उस पानी-सी वस्तु को **पसेउ** (सं० प्रस्वेद) कहते हैं और उस आवाज के लिए **'सुँदकना'** या 'सुनकना' क्रिया प्रचलित है। **सुंदकनी लकड़िया** जलते समय प्रायः धुआँ देती है, क्योंकि उसमें जल का अंश होता है। नागमती रत्नसेन के बियोग में गीली लकड़ी की भाँति ही सुँदकती रहती थी, तभी उसके धुएँ से भौंरे और कउए काले पड़ गये थे।[2]

अध्याय २

खरादी

§७९०—**ठीया** अथवा **अड्डा** नाम का लकड़ी की एक वस्तु होती है जिसमें लगाकर लकड़ी की कोई चीज़ चिकनी, सुडौल और चमकदार बनाई जाती है। इस क्रिया को **खरादना, खराद करना, खराद चढ़ाना** या **खराद उतारना** कहते हैं। खराद करनेवाला व्यक्ति **खरादी, कुँदेरा** या **कुनेरा** (सिक० में) कहाता है। खरादने में लकड़ी के ऊपर से जो छीलन गिरता है, उसे **खरँद** कहते हैं। बहुत बारीक खरँद **बुरादा** कहाती है।

---

[1] सुरतरु सार की सँवारी है बिरंचि पचि,
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
—सेनापति : कवित्त रत्नाकर (संपा० उमाशंकर सुक्ल), हिंदी परिषद्, प्रयाग-विश्वविद्यालय, ४।१

[2] पिय सौं कहेहु सँदेसरा, ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहैं जरि गई, तेहिक धुआँ हम लाग॥
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, दो० ३४६।

§७६१—ठीये को **कुन्दी** या **खराद** (फा० खराद) भी कहते हैं। कुन्दी अर्थात् ठीये में मुख्य भाग दो होते हैं—(१) चरख (२) खूँटा।

चरख में एक लकड़ी लगी रहती है, जिसे **पखरी** कहते हैं। यह चरख के निम्न भाग में धरती से स्पर्श करती हुई लगाई जाती है। चरख के ऊपरी भाग में गावदुम शक्ल की नोंकीली एक कील ठुकी रहती है, जिसे **मरगला, टोई** या **काँटा** कहते हैं। खूँटे में भी काँटा ठुका रहता है; लेकिन खूँटे का काँटा चरख के काँटे से लम्बाई में छोटा होता है। जो वस्तु खरादी जाती है, उसकी दाईं-बाईं ओर सिरों पर चरख और खूँटों के काँटों की नोंकें जमा दी जाती हैं। फिर उस वस्तु को घुमाया जाता है।
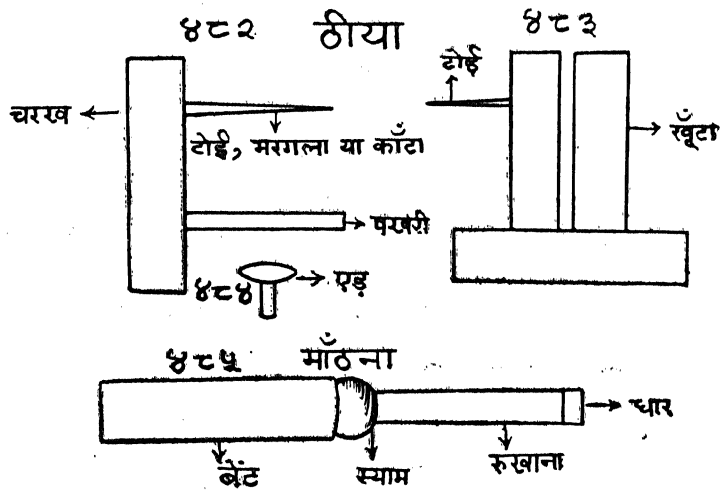
[रेखा-चित्र ४८२ से ४८५ तक]

ठीया और उसके विभिन्न अंग

§७६२—खमदार एक लकड़ी, जिसमें एक डोरी बँधी रहती है, **कमानी** कहाती है। कमानी से ही खराद का अदद घुमाया जाता है। कमानी के निम्नभाग में पकड़ने के लिए जो छोटी सी लकड़ी लगी रहती है, उसे **मुठिया** कहते हैं। जिन विशेष औज़ारों से अदद पर से खरैंद उतारी जाती है, वे **माँठना** और **निहाँ** या **नहाँ** कहाते हैं। निहाँ की नोंक कुछ टेढ़ी होती है और माँठने की सीधी। आकार में माँठना निहाँ से बड़ा होता हैं। माँठने का **पाता** (लोहे की लम्बी और मोटी पत्ती जिसका एक सिरा लकड़ा के **बेंट** (दस्ता) में घुसा रहता है) **रेत** नाम के लोहे का होता है। माँठने से बड़े अदद को खरादा जाता है और निहाँ से छोटे अदद को।

§७६३—निहाँ और माँठने से ही काठ को छीलते और खरादते हैं। छोटी चीज की खराद **निहाँ** से और बड़ी चीज की माँठने से की जाती है। खरादते समय परखी के पास एक काठ का अड्डा रख लिया जाता है, उसे **एड़** कहते हैं। एड़ के ऊपर ही **निहाँ** या **माँठने** को रख लिया जाता है।

§७६४—'**खराद**' या '**ठीया**' के लिए कालिदास ने **चक्रभ्रम** (रघुवंश ६।३२) शब्द का
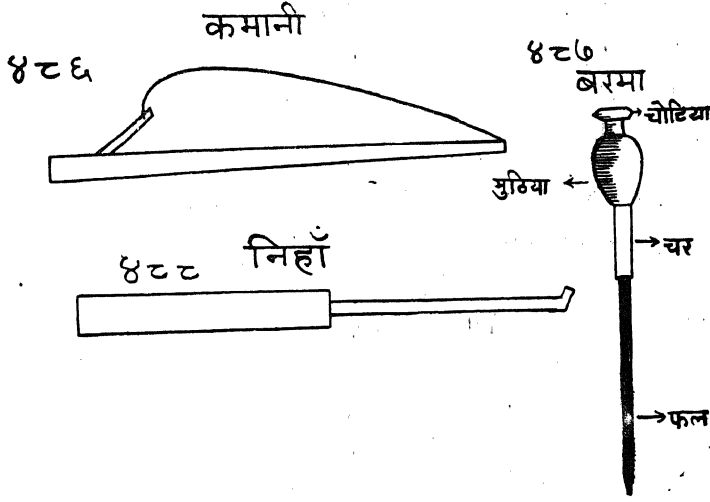
कमानी, माँठना और निहाँ—[रेखा-चित्र ४८६ से ४८८ तक]

प्रयोग किया है। इसी को जायसी ने अपनी जनपदीय अवधी बोली में 'कुन्दा' (फा० कुन्दह्) शब्द से व्यक्त किया है।[1]

खुरखुरे काठ को सपाट और साफ बनाने के लिए एक दरदरी वस्तु काम में लाई जाती है जो **रेगमाल** कहाती है।

§७६५—छोटे डण्डे में फँसा हुआ लोहे का एक औजार जो लकड़ी (काठ) छीलने के काम आता है, **बसूला** कहाता है। तलवार की भाँति का दाँतेदार औजार जो काठ के चीरने और काटने के काम आता है **'आरी'** या **अरिया** कहाता है। लम्बाई के रुख में आरी चलाबा **चीरना** कहाता है, और चौड़ाई में आरी चलाने को काटना कहते हैं।

§७६६—यदि नहाँ, माँठना और बसूला आदि औजार चलते-चलते मोटी धार वाले हो जाते हैं और लकड़ी पर काम नहीं देते तो वे **खुट्टल, खोटे** या **मौथरे** कहाते हैं। उनको **पैना** (तीक्ष्ण) **करना 'धार धरना'** कहता है। खरादी अपने औजारों पर धार धरने के लिए पत्थर का एक लम्बा टुकड़ा काम में लाता है, जो **सिल्ली** कहाता है।

§७६७—जब किसी मोटी लकड़ी (काठ) के टुकड़े में प्याले की भाँति का गहरा और गोलाईदार गड्ढा **बोरनी** (लोहे का एक औजार) से किया जाता है तब वह गढ्ढा **बोर** कहाता है। बोर बनाने या बोर करने के लिए **'बोरना'** क्रिवा प्रचलित है। खराद पर चढ़े हुए अदद के के सिरों पर टोंई का छेद **चुग्गा** कहाता है।

§७६८—काठ के ऊपरी भाग में उठा हुआ हिस्सा खरादना **घाटना** कहाता है। **निहाँ** और माँठना आदि औजारों से घाटा जाता है। घाटने से काठ का जो रूप बनता है, उसे **घाट** कहते हैं। किसी-किसी अदद पर लाख भी चढ़ाई जाती है। लाख चढ़ाने का औजार **रँगाठा** और चढ़ी हुई लाख **लकौटा** या **लखौटा** कहाती है।

---

[1] "कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी।"
अर्थात् पद्मावती की ग्रीवा (गर्दन) मानों खराद पर चढ़ाकर निकाली गई है।
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, ११११२

§७६६—यदि चकई के पल्लों के बीच की खाली जगह की भाँति काठ में जगह बनानी होती है तो **चीश्रा** या **चीरना** औजार काम में लाया जाता है। इसकी धार पैनी होती है और उस धार की शक्ल कलम के ड्यौढ़े खत की भाँति होती है। चकई की भाँति बनी हुई काठ के अन्दर खाली जगह **झिरी** कहाती है।

§८००—खरादी काठ की **गट्टक**, हुक्कों के **नैचे**, खाट के पाये, **बानों** (एक प्रकार की लाठी जिसमें गोल-गोल लट्टू पड़े रहते हैं) के **लहट्टू** (लट्टू) **मसैरी** (**मसहरी**) के लिए **गोलिश्रा** (एक लम्बी और मोटी डण्डी जिसमें गोल-गोल गाँठें बनी रहती हैं), **बेलन**, बालकों के खेलने के लिए **लहट्टू** या **भौंरा** (सं० भ्रमरक=लट्टू) और **चकई** (सं०चक्रिका) आदि बनाते हैं।

§८०१—खराद की चीज में सुन्दरता लाने के लिए खरादी काठ में **कारीगरी** (कला) दिखाता है। उसमें कई प्रकार की चीजें बना देता है। खाट के पाये के सिर के ऊपर एक उठा हुआ गोल घेरा बनाता है जिसे **कटोरी** कहते हैं। कटोरी के चारों ओर एक या दो वृत की भाँति गोल रेखाएँ माँठने से बनाई जाती हैं। उन रेखाओं को **आँकन** या **खत** (फा० ख़त) कहते हैं।

§८०२—एक पाये में चार **मत्थे** (माथे) होते हैं। हर एक में एक-एक **स्याल** (सूराख) होता है। ये सूराख **निहानी** (एक औजार) और बसूला की सहायता से किये जाते हैं। **तमाचे** या **मत्थे** के नीचे एक गोल गड्ढेदार जगह बनी होती है जिसे **झिरी** कहते हैं। झिरी के पास में **चीरने** (एक औजार) से एक बारीक किनारी बना दी जाती है जो **चीनी** या **चीरनी** कहाती है। किनारी दार चकई-सी भी बनाई जाती है जिसे **कँगनी** कहते हैं। गोल और आगे की ओर को कुछ पतला-सा बनाव **मटकी**, **गोला लहैट्टू** या **लहट्टू** (लट्टू) कहाता है। मोटी और गोल किनारी का बनाव **गल्ता** कहाता है। लहट्टूनुमा लम्बी गर्दन का बनाव **सुराई** और **गिलास** कहलाता है। पाये का वह भाग, जो जमीन को छूता है **टेक**, **थाप** या **पोंड़** कहाता है।

'नली' या 'नैचा' आदि में आर-पार छेद करने के लिए जो औजार काम आता है उसे **बरमा** कहते हैं। पतली सलाई का औजार **बरमी** कहाता है। बरमा के तीन अंग होते हैं—(१) बरमा (२) चर (३) मुठिया।

§८०३—पतली और लम्बी कील जिससे छेद किया जाता है **बरमा** कहाती है। बरमा जिससे घूमता है वह लकड़ी की गिल्ली **चर** कहाती है। ऊपर पकड़ने का काठ **मुठिया** कहाता है। बड़ा छेद करने के लिए एक **गिरमिटिया बरमा** भी होता है।

§८०४—एक औजार **मुतक्का** कहाता है। इसमें तीन कीलें होती हैं। इसे खराद के काठ में ठोककर उसे खराद पर उतारा जाता है।

चोट मारने के लिए **हथौड़ा** या **हतौड़ा** होता है। इससे छोटा औजार **हतौड़ी** या **हतौड़िश्रा** या **हतौड़िया** कहाता है।

§८०५—नापने में काम आनेवाला काठ का पैमाना **नपत** कहाता है। मोटाई नापने का औजार **कालापास** (कम्पास) और लम्बाई नापने का **परकाल** या **परकार** कहाता है।
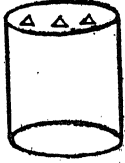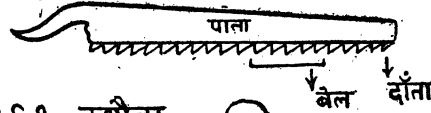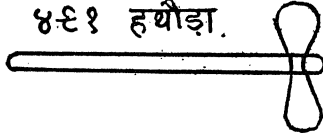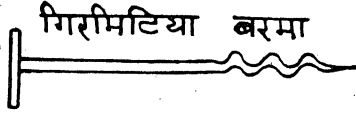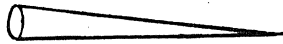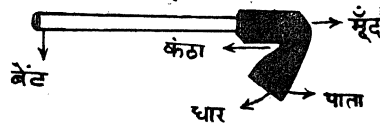
खरादी के औज़ारों के नाम [रेखा-चित्र ४८६ से ४६४ तक]

नाम और रेखा-चित्र संख्या—(१) बरमा ४८७। (२) मुतक्का ४८६। (३) आरी ४६०। (४) हथौड़ा ४६१। (५) गिरमिटिया बरमा ४६२। (६) चीरना ४६३। (७) बसूला ४६४।

खाट के पाये—(१) टापदार पायौ (२) सुराहीदार पायौ।
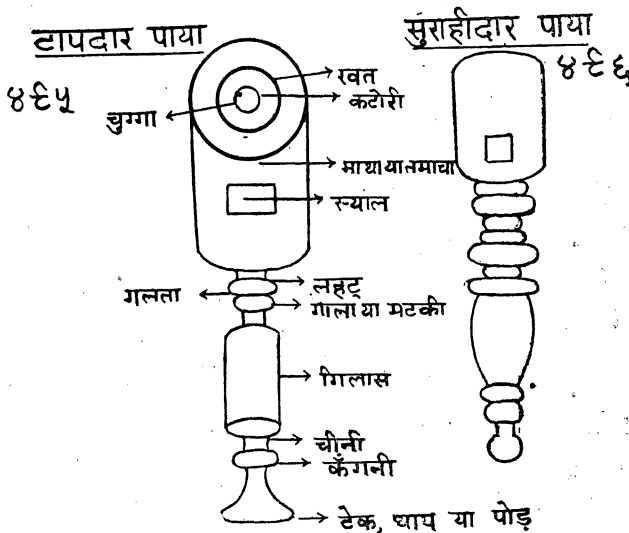
(१) टापदार पाया और उसके अंग [रेखा-चित्र ४६५] (२) सुराहीदार पाया [रेखा-चित्र ४६६]

अध्याय ३

रँगरेज और छीपी

§८०६—कपड़ों पर छपाई करनेवाले कारीगरको **छपेरा**, **छिपेरा** या **छीपी** (देश० छिम्पय—दे० ना० मा० ३।६८) कहते हैं। किसी रंग में कपड़ा रँगनेवाला कारीगर **रँगरेज** कहाता है। रँगरेज मुसलमानों में और छीपी हिन्दुओं में एक जाति भी है।

§८०७—रँगने से पहले कपड़े को पानी में **ओदा**[1] (सं० आर्द्र=गीला) कर लिया जाता है। साधारणतया प्रत्येक रँगरेज की **रँगार** (कपड़े रँगने की जगह) में तीन नाँदें गड़ी रहती है, जो **कुंडी** कहाती हैं। रँगे जानेवाले कपड़े में से निकला हुआ मैला पानी जिस नाँद में इकट्ठा रहता है वह **मैल कुंडी** कहाती है। रंग मिले हुए पानी में जब कपड़ा रंग लिया जाता है तब वह रंगीन बचा हुआ पानी **फोकटा** या **डैल** कहाता है। यह डैल भी मैल कुंडी में डाल दिया जाता है। घड़े से बड़ा बर्तन जिसमें पानी भरा रहता है, **गोलचा** कहाता है। गोलचे में से कुंडी में पानी डालने के लिए एक छोटा-सा मिट्टी का बर्तन होता है जिसे **ठिलिया** कहते हैं। कुछ रंग ऐसे होते हैं कि उन्हें चूहे चाट जाते हैं। अतः रँगरेज उन्हें एक ढक्कनदार मिट्टी के गोल बर्तन में रखते हैं। वह बर्तन **कुँड़ेली** और उसका ढक्कन **चप्पन** कहाता है। पक्के रंग पानी में पहले औटाये जाते हैं और फिर रंग के गर्म पानी में कपड़ा डुबा दिया जाता है। कपड़े को लगभग डेढ़ हाथ के एक डंडे से पानी में डुबाते हैं। ताकि हाथ न जलें। उस डंडे को **डाँड़ा**, **फड़ोड़ी** या **रँगेटी** (सं० रंग + सं० यष्टि) कहते हैं। पक्का रंग बनाने का मसाला **लाग** या **पाह** कहाता है। अतः पक्का रंग बनाने को '**पाह देना**' कहते हैं। बारीक अबरक (सं० अभ्रक) जो रंग में मिलाया जाता है, **बुक्का** कहाता है।

§८०८—प्रायः कपड़ों की रँगाई तीन तरह से की जाती है। उन विधियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) डुब्बा, (२) बँधना, (३) चुनौटिया।

डुब्बा रँगाई में सादा तौर से रंग घुले हुए पानी में कपड़ा डुबा दिया जाता है। कई रंगों की धारीदार धोती या चूँदरी रँगने में कपड़े में जगह-जगह तागे बाँधे जाते हैं। उन तागों को **बँधना**, **बन्द**, **गंडा** या **डाट** कहते हैं। इस तरह की रँगाई **बँधना** कहाती है। चूँदरी प्रायः **ढिगों** (चारों किनारे) पर लाल और शेष भाग में पीली होती है। अतः बँधना रँगाई से रँगी जाती है। कुछ चूँदरियाँ और धोतियाँ चुन्नटें बनाकर रँगी जाती हैं। वह रँगाई **चुनौटिया**[2] कहाती है। चुन्नटें इस ढंग से डाली जाती हैं कि कपड़े तीन-चार रंग आ जाते हैं।

§८०९—यदि रंग कहीं अधिक और कहीं कम चढ़ा हो तो रँगरेज कपड़े को रंग के पानी में दाब दाबकर इधर-उधर करके डुबाता है। उस क्रिया को **पछेना** कहते हैं। यदि कपड़े पर रंग बहुत गहरा चढ़ गया हो और रँगरेज उसे हलका करना चाहे तो वह साफ पानी में रँगे हुए कपड़े को मलता है। वह क्रिया **फँचीटना** या **पखारना** कहाती है। पखारने के बाद कपड़े को निचोड़कर और फटकारकर सुखा देते हैं। शतपथ ब्राह्मण (५।३।५।२१) में रंगीन कपड़े का

---

[1] "उत्तम बिधि सौं मुख पखरायौ ओदे बसन अँगौछि।"
—सूरदास : सूरसागर, काशी ना० प्र० स० १०।६०६

[2] "पहिरैं चीर चिनौटिया चटक चौगुनी होति।"—बिहारी-रत्नाकर, दो० ६२६।

द्योतक 'पांडव'[1] शब्द आया है। इससे प्रकट होता है कि ब्राह्मण काल में रँगाई का काम होता था।

§८१०—**रँगी-छपी ओढ़नियों और चूँदरियों के नाम**—बँधना रँगाई की जिन ओढ़नियों में सींकों की भाँति पतली रेखाएँ होती हैं, वे **जैपुरी** कहाती हैं। जिन ओढ़नियों पर फ़ुरपुती से रंग की एक अंगुल चौड़ी टेढ़ी रेखा डाली जाती है वे **लहरिया** कहाती हैं। जिन चूँदरियों पर रंगों के द्वारा गंडे बाँधकर फूल, छबरिया, बूँदें और चिड़ियाँ आदि बनाई जाती हैं वे चूँदरियाँ **भाँत भँतीली** (सं० भक्ति-भक्तिल) कहाती हैं। 'भाँत' शब्द सं० 'भक्ति' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ **रँगना** या **चीतना** है। वाल्मीकि और कालिदास ने 'भक्ति' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि अँगरेजी 'डिज़ाइन' शब्द के लिए प्राचीन शब्द 'भक्ति' ही था। गुजरात में इसका रूप भात (भक्ति > भत्ति > भात) है।[3]

एक प्रकार की बँधना रँगाई ऐसी होती है कि उसमें कपड़े के बीच में वर्गाकार जगह खाली होती है और उसके चारों ओर रंगीन चौखटा-सा होता है। उस तरह रँगी हुई ओढ़नी को **पतंगिया** कहते हैं। एक पीले रंग की ओढ़नी के चारों किनारों पर लाल रंग के वर्ग और गोले बने रहते हैं। बीच में भी वर्ग बना रहता है। उस ओढ़नी को **पौमचा**[4] कहते हैं। मांगलिक लोकाचारों और कुछ त्यौहारों (जैसे करवा-चौथ आदि) पर स्त्रियाँ पौमचा ओढ़कर ही पूजन करती हैं। जायसी ने **पौमचा** वस्त्र का उल्लेख **'पेमचा'**[5] शब्द लिखकर किया है। जिन पौमचों पर स्त्रियाँ बनी रहती हैं वे **महरिआ** कहाते हैं। सिर पर गागर वाली स्त्रियों के चित्रों वाले पोमचे **गुजरिआ** कहाते हैं। नाचते हुए मोरों वाले पोमचे **मोर चँदोवा** कहाते हैं। पक्षियों के चित्रों की दृष्टि से **चिरइया-चिरौटा** और **सुआ-कोइल** भी पोमचों के नाम हैं। एक प्रकार की चद्दर, जिस पर कई रंगों की धारियाँ होती हैं, **पँचरँग चीरा** कहाती है। जिन पोमचों पर पेड़ छपे रहते हैं और उनके नीचे खड़ी हुई स्त्रियाँ जिस पोमचे में दिखाई जाती हैं, वे **कुंजें** कहाते हैं। गोलाई में खड़ी हुई स्त्रियाँ जिस पोमचे में दिखाई गई हों वह **रास-बिहार** पोमचा कहाता है। ऊपर गिनाये हुए कुछ पोमचों में प्रायः रँगाई और छपाई साथ-साथ भी चलती है। वस्त्र का कुछ भाग रँगा हुआ रहता है और कुछ छपा हुआ **महरिआ, गुजरिआ** आदि पोमचों में चारों ओर का हिस्सा रँगा रहता है और बीच में स्त्रियाँ छपी रहती हैं।

§८११—**रङ्गों के नाम**—अच्छा और गहरा चढ़ा हुआ रंग **चोखा** (सं० चोक्ष > प्रा० चोक्ख + क > चोखा) कहाता है। कपड़े पर यदि बहुत मामूली-सा हलका रंग चढ़ाया जाय तो उसे **फोक** कहते हैं। प्रायः कच्चे रंग ही जब हलकी हालत में चढ़ते हैं तो फोक पुकारे जाते हैं, जैसे

---

[1] "अथैनं पाण्डवं परिधापयति।"—(शत० ५।३।५।२१)

[2] "स्त्रवुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः।"

—वाल्मीकि रामायण, सुन्दर कां० ४६।४

अर्थात् रावण के शरीर में अनेक प्रकार की चित्रणाएँ चित्रित थीं।

"भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।"—कालिदास, पूर्व मेघ० श्लोक १६।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७४।

[4] पोमचे की भाँत = चार कोनों पर चार और बीच में एक कमल के फुल्ले और शेष सब स्थान खाली।—वही, पृ० ७४

[5] "पेमचा डोरिआ औ बीदरी।"—जायसी ग्रंथावली, हिंदुस्तानी एकेडेमी, पदमावत ३२६।६

हलका गुलाबी **फोक गुलाबी** कहाता है। कर्र नाम का एक छोटा-सा पौधा होता है उस पर दो रंग के फूल आते हैं—(१) लाल (२) पीले। कर्र के फूल कसूम (सं० कुसुम्भ[१]) कहाते हैं। कसूम से मिलता हुआ रंग **कसूमी या पीक** कहाता है। पीलापन लिये हुए लाल रंग **केसरिया** कहाता है क्योंकि केसर रंग में लाल और पीली होती है। लाल और नीले से मिलाकर बनाया हुआ रंग **ऊदा** (फा० ऊदा=आसमानी) कहाता है। ऊद नामक पेड़ की छाल से तैयार हुए रंग की झलक लाल और नीली मिली हुई होती है। एक तरह की लाग जो ऊदे रंग के तैयार करने में डाली जाती है **कसीस** कहाती है। यदि यह अधिक पड़ जाती है तो कपड़े को काट डालती है। हलका ऊदा रंग जिसमें नीलेपन की झलक अधिक होती है, **कासनी** कहाता है। लाली और पीलाई लिये हुए रंग को **कपासी** कहते हैं, क्योंकि कपास के पौधे की **पुरी** (फूल) के बाहरी भाग का रंग पीला होता है और अन्दर का भाग लाल-सा। बाण ने कादम्बरी में इस रंग का उल्लेख किया है।[२] साधारण लाल रंग **चोला** कहाता है, क्योंकि चोल नामक पेड़ की छाल से तैयार किया जाता है। उस छाल में से जो लाल रंग निकलता है वह पक्का होता है। गहरे लाल रंग को **मजीठा** कहते हैं। मजीठ (सं० मंजिष्ठा) बेल की जड़ और डंठल से कुचलकर निकाला हुआ रंग बहुत लाल होता है। जायसी ने **चोला**[३] और **मंजीठ**[४] शब्दों का प्रयोग रङ्गों के अर्थ में ही किया है। बिहारी ने भी चोल[५] रंग का उल्लेख किया है। रंग के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"हर्रा लग्यौ न फिटकरी रंग चौखोई आयौ।"[६]

§८१२—**फूलों के आधार पर रङ्गों के नाम—गुलाबी, कन्नेरी** (कन्नेरी के फूल-सा पीला), **चंपई** (चम्पे के फूल की भाँति पीला), **केसुआ** (सं० किंशुक=ढाक के फूलों की भाँति पीलाई सहित लाल रंग) और **डँड़ियान** (एक प्रकार का हलका रंग जो हारसिंगार के फूलों की डण्डी से तैयार किया जाता है। हारसिंगार के फूलों का डण्ठल लाल होता है।

§८१३—**फलों के आधार पर रङ्गों के नाम—अँगूरी** (हलका हरा), **बैंगनी या बैंजनी** (बैंगन की तरह नीलापन लिये लाल रंग), **जामुनी** (पकी जामुन की भाँति लाली लिये हुए काला), **बादामी** (कुछ पीलापन लिये सफेद), **फोकप्याजू, प्याजू** (प्याज की भाँति सफेदी लिये हुए गुलाबी), **सेबिया** (लाल झलक के साथ हलका पीला रंग), **नारङ्गी** (हलका लाल),

---

[१] "कुसुम्भ-केसर-लवाश्लेष लोहिताभिर्लेखाभिरालिखित।"
—बाण : कादम्बरी, सूतिकागृह वर्णना पृ० २७७।
अर्थात् सौभाग्यवती बूढ़ी स्त्रियाँ चौक पूरकर उन्हें कसूम के पराग से लाल-लाल बनाती थीं।

[२] "राग रुचिरकार्पास-कुसुमलेशलांछिताभिः।"
—बाण : कादम्बरी, सूतिकागृह सिद्धांत वि०, संस्क०, पृ० २७६।

[३] "चोला चीर चन्दन औ आगी।"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा० : जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, ३२४।१

[४] "भीज मंजीठ टेसू बन राता।"—वही, ३२३।३

[५] "फीकौ परै न, बरु फटै रँग्यौ चोल-रङ्ग चीरु।"
—बिहारी-रत्नाकर, दो० ६६८

[६] हर्र और फिटकरी के बिना ही रङ्ग अच्छा चढ़ गया अर्थात् बिना विशेष प्रयत्न के काम बन गया।

किसमिसी (हल्का काला और कत्थई मिला हुआ) और **उन्नाबी** यह किसमिसी से अधिक कालापन लिये रहता है। उन्नाबी में सुर्खी कम होती है।

§८१४—**अन्य विभिन्न आधारों पर रङ्गों के नाम**—कपड़े पर यदि गहरा रंग चढ़ाना हो और वह हलका या फीका ही चढ़े तो उसे **रूखा** या **मटमटा** कहते हैं। धान की पत्ती की भाँति गहरा हरा रंग **धानी** कहाता है। तोते के पंखों की तरह का हरा रंग **तोतई, सूई** या **सूआपंखी** कहाता है। हलके काले रङ्गों में **सुरमई, आस्मानी** और **सिलेटी** रङ्ग अधिक प्रचलित हैं। गेरू से मिलता-जुलता पीलाई लिये हुए लाल रंग **गेरुआ** कहाता है। इसे ही **जोगिया** या **भगवा** भी कहते हैं, क्योंकि इस रंग के वस्त्र साधू, संन्यासी और योगी ही पहनते हैं। सुर्ख चन्दन की भाँति का रंग **मलागीरी** कहाता है। रंगरेजों की बोली में लाल रंग को **सुरङ्ग** या **सोहा** भी कहते हैं। जिस रंग में लाल में काला अधिक मिला रहता है वह **ककरेजी** कहाता है। स्याहीमाइल हरा रंग **काही, मूँगिया,** अथवा **सिवारी** (सं० शैवालिन्) कहाता है। **सिवार** (पानी की काई या घास) का रंग कालापन लिये हरा होता है। हलका सुर्ख रंग **कत्थई** (सं० क्वथिक=खैर लकड़ी के क्वाथ से तैयार किया हुआ अर्थात् कत्था सम्बन्धी) कहाता है। हरापन लिये हुए नीला रंग **पिरोजी** या **पिरोजई** (फा० फ़ीरोज़ी=फ़ीरोज़ अर्थात् नीलमणि से सम्बन्धित; फ़ीरोज का रंग हरापन लिये हुए नीला होता है) कहाता है।

§८१५—बिलकुल सुर्ख रंग को **रकत लाल, कन्दई** या **कन्दिया** कहते हैं। कन्दई से कुछ कम लाल **सिन्दूरी** या **ईंगुरिया** कहाता है। हलका पीला रंग **बसन्ती** कहाता है। बसन्ती रंग सरसों के फूल के रंग से मिलता हुआ होता है। कुछ पीलाई लिये सफेद रंग **मोतिया** कहाता है। स्याही माइल गहरे सुर्ख रङ्ग को **हिरमिची** कहते हैं। बहुत मामूली लाली लिये हुए पीला रङ्ग **सरबती (शरबती)** कहाता है। बहुत हल्के नीले रङ्ग को **समुन्दरी** कहते हैं। मटियाले रंग को **अगरई** या **भकमूसरा** कहते हैं। चमकदार और चटकदार तेज रंग **चहचहा** कहाता है।

§८१६—छीपी काठ की जिस वस्तु से कपड़े पर छपाई करता हैं वह **छापा या ठप्पा** कहाती है। छापे में जो निशान बने रहते हैं वे **रंगत** या **कटान** कहाते हैं। संस्कृत में ठप्पे के लिए प्राचीन शब्द 'रूप' था। रूप अर्थात् ठप्पा लगने के कारण ही एक विशेष सिक्के को रूप्या (आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः—सि० कौ०, तत्वबोधिनी०, सूत्र १६२७) कहने लगे। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि "आकृतियुक्त ठप्पे के लिए प्राचीन पारिभाषिक शब्द 'रूप' था जैसा कि पाणिनिसूत्र 'रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्' (५।२।१२०) में रूप या ठप्पों से बनाये जानेवाले प्राचीन सिक्कों के अर्थ में प्रयुक्त होता था।"[1]

लकड़ी के एक तख्ते पर कपड़े को बिछा लेते हैं तब ठप्पे से उसे छापते हैं। वह लकड़ी का तख्ता **पटीमा** कहाता है।

कपड़े पर स्थान के विचार से छपाई के नाम

§८१७—धोतियों की चौड़ाई में किनारे पर दस-बारह अंगुल चौड़ी जगह में जो फूल-पत्तियों की छपाई होती है उसे **पल्ला** (सं० पल्लव) कहते हैं। धोती की लम्बाई में जब किनारे-किनारे छापे से सीधी रेखा छापी जाती है तब वह **ढिंग, किनार** या **धार** कहाती है। चूँदरी या ओढ़नी के बीच भाग में टेढ़ी रेखाओं की छपाई **लहरन** कहाती है। दो पत्तियों सहित आम की-

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्ष-चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५।

सी आकृति का बूटा जो लिहाफ, चादर और पलंगपोश आदि पर छापा जाता है **तुरंज** या **कुंज** कहाता है। छोटे बूटे को यदि मिलाते हुए छापा जाता है तो वह छपाई **बेल** कहाती है। पतली बेल **फीता** कहाती है। जब बूटा अलग-अलग हालत में घना छापा जाता है तब वह छपाई **जाल** कहाती है।

§८१८—छपे हुए कपड़े के वे स्थान जहाँ छपाई के निशान नहीं होते **थल** कहाते हैं। कपड़े पर पहली बार की मामूली छपाई **थलकारी** कहाती है। छोटी बूँदों की छपाई **छींट**, छींट से बड़ी बूँदें **बुँदका** और बुँदका से बड़ी बूँदें **टिपका** कहाती हैं। छींट से छोटी बूँदें **फुरीं** कहाती हैं।
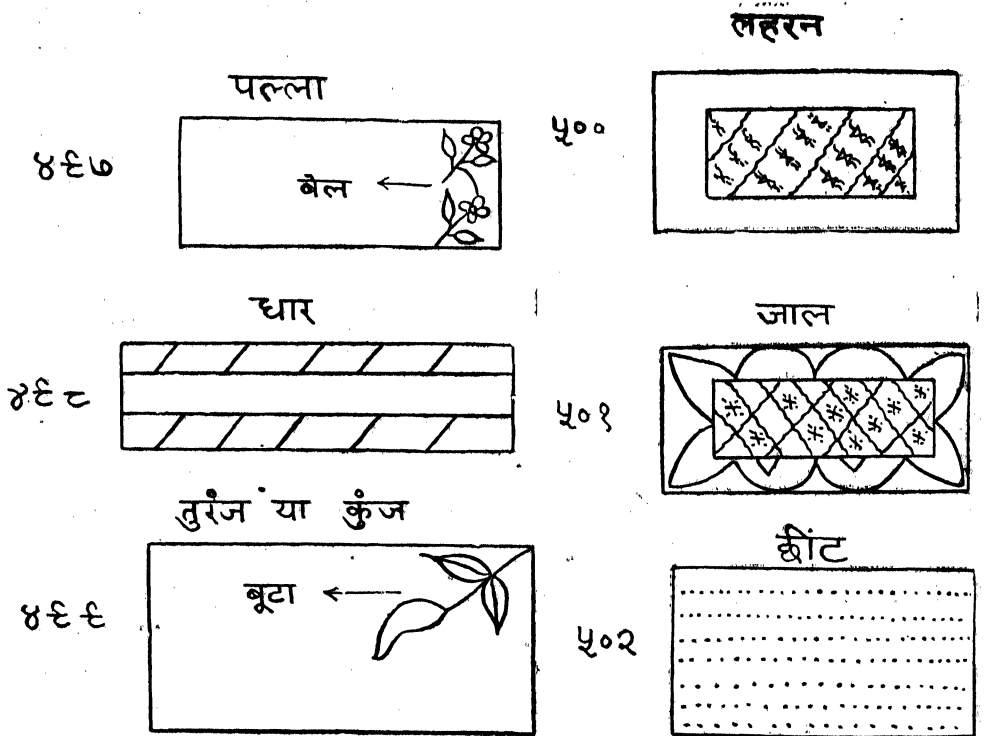
छपाई तथा रेखा-चित्र

(१) पल्ला ४९७। (२) धार ४९८। (३) तुरंज या कुंज ४९९। (४) लहरन ५०० (५) जाल ५०१। (६) छींट ५०२।

§८१९—यदि थलकारी किसी एक रंग में की जाय और उसके ऊपर दूसरी छपाई उससे भिन्न रंग में की जाय तो उसे **रंगित ठप्पी** कहते हैं। रंगित ठप्पी के लिए ही बाण ने हर्षचरित (चतुर्थ उछ्वास) में **'परभाग'** (परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः—टीकाकार शंकर) शब्द का उल्लेख किया है।[1]

छापों के नाम

§८२०—कुंज के छापे में से यदि फल की आकृति निकाल दी जाय तो वह ठप्पा **कुंज-**

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५।

पत्ती कहाता है। वह छोटा छापा जिसमें पत्तीदार एक फूल बना हुआ हो **बूटी** कहाता है। जब बूटी मिलती हुई छपती है तो वह छापा **फुलपति या पाँत** या **बेल** कहाता है। बेल की एक ओर कँगूरेदार छापा **टोटरू** या **कँगूरिआ** कहाता है। फूल-पत्तियों सहित पौधों का छापा **फुलबगिया**, पाँती में उड़ते हुए पक्षियों का **उड़न-पखेरू**, तितर-बितर उड़ते हुए पक्षियों का छापा **पंख-पखेरू**, बिना पत्ती के फूलों का छापा **फुलडंडिया** और खिले हुए फूलों का छापा **पँखरिया** कहाता है। जिस छापे में केवल एक ही बड़ा फूल हो वह **करखा** कहाता है। सींकों के निशानों के साथ बूँदें भी हों तो उसे **छिंट-सींका** कहते हैं। खड़ी खजूर की पाँती हो तो उसे **ताड़-खजूरा** कहते हैं। जिसमें फूल, पत्ती, पक्षी, पान, चिड़ी आदि कई चीजें बनी हुई हों उसे **सतगठा ठप्पा** कहते हैं।
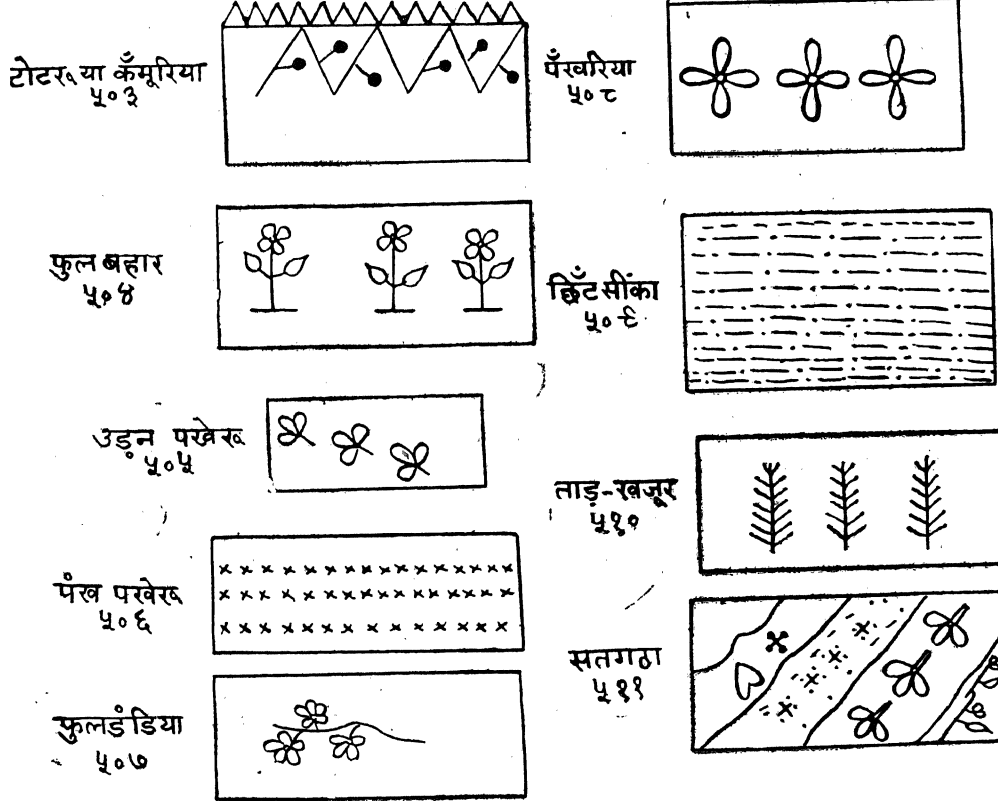
ठप्पों के नाम तथा रेखा-चित्र

(१) टोटरू या कँमूरिया ५०३। (२) फुलबहार ५०४। (३) उड़न पखेरू ५०५। (४) पंख-पखेरू ५०६। (५) फुल डंडिया ५०७। (६) पँखरिया ५०८। (७) छिंट-सींका ५०९। (८) ताड़-खजूर ५१०। (९) सतगठा ५११।

अध्याय ४

गहने बनानेवाले शिल्पकार

§८२१—सोने और चाँदी के गहने बनानेवाले कारीगर को **सुनार** (सं० सुवर्णकार > सुवण्णआर > सुवण्णार > सुन्नार > सुनार) कहते हैं। हेमचन्द्र ने 'सुवण्णआर' (दे० ना० मा० ३।५४) और 'सुवण्णार' (दे० ना० मा० ५।३६) शब्दों को देशी माना है। गहने को **माल, चीज** या **जेवर** (फ़ा० जेवर) भी कहते हैं।

§८२२—सुनार का काम **सुनारी** या **सुनारगीरी** कहाता है। एक खास तोल का सोने का डेला अथवा सिक्के की भाँति का गोल सोना **पाँसा** कहाता है। पहले एक पाँसे की तोल २६ तोले ८ माशे होती थी। आज-कल ३ माशे से लेकर ५ तोले तक के पाँसे होते हैं।

§८२३—मूल्यवान् पत्थर जो आभूषणों में जड़े जाते हैं, **नग** या **नगीना** कहाते हैं। नग जड़नेवाले कारीगर को **जड़िया** कहते हैं। नग काटनेवाले तथा उनमें पहल बनानेवाले कारीगर **बेगड़ी** (सं० वैकटिक) कहाते हैं। नग को जब तार की रगड़ से काटा जाता है, तब उसके लिए **'चीरना'** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। नग की उठी हुई किनारियों तथा नोंकों को घिसना **'कोरना'** कहाता है। जब सुनार नग को सोने की किसी चीज (भूषण) में लगा देता है, तब वह क्रिया **जड़ना** कहाती है।

§८२४—ताँबे, चाँदी या सोने की वस्तुओं पर खास तरह के निशान बनाना **चीतना** कहाता है। चीतने का काम **चिताई** कहाता है। चिताई करनेवाले को **चितेरा** कहते हैं।

§८२५—सोने-चाँदी के गहनों पर रंगसाजी का काम **मीनाकारी** या **मीनागरी** कहाता है। **मीना** (रंगसाजी) करनेवाले को **मीनागर** कहते हैं।

§८२६—सोने या चाँदी को गलाकर और फिर उसे मिट्टी के अभीष्ट साँचों में डालकर निश्चित आकृति में बना लेते हैं। इस काम को **ढलाई** कहते हैं। ढलाई का काम करनेवाला **ढलइया** कहाता है।

§८२७—सुनार के **अँगीठे** (आग की भट्टी) की राख और कूड़ा-करकट एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है। उसे **नियार** कहते हैं। नियार में मिले हुए सोने-चाँदी के कण निकलनेवाला **नियारिया** कहाता है। नियारिये के काम को **न्यारियागरी** कहते हैं। नियारिये राख में पानी डालकर उसे फिर छानते और नितारते हैं तब उन्हें कुछ **कन** (सोने या चाँदी के बहुत छोटे टुकड़े) मिल पाते हैं।

§८२८—जब सोने में ताँबा मिला दिया जाता है तब उस मिलावट को **खोट, ओख या बट्टा** कहते हैं। यदि चाँदी में जस्ता मिलाया जाय, तो वह भी **ओखी चाँदी** या **बट्टे की चाँदी** कही जाती है। शुद्ध सोना बनाने के सम्बन्ध में एक श्लोक[1] भी है।

§८२९—ओख कई प्रकार की होती है। जब चाँदी में जस्ता और ताँबा मिला दिया जाता है, तब उस ओख को **सूबड़ा** या **दुखार** कहते हैं। चाँदी में जस्ते की मिलावट **जस्ती** कहाती है। चाँदी में जब ताँबा मिला दिया जाता है, तब उस मिले हुए रूप को **सूबी** कहते हैं। सोने और चाँदी का मिश्रण **रूपा** कहाता है। इन मिश्रणों के बने हुए गहने **बट्टिया** अथवा **ओखिया** गहने पुकारे जाते हैं।

---

[1] "रुदन्त्या हरतालेन रसेनसह मर्दयेत्।

§८३०—सोने को गलाकर जब उसे एक सलाई के रूप में बना लिया जाता है, तब उसे **रैनी** कहते हैं। रैनी बनाने की क्रिया **'चासनी करना'** कहाती है। सुनार जिस रैनी से गहना बनाता है, उसमें से एक छोटा-सा टुकड़ा काटकर गाहक को दे देता है ताकि गहना बन जाने के बाद भी गाहक कसौटी पर उस टुकड़े को और गढ़े हुए (बने हुए) गहने को कसवाकर देख सके कि गहने में वही सोना लगा है जिसका कि गाहक के पास टुकड़ा है। सुनार से मिला हुआ वह टुकड़ा भी **चासनी** कहाता है। यदि चासनी में ताँबे की मिलावट होती है तो उसे **ओखिया चासनी** कहते हैं। शुद्ध चासनी को **असली चासनी** कहते हैं। चासनी की **ओख** और **असल** (शुद्धता) मालूम करने के लिए सुनार **कतुए** (कैंची की भाँति का एक औजार) से चासनी में एक गड्ढा करता है। इस प्रक्रिया को **सूलाख करना** या **सूलाख लगाना** कहते हैं।

§८३१—सोना शुद्ध करने को **सोना सोधना** कहते हैं। सोना सोधने की एक विशेष प्रक्रिया **'पक्की चासनी करना'** कहाती है। उसकी विधि इस प्रकार है—

ओखिया सोने को गलाकर उसमें दूनी चाँदी मिलाई जाती है और उसे एक-रस कर लिया जाता है। उस पिघले हुए मिश्रण को पानी में डाल दिया जाता है। तब मैल-मिट्टी पानी में मिला हुआ रह जाता है और मिश्रण एक जगह इकट्ठा हो जाता है। सुनार लोग फिर उस मिश्रण को शोरे के तेजाब में डाल देते हैं। तब शोरा सोने को छोड़कर चाँदी आदि शेष सब धातुओं को खा जाता है। इस तरह अन्त में शुद्ध सोना रह जाता है। इसी प्रक्रिया को **'पक्की चासनी करना'** कहते हैं।

§८३२—पुराने समय में सोना सोधने की एक और विधि प्रचलित थी जिसे **'सलोनी करना'** कहते थे। इसकी प्रक्रिया निम्नांकित रूप में की जाती थी—

ओख वाली सोने की बस्तु को पहले **घरिया** (सुनार के काम आनेवाला प्यालीनुमा मिट्टी का बर्तन) में डालकर गलाया जाता था। उसको पहले रैनी बनाई जाती थी। रैनी को पीटकर लम्बे पत्ते के आकार में कर लिया जाता था। उस पत्ते को बन्द कमरे में आग के ऊपर रख दिया जाता था। एक आँच देकर फिर उस पत्ते पर ईंट का बुरादा, नमक तथा अन्य मसाला लगा करके आग पर रखते थे। तब सोने की **ओख** (खोट=बट्टा) उड़ जाती थी और **रवा** (शुद्ध सोना) शेष रह जाता था। इस प्रक्रिया को **सलोनी करना** कहते थे। पुराने और बुड्ढे सुनार आज भी सलोनी की प्रक्रिया को अच्छी तरह जानते हैं।

§८३३—चासनी करने के उपरान्त सोने के कई रूप बना लिये जाते हैं। सोने का मोटा और गोल रूप **गद्दा, गदिया** या **थपिया** कहाता है। फूल की पंखड़ियों की भाँति का छितरा रूप **हरजा** या **रबाल** कहाता है। गोल-मोल ठोस रूप को **डला** या **डली** कहते हैं।

§८३४—जब चाँदी या ताँबे की किसी वस्तु पर सोने का **पत्ता** (सं० पत्रक > पत्ता) चढ़ा दिया जाता है, तब उस पत्ते को **बँधेल** कहते हैं। बँधेल चढ़ाने की प्रक्रिया **बँधेलना** कहाती है।

§८३५—सोने अथवा चाँदी के आभूषण को एक खास औजार से छीलते हैं ताकि उसमें चमक पैदा हो जाय। सुनारों की बोली में वह काम **छिलाई** कहाता है। आजकल मशीन द्वारा नये ढंग से भी छिलाई होती है जिसे **डैमल** (अँग० डाइमण्ड) कहते हैं। छिलाई से गहने पर जो चमकदार निशान बनते हैं, वे **पहल** कहाते हैं। छिलाई के औजारों में **सान, कील** और **सलाई** मुख्य हैं। सान (सं० शाण) पर पहले कील की नोंक को घिस लेते हैं, तब छिलाई करते हैं।

§८३६—छिलाई के पहलों के नाम आकृति के विचार से कई हैं। पान की आकृति का पहल **पानिया** कहाता है। जिसमें तीन बूँदें और एक डंडी-सी बनती है, उसे **चिड़िया पहल** कहते हैं। यह आकृति में खेल के ताश में बनी हुई चिड़ी की तरह होता है। समानान्तर चतुर्भुज की तरह का पहल **ईंटिया** और फूल-पत्तियों का **फुलपतिया** कहाता है।

सुनारी से सम्बन्धित औजार और अन्य सामान

§८३७—सुनार जिस सोने या चाँदी से गहना बनाना चाहता है, उसे पहले आग पर गलाता है। आग रखने के लिए मिट्टी का एक घड़ा होता है जिसकी गर्दन को अलग कर देते हैं। गर्दन के स्थान पर लोहे की बड़ी-सी एक नली ऊपर की ओर धुआँ निकलने के लिए लगा देते हैं। उस नली को **नरुका** कहते हैं। आग जिस घड़े में जलती है, वह **अँगीठा** कहाता है। अँगीठे में कंडे को तोड़कर ऐसा रखते हैं कि नीचे कुछ खाली जगह बनी रहती है; उस प्रकार से कंडे के टुकड़े रखना **गाली बनाना** कहाता है। एक खास ढँग में रखे हुए कंडे के टुकड़ों की स्थिति **गाली** कही जाती है।

§८३८—मिट्टी की बनी हुई एक प्याली या कटोरी सी चीज **कुठाली** या **घरिया** कहाती है। सुनार घरिया में चाँदी या सोना डालकर उसे गाली में रख देता है और गलाने के लिए **फूँकनी** (पीतल की एक लम्बी नली) में मुँह से फूँक मारते हुए गाली की आग को दहकाता है। वह फूँकनी **मुँहनाल** भी कहाती है।

§८३९—तपाया हुआ अथवा गलाकर शुद्ध किया हुआ सोना लोहे के एक भारी अड्डे पर रक्खा जाता है जिसे **ऐरन** (सं० अधिकरणि) या **निहाई** (सं० निघातिका > निहाइआ > निहाई) कहते हैं। सुनार सोने को ऐरन पर रखकर हथौड़े से पीट-पीटकर बढ़ाता है। सुनार के हथौड़े की चोटें ऐरन पर हलकी-हलकी पड़ती हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

> सौ चोट सुनार की। एक चोट लुहार की ॥[1]

ऐरन के सम्बन्ध में भी लोकोक्ति प्रचलित है—

> ऐरन की चोरी करी, कर्‌यो सुई कौ दान।
> कोठे चढ़िकैं ऊपर देखै, कितनी दूरि बिमान ॥[2]

§८४०—सोने को तपाते समय **बंकनाल** और **चीमटी** नाम के औजार काम आते हैं। एक छोटी-सी पोली नली, जो सिरे पर नीचे की ओर कुछ मुड़ी हुई रहती है, **बंकनाल** (सं० वक्रनलिका) कहाती है। यह फूँक मारने में काम आती है। चीमटी से बड़े आकार का एक औजार **चिमटा** या **चीमटा** कहाता है।

§८४१—काठ का बना हुआ एक गट्टा-सा, जिस पर सुनार लोग जलता हुआ दीपक रखते हैं, **बुत्ता** कहाता है। **दीवट** लम्बाई में बुत्ते से बड़ी होती है और प्रायः लोहे की बनी हुई होती है। दीये (सं० दीपक > दीवअ > दीवा > दीया) की **लोइ** (सं० रोचिस् > लोइ = लौ) में बंकनाल

---

[1] लुहार के हथौड़े की एक ही चोट सुनार के हथौड़े की सौ चोटों के बराबर बैठती है।

[2] जीवन में ऐरन की चोरी की, और दान सुई का ही किया अर्थात् पाप बहुत किये और पुण्य लेशमात्र। फिर भी स्वर्ग जाने के लिए विमान की प्रतीक्षा में है। ऐसे मनुष्य की प्रतीक्षा तो व्यर्थ सिद्ध होगी।

से जब फूँक मारी जाती है, तब अदद को गर्मी पहुँचती है। इस प्रक्रिया को **तपाना** या **सेकना** कहते हैं। भुड़भुड़ का बना हुआ एक गत्ता-सा होता है, जिसे **पीपरा** कहते हैं। सुनार सिके हुए अदद को पीपरे पर रख लेता है।

§८४२—जब सोने अथवा चाँदी में जस्त मिला दी जाती है, तब वह मिश्रण **टाँका** कहाता है। गहने में जहाँ-जहाँ **जुड़ाई** (=जोड़ का काम) होती है, वहाँ-वहाँ टाँका ही लगता है। झाँझन में दो पोली घुंडियाँ सिरों पर बनाई जाती हैं। उन दोनों घुंडियों के बीच में जो पोली और मुड़ी हुई गोलाकार डंडी होती है, उसे **नर** कहते हैं। नर के सिरे पर वे दोनों घुंडियाँ अलग से जोड़ी जाती हैं और उनके जोड़ने में टाँके का ही उपयोग किया जाता है।

§८४३—सुनारों के पास काँसे या लोहे की बनी हुई गिट्टियाँ-सी होती है, जिन पर अनेक प्रकार की फूल पत्तियाँ-सी बनी रहती हैं। उन गिट्टियों को **काँसले, ठप्पे, थप्पे, फाँसे या साँचे** कहते हैं। काँसले और फाँसे में थोड़ा-सा अन्तर होता है। काँसले पर जो गड्ढे बने होते हैं, वे छोटे और गोल होते हैं और फाँसे के गड्ढे बड़े तथा लम्बे होते हैं।

§८४४—काँसे का बना हुआ एक गट्टा-सा ऐसा होता है जिस पर कि छोटे-बड़े गोल गड्ढे और गहरी रेखाएँ बनी रहती हैं। उन्हें **पार** कहते हैं। पारवाले गट्टे को **काँसला** कहते हैं। विशेष रूप से यह काँसला **पारिया काँसला** कहाता है जो अन्य काँसलों से कुछ भिन्न होता है।

§८४५—झाँझनों की भाँति यदि किसी अदद पर गड्ढे और बूँदें बनाई जाती हैं तो उस धातु को **खालना** कहते हैं। खालने का काम **हथौड़िया** और **टुपकन्ना** से होता है। लोहे की एक लम्बी **कील या कलम टुपकन्ना** कहाती है।

§८४६—लोहे का एक टुकड़ा जिसमें छोटे-बड़े कई आकारों के आर-पार छेद होते हैं, जन्त्री कहाता है। इसके छेदों में डालकर सोने या चाँदी के तार खींचे जाते हैं। खिंचनेवाला तार **सड़ाँसी** (सं० संदंशिका) से पड़कर खींचा जाता है।

§८४७—सोने-चाँदी के तार, डेली या पत्तरों को काटनेवाली कैंची **कतुआ या कातिया** कहाती है। बड़ा अदद **छैनी** से कटता है।

§८४८—एक काला पत्थर जिस पर घिसकर सोने की जाँच की जाती है **कसौटी** (सं० कषवट्टिका, प्रा० कसवट्टिआ > कसउट्टी > कसौटी) कहाता है। कसौटी पर बना हुआ घिसावट का निशान **कस** (सं० कष) कहाता है।

§८४९—गलाया हुआ या पिघलाया हुआ सोना पानी के एक बर्तन में डाल दिया जाता है। उस बर्तन को **पढ़ैली** कहते हैं।

एक छोटी-सी **कूँड़ी** (सं० कुण्डिका) जिसमें सेलखरी रहती है **सेलखरेंड़ी** कहाती है।

§८५०—इकवाई के आकार का लोहे का एक औजार जो अँगूठी, छल्ला आदि के बनाने में काम आता है, **संदान** कहाता है।

सोने या टाँके के छोटे-छोटे टुकड़े **फाँस** कहाते हैं। फाँसें **चीमटी** से ही उठाई जाती हैं।

§८५१—चीमटी सुनार का खास औजार है। यह बहुत-से कामों में बरती जाती है। **घूँघुरू, घुँघुरू या घुँगुरू** में दो पल्ले होते हैं। हर एक पल्ला **टोपरी** कहाता है। सुनार चीमटी

से ही टोपरी उठाता है और एक टोपरी से दूसरी टोपरी जोड़कर **घुँघुरू** बना देता है। बजने-वाली पोली गोली **'घुँघुरू'** कहलाती है।

§८५२—चाँदी या सोने की छोटी गोली **रबा** कहाती है। रबा बनाने में चीमटी बहुत सहायता करती है। किसी **बारी**[1] (सं० बल्ली > बाली > बारी; बल्ली हिरण्यम्; काशिका) के तार की नोंक को मोड़कर ऐंठना **'गूँजना'** कहाता है। इस क्रिया को **'गुँजाई'** कहते हैं। गुँजाई भी **चीमटी** से ही होती है। बारी (बाली)[2] के तार की ऐंठन या लपेट **गूँज** कहाती है।

§८५३—चितेरे अपने औजारों से ताँबे के लट्ठों पर कई तरह के निशान बना देते हैं। ये निशान **चिताई** कहाते हैं। चिते हुए लट्ठों पर सोने का पत्तुर (सं० पत्र) लपेटना या चढ़ाना **गाँठ लगाना** कहाता है। चीमटी से कड़े और हँसली आदि में गाँठ लगाई जाती है।

सोना चाँदी गलाने के लिए सुहागे में नौसादर और शोरा मिला दिया जाता है। तब वह सुहागा **पका सुहागा** (पका हुआ सुहागा) कहाता है। यह गहने की जुड़ाई में (जोड़ने में) काम आता है।

§८५४—चम्बल नदी की **बारू** (सं० बालुका > प्रा० बालुआ[3] > बालू > बारू) को **मानिक रेती** कहते हैं। मानिक रेती में तूतिया, शोरा, नौसादर, नमक और रीठा मिलाकर जो चीज तैयार होती है, वह **निखार** कहाती है। निखार से सोना-चाँदी साफ करना **निखारना** कहाता है। 'निखारना', सं० निक्षारण से सम्बन्धित है।

§८५५—सोने-चाँदी के गहनों पर **कीलों** या **कलमों** (कुछ विशेष प्रकार के लोहे के बने हुए औजार जो छिलाई और चिताई में काम आते हैं) से जो रेखाएँ तथा फूल-पत्तियाँ बनाई जाती हैं, वे **परताज** कहाती हैं।

§८५६—सुनारी के काम में आनेवाला एक औजार **रवारी** कहाता है। इस पर दानेदार रेखाएँ बनी रहती हैं, जो **पार** कहाती हैं। सोने-चाँदी की दानेदार पत्ती या तार **रवारी** पर ही बनाया जाता है।

तार का बना हुआ छोटा छल्ला **करी** कहाता है। करी का तार भी **रवारी** पर ही बनता है।

§८५७—काँसे का बना हुआ एक छह पहलू औजार जिस पर अनेक **पारें** (गोल छोटे-बड़े गड्ढे) बनी होती हैं, **लीखनी** कहाता है। तार को लीखनी पर रखकर हथौड़ी से पीटना **लीखना** कहाता है। लीखनी पर सोने-चाँदी के तार खींचकर सुनार उनके **रबे** (छोटी-छोटी गोलियाँ) बना लेता। इस पर गोल और ठोस तथा गोल और पोले रबे बनते हैं।

§८५८—एक लम्बी पत्ती-सी वस्तु जो काँसे की बनी होती है **बहेकी** कहाती है। इस पर

---

[1] बाण ने 'बालिका' शब्द भी 'बारी या बाली' के अर्थ में लिखा है। सं० बालिका > बालिआ > बाली—यह विकास-क्रम भी सम्भव है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : दस हिंदी शब्दों की निरुक्ति, हिन्दी अनुशील वर्ष ४, अंक ३, पृ० ६।

[2] स्त्रियों के बारह आभरण प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक बाली भी है—(१) सीसफूल (२) टीका (३) बाली (४) बेसर (५) कंठसिरी (६) हार (७) कौंधनी (८) नूपुर (९) बाजूबन्द (१०) चूड़ियाँ (११) कंगन (१२) अँगूठी।

[3] डा० एस० एच० केलॉग, ए ग्रामर ऑफ दी हिन्दी-लैंग्वेज, सद् १९५५ ई०, पृ० १२६

गहरी रेखाएँ बनी रहती हैं, जो **पार** कहाती हैं। बट्टेकी कुन्दे और छल्ले **बनाने में काम** आती हैं।

काँसे का एक औजार जिसमें फूल-पत्तियों के साँचे बने रहते हैं **बैगना** कहाता है।

§८५९—पोले और गोल रवा बनाने के लिए जो औजार काम में आता है वह **पगरा** कहाता है। इसमें छोटी-बड़ी अनेक पारें होती हैं। पगरे दो होते हैं जिन्हें **पगरे का जोड़ा** कहते हैं।

§८६०—आजकल एक नये ढंग का पगरा भी काम में आता है जिसे **चकिया पगरा** कहते हैं। इसका आकार चाकी के दोनों पाटों की भाँति का होता है।

काँसे पर बने हुए फूलों तथा पत्तियों आदि के निशान **थप्पे** कहाते हैं।

§८६१—ताँबे या पीतल का बनाहुआ एक खास साँचा होता है जिस पर कानों के बुन्दे और हाथों के दस्तबन्द आदि बनते हैं। इसे **कलाया** कहते हैं। अब कलाये के स्थान पर **डाई** (मशीन द्वारा बना हुआ साँचा या ठप्पा) का काम अधिक होता है। 'डाई' अँगरेजी भाषा का शब्द है।

§८६२—सुनार लोग सुनारी का काम करते समय टाँग को सहारा देने के लिए एक लकड़ी की ऊँची गट्टक-सी टाँग के नीचे लगाते हैं। वह **तकिया या खलौनी** कहाती है।

सुनार के कुछ खास औजार [रेखा-चित्र ५१२ से ५२२ तक]
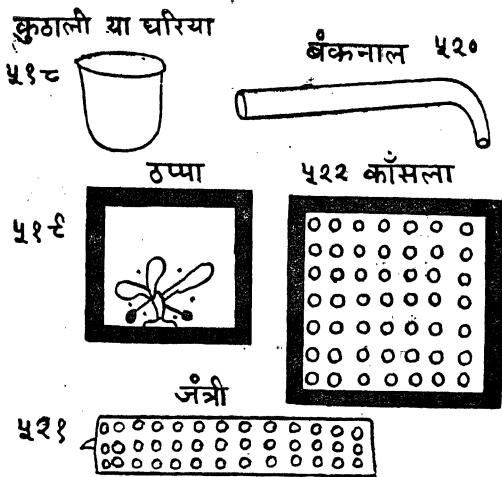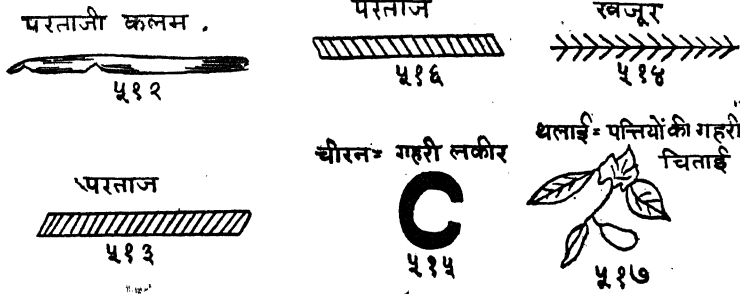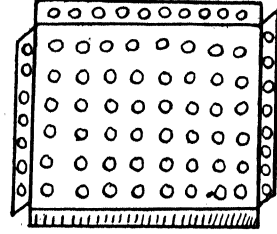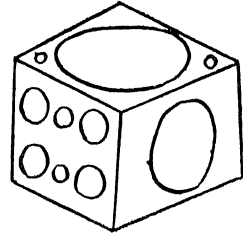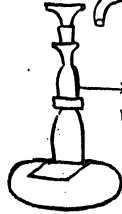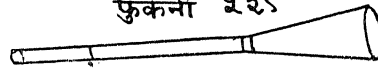
[रेखा-चित्र ५२३ से ५३१ तक]

जड़िये का काम और उसके औज़ार

§८६३—जड़ियों का काम **जड़ाई** कहलाता है। जड़ाई तीन तरह की होती है—(१) कुन्दन की जड़ाई (२) पच्चीकारी (३) जमाई (सैटिंग)।

§८६४—बिलकुल खालिस सोने को **हथौड़िया** या हथौड़िया से **निहाई** (सं० निघातिका, फा० निहाली) पर पीटते हैं। पीटते-पीटते जब चाँदी या सोने का बहुत बारीक पत्तुर (सोने-चाँदी के बरक के समान बारीक पत्तुर) बन जाता है, तब वह **कुन्दन** कहाता है। कुन्दन परम शुद्ध और चमकीला सोना या चाँदी होती है।

कुन्दन की जड़ाई में लाख, डंक, मथैला और कुन्दन काम में आते हैं।

§८६५—सोने या चाँदी का पानी किया हुआ चमकदार पत्ता जो लाख पर जमाया जाता है, **डंक** कहाता है। डंक के ऊपर हाथ से बनाया हुआ देशी नग या शीशा लगाया जाता है। उस शीशे या नग को **मथैला** कहते हैं। मथैलों के चारों ओर चीमटी से चाँदी या सोने के कुन्दन को जड़ देते हैं। इससे मथैला जहाँ का तहाँ जमा रहता है। इसे **कुन्दनिया जड़ाई** (कुन्दन की जड़ाई) कहते हैं।

§८६६—ऊपर बताई हुई विधि में जब कुन्दन की जगह पर मोंम लगा दिया जाता है तो वह **कच्ची जड़ाई** या **पच्चीकारी** कहाती है। 'पच्ची' शब्द का सम्बन्ध सं० प्रत्युप्त से ज्ञात होता है। ऐसी जड़ाई, जिसमें जड़ी जानेवाली वस्तु (सोना, नग या पत्थर) उस वस्तु में बिलकुल समतल कर दी जाती है जिसके अन्दर कि वह जड़ी जाती है, **पच्ची** कहाती है। पच्ची करने के लिए 'पचाना' क्रिया का प्रयोग होता है। तुलसीदास जीने भी इसी अर्थ में पूर्वकालिक क्रिया 'पचि' (=पचाकर) का प्रयोग किया है।[1]

आज-कल की जड़ाई नये ढंग की भी है। इसमें पहले अदद (सोने-चाँदी का गहना) में **बरमा** (एक औजार) से छेद किया जाता है और फिर उस छेद में **नगीने** को जमा दिया जाता है। यह जड़ाई **जमाई** (अँग० में सैटिंग) कहातो है।

जड़ाई के औज़ार

§८६७—नगीना या नग जड़ते समय **गूली** या **कटना** (एक औजार) की नोंक से अदद में गड्ढा करना और सोने या चाँदी का कुछ पत्तर या कण ऊपर को उकसाना **काँटा उठाना** कहाता है। काँटा उठाने में जो औजार काम आता है, वह **काँटिया गूली** (काँटा उठाने की गूली) कहाता है। गूली (हाथ० में) को **कटना** (त० कोल में) भी कहते हैं। एक लकड़ी की गोल गट्टक में पतली-सी कील ठुकी रहती है जो **गुली** या **गूली** कहाती है।

एक कील या कलम जिसे **गुलसम** कहते हैं, वह भी जड़ाई का खास औजार है। **चीमटी** भी जड़ाई में काम आती है।
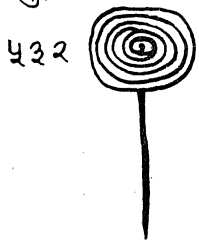
[रेखा-चित्र ५३२ से ५३५ तक]

---
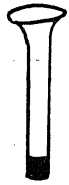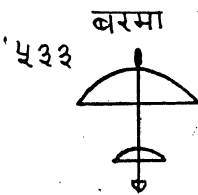
[1] मानिक[1] मरकत[2] कुलिस[3] पिरोजा[4]। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
—तुलसीदास : रामचरितमानस, बालकाण्ड, गीता प्रेस, दो० क्रमा० २८८।२
कोकनद=लाल कमल। इन्दीवर=नीलकमल। श्वेतपत्र=श्वेतकमल। १=लाल रंग का। २=हरे रंग का। ३=श्वेत रंग। ४=हलका नीला।
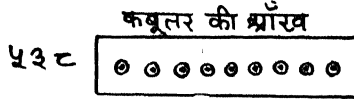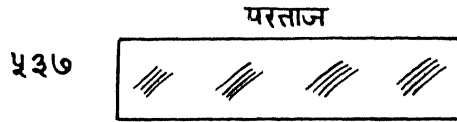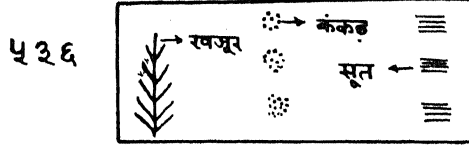
[रेखा-चित्र ५३६ से ५३८ तक]

चिताई के औजारों के नाम

§८६८—चिताई करनेवाले चितेरे को अदद को सुन्दर बनाना पड़ता है। **अड्डी, हथौड़ा, थकिया** या **गदिया** और अनेक तरह की **कलमें** चिताई के खास औजार हैं।

लकड़ी के ऊँचे और भारी तख्ते में निहाई जमा दी जाती है, उसे **अड्डा** या **अड्डी** कहते हैं।

§८६९—राँग की गोल-गोल भारी टिकियाँ **गदिया** या **थकिया** कहाती हैं। चितेरा अपनी चिताई की **कलम** (एक प्रकार की कील जिसकी नोंक पर कुछ खास निशान बने होते हैं) का निशान थकिया पर ठोककर देख लेता है। अभीष्ट कलम की पहचान होने पर वह अदद पर चिताई शुरू कर देता है।

§८७०—लच्छे, बेल, चमक-चूड़ी आदि गहनों को गोलाई में नवाने के लिए एक गोलाईदार लम्बा काठ **सैल** कहाता है।

§८७१—जिन कलमों से चिताई होती हैं, उनके कई नाम हैं।

अदद में रेखा बनाना **आँक गेरना या आँक (सं० अंक) डालना** कहाता है। **चीन्ना** कलम आँक डालने में काम आती है। चिताई के कुछ निशान **खजूर** (सं० खर्जूर), **कंकड़** (सं० कर्कर) और **सूत** (सं० सूत्र) कहे जाते हैं। **चीन्ना** से अदद पर खजूर, कंकड़ और सूत भी बनाये जाते हैं।

[रेखा-चित्र ५३९ से ५४१ तक]

[रेखा-चित्र ५४२ से ५४७ तक]
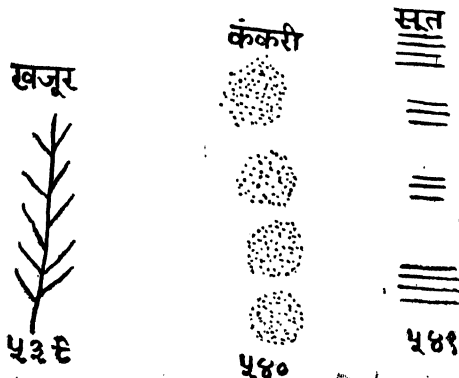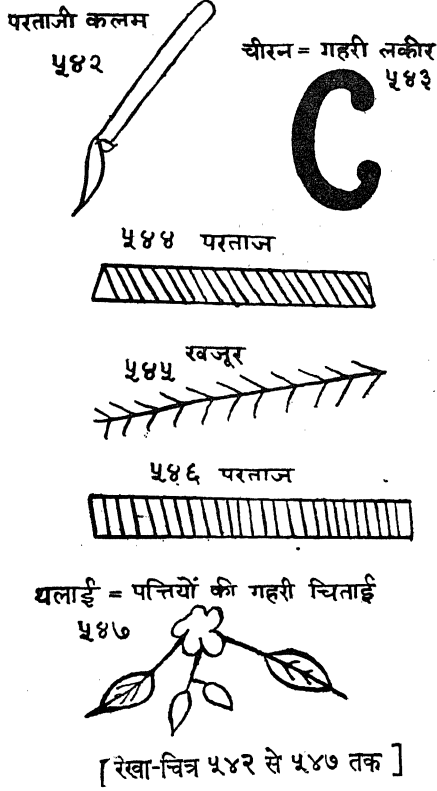
§८७२—चिताई के निशानों में से कुछ **चिरइया, परताज** और **फूल-पत्ती** कहाते हैं। **नाखूनी** नाम की कलम से ताँबे या चाँदी के लट्ठे पर परताज आदि बनाये जाते हैं। चितेरा हथौड़िया से नाखूनी के सिरे पर चोट मारता है और उसकी चोट से अदद पर निशान बन जाता है, क्योंकि कलम की नोंक पर वैसा ही निशान बना होता है।

§८७३—**किर्रा** चिताई की एक कलम का ही नाम है जिसके सिरे पर रेखाएँ बनी रहती हैं। किर्रे का निशान बनाना **'रहाना'** कहाता है। किर्रा नाम की कलम रहाने में काम आती है। निशान को **रहान** कहते हैं। रहान ... ... (ये रहान के निशान हैं)।

§८७४—एक कलम जिसके सिरे पर कबूतर की आँख की तरह का निशान बना रहता है **'गुलसम'** कहाती है।

§८७५—हाथ के खडुओं (कड़ों) में नाके या शेर के मुँह बने रहते हैं। उन्हें **गाहामुखी** या **नाहरमुखी** कहते हैं। **जमीनदाबनी** नाम की कलम चहरा बनाने के काम आती है।

§८७६—चिताई का एक निशान **लीलफरो** कहाता है। लीलफरो के काम में आनेवाली एक खास कलम **'टुपकन्ना'** कहाती है। टुपकन्ना घुंडी बनाने में काम आता है।

§८७७—हँसली चीतने में और करेली थलने में **थीया** काम आता है। करेली पर थीयों के निशान बनाने के लिए **'थलना'** क्रिया का प्रयोग होता है। √'थल्' धातु 'गोल करना' अर्थ में आती है।

§८७८—किसी खास कील (कलम) से अदद में गोलाईदार **घाँटन** (गड्ढेदार रेखा) बनायी जाती है, उसे **ककोरा** कहते हैं। जिस कील (कलम) से ककोरा बनाया जाता है, उसे **ककोरिया कील** या **ककोरिया कलम** कहते हैं।

§८७९—हँसली में बीच का कोनेदार हिस्सा **चौकी** कहाता है। **'चौफुलिया'** नाम की कलम चौकी चीतने में काम आती है।

§८८०—अदद में गहरी रेखाएँ बनाना **कली काटना** कहाता है। उन रेखाओं को **कलियाँ** कहते हैं। कलियाँ **'कली काटनी'** या **'कली कटन्नी** कलम से बनाई जाती हैं।

§८८१—फूल-पत्ती की चिताई में काम आनेवाली कलम **कढ़न्ना** कहाती है।

§८८२—झाँझनों पर गड्ढे और उठी हुई बिन्दियाँ सी बनाई जाती हैं। इस प्रकार की चिताई **पानदार पतरैमा** से की जाती है।

§८८३—मामूली मोटे डोरे की मोटाई की दूरी पर खिंची हुई रेखाएँ **सूत** कहाती हैं। सूत के निशान लगाने के लिए **राहना** क्रिया का प्रयोग होता है। सूत राहने में जो कलम काम आती है, उसे **सूतराहनी** कहते हैं। राहना क्रिया में धातु √'राह्' है।

चितेरे के कुछ औज़ार—[रेखा-चित्र ५४८ से ५५३ तक]
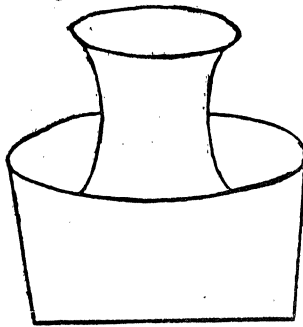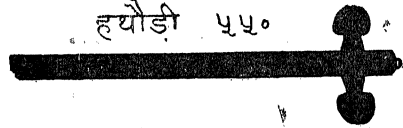
§८८४—इसी तरह की और कलमें भी होती हैं जिनमें **सुम्मी, रहमा, खाली, चीन्ना** ादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

मीनाकारी का सामान और औज़ार

§८८५—शीशे और सोने-चाँदी पर किया हुआ रंगीन काम **मीना** (फा० मीना) हाता है। मीने का काम **मीनाकारी** और मीना करनेवाला **मीनागर** या **मीनाकार** कहाता है।

§८८६—मीनागर के पास कई तरह के रंग होते हैं जो गहनों को सजाने के काम में आते ैं। मीना करने से पहले मीनागर रंग को **खरल** (पत्थर की बनी हुई एक कटोरी या प्याले की प्राकृति की वस्तु) में डालकर **मूसरी** (सं० मुसलिका) से घोटते हैं। ठीक हो जाने पर उससे ीना करते हैं।

§८८७—पहले गहने पर औजारों से खोदकर फूल पत्तियाँ और **हरफ** (अ० हर्फ़=अक्षर) बनाये जाते हैं। फिर खुदी हुई जगहों में **सलाई** (सं० शालाका) से रंग भरते हैं। रंगों को चमकाने के लिए काँच की बारीक तीलियों से बनी हुई **कुची** या **कूची** (सं० कूर्चिका) फिराते हैं।

§८८८—मसाले की बनी हुई एक सिल्ली होती है। जिसे **सान** (सं० शाण) कहते हैं। यह मीना को इकसार करने में काम आती है। मीना किये हुए अदद को उस सान पर घिसते हैं ताकि रंग इकसार हो जाए और चमकने लगे।

§८८९—जिस **कील** या **कलम** (सं० कलम) से हरफ खोदे जाते हैं, वह **'टिकोरा'** कहाती है। फूल-पत्ती खोदने में जो कलम काम आती है उसे **गूली** कहते हैं। सादा ढंग से **जमीन** (फा० ज़मीन=गहने का धरातल) खोदने का औज़ार **'चौखुंटी'** कहाता है।

§८९०—एक लकड़ी की गट्टक-सी जिसमें दो हिस्से बने रहते हैं **मुठिया** (सं० मुष्टिका>मुट्ठिआ>मुट्ठिअ>मुट्ठी>लघु-वाचक-मुठिया) कहाती है। इसमें अँगूठी को दबाकर मीने का काम किया जाता है।
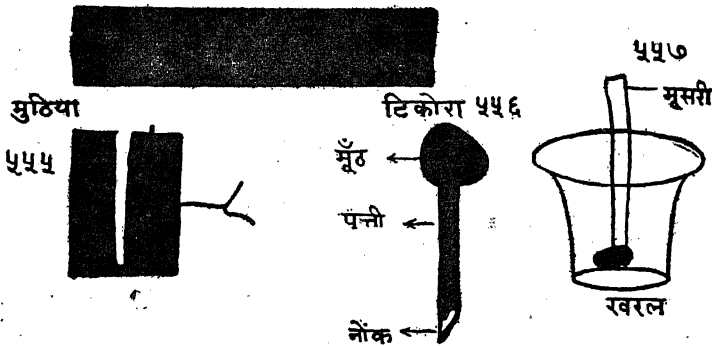
मीनाकारी का सामान और औजार [रेखा-चित्र ५५४ से ५५७ तक]

ढलाई के औज़ार

§८९१—सोने-चाँदी को गलाकर (पिघलाकर) किसी खास शक्ल में ढालनेवाला **ढलइया** कहाता है।

ढलइयों की भट्टी को धौंकनी से धौंकनेवाला **धौंकिया** कहाता है। धौंकनी के बीच के भाग को **चूड़िया** कहते हैं। ऊपरी सिरा जहाँ बाँस की दो फच्चटें लगी रहती हैं और जो हवा भरने में सहायता देता है **धौंमुआँ** कहाता है। नीचे के सिरे पर लोहे की मोटी नली लगी रहती है जिसमें से हवा निकलकर भट्टी में आती है उस नली को **सुरमा** कहते हैं।

ढलइयों के पास खास तरह की मिट्टी होती है जो साँचे बनाने में काम आती है। लम्बे या गोल लोहे के दो छोटे पहिये से होते हैं जो **पल्ले** या **फर्द** कहाते हैं। उन दोनों पल्लों को मिलाकर लोहे की चौरस पट्टी पर रख लेते हैं। उसे **पटरी** या **पलेट** कहते हैं। मिले हुए दोनों पल्ले **दर्जा** कहाते हैं। दर्जों में ढलइया ठोक-ठोककर **साँचिया मिट्टी** (साँचे बनाने की मिट्टी) भर लेता है। दर्जे की मिट्टी खुरचने में एक लोहे का टुकड़ा काम आता है जिसे **खुरचनी** कहते हैं।

मिट्टी को चौरस करके **बेलन** (सं० वेलन = लोहे का एक छोटा डण्डा) से दबा दिया जाता है।

§८९२—मिट्टी के ऊपर सलाई लगाई जाती है। उसी के पास वे गहने भी गाड़ दिये जाते हैं जिनके नमूनों पर और भी ढलवाने होते हैं। वे गहने **अदद** कहाते हैं। दोनों पल्लों को मिलाकर मिट्टी पर दाब लगाई जाती है ताकि अदद का निशान मिट्टी की **जमीन** (धरातल) पर साफ़-साफ़ आ जाए। इसके बाद पल्लों को अलग कर लेते हैं और गड़े हुए अदद को सलाई से धीरे-धीरे पीटते जाते हैं और ढीला करके उस स्थान से उठा लेते हैं। सलाई से अदद को पीटना या हिलाना **मठारना** कहाता है। मठारने के उपरान्त अदद निकाल लिये जाते हैं और उनके निशान शेष रह जाते हैं।

§८९३—साँचिया मिट्टी पर जो सलाई सबसे पहले जमाई जाती है, वह **'भेंट काटनी'** कहाती है। सलाई का निशान **'भेंट'** कहाता है।

§८९४—दर्जों में पिघली हुई चाँदी भर दी जाती है और वह भेंटों में भरकर साँचे के अनुसार ढल जाती है। कोंधनी के पक्खे, बटन, छल्ली आदि ढलाई द्वारा ही तैयार होते हैं।

धौंकिया भट्टी पर **घरिया** या **कुठाली** (मिट्टी की बनी हुई प्याली-सी) में सोना-चाँदी पिघलाता है। घरिया बनाने का लकड़ी का एक छोटा, भारी और मोटा डंडा-सा **मील** कहाता है। इसकी शक्ल नहरों या सड़कों पर गड़े हुए मीलों की-सी होती है।

भट्टी में आग से जले हुए कोयले कंकड़ जैसे बन जाते हैं; ये **खंगड़** कहलाते हैं। भट्टी में चिपटे हुए खंगड़ जिस लोहे के औजार से काटे जाते हैं, वह **'गैदारा'** कहाता है। गैदारा चौड़ी नोंक का लोहे का एक खूँटा-सा होता है।

§८९५—ढलइयों पर बाल आरी होती है जिसमें लोहे का एक तार लगा रहता है। उस तार से छल्ली-कड़ी आदि के बन्द **सूलाख** (सूराख) खोले जाते हैं। अदद की खाँच साफ करने में भी **बाल आरी** काम आती है। बाल आरी का तार **बाल** (सं० बाल = केस) की भाँति पतला होता

है। वही बाल काटने का भी काम करता है। संभवतः इसीलिए उस औजार को **बालआरी** (बालआरा, हि० स्त्री० बालआरी) कहते हैं।
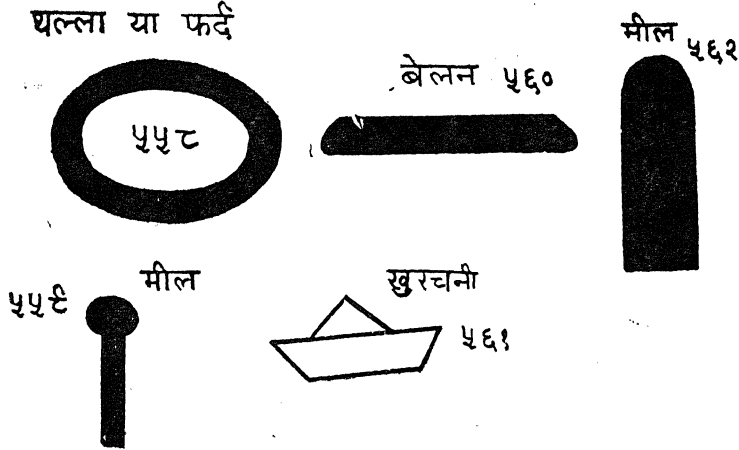
[रेखा-चित्र ५५८ से ५६२ तक]

न्यारिये के औजार

§८६६—न्यारिया जिस भट्टी पर सोना-चाँदी आदि धातुएँ गलाता है, वह **अथैनी** या **अड्डी** कहाती है। घरिया या कुठाली में धातु गलाई जाती है। गली हुई धातु को एक वस्तु में उँड़ेल लेते हैं जो **रेजा** (फा० रेज़ा) कहाती है। रेजा आकार में लम्बा और गहरा होता है।

रेजों में धातु ठंडी होकर लम्बी सलाई-सी या गुल्ली-सी बन जाती है। उसे **रैनी** या **काँबी** (सं० कम्बिका) कहते हैं।
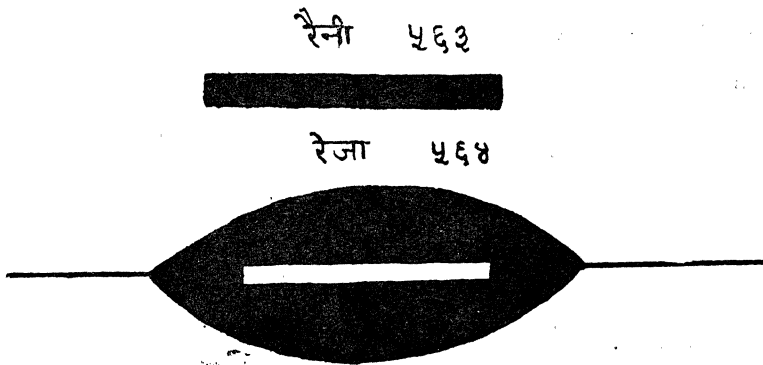
[रेखा-चित्र ५६३ से ५६४ तक]

§८६७—न्यारिये को जब सोना, चाँदी और ताँबा मिली हुई धातु में से सोना अलग करना होता है तो वह उसमें चाँदी और मिलाता है और उसे गलाकर **नाँद** (सं० नन्दा) के पानी में ऐसे ढंग से डालता है कि सोने की गोलियाँ अलग हो जाती हैं। वे सोने के **रवे** कहाती हैं। त० हाथरस में रवों को **रवाल** भी कहते हैं।

§८६८—न्यारिया जिस धातु को निकालना चाहता है, उससे भिन्न धातु को **पानी** बना देता है। पानी से मतलब गलाकर बहुत पतले रूप में करने से है। यदि चाँदी-सोने का मिला हुआ

ढिम्मा (गोला) है तो सोना निकालने के लिए न्यारिया चाँदी को पानी बनाकर कपड़े में छान देगा और सोना ऊपर रह जायगा। यह काम **न्यारियागीरी** कहाता है।

——

अध्याय ५

लुहार

§८९९—लोहे के औजार तथा लोहे की अन्य वस्तुएँ बनानेवाला शिल्पकार **लुहार** (सं० लौहकार>लोहआर>लोहअर>लोहार>लुहार) कहाता है। किसान के फाले, खुरपे, फावड़े, गँड़ासे और दराँत आदि जब ठीक तरह से काम नहीं करते, तब वे **मौंथरे**, **खुट्टे** या **खुट्टल** कहाते हैं। किसान के उपर्युक्त औजारो को **लौखर** कहते हैं। मोंथरे लौखरों को प्रायः लुहार ही **पैना** (तेज) करता है। तेज बनाने की प्रक्रिया को **पानी-चढ़ाना**, **पानी धरना**, **धार धरना**, **चाँड़ना** या **खोटना** कहते हैं।

§९००—वह स्थान या कोठा, जहाँ बैठकर लुहार अपना काम करता है, **ल्हौसार** या **ल्हौसारी** (सं० लौहशाला>लोहसार>ल्हौसार) कहाता है। लुहार लोहे की वस्तुओं या औजारों आदि को जिस भट्टी या चूल्हे में गर्म करता है, उसे भी **ल्हौसारी** कहते हैं। ल्हौसारी के पास पानी से भरी हुई एक छोटी-सी कुण्डी बनी रहती है, जिसके पानी में लुहार गर्म **लौखर** (औजार) को बुझाकर ठण्डा करता है। उस कुण्डी को **जलहली** या **जल्हैली** कहते हैं। जलहली का पानी **ल्हौसारिया पानी** कहाता है। **टोटिकहाई बइयरबानयाँ** (टोनों, टमनों और टोटकों में पूर्ण विश्वास रखनेवाली और उन्हें प्रयोग में लानेवाली स्त्रियाँ) ल्हौसारिया पानी को अपने घर भी कभी-कभी ले आती हैं और बच्चों की नजर-गुजर में काम लाती हैं।

§९०१—ठोस और भारी लोहे की एक मुढ़ी-सी धरती में गड़ी रहती है जिसे **ऐरन** (सं० अधिकरणि) या **निहाई** (सं० निघातिका>निहाइआ>निहाइअ>निहाई) कहते हैं। यही कोल में **ऐन्नि**, इगलास में **अहेन्नि** और खैर में **अहेरन** कहाती है। छोटी और हल्की निहाई को **बट्टा** कहते हैं। जायसी ने 'निहाई' के लिए 'निहाऊ'[१] शब्द का उल्लेख किया है। आर-पार छेद-दार बहुत छोटी निहाई **बोरी** कहाती है। यह लोहे में सुम्मी से छेद करते समय काम आती है।

बहुत भारी और बड़ा हथौड़ा, जिससे निहाई पर रक्खी हुई लोहे की वस्तु पीटी जाती है, **घन** कहाता है।

§९०२—चमड़े का बना हुआ एक थैला-सा होता है, जिससे लुहार भट्टी में हवा पहुँचाते हैं; उसे **धौंकनी** कहते हैं। बड़े आकार की धौंकनी **धौंकना** कहाती है। भट्टी में हवा पहुँचाने की प्रक्रिया को **धौंकन** कहते हैं। हवा पहुँचाने के लिए '**धौंकना**' क्रिया का प्रयोग होता है।

चरखे (फा० चर्ख=घूमनेवाला एक यंत्र-विशेष) की भाँति घूमनेवाला एक यंत्र, जिससे भट्टी में हवा पहुँचती है और **कौले** (कोयले) दहकते हैं, **पंखा** कहाता है।

---

[१] "परा खरग जनु परा निहाऊ।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत ६३६।३

§६०३—भट्टी के मुँह के आगे ईंट या लोहे का एक टुकड़ा रक्खा रहता है ताकि भट्टी की **आँच** (सं० अर्चिस्) की **झर** (लपट) लुहार के शरीर से न लगे। उस टुकड़े को **ओटा** कहते हैं। कोयले कुरेदने में काम आनेवाली लोहे की एक लम्बी सलाई-सी, जो सिरे पर कुछ मुड़ी हुई होती है, **अँकुरिया** या **अँकुरी** कहाती है।
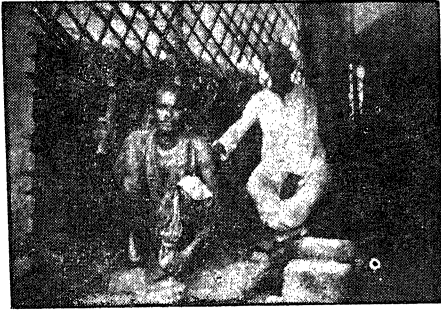
ल्हौसार में काम करता हुआ लुहार [चित्र २६]

धौंकनी के विभिन्न अंगों के नाम

§६०४—धौंकनी के ऊपर का भाग, जहाँ से हवा धौंकनी में घुसती है, **धौंका** कहाता है। धौंके के किनारों पर दोनों ओर बाँस की दो फच्चटें लगी रहती हैं और उन पर चमड़े के **फँसने** (पटारों के गोल फन्दे जिनमें लुहार अपना हाथ डालकर धौंकनी को कुछ ऊपर उठाता और फिर नीचे दबाता है) बँधे रहते हैं। फँसनों सहित बाँस की दोनों खपच्चें **हतिया** या **हतेटी** कहाती हैं। धौंके से नीचे का भाग जिसमें सिकुड़नें-सी पड़ी रहती हैं, **चूड़िआ** या **चूड़िया** कहाता है। चूड़िये से नीचे का हिस्सा पेट और पेट से आगे का **म्हौंड़ा** कहाता है। म्हौड़े में लोहे की मोटी नली लगी रहती है जिसे भट्टी की **मुहारी** (भट्टी के गोल छेद) में लगा देते हैं। उस नली को **सुरमी** या **सुरमा** (सं० सूर्मी > सुरमी) कहते हैं। पाणिनि के सूत्र 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (अष्टा० ४।१।४१) की व्याख्या करते हुए काशिकाकार ने कुछ शब्दों का उल्लेख किया है, जिनमें एक शब्द 'सूर्म'[1] भी है। इसी से स्त्रीलिंग 'सूर्मी'[2] बनता है। 'सूर्मि' वैदिक साहित्य का एक पुराना शब्द था, जो यास्क कृत निरुक्त में भी प्रयुक्त हुआ, लुहार या मोची की बोली का 'सुम्मी' शब्द भी उसी से बना है।

औजारों पर पानी चढ़ाना

§६०५—लुहार प्रायः किसान के दराँत, खुरपी, फाबड़े, गँड़ासे और फाले को भट्टी में देकर आग की तरह कर लेता है। फिर उन्हें निकालकर निहाई पर रखता है। **सँड़ासे** (सं० सन्दंश) से लौखर को पकड़कर हथौड़े से उसको पीटता है। गर्म करने को **चाँड़ना** (सं० धातु √चण्ड्) और पीटने को **खोटना** कहते हैं। फाला (लोहे की भारी और मोटी वस्तु जो हल में लगाई जाती है। उसी से जमीन जुतती है) जब चाँड़ा और खोटा जाता है तब वह कहता है—

---

[1] वामन जयादित्य, काशिका, चौ० सं० सी० पुस्तका० ११४२, पृ० २४१।

[2] "अनुचरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।"—ऋक्० ८।६६।१२

सूर्म्यं सुषिरामिवेति—यास्क : निरुक्त, नैगमकाण्ड, ४।२७

"सब भइयनु ते बोल्यौ फारौ। सुनि लेउ मैं हूँ सब में भारौ ॥
अपनौं मूँड़ु अगिनि में दैंउँ। समनक चोट घननु की लैंउँ ॥[1]
(त० कोल के पाली गाँव से प्राप्त)

§६०६—किसी औज़ार की धार तेज करने के लिए जब उसको किनारी पीटी जाती है तब उस क्रिया को **धार धरना** कहते हैं। जब गर्म औज़ार ल्हौसारी के पानी में डुबा दिया जाता है तब वह क्रिया **पानी चढ़ाना** कहाती है। औज़ार को तेज करने के अर्थ में सामान्यतः उक्त चारों क्रियाओं में से 'लुहार लोग किसी एक क्रिया का ही प्रयोग कर देते हैं। पानी चढ़ जाने पर **मौंथरा** (खोटा या खुट्टल=जो पैना न हो) औज़ार तेज हो जाता है।

§६०७—किसी औज़ार के **बेंट** (दस्ता) पर जो लोहे आदि किसी धातु का गोल छल्ला चढ़ाया जाता है उसे **स्याम** कहते हैं। स्याम चढ़ाने के लिए लोहे की एक छोटी मुद्दी-सी होती है जिसमें गावदुम-सी नोंक निकली रहती है। उस मुद्दी को **इकबाई** कहते हैं।
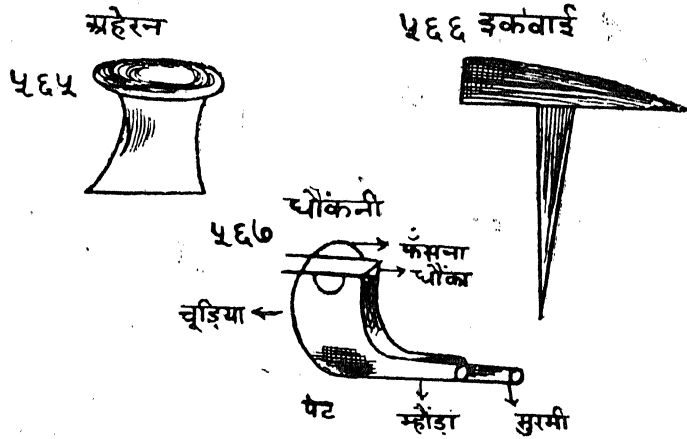
[रेखा-चित्र ५६५ से ५६७ तक]

§६०८—**ढिमरी** या **ढिबरी** को कसने का अथवा घुमाने का लोहे का एक औज़ार **पाना** कहाता है। यदि लुहार को किसी पतली कील के सिरे पर **फुलिया** (टोपी या घुंडी) बनानी होती है तो छोटी-सी एक निहाई जिसके बीच में गड्ढा होता है काम में लाता है; उसे **छपरौना** कहते हैं। छपरौने के छेद में कील का सिरा रखकर ऊपर से चोट मारते हैं तो फूल-सा बन जाता है। चूड़ीदार डंडा-सा **काबला** कहाता है। वह लोहे का होता है। चौपहलू या छिपहलू ढिमरी उसके सिरे पर लगाई जाती है। एक प्रकार का बड़ा सड़ाँसा **जम्बूर** कहाता है।

चोभे और कीलों के नाम

§६०९—चोभा कील से बहुत छोटा और पतला होता है। उसके सिरे को **फुल्ला** या **टिप्पा** कहते हैं। जिस बड़ी कील का फुल्ला बताशे की आकृति का होता है, उसे **बताशे-दार कील** कहते हैं। ये कीलें प्रायः लकड़ी के तख्त में जड़ी जाती हैं। फुल्ले से नीचे का भाग **डँड़िया**

---

[1] फाला अपने सब भाइयों से कहने लगा कि तुम सब सुनो—मैं सबसे अधिक शक्तिमान् और गम्भीर हूँ, क्योंकि अपना सिर लुहार की भट्टी की आग में देता हूँ और फिर सामने छाती पर घनों की चोट सहता हूँ।

कहाता है। कुछ कीलें **गोल डँड़िये** और चोहपलू डँड़िये की होती हैं। **छोटी कीलें** ही प्रायः **गोल डँड़िये** की होती हैं। जिस कील का फुल्ला गोल गाँठ-सा होता है वह **ढिमियाँ** कहाती है। यदि ढिमियाँ कील के फुल्ले पर छोटे-छोटे काँटे-से उठे रहते हैं तो उसे **गोखरू कील** कहते हैं। कमान की आकृति की **कील** जिसके दोनों सिरे नुकीले होते हैं **करबा** कहाती है। ऐसी कीलें प्रायः हल की पनिहारी, पहिये की पुट्ठियों के जोड़ और गरी के चक्कों पर लगती हैं।
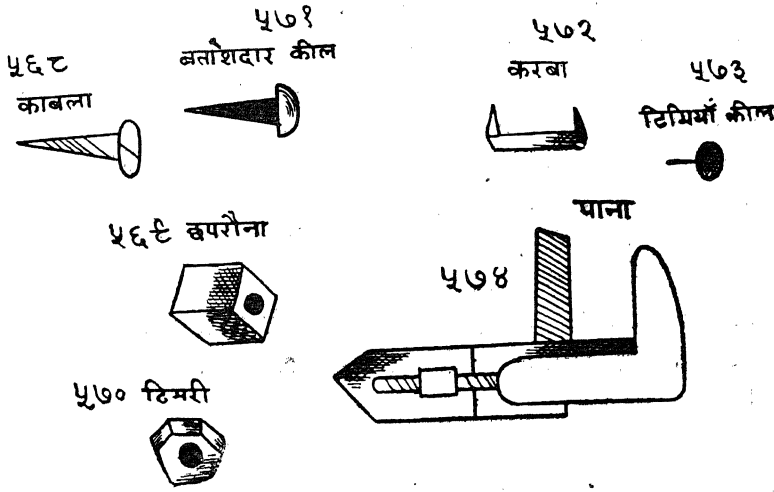
[रेखा-चित्र ५६८ से ५७४ तक]

अध्याय ६

भड़भूजा

§६१०—अनाज के दाने भूजनवाला व्यक्ति **भरभूजा** या **भड़भूजा** कहाता है। बालू और आग से भरा हुआ पोला छतदार चबूतरा-सा जिसमें से गर्म बालू निकालकर के भड़भूजा अनाज के दानों को भूनता है **भार** या **भाड़** (सं० भ्राष्ट्र)[१] कहाता है। प्राकृत कोश पा० स० म० (पृष्ठ ८०३) में 'भाड़' शब्द को देशी लिखा है।

भाड़ के हिस्सों के नाम

§६११—भाड़ आमतौर से दो भागों में बँटा हुआ होता है। दोनों हिस्सों के बीच में एक दीवाल-सी लगी रहती है जिसे **मँझैटी** (सं० मध्य > प्रा० मज्झ + हि० मिट्टी) या **मैंड़ना** कहते हैं। मैंड़ने से पीछे का भाग **हड़वाई** कहाता है और आगे के भाग को **पेटा** कहते हैं। हड़वाई में पत्तों की

---

१ "क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रः—अमर० २।९।३०

आग धधकती रहती है और उसकी गर्मी से पेटे में भरी हुई बालू गर्म हो जाती है। हड़वाई और पेटे को छत से पाट दिया जाता है। पेटे के ऊपर भाड़ की छत में एक सूराख होता है जिसमें होकर बालू पेटे में पहुँच जाती है। उस सूराख को **बुक्का** या **बूका** कहते हैं। हड़वाई में एक ऐसी जगह बनी रहती है जहाँ **झोंकिया** (पत्ते झोंककर भाड़ गर्म करनेवाला) आम के सूखे पत्तों का झोंका लगाता है। उस जगह को **झोंकुड़ा** या **झकूँड़ा** कहते हैं। झकूँड़े के पास एक गड्ढा बना रहता है जिसमें मिट्टी का एक बर्तन भी गाड़ दिया जाता है। उस गड्ढे को **रखेंड़ा** (सं० रक्षा + सं० भाण्डक) कहते हैं। आगे की ओर भाड़ में एक बड़ा वर्गाकार या आयताकार सूराख-सा बना रहता है जिसमें होकर बालू बाहर आती है। उस सूराख को **म्हौड़ा** कहते हैं। म्हौड़े के नीचे **कुंडी** (एक गड्ढा) होती है जहाँ मिट्टी या लोहे का एक बर्तन रक्खा जाता है। उस बर्तन को **खपरा** कहते हैं। खपरे में ही दाने रहते हैं जो गर्म बालू से भुनते हैं। कुंडी के बराबर दाहिनी ओर को एक गड्ढा और होता है जिसमें छानी हुई बालू इकट्ठी होती रहती है। उस गड्ढे को **पाल** कहते हैं। पाल में से बालू को निकालकर फिर बुक्के में होकर पेटे में ही डाल दिया जाता है। जहाँ भाड़ बनाया जाता है, वह स्थान **भड़सार** (सं० भ्राष्ट्रशाला) कहाता है। झोंका अधिक लगने पर आग की लपटें जब हड़वाई की छत को छूने लगती हैं तो उन्हें **डीक, लुक्क** या **झर** कहते हैं। भाड़ के पास खड़े होने पर जो आग की गर्मी लगती है, वह **भभका** कहाती है।

अनाज भूनने में काम आनेवाले औज़ार

§६१२—खपरे के दानों को भूनने के लिए भाड़ के पेटे में से गर्म बालू जिस औज़ार से बाहर निकालते हैं, वह **कौंचा** कहाता है। कौंचे में लोहे की डण्डी के आगे की कुछ खमदार चौड़ी पत्ती **फन** कहाती है, क्योंकि उसकी आकृति साँप के फन से मिलती-जुलती होती है। बालू छानने की बड़ी छलनी **चलना** कहाती है। अनाज के दानों को जिस बर्तन में भरकर खपरे में डालते हैं वह **तसला** कहाता है। तसले में लकड़ी का एक छोटा डण्डा भी लगा रहता है जिसे **बेंट** या **हत्ता** कहते हैं। तसले में ढाई सेर के लगभग अनाज आता है। एक बार में लगभग ढाई सेर अनाज भूना जाता है। इस परिमाण को **एक घान** कहते हैं। खपरे में बालू डालकर अनाज के दानों को जब कौंचा चलाते हुए भूना जाता जाता है, तब वे दाने उछलते हैं और आवाज़ करते हैं। उस तरह भूनने की क्रिया **भरभराना** कहाती है। लकड़ी का वह मोटा डण्डा जिससे **ओखरे** (बड़ी ओखली) में अनाज छरा जाता है, **मूसर** (सं० मुसल प्रा०मुसल >मुसर>मूसर) कहाता है।

भुने हुए अनाजों के नाम

§६१३—चनों के दाने जब भरभराये जाते हैं तब उनमें से कुछ ठीक तरह भुनकर खिल जाते हैं। ठीक तरह खिल जाना **तिरना** कहाता है। तिरे हुए चने **खिल्ला** कहाते हैं। जो तिरते नहीं उन्हें **ठुड्डी** कहते हैं। कोई भी अनाज जब भुन जाता है और चबाने के काम आता है, तब वह **चबैना** कहाता है। खिल्ले चनों के ऊपर जब खाँड़ चढ़ा दी जाती है तब वे **चनौरी** कहाते हैं। ज्वार के भुने हुए दाने जो खूब तिर गये हों **फूला** कहाते हैं। यदि उन फूलों को खाँड़ में पाग दिया जाय तो उसे **गप्पल**[1] कहते हैं। मक्का के भुने हुए दाने **परमल** कहाते हैं। जब चावलों को इस तरह भूना जाय कि वे कुरकुरे बन जायँ, तब उन्हें **मुरमुरा** या **चिरबा** कहते हैं। एक खास तरह से चावलों को भूनने पर उनकी **खीलें** बन जाती हैं, खिल्ले चनों या चिरबों में गुड़ मिलाकर जो गोल-गोल टिकियाँ बनाई जाती हैं वे **चँदियाँ** कहाती हैं।

---

[1] जिला अलीगढ़ की एक तहसील टप्पल है। यहाँ की गप्पल मिठाई प्रसिद्ध है।

§६१४—भुने हुए गेहूँ **भरैरा** कहाते हैं। भुने हुए जौत्रों को **बौरी, घाट या घाटि** कहते हैं। भुने हुए जौ या गेहुँओं में जब गुड़ मिला दिया जाता है तब वह मिश्रण **गुड़धानी** कहाता है। 'धाना'[1] शब्द संस्कृत में भुने हुए जौत्रों के लिए आता है। यजुर्वेद (अ० १६।मं० २२) में भी यह शब्द भुने हुए जौ के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[2] भड़भूजा अपनी जो मजदूरी लेता है, वह **भुँजाई** कहाती है। गाँवों में भड़भूजे के पास जितना अनाज भुनने के लिए आता है उसमें से वह कुछ अपनी भुँजाई में निकाल लेता है, उतनी मात्रा को **खौंची** कहते हैं। लगभग पाँचवें हिस्से की खोंची ली जाती है। यदि ५ सेर अनाज भुनने के लिए आता है तो भड़भूजा उसमें से लगभग १ सेर खोंची में निकाल लेता है।
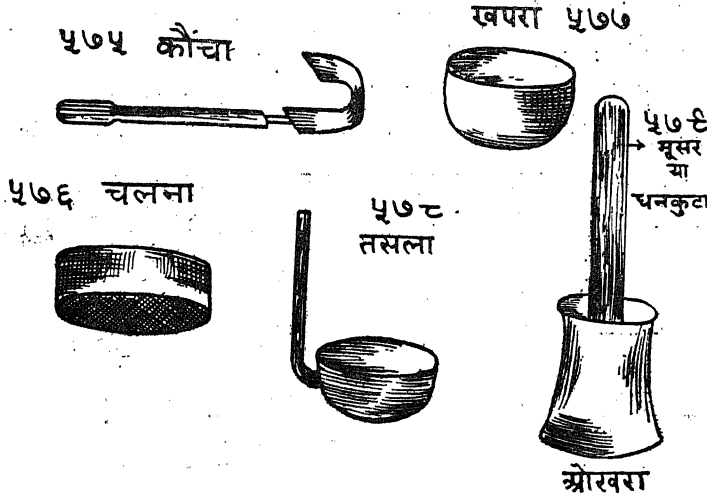
भड़भूजे के औजार और बर्तन—[रेखाचित्र ५७५ से ५७६ तक]

अध्याय ७

हलवाई

§६१५—मिठाई और पूड़ी-पकवान आदि बनानेवाला और बेचनेवाला व्यक्ति **हलवाई** (अ० हलवा+ई) कहाता है। हलवाई अपना पकवान **कढ़ाह** (सं० कटाह=बड़ी कढ़ाई), **करहैया** (छोटी कढ़ाई) और **तई** (सं० तापिका=गोलाईदार चौरस पेंदे की लोहे की बनी हुई एक वस्तु जिसमें हलवाई प्रायः जलेबियाँ सेकते हैं) में सेकता है। तई में कढ़ाई की भाँति उठाने के लिए दो गोल कुन्दे लगे रहते हैं जिन्हें कान कहते हैं। तई के सम्बन्ध में यह पहेली प्रचलित है—

---

[1] "धाना भ्रष्टयवे स्त्रियः।"

—अमर० २।६।४७

[2] "धानाना ँ[रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः।"

—यजु०, १६।२२

चाची कैं द्वै कान चचा कैं कानईंना।
चाची स्यानी बड़ी चचा कछू जानैंईं ना ॥[१]

हलवाईगीरी में काम आनेवाले बर्तनों को सामूहिक रूप में **बारदाना** कहते हैं।

बारदाने की वस्तुओं के नाम

§६१६—लोहे की डाँड़ी और छँटना सहित बनी हुई एक वस्तु, जिसमें लड्डुओं की बूँदियाँ झाड़ी जाती हैं, **झरैरी** कहाती है। कहीं इसे **पौइनी** भी कहते हैं। लकड़ी का बना हुआ एक औजार जो बूरा कूटने में काम आता है **मुसद्दी** कहाता है। लकड़ी का एक चौखटा-सा, जिसमें सेब छाँटने के लिए लोहे का छँटना लगा रहता है, **ठेकी** (अत० में) या **चट्टू** (कोल में) कहाता है। हलवाई मिठाई के थाल को सरकंडों के बने हुए एक अड्डे पर रखता है जिसे **तरौना** कहते हैं। पल्टा की भाँति का एक औजार जो खोआ बनाने में काम आता है **कौंचा** कहाता है। लोहे की गोल पत्ती जो पहिये की तरह होती है **मंझा** या **चक्कर** कहाती है। मंझा भट्टा के ऊपर रक्खा जाता है और फिर उस पर कढ़ाई रक्खी जाती है। तरौने पर रक्खे हुए थाल में मिठाई रखकर जब सड़क पर बिकती है तब वह **खौमचा** (फा० ख़्वान्चह्) कहाती है।
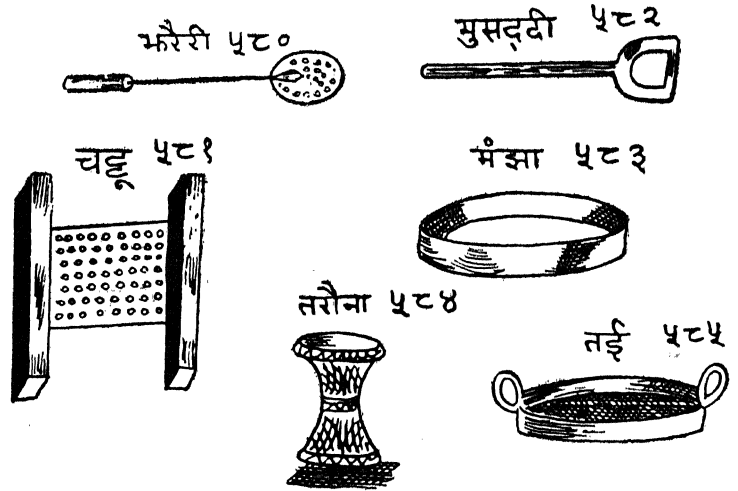
[रेखा-चित्र ५८० से ५८५ तक]

§६१७—लोहे की चद्दर का एक टुकड़ा जिसकी बनावट कुछ-कुछ सूप की तरह होती है **झाबा** कहाता है। हलवाई जब बूरे की पुड़िया में बूरा **कुरेता है** (डालता है), तब झाबा काम आता है। बूरे के सम्बन्ध में लोकोक्ति है—बूरौ और घीउ। बूढ़े कौ जीउ ॥[२] हलवाई बूरे को पस, लप और खौंच में भी भरकर झाबे में डालता है। एक हाथ में जितना बूरा आता है, उसे लप-

---

[१] चाची (तई) में दो कान लगे रहते हैं लेकिन चाचा (तवा) बिना कानों के हैं। चाची बहुत चतुर हैं लेकिन चाचा कुछ जानते ही नहीं।
उक्त लोकोक्ति निम्नांकित रूप में भी प्रचलित है—
चाची कैं द्वै कान चाचा कैं कानईं ना।
चाची चतुर सुजान चचा कछू जानैंईं ना ॥

[२] घी और बूरा बुड्ढे मनुष्य के लिए जीवन (प्राण) है।

भर कहते हैं। लप की उँगलियों को जब हथेली की ओर आधा मोड़ लिया जाता है, तब उसे **खौंच** कहते हैं। खौंच में लप से कम बूरा आता है। दोनों हाथों की लपों को मिलाकर जो बूरा दिया जाता है, उसे **पसभर** कहते हैं। **पस** (सं० प्रसृति) में लप से दूना बूरा आता है। गाँवों की **पाँतों** (सं० पंक्ति=दावत) में प्रायः **लपभरऊ** (लप भरा हुआ) बूरा परसा जाता है। काठ की बेंटदार गट्टी में दस-बारह कीलें ठुकी रहती हैं; यह औजार **कौंछिया** कहाता है। इससे पेठा गोदा जाता है। लौके के गूदे पर से जब लम्बी-लम्बी फलियाँ-सी उतारी जाती हैं तब वे हलवाई की बोली में **कपूरकंद के लच्छे** कहाती हैं। लोहे या पीतल का एक औजार **पंजा** कहाता है जिससे कपूरकंद के लच्छे उतारे जाते हैं। पीतल का एक बर्तन जिसका पेट सँकोंच और मुँह बड़ा होता है **पाटिया** कहाता है। यह लोटेनुमा होता है और दूध ठंडा करने में काम आता है। कूँड़े में से दही काटने का एक छोटा सी वस्तु **बिलिया** कहाती है।
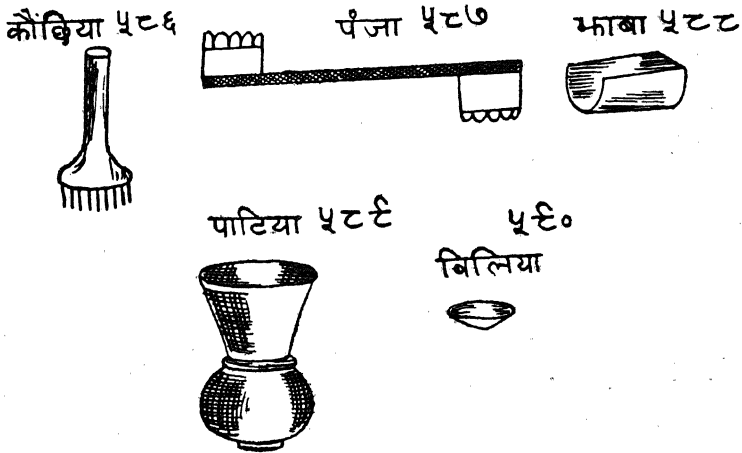
[रेखा-चित्र ५८६ से ५९० तक]

जलेबियाँ बनाना

§६१८—जलेबियाँ खाँड़ की जिस चाशनी में डुबाई जाती हैं वह **बक्खर** कहाती है। मैदा का बासी होना **खमीर उठना** कहाता है। खमीर उठ आने पर ही जलेबी बनती हैं। तई में जलेबी का छत्ता **छन्ने** (छेददार कपड़ा) में मैदा भरकर बनाया जाता है। जलेबियों को **तकुई** (पतली और लम्बी सराई) से उठाते हैं। बक्खर की गर्मी **भाइ** या **भै** कहाती है। भाइ निकल जाने के बाद ही जलेबियाँ बक्खर में डुबाई जाती हैं। जब बक्खर ऊपर ही रहे अन्दर न पहुँचे तब वह जलेबी **फोकसी** कहाती है। जिसमें बक्खर अन्दर भिद गया हो उस जलेबी को **बखरीली** कहते हैं।

—

अध्याय ८

राज

§६१६—मकान बनानेवाला कारीगर **राज** या **मिस्तिरी** (पुर्त० मिस्त्री) कहाता है। प्रायः मकान ईंटों के बनते हैं लेकिन किसान अपनी मड़इया **गौंद** (गीली मिट्टी का लौंदा जिससे दीवाल बनाते और छोपते हैं) से भी बनाता है। इस तरह बनाई हुई दीवाल **गौंदरी भींत** कहाती है। जब राज की एक **मूँद** (मुश्त) मजदूरी और निश्चित समय मकान बनाने के लिए तै कर दिया जाता है तब वह **ठेका** कहाता है। जब **रोजन्दारी** (प्रतिदिन) की निश्चित मजदूरी पर काम कराया जाता है तो उसे **अमानी** का काम कहते हैं। मकान बनने से पहले उसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा चौहद्दी निश्चित करने के लिए जो निशान लगाकर मामूली खुदाई होती है, उसे **दागबेल** कहते हैं। सड़कों और बम्बों की पटरियाँ बनने से पहले **दागबेल** ही लगती है। दागबेल की सीमाओं के मध्य-वर्ती धरातल को जब इकसार किया जाता है, तब वह क्रिया **दरेसी** कहाती है। हाथ में लिए हुए काम को पूरा करने के अर्थ में **'सिल्टाना'** क्रिया प्रचलित है। मकान बनाने के लिये सबसे पहले उसकी **बुन्याद** (बुनियाद) खुदती है, इसे **नीम** (नींव) भी कहते हैं। सतह पर एक खास ढङ्ग में ईंटों को सम-धरातल से जमाना **रदाचिनना** कहाता है। खुदी हुई नींव में पहले एक सूखा रदा चिना जाता है और फिर उसके ऊपर **गारे** (पानी में गलाई हुई मिट्टी) की चिनाई में रदे लगते जाते हैं। गारे को **गिलाया** (फा० गिलाबा = गिल = मिट्टी + आब = पानी) या **तगार** भी कहते हैं। जिस परात या तसले में गिलाये को भरकर मजदूर राज के पास पहुँचाता है वह परात भी उस समय **तगार** (पह० तगार = पीपेनुमा बर्तन, पायकुली का शिलालेख १।२४६)[1] कहाती है। गिलाये के चारों ओर मेंड़ बनाई जाती है ताकि पानी बाहर न जा सके। उस मेंड़ को **डौरी, डौर** या **डौल** कहते हैं। रदे की चिनाई में यदि कोई ईंट सतह से नीचे हो जाती है तो उसे **धसकन** या **ईंट धसकना** कहते हैं। जो टूटी-फूटी ईंटें नींव में भरी जाती हैं वे **भराब** कहाती हैं। नींव की चिनाई का ऊपरी रदा **फड़** कहाता है। यहीं से दीवाल शुरू होती है। मकान की कुर्सी ऊँची करने के लिए जो मिट्टी भरी जाती है, वह **भर्त** कहाती है। चूने में ईंट-पत्थर की चिनाई **रेखता** कहाती है।

§६२०—पुराने तथा टूटे हुए मकान की सोटें, किवाड़ें और मिट्टी आदि **मलबा** कहाती है और नये मकान में लगनेवाला नया सामान **अमला** कहाता है। मकान की **पौरी** (सदर दरवाजा) के आगे की जगह को **अगवारौ** कहते हैं। पीछे की दीवाल से पीछे की जगह **पिछवारौ** कहाती है। यदि कोई मकान किसी मकान के **पाखे** (सदर दरवाजे से दाईं या बाईं ओर की दीवाल) से चिपटा हुआ हो तो वह **चिपटैमा** कहाता है। मकान की वह छत जो आवाज करने पर गूँजती है **बदलगज** या **गुँजेरी** कहाती है। दीवाल में से ईंटों के टूट जाने या निकल जाने पर जो बड़ा-सा छेद हो जाता है उसे **भंबका** या **भंभकला** कहते हैं।

§६२१—मकान की दीवाल **रद्दों** (रदों) की तहों से ही बनती है। गिलाये की दो तहों के बीच में लगी हुई ईंटों की एक तह **रद्दा** कहाती है। दीवालों की चिनाई साधारणतया दो तरह की होती है—**(१) खरंजा की चिनाई, (२) टोड़े-पट्टी की चिनाई।**

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५४, अंक २-३, पृ० १००।

§६२२—खरंजे की चिनाई में ईंटें खड़ा रक्खी जाती हैं इसमें सवा ईंट लगती है। **टोड़े-पट्टी** की चिनाई में एक पाँती सीधी अर्थात् आधारवत् लगती है और दूसरी उसके पीछे लम्बवत् लगाई जाती है। एक दीवाल से दूसरी दीवाल सटाने के लिए ईंटों की खाँचेंसी बाहर की ओर निकाली जाती हैं; वे **डाँड़े** कहाते हैं। दो अथवा चार बल्लियों में जो बाँस चिनाई के लिए बाँध लिये जाते हैं वे **बरगे** या **अस्ताजे** कहाते हैं। बल्लियाँ, बरगे और बाँसों की जाली मिलकर **पाढ़** कहाती है। दीवाल जब ऊँची हो जाती है तब पाढ़ बाँधकर ही चिनाई होती है। दीवाल की ऊँचाई समाप्त होने पर टोड़ों पर **छावन** जमाया जाता है। तब उसे **छज्जा** कहते हैं। छज्जे के नीचे दीवाल में बाहर की ओर निकली हुई एक पट्टी-सी बनाई जाती है जो **गरदना** कहाती है। दरवाजे या जँगले के ऊपर और गरदने के नीचे महरावदार पट्टी-सी दीवाल में बनाई जाती है जिसे **बहादरी** (सं० भद्रिका) कहते हैं।

५६१
गरदना और बहादरी
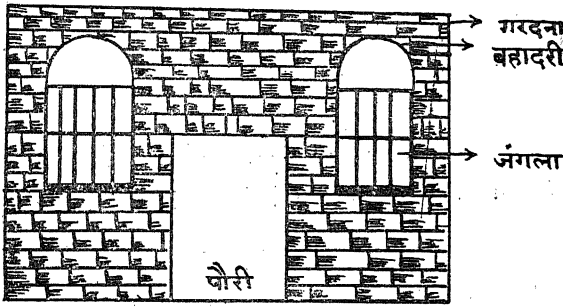
[रेखा-चित्र ५६१]

§६२३—बरामदे के द्वारों के ऊपर भी बहादरी बनाई जाती है। दो बहादरियों को मिलाने वाली **पटरी** के नीचे उठी हुई त्रिभुजाकार जगह **चँगेल** कहाती है। छत के नीचे दीवालों पर जो काम किया जाता है वह **तलैटी** कहाता है।

५६२
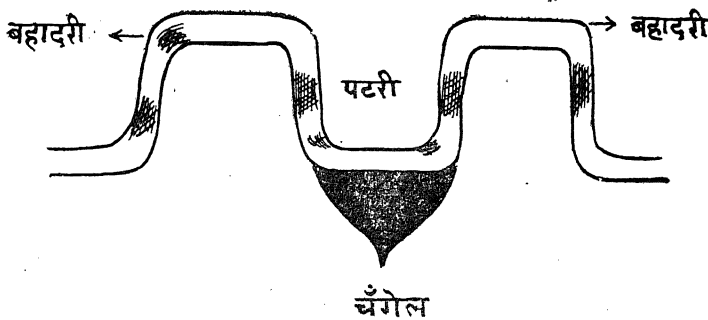
[रेखा-चित्र ५६२]

§६२४—आँगन में ईंटों का फर्श **खरंजा** कहाता है। मकान का कोई **कोना**[1] (संस्कृत

---

[1] वैदिक साहित्य में मुड़े हुए हाथोंवाले के अर्थ में 'कणारु' शब्द आया है। मुड़े हुए के अर्थ में 'क़रिग' शब्द भी है।

कुणि से कोण>कोना) यदि रास्ते की ओर निकला हुआ हो तो गाड़ी आदि की टक्कर से उसके टूट जाने का अन्देशा रहता है। अतः उसके पास एक पत्थर गाड़ दिया जाता है। उस पत्थर को **नुकड़ेटा** या **कछोटा** कहते हैं। गारे की चिनाई के बाद दीवालों की ईंटों के जोड़ों में चूना या सीमेंट भरना **टीप करना** कहाता है। दीवाल या छत की डाट बनाने के लिए उसके नीचे ईंट, लकड़ी आदि का एक अस्थायी ढाँचा तैयार किया जाता है जिसे **ढूला** कहते हैं। ढूले में दो प्रकार से ईंटें लगाई जाती हैं—(१) **चट्टा** (२) **भैंगर**। चट्टे में तले-ऊपर जोड़े से खड़ी हुई और भैंगर में पट्ट ईंटें जमाई जाती हैं। छतके ऊपर जो सामान डाला जाता है वह **लदाब** कहाता है।
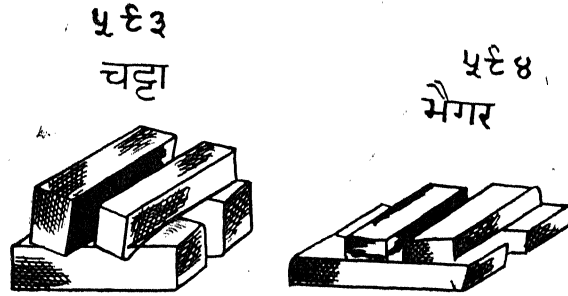
[रेखा-चित्र ५६३, ५६४]

ढूले में सामान भरने पर भी कुछ जगह यदि खाली रह जाती है तो उसे **झिरी** कहते हैं।

राजगीरी के औज़ार

§६२५—राज के औज़ारों में मुख्य और परमावश्यक दो हैं—(१) **कन्नी** (२) **बसूली**।

दस्तेदार लोहे का एक औज़ार **कन्नी** कहाता है, जिससे गिलाया, चूना या सीमेंट लगाया जाता और फैलाया जाता है। बहुत बड़ी कन्नी **'नहला'** (सं० नख>नह + ला = नख की-सी आकृतिवाला) कहलाती है। ईंटें तोड़ने और छीलने में काम आनेवाला एक औज़ार **बसूली** कहाता है। छोटी कन्नी जिससे टीप भरी जाती हैं **मँझोला** कहाती है। लकड़ी का एक औज़ार जिसकी आकृति कन्नी की भाँति होती है **थापी** या **थपिया** कहाता है। इससे फर्श या दीवाल
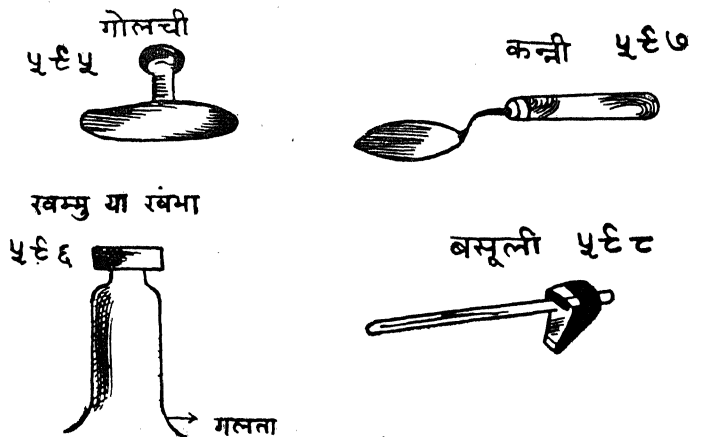
[रेखा-चित्र ५६५ से ५६८ तक]

पर लगा हुआ चूना पीटा जाता है। मूठदार गोल लकड़ी का औज़ार जिससे खम्भे का गल्ता चिकनाया जाता है **गोलची** कहाता है।

चौरसाई में काम आनेवाले लोहे और लकड़ी के औज़ारों के नाम

§६२६—फर्श या दीवाल पर लगा हुआ चूना या सीमेंट जिस चौड़ी पटरी से चौरस किया जाता है वह **फंटी, चौरसा** या **चीप** (सादा० में) कहाती है। मोटी और चौड़ी फंटी **पाटा** कहाती है। प्रायः फंटी की लम्बाई ढाई हाथ और चौड़ाई चार अंगुल होती है।

दो फुट लम्बाई की चौड़ी और मोटी पटरी जिसके बीच में ऊपर की ओर पकड़ने के लिए हत्ता लगा रहता है **जैबन्द** कहाती है। छोटे आकार का जैबन्द **गुटका** कहाता है। मँझोले आकार का जैबन्द **समादा** कहाता है। लोहे के आयताकार टुकड़े के बीच में लकड़ी का एक हत्ता लगा रहता है जिसे **गुरमाला** कहते हैं। लकड़ी का एक औज़ार **कोवा** कहाता है जिससे चूना चौरस किया जाता है। गुटका, समादा, जैबन्द और गुरमाला से पलस्तर चौरस किया जाता है और चिकनाया भी जाता है।
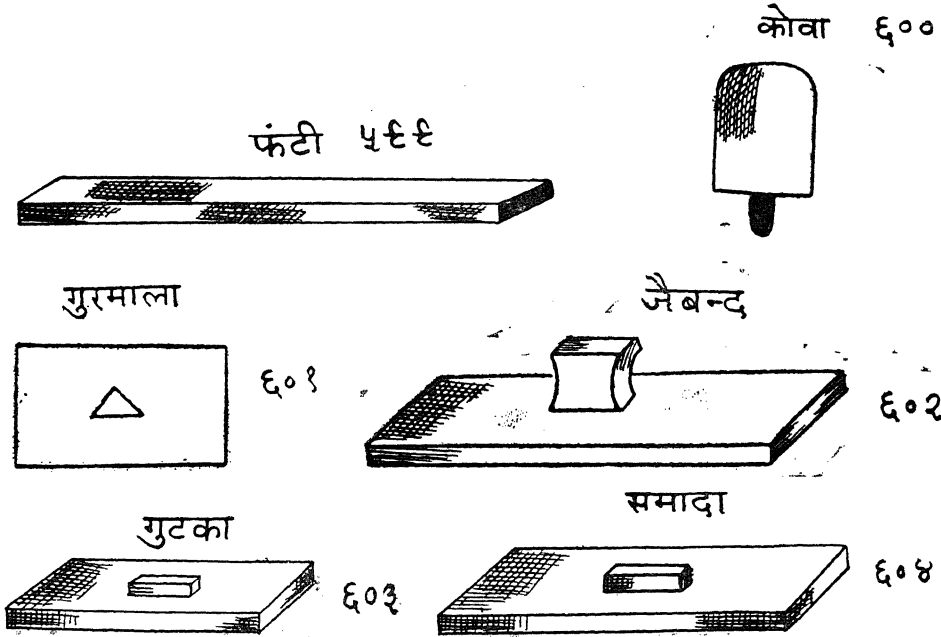
[रेखा-चित्र ५९९ से ६०४ तक]

फर्श की सतह और दीवाल की सीध देखने के औज़ार

§६२७—फर्श की समतलता को **पँसार** कहते हैं। 'पँसार' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए अँगरेजी में 'लैविल' शब्द है। पँसार देखने के लिए एक यन्त्र राजों के पास होता है जिसकी लम्बाई लगभग चार इंच और चौड़ाई दो इंच होती है। इसके बीच में छोटा-सा शीशा लगा रहता है जिसके भीतर पारा भरा रहता है। उस यंत्र को **रेबल** या **पँसार-पारा** कहते हैं। रेबल अँग० लैविल का बिगड़ा रूप है। राजों की पुरानी रीति **पनसार** या **पन्सार** की थी। पानी के बहाव से जमीन को इकसार करना **पनसार** कहाता था। दीवाल की सीध और कोने देखने के लिए

गुनिया होती है। यह लोहे की दो पत्तियों की बनी होती है। ये पत्तियाँ समकोण पर जुड़ी रहती हैं। दीवाल की चिनाई सीधी होती रहे, इस दृष्टि से रद्दे के किनारे पर एक लम्बी सुतली लगा ली जाती है जिसे **सूत** कहते हैं। लकड़ी का एक गज होता है जिस पर **तसू** (सं० त्रिशूक>तिसूअ>तसू=लगभग सवा इंच की दूरी का निशान) के निशान बने रहते हैं। उस गज को **राजनपाना** कहते हैं। एक तसू इमारती गज के २४वें भाग के बराबर होता है।

§६२८—लोहे या पीतल के एक छोटे-से लट्टू के कुन्दे में एक डोरी बँधी रहती है। उस डोरी में छोटी-सी लकड़ी की चिप्पी पड़ी रहती है। राजों की बोली में लट्टू को **लबा**, डोरी को सूत और चिप्पी को **कैंड़ा** कहते हैं। तीनों चीजें सामूहिक रूप में **सुहावल, सौला** या **सावल** (सं० साधुल>साहुल>सावल) कहाती हैं। इससे दीवाल की चिनाई की साधुता अर्थात् सीधापन देखा जाता है। सावल नामक यंत्र के ही उपर्युक्त तीन अंग हैं। इस यंत्र से दीवाल की ऊँचाई की सीध देखी जाती है।
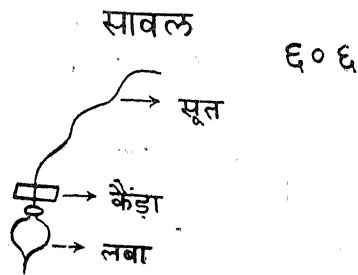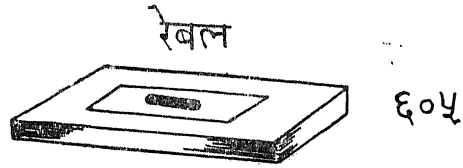
[रेखा-चित्र ६०५, ६०६]

मकान के दरवाजे और डाटें

§६२९—गोल डाट का द्वार **गुलम्बरी द्वार** कहाता है। ठोस और बरगदार दरवाजे को **महराबी** कहते हैं। महराबी की अपेक्षा कुछ नीचे को दबा हुआ दरवाजा जिसकी आकृति बादाम से मिलती-जुलती होती है **बदामी** कहाता है।

डाटों के नाम

(१) अद्धा (२) अद्धिया गोल (३) आमनी चुक्का या आँवनी चुग्गा (४) उथली (५) गल्ता (६) गोल चाबिया (७) घुड़नाल (८) घोकिया (९) चुग्गा या चुक्का (१०) तेजाई (११) नुक्किया (१२) पटली (१३) पानिया (१४) बंगरी, नागफनी या उस्तरी (१५) बदामी (१६) माल।

§६३०—**अद्धा** या गोल डाट की आकृति अर्द्ध वृत्त की तरह होती है। राजों का कहना है कि यह डाट बहुत **नीमन** (मजबूत) और **मातबर** (अ० मौतबिर=विश्वस्त) होती है।

अद्धा या गोल डाट
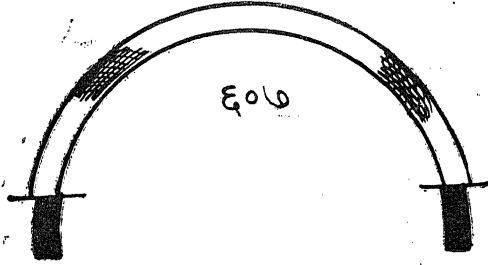
[रेखा-चित्र ६०७]

§६३१—डाट लगाने के समय द्वार के ऊपर कभी-कभी दीवाल में ईंटों की नोंकें निकाली जाती हैं जिन्हें **कन्नस** कहते हैं। डाट के ऊपर का नुकीला भाग **चुक्का** कहाता है। आम की शक्ल में उभरी हुई चुक्केदार डाट **आमनी चुक्का** कहाती है। इसमें कभी-कभी बरग भी बनाये जाते 'चुक्का' डाट के ऊपर दीवाल में जब कुछ चित्र काट दिये जाते हैं, तब उसे **चितेल चुक्का** कहते हैं। यही प्राचीन 'चित्र तोरण[1]' था।
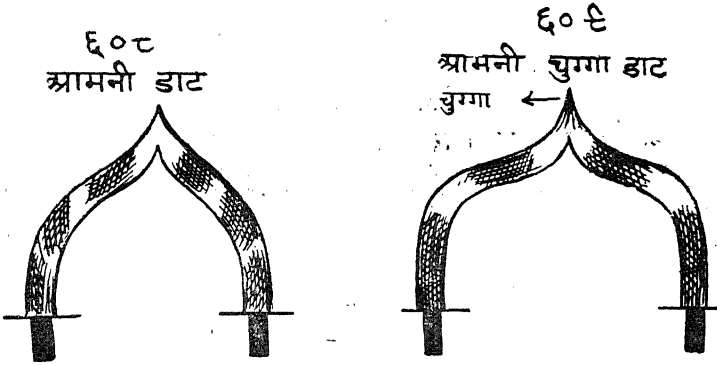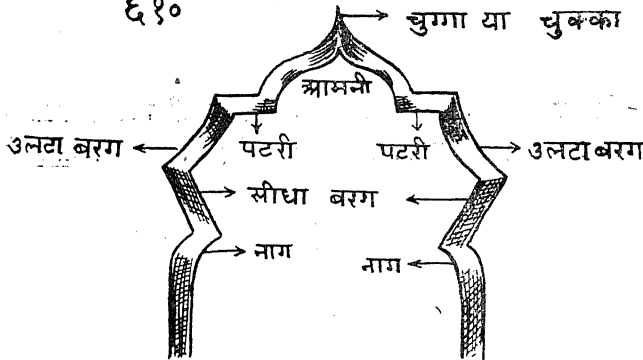
[रेखा-चित्र ६०८ से ६१० तक]

§६३२—उथली डाट को **गुम्बदी डाट** भी कहते हैं। यह प्रायः मकान के सदर दरवाजे पर दीवाल से कुछ **अगमनी ढाल** (आगे की ओर) बनायी जाती है। उथली डाट का दरवाजा

[1] ऐनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ० १७४।

ताजदार होता है। जो दीवाल में ही अर्द्ध गोलाकार रूप में बनाई जाती है, वह **खस्सी डाट** कहाती है।
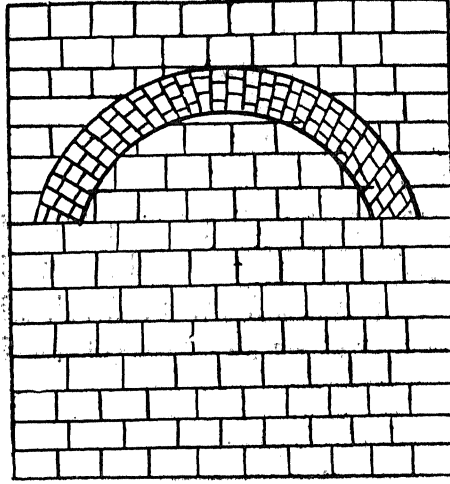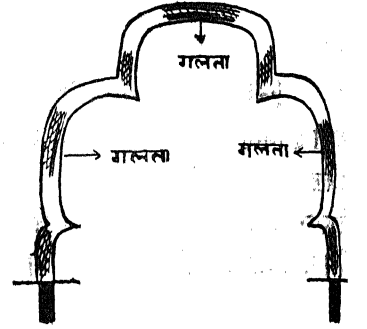
[रेखाचित्र ६११ से ६१२ तक]

§६३३—अर्द्ध अण्डाकार पट्टी पर छोटी-छोटी आयताकार खड़ी पट्टियाँ सी लगी रहती हैं जो **चावी** कहाती हैं। इस डाट को **गोलचाविया** कहते हैं। इसे ही **कामनीदार डाट** भी कहते हैं।
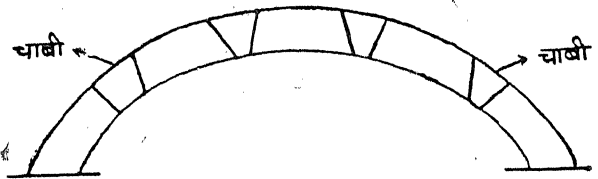
[रेखा-चित्र ६१३]

§६३४—जिस डाट की गोलाईवाली पट्टी में लुम्ब सहित चँगेलें निकली रहती है वह **घुड़नाल** कहाती है। इस डाट का घुमाव और आकृति घोड़े की नाल की भाँति होती है।
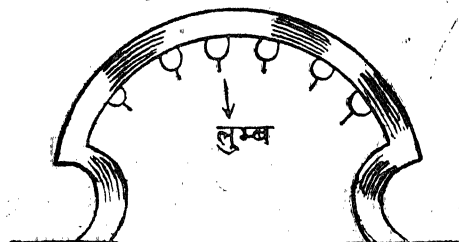
[रेखा-चित्र ६१४]

§६३५—सीधी पट्टी के नीचे जो गोलाईदार खम (टेढ़ापन) होती है उसे **घोक** कहते हैं। यह दोनों ओर होती है। जिस डाट में घोकें होती हैं, वह **घोकदार** या **घोकिया** डाट कहाती है।
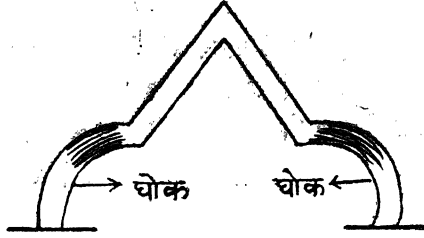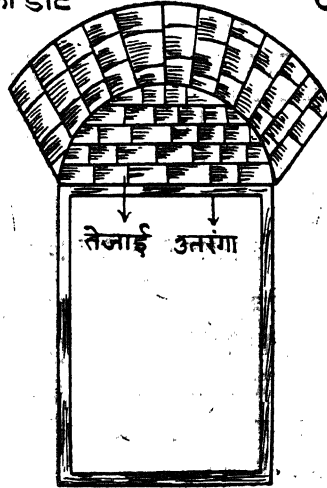
[रेखा-चित्र ६१५ से ६१६ तक]

§६३६—प्रायः **उतरंगे** (द्वार की ऊपरी चौखट) के ऊपर लगभग ६ इंच की **तेजाई** (उतरंगे के मध्य में से उठाया गया लम्ब) में पहले ईंटें आधारवत् चिनी जाती हैं। फिर उसके ऊपर आधी गोलाई में सीधे रुख में ईंटों की डाट चिनी जाती है। उसे **तेजाई की डाट** कहते
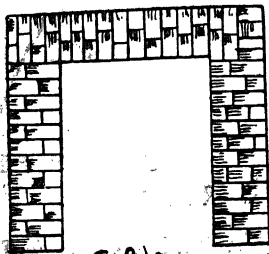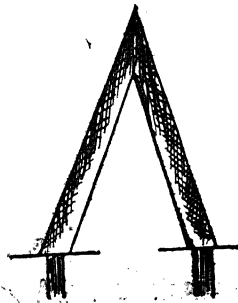
[रेखा-चित्र ६१७ से ६१८ तक]

हैं। इस डाट की ईंटें दीवाल की ईंटों में ही मिली रहती हैं, बाहर की ओर पट्टी-सी नहीं निकलती। इसे **खस्सी डाट** भी कहते हैं। इसी ढंग पर एक **चौरस डाट** भी होती है।

§६३७—जिन दरवाजों की आकृति नुकीली और त्रिभुजाकार होती है, उनमें **नुकिया डाट** लगती है।

§६३८—उतरंगे या **दासे** (पत्थर की पटिया जो दो खम्भों के उपर सरदल या उतरंगे का काम देती है) के ऊपर एक पटली-सी बनाई जाती है। वह **पटली की डाट** कहाती है। यदि पटली की जगह पान की आकृति बना दी जाय तो वह **पानिया डाट** कहाती है।
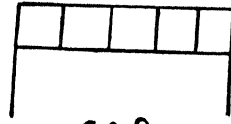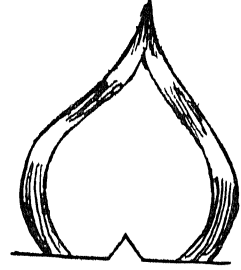
[रेखा-चित्र ६१६ से ६२० तक]

§६३९—**बंगरीदार डाट** बहुत कारीगरी से भरी हुई होती हैं। इसे **उस्तरी** या **नागफनी** भी कहते हैं। इसकी **कन्नसों** (ईंटों की नोंकें) में **एड़**, **मुटकी** और **नाग** दोनों ओर बनाने पड़ते हैं। आकार में एड़ मोटी और मुटकी पतली होती है। बंगरी में एक किस्म **तिबेगरी** भी होती है। बंगरीदार डाट **कखुल्लेदार** या **प्यालेदार** या **शाहजहाँनी डाट** भी कहाती है। संभवतः यह शाहजहाँ के काल से आरम्भ हुई थी।
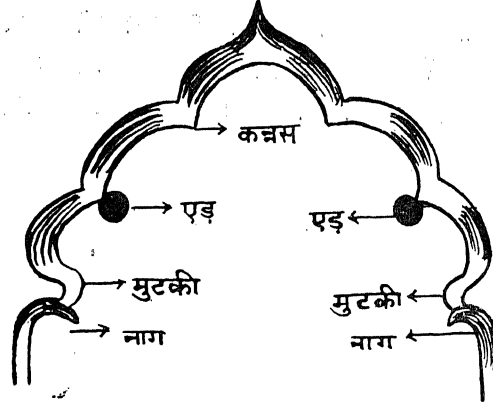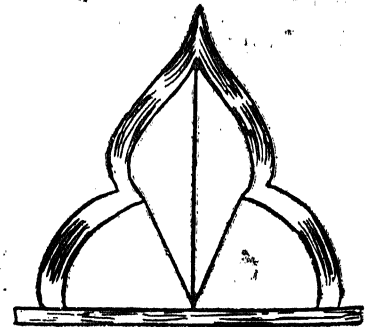
[रेखा-चित्र ६२१ से ६२२ तक]

§६४०—आमनी से मिलती-जुलती **बदामी** और अद्धा से मिलती हुई **माल** डाट होती है।

§६४१—मन्दिरों का ऊपरी भाग प्रायः तीन तरह का होता है—(१) **गोलिया बुर्ज**,

(२) **मौजपाती गोलिया बुर्ज**, (३) **सिखरिया बुर्ज**। फूल-पत्तियाँ राजों की बोली में **मौजपात** कहाती हैं। बुर्ज की ऊपरी नोंक **थूपी** या **कलसी** कहाती है।
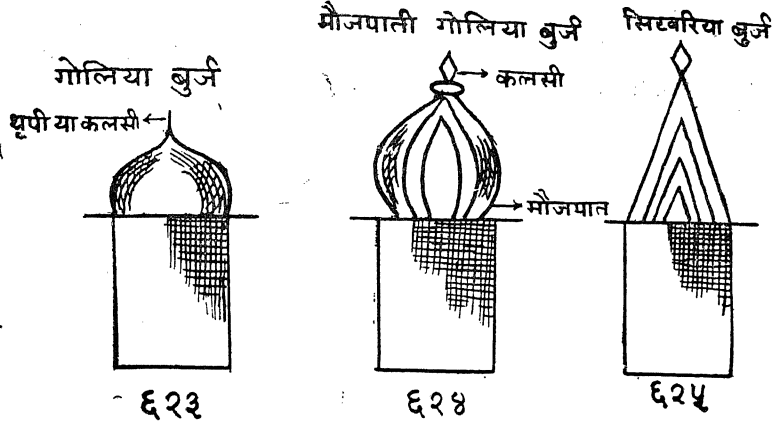
[रेखा-चित्र ६२३ से ६२५ तक]

§६४२—किसी-किसी मन्दिर के चारों ओर छत्त के छज्जों की किनारी को नीचे की ओर लटकता हुआ बनाते हैं। उसे **झल्लर** कहते हैं। मन्दिर के बुर्ज के ऊपर निकला हुआ तुम्बदार नुकीला भाग **कलसी** कहाता है।

§६४३—मकान की छत के चारों ओर मुड़ेलों में जो लम्बे-लम्बे झरोखे या जालियाँ बनाई जाती हैं वे **रोबे** कहाती हैं।
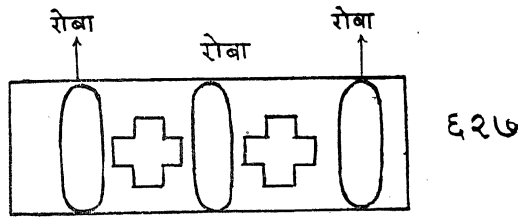
[रेखा-चित्र ६२६ से ६२७ तक]

राज को मकान में जितनी लम्बी-चौड़ी जाली बनानी होती है, उतनी जगह को वह किसी खास नाप के आधार पर बाँट लेता है। झरोखे या जाली के लिए किये गये उस विभाजन को **इलाइचा** कहते हैं। फिर उस इलाइचे में झरोखे बनाये जाते हैं।

झरोखों या जालियों के नाम

§६४४—जालियाँ पत्थर, सीमेंट और मिट्टी की बनती हैं। मिट्टी के बर्तनों को जैसे कुम्हार बनाता है, ठीक उसी तरह साँचों की सहायता से मिट्टी की जालियाँ बनती हैं और आग में पकायी

जाती हैं। वे जालियाँ **बन्दरूम** कहाती हैं। बन्दरूम बनानेवाला कारीगर **हतेलिया** कहाता है। बन्दरूम के साँचे **मील** कहाते हैं।

§६४४ (क)—हतेलिये खपरैलें भी बनाते हैं। खपरैल में उठी हुई किनारी का आयताकार टुकड़ा **खपरा** कहाता है। दो खपरों को मिलाकर उनके मिलान के ऊपर दोनों ओर झुका हुआ नालीदार खपरा लगाया जाता है, जिसे **नरिया** कहते हैं। नरिया **मगरी** पर और मगरी **मुँड़ेर** पर रक्खी जाती है।
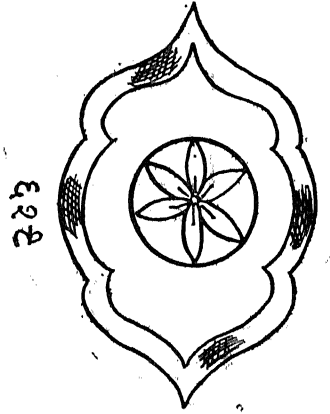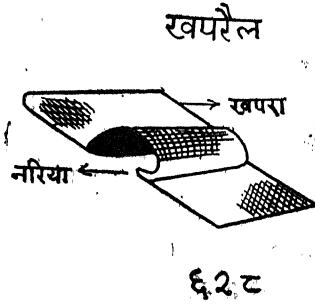
[रेखा-चित्र ६२८ और ६२९]

§६४५—बन्दरूम के विभिन्न नाम—(१) **बन्दरूम** या **सादा बन्दरूम**—बन्दरूम को **बन्दरूम की जाली** भी कहते हैं। यह जाली[1] रूम या कुस्तुनतुनिया की जाली की अनुकृति है। इसीलिए यह अन्वर्थ नाम पड़ा है। जाली के बन्द को **घर** भी कहते हैं।

(२) **फूल बन्दरूम**—इसमें बन्दरूम के अन्दर एक फूल भी बना रहता है।

[रेखा-चित्र ६३० और ६३१]

सेंमरमेल

६३२
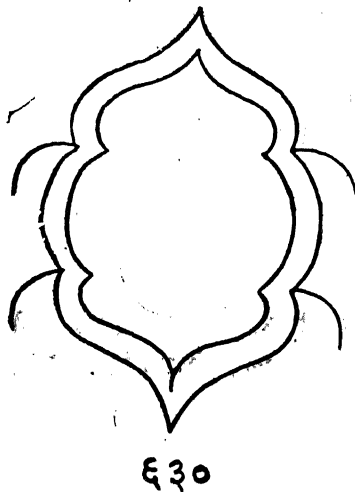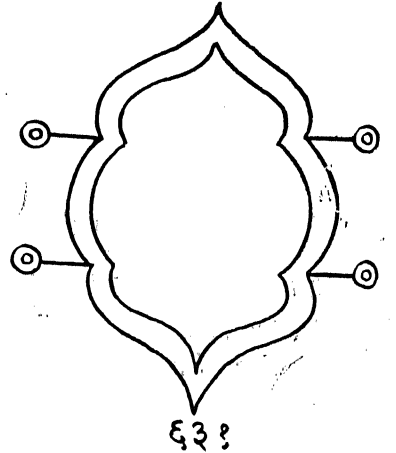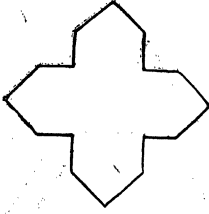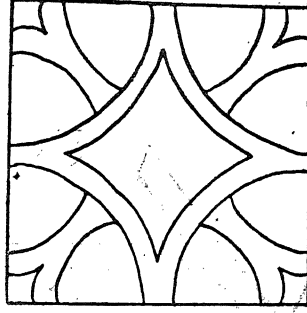
६३३
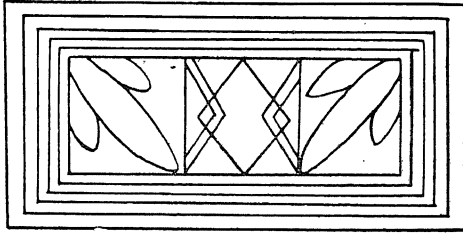
फूल चौमास

६३४

[रेखा-चित्र ६३० से ६३४ तक]

(३) **काँटा बन्दरूम**—(रेखा-चित्र ६३०)।

(४) **कुल्हिया बन्दरूम**—(रेखा-चित्र ६३१)।

(५) **फूल चमेली**—(रेखा-चित्र ६३२)।

(६) **सेंमरमेल**—(रेखा-चित्र ६३३)।

(७) **फूल चौमास** (रेखा-चित्र ६३४)।

राजों की बोली में पहल को **मास** या **बाँस** कहते हैं। चार पहल की जाली **चौमास** और छः की **छम्मास** (सं० षट्पार्श्वें) कहाती है। छम्मास की मासों की नोंकें छुरी की भाँति आगे को निकाल दी जायँ तो वह **छुरी छम्मास** कहाती है। आठ पहलुओंवाली **अठमास** (सं० अष्ठ पार्श्व) कहाती है। ये संस्कृत की परम्परा से आये हु ए शब्द हैं।

(८) **छुरी-छम्मास** (सं० छुरिका षट्पार्श्व)—छः पहलू-जाली। जिसमें छुरी की-सी आकृति की पट्टी पड़ी हुई हों। यदि बीच में फूल हो तो उसे **फुलुआ छुरी-छम्मास** कहते हैं।
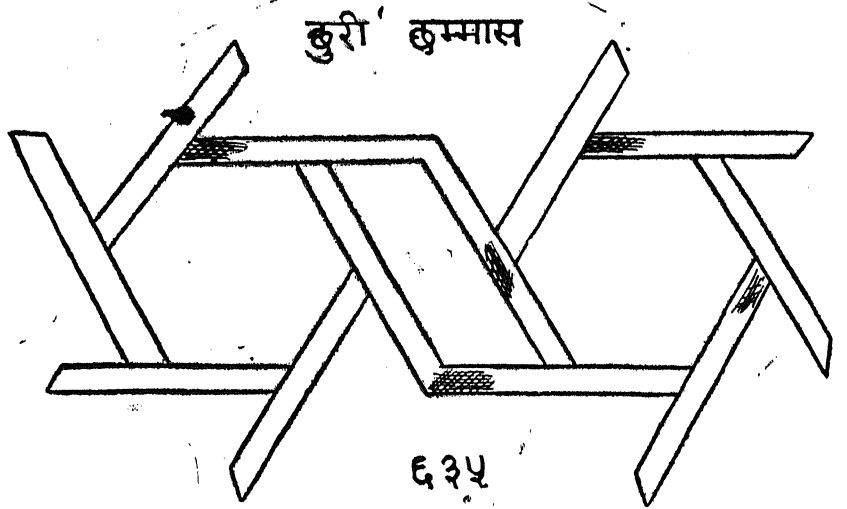
[रेखा-चित्र ६३५]

(९) **डोरू छम्मास** (सं० डमरुक षट्पार्श्व)

(१०) **देखतभूली**
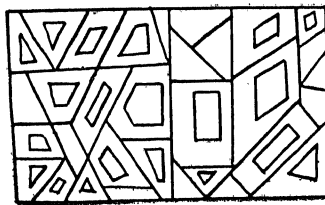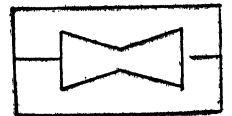
[रेखा-चित्र ६३६ से ६३७ तक]

इस जाली का ढङ्ग और क्रम बहुत कठिनाई से समझ में आता है। प्रायः देखते-देखते भूल जाते हैं।

सीमेंट की जालियों में **झिलमिली** (रेल की हवादार खिड़कियों की भाँति जाली), **खुरपिया बेंटा, चन्दासूरज, पानलहरिया, सतिया अठमास, गोलिया लहरन, लहरा चौक** और **आँट अटेनस** अधिक प्रसिद्ध हैं।
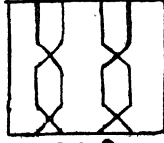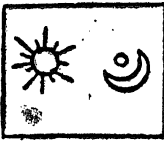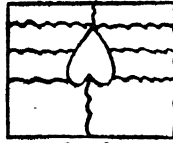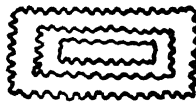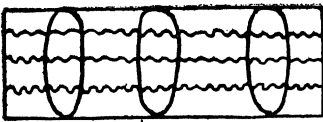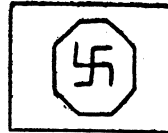
[रेखा-चित्र ६३८ से ६४५ तक]

अध्याय ६

दरजी और रफूगर

§६४६—कपड़े नापकर तथा काटकर सीने वाले कारीगर को **दरजी** (फा० दर्ज़ी) कहते हैं। काट-छाँट करने के बाद जो चीर-कत्तलें दरजी की दूकान पर रह जाती है, उन्हें **छाँटन-कतरन** कहते हैं। दरजी और सुनार के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि—"दरजी मा की **अँगिया**[1] में ते। सुनार बहू की **नथुलिया**[2] में ते ॥" भी कुछ न कुछ अवश्य बचाकर अपने पास रख लेते हैं।

§६४७—कपड़े को जब हम दरजी की दुकान पर ले जाते हैं, तब वह हमारे शरीर की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के विचार से उस कपड़े की लम्बाई-चौड़ाई देखता है कि अभीष्ट वस्त्र उसमें से बनाया जा सकता है अथवा नहीं। यह प्रक्रिया **नापकूत** कहाती है। नापकूत ठीक बैठने पर शरीर को दृष्टि-पथ रखते हुए कपड़े को नापना और काटना क्रमशः **ब्योंतना** और **छाँटना** कहाता है। इन दोनों प्रकार के व्यापारों के लिए **'कतर-ब्योंत'** शब्द का प्रयोग होता है। 'ब्योंत' शब्द सं० 'व्याममात्रा' (सं० व्याममात्रा > व्याममत्त > व्यांववत्त > ब्योंत) से व्युत्पन्न है। प्राचीन संस्कृत में 'व्याम' शब्द का प्रयोग नाप-विशेष के अर्थ में हुआ है। बौधायन श्रोत सू० (३०।१) में 'पुरुष' नामक नाप को 'व्याम' का पर्याय माना गया है। महाभारतकार ने भी 'व्याम' शब्द का प्रयोग नाप-विशेष के अर्थ में ही किया है।[3]

§६४८—कपड़े पर **सुई-डोरा** (सं० सूचिका + देश० दवर) चलाना **सीमना** या **सीना** कहाता है। सीने में सुई के पीछे चलनेवाले डोरे की जो विधि और रूप बनता है, उसे **सीम** कहते हैं। सीने की क्रिया या मजदूरी **सिमाई** कहाती है। कपड़ों में कई तरह की सीम पड़ती हैं—

(१) **लंगर** (२) **तुरपन** (३) **बखिया** (फा० बख़िया) (४) **फौंक** (५) **रफ़ू** (अ० रफ़ू) (६) **गोंठन** (७) **तगाई** (८) **डाँड़ या जोड़**।

सुई के नकुए में डोरा पिरोना **'पेसना'** (सं० प्रेषण) कहाता है। भेजने के अर्थ में 'प्रेष' (सं० प्र + इष् > पाणिनि ३।४।६) धातु का प्रयोग होता है।

§६४९—सर्व-प्रथम कपड़े में यथा-स्थान मोड़ और दबाव देकर दूर-दूर टाँके मारे जाते हैं। ये लम्बे-लम्बे टाँके **लंगड़** (फा० लंगर) या **टीबा** कहाते हैं। **लङ्गड़ डालना** या **टीबा भरना** दरजी की बोली में **'कच्चा करना'** भी कहाता है। अतएव इस प्रक्रिया को **कच्ची सिमाई** (कच्ची सिलाई) भी कहते हैं। त० सिकन्दराराऊ और कासगंज में टीबा भरने के लिए 'कोकना' क्रिया भी प्रचलित है।

---

[1] एक प्रकार का वस्त्र जिससे स्त्रियाँ अपने स्तन ढँकती हैं।

[2] एक प्रकार का भूषण जिसे स्त्रियाँ अपनी नाक में पहनती हैं।

[3] "स तं वृक्षं दश व्यामं स स्कन्ध विटपं बली।
प्रगृह्याऽभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवाँऽन्तकः ॥"
—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (संपादक): महाभारत, विराट पर्व, सन् १९२६ संस्करण, अध्याय २३। श्लोक २२।

§६५०—कपड़े में कुछ **मुरकान** (मोड़) देकर जो सिलाई की जाती है, उसे **तुरपन** कहते हैं। तुरपन में एक टाँका ऊपर और एक टाँका नीचे लिया जाता है।

जिस सिलाई में कपड़े के ऊपर की तरफ इकहरे टाँके होते हैं और उन टाँकों के बीच में जगह नहीं छोड़ी जाती है, उस **सीमन** (सिलाई) को **बखिया** कहते हैं। यदि कपड़े में एक सीध में चार निशान लगा लिये जायँ तो बखिया की सिलाई के लिए सुई को पहले निशान में चुभोकर तीसरे में निकालते हैं और फिर दूसरे में चुभोकर चौथे में निकालते हैं। इस प्रकार जो टाँकों से सीमन बनती है उसे ही **बखिया** (फा० बखिया) कहते हैं। लंगड़ (लंगर) के बाद ही बखिया की जाती है। लिहाफ, गद्दे आदि में दो बखियाएँ होती हैं। (१) **भीतरी बखिया** (२) ऊपरी **बखिया**। भीतरी बखिया करने के बाद लिहाफ, गद्दा आदि को उलट दिया जाता है। उलटने के बाद ऊपर से ऊपरी बखिया की जाती है। घोट या संजाप की ऊपरी बखिया का डोरा **संजापी** डोरा कहाता है।

§६५१—फटे हुए हिस्से के दोनों किनारों को मिलाकर जो लगातार ऊपर-नीचे सुई चलाई जाती है उसे **फोंक भरना** कहते हैं। उस सिलाई के टाँके **फोंक** या **खौंप** कहाते हैं। खौंप के टाँके दूर-दूर लगाये जाते हैं। यदि किसी कील आदि में लगकर कोई कपड़ा तिकोनी हालत में फट जाता है तो उसे **खौंच** (खोंच) कहते हैं। अटककर कपड़ा फटने के छेद के लिए **'खौंत'** **खौंप**, और **फोंक** शब्द प्रचलित है।

§६५२—जब कोई कपड़ा थोड़ी-सी जगह में जल जाता है या कट जाता है तब वैसे ही रंग का डोरा लेकर उस जगह फूल-सा बना दिया जाता है। उस प्रकार की सीमन (सिलाई) को **रफू** कहते हैं। रफू करनेवाला **रफूगर** या **रफगर** (अ० रफ़ू + गर) कहाता है।

फटे हुए कपड़े में किनारी-सी बनाते हुए ऊपर-नीचे की सीमन **गोंठन** कहाती है।

रुईदार कपड़े में जो सकलपारे या चौखाने की बखिया की जाती है, वह **तगाई** कहाती है। तगाई से रुई कपड़े में पूरी तरह चिपट जाती है।

§६५३—कपड़े के दो सिरे मिलाकर या दो परत मिलाकर जो बखिया की जाती है, उसे **जोड़** या **डाँड़** कहते हैं। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (४।७) में 'डंडं' और 'डिंडी' शब्द डाँड़ या जोड़ के अर्थ में ही प्रयुक्त किये हैं।[1]

§६५४—कपड़े की छाँट (कटाई) सामान्यतया दो प्रकार की होती है—(१) सादा अर्थात् सीधी—इसे **सूधी छाँट** भी कहते हैं। (२) **तिरछी, आड़ी** या **औरेबी छाँट**। 'औरेब' शब्द फा० उरेब (=टेढ़ा) से व्युत्पन्न ज्ञात होता है।

§६५५—एक प्रकार की सादा छाँट **कँगूरिआई** (=कँगूरोंवाली अर्थात् कँगूरों सहित) कहाती है। तकियों के गिलाफों के किनारों पर सकलपारों की आकृति में कपड़ा काटकर अलग से सी देते हैं। वे सकलपारे ही **सिंगाड़े** या **कँगूरे** (फा० कुँगर) कहाते हैं।

सिलाई के औजार

§६५६—कपड़ा सीने की मशीन के अतिरिक्त सिलाई में काम आनेवाली अन्य वस्तुएँ

---

[1] **'डंडं डंडी सूच्या संघटितानिवस्त्रखण्डानि'**
देशीनाममाला, संपादक आर० पिशल, पूना प्रकाशन, सन् १९३८, पृ०।१६०।

भी हैं जो **लत्ता** (फा० लत्ता>स्टाइन०, सं० लक्तक>मो० वि०) नापने, काटने और सीने में सहायता पहुँचाती हैं।

§६५७—एक विशेष प्रकार की काठ की गट्टक पर लिपटा हुआ डोरा **रील** या **गट्टी** कहाता है। चार अँगुल चौड़े गत्ते पर लिपटे हुए डोरे को **पत्ता** कहते हैं। गोल रूप में एकत्र किया हुआ डोरा गुल्ला या **पेचक** (फा० पेचक) कहाता है। यह बटे हुए तागे की गोली-सी बनी हुई होती है।

§६५८—सीने का काम करते समय दरजी अपनी **अन्नी** (सं० अनामिका = मध्यमा और कनिष्ठा के बीच की उँगली) उँगली में लोहे या पीतल की बनी हुई एक छोटी-सी टोपीनुमा वस्तु पहनता है, ताकि उँगली में सुई का निशान न पड़े। उसमें बूँदें और छोटे-छोटे गड्ढे भी बने हुए होते हैं। उसे **अँगूठी** (सं० अँगुष्ठिका>अँगुट्ठिआ>अँगुट्ठी>अँगूठी), **अंगुस्तरी, अंगुस्ताना** (फा० अंगुश्ताना) **पोटुआ** या **अंगुलताना** (सं० अङ्गुलित्राण + क>अँगुलितानअ>अँगुलताना) कहते हैं। 'अङ्गुलित्राण' बहुत प्राचीन शब्द है। गोह की खाल से बने हुए एक प्रकार के दस्ताने को 'गोधाङ्गुलित्राण' कहते थे। इसे धनुष चलानेवाला व्यक्ति पहना करता था। महाभारत के विराट् पर्व में लिखा है कि पाण्डव लोग कवच, खड्ग, तूणीर तथा अङ्गुलित्राण धारण करके यमुना नदी के दक्षिण तट पर पैदल चलने लगे।[1] वाल्मीकि रामायण में भी 'अङ्गुलित्राण' का उल्लेख है।[2]

§६५९—दरजियों का एक औजार जो लोहे की दो पत्तियों का बना हुआ होता है, **गुनियाँ** कहाता है। इसमें समकोण बनाती हुई दो पत्तियाँ लगी रहती हैं जिन पर इंचों के निशान पड़े रहते हैं।

एक प्रकार का फीता, जिस पर इंचों और गिरहों के निशान पड़े रहते हैं, **नपाना** या **गज** कहाता है। इसी से कपड़े का ब्योंत किया जाता है।

जिस तख्ते पर रखकर कपड़े का ब्योंत करते हैं उसे **पट्टा** (सं० पट्टक) या **पटरा** कहते हैं।

§६६०—काट-छाँट करने के लिए जो लोहे का औजार होता है, वह **कैंची** कहाता है। 'कैंची' तुर्की भाषा का शब्द है। कैंची को **कतरनी** भी कहते हैं। कतरनी शब्द सं० **कर्तनी** से सम्बन्धित ज्ञात होता है।

कैंची के दोनों फल **कतिया, पला** या **पल्ला** कहाते हैं। हर एक पल्ले के नीचे एक बड़ा-सा गोल भाग **छल्ला** कहाता है। उन छल्लों में अँगूठा और उँगलियाँ डालकर कैंची चलाई जाती है। कबीर ने कैंची के पल्लों के लिए **'काँत्याँ'**[3] शब्द लिखा है।

कपड़े की सिकुड़न को **सरवट** (सलवट) कहते हैं। सलवटें लोहे के एक भारी औजार से दूर की जाती हैं। उसे **इस्तिरी** कहते हैं। इसे कपड़े पर रगड़ते हैं और कपड़े की सलवट मिटाकर तह बैठाते हैं। इस्तिरी को **लोहा** भी कहते हैं।

---

[1] ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्ध कलापिनः।
बद्ध गोधाङ्गुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः॥
—संपा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर : महाभारत, विराट् पर्व, १९२६ ई० ५।१

[2] बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तो महाद्युती।
—वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९४९, २२।८

[3] दुहु काँत्याँ बिचि जीव है, दौ हनैं सन्तौ सीख।
(कबीरग्रंथावली, साखी उपदेसकौ अंग, दो० ५)

रफ़ूगरी से सम्बन्धित शब्दावली

§६६१—अनाड़ी या सीखतर रफ़ूगर जब रफ़ू करते समय कपड़े के छेद में उल्टे-सीधे बेढंगे तागे डालता है तो उसे **गुथाई** कहते हैं। रफ़ू करते समय बेकार तार को अलग करना **तग्गा चुनना** कहाता है। रफ़ू करनेवाली सुई के तागे से कपड़े के तारों में पड़ा हुआ फेर या फँसाव **ताव** कहाता है। कपड़े की लम्बाई में ताने के तार और **बर** (अर्ज=चौड़ाई) में बाने के तार होते हैं। जब ताने और बाने के तारों को क्रमशः दाबते और उछालते हैं तो उस क्रिया को रफ़ूगरों की बोली में **दाब-उछाल** कहते हैं। कपड़े के बड़े छेद को रफ़ू करने से पहले उसमें जो कच्ची भराई की जाती है वह **तहकारी** कहाती है। पानी की फ़ुहार **फ़ुई** या **फ़ुरीं** कहाती है। रफ़ू के तारों पर फ़ुई मारकर उन्हें फिर इस्तरी से जमाया जाता है।

§६६२—कभी-कभी रफ़ूगर को मोटे तागे से रफ़ू करना पड़ता है। यदि तागा इतना मोटा हो कि सुई के नकुए में न आ सके तो रफ़ूगर पतला डोरा सुई में डालकर उसमें ही मोटे तागे को फँसा लेता है। उस समय उस फँसे हुए मोटे तागे को **पुंछल्ला** या **लग्गा** कहते हैं। जब कपड़े में खौंता लगने पर ताने-बाने के तार टूट जाते हैं तो उनका जोड़ मिलाना **टीप** कहाता है। दुशाले या चादर के खराब या कमजोर तार निकालकर उनकी जगह अच्छे तागे भरना **चुनाई करना** कहाता है।

§६६३—**रफ़ू की किस्मों के नाम**—(१) **कंगूरी**—इस किस्म के रफ़ू में तागे से नोंकदार कंगूरे-से बनते चले जाते हैं।

(२) **गफ रफ़ू**—इस रफ़ू में ताने-बाने के तार आपस में ऐसे सट जाते हैं कि नाममात्र को भी खाली जगह नहीं रहती।

(३) **गुफनियाँ**—यदि छेद बड़ा हो तो तागे में तारों को भरते हुए जाल की भाँति बहुत घना रफ़ू किया जाता है। उसे गुफनियाँ रफ़ू कहते हैं।

(४) **छितरा या छिदरा**—बारीक और झिरझिरे कपड़े में छितरा रफ़ू होता है। इसमें तागा बेगरा (विरल) डाला जाता है।

(५) **झिंझिनी**—कपड़े में कीड़ों के द्वारा बहुत छोटे-छोटे छेद हो जाते हैं। उन्हें **झिंझिनी** कहते हैं। उनकी रफ़ूगरी भी **झिंझिनी** कहाती है।

(६) **झिलमिली**—जिस रफ़ू में दो भिन्न रंगों के तागे आड़े-सीधे डाले जाते हैं, वह रफ़ू **झिलमिली** कहाती है।

(७) **दब्बा**—जिस कपड़े की बुनावट और रंग के हिसाब से उल्टा-सीधा पर्त हो, उस कपड़े में एक खास तरह की रफ़ूगरी **दब्बा** कहाती है।

(८) **पौनझकोरा**—लहरदार कपड़े का रफ़ू रंग के हिसाब से लहरदार ही बनाया जाता है। उसे **पौनझकोरा** कहते हैं।

(९) **फुलबगिया**—छेद यदि लम्बा अधिक और चौड़ा कम हो तो उसमें पहले चारों ओर **ढिंग** (हाशिया) बनाकर बीच में रफ़ू के ऐसे तागे डालते हैं कि फूल-पत्तियाँ-सी बनती चली जाती हैं। उस रफ़ू को **फुलबगिया** कहते हैं।

(१०) **बूटिया**—गमले में जैसे एक फूलदार पौदा उगा हुआ हो, ठीक उसी भाँति तागों से बूटा बना दिया जाता है।

(११) **लहरिया या लहर**—जिस रफू में तागे से लहरें बन जाती हैं उसे लहरिया रफू कहते हैं। कंगूरी रफू में तो नोकें-सी निकलती हैं, परन्तु लहरिया में मामूली टेढ़ लिये हुए चलता है।

६४६ कँगूरी ←

६४७ लहरिया ←

[रेखा-चित्र ६४६, ६४७]

अध्याय १०

कोली और जुलाहा

विशेष टिप्पणी—इस अध्याय में कोलियों और जुलाहों की बोली के शब्द संगृहीत हैं। कपड़ा बुनने में कोली लोग जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उन्हें ही विशेषतः लिखा गया है लेकिन कोष्टक में जुलाहों की बोली के शब्द भी साथ-साथ लिख दिये गये हैं। 'जु' से संकेत है 'जुलाहों की बोली में'।
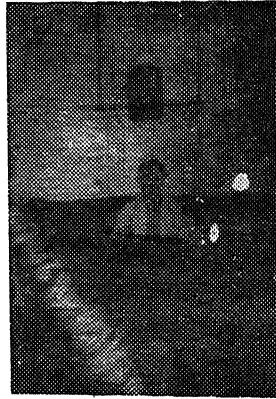
कपड़ा बुनता हुआ कोली [चित्र २७]

§६६४—हिन्दुओं में एक जाति, जो कपड़ा बुनने का काम करती है, **कोरी या कोरिय** (देश० कोलिअ) कहाती है। सम्भवतः देश्य भाषा में 'कूल' का अर्थ कपड़ा था। कपड़ा बनानेवाल कोलिअ (दे० ना० मा० २।६५) कहलाया। 'दुकूल' का अर्थ दुहरा थान रहा होगा।[1] मुसलमान

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७७

की एक जाति जो कपड़ा बुनती है **जुलाहा** (फा० जोलाह) कहाती है। कोरी और जुलाहे के सम्बन्ध में निम्नांकित लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

"सूतु न कपास, कोरिया ते लट्ठमलट्ठा।"[1]
"गाढ़ छोड़िकें बाहिर जाय। नाँहक चोट जुलाहौ खाय॥"[2]

§६६५—बुने हुए कपड़े की लम्बाई में पड़े हुए तार या तागे **ताना** और चौड़ाई में पड़े हुए तार **बाना** कहाते हैं। मिल का सूत जिस यन्त्र पर बुना जाता है उसे **करघा** और खादी का सूत जिस पर बुना जाता है उस यंत्र को **खड्डी** कहते हैं। जिस गड्ढे के पास खड्डी लगाई जाती है वह गड्ढा **गाढ़** (सं० गर्त > गड्ढ > गाढ़) कहाता है। गाढ़ के पास कोली के **बैठने** के लिए एक जगह बनी रहती है जो **बैठनी** कहाती है। कोली या जुलाहा बैठनी पर बैठकर गाढ़ में दोनों पाँव लटका लेता है तब वह दोनों हाथों से खड्डी पर कपड़ा बुनता है। ताने के लिए वैदिक संस्कृत में तंत्र (ऋक्० १०।७१।६) और खड्डी के लिए वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में वेमन्[3] (वाजसनेयी सं० १६।८३, नैषध १।१२) शब्द आये हैं। **बुनने** (सं० वयन) का काम करनेवाला **बुनकर** भी कहाता है। इसके लिए वेद में वाय (ऋक्० १०।२६।६) शब्द का उल्लेख है। एक आट में दूसरी आट और दूसरी में तीसरी आट फँसाना **आट गथना** कहाता है। गथी हुई आटें **साँकरी** कहाती है।

बुनाई के लिए सूत तैयार करना

§६६६—कोरी लोग पेंठ (सं० प्रविष्ट > पेंठ = वह बाज़ार जहाँ खरीदने को मनुष्य प्रविष्ट हों) या बाजार से सूत की अटियाएँ लाते हैं और उनके सूत को **चरखा** (फा० चर्ख > चरखा) और चरखी की सहायता से **नरों** (बाँस या बगनर की पोली नलियाँ **रीता** या **नरा** कहाती है। वे लगभग एक बालिश्त लम्बी होती हैं और चरखे के तकुए पर उन्हें चढ़ा दिया जाता है) पर लपेटते
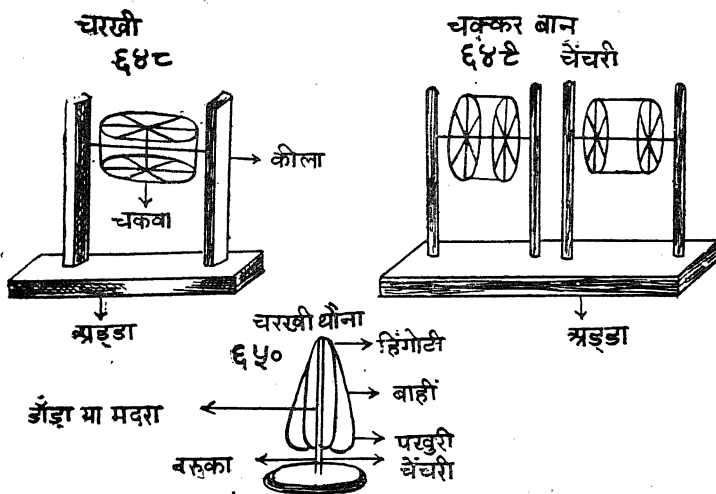
[रेखा-चित्र ६४८ से ६५० तक]

[1] न सूत है और न कपास, लेकिन भाव के सम्बन्ध में कोली से झगड़ा हो रहा है।

[2] यदि जुलाहा अपनी गाढ़ (वह गड्ढा जिसमें पाँव लटकाकर कोली कपड़ा बुनता है) छोड़कर बाहर जाता है तो व्यर्थ हो उसे चोट खानी पड़ती है।

[3] वेमन् = करघा—मो० वि० कोश, पृ० १०१३

हैं। कोलियों की चरखियाँ प्रायः तीन तरह की होती हैं जिन्हें **रैंटी** (सं० अरघट्टिका) **चरखी**, **चक्करबान** और **चरखी थौना** कहते हैं।

चरखी के हिस्सों के नाम

§६६७—अड्डे (लकड़ी का एक तख्ता जो लगभग चार अंगुल चौड़ा होता है) पर दो खूँटे गड़े रहते हैं जो **कीला** कहाते हैं। कीलों के बीच में एक गोल और लम्बी लकड़ी डाल दी जाती है जिसे **बेलन** या **डाँड़ा** कहते हैं। चक्करबान और चरखी थौने में बेलन कुछ अधिक मोटा, भारी और गोल पड़ता है। उस बेलन को वहाँ **मदरा** कहते हैं। चरखी के बेलन में दोनों ओर तीन-तीन या चार-चार बाँस की खपच्चें डाली जाती हैं जो **चकवा** कहाती हैं। चकवों के सिरे जिस डोरी से बँधे रहते हैं वह **अदमाइन** कहाती है।

चक्करबान के भाग

§६६८—दो एक को छोड़कर चक्करबान में भी वैसे ही हिस्से होते हैं। चक्करबान में दुहरी चरखियाँ चलती हैं। चक्करबान के ऊपर का तख्ता **पटरी** कहाता है। चकवों के बीच का मदरा जिन कीलों के बीच में घूमता है उन कीलों को **चेंवरी** कहते हैं। अड्डे और पटरी के
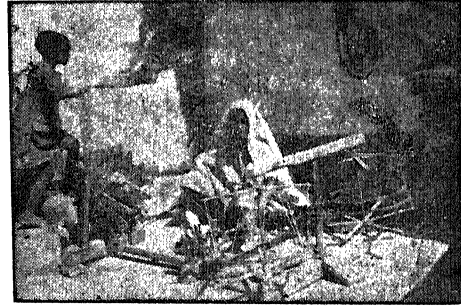
[चित्र २८]
"कोलिन चक्के और चरखे की सहायता से सूत को नलियों पर लपेट रही है।"

आपस में मिलानेवाला तख्ता **मंझा** (सं० मध्यक) कहाता है। चरखी तथा चक्करबान आदि सब सामग्री और अन्य सम्बन्धित वस्तुएँ **चरखिया भाजर** कहाती हैं। भाजर से सम्बन्धि लोकोक्ति प्रचलित है—

"गामएँ परी भाजर की। बहूएँ परी काजर की॥"[1]

चरखी थौने के अङ्ग

§६६९—थौने के मदरे के ऊपर की पोली गट्टक **हिंगोटी** और नीचे की **नरुका** कह है। बाँस की फच्चटें जो नरुके पर लगी रहती हैं **पखुरी** कहाती हैं और पखुरियों को हिंगोटे मिलानेवाली खपच्चें **बाहीं** कहाती हैं। बाहियों पर ही अटिया लिपटी रहती है। थौना घू

[1] आकस्मिक आपत्ति आने पर गाँव के लोग तो बड़ी हड़बड़ी में भाजर (सामान) ढो लगे हैं। ऐसे समय में बहू को काजल लगाने की चिन्ता है अर्थात् श्रृङ्गार की पड़ी है।

रहता है और सूत रीते पर लिपटता जाता है। मिल के सूत की **आट** (अटिया) जुलाहों की बोली में **चीरू** कहाती है।
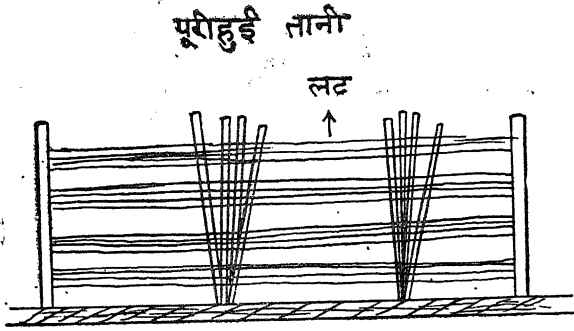
[रेखा-चित्र ६५१]

§६७०—तानी पूरने में जो औजार काम में आते हैं उनमें **उरी, टटिया** (जु० पेच), **खिरकिया** या **पूरी**[1] (खैर में) (जु० सांतिया) और **सेंटे** मुख्य हैं। पहले एक सीध में चार-चार के हिसाब से सेंटे गाड़े जाते हैं। लोहे की एक तान-सी जिसमें नरा (सूत लिपटा हुआ रीता) डालकर सूत सेंटों या सरकण्डों (सं० शरकाण्ड) में पूरा जाता है। सेंटों में जो धनात्मक चिह्न की दशा में फेरा डाला जाता है, वह **सँध** या **सतिया** कहाता है। आजकल तानी पूरने में उरी की जगह टटिया और खिरकिया काम में आती हैं। टटिया एक तरह का बाँस या लकड़ी का बना हुआ
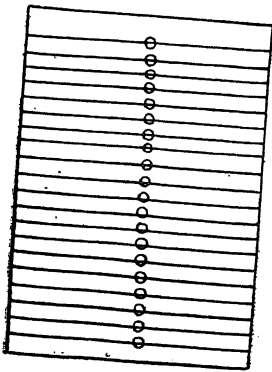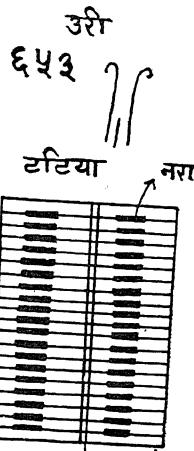
[रेखा-चित्र ६५२ से ६५४ तक]

चोखटा-सा होता है जिसमें लोहे की तानें पड़ी रहती हैं। लोहे का एक चौखटा जिसमें लोहे की सूराखदार तानें पड़ी रहती हैं **खिरकिया** कहाता है। खिरकिया के तारों में पड़ा हुआ फँसाव **बान** या **सांति** कहाता है। साँति के हिसाब से तागे उठाना **लट बनाना** कहाता है।

---

[1] "पूरी तन्तुवायोपकरणम्"—हेमचन्द्र : दे० ना० मा०, ६।५६

पाई करना

§६७१—दो **गोड़े**[1] (खूँटे) गाड़कर तानी को मांड़ी के लिए तानते हैं। उस समय ताना पूरने में इकट्ठे हुए तारों को सामूहिक रूप में **लट** कहते हैं। गेहूँ या जौ का आटा आग पर औटाकर छान लिया जाता है। उस छने हुए आटे को **ओल** कहते हैं। ओल में डुबाई हुई लट **पाइँन** या **पाई** कहाती है। फैली हुई लट पर जब कूच (सं० कूर्च = खस से बनायी हुई बड़ी कुची) फिराया जाता है तब वह क्रिया **पाइँन करना** या **पाई करना** कहाती है। कूच को **माँझा** या **झामा** (खैर०, इग० में) भी कहते हैं। पाइँन करने के बाद तानी की लट **सतघरी** (जु० सिरारा= एक मोटा डंडा) पर लपेट ली जाती है। वह सतघरी जिस पर तानी लिपटी हुई होती है **बीड़ा** कहाती है। ओल में कूच भिगोकर भी पाई की जाती है।

§६७२—पाई करने के लिए जो तानी फैलाई जाती है उसके नीचे चार-चार डंडियाँ लगाई जाती हैं, जो **घोड़िया या चौलठी** (जु० मंझा) कहाती है। तानी के तार आपस में उलझ न जायँ, इसीलिए उसमें **सेंटे** या **पतली** लकड़ियाँ डाल देते हैं जिन्हें **सर** (सं० शर) कहते हैं तानी के सिरों पर इधर-उधर दो सतघरियाँ होती हैं जो रस्सी द्वारा दो लकड़ियों से सम्बन्धित कर दी जाती हैं। उन लकड़ियों को **बन्देजा** कहते हैं। एक पाई लगभग १०० गज तक लम्बी होती है। तानी जब सतघरी पर लपेट दी जाती है तब **बीड़** कहाती है।

[रेखा-चित्र ६५५ से ६५७ तक]

---
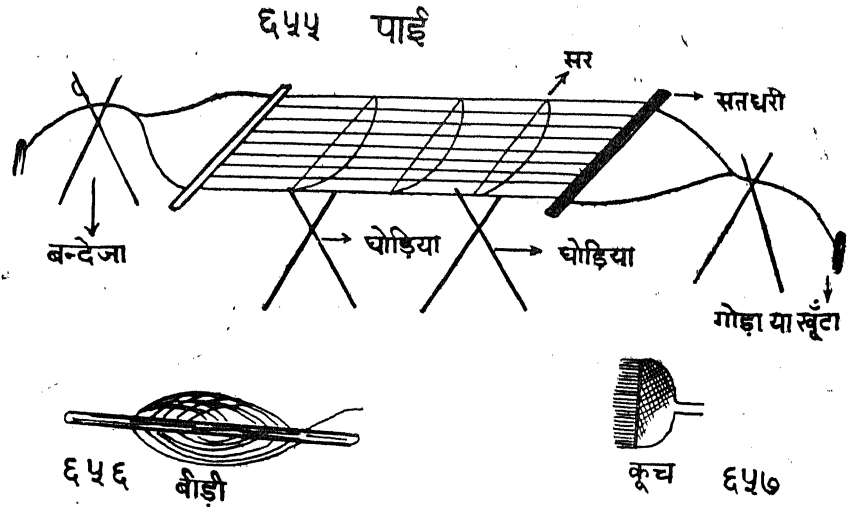
[1] "चाँद सुरज दुइ गोड़ा कीन्हों माँझ दीप कियौ माँझा।
त्रिभुवन नाथ जो माँजन लागे स्याम मुररिया दीन्हां॥
पाई करि जब भरना लीन्हौ बै बाँधे को रामा।"
—कबीर-बीजक, : कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, हरक, बाराबंकी, शब्द, पद ६४

खड्डी, तानी और कपड़ा
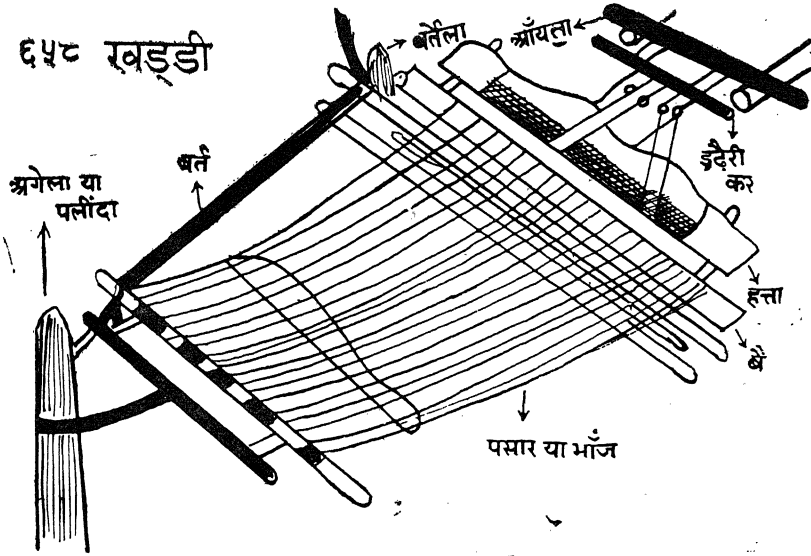
[रेखा-चित्र ६५८]

§६७३—कोली की खड्डी (कपड़ा बुनने का यंत्र) के मुख्य अंग चार होते हैं—(१) तुर या तूरि (२) हत्ता (३) बै (४) पसार या भाँज।
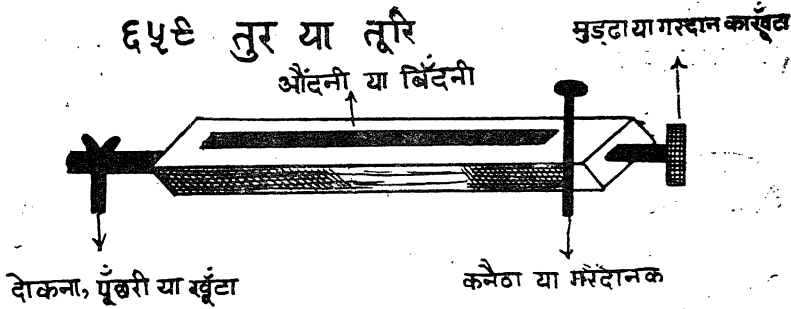
तूरि और उससे सम्बन्धित वस्तुएँ [रेखा-चित्र ६५९]

§६७४—बुना हुआ कपड़ा लकड़ी के जिस चौपहलू बेलन पर लिपटता जाता है, वह बेलन **तूर, तुर** या **तूरि** (सं० तुरी[१]) कहाता है। तूरि के ऊपर लकड़ी की एक पटरी लगी रहती है जिसे **औंदनी** (जु० बिंदनी) कहते हैं। तूरि दो खूँटों के बीच में होती है। दाहिनी ओर का खूँटा **मुड्ढा** या **गरदान का खूँटा** कहाता है। बाईं ओर का खूँटा **दोकना** (खुर्जा० में) या **पूँछरी** कहाता है। दाहिनी ओर तूरि में एक सूराख आर-पार होता है जिसमें लोहे का एक छोटा-सा डंडा पड़ा रहता है जो **कनैठा** (जु० गरदानक) कहाता है। कोली कनैठे से ही तूरि को घुमाता है और आवश्यकतानुसार बुने हुए कपड़े को लपेटता है।

---

[१] दिमङ्गनाङ्गावरणे रणांगणे यशः पटं तद्भटचातुरी तुरी ॥

—श्री हर्ष : नैषध०, १।१२

§६७५—लकड़ी का एक चौखटा-सा जिससे बाने का तार ठोका जाता है **हत्ता** कहाता है। हत्ते के नीचे की खाँचेदार लकड़ी **तरौंची** कहाती है। हत्ते और तरौंची के बीच में **कंघी, ओखर** (जु० राछ) या **पट्टी** (खुर्जा० में) लगी रहती है। इसी कंघी की तानों के बीच में होकर तानी के तार निकाले जाते हैं। कंघी की प्रत्येक तान को **सिलक** या **गेवा** कहते हैं। दो तानों के बीच का खाली हिस्सा भी **गेवा** कहाता है। कंघी के ऊपर-नीचे लगी हुई **लकड़ी** या **सेंटा कम्प**
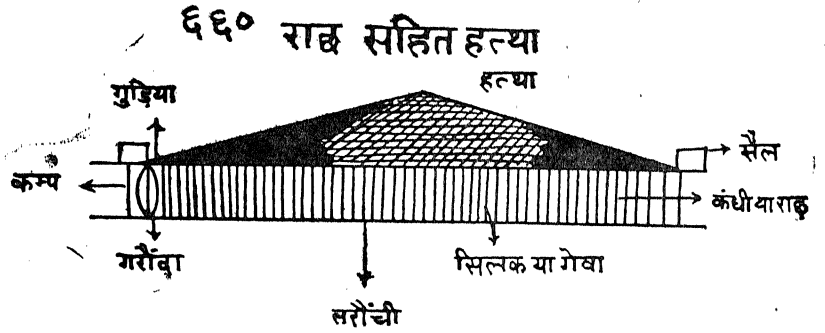
हत्ता और उससे सम्बन्धित वस्तुएँ [रेखा-चित्र ६६०]

कहाता है। हत्ते और तरौंची के बीच में दोनों सिरों को मिलाने के लिए एक-एक घुंडीदार लकड़ी लगी रहती है जो **सैल** कहाती है। कंघी और सैल के बीच में एक डोरा पड़ा रहता है जो हत्ते की तरौंची से कसा हुआ रहता है। उस डोरे को **गरौंदा** कहते हैं। कंघी से दायें-बायें सिरों की लकड़ियाँ **गुड़ियाँ** कहाती हैं। मिट्टी के एक बर्तन में कपड़े की कुची पानी से तर हुई पड़ी रहती है। उस कुची को **पोतारा** कहते हैं। पोतारे से हत्ते के पास तानी के तार कुछ गीले कर लिये जाते हैं ताकि तागा टूट न जाय।
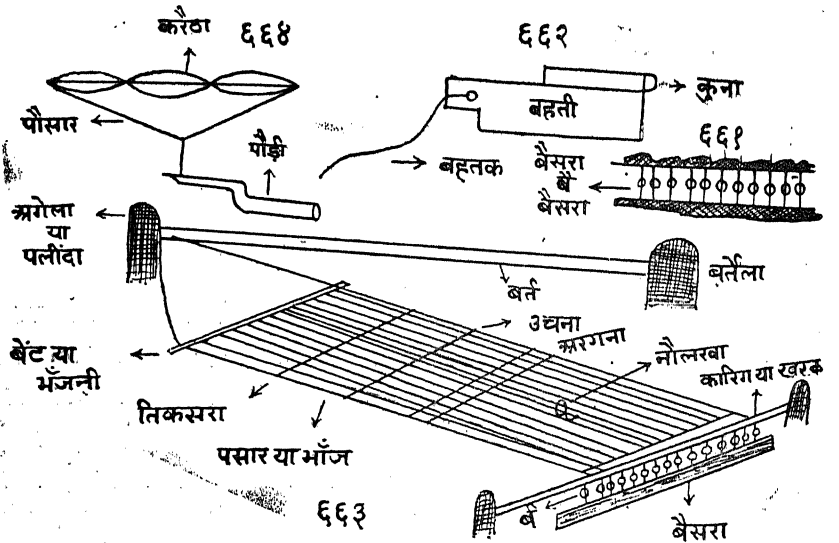
बै और उसकी सहायक वस्तुएँ—[रेखा-चित्र ६६१, ६६२]

§६७६—दो सरकंडों के बीच में डोरों का फन्दानुमा जाल-सा बनाया जाता है जिसकी हरकत से **पसार** या **भाँज** (ताना) दो हिस्सों में बँटकर खुलता रहता है। उस फन्दानुमा जाल को **बै**

(वै० सं० वयस्[1] = जाल—मो० वि०) कहते हैं। बै का बीच का फन्दा जो आकार में गोल होता है **बै की आँख** या **फन्नी** कहाता है। बैभरे (एक यंत्र) से उन आँखों में ही तानी के तार भर लिये जाते हैं। तानी के बुनने में दो बैएँ काम आती हैं। जब एक बै नीचे जाती है दूसरी ऊपर। बैओं के ऊपर-नीचे आने-जाने से जो पसार के दो भाग हो जाते हैं। दोनों भागों के बीच की खुली हुई जगह **दम** (जु० बाला) कहाती है। कोली बाने का तार डालने के लिए दम के बीच में होकर ही दाईं ओर से बाईं ओर को **भरनी**,[2] **ढरकी** या **नार** (नाव की आकृति का लोहे का एक औजार) फेंकता है। नार गाड़ में न गिर जाय, इसलिए कोली लोग बाँस की फच्चटों का बना हुआ एक जाल-सा गाड़ के ऊपर रख लेते हैं, उसे **फटका** (जु० टटिया) कहते हैं। यदि फटका न हो तो नार गाड़ में गिर जाय और कोली के पाँव में उसका नुकीला सिरा चुभ जाय।

§६७७—नार के लिए वैदिक साहित्य में तसर (ऋक्० १०।१३०।२) शब्द आया है। नार के बीच में लगी हुई लोहे की तान **खिरैरा** (जु० तीरी) कहाती है। खिरैरे में ही बाने के तार से लिपटी हुई **नरी** या **रीती** (लकड़ी की नली) फँसाई जाती है। नार के सिरे **गोसे** (फा० गोशा) कहाते हैं। गोसों पर जितने हिस्से में लकड़ी लगी रहती है वह भाग **माकू** कहाता है। माकू का वह भाग जिसमें खिरैरा लगा रहता है **पक्खा** कहाता है। दाहिने पक्खे में एक नली-सी बनी

नार या ढरकी

गोसा — माकू — पक्खा — खिरैरा या तीरी — पक्खा — गोसा — माकू — नरी — गाली — चौंप — चौंप — पचकीरा या पखतीरी

६६५
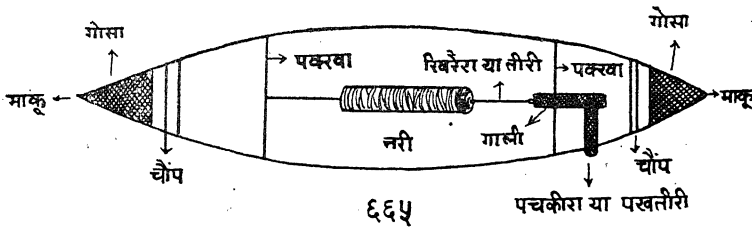
कोली की पसार या भाँज—[रेखा-चित्र ६६३ से ६६५ तक]

रहती है जिसे **गाली** कहते हैं। दाहिने गोसे में एक सूराख होता है जिसके मुँह पर छेददार मूँगा लगा रहता है उस छेद को **मनका** कहते हैं। खिरैरा अपनी जगह पर से न हटे, इसलिए उसकी रोक के लिए मनके में मोर पंख की एक डाट लगा देते हैं। वह डाट **पचकीरा** (जु० पखती री) कहाती है। गोसों पर बनी हुई सुनहरी दुहरी रेखाएँ **चौंप** कहाती हैं।

बैओं को साधनेवाली वस्तुएँ

§६७८—कोली लोग साधारणतया अपनी खड्डी के लिए गाड़ दीवाल के पास ही बनाते हैं। वे उस दीवाल में दो मजबूत लकड़ियाँ टोड़ों की भाँति गाड़ लेते हैं। वे टोड़े **टेक** कहाते हैं। दोनों टेकों पर एक मोटा बाँस रख दिया जाता है जिसे **करघाना, कल्हैरा, आँयता** या **कराइला** (खुर्जा० में) कहते हैं। आँयते में नीचे की ओर दो **सेकले** (खुर्जा में) या **जोतियाँ** (रस्सियाँ) लटकी रहती हैं। उनमें एक डंडी बाँध दी जाती है जो **डढ़ैरी** (जु० बड़ैरा) या **कलवाँसा** (खुर्जा० में) कहाती है। डढ़ैरी के दायें-बायें सिरों पर एक-एक चपटी लकड़ी लगी रहती है जिसे **चिरैया** कहते हैं। छोटे गोल पहिये-से **बट्टियाँ** या **घिरियाँ** कहाते हैं। हर एक चिरैया के सिरों पर छेद होता है। उन छेदों में जो डोरी बाँधी जाती है उसे **कर** या **कलै** (खुर्जा० में) कहते हैं। एक

---

१ "वयसूत्रिवया उपस्तिरे।" ऋक्० २।३।५

२ "काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया।"—कबीर-ग्रंथावली।

चिरैया का एक सिरा डोरी द्वारा पहली बै में बाँधा जाता है और दूसरा सिरा दूसरी बै में। उसी ढंग से दूसरी चिरैया के सिरों में भी डोरी बँधती है। बै दो होती हैं और प्रत्येक बै के ऊपर-नीचे एक-एक सरकंडा पड़ा रहता है जो **बैसरा** (सं० वयस् + सं० शरक) कहाता है। ये बैसरे ऊपर कर से चिरैयों में नीचे जोतियों से **करैठों** (लकड़ी के पतले बेलन) में बँधे रहते हैं। **पौसारों** (रस्सियों) द्वारा गाढ़ की **पौड़ी** या **पाँवड़ी** (लकड़ी के तख्ते जिन्हें कोली अपने पैरों से क्रमशः दबाता है) क्रमशः दोनों करैठों में बाँध दी जाती हैं।

§६७६—कोली लोग बै अपने आप भी बना लेते हैं। लकड़ी का एक औजार जो बै बनाने में काम आता है **बहती** कहाता है। बहती के छेद में पड़ा हुआ डोरा **बहतक** कहाता है। एक गोल लम्बी डंडी बहती के ऊपर जमाकर डोरी के फन्दे डालते हुए कोरी लोग बै बनाते हैं। वह गोल डंडी **कुना** कहाती है। बैसरे के ऊपर लिपटा हुआ डोरा भी **बहतक** कहाता है। बै में तानी के तारों का भराव **गँठुआ** कहाता है। पहली तानी यदि बुनते-बुनते समाप्ति पर हो और उसी तरह का दूसरा कपड़ा भी कोली को बुनना हो तब वह दूसरी तानी के तारों को बै में पड़े हुए पहली तानी के तारों में बाँध देता है। इस प्रकार के बाँधने के लिए **गंठना** या **गाँठना** क्रिया प्रचलित है।

§६८०—हत्ते और बैओं से आगे की ओर तीन-चार हाथ की लम्बाई में जो तानी फैली रहती है उसे **पसार** या **भाँज** कहते हैं। वैदिक साहित्य में इसके लिए 'प्राचीनतान' (तै० सं० ६।१।१।४) शब्द आया है। बैओं के पास दायें-बायें दो खूँटे गड़े रहते हैं। उनके ऊपर एक बाँस बाँध दिया जाता है जिसे **कारिग** या **कारिख** (जु० खरक) कहते हैं। पसार इसके ऊपर सधी रहती है और कुछ ऊँची भी रही आती है। पसार में तीन सरकंडे डाल दिये जाते हैं ताकि तार उलझे नहीं और टूटे हुए तार का शीघ्र पता लग जाय। बैओं के पास के पहले दो **सरकंडे** (सं० शरकाण्ड) पसार में डाले जाते हैं **अरगना** कहाते हैं। **अरगने** सरक कर बैओं के पास न आ सकें इसीलिए इन अरगनों और बैओं के बीच में **नौलखा**[1] (ईंट के टुकड़े को एक डोरे में बाँधकर लटका दिया जाता है। वही नौलखा कहाता है) लटका दिया जाता है। वैदिक-काल में जुलाहों के तानों में सीसे के नौलखे लटकाये जाते थे (देखिए, वाजसनेयी संहिता, यजु० १६।८०) अरगनों के आगे का सेंटे सहित डोरा **चुनाव** या **उच्चना** कहाता है। कोई-कोई कोली उच्चने में डोरे की जगह **माल** (रात से रङ्गा हुआ काला डोरा जो चरखे पर चढ़ता है) का टुकड़ा भी बाँध देते हैं। चमड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा, जिसमें माल रङ्गने की राल रहती है, **छेवटी**, **छिवटी** या **छिवड़ी** (देश० छवड़ी > दे० ना० मा० ३।२५) कहाता है। उच्चने से आगे की डंडी को **तिकसरा** कहते हैं। पसार के सिरे पर जो छोटा और मोटा डण्डा बँधा रहता है वह **बेंट** (जु० भँजनी) कहाता है। बेंट में जोतियाँ बाँधकर उन्हें एक मोटे रस्से से सम्बन्ध कर दिया जाता है जिसे **बर्त** (सं० वरत्रा) कहते हैं। बर्त जिस गड़े हुए छोटे लट्ठे में बाँधी जाती है वह **अगेला** (जु० पलींदा) कहाता है। वही बर्त फिर हत्ते के पास गड़े हुए एक खूँटे में बाँधी जाती है। उस

---

[1] **"कोरिया के घर में चोट्टा और नौलखा की करामात।"**
नाम की एक कहानी भी प्रसिद्ध है। कोरिया कोरिन से जब चोरी की बात कह रहा था तब कोरिन ने पूछा कि क्या चोर नौलखा को भी ले गया? कोरिया बोला नहीं वह तो पसार में मौजूद है। चोर उस वाक्य को सुन रहा था। दूसरे दिन कोरिया ने एक कुल्हड़ में बिच्छू बन्द करके नौलखा में लटका दिया। चोर रात को ज्यों ही नौलाख की रकम वाले हार की आशा में पसार टटोलने लगा त्यों ही बिच्छू ने उसके डङ्क मार दिया।

खूँटे को **बतैला** या **जवेला** (जु० खुँटी) कहते हैं। बुनते-बुनते पसार जब **ओछी** (छोटी) पड़ जाती है तब बतैले की बर्त खोलकर कोली अपनी जगह पर बैठे हुए ही पसार को इच्छानुसार लम्बी कर लेता है।

६६६

६६७
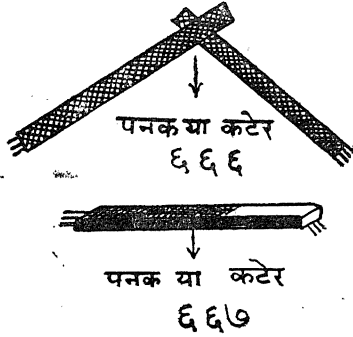
कपड़े की बुनावट—[रेखा-चित्र ६६६ से ६६७ तक]

§६८१—तूरि पर लिपट जाने के उपरान्त जो बुना हुआ कपड़ा तना रहता है, उसके ऊपर चौड़ाई में लकड़ी की एक पटरी-सी कपड़े पर लगाई जाती है ताकि कपड़ा सतर और तना हुआ रहे। उस लकड़ी को **कटेर** (जु० पनक) कहते हैं। कटेर के सिरों पर छोटे-छोटे चोभे लगा दिये जाते हैं। खड्डी पर जो कपड़ा बुना जाता है उसकी किनारी **टेवटा** कहाती है। तूरि पर माँड़ी सहित जो कपड़ा लिपटता जाता है, उसे **माँड़िया लत्ता** (माँड़ी लगा हुआ कपड़ा) कहते हैं। माँड़िया लत्ते के सूत के लिए ऋग्वेद में **शिस्न** (ऋक् १।१०५।८) शब्द आया है और निरुक्त-कार (यास्काचार्य) ने उसका अर्थ भी 'अस्नात सूत्र' किया है। यदि बाने के घने तार सटकर पड़ते चलें और कोली हत्त्थे से उन्हें ठोक-ठोककर अच्छी तरह मिलाता चले तो वह कपड़ा **गफ, अटूट** या **डबीस** (फा० दबीज) कहाता है। बेगरा बुना हुआ कपड़ा **झन्ना, झिन्ना, झीना**[1] या **झिरझिरा**[2] (देश० जिज्झर) कहाता है। बुनने में कुछ लापरवाही होने से कपड़े में थोड़ी-सी **कनि** (दोष) भी आ जाती है।

§६८२—कपड़ा बुनते समय जब कँघी का गेवा (तान) दायें या बायें झुक जाता है या पसार का दो-एक तार टूट जाता है तब कपड़े की लम्बाई में कुछ दूर तक खाली-सी जगह बन जाती है। उस जगह में बाने का तार तो दिखाई देता है लेकिन ताने का तार नहीं होता। उस खराबी को कोलियों की बोली में **झिरी, छँदौरा, औतक, औतङ्ग** (इग० में), **आँचली** (खुर्जा० में) या **उचना** कहते हैं। कभी-कभी जब **ढीलगाढ़** (पसार का अधिक ढीला हो जाना) हो जाती है या कंघी के दो-तीन गेवे (तानें) टूट जाते हैं तब चार-पाँच तारों का गूँजटा-सा बन जाता है। इकट्ठे तारों का यह गूँजटा कुछ दूर तक कपड़े की लम्बाई में दिखाई देता है। उसे **साँट, गुच्छा,** या **जोर** (इग० में) कहते हैं। यदि बुनावट में ताने-बाने के तार तितर-बितर फैले हुए कुछ-कुछ मकड़ी के जाले की भाँति दिखाई दें तो वे **छपका** कहाते हैं। कपड़े की खराबियों में छपका बड़ी खराबी है। कोली के कपड़े में यदि छपका नाम की कनि (खराबी) होती है तो उस **थान** (बारह गज लम्बा कपड़ा) को उसे **औने-पौने** दामों में ही बेचना पड़ता है।

§६८३—**सादा, जीन** और **दुसूती** नाम की बुनावटें ही कोली प्रायः बुनते हैं। ताने-बाने

[1] "झीनी-झीनी बीनी चदरिया।"—क० ग्रंथावली, ना० प्र० सभा काशी।

[2] देश० जिज्झर—दे० ना० मा० ४।२६।

के सूतों को रँगकर जो कपड़े बुने जाते हैं उनमें **डोरिया, दरियाई** धारिया **धूपछाँह, चौखाना, झिलमिली, उछर-कूदनी, लहरन, छींट** और **बुँदका** नाम की बुनावटें अधिक प्रचलित हैं।

सूत से जब कपड़ा बुन जाता है तो उसमें उतना वजन नहीं बैठता जितना कि प्रारम्भ में सूत का वजन था। तानी पूरने में, पाई करने में और बुनने में रगड़ से कुछ अंश झड़ता रहता है। उस **झड़न** या **कमताई** (कमी) को **छीजन** या **करदा** कहते हैं।

दड़ी की पसार और उसमें काम आनेवाले औजार

§६८४—दड़ी के ताने में आमतौर से **पंचतारा** भना हुआ सूत लगता है। पाँच तारों को मिलाकर बनाया हुआ गोला **पिंडा** कहाता है। पिंडे का पंचतारा चरखे पर भाना जाता है। बाने में कच्चा **अठतारा** लगता है। दड़ी बटे हुए ताने-बाने की भी बनती है। बुनाई के समय ताने के सिरों पर आगे-पीछे दो मोटे-मोटे बाँस बाँधे जाते हैं जो **सिरोंधे** (ज़ु० सिरबन्द) कहाते हैं। दोनों ओर के सिरोधों (सं० शिरस् + सं० बन्धक) में तीन-तीन **अड़ेका** या **कसान** (रस्सियाँ) बाँध देते हैं और फिर उन कसानों को खींचकर मजबूती से खूँटों में बाँध देते हैं। पसार के बीच में दाईं बाईं ओर दो खूँटे गाड़कर उनके ऊपर एक बाँस बाँध देते हैं जो **झिल्लम** कहाता है। झिल्लम के ऊपर दो-दो छोटे-छोटे डंडे लगे रहते हैं जो **माकड़े** कहाते हैं। दड़ी की पसार में माकड़े वह काम करते हैं जिस काम को कि कपड़े की तानी की पसार में **चिरैया** करती हैं। माकड़ों को ऊँचा
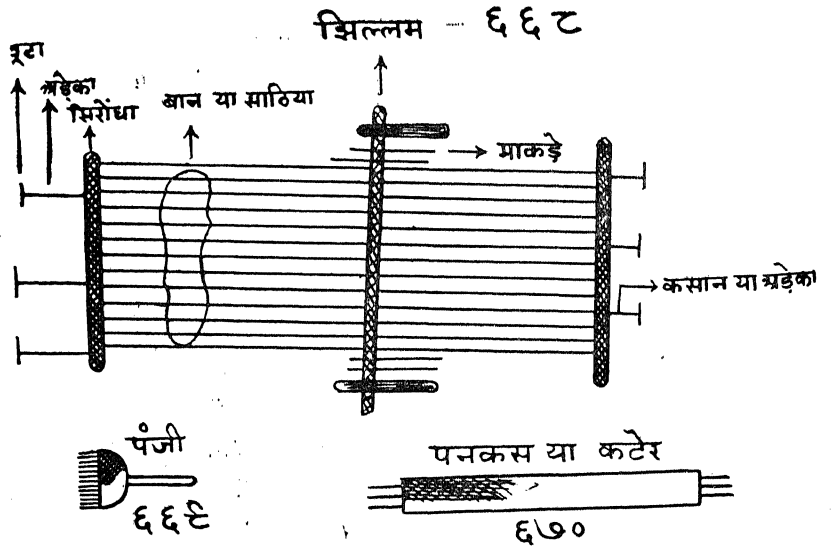
[रेखा-चित्र ६६८ से ६७० तक]

नीचा करके ही दड़ी के पसार की बैएँ ऊँची-नीची की जाती हैं। वास्तव में पसार का दम बाला) माकड़ों और बैओं से ही खुलता है। दम खुलने पर दड़ी बुननेवाला कोली **तैरी** (पटरी-सी जिस पर बाने का सूत लिपटा रहता है तैरी कहाती है) को दाईं-बाईं ओर फेंकता है। तैरी द्वारा बाने का तागा पड़ जाने पर बुनकर उसे **पंजी** (लकड़ी के हत्ते का एक औजार जि पाँच कीलें एक सोध में लगी रहती हैं) से ठोकता चलता है। बुने हुए हिस्से की चौड़ाई को रखने के लिए **पनकस** (एक प्रकार की लकड़ी) लगा दी जाती है।

§६८५—**दड़ी की बुनावटों के नाम**—(१) **काँटे-पट्टी**—इस बुनाई में दड़ी की धरती पर क्रमशः रंगीन पट्टी और काँटे बनते जाते हैं।

(२) **कुत्ता-पंजिया**—इस बुनाई में रंगीन सूत के कुत्ते के पंजे बनाये जाते हैं।

(३) **चौपड़ी**—इस बुनाई में खानों के अन्दर आधार और लम्ब रूप में पट्टियाँ पड़ती हैं।

(४) **तिबैइया**—इसकी बुनाई में बाने के तार की लहर-सी बनती जाती है। इस बुनावट को **लहरा** नाम से भी पुकारते हैं। इस बुनाई में तीन बै लगती है।

(५) **बँदरिया**—इसमें भी बैओं के हिसाब नोंकदार लहरें पड़ती हैं।

(६) **मछरिया या जल-मछरी**—इसमें दो नीली पट्टियों के बीच में सफेद धरती पर रंगीन सूत में मछलियाँ बनाई जाती हैं।

(७) **मोर-हुलासी**—इस बुनाई में मोरों को नाचते हुए दिखाया जाता है।

(८) **लीलावी** या **लीलयाबी** (सं० नील + फा० आबी) इस बुनाई में एक पट्टी गहरी
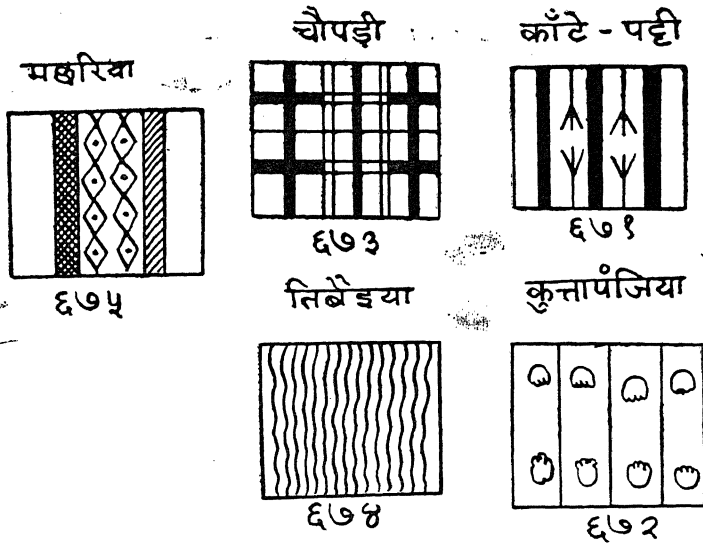
[रेखा-चित्र ६७१ से ६७५ तक]

नीली और एक पट्टी बहुत हलकी नीली पड़ती है। हलके नीले रंग को कोलियों की बोली में **आबी** (=आब अर्थात् पानी से सम्बन्धित) कहते हैं।

(९) **सतरंजी या सतरंगी**—जिस दड़ी में कई तरह के रंगों की पट्टियाँ पड़ी हों और खाने भी बने हों वह दड़ी **सतरंजी** या **सतरंगी** कहाती है।

अध्याय ११

कंजड़

§९८९—घुमक्कड़ जातियों में से एक जाति कंजड़ भी है। इस जाति के लोग **कंजरा या कंजड़ा** कहाते हैं। अब कंजड़े वर्षों से स्थायी घर बनाकर भी रहने लगे हैं। तहसील कोल में सैकड़ों कंजड़े स्थायी रूप से रहते हैं। ये अपने को **घियारा** कहते हैं और हिन्दू बतलाते हैं। घियारों के निम्नांकित काम हैं—

(१) रस्सी बनाना (२) सिरकी बनाना (३) ईंडुरी, झुंझुना, चमरख और छींके बनाना (४) खस की टट्टी बनाना।

रस्सी बनाना

§६८७—पटसन और फुलसन नाम के पौधे कातिक की फसल में उगाये जाते हैं। उनकी ऊपरी पटारें उचेलकर **सन** (सं० शण) तैयार किया जाता है। सन की पटार **पूँजा** या **पौना** कहाती है। पंद्रह-बीस पूँजों को इकट्ठा कर दिया जाय तो वह इकट्ठा किया हुआ रूप **गूँजटी** या **गुँजौटी** कहाता है।

§६८८—एक विशेष प्रकार की झूँड़दार घास (सं० झुण्ट>झुंड>झूँड़) **मूँज** (सं० मुंज[1]) कहाती है। मूँज का पौदा जमीन में से पत्तियों के रूप में ही निकलता है। पत्तियों के उस जमघट को **झुरमुट** (सं० झुंटमुष्ट) भी कहते हैं। झुरमुट के बढ़ जाने पर उसमें कई सरकंडे निकल आते हैं। **सरकंडों** (सं० शरकाण्ड) की कोथ को कूटकर मूँज की गूँजटियाँ तैयार की जाती हैं और उन्हें चरखी से ऐंठकर कंजड़े उनकी रस्सियाँ बनाते हैं। सन और मूँज के पूँजे चरखी से ढेरे जाते हैं। चरखी द्वारा रस्सी को ऐंठना **ढेरना** कहाता है। कंजड़ों की चरखी **ढेरनी** भी कहाती है।
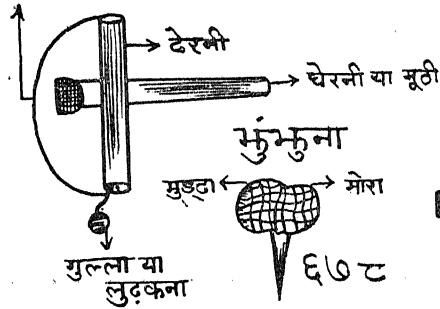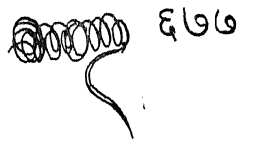
चरखी के हिस्से—[रेखा-चित्र ६७६ से ६७९ तक]

§६८९—चरखी में बाँस की एक खपच्च होती है जिसके सिरों पर एक-एक छेद होता और एक छेद बीच में भी होता है। उस खपच्च को ही **चरखी** या **ढेरनी** कहते हैं। बीच छेद में एक लकड़ी फाँस दी जाती है जिसे **घेन्नी, घेरनी** या **मूठी** कहते हैं। ढेरनी के सिरे छेदों में एक डोरी बाँधी जाती है जो **मलन** कहाती है। ढेरनी के एक छेद में छोटी-सी डोरी बाँध कर उसमें ईंट का एक टुकड़ा बाँध देते हैं जिसे **गुल्ला** या **लुढ़कना** कहते हैं। गुल्ले के बोझ चरखी आसानी से घेरनी पर घूमती रहती है और उसके साथ मलन भी घूमता है। मलन सन या मूँज का पूँजा लगा रहता है, अतः उसमें ऐंठे लगते जाते हैं। चरखी द्वारा इंठे हुए पूँ **गुनी** या **पई** कहाते हैं। गुनी को इकट्ठा करके लपेट लिया जाता है। लपेटी हुई गुनी **बैंठिर** या **गूजरी** कहाती है। गुनी का लंबा रूप ही रस्सी कहाता है।

---

[1] "एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुंजइत्।"—अथर्व० १।२।४
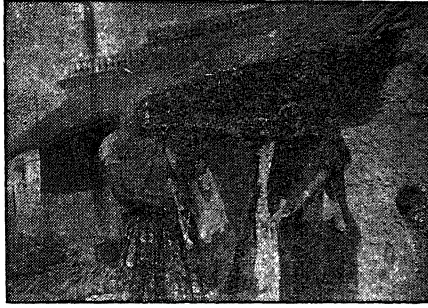
चरखी घुमाकर रस्सी तैयार करती हुई कंजरों की स्त्रियाँ— [चित्र २६]

सिरकी बनाना— [चित्र ३०]

§६६०—सरकंडों के ऊपर लम्बे और पतले तीर से निकलते हैं जो **तुरी** कहाते हैं। तुरियों से ही **सिरकी** बनती है। सिरकियों का जुड़ा हुआ जोड़ा **पाल** कहाता है, जो बैलगाड़ी या ऊँटगाड़ी के ऊपर बरसात के दिनों में डाला जाता है।

सिरकी बनाने में काम आनेवाले औजार और सिरकी की बुनावट

§६६१—जितनी लम्बी सिरकी बनानी होती है, उतनी ही दूरी पर पहले दो घुंडीदार कीलें एक सीध में गाड़ लेते हैं। उन कीलों को **अड्डा** कहते हैं। उन दोनों अड्डों के बीच में **तुरियाँ** एक दूसरी से सटाकर बिछा दी जाती हैं। भीगी हुई मूँज के पूँजों से तुरियों के सिरे मिलाकर बाँधे जाते हैं। यह विधि **सिरकी नारना** कहाती है। बिछी हुई तुरियों के एक अड्डे के पास सिरे पर चार-पाँच तुरियों को एक जगह बाँध दिया जाता है। यह बँधाव **मूँदा** कहाता है। मूँदे में बाँधी हुई सुतली या रस्सी काफी लम्बी होती है। **चापर** (एक औजार जिससे तुरियों में छेद करके रस्सी आर-पार करते हैं। यह आकृति में सूजे की भाँति होता है) से तुरियों में छेद करके **जमान** (बाँस की एक तीली) से उनमें रस्सी पिरोते चलते हैं। इस तरह एक सिरे के मूँदे से लेकर दूसरे सिरे के मूँदे तक छेदों में होकर रस्सी डालने को **सर डालना** कहते हैं। तुरियों के छेदों में पड़ी हुई वह रस्सी **सर** कहाती है। यदि सर तुरियों के ठीक बीच में न पड़े तो सिरकी जल्दी टूट जाती है। इस प्रकार पूरे पल्ले में तीन सरें अवश्य डाली

जाती हैं। चार-चार या छः-छः तुरियों में एक साथ सामूहिक रूप में फन्दा डालना **दत्ती डालना** कहाता है। उस फन्दे को **दत्ती** कहते हैं। यह तीसरी सर के बाद में पड़ती है।
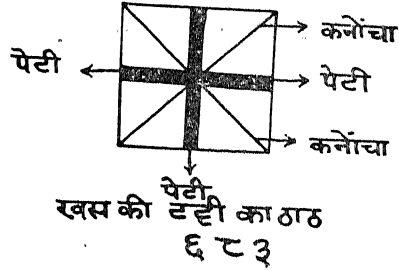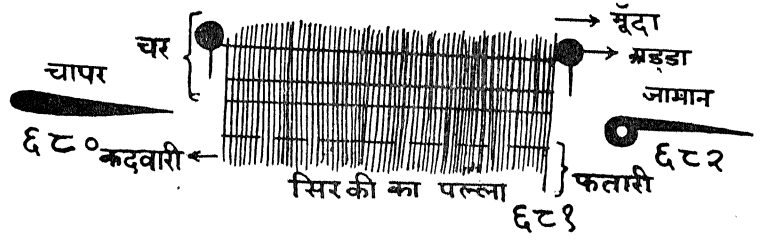
[रेखा-चित्र ६८० से ६८३ तक]

चमरख और झुंझुना बनाना

§६६२—पहले मूँज के **गावे** (कुटी हुई नरम मूँज) को दुहरा मोड़कर उसकी **गूँजट बनाई** जाती है। गूँजट पर दो-तीन जगह मूज के पूँजों से **बंद** लगाये जाते हैं। बन्द लगी हुई गूँजट **बीड़ी** या **बेढ़ी** (सं० वेष्टित) कहाती है। जब बीड़ी पर **गुनी** (सं० गुण>रस्सी, गुनी> पतली रस्सी) सटाकर लपेट दी जाती है तब वह **चमरख** कहलाने लगती है। गेहूँ की नरई (तना) से झुंझुने भी बनाये जाते हैं। झुंझुने के **मुड्ढे** (ऊपरी भाग) में ऊँची उठी हुई टेढ़ी लाइन होती है जो **मोरा** कहाती है।

खस की टट्टी बनाना

§६६३—एक झूँड़दार लम्बी घास, जिसमें से झाड़ू की सींकें भी निकलती हैं, **गाँड़र** (सं० गंडीरा=एक प्रकार की घास>मो० वि०) या **बिन्ना** (सं० वीरण) कहाती है। गाँड़र की जड़ को ही **उसीर** (सं० उशीर) या **खस** (सं० खस, फा० ख़स>स्टाइन०) कहते हैं। गाँडर के अर्थ में निघण्टु प्रकाश (५।१) में खसकाण्ड शब्द आया है। 'उशीर'[1] शब्द बहुत पुराना है जो कालिदास-काल में खस के लिए प्रयुक्त होता था। पाणिनि ने भी 'उशीर'[2] का उल्लेख किया है।

§६६४—लोहे का नुकीला एक डंडा-सा जिससे खस (गाँड़र की जड़) खोदी जाती है **खन्ता**

---

१ "किसरादिभ्यःष्ठन्"—अष्टा० ४।४।५३, गणपाठ

२ "स्तनन्यस्योशीरम्"—अभि० शाकु०, ३।६

"वीरणस्यतु मूलं स्यादुशीरम्"—भाव प्रकाश निघण्टु, सैदमिट्ठा बाजार लाहौर, १६०४ ई० श्लो० ८६, पृ० २६।

(सं० खनित्र[1]), **साबर** (सं० शर्वला[2]) या **गैंदारा** कहाता है। खन्ते से कंजड़ गाँड़र को जड़ सहित खोदकर इकट्ठी करते जाते हैं। गाँड़र की वे छोटी-छोटी गडि्डयाँ **ठेकी** कहाती हैं। ठेकियों को जब एकत्र कर लिया जाता है तब उसे **गड्डा** या **गठरा** कहते हैं। उस गठरे में से एक-एक मूठा लेकर दराँत से गाँड़र में से खस काटते हैं। यह क्रिया **मुगलाना** कहाती है। खस की मूठी को **मुगला** कहते हैं। खस के मुगलों का बोझ बनाकर अपने घर ले आते हैं और उससे खस की टट्टियाँ बनाते हैं। त० मथुरा में जमुना नदी के खादर में गाँड़र के हार के **हार** (एक चके मैदान) हैं। त० कोल के कंजड़ वहीं से खस के बोझ फागुन-चैत में लाते हैं।

§९९५—टट्टी तैयार करने के लिए सबसे पहले बाँस की फन्चटों का एक आयताकार चौखटा बनाया जाता है और उसमें आमने-सामने के कोनों को मिलाते हुए दो **कनौंचें** (दो
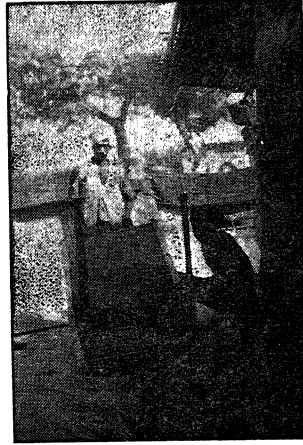
खस की टट्टी—[चित्र ३१]
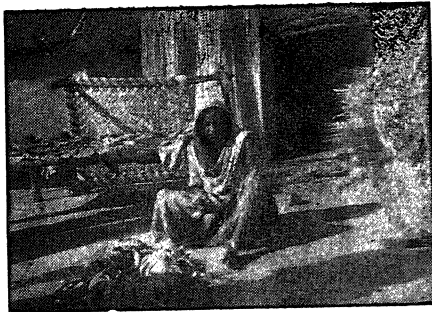
ईंड़ुरी बनाना—[चित्र ३२]

१ "अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।"

—ऋक्० १।१७९।६

"यथाखनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।"

—मनु० २।२१८

२ विक्रमांकदेव-चरित (१२।६४) की टीका में 'तोमर' का पर्याय 'शर्वला' दिया गया है।

फच्चटें) बाँधी जाती हैं। कैंचीनुमा बँधी हुई फच्चटों का चौखटा **ठाट** कहाता है। कैंचियों के बीच में पड़ी हुई खपंचें **पेटी** कहाती हैं। रस्सी से ठाट बाँधना **ठाट गुमना** कहाता है। खस के मुगलों को ठाट के ऊपर बिछाया जाता है। चौड़ाई में बिछाया हुआ पर्त **तीरन** कहाता है। तीरन के ऊपर बाँस की खपंचे बाँधी जाती हैं। इसी प्रकार पहले तीरन के ऊपर दूसरा तीरन बिछाया जाता है। एक तीरन पर दूसरे तीरन की बिछाई **फिटकरी** कहाती है। जिस टट्टी की **फिटकरी** घनी और भारी होती है वह पानी से तर हो जाने पर बहुत देर तक ठंडक देती रहती है।

अध्याय १२

कुएँ का नल ठोका और सेहा

§६६६—कुआँ खुद जाने पर यदि **च्वान** (सं० च्यवन) अर्थात् **सोत** (सं० स्रोत) में से पानी कम निकलता है तो उसमें नल भी ठुकवाया जाता है। नल ठोकनेवाला कारीगर **नल ठोका** कहाता है। पुराने कुएँ में कीच, मिट्टी, कंकड़, पत्थर, खपरे आदि जब अधिक भर जाते हैं तब उसका सोत रुक जाता है और पानी भी **बसीला** (बदबूदार) हो जाता है। इस खराबी को दूर करने के लिए उसकी सफाई की जाती है। इस सफाई की क्रिया को **सेहाई** या **स्याई** कहते हैं। सेहाई करनेवाला सेहा कहाता है। सेहे लंगोट बाँधकर कुएँ के पानी में रस्सी के सहारे उतर जाते हैं और कुएँ की तली पर से कीच, कंकड़, खपरे आदि लेकर **जेंतो** (छबड़े जिनके किनारों पर चार-चार रस्सियाँ बँधी रहती हैं) में भरते हैं और वे जेंते रस्सियों द्वारा ऊपर खींच लिये जाते हैं। सेहाँ जब कुएँ की सेहाई करता है तब कुएँ के पानी में कीच मिल जाती है। वह कीच पानी के ऊपरी धरातल तक आ जाती है। उस कीच को **खाब** कहते हैं और खाब मिला हुआ वह पानी **खबीला** कहाता है।

कुएँ की खुदाई और चिनाई

§६६७—कुआँ जब खुदता है तब उसमें से क्रमशः कई प्रकार की मिट्टी निकलती है। कुछ पीली-सी सफेद मिट्टी **मटियार** या **पोता** कहाती है। गाँवों की स्त्रियाँ अपने चौके (रसोईघर) के चूल्हे को पोता मिट्टी से ही पोतती हैं। कुछ-कुछ काली और लाल मिट्टी को **कबिस** कहते हैं। यह पानी पड़ने पर लेही की तरह हो जाती है और सूखने पर बड़ी सख्त बन जाती है। डेलीदार **भकभूसड़ी** (कालापन लिये हुए सफेद-सी) मिट्टी **मुटार** कहाती है। जिस मिट्टी में छोटी-छोटी कंकड़ियाँ मिली हों और जो दरदरी हो वह **छुन्न** कहाती है। चिकनी और सख्त मिट्टी **चीका** कहाती है। चीका मिट्टी का बड़ा और सूखा ढेला **कील** कहाता है। गाँवों के कच्चे घरों को चीका मिट्टी से ही ल्हेसा जाता है। पीले रंग की खसखसी मिट्टी **पीरा** कहाती है। गोबर और पीरा को मिलाकर ही घरों की लिपाई होती है। रेत मिली हुई एक मिट्टी **भसुआ** कहाती है। मामूली तौर से नरम मिट्टी **नरमौटा** और नरमौटा से अधिक कड़ी **पथरिया** कहाती है दानेदार

फिसलवाँ मिट्टी **बारू** और सफेद तथा चमकीले कणों से युक्त बारू **चाँदी** या **चंदी** कहाती है। कंकड़ियों से युक्त सफेद रंग की एक मिट्टी **बजर** कहाती है। पीले रंग की बजर को **हल्दिया** या **हरदिया** कहते हैं। बहुत पक्की और कड़ी मिट्टी जहाँ पर खुदाई आम तौर से रोक दी जाती है **मौंटा** कहाती है। गूलर की लकड़ी का बना हुआ बहुत बड़ा पहिया-सा (सं० पथिक>प्रा० पहिअ>पहिया) **जाखिन** कहाता है। जाखिन मौंटे पर ही जमाई जाती है। जाखिन के ऊपर गोलाई में ईंटों की चिनाई होती है। इस प्रकार की गोल चिनाई **गोला** कहाती है। गोले के अन्दर की सतह **कुएँ की कोठी** कहाती है। गोले को जाखिन के साथ-साथ जब नीचे की ओर धीरे-धीरे खिसकाया जाता है तब उसे **गोलागरकानौ** या **कुआ चलानौ** कहते हैं। गोले के ऊपर की गोलाईदार सतह **मन** या **जगत** (सं० जगती) कहाती है। जगत से पीछे की ओर चूना आदि से जो पक्की जगह बना दी जाती है उसे **गच** कहते हैं। गच से बाहर की ओर का गोलाईदार ऊँचा उठा हुआ किनारा **मनखंडा** या **मरखंडा** कहाता है (सं० मंडखण्ड + क>मनखण्डा)। कुएँ की **कोठी** (अन्दर का भाग) का वह भाग जहाँ तक पानी भरा रहता है **नार** कहाता है। चौमासों में वर्षा के कारण जब कुछ कुओं में पानी बहुत ऊपर आ जाता है तब उसे **तर्र बढ़ना** या **तर्र आना** कहते हैं। तर्र बढ़ने पर कुएँ की कोठी का बहुत बड़ा भाग नार ही बन जाता है, क्योंकि कुएँ में पानी चार-पाँच हाथ की नीचाई पर ही तो रहता है।

§६६८—जाखिन के नीचे कुएँ का चारों ओर का हिस्सा **औल** कहाता है। **अँकुरी** (एक औज़ार) और फावड़ों से औल में से मिट्टी निकालते हुए जाखिन को धीरे-धीरे नीचे खिसकाया जाता है। जिन मोटे-मोटे रस्सों में जाखिन बँधी रहती है वे **बर्र** या **बर्रा** (बैठ वरत्रा) कहाते हैं। यदि औल में से मिट्टी का बहुत बड़ा खण्ड खिसल पड़ता है तो वह **चहार** या **ढाइ** कहाता है। ढाइ यदि नलठोके के उपर गिर जाती है तो वह **कजाइल** (चोट लग जाने पर काम करने में असमर्थ) हो जाता है। यदि कुएँ की औल में से मिट्टी स्वतः ही गिरने लगे तो उस गिरावट को **गलक** कहते हैं। तब यह कहा जाता है कि **'गोला गलक दै रह्यौ है।'** किसी-किसी गोले में खास तरह की छोटी-छोटी ईंटें लगाई जाती हैं जिन्हें **गड़वारी** कहते हैं। जिस कोठी में गड़वारी ईंटें लगी रहती हैं, उस कोठी को भी **गड़वारी** कहते हैं। कुएँ की तली में नल को नीचा ठोकने पर ही पानी अधिक आता है। प्रायः बावन हाथ का नल बहुत पानी देता है। इसलिए **बावनिया** नल अधिक प्रसिद्ध हो गया है। गोला गरकते समय जब आखिरी मौंटे पर रुक जाता है, तब तली के केन्द्र में एक गज या एक हाथ गहरा कुंडा खोदते हैं। उस क्रिया को **सोत लगानौ** या **सोत दैनौ** कहते हैं। कुआँ खोदते-खोदते जिस स्थान पर पानी चूने लगता है, उस स्थान को **चुआन** या **च्वान** और पानी निकलने को **चुआन फूटना** कहते हैं। बरसात के दिनों में जब कुएँ में पानी उमड़ आता है तब उसे **तर्र आना** कहते हैं।

नल ठोकने और सेहाई में काम आनेवाले औजार

§६६६—गोला गरकाने में मिट्टी निकालने के लिए लोहे का एक यन्त्र काम आता है, जिसे **झाम** कहते हैं। **काँकर** (कँकरीली सख्त मिट्टी) काटने में जो औजार काम आता है, वह **सरिया** कहाता है। फावड़े की भाँति का नुकीला औजार **कुदरिया** कहाता है। कुएँ के स्रोत में से पानी निकालने का नोंकदार लोहे का औजार **साँगड़ा** कहाता है। सोत लगाने में काम आने-वाला भारी लोहे का नोंकदार डण्डा-सा **बरमा** (फा० बरमह्) कहाता है। तीन-चार हाथ लम्बी

लोहे की नोंकदार नली जिसका मुँह एक ओर खुला रहता है, **बोकी** कहाती है। एक छोटा-सा औजार **कसी** कहाता है। यह औल की मिट्टी काटने में काम आता है।
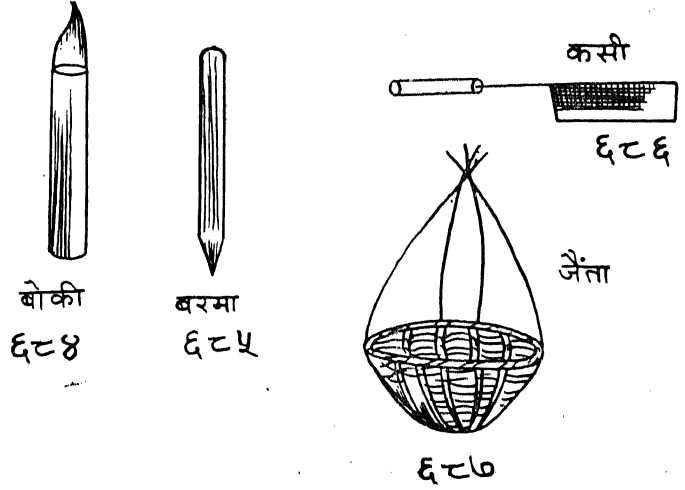
[रेखा-चित्र ६८४ से ६८७ तक]

अध्याय १३

कुम्हार

§१०००—मिट्टी के बर्तन बनानेवाला कारीगर **कुम्हार** (सं० कुम्भकार > प्रा० कुंभआर, कहाता है। हिन्दुओं में कुम्हार एक जाति है। इस जाति के लोग अपने को **परजापत** (सं० प्रजापति = ब्रह्मा) कहते हैं। कुम्हार के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'बीत्यौ ब्याहु कुम्हार कौ, लैं-लै भाँड़े जाउ।'[१]

मिट्टी का बना हुआ एक पाट-सा जिस पर कुम्हार बर्तन बनाता है **चाक** (सं० चक्र > प्रा० चक्क > चाक) कहाता है। चाक से सम्बन्धित निम्नांकित पहेलियाँ अलीगढ़ क्षेत्र के गाँवों में प्रचलित हैं—

"चलै पवन ते तेज लट्ठ बिनु हाथ न आवै।
फल आमैं अन्नेग फूलु तापै एकु न आवै॥"[२]

---

[१] कुम्हार का विवाह समाप्त हुआ, अतः बर्तन ले लेकर जाओ। भाव यह है कि मनुष्य अपने निजी काम को कर लेने के बाद दूसरे का काम करता है।

[२] वह हवा से भी अधिक तेज चलता है और बिना डंडे के हाथ नहीं आता। फल तो उस पर अनेक आते हैं लेकिन फूल एक भी नहीं आता।

"सारथ बैठ्यौ भुम्मि पै, रथु चालै भिन्नाइ।
एकु पैंडु नहिं बढ़ि सकै, चलौ करै जस बाइ ॥"[1]

चाक के अंग-प्रत्यंग

§१००१—जमीन में एक छोटा पत्थर गड़ा रहता है जिसे **थरी** या **थरिया** कहते हैं। थरी के बीच में एक छेद होता है जिसमें लकड़ी का एक नुकीला खूँटा गड़ा रहता है जो **कीला** या **कीली** कहाता है। कीली के ऊपर पत्थर का एक छोटा गोल पहिया होता है जो चाक के बीच में नीचे की ओर जमा हुआ रहता है। उसे **कुलबी, चकरौती** या **चकोतरी** कहते हैं। चकोतरी के चारों ओर गोलाई में कुछ मिट्टी लगाई जाती है जिसे **मदरा** या **ढरकनी** कहते हैं। चाक की किनारी **बार, बाड़** या **बाढ़** कहाती है। चाक के नीचे बार की अन्दर की किनारी **माँड़र** (सं० मंडल) कहाती है। बार और मदरे के बीच का हिस्सा **घेर** या **घर** कहाता है। चाक के ठीक बीच (केन्द्र) में ऊपरी धरातल पर एक गोल गड्ढा होता है जहाँ बर्तन बनाने के लिए **गौंदा** (कुछ मिट्टी) रक्खा जाता है, उसे **बिचौंदी** कहते हैं। बिचौंदी के चारों ओर की सतह **डारसल** या **अम्मर** (खुर्जा में) कहाती है। डारसल में चाक की किनारी के पास एक **गुलिया** (छोटा-सा गड्ढा) होती है जिसमें **चकरेटी** (सं० चक्र + यष्टिका = कुम्हार के चाक का डण्डा) डालकर चाक को घुमाया जाता है। बिचौंदी पर रक्खे हुए गौंदे के ऊपरी सिरे को **चुंदी** कहते हैं।

बर्तन बनाने में काम आनेवाली वस्तुएँ

§१००२—जो बारीक और कुछ काली मिट्टी बर्तन बनाने में काम आती है, वह **भामनी** या **कुम्हरौटी** कहाती है। कुम्हार जिस गड्ढे में से मिट्टी खोदकर लाते हैं, उसे **कुम्हरगढ़ा** कहते हैं। चौमासों में कुम्हरगढ़ों की मिट्टी **फोक** (मुलायम) हो जाती है अतः कुम्हार उसे **काँसू** (सं० काशू), **पाँसू** (खुर्जा में) या **लहाँसू** (एक लोहे का औजार जिसमें दोनों सिरे नीचे की ओर भुके रहते हैं) से खोदता है। कुम्हार लहाँसू को मिट्टी का राजा मानते हैं और मिट्टी को रानी। कुम्हरगढ़ों में **कबिसा** (सं० कपिशा > कबिसा) मिट्टी होती है जो कुछ काली और चिकनी होती है। क्वार मास में मिट्टी खोदते समय फावड़े से दस-दस या बीस-बीस सेर का ढेला खोदा जाता है जो **चहार** कहाता है। चहार खोदते हुए कभी-कभी गड्ढे के किनारे की दस-पन्द्रह मन की चहार खिसल पड़ती है जिसे **ढाइ** कहते हैं। कुम्हार **कुदार** (सं० कुद्दाल) से खोदी हुई और एक छबड़े में भरी हुई मिट्टी को जब मुश्किल से उठा पाता है तो वह वजन **हेल** कहाता है। कुम्हार के घर में बनी हुई चबूतरी, जिस पर मिट्टी फोड़ी जाती है और गलाई जाती है, **मटियार** कहाती है। मटियार के बीच का भाग जहाँ मिट्टी गलती है, **तगार** (फा० तगार) कहाता है।

§१००३—कुम्हार के चाक के पास पानी से भरी हुई **चकैंड़ी** (सं० चक्रभाण्डिका > चक्कहंडिया > चक्कइंडिआ > चकैंड़ी = मिट्टी का एक बर्तन) रक्खी रहती है जिसमें चाक से बर्तन काट कर उतारने के लिए एक डोरा पड़ा रहता है। उस डोरे के सिरों पर दो-दो अँगुल की छोटी-छोटी दो लकड़ियाँ बँधी रहती हैं। वह डोरा **छैना** (सं० छेदन क > प्रा० छेअक > छैना)

---

[1] रथ हाँकनेवाला भूमि पर बैठा है और रथ खूब जोर से चल रहा है। वह रथ हवा की भाँति चलता रहता है लेकिन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता।

या **ऐंता** (इग० में) कहाता है। लकड़ी का एक औजार जो चाक बनाने में काम आता है **चके-रना** कहाता है। पत्थर की एक छोटी पटिया होती है, जिस पर कुम्हार गूँदी हुई मिट्टी को मलता है, उसे **पथरौटा, पाट** या **लुड़ासा** कहते हैं। उथली नाँद की तरह का मिट्टी का एक बर्तन **कूँड़ा** कहाता है। चाक से उतारी हुई **भामनियाँ** (अध बने घड़े) कूँड़े में ही रक्खी जाती हैं और वे **पीड़ी** (पकी हुई मिट्टी की बनी हुई मूठदार चौरस और गोलाईदार सतह वाली वस्तु जिसे घड़े आदि में अन्दर लगाते हैं) और **थापे** (लकड़ी का औजार जिससे बर्तन ऊपर से पीटा जाता है) द्वारा पीट-पीट कर बढ़ायी जाती हैं। फिर वे घड़ों का रूप ले लेती हैं। थापे की चोट से कच्चा घड़ा तिरकने न पाये इसलिए कुम्हार घड़े को औंधा करके और पीड़ी उसके अन्दर लगा कर थापे की चोट लगाता है। बाद में **परिया** (मिट्टी की मूठदार वस्तु) फेरकर उन घड़ों को चिकनाया जाता है। सूखे हुए घड़ों पर रंग करने के लिए एक वस्तु काम में लाई जाती है जिसे **फिरकनी** कहते हैं। यह मिट्टी की गोल-गोल बनी हुई होती है। इसमें एक सरकंडा तार सटाकर लगाते हैं।

चाक और कुम्हार की कुछ वस्तुएँ तथा बर्तन [रेखा-चित्र ६८८ से ६९२ तक]
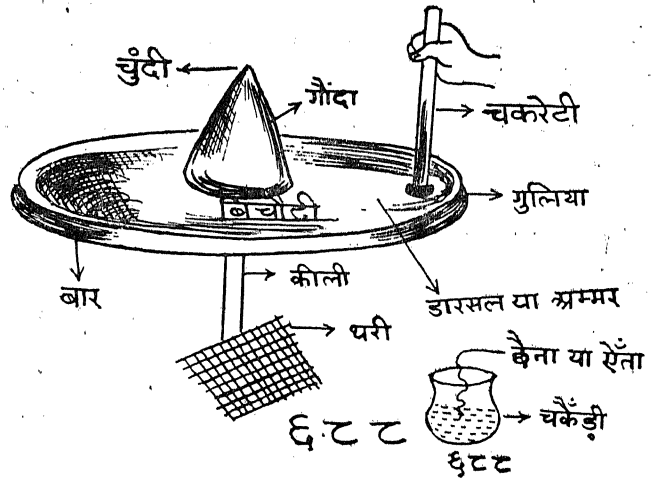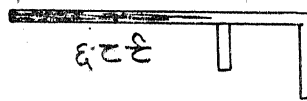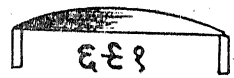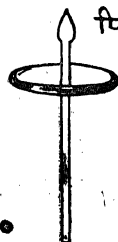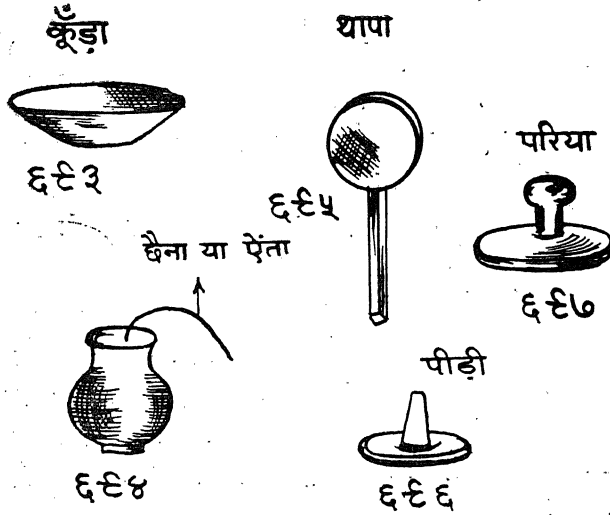
[रेखा-चित्र ६६३ से ६६७ तक]

बर्तन बनाने के लिए मिट्टी तैयार करना

§१००४—कुम्हरगढ़ा में से लाई हुई मिट्टी को कुम्हार पहले मटियार पर रखकर फोड़ता है और उसमें से कंकड़-कंकड़ी और **खपीचा** (खपरा) आदि बीनता है। फिर मोटी-मोटी मिट्टी को रोर लेता है। शेष बारीक मिट्टी को पीसकर चून-सी बना देता है। इस क्रिया को **चुनियाना** कहते हैं। पिसी हुई बारीक मिट्टी **चुनी** कहाती है। चुनी में पानी डालकर गलाया जाता है और पाँवों से उसे खूँदा जाता है। वह क्रिया **गुँदाई** कहाती है। गुँदाई के बाद ही गीली मिट्टी के ८-१० सेर वजन के भाग **गौंदा** या **गुल्ला** कहाते हैं। येही गौंदे चाक की बिचौंदी पर रक्खे जाते हैं। यदि गौंदा **पनीला** (पानी की मात्रा आवश्यकता से अधिक जिसमें हो) हो जाता है तो कुम्हार उसमें **बुरकन** (बारीक साफ रेत) मिलाकर उसे ठीक कर लेता है। यदि कुम्हार को गागर, कछरी, तौला और मटका आदि में से कोई एक चीज बनानी होती है तो पहले वह चाक पर उसी लमूने का छोटा रूप बना लेता है जिसे **भामनी** कहते हैं। इससे बनी हुई नाम धातु **भाँना** या **भाँइना** प्रचलित है जिसका अर्थ है भामनी बनाना। भामनियाँ बाद में थापे और पीढ़ी से कूँड़े में रखकर पीटी जाती हैं। इस क्रिया को **गढ़ना** कहते हैं। जो बर्तन गढ़ा जाता है, वह उस समय **गढ़नी** कहाता है। कछरियाँ और गागरें पहले भामनी का रूप लेती हैं, फिर गढ़नी का। अन्त में पूरी तरह गढ़ जाने के उपरांत अपनी असली संज्ञा प्राप्त करती हैं। गढ़नियों को धूप में सुखाकर उन्हें फिर रँगते हैं। यदि **हालेंहाल** (ताजी) बनाये हुए घड़ों को सुखाने रख दिया जाय और फिर तुरन्त ही उन पर मेह पड़ जाय तो बेचारे कुम्हार पर **भाभई** (बड़ी मुसीबत) घिर आती है।

चाक पर भामनी बनाने की विधि

§१००५—कुम्हार पहले बिचौंदी पर गौंदा रखकर चाक को **भन्नाता** (तेज घुमाता) है। जब चाक पूरी चाल पर घूमता है तब **ताव आना** कहाता है। चाक जब ताव पर होता है तब कुम्हार गौंदे को दोनों हाथों से दबाते हुए ऊपर की ओर उसे गावदुम बनाता है। इस क्रिया को **पुरी सूँतना** या **पुरी बनाना** कहते हैं। फिर कुम्हार अपनी उँगलियों और अँगूठों से गौंदे

में गड्ढा करते हुए अभीष्ट बर्तन का मध्यवर्ती भाग बनाता है जिसे **पिटार** कहते हैं। फिर एक हाथ अन्दर और एक बाहर लगाते हुए बर्तन को कुछ चौड़ाता है और ऊपर से चिकनाता है। यह क्रिया **पोरा देना** कहाती है। पोरा देने से किसी-किसी बर्तन में उठी हुई धारियाँ-सी भी बनती हैं; वे **फरी** कहाती हैं। बर्तन की गर्दन बनाना **नार धरना** कहाता है। नार धर जाने के बाद बर्तन का मुँह बनाया जाता है, जिसे **किनाठी** या **किनार** कहते हैं। इसके बाद छैने से काटकर बर्तन को जमीन पर रख देते हैं। छैने से काटते समय बर्तन के पैंदे में एक मामूली गड्ढे का निशान बन जाता है जिसे **ऐंतन** कहते हैं।

§१००६—कुछ बर्तन ऐसे होते हैं कि उनमें पैंदा अलग से लगाया जाता है ताकि वे जमीन से कुछ ऊँचे रहें, जैसे नाँद आदि में। बाद में जोड़ा हुआ वह पैंदा **बाछ** कहाता है। बाछ लगाने में कुम्हार बड़ी कलाकारी दिखाता है। कुम्हार का **सीखतर** (नौसिखिया) बालक यदि बर्तन को बनाते-बनाते **टेढ़ा-मेढ़ा** या **भौंड़ा** (कुरूप) कर देता है, तो उसे कुम्हार डाँटता है और **भूँभल** (किंचित् रोष) में उससे **उजबक** (तु० उजबक=मूर्ख) कह देता है। **'उजबक की-हाँई देखना'**[1] मुहावरा भी प्रचलित है।

बर्तनों को आग में पकाना

§१००७—कुम्हार एक गड्ढे में पहले कंडों को गोलाई में चिनता है। फिर उनके ऊपर बर्तन चिने जाते हैं। प्रायः कंडों के एक **चये** (चिनाई) के ऊपर बर्तनों का एक **चया** (सं० चय=तह) और फिर कंडों के दूसरे चये पर बर्तनों का दूसरा चया लगाया जाता है। चये में बर्तन चिन जाने पर उनके मध्य भाग का सिरा **फड़ेड़ी** कहाता है। इसी जगह से आग नीचे पहुँचाई जाती है। जिस गड्ढे में मिट्टी के बर्तन पकते हैं या कहिए कि जहाँ चया लगाया जाता है, वह स्थान **अबा** (सं० आपाक[2] > प्रा० आवाग, आवाअ > आवा > अबा) कहाता है। बर्तनों के पकने के सम्बन्ध में एक पहेली प्रसिद्ध है—

"चारि आँगुर को पेड़, और सवा मन कौ पात।
फल लागें अलग-अलग, परि पकि जायँ एक साथ॥[3]

कुछ बर्तन पकने से पहले रँगे जाते हैं; जैसे घड़ा, कमोरी, हँड़िया आदि; लेकिन सुराही कूँड़ी आदि पकने के बाद ही रँगे जाते हैं।

बर्तनों की रँगाई और चिताई

§१००८—पकाये जाने से पहले गागर, कछरी आदि के पैंदे और बगली पर **पीर** (पीली) मिट्टी पोती जाती है। उसे **लेश्रा लगाना** कहते हैं (सं० लेपक > प्रा० लेवअ > लेवा > लेश्रा)। एक प्रकार की पीली मिट्टी **रामरज** कहाती है। लेए के बाद में ऊपर से रामरज पोतन **ललौहनी देना** या **सुर्खी देना** कहाता है। कुम्हार काली कंकड़ियों को पीसकर काला रँ बनाते हैं, जिसे **कारौनी** (सं० कालवर्णिका) कहते हैं। सफेद खड़िया मिट्टी से बनाया हुआ रँ **सेतौनी** (सं० श्वेतवर्णिका) कहाता है। जिस मिट्टी से घड़े रँगे जाते हैं, वह **बन्नी** (सं० वर्णिका

---

[1] उजबक (=मूर्ख) की तरह देखना।

[2] अथर्व ८।६।१४

[3] पेड़ (कीली) तो चार अंगुल का है, लेकिन उसका पत्ता (चाक) सवा मन का है। उस पे पर फल (बर्तन) अलग-अलग समय में लगते हैं, लेकिन वे सब एक साथ पक जाते हैं।

कहाती है। कारौनी और सेतौनी में फिरकनी से डोबा लेकर घड़ों और कछरियों आदि की गर्दन और कोठों पर जो रेखाएँ और बूँदें स्याह-सफेद बनाई जाती हैं; वे **चिताई** या **चीतन** (सं० चित्रण) कहाती हैं। कुछ घड़े ऐसे भी बनाये जाते हैं जिन पर चीतन नहीं होती। बिना चीतन के घड़े प्रायः पक जाने के बाद ही रँगे जाते हैं। उनकी पैंदियों पर लेत्रा भी बाद में ही फेरा जाता है। जिन घड़ों की बगली पर चीतन की जाती है, वे तो प्रायः चीतन हो जाने के उपरान्त ही अवे में पकाये जाते हैं। सूर के एक पद में घड़ों की रँगाई और पकाई के क्रिया-क्रम की ओर संकेत किया गया है।[1]

अध्याय १४

सिकलीगर

§१००९—लोहे के हथियारों को पैना करनेवाला तथा चमकानेवाला कारीगर **सिकलीगर** या **सिकलगर** (अ० सैक़ल > सिकल = हथियार को 'चमकाने की क्रिया + फा० गर = वाला) कहाता है। सफाई के लिए मसाले का हाथ फेरना **मँजाई** या **सुताई** कहाता है। एक प्रकार का पत्थर जिस पर हथियार पैनाया जाता है **मसकला** (अ० मसक़ला) कहाता है। कबीर ने 'मसकला' का प्रयोग साखियों में किया है।[2]

हथियार पर जो मैल जम जाता है, उसे **काई** या **जंग** (फा० ज़ङ्ग) कहते हैं।

कुछ हथियार और उनके अंग

§१०१०—तलवार की आकृति से कुछ-कुछ मिलता-जुलता एक हथियार **पटा** या **पटेसा** (सं० पट्टिश[3] > प्रा० पट्टिस > पट्टेस > पटेसा) कहाता है। पटे के दो भाग होते हैं। ऊपर का भाग जिसमें गोलाईदार लोहे का बड़ा नलका-सा बना रहता है **भोगली** कहाता है। **पटेसिया** (पटेसा घुमानेवाला व्यक्ति) पटेसा घुमाते समय भोगली में अपना हाथ डाल लेता है। भोगली

---

[1] "रँग दीन्हौ हो कान्ह साबरैं अँग-अँग चित्र बनाये।
यातैं गरे न नैन नेह तैं अवधि अटा पर छाये।
ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि सुरति आनि सुलगाये ॥"
—सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०।३७८१

[2] "गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहि **मसकला** देय।"
—कबीर-बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, हरक, साखी १६०।
"सबद **मसकला** फेरि कर, देह द्रपन करै सोइ।"
—कबीर ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, जीवन मृतक कौ अंग, दो० ३।

[3] "असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि।"
—महाभारत, सातवलेकर संस्करण, विराट पर्व, गोहरण, ३२।१०

के ऊपरी सिरे पर लोहे का एक कड़ा पड़ा रहता है जो **नथा** कहाता है। पटे का नीचे का हिस्सा पतले और लचकदार लोहे का होता है। लोहे की वह पत्ती लम्बी और चौड़ी होती है। सिरे पर नोंक निकली रहती है। उस पत्ती को **सैफ** (सं० स्फ्य, फा० सैफ़ह्) या **पासी** (सं० प्रासिका>पासिआ>पासी) कहते हैं। महाभारत के द्रोण पर्व में उल्लेख है कि बकराक्षस के भाई अलम्बुष ने भीम पर शक्ति, कणप, **प्रास**[1], शूल और पट्टिश आदि अस्त्र बरसाये थे। पटे के अग्रभाग में जो तलवार-सी लगी रहती है, वह पूरी भी **सैफ** (वै० स्फ्य—शतपथ ५।४।४।१५-१६) ही कहाती है। वैदिक काल में राजसूय यज्ञ के समय राजा अपने राज भ्राता को 'स्फ्य' नामक यज्ञीय खड्ग प्रदान करता था।[2]

§१०११—एक हथियार जो लोहे के डंडे और सैफ को मिलाकर बनाया जाता है **सैफिया बाना** या **फनरिया बाना** कहाता है। इसकी सैफ को **फनर** भी कहते हैं। फनर गावदुम की आकृति में आगे को पतली बनाई जाती है। लोहे का डंडा जिसमें दो लट्टू से बने रहते हैं **बाना** कहाता है।

[रेखा-चित्र ६६८, ६६६]
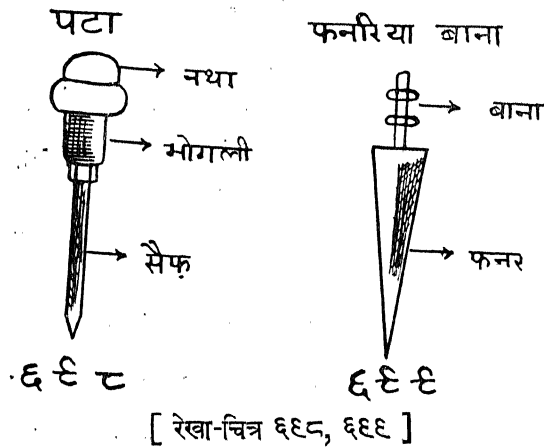
तलवार और उसके अंग

§१०१२—**तलवार** (सं० तरवारि) बहुत मजबूत लोहे की होती है। इसमें एक धार होती है। धार की पूरी किनारी **घाट** कहाती है। तलवार की नोंक को **अनी** कहते हैं घाट और **अनी** के बीच का भाग **फल** कहाता है। कुछ तलवारें ऐसी होती हैं कि उनका फल पीपल के पत्ते की भाँति गोल और नुकीला होता है। अतः ऐसे फल को **पीपला** (सं० पिप्पलक) कहते हैं। तलवार के मुख्य अंग दो होते हैं—(१) **छपका, परज मूठ** या कब्जा (२) **पाता**। मूठ के मध्य भाग को **अँबिया, बुत** या **पुतली** भी कहते हैं। एक विशेष ढंग का कुछ लम्बा-सा फल **ककुआ** कहाता है। मूठ में खमदार एक पत्ती लगी रहती है जो **रोक**

---

[1] "शक्तयः कणपाः प्रासाः शूल पट्टिश तोमराः।"

महाभारत, द्रोणपर्व, जयद्रथ वध, सातवलेकर संस्करण, १०८।३०—३१

[2] राजा 'स्फ्य' (हिंदी० सैफ) नामक यज्ञीय खड्ग पहले राजभ्राता को, तब क्रमश राजभ्राता सूत या स्थपति को, सूत या स्थपति ग्रामणी को, और ग्रामणी सजात को प्रदान करता था—देखिए, शतपथ० ५।४।४।१५-१६।

या **छुपका** कहाती है। मूठ के नीचे का भाग **चिमटा** कहाता है। इससे आदमी की मुट्ठी तलवार की मूठ पर रुकी रहती है। मूठ के सिरे पर लगी हुई गोलाईदार वस्तु **बिलिया** या **कटोरी** कहाती हैं, क्योंकि यह आकृति में **कटोरी** (सं० करोटि, सं० कटोर, सं० करोट=कटोरा, स्त्री० कटोरीं=एक बर्तन विशेष) से मिलती-जुलती होती है। कटोरी पर एक टूमनी-सी लगी रहती है जिसमें बीच में छेद होता है, वह **नथ** कहाती है। बिना छेद की टूमनी को **नेतुआ** कहते हैं। टेढ़े घाट और पाते वाली तलवार को **नागिनिया-तेग** (अ० तेग़) कहते हैं। चौड़े और भारी पाते की तलवार **तेगा** कहाती है। **जौहरी** (अ० जौहर=मसाले द्वारा बनाये हुए चमकीले गोल निशान जो तलवार की धार पर होते हैं) **सिरोही** (सिरोही रियासत की बनी हुई) **करौली, किर्च, छुरी, किरपान, कटार, पौनी, ऊनी, चन्द्रहास** और **समसेल** (फा० शमशेर=शम=नाखून+शेर=सिंह अर्थात् आकृति में सिंह के नाखून की तरह) नाम की भी तलवारें होती हैं। तलवार की धार के सफेद निशान **'जौहर'** कहाते हैं।

तलवार
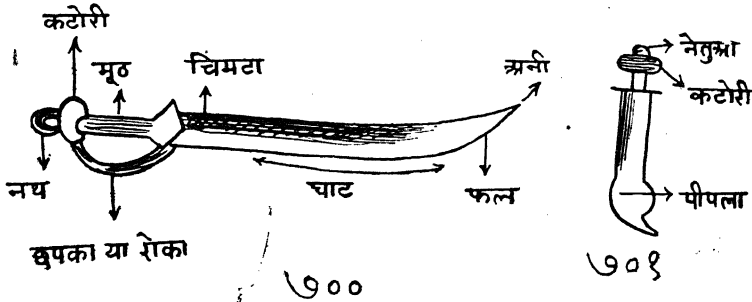
[रेखा-चित्र ७०० से ७०१ तक]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि 'बराहमिहिरि' ने उत्तम तलवार की लम्बाई ५० अंगुल कही है। उसकी आधी २५ अंगुल की 'ऊन' कहलाती थी।[1]

उपर्युक्त नाम-सूची में गिनाई हुई तलवारों में से **करौली** (सं० करपालिका), **किर्च, छुरी** (सं० छुरिका), **किरपान** (सं० कृपाण), **कटार** या **कटारी** (देश० कट्टारी—दे० ना० मा० २। ४), **पौनी** और **ऊनी** नाम की तलवारें लम्बाई में दो बालिश्त से अधिक नहीं होती हैं। महाभारत के द्रोणपर्व में धृष्टद्युम्न के युद्ध-कौशल का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने तलवार के लिए 'निस्त्रिंश'[2] शब्द का प्रयोग किया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि जिस तलवार की लम्बाई तीस अंगुल से अधिक होती थी, उसे 'निस्त्रिंश' कहते थे।[3] उपरिलिखित करौली, किर्च, छुरी, कटारी आदि तलवारें लम्बाई में ३० अंगुल से कम ही होती हैं।

§१०१३—चमड़े से मढ़ा हुआ लकड़ी का खोल जिसमें तलवार रहती है **म्यान** (फा० मियान, अ० नियाम) कहाता है। म्यान के ऊपरी सिरे की नोंकें **बाछुनी** कहाती हैं। म्यान के

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२०।

[2] "सः निस्त्रिंश पुरोवातः शक्ति प्रासर्ष्टि संवृतः।"

महाभारत, सातवलेकर संस्क०, द्रोणपर्व, जयद्रथवध, ६२।१७

[3] देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२१।

नीचे सिरे पर लोहे की पत्ती लगी रहती है ताकि तलवार की नोंक बाहर न निकल सके। उस पत्ती को **स्याम** या **तहनाल** कहते हैं।
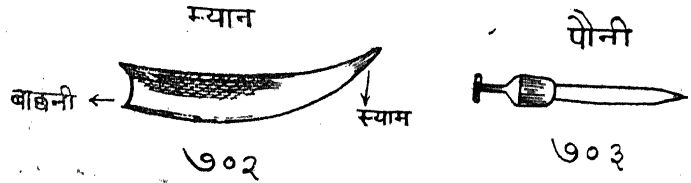
[रेखा-चित्र ७०२, ७०३]

तलवार से मिलते-जुलते हथियार

§१०१४—कुछ खम खाया हुआ हथियार जो लम्बाई में डेढ़ हाथ होता है **खाँड़ा** (सं० खड्ग) कहाता है। यह बहुत भारी होता है। यह बिना नोंक का एक धार का हथियार है जो ऊपर की ओर अधिक मोटा होता है। इसका लोहा बड़ा मजबूत होता है। भारी होने के कारण यह दोनों हाथों से चलाया जाता है। सीधे पाते का एक हथियार जिसमें दोनों ओर धारें होती हैं **दुधारा** कहाता है। दुधारे की लम्बाई खाँड़े से अधिक होती है। कील की तरह नुकीला और लम्बा एक हथियार **खंजर** (अ० ख़ंजर) कहाता है। इसमें नोक के पास कुछ धार भी होती है। यह खाँड़े या तलवार की तरह काट नहीं करता वरन् पेट-पीठ आदि में घुसेड़ दिया जाता है। एक हथियार पतली तलवार की भाँति का होता है जो पोली लाठी में अन्दर छिपा रहता है; उसे **गुप्ती** कहते हैं।
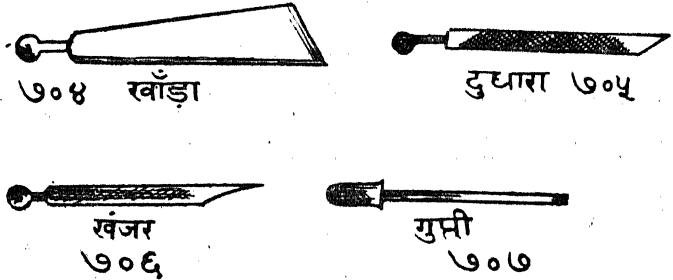
[रेखा-चित्र ७०४ से ७०७ तक]

§१०१५—चौड़े पाते के खंजर की भाँति का दुधारा हथियार **जमडाढ़**[1] या **जमधर** कहाता है। बिना म्यान की एक छोटी तलवार-सी **छुरा** (सं० क्षुर + क) कहाती है। इसकी लम्बाई डेढ़ बालिश्त होती है। इससे छोटा और खमदार एक चाकू **बाँक** (सं० वक्र) कहाता है। बाँक से कुछ बड़ा हथियार **झमिया** कहाता है।

खंजर और बाँक से मिलता-जुलता एक हथियार जिसकी नोंक बिच्छू के डंक की भाँति टेढ़ी होती है, **बिछुआ** कहाता है।

---

[1] ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्यकृत मैथिली भाषा-ग्रंथ 'वर्णरत्नाकर' में 'यमदाढ़' को दण्डायुध बताया गया है।

संपा० डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : वर्णरत्नाकर, रा० ए० सो० कलकत्ता, १६४०, अष्टम कल्लोल पृ० ६१।
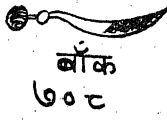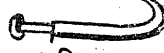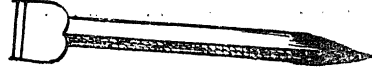
[रेखा-चित्र ७०८ से ७१० तक]

हथियारों की रोक

§१०१६—तलवार, दुधारे या खाँड़े की चोट रोकने के लिए एक लोहे का काले टिप्पोंदार तवा-सा होता है जिसे **ढाल** कहते हैं। लोहे की कड़ियों का बना हुआ एक प्रकार का अँगरखा-सा **जिरह** (पह० ज़िरह) कहलाता है। बख्तर एक प्रकार का जिरह ही है जिसमें बचाव के लिए आगे-पीछे तवे लगे रहते हैं।

भाला और उसके भाई-बन्द

§१०१७—लम्बी लाठी में चौपहलू नुकीला हथियार ठुका रहता है। यह नीचे से ऊपर को क्रमशः पतला बनाया जाता है। इसे **भाला** (सं० भल्लक) कहते हैं। चौड़े पहलुओं का भाले से कुछ बड़ा हथियार जिसमें तीन पहलू ही होते हैं, **बरछी** कहाता है। बरछी के पहलू पैनी धारों के होते हैं। दो धारों का नुकीला पत्तेनुमा हथियार जो भाले की भाँति ही लाठी में ठुका रहता है **बल्लम** कहाता है। बहुत भारी और बहुत बड़ा भाला जो **बरहेलू** (जंगली) सूअर, साँड़ और हाथी आदि पर प्रहार करने के लिए काम में आता है **हाथी-चिक्करा** कहाता है। इसकी मार से हाथी भी चिक्करी भरने लगता है। पूरा लोहे का ही एक तरह का भाला **साँग** कहाता है। साँग से कुछ छोटा हथियार **नेजा** कहाता है। नेजे से छोटा हथियार **कस्सू** (सं० कासू)[1] कहाता है। बहुत छोटा और पतला भाला **बूरी** या **सुल्ला** (सं० शूल)[2] कहाता है। बूरियाँ प्रायः छोटी-छोटी छड़ियों में नीचे लगाई जाती हैं। बहुत भारी लोहे का डंडा **मुसला** (सं० मुसल[3]) कहाता है। तीन नोंकों का लोहे का हथियार **तिरसूल** (सं० त्रिशूल) कहाता है। यह प्रायः शैव साधुओं पर रहता है। एक हथियार **कुलंगा** कहाता है। लोहे के पोले डंडे में एक नोंकदार और ठोस डंडा फाँस दिया जाता है। वह ठोस डंडा और पोला डंडा मिलकर ही **कुलंगा** कहाते हैं।

भाले के दो हिस्से होते हैं—(१) **नरिया** या **गूला** (२) **फल**। गोल लम्बी नली-सी जिसमें लाठी ठुकी रहती है **नरिया** या **गूला** कहाती है। नरिया से आगे का भाग **फल** कहाता है। भाले के सम्बन्ध में पहेली प्रसिद्ध है—

---

[1] **कासूगोणीभ्यां ष्टरच्**
—पाणिनि : अष्टा० ५।३।९०

[2] **ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूल तोमर पट्टिशैः।**
—महाभारत, द्रोणपर्व, ६७।१७

[3] **सुवर्णविकृतैश्चापि गदा मुसलपट्टिशैः।** **—वही, द्रोणपर्व, जयद्रथवध, १३८।२०**

एक अचम्भौ देखौ चलि । सूखी लकड़िया पै आयौ फल ॥
जो कोई वा फल कूँ खाइ । पैंड़ भरिऊ अन्त न जाइ ॥[१]

बड़े और भारी गँड़ासे की भाँति का एक हथियार **लुहाँगी** और टेढ़ी नोंक का लोहे का एक हथियार **आँकुस** कहाता है। महाकवि केशव ने 'राम-चंद्रिका' में इसका उल्लेख किया है।[२]
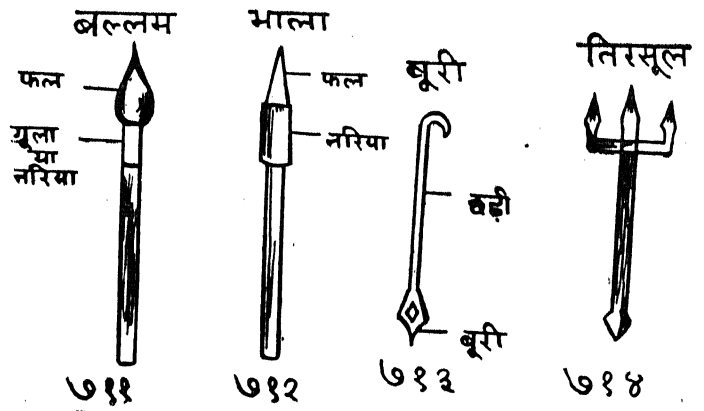
[रेखा-चित्र ७११ से ७१४ तक]

लोहे के अन्य हथियार

§१०१८—कुछ-कुछ कुल्हाड़ी से मिलता-जुलता एक हथियार **फरसा** (सं० परशु) कहाता है। यह दो-ढाई हाथ की लाठी के सिरे पर लगा रहता है। लोहे के डंडे के आगे का हिस्सा गुम्बदनुमा बनाया जाता है जो ठोस और भारी होता है; उसे **गदा** कहते हैं। कुल्हाड़ी की तरह का एक हथियार फरसे से भारी होता है जो **तबल** कहाता है। लोहे का एक डण्डा-सा जिसके दोनों सिरे नुकीले होते हैं, **दुरुखाजंगा** कहाता है।

---

[१] चलकर एक आश्चर्य देखो कि सूखी लकड़ी पर फल आ रहा है। उस फल को जो खा लेता है वह एक कदम भी अन्यत्र नहीं जा सकता।

[२] सूरज मुसल, नील पट्टिश, परिघ नल,
जामवन्त असि, हनू तोमर सँहारे हैं।
परसा सुखेन, कुंत केशरी, गवय शूल,
विभीषण गदा, गज भिंदिपाल टारे हैं॥
मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा,
अंगद शिला, गवाक्ष विटप बिदारे हैं।
अंकुश शरभ, चक्र दधिमुख शेष शक्ति,
बाण तीन रावण श्री रामचन्द्र मारे हैं।

—केशव कौमुदी : टीकाकार लाला भगवानदीन, प्रथम भाग, द्वितीयावृत्ति, प्रकाश ११। छन्द ४६।

फरसा गादा तबल

७१५ ७१६ ७१७
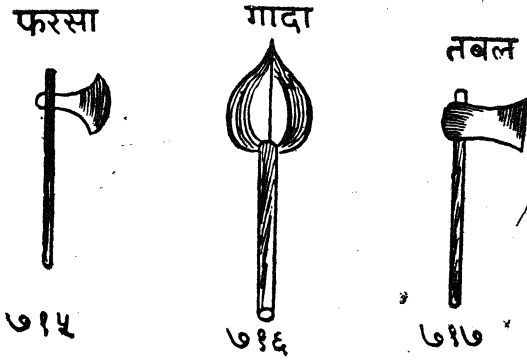
[रेखा-चित्र ७१५ से ७१७ तक]

पैनी धार का एक पहिया जो पोली नली पर घुमाया जाता है। घुमाने में ताव देकर उसे फेंकते हैं। वह लोहे का पहिया **चक्र** कहाता है।

§१०१६—लोहे का छोटा-सा डंडा, जिसके दोनों सिरों पर लोहे की ठोस मुट्ठी-सी बनी रहती है, **घूँसा** कहाता है। लोहे के काँटों का एक हथियार **बघनखा** (सं० व्याघ्रनख) कहाता है। इसमें नीचे छल्ले-से होते हैं जिनमें हाथ की उँगलियाँ फाँस ली जाती हैं। इसे पेट में कूँच (भोंक) दिया जाय तो फिर खींचते समय सब आँतें निकल आती हैं। बघनखे से मिलता-जुलता एक हथियार **पंजा** होता है।
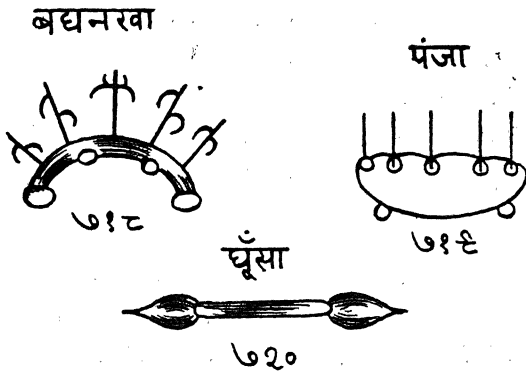
[रेखा-चित्र ७१८ से ७२० तक]

तीर-कमान

§१०२०—कमान जिस बाँस की फच्चट की बनी रहती है उसे **फार, कमट्ठा** या **कमंठा** कहते हैं। **कमट्ठा** या **फार** के मध्य भाग के पास की जगह जहाँ **कमनैत** (कमान चलानेवाला) बाएँ हाथ की मुट्ठी जमाता है, **मुट्ठी** कहाती है। फार के दोनों सिरे **कोर** (सं० कोटि) कहाते हैं। दोनों कोरों को बाँधनेवाली डोरी **पैंची** (सं० प्रत्यंचा) कहाती है।

§१०२० (क)—तीर के मुख्य दो भाग होते हैं—(१) **डाँड़ा** (२) **फर**। फर का अग्रभाग **अनी** कहाता है। डाँड़े का सिरा जो पैंची पर जमाया जाता है, कुछ कुछ चिरा रहता है, ताकि पैंची उसमें ठीक लग जाय। उस सिरे को **सुपरी** कहते हैं। बिना फर का तीर **तुक्का** (फा० तुकह्) कहाता है। कहावत है—

"लगि जाइ तौ तीरु ऐ, नाहिं तुक्का तौ ह्वुई ऐ।"[१]

कमान
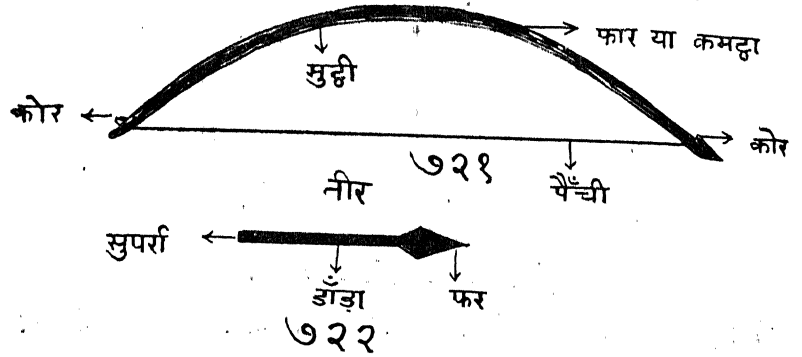
[रेखा-चित्र ७२१ से ७२२ तक]

§१०२१—जब पैंची पूरी ताकत से पीछे को खींची जाती है और फार जितनी झुक सकती हो उतनी झुक जाती हो; तब फार के उस गोल-से आकार को **कौंड़री** (सं० कुण्डली) कहते हैं।

§१२२०—**विभिन्न तीरों के नाम**

(१) **कुहकबान**—यह अनोखी **बनगत** (बनावट) का तीर था। भूषण (शिवाबावनी छं० २२)[२] ने इसका उल्लेख किया है। इसमें आगे एक ढिबरी लगी रहती थी जिसमें चार छेद होते थे। धनुष के छूटने पर छेदों में जब हवा भरती थी तब वह तीर कोयल की-सी आवाज करता था।[३] अलीगढ़ क्षेत्र में बारूद को ऊपर फेंकनेवाली एक प्रकार की '**हवाई**' आतिशबाज द्वारा चलाई जाती है, वह छूटते समय आवाज करती है। उसे भी '**कौकिया बान**' कहते हैं।

(२) **चन्दबान**—इस बाण के फल में चन्द्रमा के आकार का लोहा लगा रहता था जिससे दुहरा घाव होता था।

(३) **नावक का तीर**—यह एक नली में रखकर चलाया जाता था। धनुष पर रखकर चलाते समय नली तो धनुष में ही अटककर रह जाती थी और तीर निकलकर लक्ष्य में घुस जाता था। बिहारी के एक आलोचक ने बिहारी के दोहों को नावक का तीर बताया है।[४]

विशेष—उपर्युक्त तीनों प्रकार के तीरों के नाम अलीगढ़ क्षेत्र में नहीं पाये जाते। प्रसङ्ग-वश केवल जानकारी के दृष्टिकोण से यहाँ इनका विवरण दे दिया गया है। तहसील कोल और अतरौली में किसानों के बालक मिट्टी का एक पोला गोला-सा बनाते हैं, जिसमें ८-१० छेद कर लेते

---

[१] यदि लक्ष्य वेध कर दे तो तीर कहायेगा अन्यथा तुक्का तो है ही।

[२] छूटत कमान बान बन्दूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट में।—भूषण, शिवाबावनी, छं०२२।

[३] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, साहित्य भवन लि० प्रयाग।

[४] "सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर॥"
—बिहारी-रत्नाकर का मुख पृष्ठ।

है। उसके सिरे पर छेद में रस्सी बाँधते हैं। मक्का की भुटियों की छूछों की राख उस गोले में भरते हैं और ऊपर से एक चिनगारी डाल देते हैं। फिर उसे रस्सी से घुमाते हैं। तब उसमें से लाल-लाल चिनगारी झाड़ती हैं। मिट्टी का वह गोला भी **बान** ही कहता है।

बन्दूकों के नाम और उनके अंग

§१०२३—साधारणतया बन्दूकें दो प्रकार की होती हैं—(१) **इकनाली** (२) **दुनाली**। एक नाल वाली इकनाली बन्दूक जिसमें बारूद और छर्रे भरे जाते हैं **बिधरमी** कहाती है। दुनाली बन्दूक या इकनाली बन्दूक जिसमें बारूद और कागज भरा जाता है **भरमार-बन्दूक** कहाती है। छोटी किस्म की बिधरमी **धमाका** कहाती है। बन्दूक को **तुपक** (तु० तुफंग) और बन्दूक चलाने वाले को **तुपकची** कहते हैं। एक किस्म की भारी और लम्बी-चौड़ी बन्दूक जो ऊँट पर रखकर चलाई जाती है **सुतरनाल** (फा० शुतुरनाल=शुतुर=ऊँट + नाल) कहाती है। एक प्रकार की छोटी बन्दूक **रमचंगी** कही जाती है। जिस बंदूक में कारतूस लगते हैं उसे **कारतूसी** बन्दूक कहते हैं। बारूद भरकर और टोपी (ताँबे की बनी हुई टोपीनुमा एक छोटी-सी चीज) चढ़ाकर जिस बन्दूक को चलाते हैं वह **टोपीदार** भी कहाती है। टोपीदार बन्दूकें प्रायः दुनाली होती हैं। एक खास तरह की बन्दूक **कड़ाबीन** कहाती है।

दुनाली टोपीदार बन्दूक के अंग

§१०२४—दुनाली टोपीदार बन्दूक के मुख्य भाग दो हैं—(१) **दुनलका** (२) **बच्छी, पछिया** या **कठहत्ता**। बन्दूक के ऊपर का भाग, जिसमें आपस में जुड़ी हुई दो नालें होती हैं, **दुनलका** कहाता है। नीचे के भाग में लकड़ी होती है उसे **बच्छी, पछिया, कुन्दा** या **कठहत्ता** कहते हैं।

§१०२५—**दुनलके के हिस्सों के नाम**—दुनाली बन्दूक की दोनों नालों के जोड़ पर ऊपरी भाग में एक चौड़ी पत्ती लगी रहती है, जिसे **फरसी** कहते हैं। फरसी के ऊपरी सिरे पर पीतल की एक बूँद ठीक बीच में होती है जो **मक्खी** कहाती है। फरसी के नीचे के सिरे पर नालों के ऊपर दो सूराखदार कीलें-सी लगी रहती हैं उन्हें **बिटनी, टुम्मी** या **तुमका** (फा० तुकमा= घुंडी) कहते हैं। इन्हीं दोनों तुमकों के ऊपर टोपियाँ चढ़ा दी जाती हैं। तुमकों और मक्खी के बीच में फरसी के ऊपर एक जगह बनी रहती है जिसे **तकनी** या **टक्की** कहते हैं। निशानेबाज निशाना लगाते समय अपनी आँख, तकनी और मक्खी को एक सीध में रखते हुए निशाने को देखता है तब निशाना मारता है। बन्दूक की नालों का वह भाग जहाँ बारूद और गोलियाँ रहती हैं **कोठी** कहाता है।

§१०२६—**कठहत्ते के हिस्सों के नाम**—कठहत्ते का आगे का हिस्सा, जिस पर दुनलका जमाया जाता है, **सधेटी** कहाता है। हत्ते की तली को **एड़, मुहरा** या **धक्का** कहते हैं। एड़ में ढक्कनदार एक सूराख भी होता है जिसमें बन्दूक की टोपियाँ रखते हैं। वह **टोपी-घर** कहाता है। कठहत्ते के बीच में नीचे की ओर अर्द्धवृत्ताकार एक पत्ती लगी रहती है जिसे **फुलपत्ती** कहते हैं। इसके ऊपर हत्ते में आगे-पीछे खमदार दो कीलें होती हैं जिन्हें **घुड़का, लिबलिबी** या **घोड़ा** कहते हैं। घोड़ों को पीछे की ओर हटाया जाता है तभी बंदूक छूटती है अर्थात् चलती है। कठहत्ते के ऊपरी भाग में लिबलिबी से संबंधित गोल और मोटी खमदार कीलें होती हैं जिनकी आकृति घोड़े के मुँह की तरह होती है। उन कीलों को भी **घोड़ा** कहते हैं। लिबलिबी पीछे की

ओर हटाने से घोड़े झटके से तुमके की टोपियों पर गिरते हैं। तभी टोपियों में से आग पैदा होकर तुमके की बारूद में लग जाती है और वही आग आगे बढ़कर कोठी में भरी हुई बारूद में पुह जाती है और तब बन्दूक छूटकर आवाज़ करती है।

§१०२७—**कारतूसी बन्दूक के भाग**—जिस जगह टोपीदार बन्दूक में तुमके और घोड़े होते हैं वहाँ कारतूसी में **तूसदान** बना हुआ होता है। नाल का वह भाग जिसमें कारतूस लगाया जाता है **दुम्बाल** कहाता है। हत्ते के बीच में लिबलिबी के नीचे लोहे की पत्ती **पालकी** कहाती है।

बन्दूक से सम्बन्धित अन्य शब्दावली

§१०२८—मटर के बराबर सीसे की गोली को **बन्दूक की गोली** कहते हैं। बहुत छोटी गोली जो सरसों से कुछ बड़ी होती है **छर्रा** कहाती है। बन्दूक छूटने पर गोली की तेज चाल को **तोड़** कहते हैं। बन्दूक की आवाज **भड़ाका** कहाती है। पेचदार एक गज जिससे बन्दूक की नाल में से गोली निकाली जाती है **पैंचा** कहाता है। लम्बा ब्रुश जिससे बन्दूक की नाल साफ की जाती है **फुरैरा** कहाता है। चौड़े पेट का और तंग मुँह का लोहे का एक बर्तन जिसमें बारूद भरी रहती है **कुप्पी** (सं० कुतुपिका) कहाता है। टोपीदार बन्दूक की नाल में बारूद और कागज भरकर उन्हें फिर लोहे की एक छड़ से ठोकते हैं, वह छड़ **गज** कहाती है। गज का निचला सिरा मोटा और भारी होता है। उसमें एक छेद भी बना रहता है। उस छेद में कपड़ा फाँसकर बन्दूक की नाल साफ की जाती है।
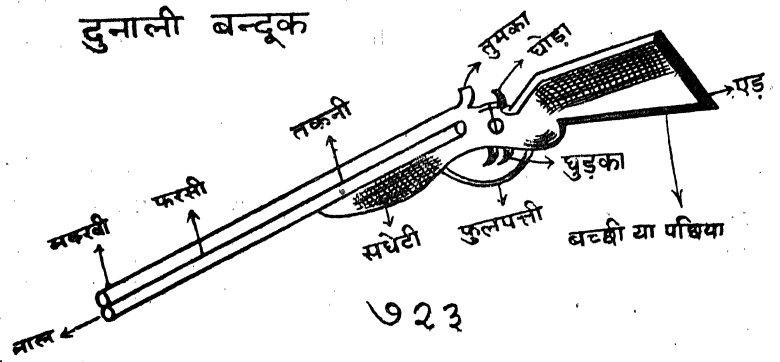
[रेखा-चित्र ७२३]

अध्याय १५

पटवा

§१०२९—गले और हाथों के कुछ गहने डोरों में पिरोये जाते हैं। तभी वे पहनने योग्य बनते हैं। ऐसे गहनों को डोरों में सजानेवाला कारीगर **पटवा** कहाता है। सुनारों और सर्राफों की

दुकानों के पास में ही प्रायः पटवे अपनी दुकान लगाते हैं। डोरे में गहने को सजाना **पोना** या **पोवना** कहाता है।

पटवे के औज़ार

§१०३०—लगभग ३-४ सेर वजन का पत्थर का एक गोल या चौकोर टुकड़ा होता है। उसके बीच में लोहे की एक डंडी लगाई जाती है जो लम्बाई में एक हाथ होती है। उस औज़ार को **अड्डा** या **थूमी** कहते हैं। थूमी की डंडी में खमदार एक टेढ़ी कील डाल दी जाती है जो **आँकड़ा या थिरकना** कहाती है। लकड़ी की एक गोलाईदार डंडी के सिरे पर थोड़ा-सा फासला देकर दो गोल चकतियाँ पड़ी रहती हैं जिन्हें **पल्ले** कहते हैं। पल्ले जिस लकड़ी में फँसे रहते हैं वह **डाँड़ी** कहाती है। पल्लों सहित डाँड़ी को **तकली** या **चरखी** कहते हैं। थूमी और चरखी ही पटवे के मुख्य औज़ार हैं। इन दोनों की सहायता से ही अनेक प्रकार की **घुंडियाँ** और **लच्छियाँ** तैयार होती हैं।
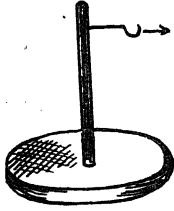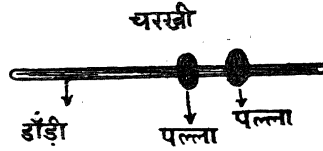
[रेखा-चित्र ७२४, ७२५]

§१०३१—गहनों के दानों के छेद या गड्ढे **घर** कहाते हैं। घरों को साफ करने के लिए लोहे की एक नुकीली सलाई काम आती है जिसे **बरमी** कहते है। बरमी से घर साफ हो जाने पर उसमें डोरा आसानी से आर-पार हो जाता है। दाने उठाने के लिए लोहे की छोटी **चीमटी** होती है। डोरों में ऐंठा लगाने के लिए लोहे की सलाई और लकड़ी के लट्टू को मिलाकर एक औज़ार बनाया जाता है जिसे **बल्ती** कहते हैं। लकड़ी के गोल लट्टू में लोहे की सलाई ठुकी रहती है और उस सलाई की ऊपरी नोक कुछ नीचे की ओर मोड़ दी जाती है। यह नोंक **बल्ती की नाक** कहाती है। बल्ती से मिलता-जुलता लकड़ी का एक औज़ार **बटानी** कहाता है। इससे रेशम का डोरा **बटा** जाता है।

गहने के लिए डोरा तैयार करना

§१०३२—पटवा अदद के **घर** (सूराख) को देखकर डोरा बनाता है। जितना बड़ा घर होता है उतना ही मोटा डोरा भी तैयार किया जाता है। थूमी के आँकड़े में डालकर डोरे को चौलर-पँचलर करना **लच्छी बनाना** कहाता है। आवश्यकतानुसार लच्छी को बटते भी हैं। वह बटा हुआ डोरा जो ३ से ६ तक की **लरों** (लड़ों) का बनता है, **कत्यान** कहाता है। सोने या चाँदी के तार जिनसे डोरे की भाँति काम लिया जाता है, **कलाबत्तू** (तु० कलावतून) कहाते हैं। पटवे सूती और रेशमी डोरों के साथ कलाबत्तू को भी काम में लाते हैं। रेशमी लच्छी में कण्ठे के

दाने पिरोकर उनके बीच-बीच में सोने या चाँदी के तारों से मिली हुई लपेट लगाई जाती है। उस लपेट को **गंडा** या **ठेटी** कहते हैं।
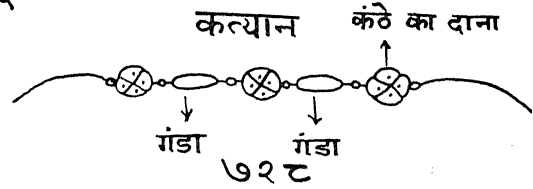
[रेखा-चित्र ७२६ से ७२८ तक]

§१०३३—यदि सुनहरी अथवा रुपहलू कलाबत्तू के साथ रेशम का डोरा बटा जाता है तो उसे **गंगाजमनी डोरा** कहते हैं। बढ़िया गहने गंगाजमनी डोरे में ही पाटे जाते हैं। डोरे की लड़ को **फंक** भी कहते हैं। चौलर डोरा **चौफंकिया** कहाता है। खोटे या बनावटी कलाबत्तू का डोरा **झूठा** (सं० अयुक्त > अजुत्त > झुट्ट > झूठा) और असली सोने-चाँदी का तार **सच्चा** कहाता है। सच्चे तारों में कई तरह के होते हैं जिनमें **जीक, बादला** और **कन्दला** नाम के तार पटवों के काम आते हैं। रेशमी या सूती डोरे पर एक सख्त कलाबत्तू का तार लपेटा जाता है। उस सख्त तार को **जीक** कहते हैं। जीक से अधिक सख्त और मजबूत तार **बादला** और बादला से अधिक सख्त **कंदला** होता है। बहुत बढ़िया गहनों में गंडे कंदले के ही लगाये जाते हैं। गण्डे के बनाने में लपेट यदि कुछ जगह छोड़ते हुए लगाई जाती है, तो उसे **चिरैमा गण्डा** कहते हैं।

§१०३४—छह लड़ों या छह से अधिक लड़ों का डोरा जिसमें गहने का अदद पोया जाता है **लच्छा** कहाता है। लच्छे या लच्छी का सिरा जिसे अदद के घर में पिरोते हैं **चैंपी** या **पैंउआँ** कहाता है। जब गहने के सारे अदद पुह जाते हैं तब **पैंउआँ** ही कटकर फुँदने की शक्ल में आ जाता है। कैंची से पैंउँए की नोंक काट दी जाती है और कंघी से उसके तार छितरा दिये जाते हैं। तब वह एक सुन्दर **फुँदना** (भब्बा) बन जाता है। अदद अधिक हों और लच्छी की लम्बाई कम हो तो पटवा उसी में दूसरी लच्छी भी जोड़ लेता है। उस क्रिया को **साँट लेना** कहते हैं। कभी-कभी थूमी के आँकड़े में पटवा कुछ अधिक डोरा बाँध लेता है और फिर उस अधिक डोरे में ही लच्छी डालता है। वह अधिक डोरा **सर्क** कहाता है। छोटी लच्छी को यदि सर्क में डालकर काम किया जाता है तो पटवे को झुकना नहीं पड़ता अन्यथा उनकी रीढ़ की हड्डी टेढ़ी पड़ जाती है।

पौंची आदि गहनों में एक ओर फन्दा बनाया जाता है और दूसरे सिरे पर घुंडी। लच्छी से बनाया हुआ फन्दा जिसमें घुण्डी फँसाई जाती है **नक्की** या **तुकमा** (तु० तुकमह्) कहाता है।

लच्छी में बनी हुई घुंडियों के नाम

§१०३५—लच्छी में लपेट से जब डोरे या कलाबत्तू का एक जगह उभरा हुआ हिस्सा दिखाया जाता है तब उसे **बन्द** कहते हैं। बंद बनाने में पहले सूत लपेटा जाता है और फिर उसके ऊपर कलाबत्तू। डोरे की लपेट **गाबा** या **तहलपेट** कहाती है। तहलपेट के ऊपर बंद लगता है। सख्त और कड़ा बन्द जो काफी उठा हुआ हो **घुंडी** कहाता है। घुण्डी पर जब चारों तरफ जालीदार कलाबत्तू या जीक लपेट दी जाती है तो उस लपेट के एक खास फन्दे को **जलेबिया फन्दा** कहते हैं। इससे घुंडी में खूबसूरती आ जाती है।

§१०३६—एक घुंडी पोली बनती है। यह लकड़ी पर बनाई जाती है। यह बीच में मोटी और दोनों ओर गावदुम होती है। इसे **नरी** या **हर्र** कहते हैं। संभवतः हर्र की आकृति से मिलती-जुलती होने से ही इसे हर्र कहते हैं। एक ओर मोटी और दूसरी ओर गावदुम होती हुई नुकीली बनी हुई घुंडी **गाजर** कहाती है। इसका बड़ा सिरा गहने से चिपटा हुआ रहता है। एक प्रकार की घुंडी **मुंडी हर्र** या **कच्ची हर्र** कहाती है। इसमें तहलपेट नहीं लगाई जाती है; अतः अधिक उभरी हुई नहीं बनती। लेकिन आकृति गाजर की भाँति कलाबत्तू से बनाई जाती है। एक घुंडी, जिस पर कलाबत्तू का काम होता है और फूल भी बने होते हैं, **किमामी** कहाती है। यह गोल होती है और हर्र के मुँह के पास खूबसूरती के लिए बनाई जाती है। यह गोल और ठोस होती है। जो घुंडी बिलकुल कलाबत्तू की ही बनाई जाती है, उसे **तमामी** कहते हैं। वह लम्बोतरी घुंडी जिस पर लहरें-सी उठी हुई हों **कमरख** कहाती हैं। सुराही की आकृति की पोली छेददार घुंडी को **सुराही** कहते हैं। कण्ठे या माला में एक घुंडी ऐसी डाली जाती है जिसे ऊपर-नीचे सरकाकर कण्ठे की लच्छी छोटी-बड़ी कर ली जाती है। उस छेददार घुंडी को **सरक-घुण्डी** कहते हैं।
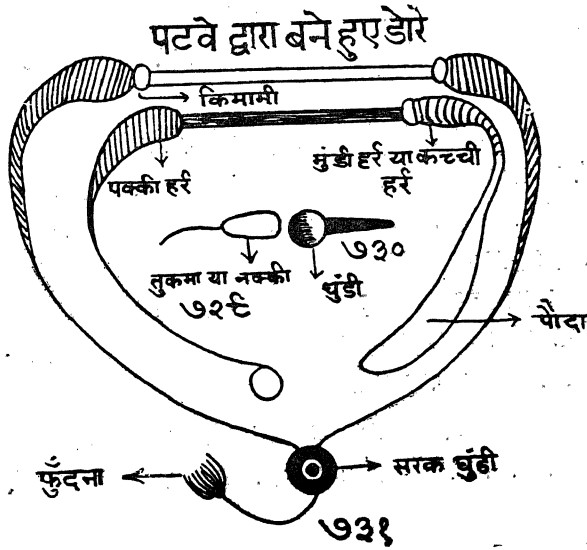
पटवे के बने हुए डोरे [रेखा-चित्र ७२९ से ७३१ तक]

अध्याय १६

गन्धी

§१०३७—खुशबूदार तेल बनानेवाले और बेचनेवाले व्यक्ति **गन्धी**,[1] **अत्तार** या **अतरफरोस** कहाते हैं। प्रायः बीज, पत्ती और लकड़ी को कुचलकर और पेलकर निकाला जानेवाला सत्त **तेल** और फूलों से तैयार किया जानेवाला **फुलेल** कहाता है। फूलों की सुगन्धि का सार **अतर** (अ० इत्र) भी कहाता है। इत्र, तेल आदि के अतिरिक्त गन्धी **धूप** (गूगुर से बनी हुई एक प्रकार की सुगंधित वस्तु जो आग पर डालकर जलाई जाती है), **सामगीरी** (सं० सामग्री=हवन में पड़नेवाला द्रव्य विशेष), **ऊद** (अ० ऊद=अगर का पेड़) या **अगर** (सं० अगरु=एक पेड़ की छाल का चूरा), **तगर** (सं० तगर=एक विशेष वृक्ष की जड़ का चूरा), **गुलाल** (इसके लिए अ० अबीर शब्द भी प्रचलित है) और **गूगुरबत्ती** (सं० गुग्गुलवर्तिका) भी बेचते हैं। गुलाल में **भुड़भुड़** (साहित्यिक नाम अभ्रक) भी मिला रहता है। भुड़भुड़ के ही लिए बिहारी ने **भोडर** (बिहारी रत्नाकर दो० ४४१) शब्द लिखा है। ग्राम-देवियों और ग्रामदेवताओं की पूजा में **लोहबान** या गूगुर का चूरा भी **अग्यारी** (एक दहकता हुआ छोटा अंगार जो किसी देवता की पूजा में काम आता है) पर चढ़ाया जाता है। गूगुर अग्यारी पर चढ़ाना **'गूगुर खेना'** कहाता है। नगर कोट की माता के सम्बन्ध में एक लोक-गीत है जिसमें गूगुर लेने की बात कही गई है—

> "मंगन की माइ चतुर है, जै जै हो माइ।
> न्हाइ धोबै **गूगुर खेबै**, जै जै हो माइ॥
> जाकी जोति भमन में फैलै, जै जै हो माइ॥"[2]

§१०३८—तनिक-सी रुई पर इत्र डालकर उसे कान में लगा लिया जाता है। उस रुई को **अतरफोआ** कहते हैं। वह तेज और बढ़िया खुशबू का इत्र जो नई ब्याँहता बहू (विवाहिता बधू) के काम में आता है, **सुहाग अतर** या **सुहाग फुलेल** कहाता है।

§१०३९—गुलाब, चमेली और बेला की खुशबू तिल के तेल में लाने के लिए लगातार २० दिन तक तिली के ऊपर ताजे फूल बिछाते हैं। पहले तिली को कपड़े पर बिछाते हैं फिर उसके ऊपर एक तह फूलों की लगाते हैं। इसके बाद दूसरी एक तह तिली की उन फूलों पर लगाते हैं। इस तरह तिली को खुशबूदार बनाना **बसाना** कहाता है। गन्धवाची 'बास' शब्द से **'बसाना'** नाम धातु क्रिया है। साधारणतया अलीगढ़ क्षेत्र की जनपदीय बोली में **'बास'** शब्द का प्रयोग बदबू के अर्थ में ही होता है। लेकिन 'बसाना' का अर्थ 'गन्धयुक्त बनाना' है। फूलों में बसी हुई तिली को पेलकर तेल तैयार कर लिया जाता है।

§१०४०—फुलेल आमतौर से चन्दन के तेल पर तैयार किये जाते हैं। भबके द्वारा फूल का सत्त चन्दन के तेल में मिला दिया जाता है। उस चन्दन के तेल को **जमीन सन्दल** कहते हैं।

---

[1] "गंधी अन्ध गुलाब कौ गवईं गाहकु कौनु।"—बिहारी-रत्नाकर, दो० ६२४

[2] हे नगर कोट की माता! तुम्हारी जय हो। मंगन (एक आदमी का नाम) की माता चतुर स्त्री है, क्योंकि वह नहा-धोकर तुम्हारी पूजा में गूगुर खेती है। उसके द्वारा खेयेहुये गूगुर से अग्यारी की ज्योति तुम्हारे भवन में फैलती है।

भबके में काम आनेवाली वस्तुएँ

§१०४१—एक तरफ चूल्हे या भट्टी पर फूलों से भरा हुआ तंग मुँह का **देग** (फा० देग = एक विशेष बर्तन) रख देते हैं। दूसरी ओर नाँद के पानी में **भबका** (एक बर्तन जिसकी गर्दन पर नली-सी लगी रहती है) रख देते हैं, जिसके अन्दर **सन्दल** (चन्दन का तेल) रहता है। देग और भबके को एक नली से मिला देते हैं। उस नली को गन्धियों की बोली में **चौंगा** कहते हैं। फूलों का सत्त जो गर्मी से भाप बनकर चौंगे द्वारा भबके में आता है; वह **भपारा** कहाता है। देग के मुँह पर चौंगे को ऐसा जमाते हैं कि कहीं सूराख न रहे। इसीलिए उसके मुँह पर मुलतानी मिट्टी थोपते हैं। उस मिट्टी को **खाम** कहते हैं।

§१०४२—लोबान, गन्धक और गूगुर आदि चीजें जिस बर्तन में जलाई जाती हैं वह **धूप-दीया** कहाता है। **राल** (एक पेड़ का गोंद) के योग से भी एक तेल तैयार होता है, जिसे **रार-चोया** या **रार-चोआ** कहते हैं। **चंदन चोआ**[1] नाम का भी तेल होता है जो ठण्डक देता है। यह चंदन के योग से बनता है। एक तेल **मसाला** कहाता है जो छारछबीला, नागरमोथा, हाऊ-बेर, अगर, तगर, दालचीनी, तेजपात, इलायची, लौंग आदि के योग से बनाया जाता है। यह तासीर में गर्म होता है।

भंबके की विधि
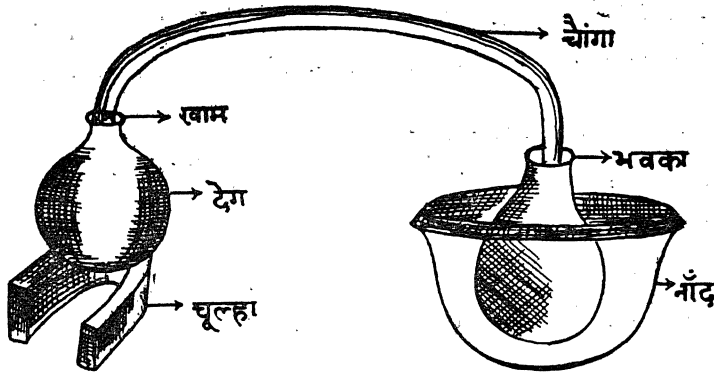
७३२

भबका खींचने की विधि—[रेखा-चित्र ७३२]

---

[1] "चोआ चीर चँदन भा आगी।"
पदमावत, काशी ना० प्र० सभा, ३०।१४।१
"चोआ चन्दन मरदन अंगा। सो तनु जलै काठ कै संगा॥"
—डा० रामकुमार वर्मा (सम्पादक) : सन्त क०, पृ० १६।

अध्याय १७

ठठेरा

§१०४३—काँसे, पीतल आदि के बर्तन बनानेवाला तथा टूटे-फूटे बर्तनों को ठीक करनेवाला कारीगर **ठठेरा** कहाता है। 'ठठेरा' शब्द के मूल में 'ठाठ' (फा० तश्त>प्रा० टठ>ठट्ठा>ठाठ=बर्तन) शब्द है।[1] काँसे (सं० कांस्यक) के बर्तन को **"फूल का बासन"** भी कहते हैं। नौ भर ताँबे में एक भर राँगा मिलाकर काँसा बनाते हैं। काँसे के बनाने के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—

"सौ सत्ताईस काँसौ। नायँ तौ दै गयौ भाँसौ।"[2]

बर्तन बनाते समय ठठेरा चार काम मुख्य रूप से करता है। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) **तपाई** (२) **मठाई** या **पटसाई** (३) **जुड़ाई** (४) **ढलाई**।

भट्टी पर बर्तन को गर्म करना **तपाई** कहाता है। जब बर्तन को हथौड़े से पीटा जाता है, तब वह प्रक्रिया **मठाई** या **पटसाई** कहाती है। किसी बर्तन में जब **नार** (गर्दन) आदि अलग से जोड़कर उसे पीटते हैं, तब वह क्रिया **जुड़ाई** कही जाती है। चोट मारकर किसी धातु को बढ़ाना **ठठना** कहाता है। **ठठाई** या **मठाई** एक ही है।

§१०४४—मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का साँचा **'पाड़ा'** कहाता है। पुरानी पीतल और गिलट आदि के टुकड़ों को **भरत** या **भर्त** कहते हैं। ठठेरे 'भरत' को गलाकर पाड़े में डालते हैं। इसके उपरान्त पाड़े को ठण्डा किया जाता है। पाड़े के ठण्डे हो जाने पर उसमें से पूरा बर्तन बना हुआ निकल आता है। साँचे द्वारा इस प्रकार बर्तन ढालने की प्रक्रिया को **ढलाई** कहते हैं।

गले हुए भरत से जब छोटे-छोटे बर्तन ढाले जाते हैं तब उन ढली हुई वस्तुओं को **भरतरी** कहते हैं। भरतरी लोटे किसानों के घरों में बहुत बरते जाते हैं।

§१०४५—ढलाई करते समय जब बर्तन पाड़े में से निकाला जाता है, उस समय उसमें जहाँ-तहाँ उठी हुई बूँदें तथा नोंकें-सी बनी रह जाती हैं, उन्हें **भूठन** कहते हैं। ठठेरा उन भूठनों को **रेत** (औजार-विशेष) से **रेतकर** (घिसकर) इकसार कर देता है।

ठठेरों की भट्टियों के प्रकार

§१०४६—ठठेरों की भट्टियाँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं—(१) **नलुआदार भट्टी**—इसे **रैनी भट्टी** भी कहते हैं। (२) **आरन भट्टी**।

नलुआदार भट्टी का मुँह ऊपर को गोल घेरे के रूप में उठा हुआ रहता है। इसके मुँह की आकृति एक बड़े तथा ऊँचे कुल्हड़ की भाँति होती है। कुल्हड़ की भाँति के घेरे को **नलुआ** या

---

[1] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्य-भाषा और हिंदी, पृ० १०१।
मध्य फारसी० तश्त<प्रा० टठ
—डा०उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य।

[2] यदि सौ भर ताँबे में २७ भर राँगा मिलाया गया है, तो अच्छा काँसा बनेगा, अन्यथा ठठेरे ने धोखा दिया है।

नरुका कहते हैं। अतएव ठठेरे की बोली में उस भट्टी को **नलुइया भट्टी** (नलुआदार भट्टी) कहते हैं। ऊँची गर्दन तथा ऊँचे **किनाठे** (किनारे) वाले बर्तन नलुइया भट्टी पर ही तपाये जाते हैं।

आरन नाम की भट्टी की सतह चौरस होती है। इसका मुँह गोल और गड्ढेदार होता है। गर्दन को छोड़कर बर्तन का शेष भाग आरन भट्टी पर ही तपाया जाता है।

§१०४७—प्रत्येक बर्तन में मुख्यतः तीन भाग होते हैं—(१) ऊपरी भाग, जहाँ मुँह होता है, **'किनाठे'** या **'किनारे'** कहाता है। (२) नीचे के भाग को **पैंदा** या **तली** कहते हैं। (३) किनाठे और पैंदे के बीच का भाग **पट्ठा** कहाता है। पट्ठे की वह किनारी, जो पैंदे से सम्बन्ध रखती है, **जै** कहाती है। पतीली नाम के बर्तन में जै साफ दिखाई देती है।

§१०४८—भट्टी के मुख्य अंग तीन होते हैं। एक गोल पहिया-सा जिसके चलने से भट्टी में हवा जाती है, **पङ्खा** कहाता है। कहीं-कहीं ऊपर खुला हुआ चमड़े का एक थैला होता है जो भट्टी के अन्दर हवा फेंकता है। इसे **धौंकनी** कहते हैं। हवा अन्दर एक नाली-सी में होकर जाती है। उस नाली के ऊपर चारों ओर मिट्टी लगाकर एक चबूतरी-सी बनाई जाती है। उसे **मठौटी** या **घेरा** कहते हैं। घेरे के ठीक बीच में लोहे की पाँच-सात सराइयाँ लगाकर एक गड्ढा-सा बनाया जाता है। उन सराइयों पर **कौले** (कोइले) डाल दिये जाते हैं। धौंकनी की हवा पाकर आँच से कौले दहक जाते हैं। कौले जिस गड्ढे में पड़ते हैं, वह **आरन** कहाता है।

प्रायः बर्तनों के पैंदे **आरन** पर और गर्दनें **रैनी** भट्टी पर तपाई जाती हैं।

ठठेरे के औजार

§१०४९—ठठेरे का काम **ठठेरी** कहाता है। ठठेरी में काम आनेवाले औजारों को **लौखर** कहते हैं।

एक लम्बी कील जो नोंक पर कुछ मुड़ी रहती है **सरइया** कहलाती है। जस्त, पीतल और सुहागा मिला हुआ मसाला **टाँका** कहाता है। बर्तन में पैंदा आदि लगाने के लिए **टाँका** ही काम में लाया जाता है। सरइया से बर्तन पर **टाँका** फैलाया जाता है। **'टाँका'** शब्द सं० 'टंकक' से सम्बन्धित है। 'टंक' सुहागे को भी कहते हैं।

§१०५०—टाँका लगाकर परत में परत मिलाने के लिए बर्तन को हथौड़े से **मेख** (एक प्रकार का लोहे का खूँटा जिसके सिर पर बर्तन रखकर पीटते हैं) पर रखकर पीटते हैं। इस प्रकार हथौड़े की चोट मारना **पटासना** या **माठना** कहाता है। एक खास तरह का हथौड़ा जिस पर सफेद मसाला लगा रहता है **'पप्पूकाट'** कहाता है। पप्पूकाट की चोट से बर्तन पर चमकीली बिन्दीदार मठाई होती है। उस चमकीली बिन्दी को 'मठार' कहते हैं। लोहे की मेख पर रखकर ही बर्तन पर मठार लगाई जाती है।

सिरे की बनावट के विचार से **मेखें** (फा० मेख़) कई तरह की होती हैं, जैसे **गोल मेख, चपटी मेख, पट्ट मेख** और **बान्नी** या **बारनी मेख**। लम्बी नोंक की हथौड़िया **बाली** कहाती है। इससे बर्तन की **किनारी** बनाते हैं।

§१०५१—तौली आदि बर्तनों के मुँह पर किनाठे कुछ मुड़े हुए होते हैं। ये मुड़े हुए किनाठे **डोबरी** कहाते हैं। डोबरी बनने से पहले किनारे हथौड़े से माठकर (पीटकर) पतले किये जाते हैं। इन्हें **बार** कहते हैं। बार **बारनी मेख** (पतली धार के सिरेवाली मेख) पर ही **बनाई** जाती

है और उसी पर डोबरी मोड़ी जाती है। बर्तनों के ऊपर की सफेद बूँदें-सी **चिलक** कहाती हैं। वे जिस हथौड़े से बनती हैं, वह **चिलक हथौड़ा** कहाता है।

§१०५२—पीतल की चद्दर आदि काटने के लिए जो कैंची काम में आती है, वह **कतिया** या **कातिया** कहाती है। इसमें दो पल्ले और दो हत्थे होते हैं। पल्ले का नीचे का भाग जो लोहे की एक डंडी की भाँति का होता है, **हत्था** कहाता है। काटनेवाला भाग पल्ला कहाता है। कतिया के लिए कबीर ने 'काँत्याँ'[१] शब्द का प्रयोग किया है। भारी मेख की भाँति बड़े तथा गोल सिरे का औजार **चौका** कहाता है। इस पर बड़े बर्तनों के पैंदे मठते हैं।

§१०५३—फूटे बर्तन के छेद को **राँग** (सं० रङ्ग) लगाकर बन्द करना **राँजना** या **पाँजना** कहाता है। राँजने या पाँजनेवाला व्यक्ति **रँजवइया** या **पँजवइया** कहाता है। पाँजने के लिए **सालना** और **टाँकना** क्रियाएँ भी प्रचलित हैं। एक **लौखर** (औजार) जो राँजने में काम आता है, **काइया** कहलाता है। काइया के मुख्य अंग तीन होते हैं—लकड़ी का हत्था जिसे **बैंटा** कहते हैं, पकड़ने के काम आता है। बैंटे में एक लोहे को डंडी पड़ी रहती है जो सिरे पर चौड़ी और भारी पत्ती-सी होती है। उस डंडी को **सरइया** या **सराई** कहते हैं और सिरे की पत्ती **चौड़ा** (त० खुर्जा) या **चौरा** (त० हाथ०) कहाती है। राँजते समय गर्म चौड़ों को राँग पर रख देते हैं। राँग पिघलकर तुरन्त चौड़ों में लिपट जाता है। फिर काइयों के चौड़ों को बर्तन के फूटे भाग पर रगड़ते हैं। बर्तन दो रूपों में फूटता है—(१) **छेद** (२) **सँध** या **दरार**।

यदि आर-पार सूराख हो जाय तो वह **छेद** (सं० छिद्र) कहाता है। छेद में से निकलनेवाली पानी की धार **तिल्लुकी** या **टिल्लुकी** कहाती है।

§१०५४—बर्तन फूट जाता है, लेकिन फूटी जगह साफ दिखाई नहीं देती। वह फूट **सँध** या **दरार** कहाती है। सँध में से पानी धीरे-धीरे निकलता है। उस तरह निकलने को **'रिसना'** कहते हैं। भारी, ठोस और मजबूत बर्तन को **'ठेहल बासन'** कहते हैं। ठेहल बासन जल्दी नहीं घिसता और बहुत दिन चलता है। बर्तन की मजबूती, भारीपन तथा ठोसपन को एक साथ व्यक्त करने के लिए **'ठेहल'** विशेषण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

रँजने के बाद बर्तन का **रिसना** या **तिल्लुकी मारना** बन्द हो जाता है, क्योंकि पिघला हुआ राँग सँध में भर जाता है। यदि छेद हो तो राँग उस पर **लिप जाता** है।

§१०५५—एक गोल मोटा लोहे का टुकड़ा जिसके बीच में आर-पार छेद होता है, **गेड़ी** कहाता है। लोहे की एक प्रकार की कील जो ऊपर मोटी और नीचे नोंकीली होती है **सुम्मी** कहाती है। बर्तन को गेड़ी पर रखकर और ऊपर सुम्मी जमाकर हथौड़ा मार देते हैं। इससे बर्तन में छेद हो जाता है। सुम्मी के सिरे पर चोट मारकर बर्तन में जड़ी कील भी निकाली जाती है।

§१०५६—कुछ बर्तन चमकदार और चिकने बनाने के लिए खराद पर भी उतारे जाते हैं। ठठेरे की **खराद** (एक औजार) को **कुन्द** (फा० कुन्दह्) कहते हैं। कुन्द के तीन भाग होते हैं। एक मोटी लकड़ी का बना हुआ बेलन-सा होता है जिसे **बिलना** या **कुन्द** कहते हैं। इसके एक सिरे पर लाख लगी रहती है। लाख के पास ही बिलने में चारों ओर एक गोल खाँच-सी होती है

---

[१] "दुहु काँत्याँ बिच जीव है"
कबीर ग्रंथावली, काशी ना० प्र० सभा—साखी, उपदेश कौ अंग, दो० ९

जो **घाँटन** कहाती है। बिलने का दूसरा सिरा बहुत मोटा होता है जिसे **मदरा** कहते हैं। मदरे में एक कील गड़ी रहती है जो **काँटा** कहाती है। वह काँटा जमीन में गड़े हुए खूँटे में फाँस दिया जाता है। घाँटन के नीचे एक तख्ता लगा रहता है, जिसे **बगेली** कहते हैं। बिलना या कुन्द में **पटार** (चमड़े की चौड़ी और लम्बी पट्टी) लपेटकर उसे खींचा जाता है। लाख से **बर्तन** चिपका दिया जाता है। कुन्द के घूमने पर बर्तन भी घूमता है। फिर **रुकानी** या **रन्दे** (एक औजार जो मुड़ी हुई नोंक का होता है और बर्तन खरादने (छीलने) के काम में आता है) से उस बर्तन को खरादते हैं।

§१०५७—मोटा, भारी, गोल और गड्ढेदार काठ **अड्डा** या **खाता** कहाता है। बर्तन पीटने के काम आनेवाली लकड़ी की मोंगरी को **चौरसा** या **फड़ोड़ी** कहते हैं। बर्तन को पीटकर
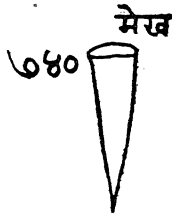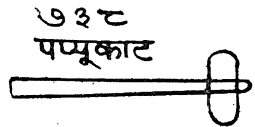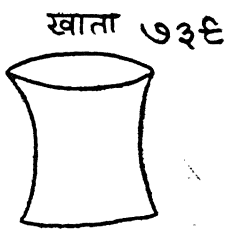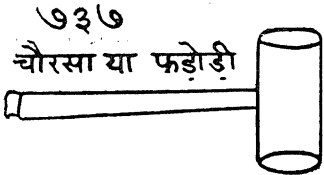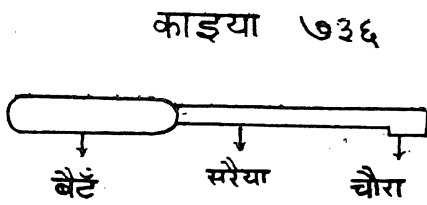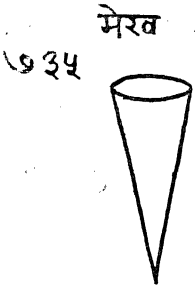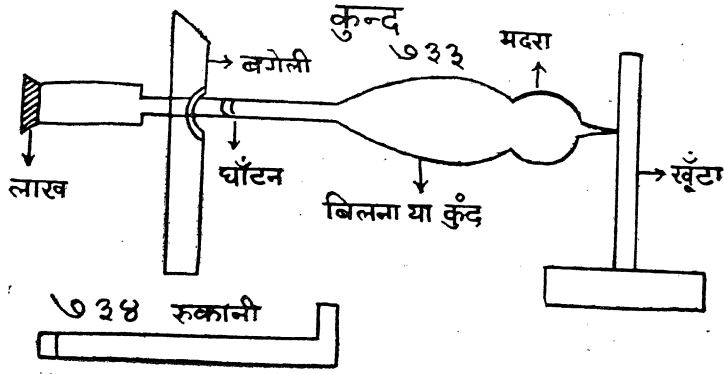
ठठेरे के औजार [रेखा-चित्र ७३३ से ७४० तक]

गहरा बनाना **गहराना** ('गहरा' शब्द से नाम धातु) कहाता है। प्रायः बर्तनों के **पैंदे** खात पर रखकर **फड़ोड़ी** या **मोंगरी** की चोटों से गहराये जाते हैं।

लोहे का एक गोला होता है। उस पर रखकर भी बर्तन गहराया जाता है।

कल्सा (सं० कलश) आदि की गर्दन **इकबाई** (लोहे का एक औजार) पर बनाई जाती है।

बर्तनों पर अँकाई करने के औजार

§१०५८—**कलम** (औजार) से बर्तनों पर बेल-बूटा बनाना या नाम लिखना **अँकाई** कहाता है। बिन्दोदार अँकाई को **चित्ती** या **चेती** कहते हैं। गहरी रेखावाली अँकाई **करेसी** कहाती है।

चेती और करेसी में काम आनेवाले **लौखर** (औजार) निम्नांकित हैं—

(१) **चेतिया**—इस औजार से **बुँदकियाँ** (बिन्दु) बनाई जाती हैं। यह नुकीला औजार है।

(२) **लकचीरा**—इस औजार से गहरी लकीरें खींची जाती हैं। इसमें तीन पहल होते हैं।

(३) **पट्टा**—इसमें दो पहल होते हैं। इस औजार से आँक (अक्षर या बूटा) के बीच का माल छाँटा जाता है।

(४) **धारिया**—पट्टे से जो माल खलाया जाता है, उससे खाली जगह में **झोंतरे** (ऊँची-नीची नोंकें और जगह) बन जाते हैं। धारिया उन झोंतरों को **इकसार** (चौरस) कर देता है।

(५) **करकी**—इस औजार से बर्तन पर बाहरी लकीरें खींची जाती हैं। इसकी पहल चौरस होती है और इसे खड़ी हालत में रखकर काम में लाया जाता है।

(६) **माठना**—यह दो तरह का होता है—(१) चौरसा माठना (२) धारिया माठना। आँक में चिकनापन लाने के लिए चौरसा और गहराई लाने के लिए धारिया काम में लिया जाता है। एक **गोल चौरसा** भी होता है। जो गोल चीज को चौरस बनाता है।

(७) **टौंटा**—यह उभरे आँक बनाने में काम आता है।

(८) **ठोकना**—यह हरफों की सफाई में काम आता है।

(९) **गोल धारिया**—बर्तनों पर शून्य के निशान और गिन्तियाँ इसी से बनाई जाती हैं।
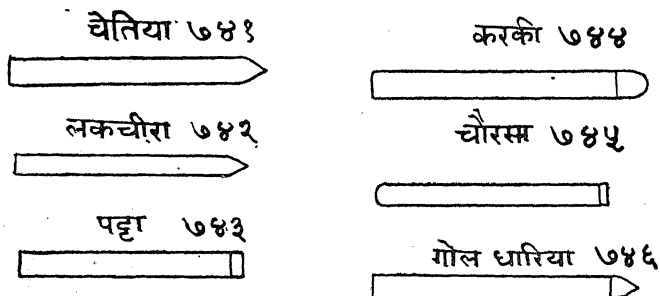
अँकाई के औजार [रेखा-चित्र ७४१ से ७४६ तक]

अध्याय १८

कलईगर

§१०५९—ताँबा, पीतल और **काँसा** (सं० कांस्यक) आदि धातुओं के बर्तनों पर सफेदी करनेवाला कारीगर **कलईगर** कहाता है। उस सफेदी को **कलई** कहते हैं। कुछ **ठठेरे** (बर्तन बनानेवाले) और **कसेरे** (सं० कांस्यकार=काँसे के बर्तन बनानेवाले) भी बर्तनों पर कलई करते हैं। काँसे के छोटे-छोटे टुकड़े **कसकुट** (सं० कांस्यकुट्ट) कहाते हैं। कसकुट में जब अन्य धातुओं के टुकड़े मिला दिये जाते हैं, तब उसे **भर्त** कहते हैं।

बर्तन पर कलई करना

§१०६०—जिस बर्तन पर कलई की जाती है, उसे पहले रेत या बारीक तारों की कुची से साफ किया जाता है। बर्तन पर कुची फेरने की क्रिया **पाई करना** कहाती है। बर्तन को चमकाने के लिए अर्थात् साफ करने के लिए एक खास तरह के पत्थर का चूरा काम में आता है, जिसे **मानिक खरिया** कहते हैं। कुछ बर्तनों पर मैल और काई इतनी सख्त हालत में जम जाती हैं कि कुची और मानिक खरिया से दूर नहीं होतीं; तब उन्हें तेजाब में डालकर निखारते हैं। यह क्रिया **बासन-बुझाना** कहाती है। बर्तन पर कलई करते समय कलई या बर्तन की खराबी से बर्तन पर जहाँ-तहाँ धब्बे-से बन जाते हैं, वे **छर्रा, बादर** या **झाँई** कहाते हैं। वह बर्तन जिस पर कलई नहीं चमकती **कलईचट** या **बज्जा** कहाता है। बर्तन की झाँई को दूर करने की क्रिया **जिगरी करना** कहाती है।

§१०६१—सोने या चाँदी को पिघलाकर पानी की तरह बना लेते हैं; फिर उसे बर्तनों पर फेरते हैं। उस क्रिया को **पानी करना** कहते हैं। किसी बर्तन पर चाँदी का पानी करने से पहले उस बर्तन पर सादा पारे का **पुचारा** (एक कपड़ा) फेरा जाता है। उस पारे को **मुर्दा पारा** कहतेहैं और पारे का पुचारा फेरना **पारा देना** कहाता है। कभी-कभी चाँदी या सोने के बर्तन को मोती का-सा चमकीला बनाने के लिए **पोतों** (मोती के दाने) को रगड़ते हैं। वह क्रिया **पुतियाना** कहाती है।

पानी या कलई के काम के कुछ औज़ार

§१०६२—पानी को **झमकाने** (चमकाना) के लिए एक तरह की कलम-सी काम आती

बँदिया ७४७
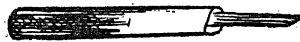
पौलची या घुट्टी ७४८

बर्तन पर कलई करने के औज़ार

[रेखा-चित्र ७४७ से ७४८ तक]

है जिसे **बदिया** कहते हैं। एक नुकीला औजार जो आकृति में होल्डर की तरह का होता है, **पोलची** या **घुट्टी** कहाता है। इससे अदद में चमक पैदा की जाती है। ये औजार पत्थर के एक टुकड़े पर पैनाये जाते हैं जो **सिल्ली** कहाता है।

अध्याय १६

कानमैलिया

§१०६३—कान में से मैल-मिट्टी निकालकर कान साफ करनेवाला **ठेकनिकारा** या **कानमैलिया** कहाता है। ठेकनिकारे अपने औजारों को सिर पर बँधी हुई एक छोटी-सी पगड़ी में उरस लेते हैं। वह पगड़ी **सरौटी** कहाती है। तेल आदि के भर जाने पर जिस कान से कुछ सुनाई नहीं पड़ता उसे **गुम्म कान** कहते हैं। जिस आदमी को कानों से सुनाई नहीं देता उसे **बहरा** (सं० बधिर>प्रा० बहिर>बहरा) कहते हैं। जिसे जोर की ही आवाज सुनाई देती है वह **ऊँचौ सुनइया** कहाता है। बड़े कानोंवाला व्यक्ति **बड़कन्ना** और फटे हुए कानोंवाला **कनफरा** कहाता है। कान के अन्दर का भाग, जिस पर झिल्ली का खोल होता है, **पर्दा** कहाता है। कान के नीचे का बिना हड्डी का मांसल भाग जिसमें आदमी बारी या दुर पहनते हैं **लौर** कहाता है। कान का ऊपर का किनारीदार भाग **कनौत** कहाता है। हाथों से कनौत पकड़ने को **कनपकड़ी** कहते हैं।

§१०६४—कान का एकत्र हुआ मैल **गूग** या **ठेक** कहाता है। ठेक के छोटे और बारीक टुकड़े **छिक्कल** या **परती** कहाते हैं। छिक्कल से भी छोटे टुकड़े जो मुश्किल से हाथ में पकड़े जा सकते हैं, **फसेट** कहाते हैं। सूखे और खुश्क कान में फसेट अधिक निकलती है। कान के सूराख के पास मोम की-सी गोली एकत्र हो जाती है, जिसे **ठेटी** कहते हैं। मुड़े हुए सिरे की सलाई जिससे कान का मैल कुरेदा जाता है **अँकुरी** कहाती है। मैल को नीचे से उठाकर **फोक** और **पोला** बनानेवाली सराई **कनकुरेदनी** या **हलाली** कहाती है। सलाई के सिरे पर रुई लगाकर और उसे तेल में डुबाने के बाद कान में फिराना, **फुरपुताना** कहाता है। सूखी फुरैरी फिराने को **फुरैरना** कहते हैं। कान में तेल लगाने में काम आनेवाली फुरैरी की सलाई **मुरदारी** कहाती है। कान की ठेक निकालने में काम आनेवाली चीमटी को **चम्पा** या **चम्पी** कहते हैं।

कुछ कानमैलिये **तेलमलाई** (तेलमालिश) का भी काम करते हैं। सिर पर तेल मलते समय वे अनेक तरह से हाथ फिराते हैं। उन्हें **मलाई के हाथ** कहते हैं।

§१०६५—मलाई के हाथों के नाम—(१) जुरैंटी—सिर के तलुए पर तेल डालकर **तेलमलेता** (तेल मलनेवाला) जब खुले हुए दोनों हाथ मिलाकर नीचे की किनारी से सिर पर धीरे-धीरे चोट मारता है तो वह हाथ **जुरैंटी** कहाता है।

(२) **मत्थी—**दोनों हाथों के अँगूठों को माथे पर जमाकर धीरे-धीरे कनपुटी और सिर के चारों ओर दाब लगाना **मत्थी** कहाता है। माथे का दर्द मत्थी नाम के हाथ से बन्द हो जाता है।

(३) **अगपच्छा**—अँगूठे और उँगलियों से माथे, तलए और चोटी के दाएँ-बाएँ दाबते हुए सिर के पीछे हाथ ले जाना **अगपच्छा** कहाता है।

(४) **पटेट**—मलेता सिर में दोनों हाथों से तेल मलते हुए दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में मिलाकर 'पट' की आवाज़ कर देता है। उसे **पटेट** कहते हैं।

(५) **पुरेटी**—अँगूठे और उँगलियों के पोट्टुओं (पोरुओं) से जब जल्दी-जल्दी सिर पर मालिश की जाती है तब वह पुरेटी कहाती है। पुरेटी हाथ से तेल सिर में **पैबस्त** (जज्ब) हो जाता है अर्थात् अन्दर भिद जाता है।

(६) **समंगला हाथ**—जब माथे को दाबते हुए हाथ सिर के ऊपर से उतरता हुआ पीठ पर रीढ़ के सहारे-सहारे कमर तक चला जाता है, तब **समंगला** (सं० समग्र + ल) कहाता है। इस हाथ से सिर और कमर का दर्द दूर हो जाता है!

इसके अतिरिक्त **कैंची, छुरी, पंखा, ठोका, चमरी, दो हाथ, फुरैरी, हवाई हाथ** आदि भी मालिश के हाथों के नाम हैं।

अध्याय २०

तमोली या पनवाड़ी

§१०६६—पान बेचनेवाला व्यक्ति **तमोली** (सं० ताम्बूलिक > प्रा० तंबोलिअ > तंबोली > तमोली) कहाता है। **पान** (सं० पर्ण > पण्ण > पान) का पत्ता एक बेल पर आता है। पान की बेल को संस्कृत में 'नागबल्ली'[1] भी कहते हैं। सम्भवतः पान नाग जाति का मुख्य प्रसाधन रहा होगा, इसीलिए बेल का नाम नागबल्ली पड़ गया।

§१०६७—पान[2] के टुकड़ों पर चूना, कत्था आदि लगाकर जो उन्हें फुटकर रूप में बेचते हैं, वे **पनवाड़ी** कहाते हैं। तमोली बिना लगे पानों को थोक में बेचते हैं और महोबे (बुन्देलखण्ड में एक स्थान) और सेंहुड़े (बाँदा जिले में एक गाँव) आदि स्थानों में जाकर पान की खरीद करते हैं। तमोलियों का कहना है कि पान की बेल जिस खेत में बोई जाती है वह पाँच बराबर के हिस्सों में बँटा रहता है। प्रत्येक हिस्सा **कोणी** कहाता है। प्रत्येक कोणी **पलागियों** में और प्रत्येक पलागी **कत्तूसों** में बँटी रहती है। एक कत्तूस में सौ पान के पौधे लगाये जाते हैं। खेत की **बँटैती** (विभाजन) इस प्रकार होती है—

१०० पान-बेलें = १ कत्तूस
२५ कत्तूस = १ पलागी
८० पलागी = १ कोणी

---

[1] ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ल्यपि —अमर० २।४।१२०

[2] देवपूजन के १६ अंगों में एक ताम्बूल भी है। सोलह अंग इस प्रकार हैं—(१) स्वागत (२) आसन (३) पाद्य (४) अर्घ्य (५) आचमनीयक (६) मधुपर्क (७) स्नान (८) वस्त्राभूषण (९) गन्ध (१०) पुष्प (११) धूप (१२) दीप (१३) नैवेद्य (१४) ताम्बूल (१५) वन्दन (१६) परिक्रमा।

पान के पत्तों से जो पिटारे भरे जाते हैं, उनमें से फिर छोटी-छोटी पिटारियाँ बनाई जाती हैं जिन्हें **ढोलियाँ** कहते हैं। दो सौ पानों की छोटी-सी पिटारी **ढोली** कहाती है। पचास ढोलियों का एक **पिटारा** होता है। ढोली का प्रत्येक पत्ता **पूरा पान** कहाता है। पूरे पान का आधा भाग **अद्धा** कहाता है। पाके पान के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"पकौ पान खाँसी न जुखाम।"

पान लगाने के सम्बन्ध में लोकोक्ति है—

"पान बरोबर चूना। चूना तें कत्था दूना॥"

पान बनाना

§१०६८—पूरे पान को लगाकर और उसे खास तरह से मोड़कर जो सुन्दर रूप दिया जाता है उसे **बीड़ा** (सं० बीटक) कहते हैं। बीड़े में एक लौंग भी लगाई जाती है। बीड़े पर चाँदी के वरक आदि लपेटना **पान जचाना** कहाता है। पान पर चूना और कत्था लगाकर थोड़ी देर रख देना **पान रचाना** कहाता है, क्योंकि उसमें लाली की चटक बढ़ जाती है और उससे खानेवाले के होठ अधिक रचते हैं। दो पानों के बीड़े को **जोड़ी-बीड़ा** अथवा **बीड़ा-जोड़ी** कहते हैं। अधिक आदर और सम्मान में **बीड़ा-जोड़ी** ही दी जाती है। महाकवि श्रीहर्ष को भी कन्नौज के राजा से **बीड़ा-जोड़ी** और आसन प्राप्त होता था। इसका उल्लेख कवि ने नैषधीय चरित के अन्त में किया है।[1] बिना **सुपाड़ियों** (छ्यालियों) के पान के सम्बन्ध में लोकोक्ति है—

"बिना कुचन की कामिनी, बिना मौंछ कौ ज्वान।
जे दोऊ ऐसे लगैं, बिना सुपारी पान॥"[2]

§१०६९—**पानों की जातियाँ**—पानों की जातियों के अनेक नाम हैं जो प्रायः स्थानों के आधार पर हैं—

ककेरा (यह पान विन्ध्य प्रदेश के मैहर और उमरिया नाम के नगरों में पैदा होता है), **कपूरी**, **केताकी**, **खासा**, **गोलचा**, **जगन्नाथी**, **डामरू**, **देसी**, **नागर**, **बँगला**, **बिरकुली**, **बिलहरा**, **बेगमी**, **मगही** (इसे बनारसी भी कहते हैं। यह बिहार के गया जिले में अधिक होता है), **मदरासी**, **महोबिया**, **लंका** और **सँहुड़ा**।

पान के सम्बन्ध में एक पहेली प्रचलित है—

"पाँच कबूतर पाँचौई रंग। अटरिया में बैठैं तौ एकुई रंगु॥[3]

---

[1] "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।"
श्रीहर्ष : नैषधीय चरित, खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई, सन् १९२७ — २२ वें सर्ग के उपरान्त श्लोक ४।

[2] जिस प्रकार सुपाड़ियों के बिना पान अच्छा नहीं लगता, ठीक उसी प्रकार उरोजों बिना स्त्री और मूछों बिना युवक शोभा नहीं पाता।

[3] पाँच कबूतर (पान, चूना, कत्था, सुपाड़ी और लौंग) अलग-अलग पाँच रंगों के हैं, लेकिन जब वे अटरिया (मुँह) में बैठते हैं, तब एक ही रंग के (लाल) हो जाते हैं।

अथवा

"पाँच कबूतर पाँचौई रंग।
अटरिया मैं बैठैं एकई संग॥"[1]

स्वागत-सत्कार में पान का बीड़ा दिया जाता है इसलिए **'मान का पान'** मुहावरा प्रचलित हो गया है। किसी स्त्री के होंठ यदि पान खाने से अधिक रचें तो यह माना जाता है कि उस पर उसके पति का प्यार अधिक है।[2] पान की प्रथा पुरानी है। कठिन कार्य करने अथवा प्रण करने के प्रतीक के रूप में पान का बीड़ा उठाना प्रसिद्ध ही है। प्रतीकों द्वारा अभि-व्यंजना के साधनों में पान का बीड़ा प्रमुख था। राजा लोग जिस व्यक्ति पर प्रसन्न होते थे तो अपनी वाणी से प्रसन्नता के भाव प्रकट नहीं करते थे, अपितु अपनी प्रसन्नता को मौन रूप से प्रकट करने के लिए उस व्यक्ति को दो पान भेंट करते थे। लोक में अब भी प्रसिद्ध है—"मान के दो पान।"

---

[1] यह पहेली इस तरह भी प्रचलित है।

[2] पान खाकर मुँह रचाना स्त्रियों के २६ श्रृङ्गारों में से एक श्रृङ्गार माना गया है। श्रृङ्गारों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) अंग पर उबटन लगाना (२) स्नान (३) वस्त्र (४) आभूषण (५) केश-विन्यास (६) सिंदूर (७) मस्तक पर बिन्दी (८) ठोड़ी पर तिल बनाना (९) दाँतों में मिस्सी (१०) होंठ रचाना (११) पान खाकर मुँह रचाना (१२) सुगंधित द्रव्य लगाना (१३) पाँवों पर महावर लगाना (१४) पुष्पहार (१५) हाथों में महँदी (१६) आँखों में काजल।

प्रकरण १४

यात्रा के साधन

अध्याय १

गाड़ियाँ

§१०७०—जनपदीय जन जिन **गाड़ियों** (देश० गड्डी दे० ना० मा० २।८१) में अपना माल ढोते हैं या जिनमें बैठकर यात्रा करते हैं वे सभी गाड़ियाँ **सबारी** या **भारकस** (फा० बार-कश) कहलाती हैं। थोड़ी-सी दूरी **पैंड़भर** और बहुत दूरी **हजनन** या **कारे कोसन**[१] कहाती है। बीस कोस की यात्रा को **एक मजल** कहते हैं। रास्ते के लिए जनपदीय शब्द **डगर** या **गैल**[२] प्रचलित है। रास्ते में पैदल चलनेवाले यात्री को **'गैलाऊ'** कहते हैं। रास्ते की बहुत बड़ी दूरी **'हजनन'** कहाती है। चलने में एक कदम की दूरी **पैंड़** कहाती है। लम्बा और पूरा कदम **डग** कहाता है। संभवतः 'डगर' से बनी हुई नाम धातु-क्रिया **डिगारना** (= हटाना, दूर करना) प्रचलित है। दो मील का एक पक्का कोस होता है। यात्रा में जहाँ रात को रुकते हैं, वह स्थान **पड़ाव** कहाता है। गाड़ी हाँकनेवाले को **गड़बारो** कहते हैं, लेकिन रथ हाँकनेवाला **रथबान** (सं० रथ + फा० बान) कहाता है। रथ की देख-भाल के लिए पीछे एक आदमी चलता है, उसे **चिरकटा** कहते हैं। गाड़ी में बैठने या माल भेजने का किराया **भाड़ा** (सं० भाटक) कहाता है। लौटने या वापिस आने के अर्थ में **बगदना** या **डिगरआना** क्रियाएँ प्रचलित हैं। जिस यात्री के साथ में स्त्री-बच्चे होते हैं वह **कचायल**; और अकेला तथा बिना माल-असबाब वाला **छड़ीदा** कहाता है। गाड़ी के **पहियों** (सं० पथिक > अप० > पहिआ > हिं० पहिया) से जो दो रेखाएँ बनती हैं उन्हें **लीक** कहते हैं। गाड़ी के सम्बन्ध में दो लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

चलती कौ नाउँ गाड़ी ऐ।[३]
गाड़ीऐ देखिकैं लाड़ी के पायँ फूल्जात ऐं।[४]

गाड़ीबान (गाड़ी हाँकनेवाला) के सम्बन्ध में भी एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

आकु आगि औ आमरौ, चौथी गाड़ीबान।
ज्यौं-ज्यौं चमकै बीजुरी, त्यौं-त्यौं तजतऐं प्रान॥[५]

बादलों में बिजली को चमकता हुआ देखकर **गड़बारे** (गाड़ीबान) को बड़ी **तलाबेली**

---

[१] "मथुरा हू तैं गये सखी री, अब हरि **कारे कोसनि**।"
—सूरदास : सूरसागर, काशी० ना० प्र० सभा, १०।४२४८

[२] गल्ली (=गली) मूल में संभवतः हिन्दी का 'गैल' शब्द ही है, जो इस प्रकार आया है— गृध > गढ़ > गध + इल्ल > गल्ली > गली > गैल।
—डा० सुनीतिकुमार चटुर्ज्या : भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, प्रथम सं० पृ० १००

[३] चलती का नाम गाड़ी है अर्थात् जीवन में सफलता पानेवाला ही योग्य कहाने लगता है।

[४] गाड़ी देख लेने पर नव विवाहिता बधू के पाँव फूल जाते हैं अर्थात् वह चलने के लिए असामर्थ्य प्रकट करने लगती है। [ना० कोल की चमार जाति के लोग 'फूल्जातऐं' को 'फूनूजातऐं' कहते हैं।]

[५] आक, आग, आँवले का पेड़ और गाड़ीबान बादलों की बिजली को देखकर प्राण त्यागते हैं। अर्थात् उक्त चारों के लिए वर्षा हानिप्रद है।

(अप० तल्लोविल्लि > तलाबेली = बेचैनी) मच जाती है। सोमप्रभ सूरि ने अपभ्रंश के ग्रंथ कुमारपालप्रतिबोध में 'तल्लोविल्लि'[1] शब्द का प्रयोग किया है। यात्रा के सम्बन्ध में प्रचलित है— "बिसपिति उलाइतो सुक्कुरु सीरौ" अर्थात् बृहस्पतिवार को यात्रा करनेवाला जल्दी लौट आता है और फिर जल्दी यात्रा करता है लेकिन शुक्र को यात्रा करनेवाला जल्दी यात्रा नहीं करता है।

§१०७१—**बिना छतरी की गाड़ियाँ**—(१) ठेला (२) छकड़ा या लढ़िया (३) पौना (४) अधलढ़ा (५) घैमरदा (६) रहलू (७) फिरक (८) ठूँठिया (९) ठोकर (१०) धकेल या ढकेल (११) गड़ूलना या गिंड़ैली।

§१०७२—**छतरीदार गाड़ियाँ**—(१) बहल या मँझोली (२) रब्बा (३) रथ (४) इक्का (५) बग्घी (६) टमटम (७) ऊँटगाड़ी अर्थात् सिकरम।

§१०७३—**बैलगाड़ी की चाल**—बैलगाड़ी जब धचकों के साथ धीरे-धीरे चलती है तब वह चाल **ढच्चर या ढचरा** कहाती है। तेज चाल जिसमें हाल न लगे **फरबट** कही जाती है। ढच्चर चाल से गाड़ी में बैठी हुई सवारियों की देह में जो थकान और हलका-सा दर्द हो जाता है, उसे **हराहरि**[2] कहते हैं। **'थकान होना'** के लिए **'हराहर ब्यापना'** और 'दर्द होना' के लिए **'पिराना'** क्रिया का प्रयोग होता है। बैलगाड़ियों का एक चौड़ा रास्ता **दगरा** (डगरा = बड़ी डगर, बड़ा रास्ता) कहाता है (देश० डग्गल—दे० ना० मा० ४।८, डग्गल > डागर > डगरा > दगरा)।

बिना छतरी की गाड़ियाँ

(१) ठेला

§१०७४—ठेला माल ढोने में काम आनेवाली बिना छतरी की बैलगाड़ी है। इसमें चार **पहिये**[3] होते हैं। पीछे के दोनों पहिये बड़े और आगे के दोनों छोटे होते हैं। ठेले की **छत** जहाँ सामान रक्खा जाता है तख्तों से पटी रहती है। छत का पीछे का भाग आगे के भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। बड़े ठेले में दो बैल और छोटे में एक ही बैल लगता है। छत के नीचे थोड़े फासले पर दो मोटी-मोटी लकड़ियाँ लगी रहती हैं, जिन्हें **धुरा** कहते हैं। धुरों में दोनों ओर लोहे की मोटी-मोटी सलाखें फँसी रहती हैं जो **धुरी** कहाती हैं। पहिये धुरियों पर ही घूमते हैं। ठेले का पिछला धुरा तीन हाथ और अगला ढाई हाथ के लगभग होता है। प्रत्येक धुरी छत्तीस अंगुल लम्बी होती है। सवारी गाड़ियों का धुरा ढाई हाथ या तीन फुट का होता है। ठेले का पिछला धुरा सबसे अधिक लम्बा होता है। एक चौखटा-सा जिसमें दोनों बैलों की गर्दनें रहती हैं **जूआ** कहाता है। जूए से लेकर अगले पहिए तक की दूरी **काढ़** कहाती है। छोटे काढ़ के ठेले में बड़े बैल नहीं लग सकते। यदि लगा दिये जायँगे तो उनकी पिछली टाँगों में ठेले के अगले पहियों की रगड़ लगती रहेगी। अतः ठेले का काढ़ कम से कम सवा दो गज से अधिक अर्थात् ढाई या तीन गज का रक्खा जाता है। छोटी सवारी-गाड़ियों के काढ़ सवा दो गज के और बड़ी सवारी-गाड़ियों के ढाई गज के बनाये जाते हैं। ठेले की छत को कुछ ऊँची रखने के लिए धुरे और छत की किनारी के बीच में दोनों ओर एक-एक लकड़ी की बड़ी गट्टक-सी लगाई जाती है जिसे **ठेबी** कहते हैं।

---

[1] **थोड्इ जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लिकरंत।**
—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिंदी साहित्य का इतिहास, सन् १९५५ ई० प्रका० मालवीय पुस्तक भ०, लखनऊ, पृ० ३०

[2] **कछु मेरे तबै परिरम्भन सों सुठि अंग हराहरि खोइगई।**
—भवभूति कृत उत्तर रामचरित का हिन्दी अनुवाद, अनु० सत्यनारायण कविरत्न, १।२४

[3] 'पहिया' की व्युत्पत्ति सं० पथ्यक और 'पथिक' दोनों से ही सम्भव है (सं० पथिक > अप० पहिआ—हेम०, व्याकरण, ८।४।४३११)।

(२) छकड़ा या लढ़िया

§१०७५—सामान ढोने की माँचीदार बैलगाड़ी **छकड़ा** (सं० शकटक) या **लढ़िया** कहाती है। लढ़िया के ऊपर बल्लियों में **बरही** (मोटी रस्सी) डालकर चारों ओर से जो आड़-सी की जाती है वह **माँची** कहाती है। **माँची** की गहराई **धाँच** कहाती है। माल-असबाब **धाँच** में ही भरा जाता है। **लढ़िया का काढ़ अढ़गजा** (ढाई गज का) होता है और लम्बाई साड़े नौ हाथ होती है। लढ़िया को पानीदार नामी बैल ही खींच कहते हैं। लोकोक्ति प्रचलित है—

> "बिना धुरंधर जोतै लढ़ी। बिना हरद के राँधै कढ़ी॥
> बिन भइयन के ठानै जंग। बिना मिरच के छानै भंग॥
> ग्वाकी लढ़ी न ग्वाकी कढ़ी। ग्वाकी जंग न ग्वाकी भंग॥[1]
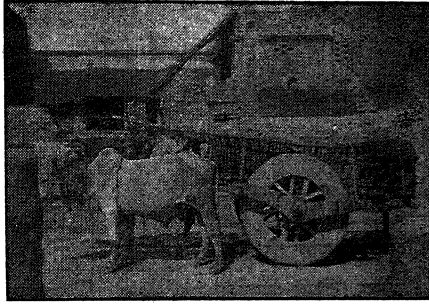
छकड़ा या लढ़िया—[चित्र ३३]
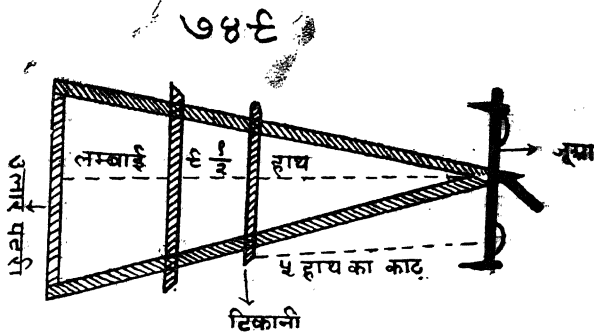
[रेखा-चित्र ७४९]

(अ) लढ़िया के मुख्य भाग

(१) जूआ (२) म्हौंड़ा (३) ढाँच (४) धुरा (५) पहिये और उनकी सहायक वस्तुएँ (६) माँची और धाँच से सम्बन्धित वस्तुएँ।

---

[1] जो लढ़िया में धुरंधर (ताकतवर नामी बैल) बैल नहीं जोतता; जो कढ़ी (बेसन) में हल्दी नहीं डालता, जो भाइयों के बिना लड़ाई ठान देता है और जो बिना काली मिर्चों के भंग छानता है उसकी लढ़िया, कढ़ी, लड़ाई और भंग व्यर्थ और हानिप्रद सिद्ध होती है।
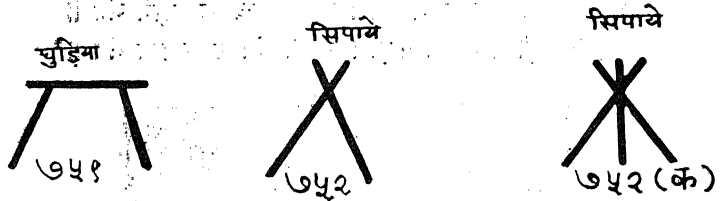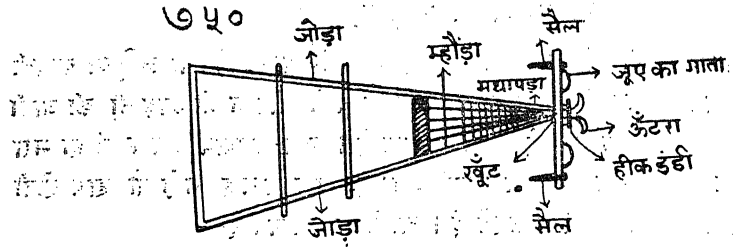
[रेखा-चित्र ७५० से ७५२ (क) तक]

(इ) लढ़िया का जूआ और म्होंड़ा

§१०७६—लढ़िया में मुख्य वस्तुएँ **दो हरसे** या **फर** (दो मोटी-मोटी लम्बी सोटें-सी) होती हैं जो **जोड़ा** भी कहाती हैं। जोड़ा (दोनों हरसे) जहाँ मिलता है वह जगह **सुहावटी** या **पटपरा** कहाती है। लढ़िया का **जूआ** (एक लकड़ी जो बैलों के कन्धों पर रहती है। गाड़ी के खिंचने पर इस पर जोर पड़ता है) सुहावटी पर ही **नाड़ी** (खुर्जे में) या **खूँट** (एक रस्सी जो मोटी और मजबूत होती है) से कसकर बाँध दिया जाता है। सुहावटी के पीछे **म्होंड़े** (लढ़िया का अग्रभाग जहाँ गड़बारा हाँकने के समय बैठता है) में **पापड़ा, मथागुरा थापड़ा** या **मथापड़ा** बना होता है जो खमदार तख्ते के रूप में बनाया जाता है। सुहावटी के आगे कुछ हिस्सा निकला रहता है जिस पर बढ़ई किसी पक्षी की आकृति की लकड़ी जमा देते हैं ताकि गाड़ी और बैलों को नजर न लगे। उस लकड़ी को **सगुनी** (सं० शकुनीय) कहते हैं। एक तरह से सगुनी को लढ़िया की नाक और मथापड़े को माथा समझना चाहिए। सुहावटी के आगे और सगुनी के नीचे छोटी-सी एक लकड़ी लगी रहती है, जो **ऊँटरा** (सं० उष्ट्रक) कहाती है। ऊँटरे के कारण सगुनी और जूआ धरती से नहीं लगते। जूए (सं० युग>जुअ>जूआ) को **जूअर** भी कहते हैं। जूअर की बाँध को मजबूत रखने के लिए उसके आगे छोटी-सी एक लकड़ी और बाँध दी जाती है जो **बिलइया, बेलडंडी** या **हीकडंडी** कहाती है। रब्बा, बहली और रथ आदि के जूए में खूँट के पास मुड़ी हुई एक कील जड़ी रहती है जो **हँसली** कहाती है।

§१०७७—जूअर के सिरों पर छेद होते हैं। उनमें एक-एक घुंडीदार लकड़ी पड़ी रहती है जिसे **सौल** (माँट में) या **सैल** कहते हैं। बैलों की गर्दन के नीचे **जोते** (वै० सं० योक्त्रक = चमड़े की पटार) डालकर उन्हें फिर इन सैलों में ही अटका दिया जाता है। जूअर में दायें-बायें सैलों के पास कुछ हिस्सा ऊपर को उठा हुआ बनाया जाता है जिसे **गातौ** या **परिया** कहते हैं। कुछ-कुछ ऐसा ही उठा हुआ रूप जूअर के बीच में होता है जहाँ खूँट बँधती है; उस उठे हुए रूप को **मंझा** या **सातिया** कहते हैं। बैलों के जोतों के **कौड़ों** (लोहे के गोल छल्ले) में जो सन की रस्सी बँधी रहती है, वह **नागारा** कहाती है। रहलू आदि के जूए में गातों की जगह लोहे या

ीतल के आँकुड़े लगे रहते हैं जिनमें नागौरे अटका दिये जाते हैं। ये आँकुड़े **अँकूसी, चिरइया** ा **मुहेर** कहाते हैं।

§१०७८—लढ़िया के जूए में से जब बैल अलग कर दिये जाते हैं तब म्हौड़े को ऊपर ाधने के लिए उसके नीचे **सिपाये** (फा० सिहपाय = सिह = तीन + पाय = पाँव = रस्सी से आपस में ुड़े हुए तीन या दो डंडे) लगा देते हैं। जब गाड़ी की धुरी में से पहिया निकालना होता है तब जोड़े के नीचे **घुड़िया, घिनौंची, घरौंची** या **घुड़च** (लकड़ी का एक चौखटा) लगाते हैं। सिपाये न होने पर घुड़िया से म्हौंड़े के साधने का काम भी ले लेते हैं।

§१०७९—लढ़िया के जूए में जुतनेवाले बैल यदि **वोदे** (दुर्बल) होते हैं तो उन दोनों की सहायता करने के लिए एक तीसरा बैल भी जूए के आगे जोतते हैं जो दोनों बैलों के बीच में रहता है। वह तीसरा बैल **धुरिया मैंड़िया, बीड़िया** या **पीड़िया** (सं० प्रष्टि) कहाता है। जूए के नीचे जुतने वाले दोनों बैल सामूहिक रूप में जोट कहाते हैं। जोट के बैलों की **नाकों** (देश० णक्क[1] >नाक) में पड़ी हुई **नाथों** (देश० णत्था[2] > नत्था > नाथ = नासा-रज्जु) में लम्बे-लम्बे दो रस्से बँधे रहते हैं जो **रास** (सं० रश्मि[3]) कहाते हैं। मैंड़िया की नाथ में रास नहीं बाँधी जाती। गाड़ीबान दोनों रासों को पकड़कर गाड़ी हाँकता है। गाड़ीबान के दाहिनी ओर का बैल **बाहिरा** और बाईं ओर का **भीतरा** कहाता है। वास्तव में पानीदार और **जौंहर** (फा० जोर) के बैलों के **कन्धों** (सं० स्कन्ध, स्कन्धस्) के बल पर ही लढ़िया ठीक तरह से खिंच सकती है।

§१०८०—म्हौड़े का जालीदार पटाव **मांकरी** या **पंजारा** कहाता है। लढ़िया में पंजारा नहीं होता। प्रायः रहलू, फिरक, बहली और रब्बा आदि बैलगाड़ियों में पंजारे बनाये जाते हैं, क्योंकि इनके म्हौड़ों की लम्बाई ५-६ हाथ होती है। लढ़िया का म्हौड़ा लगभग डेढ़हाथ ही होता है।
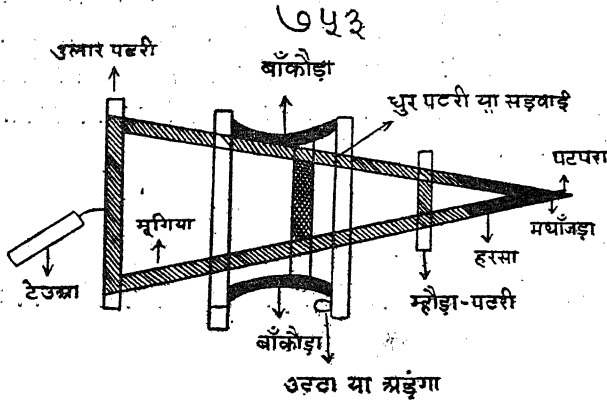
(उ) **लढ़िया का ढाँचे**—[रेखा-चित्र ७५३]

§१०८१—दोनों हरसों के ऊपर गाड़ी का जो सामान जमाया जाता है वह सब मिले हुए रूप में **ढाँच** या **ताबीज** कहाता है। हरसों के ऊपर तीन पटरियाँ जमाई जाती हैं जो पीछे से आगे की ओर क्रमशः छोटी होती हैं। पिछली **उलार पटरी,** बीच की **धुरपटरी** या **सड़-**

---

[1] हेमचन्द्र : देशी नाममाला ४।४६

[2] वही ४।१७

[3] "अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीन्जग्राह च स्वयम्।" अर्थात सात्यकि ने द्रोण से युद्ध किया और रास भी थामी।—महाभारत, द्रोणपर्व, जयद्रथ बध ११७।२५

वाई और आगे की **म्हौड़ा पटरी** कहाती हैं। धुरपटरी गाड़ी के धुरे के ऊपर रहती है। इसी-लिए इसे **धुर पटरी** (धुरे की पटरी) कहते हैं। धुरपटरी के आगे और पीछे एक-एक **सूजा** (सादा० में) या **टिकानी** लगती है। पहिये इन्हीं दोनों टिकानियों के बीच में धुरी पर घूमते रहते हैं। टिकानियों को आपस में मजबूती से जमा हुआ रखने के लिए गाड़ी के दोनों ओर खमदार एक-एक लकड़ी लगी रहती है, जो **बाँकौड़ा** या **बाँक साँकड़ा** कहाती है। गाड़ी में बाँकौड़ा पहिये और हरसे के बीच में होता है। उलार पटरी में मोटा और छोटा डंडा-सा लटका दिया जाता है ताकि गाड़ी के पीछे झुकने पर वह धरती पर टिक जाय और गाड़ी फिर अधिक झुकने से बच जाय। वह डंडा **टेउआ** कहाता है। अगली टिकानी में दोनों सिरों पर एक-एक गट्टक लगी रहती है जिसे **ररक** (ढालू जगह) में पहिये से अड़ा देते हैं। उस गट्टक को **उटेटा, अड़गड्डा** या **अड़ङ्गा** कहते हैं।

§१०८२—हरसों पर जमाई हुई सब पटरियाँ वहाँ की वहीं जमी रहें इसलिए उनके ऊपर ढाँचे के दायें-बायें एक-एक बल्ली रखकर हरसों में **बन्देजों** (रस्सियों के बँधान) को कसकर बाँध देते हैं। वे दो बल्लियाँ **मूगिया** कहाती हैं। मूगियों के बीच में पटरियों के ऊपर बाँसों की छत या अरहर की लकड़ियों का बुना हुआ जाल-सा बिछाते हैं जिसे **किरा, छावन** या **छरैरा** (खैर-खुर्जा में) कहते हैं। किरे के पीछे उलार पटरी के ऊपर एक पटरी और जमी रहती है जो **सेरू, लदैंड़ी** या **लाद की डण्डी** कहाती है। हरसों के पिछले दोनों सिरों पर लकड़ी की एक-एक गट्टक जमाई जाती है तब पिछली पटरी जमाते हैं। उन गट्टकों को **खुरपे** कहते हैं।

§१०८३—यदि हरसे कमजोर होते हैं तो उनके ऊपर एक-एक लकड़ी और जमाई जाती है जिसे **सवाई** या **सवारी** कहते हैं। फिर सवाई के ऊपर पटरियाँ जमाते हैं। गाड़ी के ढाँचे को ऊँचा रखने के लिए हरसों और धुरे के बीच लकड़ी की मोटी-मोटी दो गट्टकें लगा देते हैं। जिन्हें **डोरू, खुटरी** या **चिरइया** कहते हैं। टिकानियों की मजबूती के लिए हरसों के नीचे दो पटरियाँ-सीं लगाते हैं जो **नाब डण्डी** कहाती है। नाब डंडी और टिकानी के बीच में हरसे रहते हैं। म्हौड़े के नीचे पटपरे से लेकर आगे की पहली पटरी तक जो हरसों के बीच में लगी रहती है, वह लकड़ी **बानडण्डी** कहाती है।

(क) धुरा और धुरी

§१०८४—धुरे के मुख्य तीन भाग हैं—(१) **धुरा** (२) **धुरी** (३) **अनी**।

मोटी और भारी सोंठ जैसी लकड़ी जो लढ़िया के बीच में ढाँचे के नीचे लगी रहती है
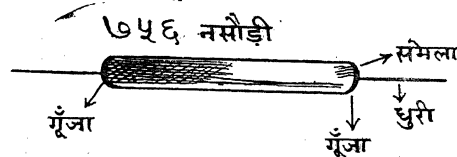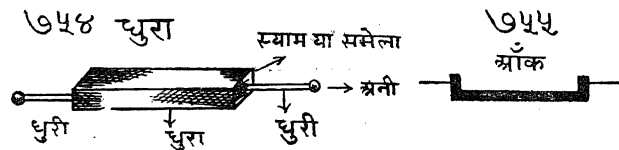
धुरा और धुरी—[रेखा-चित्र ७५४ से ७५६ तक]

धुरा कहाती है। धुरे के सिरों पर लोहे की बहुत मोटी सलाखें ठुकी रहती हैं। जिन्हें **धुरी** कहते हैं। धुरियों के सिरे, जिनमें छेद भी होते हैं, **अनी** (सं० अणि) कहाते हैं। अनी के छेदों में पहिये को रोकने के लिए **चकेल** (एक प्रकार की कील) डाल दी जाती है।

§१०८५—धुरे के दो प्रकार और हैं जिन्हें **आँक** और **नसौड़ी** कहते हैं।

आँक की दोनों लकड़ियाँ छेददार होती हैं जिनमें धुरी पोई जाती है। रथ के अगले दोनों पहियों में दो धुरियाँ और दो आँक होते हैं; और नसौड़ी में एक ही धुरी आर-पार फँसी रहती है। धुरे या नसौड़ी का सिरा **गूँजा** कहाता है। गूँजे पर चारों ओर जड़ी हुई गोल पत्ती **समेला** (खुर्जा में) या **स्याम** कहाती है।

§१०८६—धुरे की मजबूती के लिए उसके ऊपर लोहे की मोटी, चौड़ी और लम्बी एक पत्ती जड़ देते हैं जो **माखर, पोठी** या **बाकौला** कहाती है। धुरे के अन्दर की धुरी में जो छेद होता है उसमें ऊपर से एक कील आर-पार ठोकी जाती है जिसे **गोलिया; जलोइया** या **काबला** कहते हैं। घुंडीदार कीलें **घेरना** या **घेन्ना** कहाती हैं। प्रायः धुरों में घेरने और पहिये की पुट्ठियों के **जोड़ों** पर **गिलोइये** ठोके जाते हैं। गिलोइये लोहे की एक पत्ती के दोनों सिरों पर लगाये जाते हैं।

§१०८७—लढ़िया के नीचे मोटा एक रस्सा या बर्तेड़ा जूआ, टिकानी और धुरा में बँधा रहता है ताकि गाड़ी की झोक पीछे की ओर न रहे। उस बर्तेड़े को **झटका** या **अमैंड़ी** कहते हैं। अमैंड़ी को कसने के लिए उसमें एक लकड़ी द्वारा ऐंठे लगाये जाते हैं। अमैंड़ी का रस्सा दुहरा होता है। ऐंठोंवाली लकड़ी **पैंठी** या **घेंटी** कहाती है।

§१०८८—तीन बैलों की लढ़िया **तिखेड़ा** या **तिखेरा-लढ़िया** (सं० त्रि + उत्तर > तिखेइर > तिखेरा) कहाती है। चार बैलों से खिंचनेवाली लम्बी गाड़ी को **चौखेड़ा लढ़ा** कहते हैं। चौखेड़े लढ़े में बड़े नामी और पानीदार बर्ध (सं० बली > अप० बइल्ल; सं० वर्द > बलद् > बलध > बरध > बर्ध = बैल) अर्थात् **जोहरदार बैल** (फा० जोरदार; अप० बइल्ल[1] > बैल) जोते जाते हैं। वे रेत, **धँदल** (दलदल), ठूँठ, गाढ़ आदि सब प्रकार की धरती पर लढ़े को खींच ले जाते हैं। ठूँठ के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है—

"तैंनैं लाख कही। मैने ठूँठ पै लई ॥[2]

(ख) पहिया और उसकी सहायक वस्तुएँ
पहिये की बनावट और अंग

§१०८९—पहिये के मुख्य अंग ये हैं—**नाइ, आवन, अन्दी-अन्दा, अरा, सराई, अधौरी, पुट्ठी, पाचड़ा, सैला, माँगर, चका** और **हाल**। पहिया बनाते समय पहले **नाइ** (सं० नाभि) तैयार की जाती है। फिर अरा, सराई और पुट्ठी लगती हैं। लढ़िया की जोड़ी (दोनों

---

[1] बइल्ल (दे० ना० मा० ६।९१) = बैल (सं० बलि > बइलि > बइल्ल > बैल)।
"जे बङ्का ते वंचयर जे उज्जुअ ते बइल्ल।"—हेमचन्द्र : प्राकृत व्याकरण।
अर्थात् जो वक्र हैं, वे वंचकतर और जो ऋजु (सीधे) हैं, वे बैल होते हैं।

[2] तूने मुझसे लाखों बातें कहीं, जो कहनी, अनकहनी सभी तरह की थीं, लेकिन मैंने उन्हें ठूँठ (सं० स्थाणु) पर ही लिया अर्थात् उनकी लेशमात्र भी परवाह न की और उपेक्षावृत्ति के साथ उन्हें ऐसा समझता रहा कि वे किसी पागल की बातें हैं।

पहिये) प्रायः **सौकुर, राच** या **सार** (लकड़ी का हीर अर्थात् पका हुआ काला-सा भाग) की ही बनती है क्योंकि **कचौट** (कच्ची लकड़ी) की जोड़ी बहुत जल्दी जवाब दे जाती है। जोड़ी के दोनों पहिये सीधे और चौरस **घेरे** (परिधि) के होते हैं। यदि घेरा टेढ़ा होता है तो पहिया ठीक तरह से चलता नहीं। पहिये की टेढ़ **लहक** कहाती है।
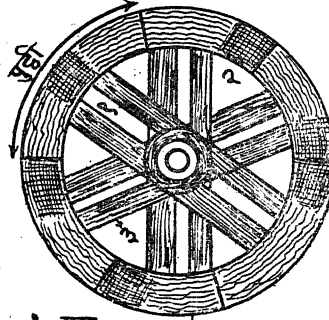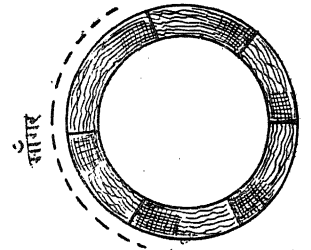
पहिये के अंग—[रेखा-चित्र ७५७ से ७५९ तक]

§१०९०—पहिये से केन्द्र भाग की मोटी और छेददार लकड़ी, जिसमें अरा, सराई आदि ठुके रहते हैं, **नाइ** (सं० नाभि[१]) कहाती है। नाइ के छेद में चौड़ी और मोटी लोहे की पत्ती का एक गोल नलका-सा फँसा रहता है जिसे **आबन** या **कूम** कहते हैं। गाड़ी की धुरी कूम में रहती है या यों कहिए कि धुरी पर ही कूम घूमती है। धुरी की रगड़ से नाइ न घिसे, इसलिए कूम लगाते हैं। पहिया धुरी पर हलका चले, इसलिए कूम में और धुरी पर अंडी का तेल चुपड़ दिया जाता है, जिसे **औंग** (सं० **अभ्यंग**) कहते हैं। तेल लगाने के लिए **'औंगना'** क्रिया प्रचलित है जिस बर्तन में औंग रहता है वह **उगौंड़ी** अथवा **औंगड़ा** कहाता है। नाइ को फटने से रोकने के लिए उसके ऊपर चारों ओर लोहे की गोल पत्ती चढ़ा देते हैं जिसे **अन्दा** (सं० अन्दुक) कहते हैं उसी प्रकार कूम के छेद के बाहर चारों ओर एक छोटी पत्ती जड़ी जाती है जो **अन्दी** कहाती है अन्दी-अन्दा कूम और नाइ की सुरक्षा के लिए लगाये जाते हैं।

§१०९१—नाइ में जो चौड़ी और पतली लकड़ियाँ ठुकती हैं, वे अरा, सराई और अधौरी या नीमधौरी कहाती हैं। चौड़ी और मोटी लकड़ी को **अरा** (वै० अर[२]), पतली को **सराई**

---

[१] त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वाभुवनाधि तस्थुः—
ऋक्० १।१६४।२
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते।
—महाभारत, सातवलेकर संस्क०, द्रोणपर्व, जयद्रथवध, १४६।८६
अर्थात् कितने ही रथों के चक्के रुधिर में नाइ तक डूब गये।
'पिंडिका नाभिः' —अमर० २।८।२६

[२] सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान् न नेमिः परिता बभूव। —ऋक्० १।३२।१५
अर्थात् जिस तरह पहिये की पुट्ठी (नेमि) अरों को धारण करती है उसी तरह इन्द्र राजा भी सबको धारण करता है।

और बीच की (मामूली चौड़ी) को **अधौरी** कहते हैं। प्रायः एक पहिये में नाइ में आर-पार करके **दो अरे**, दो सराइयाँ और दो अधौरियाँ ठोकी जाती हैं।

§१०६२—अरों, अधौरियों और सराइयों के दूसरे सिरे **पुट्ठियों** (पुट्ठी=चक्का अर्थात् पहिये की परिधि का एक टुकड़ा) के छेदों में ठोक दिये जाते हैं। पुट्ठियों (सं० पृष्टी) को आपस में जोड़ने के लिए अन्दर जो लकड़ी लगाई जाती है उसे **सैला, भूलभुलइयाँ** (माँट में) या **महादेवा** (सादा० में) कहते हैं। गड़बारों में प्रसिद्ध है कि—"**महादेवा उमरिभर ब्यार-ताप के दरसन हू नाइँ करतु।**" चक्के की पुट्ठी के लिए कालिदास ने 'चक्र-नेमि'[1] शब्द का उल्लेख किया है। छह पुट्ठियों को मिलाने से एक **चक्का** या **चका** (सं० चक्र>प्रा० चक्क>चका) बन जाता है। चक्के के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति है—

चक्का चलै अरान ते जुआ बद्ध की सारि।
बंसु चलै तब मर्द कौ जब होइ लच्छिमी नारि॥[2]

§१०६३—चक्के की पुट्ठियों के जोड़ों पर बाहर दोनों ओर लोहे की पत्तियाँ लगाकर कीलें ठोक देते हैं। वे कीलें **गिलोइया** या **जलोइया** कहाती हैं। चक्के के सूराखों में अरे यदि ढीले रह जायँ तो उन्हें कड़ा करने के लिए उन सूराखों में **फाने** या **पाचड़े** (लकड़ी के छोटे-टुकड़े) ठोक देते हैं (सं० प्रत्यर>प्रच्चर>पच्चड़>पाचड़ा)।

§१०६४—चक्के की किनारी **माँगर** कहाती है। **हाल** (लोहे का एक घेरा) माँगर पर ही चढ़ाई जाती है। हाल चक्के की गोलाई से कुछ छोटी बनाई जाती है। माँगर पर चढ़ाने से पहले
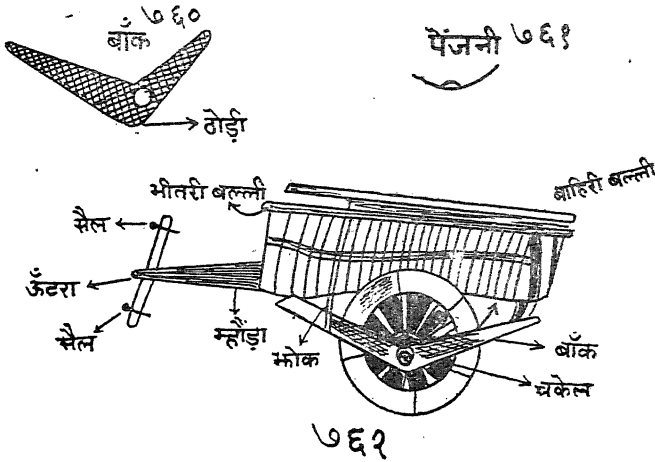
[रेखा-चित्र ७६० से ७६२ तक]

उसे **बँटेरी** (कंडों का एक घेरा जिसमें हाल गर्म करने के लिए रक्खी जाती है) में तपाते हैं।

---

[1] नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। —कालिदास : मेघ० २।४६

× × × ×

पिशुनयति रथस्तेसीकरक्लिन्ननेमिः। —कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तल, ७।७

[2] पहिये का चक्का अरों से और जुआ बैलों की उत्तम जाति से चलता है। उसी प्रकार जब घर में लक्ष्मी नारी (सुलक्षणा तथा सौभाग्यवती पत्नी) होती है तब मनुष्य का वंश चलता है।

आग पुह जाने पर बँटेरी को **दहरा** कहते हैं। कंडों का नीचे का पर्त जिस पर हाल रक्खी रहती है **तरी या तरिया** कहाता है। हाल चढ़ जाने पर पहिया तैयार हो जाता है। तब उसे धुरी पर चढ़ाकर ऊपर से टिकानियों और धुरी की अनी पर **बाँक** (खमदार चौड़ी लकड़ी) लगा देते हैं। रथ में बाँक को **पैंजनी** ही कहते हैं।

§१०८५—बाँक के मध्य में नीचे की ओर जो लकड़ी लगती है, वह **ठोड़ी** कहाती है। सिरे के छेदों में टिकानियों की चूलें और ठोड़ी के ऊपर के छेद में धुरी को फाँसकर बाहर की ओर **चकेलें** डाल दी जाती हैं। यदि नाइ घिस जाती है और बाँक तथा नाइ के बीच में काफी जगह खाली हो जाती है तो गाड़ी का पहिया **लहरमा** (टेढ़ा-मेढ़ा लहर खाता हुआ) चलता है। पहिये की लहर को दूर करने के लिए नाइ और बाँक के बीच में धुरी के ऊपर एक रस्सी की छोटी-सी ईंडुरी चढ़ा देते हैं जो **गैंड़ी** कहाती है। यदि काठ की गोल चकई-सी डालते हैं तो उसे **चैंगी** कहते हैं। चैंगी पड़ जाने पर लढ़िया में **धच्चे** (धचके) नहीं लगते। गाड़ी का पहिया आगे-पीछे टिकानियों से घिरा रहता है। उसके बाईं ओर **बाँकौड़ा** और दाहिनी ओर **बाँक** होता है।
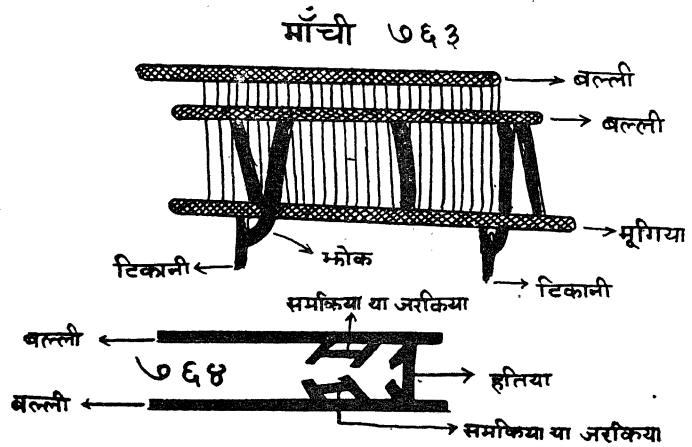
लढ़िया के अंग-प्रत्यंग—[रेखा-चित्र ७६३ से ७६४ तक]

(ग) लढ़िया की माँची और धाँच

§१०८६—**माँची के अंग**—दो **मूगिये**, बाहिरी **बल्ली**, भीतरी **बल्ली**, **बुनाव**, आगे का **उलार या उडार** (खुर्जे में), पीछे का उलार, **खड़ुए**, **झोक**, दो **पखरे**, **हतिया**, **समकिया** और **किलाये**।

§१०८७—पटरियों को दाबे हुए दो मूगिये लढ़िया की छत पर दायें-बायें लगे रहते हैं। दोनों मूगियों के ऊपर दो बल्लियाँ होती हैं। दाहिनी ओर की बल्ली **बाहिरी** और बाईं ओर को **भीतरी** कहाती है। मूगियों और बल्लियों के बीच में बल्लियों को साधने के लिए खाँचदार सिरों के डंडे लगे रहते हैं, जिन्हें **खड़ुए** कहते हैं। दोनों ओर प्रायः तीन-तीन खड़ुए लगे होते हैं। माँची की बल्लियाँ बोझ की झोक से टूट न जायँ, इसलिए टिकानियों के ऊपर बल्ली और टिकानी के बीच में एक-एक डंडा लगा रहता है, जिसे **झोक** कहते हैं। दोनों ओर कुल मिलाकर चार झोकें लगी रहती हैं। लढ़िया में पिछली पटरी के ऊपर जो **सेरू या लदेंड़ी** जमी होती हैं, उसके सिरों पर एक-एक छेद होता है। उन दोनों छेदों में एक-एक डंडा ठोका जाता है जो **पखरा** कहाता

है। दायें पखरे की चूल बाहिरी बल्ली के पिछले सिरे के छेद में और बायें पखरे की चूल भीतरी बल्ली के पिछले सिरे के छेद में ठुकी रहती है। इस तरह माँची की दोनों बल्लियाँ पीछे की ओर पखरों पर सधी रहती हैं। पिछली पटरी के सिरों पर एक-एक गट्टक-सी लगी रहती है जो पटरी और सेरू या लदेंड़ी के बीच में होती है। उस गट्टक को **किलाया** कहते हैं। पखरे का निचला सिरा किलाये में ही ठुका रहता है। दोनों पखरों के ऊपर **लदेंड़ी** (पिछली पटरी के ऊपर लगी हुई दूसरी पटरी) के ही रुख में अर्थात् माँची के पिछले भाग की चौड़ाई में एक डंडा लगा रहता है जो **पिछेला उलार** कहाता है। माँची के अगले हिस्से में भी ऐसा ही डंडा लगा रहता है जिसे **अगेला उलार** कहते हैं।

§१०६८—मूगिये और उसके ऊपर की बल्ली के बीच में जो रस्सी पड़ी रहती है उसे **बरही** कहते हैं। लेकिन उस बरही को जब एक खास बुनावट के रूप में माँची में डाल दिया जाता है तो वह बुना हुआ रूप **बुनाब, नगौड़ी** (खैर में) या **झिझी** (सादा० में) कहाता है। त० कोल में प्रचलित निम्नांकित लोकगीत में 'बुनाव' शब्द का प्रयोग हुआ है—

ए रथु ठाड़ौ करिलेउ प्यारे लछिमन बीर।
काये के चक्का परे औरु काये के डरे हैं **बुनाब**॥
चन्दन के चक्का परे औरु रेसम के डरे हैं बुनाब।
माइ नेक धीरजु बाँधौ कहि रहे लछिमन बीर॥[1]

§१०६६—यदि लढ़िया के पाल में बहुत ऊँचा भुस भर दिया जाय तो उसे ऊपर से **लाम** (=लम्बी और मोटी एक रस्सी) से कस दिया जाता है।

§११००—माँची के अगले भाग में दाईं ओर तथा बाईं ओर आगे के दो खड़ुओं के बीच में बल्ली से नीचे एक डंडा लगा रहता है ताकि माँची की बल्ली पर अधिक बोझ न पड़े। उस डंडे को **समकिया** या **जरकिया** कहते हैं। आगे की ओर बल्लियों के नीचे माँची की चौड़ाई में एक डंडा लगा रहता है जिसे **हतिया** कहते हैं। यह गड़वारे के पीछे होता है। प्रायः लढ़िया हाँकनेवाला इसके सहारे अपनी पीठ लगा लेता है और कभी-कभी हाथ भी रख लेता है।

§११०१—किसी-किसी लढ़िया में हतिये से कुछ ऊपर छोटा-सा ऊँचा खटोला बना रहता है जिस पर बैठकर गड़वारा लढ़िया हाँकता है। उस खटोले को **मँचिया** (सं० मंचिका) कहते हैं।

§११०२—मंचिया माँची के आगे के भाग में बनी रहती है। माँची जो **धाँच** (छत से लेकर बल्लियों तक की गहराई) होता है, उसमें तो सामान भरते ही हैं; लेकिन कभी-कभी **पाल** (टाट के बोरों से बनाया हुआ लम्बा-चौड़ा कपड़ा) बिछाकर भुस आदि इतना अधिक भर देते हैं कि वह धाँच से भी अधिक ऊँचा निकल जाता है। तब उस पर दूसरा पाल डालकर ऊपर से एक रस्सी द्वारा बाँध देते हैं। उस रस्सी को **लाम** कहते हैं।

§११०३—यदि सामान लढ़िया के आगे के हिस्से में अधिक भर जाता है तो चलते समय जुआ बैलों के कन्धों को दाबता है। तब उसे **दबाऊ गाड़ी** कहते हैं। यदि सामान पीछे की ओर

---

[1] ओ प्यारे वीर लचमण। तुम रथ को खड़ा कर लो। तुम्हारे रथ के पहियों के चक्के और खटोले के बुनाव किसके हैं? हे माता! (सीता जी के प्रति) इसमें चन्दन के चक्के और रेशम के बुनाव हैं। तुम तनिक धैर्य धारण करो। इस तरह वीर लचमण माता जानकी जी से निवेदन करने लगे।

अधिक हो जाता है तो जुआ बैलों के कन्धों पर से ऊपर उठ जाता है और जोतों से बैलों की गर्दन भी कुछ-कुछ घुटने लगती है। उस हालत में गाड़ी **उलार** कहाती है। जब गाड़ी न दबाऊ हो और न उलार, अर्थात् ठीक हो, तब **सुहार** कहाती है। **बंड** (अप० भंड[1] = उद्धत स्वभाववाला, अज्ञानी और कठोर हृदय) गड़वारा जब लढ़िया हाँकता है, तब वह उलार-दबाऊ की परवाह नहीं करता। उद्धत स्वभाववाले को **'हूलकुतंगा'** भी कहते हैं। अज्ञानी को **बंड** कहते हैं।

(३) पौना और अधलढ़ा

§११०४—पूरी लढ़िया की लम्बाई साढ़े नौ हाथ की होती है और काढ़ अढ़गजा (ढाई गज का) होता है। किसानों का कहना है कि अढ़गजा काढ़ सबसे बड़ा होता है, जो लढ़िया और रथ में रक्खा जाता है। अढ़गजे काढ़ में बैलों की नामी पुष्करी जोट भी मन्नाती हुई बेखटके चली जाती है। यदि कोई लढ़िया लम्बाई में पूरी लढ़िया की पौनी बनाई जाती है तो उसे **पौना** कहते हैं।

§११०५—**अधलढ़ा** लम्बाई-चौड़ाई में पूरी लढ़िया का आधा होता है। पौना और अधलढ़ा विशेष रूप से माल-असबाब तथा बोझा ढोने में ही काम आते हैं।

(४) धैमरदा

§११०६—**दहमरदा, धैमरदा** (खैर में) या **धैमद्दा** (कोल में) आकार में अधलढ़ा के बराबर ही होता है लेकिन इसकी माँची में बरही की जगह अच्छी और पतली रस्सी पड़ती है जो घने रूप में डाली जाती है। धैमरदे की छत भी तख्तों से पाटी जाती है। यह एक ऐसी गाड़ी है जिसे किसान प्रायः दोनों कामों में बरतता है—इसमें ३-४ सवारियाँ भी बैठ जाती हैं और आवश्यकतानुसार कभी-कभी सामान भी ढो लिया जाता है।

(५) रहलू और उसका ढाँचा

रहलू (चित्र ३४)
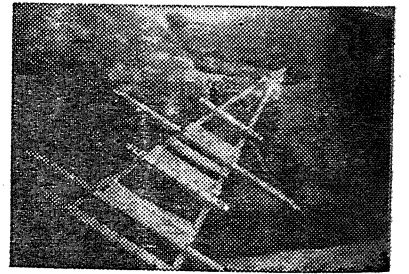
रहलू का ढाँचा (चित्र ३५)

§११०७—बिना छतरी की छोटी-सी सुन्दर बैलगाड़ी **लहैड़ू, लहड़ू, रहड़ू** या **रहलू** (सं० रथरूप > रहरूव > रहरूअ > रहरू > रहड़ू > रहलू) कहाती है। इसमें तीन-चार आदमी बैठ सकते हैं। रहलू की लम्बाई **साढ़े अठहती** (८½ हाथ की) होती है। इसका म्हौंड़ा ढाई गज के

---

[1] फुट्टिसु पिए पवसंति हउँ भण्डय ढक्करि-सार।
—हेमचन्द्र, प्राकृत-व्याकरण

लगभग होता है, जिसमें बाँसों का पंजारा बनाया जाता है। लोहे की पत्तियाँ या लकड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार पट्टियाँ, जिनके छेदों में होकर पंजारे की छड़ें पड़ी रहती हैं, **पुस्तीमान** कहाती हैं।

§११०८—रहलू के ढाँचे के नीचे जो दो हरसे होते हैं उनकी मजबूती के लिए नीचे की ओर लोहे की एक-एक मोटी छड़ लगाई जाती है जो **सवाई**, **लम्फा** या **तनाक** कहाती है। किसी-किसी रहलू की छत के नीचे धुरे और छत के बीच में एक भण्डारी-सी बनी रहती है जिसे **डौरू** कहते हैं। इसमें छोटा-मोटा सामान रख लिया जाता है।

§११०९—रहलू के पहियों से ऊपर टिकानियों के सहारे से घुमावदार लोहे की चौड़ी पत्तियाँ लगी रहती हैं जिन्हें **धमाका** या **टप** कहते हैं। अँग्रेजी के 'मडगार्ड' के लिए लोक-भाषा में 'धमाका' बहुत प्रचलित शब्द है।

[रेखा-चित्र ७६५, ७६६]
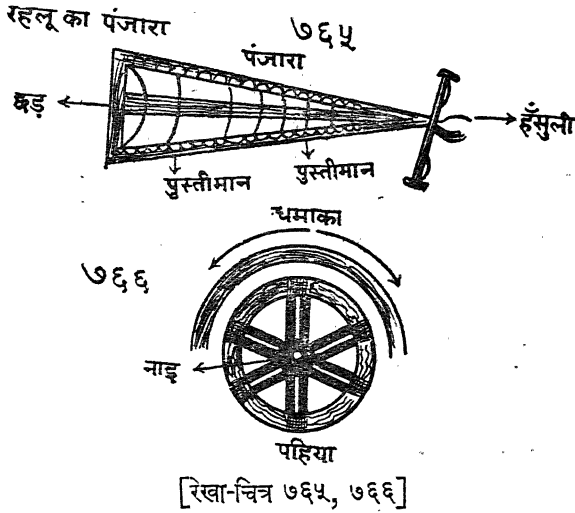
(६) फिरक

§१११०—बिना बाँकों का छोटा-सा रहलू, जिसमें आराम से केवल एक सवारी ही बैठ सकती है, **फिरक** कहाता है। इसकी लम्बाई ८ हाथ और काढ़ **सवा दुगजा** (२¼ गज का) होता है। फिरक का धुरा डिढ़गजा और प्रत्येक धुरी अधगजी होती है। एक तरह से फिरक किसान की जीपकार है, जो ऊँची-नीची तथा ऊबड़-खाबड़ धरती पर भी चल सकती है। फिरक जिस **ढब** (तरह) से चलती है, उसे देखते ही बनता है। प्रायः छोटे-छोटे **आसामी** (अ० असामी= काश्तकार, किसान) फिरक रखते हैं और बड़े-बड़े जमींदार तथा साहूकार रथ।

§११११—चूँकि फिरक में टिकानियाँ और बाँक नहीं होते, इसलिए धुरी पर पहियों को रोकने के लिए **तई** (लोहे की गोल चकती-सी) चढ़ाकर अनी के छेद में **चकेल** (घुंडीदार कील जिसे चाबी भी कहते हैं) डाल देते हैं। फिरक के जूए के बीच में **हँसली** (गोल बड़ा छल्ला-सा) भी होती है, जिसमें होकर सुहावटी को कसनेवाली **खूँट** (एक रस्सी) बाँधी जाती है।

§१११२—फिरक में छत नहीं होती बल्कि **छावन** होता है। पटरियों के ऊपर लकड़ी के तख्ते जब चौड़ाई में रखकर पाटे जाते हैं तब वह पटाव **छत** कहाता है। लम्बाई के पटाव को **छावन** कहते हैं।

फिरक के दोनों ओर पहियों के पास हरसे और छत के बीच में अर्थात् प्रत्येक हरसे के मध्य भाग में ऊपर चौड़ी लकड़ी-सी लोहे की घुंडीदार कील से जड़ी रहती है, जो **पंखा** कहाती है। उस कील को **घेरना** या **घेन्ना** कहते हैं।

फिरक ७६७
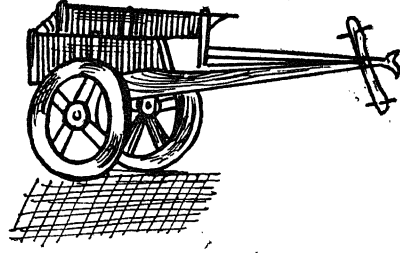
फिरक [रेखा-चित्र ७६७]

(७) ठूँठिया

§१११३—बिना छतरी के इक्के की बनावट की बैलगाड़ी जो मुंडी-सी होती है **ठूँठिया** कहाती है। ठूँठिये में जहाँ सवारियाँ बैठती हैं वहाँ रस्सियों से बुना हुआ बड़ा-सा एक वर्गाकार पीढ़ा होता है, जिसे **खटोला** (सं० खट्वा + पोतलक) कहते हैं। ठूँठिये के खटोले पर दो आदमी ही बैठ सकते हैं। ठूँठिये के खटोले के नीचे का सामान (धुरा, धुरी आदि) फिरक के सामान से मिलता-जुलता होता है। ठूँठिये को **खड़खड़िया** (सिकं० में) भी कहते हैं।

(८) ठोकर

§१११४—रथ में दो भाग होते हैं। आगे का भाग जिसमें म्हौंड़ा लगा रहता है **ठोकर** या **ठोपर** कहाता है। किसान लोग कभी-कभी ठोकर हो ही काम में ले लेते हैं। इसपर दो-एक सवारी ही बैठ सकती है। ठोकर कोस-दो कोस जाने के लिए काम में लेली जाती है।

(९) धकेल या ढकेल

§१११५—तीन पहियों की गाड़ी जिसे आदमी धक्का देकर आगे को चलाता है **धकेल**
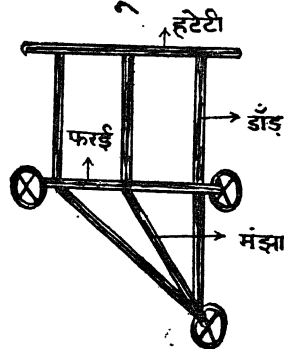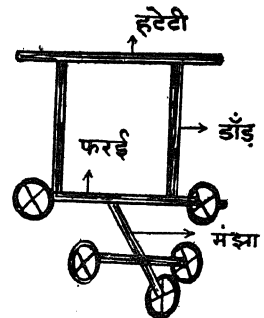
(१०) **गड़ूलना या गिंडौली** [रेखा-चित्र ७६८ से ७६८ (क)]

था **ढकेल** कहाती है। इसे **हतठेला** भी कहते हैं। इसमें तीन-चार मन सामान भरकर **ढके-लिया** (ढकेल चलानेवाला) ढोया करता है। **ढरकाव** (ढलाव) की पक्की सड़क पर ढकेल में पीछे से थोड़ा-सा धक्का मारकर छोड़ दिया जाय तो उसके पहिये **अपुढारे** (अपने आप, स्वतः) ही घूमते हैं और ढकेल आगे को सरकती जाती है। ढालू जगह के ढलाव को **ररकन** भी कहते हैं। इसी से 'ररकना' क्रिया बनी है। पानी से तर बने हुए मार्ग को **ररकन रपटन** कहते है। **ढकेलिया** (ढकेलवाला व्यक्ति) ढकेल में पीछे से **ढक्का** (धक्का) लगाता है और उस समय अपना मुँह **आगे माऊँ** (आगे की ओर) रखता है। ढकेल को चलाते-चलाते ढकेलिये की बाहें भर जाती हैं और टाँगों की **तिलियाँ** (पिंडलियाँ) **पिराने** (पीड़ा करने) लगती हैं।

§१११६—तीन पहिये की एक गाड़ी, जिसके सहारे बालक को पाँवों चलना सिखाया जाता है, **गडूलना** या **गिंड़ौली** कहाती है। इसमें धुरे के ऊपर एक आयताकार या वर्गाकार लकड़ी का चौखटा लगा रहता है, जिसका ऊपरी डंडा **हटेटी** कहाता है। बालक अपने दोनों हाथ हटेटी पर ही रखता है तब गडूलने को चलाता है। नीचे की पट्टी जिसमें दो पहिये लगे रहते हैं **फरई** कहाती है। फरई के ऊपर खड़े हुए दो डण्डे **डाँड़** कहाते हैं। फरई के बीच में आगे की ओर लगी हुई पट्टी **मंझा** कहाती है। आगे का पहिया मंझे के अग्रभाग पर ही लगता है। किसी-किसी गडूलने में **तकली** भी लगती है

छतरीदार बैलगाड़ियाँ

(१) बहली या मँझोली

§१११७—एक बैलगाड़ी, जिसकी छतरी कुछ-कुछ इक्के की छतरी की भाँति होती है, **बहली** या **मँझोली** (सं० वाह्याली > बाहली > बहली) कहाती है। बाण ने कादम्बरी में 'वाह्याली' शब्द का उल्लेख गाड़ी (वाहन) विशेष के अर्थ में ही किया है।[1] बहली[2] आकार और आकृति में रथ और **रब्बे** (छतरीदार एक बैलगाड़ी) के बीच की चीज है, संभवतः इसीलिए इसे **मँझोली** भी कहते हैं।

§१११८—ठूँठिये की तरह बहली के वर्गाकार खटोले में आराम से एक ही आदमी बैठ सकता है। बहली का धुरा **डिढ़गजा** (डेढ़ गज का) और प्रत्येक धुरी अधगजी होती है। इसका काढ़ रथ की भाँति **अढ़गजा** (ढाई गज का) होता है। बहली के पीछे का भाग जहाँ गड़वारा सवारी का सन्दूका आदि रख देता है **पछेती** या **मँड़ार** कहाता है। बैलों का चारा भी पछेती में ही रक्खा जाता है।

---

[1] "एकान्तोपरचित तुरग वाह्याली विभागम्······अकारयत्।"
तारापीड ने कुमार का मन खेल से रोकने के लिए विद्यालय के निकट एक बहलीखाना भी बनवाया था।
बाण : कादम्बरी, पूर्व भाग, टीकाकार हरिदास सिद्धान्त बागीश भट्टाचार्य, बंगला टीका, प्रकाशक सिद्धान्त विद्यालय कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, चन्द्रापीड शिक्षा पृ० २६२।

[2] 'शकटालोपाख्यान' के कथाप्रसंग में बताया गया है कि राजा नन्द के महामन्त्री शकटार (शकटाल) ने दो घोड़ियों को बहली में जोतकर यह पता लगाया था कि उनमें कौन माँ और कौन बेटी है—
"तद् वडवायुगलस्य सपर्याणं कारयित्वा वाह्यालयामतिवाह्य।" —कपिलदेव (संपादक) : संस्कृत रत्नावली, पाठ ११, पृ० २६।

§१११६—लोहे की मोटी दो सरइयाँ, जिन पर बहली का खटोला और म्हौंड़ा आदि जमे रहते हैं, **मूगिया** कहाती हैं। खटोले के दायें-बायें पहियों से एक बालिश्त ऊपर मोटी पीतल के चौड़े-चौड़े पत्ते लगे रहते हैं, जो **पंखे** कहाते हैं। खटोले के कोनों पर छतरी साधने के लिए जो डंडे लगे रहते हैं उनमें आगे के दो डंडे **हटेटे** और पीछे के दो **पछेटे** कहाते हैं। हटेटों और पछेटों से बाँधी जानेवाली रस्सियाँ **हतवाँस** या **कौली** कहाती हैं।
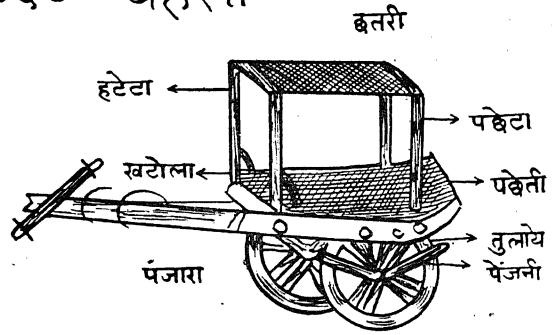
[रेखा-चित्र ७६६]

बहली या मँसोली
[चित्र ३६]

बहली की धुरी से सम्बन्धित वस्तुएँ

§११२०—बहली में धुरा नहीं होता। मूगियों और खटोले के बीच में ऐसे गुणित के चिह्न (x) के रूप में मोटी-मोटी दो सलाखें जड़ी जाती हैं और उनके मिलन-बिन्दु पर छेद करके उसमें धुरी लगाई जाती है। लोहे की वे दो सलाखें **गोड़िये** कहाती हैं। गोड़ियों को मजबूत रखने के लिए उन पर जो मोटी पत्तियाँ या कीलें जड़ी जाती हैं; उन्हें **बाँकड़ा** कहते हैं। जिस तरह रहलू के पहियों की कीच-मिट्टी को रोकने के लिए उनके ऊपर धमाके लगे होते हैं; ठीक उसी तरह बहली के पहियों के ऊपर लोहे की चौड़ी पत्तियाँ लगी होती हैं जिन्हें **पट्ठे** कहते हैं। बहली के पहिये की नाइ को धुरी पर रोकने के लिए छेददार एक डंडा धुरी में लगाया जाता है, जिसे **तुलाया** कहते

है। तुलाये को अपनी जगह रोकने के लिए धुरी पर खमदार एक डंडा बाँधा जाता है, जो **पेंजनी** कहाता है।
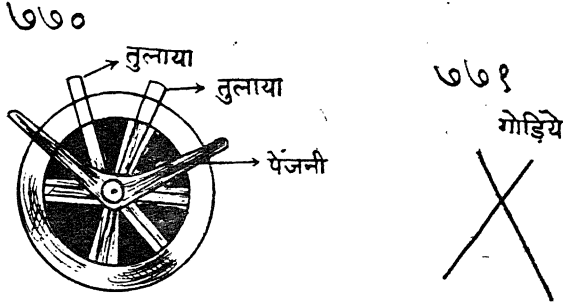
बहली की धुरी से सम्बन्धित वस्तुएँ—[रेखा-चित्र ७७०, ७७१]

(२) रब्बा

रब्बा—[चित्र ३७]

§११२१—एक प्रकार की बैलगाड़ी, जो आकार में रहलू से मिलती-जुलती होती है और जिसके ऊपर आयताकार छतरी लगी रहती है, **रब्बा** (अ० अराबा[१]) कहाती है। फिरक की भाँति रब्बे का पटाव भी **छावन** कहाता है, क्योंकि उसके तख्ते लम्बाई में होते हैं। रब्बे में आराम से तीन-चार आदमी ही बैठ सकते हैं। **बरातों** (सं० वरयात्रा) में प्रायः रब्बेवालों में **दौड़** की **होड़** (शर्त) बदी जाती है। एक की **चुनौती** को दूसरा सहर्ष **ओटता** है अर्थात् स्वीकार करता है।

§११२२—किसी-किसी रब्बे की छतरी के चारों ओर कपड़ा लटका दिया जाता है जो **पर्दा** कहाता है। बिना पर्दे के रब्बे में पीछे की ओर एक आयताकार कपड़ा लटका रहता है जिसे **उड़ान पर्दा** कहते हैं। पर्देदार रब्बे के पर्दे में दाईं-बाईं ओर एक-एक छेद भी बना रहता है जो **मोखा** या **झरोखा** कहाता है।

---

[१] 'अराबा' का अर्थ स्टाइनगास ने अपने फारसी-अँगरेजी कोश में 'दो पहिये की गाड़ी' लिखा है। उन्होंने 'अराबा' शब्द को अरबी और फारसी दोनों ही भाषाओं का माना है।

स्टाइनगास : पर्शियन—इंग्लिश डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण १९३० ई०; पृ० १४८

§११२३—रब्बे के पंजारे को ढकने के लिए एक लम्बा-सा कपड़ा म्हौड़े से लेकर जुए की हँसली तक डाला जाता है, जिसे **खरखंदाज** या **खाखंदाज** (फा० खाक+फा० अन्दाज़ा) कहते हैं। पर्दे और खरखंदाज से सवारियों और गड़बारे पर धूल आने से बच जाती है।

§११२४—रब्बे के जूए के दोनों सिरों पर गोल-गोल पीतल की बनी छोटी चकई-सी होती हैं, जो **मौहरें** कहाती हैं।

§११२५—चार पहियों की एक बैलगाड़ी, जिसमें छतरी की जगह ऊपर एक या दो बुर्ज लगे रहते हैं, **रथ** कहाती है। यह किसान की बड़ी सज-धज की गाड़ी है। बरात के समय दूल्हा या दुलहिन को रथ में ही बिठाया जाता है। **मूलकाज** (सारांश) यह है कि शोभा और सुन्दरता के दृष्टिकोण से रथ और लढ़िया में मौहर-रुपये का **बट्टा** (अन्तर) है। रथ एक **मौहर** (सोने का एक सिक्का) के समान है, तो लढ़िया रुपये के समान।

(३) रथ
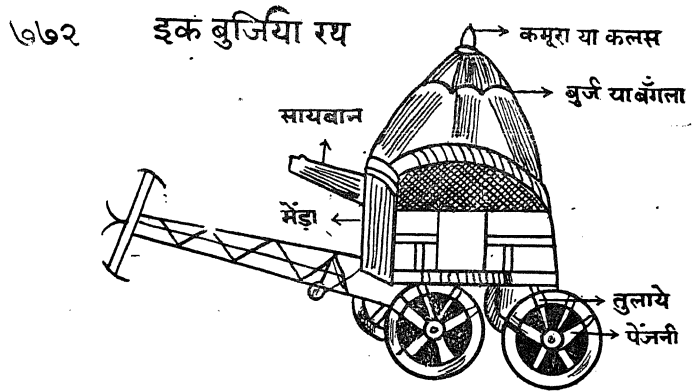
इकबुर्जिया रथ—[रेखा-चित्र ७७२]
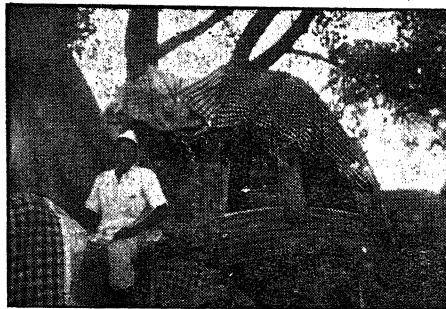
दुबुर्जिया रथ—[चित्र ३८]

रथ के मुख्य भाग दो हैं—(१)**आगे की ठोकर** (२) **पीछे की ठोकर**। अगली ठोकर का सारा सामान **ढाँच** कहाता है।

§११२६—**आगे की ठोकर के भाग—जूआ, पंजारा, जंग** (म्हौड़े के नीचे लगा हुआ एक बड़ा घंटा), **अगले दो पहिये, सायबान, घर** और **मैंड़ा** ।

§११२७—रथ की आगे की ठोकर के जूए में ही दो बैल जुतते हैं । प्राचीन समय में रथों में घोड़े जोते जाते थे । वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि महाराज दशरथ ने सुमंत्र से कहा था कि तुम उत्तम घोड़े जोतकर सवारी के योग्य रथ ले आओ ।[1] घोड़े के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

मा गुन पूत, बाप गुन घोड़ा । बहुत नहीं तौ थोड़ा-थोड़ा ॥[2]

बाल्मीकि ने भी कहा है—

"न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।"

(बाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, रामनारायणलाल इलाहाबाद, सर्ग १६।३४ ।)

§११२८—रथ के जूए में पड़ी हुई पीतल की सैल़ की ऊपरी नोंकदार घुंडी **टोंक** कहाती है । जोता टोंक में ही फँसा दिया जाता है । रथ का पंजारा चमड़े से मढ़ा रहता है और किनारों पर **कसेंड़ियों** (चमड़े के लम्बे-लम्बे तस्मे) से जो बुनावट और बँधाव किया जाता है, वह **पुराव** कहाता है । पंजारे का पिछला भाग जहाँ रथबान रथ हाँकते समय बैठता है **आसनी** कहाता है । पंजारे के नीचे एक बड़ी टाल-सी होती है जिसे **जंग** कहते हैं । रथ चलते समय रास्ते में यह बजती चलती है ।

§११२९—पहियों के ऊपर लोहे की चद्दर की टिकानियाँ होती हैं । पैंजनी और तुलाये टिकानी में अड़ाये जाते हैं । टिकानी से सम्बन्धित आँकड़ों में जो साँकर पड़ी होती है, उसे **साँकड़ा** या **कलौंड़ा** कहते हैं । पैंजनी के दोनों सिरों पर साँकड़े पड़े रहते हैं । पहिया दोनों साँकड़ों के बीच में ही घूमता है । किसी-किसी रथ में साँकड़े की जगह रस्सियाँ बँधी रहती हैं, जिन्हें **जन्त** कहते हैं । तुलाये और पैंजनी **जन्त** से ही कसे जाते हैं । तुलायों के ऊपरी सिरों पर लगे हुए लोहे के आँकड़े **अँकुसिया** कहाते हैं जो टिकानियों के कुंदों में फँसे होते हैं ।

रथ में धुरे की जगह लकड़ी की **नसौड़ी** या **नासौड़ी** होती है, जिसमें धुरी को फँसा दिया जाता है ।
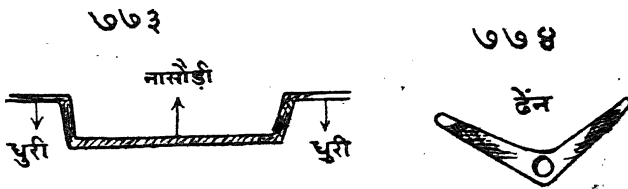
[रेखा-चित्र ७७३, ७७४]

§११३०—किसी किसी रथ में नासौड़ी की जगह **ढेंन** होती है । इसके बीच में एक छेद होता है जिसमें होकर धुरी डाली जाती है ।

---

[1] औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।
—बाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, द्वितीय संस्करण, रामनारायणलाल, सर्ग ३९, श्लोक १० ।

[2] लड़के में माँ के गुण और घोड़े में बाप (सं० वप्ता = पिता) के गुण थोड़े-बहुत अवश्य आते हैं ।

§११३१—जहाँ रथवान बैठता है, उसके ऊपर छाया करने के लिए जो हिस्सा बनाया जाता है वह **छवेटी**, सायबान या **साइबान** कहाता है। सायबान के आगे ऊपरी दोनों सिरों पर गोल-गोल कटोरियाँ-सी लगी रहती हैं जिन्हें **कबूरी** कहते हैं। सायबान के नीचे के भाग में दो डंडे होते हैं, जिन्हें अगली ठोकर के आगे के हिस्से पर जमाया जाता है। उन डंडों को **मैंड़ा** और अगली ठोकर के आगे के भाग को **धर** कहते हैं। 'धरमैंड़ा' शब्द मुहावरे के रूप में प्रचलित है। जिस बात या घटना का कोई पता-ठिकाना न लगे उसके लिए कह दिया जाता है कि—"**जा बात कौ कछू धर-मैंड़ौ नाएँ।**"
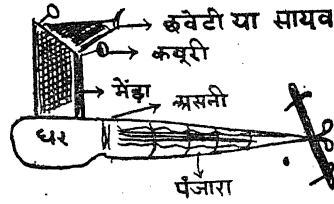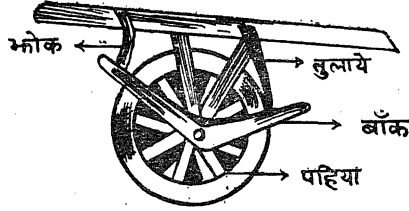
रथ का अग्रभाग, पहिया और उसके सहायक—[रेखा-चित्र ७७५ से ७७६ तक]

§११३२—पीछे की ठोकर के खटोले के ऊपर काठ का गुम्बदी रूप **बँगला, बुज्झ** या **बुर्ज** कहाता है। दो बुर्जों का **दुबुर्जिया** और एक बुर्ज का **इकबुर्जिया** रथ कहाता है। बुर्ज के ऊपर की नुकीली टूम **कमूरा** या **कलसी** कहाती है।

§११३३—खटोले के दायें-बायें किनारों में छोटी-छोटी घंटियाँ लटकी रहती हैं जो रथ चलते समय बजती हैं। ये **बाजनी** या **टुनटुनी** कहाती हैं। खटोले के नीचे सामान रखने की एक डलिया-सी होती है जिसे **भरण्डरिया** कहते हैं।

रथ के दो बुर्ज
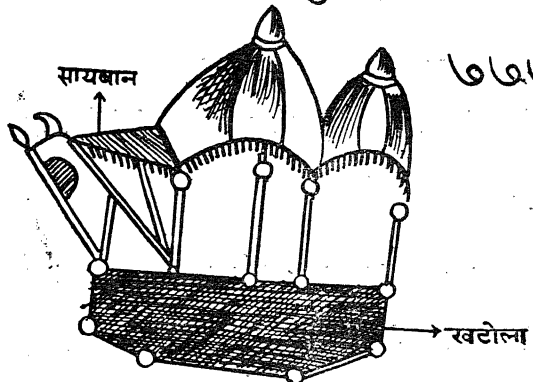
घोड़ागाड़ियाँ

(१) इक्का और उसके भाई-बन्द

§११३४—छतरीवाली कमानीदार एक घोड़ागाड़ी **इक्का** कहाती है। इक्के से बड़ा **ताँगा** होता है। **बग्घी** और **टमटम** ताँगे से भी बड़ी होती हैं। उनमें प्रायः दो घोड़े जुतते हैं; अतः उन्हें **जोड़ी** भी कहते हैं।

इक्के के अंग—फड़, भण्डारी, पटाव, पंखा, छोटी भण्डारी, कोच, लीदखोरा, धुरा, कमानी, बम्ब, खूँटे-हत्थे और छतरी।

§११३५—इक्के का मुख्य आधार फड़ है। मजबूत दो पट्टियाँ होती हैं जिन पर एक चौड़ा तख्ता जमाया जाता है। पट्टियों को **फड़** और तख्ते को **फरस** कहते हैं। फरस की निचली सतह में मजबूती के लिए चार-पाँच पट्टियाँ जड़ी जाती हैं, जो **मलंगा** कहाती हैं। वर्गाकार फरस के कोनों पर खूँटे और किनारे-किनारे चौखटा उठाया जाता है। फरस के किनारे और चौखटे की पट्टी के बीच में लगभग ६ या ८ खड़ी लकड़ियाँ लगती हैं, जिन्हें **गुंजक** कहते हैं। पट्टियों और गुंजकों के सहारे लोहे की चद्दर जड़ी जाती है। इस तरह जो वर्गाकार गहरी जगह बनती है, उसे **भंडारी** कहते हैं। **कोचबान** (इक्का हाँकनेवाला) सवारी का माल-असबाब भंडारी में ही रखता है। भंडारी को ढकने के लिए ऊपर एक तख्ता लगता है जिसे **ढकना** या **पटौंदा** कहते हैं। पटौंदे का ऊपरी भाग **बैठकी** कहाता है। यहीं पर सवारियाँ बैठा करती हैं। पटौंदी के दायें-बायें जो लकड़ी का पटाव किया जाता है वह **पंखा** कहाता है। पंखे दो होते हैं और पहिये से लगभग दो बालिश्त ऊपर रहते हैं। पंखों को सुन्दर बनाने के लिए किनारे पर **कन्नस** (लकड़ी की किनारी) लगाई जाती है।

§११३६—भंडारी और बैठकी के पीछे जो उठा हुआ और महरावदार तख्ता लगता है उसे **तकिया** कहते हैं। बैठकी पर बैठनेवाले व्यक्ति अपनी पीठ तकिये के सहारे ही लगाते हैं। तकिये में महावदार दो पतली लकड़ियाँ लगती हैं। उनके बीच में लगभग १८-२० **गलते-चकई** की गिल्लियाँ-सी डाली जाती हैं, जिन्हें **बोरी** कहते हैं (देश० बाउल्लिया[1] >बौली > बोरी)।
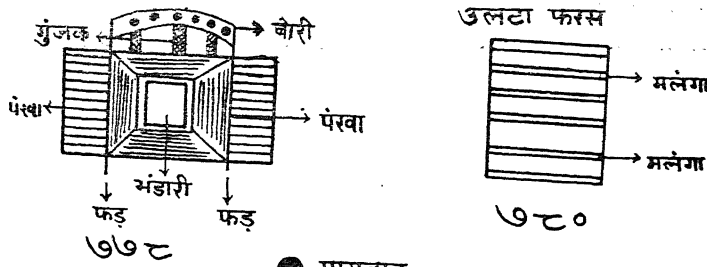
[रेखा-चित्र ७७८ से ७८० तक]

[1] बाउल्ली—पांचालिका, पुत्रिका—हेमचन्द्र : देशीनाममाला, ६।९२

§११३७—बैठकी के आगे का भाग, जहाँ **इक्का हँकवइया** (इक्का हाँकनेवाला) बैठता है, **कोच** कहाता है। कोच के आगे ढालू रुख में एक तख्ता लगा रहता है ताकि इक्के में जुते हुए घोड़े की लीद हँकवइया के ऊपर न आ सके। उस तख्ते को **लीदखोरा** कहते हैं। कोच के दायें-बायें किनारे पर इक्के पर चढ़ने के लिए लोहे के **पायदान** लगे रहते हैं।

§११३८—इक्के के फरस को समानान्तर मोटे दो बाँसों पर जमाया जाता है, जिन्हें **बम्ब** कहते हैं। घोड़ा दोनों बम्बों के बीच में ही जोता जाता है। इस तरह इक्के का पूरा ढाँच तैयार करके उसके नीचे दायें-बायें दो **कमानियाँ** (लोहे की पत्तियाँ तले-ऊपर जमाई जाती हैं, तब लचकदार एक वस्तु बनती है जो धुरे पर रहती है) लगती हैं। उनमें आगे-पीछे सिरे पर लोहे के कौड़े-से पड़ते हैं, जिन्हें **हबके** कहते हैं। इक्के का बोझ हबके-कमानियाँ और हबके-कमानियों का बोझ धुरा साधता है। धुरे और कमानी के बीच में लगी हुई ठोस लोहे की एक बड़ी गट्टी-सी **ठेबी** कहाती है।
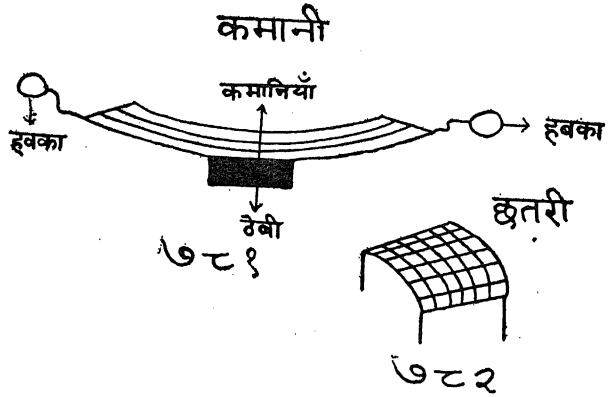
[रेखा चित्र ७८१ से ७८२ तक]

§११३९—**इक्के की छतरी**—बैठकी के धरातल पर कोनों के पास दो-दो कुन्दे लगे रहते हैं। प्रत्येक कोने पर एक-एक डंडा ठोक दिया जाता है। चारों डंडों पर लकड़ियों से बनाया हुआ जालीदार ढाँचा **छतरी** कहाता है। छतरी के डंडों की मजबूती के लिए कुन्दे और डंडे में जो तस्मे (चमड़े की पटारें) बाँधे जाते हैं, उन्हें **हत्ते** कहते हैं। बैठकी पर बैठनेवाली सवारियाँ हाथों से डंडा या हत्ता पकड़ लेती हैं ताकि चलते हुए इक्के में से गिर न सकें।
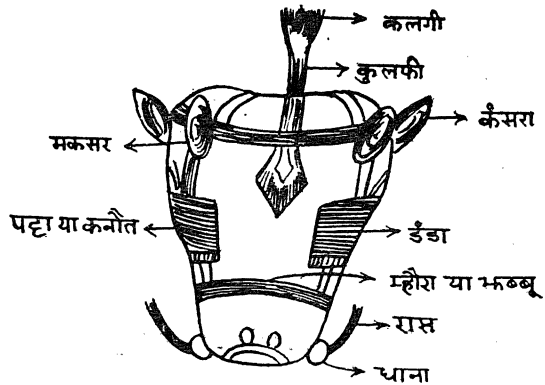
[रेखा-चित्र ७८३]

§११४०—**इक्के के घोड़े का साज**—पट्टा, लगाम, रास, जैबन्द, फँसकला, सीनाबन्द, हलका, तंग, काँठी, दुमची और मानकजोत।

§११४१—**मुँह का साज**—घोड़े के मुँह और माथे पर चमड़े का जो साज होता है उसे **पट्टा** कहते हैं। पट्टे के कई भाग होते हैं। घोड़े की आँखों के पास दो **चकौटे** (चमड़े के वर्गाकार टुकड़े) लगाये जाते हैं जो **आँखें, पट्टे** या **कनौत** कहाते हैं। एक पट्टा बाईं आँख के बाईं ओर और दूसरा दाहिनी आँख के दाईं ओर रहता है। उनके कारण घोड़ा सामने की ओर ही देख सकता है; दायें-बायें नहीं। मुँह की लगाम के सिरों के कुन्दों में चमड़े की जो पटारें पड़ी रहती हैं वे **रास** कहाती हैं। पट्टे जिन तस्मों में लगे रहते हैं उन्हें डंडे कहते हैं। डंडे घोड़े के चेहरे के दोनों ओर उपर से नीचे को लगे होते हैं। पट्टों से नीचे थूथनी के चारों ओर जो पट्टी होती है उसे **म्हौरा** या **झब्बू** कहते हैं। माथे पर होकर पीछे की ओर जानेवाली पट्टी **कंसरा** कहाती है। सिर के ऊपर की पट्टी को **सिरद्वारी** कहते हैं। सिरद्वारी के बीच में से माथे की ओर तीन पत्तियाँ निकली होती हैं। बीच की पत्ती **तिलक** और इधर-उधर की दोनों **बंदनी** या **मकसर** कहाती हैं। सिरद्वारी के बीच में पीतल या लोहे की एक नली गिलास की भाँति लगी रहती है जिसे **कुलफी** कहते हैं। कुलफी में चिड़ियों के पंख लगा देते हैं जो **कलगी** कहाते हैं। सिरद्वारी में से एक पत्ती गले के नीचे चली जाती है जिसे **गलखोर** कहते हैं। लगाम और रास को छोड़कर उपर्युक्त चीजें पट्टे के ही अंग हैं। घोड़ों के मुँह छोटे-बड़े भी होते हैं। उनके आकार और **उनहार** (सं० अनुहार=मुख का सादृश्य) भी भिन्न होती हैं; अतः पट्टे भी छोटे-बड़े बनते हैं।
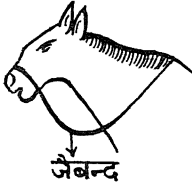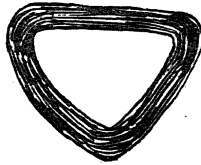
[रेखा-चित्र ७८४ से ७८७ तक]

§११४२—**गर्दन का साज**—घोड़े के सीने को आराम में रखने के लिए उसके गले में गद्दीदार एक चीज माला की भाँति डाली जाती है जिसे **फँसकला** या **गलौंझा** कहते हैं। फँसकले के ऊपर चमड़े का एक **हलका** (मोटे चमड़े से बनी हुई कुछ त्रिभुजाकार सी वस्तु) पहनाया जाता है। किसी-किसी घोड़े के सीने पर फँसकले के ऊपर **सीनाबन्द** (चमड़े की एक चौड़ी पट्टी) लगाया जाता है, जिसका सम्बन्ध **जोतों** (चमड़े की लम्बी पटारें) से किया जाता है।

सीनाबन्द और म्हौरे के बीच में घोड़े के गले के नीचे सुन्दरता के लिए एक रंगीन कपड़ा बाँध देते हैं, जिसे **जैबन्द** (जैबन्द=जेरबन्द; इसे सं० में तलसारक कहते हैं)

छाती और पीठ का साज

§११४३—छाती को कसती हुई जो पट्टी पीठ के ऊपर आती है, **तंग** कहाती है। पीठ के ऊपर

गर्दन के पिछले सिरे के पास लोहे की दो वर्गाकार पत्तियाँ-सी जमी रहती हैं जिनके नीचे नमदे की गद्दियाँ लगी होती हैं। उन परस्पर मिली हुई पत्तियों को **काँठी** कहते हैं। काँठी के ऊपर लोहे के दो कुन्दे लगे रहते हैं जो **रासकड़ी** कहाते हैं। लगाम की रासें उन रासकड़ियों में होकर ही डाली जाती हैं। इक्के की बम्बों के सिरों पर चमड़े के मोटे गोल छल्ले होते हैं जो **चौंगी** कहाते हैं। चौंगी को जिस तस्मे से काँठी में कसकर बाँधा जाता है, उस तस्मे को **खैंच** कहते हैं। घोड़े के रीढ़े पर चमड़े की एक पटार होती है जिसमें से पूँछ के पास दो हिस्से हो जाते हैं। वह पूँछ के नीचे भी रहती है। उसे **दुमची** कहते हैं। घोड़े की कमर पर दाईं-बाईं ओर खूबसूरती के लिए चमड़े की एक चीज लटकती रहती है, जिसे **मानकजोत** कहते हैं। इसमें जोत पो लेते हैं; **(पोना**=पिरोना, डालना)।
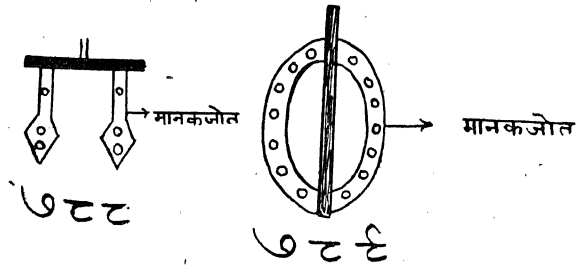
[रेखा-चित्र ७८८, ७८९]

§११४४—घोड़े के सीने के नीचे होकर इक्के की बम्बों में चमड़े की एक मोटी पटार पड़ी रहती है, जिसे **भारकस** (फा० बारकश) कहते हैं। इससे इक्का खिंचता है।

ताँगे के भाग—(१) नाब (२) गद्दी (३) टप। ताँगे का नीचे का **खन** (दरजा) जो धुरे पर जमाया जाता है, **नाब** कहाता है। क्योंकि इसकी आकृति नाब की-सी होती है। नाब के ऊपर
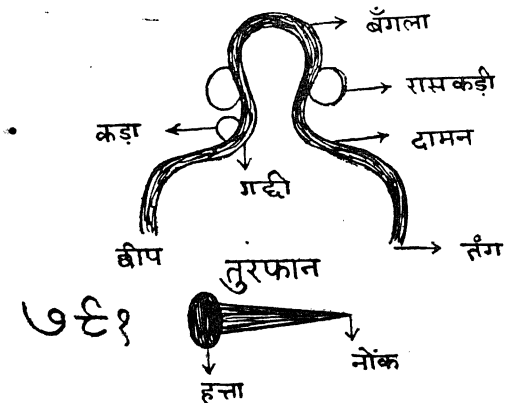
[रेखा-चित्र ७९०]

का भाग **गद्दी** कहाता है। सवारियाँ यहीं बैठती हैं। इसके ऊपर का सायबान **टप** कहाता है, जो सवारियों पर छाया रखता है।

§११४५—इक्के के घोड़े की पीठ पर जहाँ काँठी रक्खी जाती है, वहाँ बग्घी के घोड़े पर **चाल** रक्खी जाती है। चाल की बनावट बहुत कुछ काँठी के समान ही होती है।

§११४६—चाल की ऊपरी अर्द्धचन्द्राकार लोहे की पत्ती **बँगला** कहाती है। बँगले में दाँये-बाँये जो कुन्दे होते हैं उन्हें **रासकड़ी** कहते हैं। उनके नीचे दाहिनी ओर की पत्ती **दामन** और बाईं ओर का छल्ला **कड़ा** कहाता है। दामन और कड़े के नीचे वाली दोनों गद्दियों का सम्बन्ध **तंग** और **छीप** से होता है। तंग नाम की चमड़े की पट्टी चौड़ी और छीप नाम की चमड़े की पट्टी पतली होती है। छीप को तंग में डालकर बकसुये से कस दिया जाता है। बग्घी के घोड़े के हलके के ऊपर **हँसली** (लोहे की एक गोलाईदार चीज) भी रहती है। पीतल के बँगले में ऊपर एक छेद भी होता है, जो **तुरफान** (एक औजार) से किया जाता है। इक्के आदि में बैठनेवाली **सवारी** (व्यक्ति) किराया पूछकर यदि प्रारम्भ में प्रथम बार न बैठे तो वह **अनैंठ** (सं० अनिष्ट) कहाती।

(२) ऊँटगाड़ी या सिकरम

ऊँटगाड़ी [चित्र १०]

§११४७—चार पहियों की ऊँची और लम्बी एक गाड़ी, जिसमें ऊँट जोता जाता है, **ऊँटगाड़ी** या **सिकरम** कहाती है।

सिकरम के भाग—(१) कोच, (२) ढाँच, (३) पिंजरा, (४) टप।
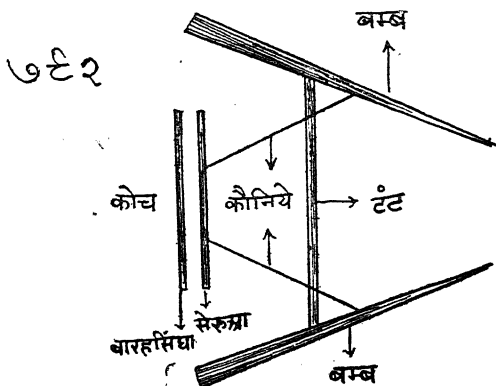
[रेखा-चित्र ७६२]

§११४८—ऊँटगाड़ी हाँकनेवाला जहाँ बैठकर गाड़ी हाँकता है, वह जगह **आसनी** कहाती है। कोंच के आगे दो लम्बी बल्लियाँ लगी रहती हैं, जिन्हें **बम्ब** कहते हैं। इनके बीच में ही ऊँट चलता है। आसनी के आगे लकड़ी की एक पट्टी लगी रहती है, जो **सेरुआ** कहाती है। सेरुए की मज़बूती के लिए उसके सहारे जो लकड़ी लगाई जाती है, उसे **बारहसिंघा** कहते हैं। सेरुए और बम्बों को मिलाती हुई दायें-बायें दो लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जो **कोनिया** कहाती हैं। सेरुए के आगे दोनों बम्बों को मिलाती हुई एक लकड़ी सेरुए के समानान्तर लगाई जाती है जो **टंट** कहाती है।

§११४९—सिकरम की छत के नीचे दो धुरे लगे रहते हैं। अगला धुरा **ठोपर** या **ठोकर** और पिछला **करधर** कहाता है। ठोपर छोटी और करधर बड़ा होता है। ठोपर आगे के बारह-सिंघे से लकड़ी की पट्टियों द्वारा जुड़ी रहती है। उन पट्टियों को **गुड़िया** कहते हैं। गुड़ियों के साथ लगी हुई लोहे की मोटी सलाखें **सराये** कहाती हैं। धुरे के ऊपर एक लकड़ी मज़बूती के लिए जमाई जाती है, जिसे **दरेसी** कहते हैं। दरेसी प्रायः ठोपर के ही ऊपर होती है, करधर के ऊपर नहीं।

सिकरम में बैठने या माल भरने के लिए दो दरजे होते हैं। निचला दरजा लोहे के जंगलों और खिड़कियों सहित बनाया जाता है जो **पिंजरा** कहाता है। पिंजरे के ऊपर का दरजा **टाप** कहाता है जो छप्पर से गोलाई देकर पाटा जाता है।

सिकरम के ऊँट का साज

§११५०—सिकरम में जुतनेवाले ऊँट की पीठ पर जो सामान होता है, उसे **पलानी** कहते हैं। पलानी के आगे-पीछे लगे हुए दो त्रिभुजाकार चौखटे **ताड़ी** कहाते हैं। टाट की गद्दियाँ जिन पर ताड़ी जमाई जाती है, **थड़े** कहाती हैं।

प्रकरण १५

कृषक का धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन

अध्याय १

लोकगीत

(विशेषतः स्त्रियों द्वारा गाये जानेवाले)

देवी-देवताओं से संबंधित गीत

§११५१—सामूहिक रूप में गाँवों के स्त्री-पुरुष जिन देवी-देवताओं को पूजते हैं वे **नगर-खेरा देवियाँ** (ग्राम देवियाँ) और **नगरखेरा देव** (ग्रामदेवता) कहाते हैं। ग्राम-देवियों, ग्राम-देवताओं, त्यौहारों और लोकाचारों से सम्बन्धित अनेक प्रकारों के गीत गाँवों में गाये जाते हैं। उनमें से बहुत से गीतों के नाम देवी-देवताओं, त्यौहारों और लोकाचारों के नामों पर ही प्रचलित हो गये हैं। गीत का प्रत्येक चरण **कड़ी** और कड़ी का प्रत्येक शब्द **आखर** (सं० अक्षर > प्रा० अक्खर > आखर) कहाता है। गीत की पहली कड़ी जिसकी आवृति बार-बार होती है **टेक** कहाती है। अन्तरा को **चढ़त** और स्थायी को **टूटन** कहते हैं। गीत की लय या तर्ज को **राह** कहते हैं।

§११५२—नगर खेरे की देवियों में दुर्गा की बड़ी **मानता** (सं० मान्यता) है। उसे **भमानी, माता** और **देवी** नामों से भी पुकारते हैं। उसके दो स्थान प्रमुख हैं—एक गुड़गावाँ (पंजाब में दिल्ली के पास) और दूसरा नगरकोट। अतः उसे **गुरगाँये की मइया** और **नगरकोटवारी** भी कहते हैं। चैत सुदी में पड़वा से नौमी तक के नौ दिन और क्वार सुदी में पड़वा से नौमी तक के नौ दिन **नौ देवी, नौ दुर्गा** या **नौराती** (सं०नवरात्रिका) कहाते हैं। इन नौ दिनों में दुर्गादेवी की पूजा होती है। स्त्री-पुरुष **जात** (सं० यात्रा) करने के लिए गुड़गाँव या नगरकोट (काँगड़ा) जाते हैं। **भगत** (कोरी जाति का मनुष्य जो देवी की पूजा और जात कराता है) **जातियों** (सं०यात्री > जाती) के साथ जाता है। दुर्गा माता के साथ अदृष्ट रूप से छप्पन कलुओं और चौसठ जोगिनियों का समूह रहता है। प्रत्येक जोगिनी **पवनजोगिनी** (सं० पवनयोगिनी) भी कहाती है। भगतों का कहना है कि **लाँगुरा** देवी मइया का मुँहलगा सेवक है। पुरुषों में **धानू** और **भगतराय** प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। कोरी जाति के भगत अपने को उसी भगतराय का शिष्य मानते हैं। माता अर्थात् दुर्गा की मनौती मनाने के लिए जो गीत गाये जाते हैं वे **माता के गीत** या **देवी के छन** (सं० छन्दस्) कहाते हैं। छन स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं। भगतों द्वारा गाये जानेवाले गीत कई प्रकार के हैं। उन्हें सामूहिक रूप में **जात-मनौती** कहते हैं।

§११५३—**दुर्गा के गीतों के नाम**—नौ देवियों में सन्ध्या के ४ बजे से १० बजे (रात्रि) तक स्त्रियाँ जिन गीतों को जिस क्रम से गाती हैं, उन्हें उसी क्रम से यहाँ लिखा जारहा है। गीतों का प्रारम्भ **बधाये** (सं० वर्धापक) से और समाप्ति **हनूमान** पर होती है। ये **सामिल गीत** (सामूहिक गान) हैं, जिन्हें ८-१० स्त्रियाँ एक साथ मिलकर गाती हैं।

(१) **बधायौ**—यह गीत दुर्गा माता के स्वागत में गाया जाता है। उसके शुभागमन के लिए कलश भरा जाता है और फूल-छबरिया फूलों के सजायी जाती है।

"मैं तौ मालिनियाँ बोली हो भोरी माइ।
कलस छबरि भरिलाउँ बधायौ भोरी माइ कौ॥"

जहाँ बधाया आदि अन्य गीत गाये जाते हैं, वहीं एक कोठे में एक **कलस** (जल का कोरा घड़ा) रक्खा रहता है और उसके ऊपर एक **करयौ** और नारियल।

(२) **जोगिनी**—यह गीत दुर्गा की चौंसठ जोगिनियों के प्रति प्रार्थना रूप में गाया जाता है।

"जोगिनी! जाइ जंगल सोये।
सब रागिन्न कूँ महल दुमहला, तौ हमकूँ जंगल बतायौ री माई।
सब रानिन कूँ पूरी कचौरी, तौ हमकूँ भातु बतायौ री माई॥"

(३) **निराहर**—स्त्रियाँ पुत्रोत्पत्ति की आशा से नगरकोटवाली माता की जात करने जाती हैं। जब उनके पुत्र हो जाता है, तब उसे माता के दर्शनों के लिए ले जाती हैं। **जाती स्त्री** (यात्रा करनेवाली स्त्री) जात के लिए जाते समय **बरती** (सं० व्रती) रहती है अर्थात् लौंग के जोड़े के सिवा और कुछ नहीं खाती। निराहर गीत उसी परिस्थिति और यात्रा को प्रकट करता है। दुर्गा की साथिन एक देवी **सीयल** को सम्बोधन करके **निराहर** (सं० निराहार) गाया जाता है।

"ए मैं ठाड़ी रे ठाड़ी सीयल द्वार, तेरौ माधर बाजत मैं सुनौं
ए मैं चली भभत! तेरे संग, तब सिर धरि लीयौ पालनौं।
ए मैं पहुँची कोस पचास, तब डेरा दयौ हरियल बाग में॥"

विशेष—उक्त गीत को कुछ स्त्रियाँ '**पालनौ**' नाम से भी पुकारती हैं।

(४) **गूगुर**—यह देवी का प्रसिद्ध छन है। इसे गाते समय बरती रही हुई स्त्री माता की **अग्यारी** (छोटा-सा अंगार) पर लौंग का एक जोड़ा, बताशा, गोला और गूगुर चढ़ाती है। गूगुर चढ़ाने के लिए '**गूगुर खेना**' कहा जाता है।

"धानू[1] की नारि चतुर है, जै-जै हो माइ।
न्हाइ धोवै गूगुर खेवै, जै-जै हो माइ।
जाकी लपट भमन में पौंचै, जै-जै हो माइ॥"

(५) **जालपा**—यह गीत जालपा देवी की दर्शनाभिलाषा के सम्बन्ध में गाया जाता है।

"चलौ पिया दोऊ मिलि जायँ, परसें देवी जालपा हो माइ।
तुम धनि बावरी गँवारि, दौनौं चालैं ना बनैं हो माइ॥"

(६) **लँगुरिया**—यह गीत लाँगुरा को सम्बोधित करके गाया जाता है। लँगुरिया नाम के गीतों में लाँगुरा को रसिक और हँसोड़ा बताया गया है। वह जाती स्त्रियों से स्वयं छेड़-छाड़ करता है। यदि किसी से नहीं करता तो वह स्त्री उसकी रसीली छेड़-छाड़ के लिए लालायित रहती है। नौदुर्गाओं में **क्वारे** (सं० कुमार = अविवाहित) छोटे बालक जिमाये जाते हैं। वे भी **लाँगुरा** कहाते हैं। छोटी क्वारी लड़की **कन्या**[2] कहाती है। वह भी लाँगुरे के साथ जीमती है।

---

[1] लोक प्रसिद्ध बात है कि आगरे के धानू भगत ने सबसे पहले नगरकोटवारी देवी परसी थी। धानू भगत जाति के वैश्य थे। (कुछ स्त्रियाँ 'धानू' के स्थान पर 'धाँदू' भी कहती हैं)।

[2] जिसको रजोधर्म न हो वह कुमारी (क्वारी लड़की) 'कन्या' कहाती है।
"कन्या-कुमारी गौरी तु नग्निकाऽनागतार्तवा"—अमर० २।६।८

"लँगुरिया चटर की मटर करै।
जापै देखै ढेड़ी-बन्दनी ताई ते अटकि परै॥"

× × × ×

"लँगुरिया हँसि मति अइयो काऊ और ते।
तेरौ डारूँगी भमन-बिच न्याउ,
लँगुरिया हँसि मति अइयो काऊ और ते।
ताल तमासे हम गये लहँगा-लहँगा पै लगाइ दई तसबीर।
लँगुरिया हँसि मति अइयो काऊ और ते॥"

× × × ×

"मेरौ भूरी लटन को लाँगुरिया बिन्दाबन खेलै सार।
जिअ दादीऐ लै भगिजाइ री मेरौ भूरी लटन कौ लाँगुरिया॥"

× × × ×

"घर चलि रे लँगुरिया खबरि करियो।
धौन भरि माँटी मँगाइ रखियो॥
हरौ-हरौ गोबरु पियरी-सी माँटी।
भूकेन[1] आँगन लिपाइ रखियो॥"

× × × ×

"अनौखी मालिनी री, मैंना करै तौ डरपै चौं।
ना काऊ के घर गई, ना मैंनै लयौ बुलाइ।
रस कौ बाँध्यौ लाँगुरा, आइ गयौ मेरी सेज॥ अनौखी०॥"

(७) **कुन्दकुढ़ारी**—इस गीत में दिखाया गया है कि देवी के दर्शनों और भवन की पूजा के लिए भक्त इच्छुक हैं और वह कुल्हाड़ी से खम्म काटकर दर्शन करना चाहता है—

"काँह रे उपजी डाँडुरी रे, और काँह रे मारुअरे के खम्म,
भमन मैं गरजति आदि भमानी[2]।
अगवारे उपजी डाँडुरी रे, पिछवारे मारुअरे के खम्म,
भमन मैं गरजति आदि भमानी॥
काये ते काटूँ डाँडुरी औ, काये ते मारुअरे के खम्म। भमन०
कुढ़रीनु काटूँ डाँडुरी रे, और खुरपिनु मारुअरे के खम्म॥ भमन०"

(८) **मालिन-मरुऔ**—यह मालिन को सम्बोधन करके गाया जाता है। देवी की **गैल** (रास्ता) में मरुआ न लगाने की बात मरुऔ गीत में मालिन से कही जाती है—

"मलिनियाँ तैं काए कूँ लगायौ मरुऔ गैल।
आइ परै भगतन कौ लसकरु
तेरौ मरुऔ रुँदि-खुँदि जाइ। मलिनियाँ॥"

उक्त गीत में आगे 'भगतन' शब्द के स्थान पर स्त्रियाँ अपने घर के किसी आदमी का

[1] लीपते समय हथेली से बने हुए अर्द्धवृताकार निशान भूका कहाते हैं।

[2] भमानी=भवन या भमन नामक गाँव की देवी। यह गाँव नगरकोट के पास है।
—डा० सत्येन्द्र जी ने अपनी पुस्तक ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन (पृ० २२६) में इसका उल्लेख किया है।

नाम भी लेती हैं। यहि बहिन-बेटियों के नाम जोड़ती हैं तो 'लसकरु' शब्द की जगह 'डोला' शब्द कहती हैं। इसी प्रकार घर के सब लड़कों और लड़कियों के नाम लिये जाते हैं।

(६) **ज्वाला**—दुर्गा को कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे—**नगरकोटबारी, धौलागढ़-बारी, हिंगुलाजबारी, चिंत-पूरनी, हरियल पीपरबारी, छप्पनकलुआबारी, चौसठ जोगिनबारी, स्यामलपिंडीबारी, चाँदी के चौकाबारी, सोने के छत्तुरबारी, ऊँचे नीचे पर्वतबारी, करनवासबारी** (कर्णवास जिला बुलन्दशहर में एक गाँव है जहाँ देवी का मन्दिर है), **बेलौनबारी** या **बेलौनभमानी** (बेलौन तहसील अनूप शहर जि० बुलन्दशहर में एक गाँव है जहाँ देवी का प्राचीन मन्दिर है। उस मन्दिर में दुर्गा की मूर्ति काले रंग के पत्थर की है। उसी मन्दिर के पीछे की ओर लाँकुरा वीर की मूर्ति है। **लाँगुरा वीर** के हाथ में एक डंडा है। जो **'धजा'** कहाता है) और **ज्वाला माई** काँगड़े में जो देवी का मन्दिर है, उसके पीछे एक बहुत बड़ा हरा पीपल है। नगरकोट की जात करने के लिए जानेवाले व्यक्ति वहाँ आकर उस पीपल की डाली में अपने कपड़े की एक चीर बाँधते हुए कहते हैं कि—"हे मइया के हरियल पीपर। जो **मंछा** (सं० मनोवांछा) पूरन होइ, तौ आय जात दैउँ और **परिकम्मा** (सं० परिक्रमा) फिरलैउँ।" ज्वाला जी देवी के मन्दिर में ज्वालामुखी पर्वत की भाँति आग की लपटें उठती हैं इसलिए उसे **ज्वाला-देवी, ज्वालामाई** तथा **ज्वाला जी** नामों से भी पुकारते हैं। **ज्वाला** नाम का गीत ज्वालामाई के सम्बन्ध में ही गाया जाता है। स्त्रियाँ अपने ही घर में ज्वालामाई का निवास चाहती हैं।

ज्वाला गीत

"कहाँ जाओगी ज्वाला, ऐसी गरमिन मैं।
ज्वाला भूख री लगै, ज्वाला प्यास री लगै,
प्याऊ दई लगवाइ, ऐसी गरमिन मैं॥ कहाँ०॥"

(१०) **डंडौती छन**—इस गीत को गाने के उपरान्त स्त्रियाँ अपना सिर धरती से लगा देती हैं। जो जाती (जात देने के लिए जानेवाले स्त्री-पुरुष) नगरकोट वाली देवी के मन्दिर के द्वार पर पहुँच जाते हैं, वे भी वहाँ पहुँचकर डंडौती छन गाते हैं और द्वार पर माथा टेक देते हैं। इस क्रिया को **धोक देना** कहते हैं (सं० दण्डवत् > दंडौत > डंडौत)।

डण्डौती छन

"चौरासी घण्टा बाजैं रे भमन चारौं ओर।
कौन नैं पारे मइया! हरे री परेबा।
तौ कौन नैं पारे जंगी मोर॥ चौरासी०॥
धाँदू नैं पारे मइया! हरे री परेबा।
भगतराइ नैं पारे जंगी मोर॥ चौरासी०॥

(११) **भोग**—देवी के आगे जो बस्तुएँ रक्खी जाती हैं, वे **भोग** कहाती हैं। उनमें हलुआ, पूरी, पान का बीड़ा, बताशे और कौड़ियों का **छक्का** (छह कौड़ियाँ) चढ़ाते हैं। **भोग गीत** में इन्हीं वस्तुओं का वर्णन होता है।

"भोगु लै अबला भोगु लै।
तोइ न भावै तौ मोइ दै।

हलुआ पूरी कौ भोगु लै।
बीरा बतासे कौ भोगु लै ॥"

(१२) **सुरई** (सं० सुरभी)—इस गीत में एक गाय के चरने का वर्णन है। वह गाय कजरी वन से नन्दन वन में चरने गई है। वहाँ सिंह ने उसे घेर लिया है। **बचनबींधी** (वचनबद्धा) गाय लौटने का विश्वास दिलाकर अपने बछड़ों के पास आती है। वह बछड़ों से कहती है—"मैं तुम्हें दूध पिलाने आई हूँ। जल्दी से दूध पी लो; फिर मैं बचनों के अनुसार सिंह के पास जाऊँगी तब वह मुझे खायेगा।" बछड़ों ने दूध नहीं पिया और वे भी गाय के साथ सिंह के पास चल दिये। जंगल में एक **पूठरी** (ऊँची जगह) पर बैठा हुआ सिंह दिखाई दिया। तब बछड़ों ने कहा—"हे सिंह मामा! पहले हमें खा लो फिर हमारी माँ को खाना।" इन शब्दों को सुनकर सिंह दया-भाव से आर्द्र होता है और उन सबको अपनी देवी (नगरकोट की देवी जो सिंह पर सवारी करती है) के पास ले जाता है।

कजरी बन ते चाली रे सुरई गाइ।
नन्दन बन चुगिबे चली हो माइ ॥
साँझ भई दिन छिपन कूँ जाइ।
सुरई रे चरिकैं बाहुरी हो माइ ॥

(१३) **हनूमान**—इस गीत में हनूमान के बल तथा उनके द्वारा किये गये पराक्रमों का वर्णन किया जाता है—

जैजै हनूमान बिरद बंका।
साँचे महाबीर बिरद बंका ॥
को तेरी माता कौन पिता हैं।
कौनैं तेरौ नाम धरायौ हनुमन्ता ॥

देवी के छनों में यह गीत अन्त में गाया जाता है। इसे गाने के बाद **छनगवइयनि** (गीत गानेवाली स्त्रियाँ) अपने हाथ जोड़कर माथे से लगाती हैं और माथे को धरती से छुलाती हैं। फिर देवी का **पस्साद** (प्रसाद=हलुआ और उबले चना) लेकर अपने-अपने घर चली जाती हैं।

§११५४—**जातियों के घर गाये जानेवाले विशेष गीत**—जिस घर से जाती जात देने नगरकोट को जाते हैं उस घर में एक स्त्री प्रति दिन प्रातः **पथवारी** (एक ग्राम देवी) पूजती है और देवी के **कल्स** (सं० कलश) में से करये में जल लेकर और सरवे में अग्यारी लेकर पथवारी पूजने जाती है। उस स्त्री को **पन्थवारी** कहते हैं। पन्थवारी की धोती पर भगत हल्दी का एक **थापौ** (हाथ का निशान) मार देता है। पन्थवारी पीली धोती पहनकर जातियों को विदा करती है। जब तक जाती लौट कर नहीं आते तब तक पन्थवारी प्रतिदिन प्रातः ४-५ बजे उठकर और नहा-धोकर पथवारी पूजने चल देती है। जिस रास्ते से जाती पथवारी के स्थान को गये थे उसी रास्ते से पन्थवारी भी पथवारी पूजने जाती है।

पन्थवारी के आगे **बुहारी** (अरहर का झम्मा) लेकर एक स्त्री रास्ता साफ करती हुई चलती है। उसे **बाटबुहारनी** कहते हैं। आगे-आगे बाटबुहारनी और पीछे करये में से पानी की धार गिराती हुई पन्थवारी चलती है। इसे **पन्थ लेना** कहते हैं। नगरकोट को गये हुए जातियों के मार्ग में कोई विघ्न-बाधा न आये इसीलिए पन्थवारी पन्थ लिया करती है। पन्थवारी और बाट-

बुहारनी के साथ गाँव की अन्य स्त्रियाँ भी पथवारी पूजने जाती हैं। उस समय छन गवइयनें निम्नांकित गीत गाती हुई जाती हैं। इस गीत को **धार** कहते हैं क्योंकि उस समय पन्थवारी अपने हाथ में करवा लेकर चलती है और वह पथवारी तक उसमें से थोड़ा-थोड़ा पानी धार के रूप छोड़ती जाती है। धारगीत को **बिहान** (सं० विश्रहन्) भी कहते हैं। बिहान प्रातः चार बजे गाये जाते हैं।

(१) धार गीत या बिहान गीत

धौतायौ भयौ जागौ हो भोरी माइ।[1]
चिरइयाँ ऊ जागीं चिरौटा ऊ जागे॥
परि तुम न जगीं भोरी माइ।

पथवारी पर पहुँचकर पन्थवारी और अन्य स्त्रियाँ कई गीत गाती हैं। उनमें ज्वाला आदि में और लँगुरिया अन्त में गाया जाता है। लँगुरिया के उपरान्त ही **जैकारा** (देवी के नाम लेकर जय बोलना) दिया जाता है। पथवारी पर गाया जानेवाला **लँगुरिया गीत** इस प्रकार है—

(२) लाँगुरिया गीत

लँगुरिया तू चौं ठाड़ौ दलगीर।
सासु जिठानी मैं सबुई त्यागूँ तौ चलूँ तिहारे संग॥ लँगुरिया...॥

(३) **जैकारा**—यह कुछ-कुछ गीत के ही ढंग पर होता है।

पन्थवारी अपनी छनगवइयन साथिनों के साथ पथवारी पूजती हैं। उस पर लोटे का पानी डालती हैं; उसे **लोटा ढारना** कहते हैं। पूजने के बाद सभी स्त्रियाँ पथवारी की ओर मुँह करके एक घेरे में खड़ी होकर घूमती हैं, उसे **झबूका** लगाना कहते हैं। एक घेरे में घूमने की क्रिया **झबूका** कहाती है। झबूके लगाते समय जो गीत गाया जाता है वह भी **झबूका** कहाता है।

झबूका लगाने के बाद स्त्रियाँ देवियों के नाम ले लेकर जय जयकार बोलती हैं। उसे ही **'जैकारा'** कहते हैं। अन्त में लाँगुरा वीर की जय बोली जाती है।

जैकारा गीत

नगरकोटबारी की जै बोल।
धौलागढ़बारी की जै बोल॥
हिंगुलाजबारी की जै बोल।
ज्वाला मइया की जै बोल॥
चिंत पूरनी की जै बोल।
ऊँचे नीचे पर्वतबारी की जै बोल॥
हरियल पीपरबारी की जै बोल।
चाँदी के चौकाबारी की जै बोल॥
सोने के छत्तुरबारी की जै बोल।
गुरगाँयेबारी की जै बोल॥
बेलौनबारी की जै बोल।
पाँचौ पण्डन की जै बोल॥
छठे नराइन की जै बोल।
लाँगुरा बीर की जै बोल॥

---

[1] "सकारौ भयौ जागौ हो भोरी माइ।"—यों भी गाया जाता है। (सं०सकालः>सकारौ=प्रातः)

उक्त गीत **'जैकारा'** कहाता है। इसमें लाँगुरा वीर की जय अन्त में बुलती है। फिर गीत गाती हुई सब स्त्रियाँ उसी रास्ते से पन्थवारी के घर लौट आती हैं। वहाँ आकर कलश की ओर मुँह करके **झबूके** लगाये जाते हैं और धोक लगाई जाती है। फिर छनगवइयन अपने घर चली जाती हैं।

§११५५—नगरकोटवारी देवी सात स्थानों पर मानी जाती हैं। भगतों का कहना है कि ये सात बहिनें स्थान-विशेष के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सातों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) **नगरकोटवारी** (२) **ज्वाला जी** (इसका मन्दिर नगरकोट से पूर्व दिशा में है) (३) **चिन्तपूरनी** (इसका मन्दिर ज्वाला जी से पूर्व दिशा में हैं; वहाँ पत्थर के चरण-चिह्न बने हुए हैं) (४) **बेलाभमानी** (बेलौनवारी) (५) **धौला गढ़वारी** (उत्तर में धौलागढ़ नाम का पर्वत है) (६) **केला भमानी** (इसे कैलामइया भी कहते हैं)। (७) **हिंगुलाजबारी** (भगतों का कहना है कि इसके दर्शन महादुर्लभ हैं। इसकी आरती सिंह गर्जते हुए करते हैं।) हिंगुलाजबारी **आदिभमानी** भी कहाती है।

§११५६—जैकारे में उक्त सातों बहिनों के नाम भी पुकारे जाते हैं। जैकारा देते समय किसी-किसी पन्थवारी के सिर लाँगुरा वीर आ जाता है। उस समय जब वह पथवारी के आगे पट्ट पड़के धोक लगाती है और पेट के बल आगे को सरकती है तब उस क्रिया को **डंडौती धोक** कहते हैं। यदि बहुत देर तक वैसी ही पड़ी रहती है तो उस दशा को **लाँगुरा की लहर** कहते हैं। लाँगुरे की लहर हटाने के लिए एक स्त्री पन्थवारी की पीठ पर हाथ मारती है। उसे **लाँगुरा की थाप** कहते हैं। थाप लगाते हुए कहा जाता है—"**लाँगुर वीर[1] सान्ती**।" अर्थात् हे लाँगुरा वीर! शान्ति धारण करो। इसके पश्चात् पन्थवारी-धोक से उठ पड़ती है। फिर चलने से पहले वहाँ पर ही पन्थवारी अन्य स्त्रियों **के पायँ लगती है** (पैर छूती है) वे **असीस** (सं० आशिस्) के रूप में कहती हैं—"खानी अवानी, सदा सुहागिल, नौ महीना पीछें पूतु खिलावै।"

§११५७—**देवी की जात से लौटकर आनेवालों की प्रतीक्षा से सम्बन्धित गीत**—(१) **पैंड़ौ**—इस गीत में पन्थवारी **जातीयरों** (जात देनेवालों) की प्रतीक्षा करती है। लोक भाषा में प्रतीक्षा के लिए **'पैंड़ा'** शब्द प्रचलित है।

"भगतिन ठाड़ी रेत में और देखै जातीयरन को बाट।
मइया तेरौ भोगु लगाऊँ जल्दी लौटैं जाती अपने देस कूँ॥"

(२) **बाहुरौ**[2]—लौटने के लिए **'बहुरना'** क्रिया प्रचलित है। बाहुरौ गीत में जातियों के आगमन की प्रतीक्षा में सगुन देखे जाने का वर्णन होता है—

---

[1] लाँगुरा वीर—यह 'महाबीर' यक्ष का रूप जान पड़ता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है—"वस्तुतः महावीर को दो तरह से पूजते हैं। एक मन्दिर में हनुमान की मूर्ति के रूप में और दूसरे थूहे या स्तूप के रूप में। यह दूसरी-पूजा वीर या यक्ष-पूजा ही है। बड़े यक्ष का नाम ही महावीर हुआ।"

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : 'वीर-बरह्म' लेख, जनपद खंड १, अंक ३, पृ० ६५

[2] "गयउ न जुब्बण बाहुडइ, मुयउ न जीवइ कोइ"—सिंहासन द्वात्रिंशिका २२ कथा; अप० बाहुडइ > बाहुरइ > बाहुरता है = लौटता है, वापिस होता है। सं० व्याघुट > बाहुड + ना > बाहुरना > बहुरना > बहोरना > बहोरा > बहोर (अल्सडोर्फ, लंदन प्राच्य० पत्रिका, १०।१६)

"ननद ! मेरी कगवा बोलि गयौ ऐ ।
भवज ! मेरी बिरन कौ आमनु होइगौ,
ननद ! तोइ हरवा दैउँ गढ़ाइ ॥ननद०॥"

§११५८—**भगतों द्वारा गाये जानेवाले जातमनौती गीत**—जब जाती जात देकर घर लौट आते हैं तब भगतों द्वारा रात को देवी की स्तुति में जो गीत गाये जाते हैं वे **जागन्न** (सं० जागरण) कहाते हैं। जागन्न के कई प्रकार हैं। जातमनौतियों में जागन्न विशिष्ट गीत हैं।

महाभारत के विराट पर्व के कथानकों से सम्बन्धित गीतों को **बैराठ** कहते हैं। कुछ मुख्य गीत **जगद्देब**[1] कहाते हैं। बैराठ और जगद्देब झाँझ, मृदङ्ग और बेले पर गाये जाते हैं। जात करके लौटे हुए जाती जब पथवारी (एक ग्राम देवी) पूजने जाते हैं तब भगत **'माई की भेट'** गाते हैं। भेट नाम के गीतों में देवी और लाँगुरा का महिषासुर से जो वार्तालाप होता है वही व्यक्त किया जाता है। जिन गीतों में दुर्गा का युद्ध-वर्णन होता है वे **'खाँड़ा'** कहाते हैं। पहले 'भेट' तत्पश्चात् 'खाँड़ा' गाया जाता है। इन गीतों को भगतों की दो मण्डलियाँ गाती हैं। **अगेड़िये** (अगली मण्डली के लोग) जिस कड़ी को गाते हैं, **पिछेड़िये** (पिछली मण्डली के लोग) उसे ही दुहराते हैं। भगतों का नेता, जो **झगा, चौरासी** (कपड़े की पट्टी पर टँके हुए पीतल के घुँघरू) और हाथों में **नेबर** (बजने खड़ुए) पहने रहता है, नाचते हुए आगे गाता है।

§११५९—**जाहरपीर से सम्बन्धित गीतों के नाम**—जाहरपीर को **गूगापीर** (सं० गोग्रह>गोग्गह>गोगा = यह मध्यकालीन नाम था। जो लोग गायों की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते प्राण दे देते थे, वे गोगा कहाते थे) भी कहते हैं। इसकी जात माड़ी नामक गाँव (हरियाने में) में भादों बदी नौमी को होती है।

(१) **धमूका**—जाहरपीर के घोड़े का सईस 'भज्जू' नाम का चमार बताया जाता है। उस सईस के सम्बन्ध में जो गीत गाये जाते हैं वे **धमूका** कहाते हैं।

"आधी रोटी प्याजु की गाँठि, ररकतु आबै मेरौ भज्जू चमारु।
आधी रोटी घूँटु मठा, ररकतु आबै मेरौ भज्जू चमारु॥"

(२) **मदद**—जाहर पीर की जात को जानेवाले चलते समय जो **जैकारा** (जयकार) बोलते हैं, उसे **मदद** कहते हैं।

"जाहर पीर की मदद। गूगा पीर की मदद॥
माड़ी बाबा की मदद। बाछल[2] सिरियल[3] की मदद॥

---

[1] लोक-कथा के अनुसार जगद्देव धारा नगरी के राजा पमार का पुत्र था। पमार को बीरमती नाम की स्त्री ने जादू के जोर से जेल में बन्द कर दिया था। जगद्देव ने अपने बल और साहस से अपने पिता पमार को शीघ्र ही जेल से मुक्त कराया। यही कथा 'जगद्देव' नाम के गीतों में गायी जाती है। जायसी ने भी जाज और जगदेव नाम के बीरों का उल्लेख किया है—

"तुम बलबीर जाज जगदेऊ।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, ६११।३

[2] लोकवार्ता के अनुसार मान की पुत्री और बागड़ के राजा देवराय की पत्नी बाछल जाहरपीर की माता थी।

[3] जाहरपीर की पत्नी का नाम सिरियल था।

बागड़बारे की मदद। पाँचौ पीर की मदद॥

(३) **धम्मार**[1]—नाथ या जोगी (नाथपन्थी जोगी) जाहरपीर[2] के जातियों **को गाते-बजाते** ले जाते हैं। जात के लिए जाते समय जातियों को जोगी अपनी **मोरछली-धजा** (सं० ध्वजा=मोरपंच का मुट्ठा) की छत्र छाया में ले जाते हैं और पीछे से उनकी पीठों पर **चाबुक और छड़ियाँ** (मोरपंचे) भी छुलाते चलते हैं। उस समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं वह **धम्मार** कहाता है। एक पंक्ति में खड़ी हुई अन्य स्त्रियों के साथ पथवारी के आगे पंथवारी हाथ जोड़े हुए खड़ी-खड़ी दोनों पाँव क्रमशः चलाती है। यह क्रिया **धम्मार खेलना** कहाती है। पंक्ति में खड़ी हुई सब स्त्रियाँ धम्मार खेलती हैं।

"खेलौ री धम्मार। खेलौ खेलौ री धम्मार॥
बोलौ री महन्त माई, खेलौ री धम्मार॥
जाहर नैं छड़ियन ते मारी, गोरख नैं छड़ियन ते मारी॥
माई उठि बैठी मैं हाल॥ खेलौ री० ॥"

[जाती जाहरपीर की जात को जारहे हैं]
[चित्र ३६]

(४) **साँजोली**—जाहरपीर के नाम का दीपक जलाने के संबंध में **साँजोली** नाम का गीत गाया जाता है—

भरि भरि दिबला जोरती,
मोइ मुरि मुरि देत असीस।
जाहर कौ दिबला जोर्‌यौ,
अब मुरि-मुरि देत असीस॥

§११६०—**सीयल और मसानी के गीत**—(१) **सीअलौ**—होली के बाद चैत में जो पहला सोमवार या शुक्रवार पड़ता है उसी दिन **सीयल** और **मसानी** नाम की ग्रामदेवियाँ पुजती हैं। बच्चों के ऊपर महतरानियों द्वारा मुर्गे फिरवाये जाते हैं। इसे **मुर्गा छुड़वाना** कहते हैं। बासी पूड़ी और भात से दोनों माताएँ पूजी जाती हैं। वह पूजा **बासौड़ौ** कहाती है। पूजते

---

[1] "चैत बसन्ता होइ धमारी।"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत ३५३।१

[2] 'पीर' शब्द वस्तुतः 'वीर' शब्द का ही चूलिका पैशाची रूप है। (सं० गगन>चू० पै० गकन; सं० तड़ाग>चू० पै० तटाक)।

समय **सीअलौ** और **मसानो** नाम के गीत गाये जाते हैं। स्त्रियों का विश्वास है कि मसानी पूजने से बच्चों के **फोरे-फिसूँगे** (बड़ी फुंसियाँ) नहीं निकलते हैं।

सीअलौ गीत

सीअल के आँगन अमुआ मौरिऐ।

सीअल और मसानी की पूजा और मनौती के लिए ग्रामीण नारियाँ शुक्रवार और शनिवार को कुत्तों को **कूर** (आटा, घी और गुड़ का मिश्रण) भी खिलाती हैं। कुत्ते या मनुष्य की पग-ध्वनि **पैछर** कहाती है। यदि कोई घटना **अन्त** (सं० अन्यत्र) हुई हो, लेकिन किसी को उसका आभास हो जाय तो उसके लिए '**भ्यासना**' (आभास होना) क्रिया प्रचलित है।

(२) मसानी गीत

मसानी रानी नौबत बाजी फूल कटोरी ते।
काहे में आमैं मइया बाँझ बँझोटी, काहे में आमैं छुई छापरे।[1]
गाड़िन आमैं मइया बाँझ बँझोटी, तौ पाँयन आमैं छुई छापरे॥

(३) **माता**—माता अर्थात् देवी के भवन, वैभव या शक्ति के सम्बन्ध में जो विशेष गीत गाये जाते हैं वे **माता** कहाते हैं। गुरगाँयेबारी, बेलौनभमानी और नगरकोटबारी नाम से कई माताएँ (मातृकाएँ) पूजा जाती हैं।

माता गीत

मेरी माता कौ चिनियौ चौबारौ।
कै गज की मइया-नीब खुदाई तौ कै गज कौ बिसतारौ॥
नौ गज की मइया-नीब खुदाई दस गज कौ बिसतारौ॥

(४) **मीयाँ**—कुछ जातियों (विशेषतः खटीक, चमार, धुना आदि) में सैयद या मीयाँ पूजा जाता है। उसकी जात देते हुए जो विशेष गीत गाये जाते हैं, वे मीयाँ कहाते हैं। निम्न गीत में सैयद का पुत्र मा-बहिन से आज्ञा लेकर युद्ध को जाता है—

मीयाँ गीत

पहली ड्यौढ़ी गुअ चढ़ौरी माइल कर्यौ है सलाम।
नादरबारे चिर जियौ रे अइयौ बैरिन मारि॥
दूजी ड्यौढ़ी गुअ चढ़ौरी बैहान कूँ कर्यौ है सलाम।
सैयद जादे जुझ[2] मति करै रे ड्वाँ तोपन के मचे घमस्यान॥[3]

§११६०—(क) जादू, टोना या टोटकों में विश्वास रखनेवाली स्त्रियाँ **टोटिकहाई** या **टुनिहाई**[4] कहाती हैं। ये मीयाँ, मसानी, चामड़ आदि ग्रामदेवियों तथा ग्रामदेवताओं को अधिक पूजती हैं। जिन स्त्रियों के बच्चे मर जाते हैं या होते ही नहीं, वे पूजामंसी और टोटका-टमना बहुत कराती हैं। लड़ाई अथवा ईर्ष्या का भाव व्यक्त करने के लिए कभी-कभी **सपूती** (पुत्रोंवाली स्त्री)

---

[1] छुई-छापरे=लड़कियाँ और लड़के।

[2] युद्ध।

[3] घमासान=तोपों का घमासान युद्ध।

[4] "टुनहाई सब टोल में, रही जु सौति कहाइ।" —बिहारी रत्नाकर, दो० ३४८।

निपूती (पुत्रहीना स्त्री) को **तोख** (चुभीला व्यंग्य) मारती है और कहती है—"लै खिलाइलै नँदलाला।" तब निपूती सपूती के किसी बालक पर **घात** (एक प्रकार का टोटिका जिससे सपूती का पुत्र मर जाय। इसे प्रायः स्याने करते हैं) रखवाती है। वह टोटिका जिस हँड़िया (सं० भांडिका =मिट्टी का एक बर्तन) द्वारा किया जाता है उसे **घात की हँड़िया** कहते हैं।

त्यौहारों से सम्बन्धित गीत

§११६१—साधारणतया त्यौहारों पर दो तरह के गीत स्त्रियाँ गाया करती हैं—एक तो राम, कृष्ण, देवी और हनूमान आदि देवी-देवताओं की स्तुति के रूप में गाये जानेवाले गीत जो **भजन** कहाते हैं। भजनों में भक्ति भाव और शान्त रस की प्रधानता रहती है। दूसरे मनोरंजन के गीत जिन्हें **खेल के गीत** कहते हैं। अनुष्ठान सम्बन्धी गीत **नेग के गीत** कहाते हैं।

§११६२—हर महीने की **मावस** (सं० अमावस्या), **पूरनमासी** (सं० पूर्णमासिका) और एकादशियों को स्त्रियाँ भजन गाती हैं। विशेष रूप से **निर्जला एकादसी** (ज्येष्ठ शुक्ला ११), **देवउठानी एकादसी** (कार्तिक शुक्ला ११), **तिला एकादसी** (माघ शुक्ला ११) और **रँगभरनी एकादसी** (फाल्गुन शुक्ला ११) को स्त्रियाँ **बर्त** (सं० व्रत) रखती हैं और भजन गाती हैं। क्वार की नौ दुर्गाओं (क्वार मास शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक) को **नौराती** कहते हैं। क्वारी कन्याएँ उन दिनों एक दीवाल पर चिकनी मिट्टी से एक स्त्री की मूर्ति बनाती हैं, जो **गौरा** या **गौरी** कहाती है। उस मूर्ति के आगे नौ दिन तक जो गीत गाये जाते हैं, वे **नौरता गीत** (सं० नवरात्रक गीत) कहाते हैं।

नौरता गीत

ए वे गौरा चली हैं रूंठिकैं पाटी पारि मोंम की।
ए वे ईसुर चले हैं मनामन, कंधा डारि धोबती॥
तुम बगदौऊ बगदौ सजन बेटी, तुम्हैं दिंगे अगर गढ़ाइ।
कि पाट पुवाइ सबज रँग चूँदरी॥

(१) **गनपत**—इस भजन में **गनपत** (सं० गणपति=गणेश) की स्तुति मंगलाचरण के रूप में की जाती है। भजनों में गनपत नाम का भजन सबसे पहले गाया जाता है। इसमें सभी इन्द्रियों में गणेश का अधिष्ठान व्यक्त किया जाता है।

आजु मेरैं ज्ञान गनपत आए।
गनपत आये मेरे नैंन बिराजे रामा॥
भले भले दरस कराए।

(२) **सतगुरु**—इस भजन में सत्य गुरु द्वारा हुई ज्ञानोद्बुद्धि का वर्णन प्रधान रूप सेहोता है—

सतगुर नैं बानु मेरैं मारौऐ।
पूरे गुरू नैं बानु मेरैं मारौऐ॥

(३) **गुरु**—इस भजन में गुरु की दानशीलता और उदारता को बताया जाता है—

गुरू जी मोइ दै गये ज्ञान गुदरिया।
रहिबे कूँ दै गये महल दुमहला रामा॥
पुन्न कूँ दै गये एक झुपड़िया।

(४) **एकास्सी**—(एकादशी) इस भजन में एकादशी के दिन सात्विक भोजन करने, शुद्ध कपड़े पहनने और शुद्ध विचार रखने का विधान है।

तुम करौ ना एकादसी, तुम करौ ना एकादसी।
एकादसी बिन मुकति न होइगी॥

(५) **बिड़िया**—इस भजन में राधा कृष्ण के लिए बीड़ा लगाकर लाती है। मिलन के समय दोनों एक-दूसरे से दुःख-सुख का हाल पूछते हैं।

हाँ रे बिड़िया लाई है लगाइ।
राधा किसन की प्यारी॥

(६) **संकराँति**—(सं० संक्रान्ति)—यह भजन हर महीने की संक्रान्ति को गाया जाता है।

माहु महीना जे संकराँइति दानु करौ बड़ौ भारी रे।
रामा दानु करौ बड़ो भारी रे॥

ऐसे भजनों की गायन-शैली की यह विशेषता है कि उन्हें गाते समय स्त्रियाँ 'रामा' शब्द का उच्चारण अवश्य करती हैं।

सावन में गाये जानेवाले गीतों के नाम

§११६३—प्रायः हरियाली तीज (श्रावण शुक्ला ३) और सलूने के दिन स्त्रियाँ झूलों और हिंडोलों पर झूलती हुई **नरसी, गोपीचन्द, रुकमिनी, राधाकिसन, नीबरिया, धोबी, मोरा, चूड़ा, अचरी बींझा, मारूजी, चन्द्रावलि, बनजारौ, निहालदे, कलारिन, हिंडोला, कजरी, नटनी, मनरा, सिंदौरा, मानोगूजरी राँझा, मँहदी, चकई-भौंरा, बारहमासी, चौमासौ, चँदना, चम्पादे** और **बहन-भइया** नाम के गीत गाती हैं। सावन से पहले भाई अपनी विवाहिता बहनों को ससुराल से माइके में लाते हैं। वे माताओं द्वारा **खँदैये जाते हैं** (भेजे जाते हैं) [खँदैना = भेजना]। बालक झूले के डंडे पर खड़े होकर जो झोटे लेते हैं वे **मचक** या **पैंग** कहाते है।

§११६४—किसी-किसी मैदान में दुसंखी दो बल्लियाँ गाड़कर उनके ऊपर एक मोटी सोठ रख दी जाती है। उस सोठ पर मोटी एक रस्सी झूलने के लिए डाली जाती है। उन सबको सामूहिक रूप में **हिंडोला** (सं० हिन्दोलक>हिंडोलअ>हिंडोला) कहते हैं। सावन के गीतों का सम्बन्ध स्थान, कुछ विशेष व्यक्तियों, कुछ वस्तुओं और वर्ष के महीनों से है। नीचे इसी क्रम से हम सावन के गीतों का वर्णन करेंगे।

§११६५—**स्थान सम्बन्धी गीतों के नाम—कजरी**—इस गीत में कजरी नाम के वन की भयंकरता का वर्णन रहता है।

"कजरी के बन मति जाऔ बिदरदी!
कजरी के बन मति जाउं।
कजरी के बन में कारी नगिनियाँ
जो तुमकूँ डसि लेइ॥ कजरी०॥"

व्यक्ति सम्बन्धी गीतों के नाम (मल्हार राग में गाये जानेवाले)

§११६६—**नरसी, गोपीचन्द, रुकमिनी, राधाकिसन, चम्पादे, निहालदे और चंदना नाम के गीत 'मल्हार'**[1] नाम के लोक राग में गाये जाते हैं। मल्हारें (अप० मल्ह धातु से मल्हकार > मल्हआर > मल्हार) गाते समय स्त्रियाँ 'ऐजी कोई' और 'हम्बै कोई' का पुट अवश्य लगाती जाती हैं और गीत की स्वर-लहरी के आनन्द में बिखर-सी जाती हैं। भल्हारों को अलीगढ़ जनपद में स्त्रियाँ और पुरुष दोनों गाते हैं।

(१) **नरसी मल्हार**—लोक में प्रचलित है कि गुजरात के जूनागढ़ नामक गाँव में नरसी भक्त हुआ था। उसकी बेटी रामा सिरसागढ़ में ब्याही थी। रामा की पुत्री के विवाह में निर्धन नरसी ने भगवान् कृष्ण की कृपा और दया से भात में असंख्य माल दिया था। नरसी नाम की मल्हारों में इसी लोक-कथा का वर्णन रहता है।

> "रोइ-रोइ रामा बहना मेरी यौं कहै जी,
> ए जी कोई सुनि सासुलि मेरी बात।
> बाबुल मेरौ दीन गरीब है जी,
> ऐ जी कोई कहाँ ते पहरावै मोइ भात ॥"

(२) **गोपीचन्द मल्हार**—लोक-कथा प्रचलित है कि धारा नगरी के राजा तिलकचंद्र राव का पुत्र गोपीचन्द था। उसकी माता मैनावन्ती थी। वह जोगी होकर गोरखनाथ की आज्ञा से अलख जगाता फिरा था। गोपीचंद की बहिन चम्पादे थी जो बंगाल में ब्याही थी। गोपीचन्द अलख जगाता हुआ उसकी **पौरी** (द्वार) पर भी पहुँचा था। यही कथा **गोपीचन्द** नामक मल्हारों में गाई जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् १९९७, पृ० १८) के मतानुसार गोपीचन्द बंगाल में चाटिगाँव के राजा थे और उनकी माता का नाम मैनावती था—

गोपीचन्द मल्हार

> "पीहर सूनौ भैया सबु तो बिना जी,
> एजी कोई कौनु उढ़ावै मोइ चीर।
> सावन घूँघा[2] कौनएँ दैउँ जाइकैं जी,
> ए जी कोई कौनएँ सुनाऊँ अपनी पीर ॥"

---

[1] मल्लार = एक राग का नाम—मो० वि० पृ० ७९३। मल्लार राग के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि यथार्थ रीति से इस राग को गाया जाय तो पानी बरसने लगता है। बिहारी (बिहारी रत्नाकर दो० १४६) ने इस ओर संकेत किया है।

'मल्हार' अपभ्रंश की √'मल्ह' धातु से बना है जिसका अर्थ है लीला, बिलास, आनन्द करना। पुष्पदन्त कृत महापुराण में 'मल्हण' का अर्थ है 'मदयुक्त' (२९।४२।९)।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, पृ० १०६ तथा गाहा और पल्हाया शीर्षक लेख, जनपद खण्ड १, अंक २, पृ० ७१।

[2] जौ के छोटे-छोटे अंकुर घूँघा कहाते हैं। वे जौ नागपंचमी (श्रावण शुक्ला ५) को सरवों में बोये जाते हैं। घूँघों को सलूने के दिन बहिनें भाइयों के कानों पर रखती हैं।

(३) **रुकमिनी मल्हार**—इस मल्हार में रुक्मिणी के विवाह का वर्णन किया जाता है। मल्हारों में प्रायः **माइ** (सं० मान्ट) अपनी **धीअ** (सं० दुहिता > पा० धीता > प्रा० धीआ > धीअ = पुत्री) को और धीअ अपनी माइ को सम्बोधित करके अपनी बात कहती है।

"अरी मइया मोइ न सुहावै सिसुपाल,
मेरे तौ पति कृष्ण जी।
मैं न करूँगी बरु दूसरौ,
अरी मइया मन में बसे हैं गोपाल॥"

"अरी बेटी कान्हु है ग्वालु गँवारु, राजन की तू तौ लाड़िली।
छलिया सुनि राख्यौ मैंनैं नन्द को जी, अरी बेटी छलिकैं हरी हैं ब्रजनारि;
राजनु की तू तौ लाड़िली।"

(४) **राधाकिसन मल्हार**—इस मल्हार में राधा और कृष्ण का पारस्परिक प्रेम और उनकी वेशभूषा तथा रूपरंग का वर्णन किया जाता है। ऐसी मल्हारों का मुख्य रस शृंगार होता है—

देखौ री मुकट झोके लै रह्यो।
लै रह्यौ ज़मुना के तीर॥
का ओढ़ैं रानी राधिका जी और का पहरैं घनस्याम।
चूँदरि ओढ़ैं रानी राधिका जी एजी कोई सूईपाग[1] घनस्याम॥

स्त्रियाँ झूलों पर झूलती हुई मल्हारें गाती हैं। सावन की हरियाली तीजों के दिन ब्रज प्रान्त की किशोरियों और युवतियों का उल्लास वाणी से फूटकर वायुमण्डल में गूँज उठता है। झूले के जोर के झोटे **सरक** या **पेंग**[2] कहाते हैं। झूले पर पेंग बढ़ती हुई स्त्रियों को मल्हार में 'एजी कोई' का पुट प्राण देता है।

(५) **चम्पादे मल्हार**—जोगी वेश में गोपीचन्द को देखकर जो दुःख बहिन चम्पादे को होता है उसका वर्णन **चम्पादे मल्हार** में किया जाता है—

देखि फकीरी भइया तेरे भेस की जी,
ऐजी कोई नैनन बरसत नीर।
रतनकुमरि-सी रानी तेरे महल मैं जी,
एजी कोई कैसैं धरैगी धीर॥

(६) **निहालदे मल्हार**—लोक वार्ता प्रसिद्ध है कि निहालदे आल्हा-ऊदल की बहिन थी। वह सखियों के साथ हरियल बाग में झूला झूलने गई थी। सुल्तान ने उसको घेरना चाहा, लेकिन वह किसी प्रकार भाई की सहायता से मुगल के चंगुल से बचकर आ गई। उसी रात को उसके पिता ने उसका ब्याह कर दिया।

इसी लोक-कथा का वर्णन निहालदे नामक मल्हार में रहता है—

---

[1] सूई पाग = सूए (शुक) के रंग की पाग अर्थात् हरी पगड़ी।

[2] पुरुष जब झूले की पटली पर खड़ी दशा में अपने आप पेंग बढ़ाता है, तब वे लम्बी-लम्बी पेंगें मचक कहाती हैं। झूले में रस्सी बाँधकर भी पेंगें (सरकें) बढ़ाई जाती हैं। वह रस्सी भी 'सरक' कहाती है।

"सामन आयौ अम्मा मेरी राँगिलौ जी।
एजी कोई आई हरियाली तीज।
झूलन जाऊँ चम्पा-बाग मैं जी॥"

विशेष—मल्हार राग की भाँति 'निहालदे' नाम का एक लोक-राग भी प्रचलित है। निहालदे-राग का उदाहरण निम्नांकित है। पुरुष भी निहालदे राग गाते हैं।

स्त्रियों की निहालदे

"राखियौ री लाज मेरी सरन गहे की।
कौननैं छायौ अम्मा मेरी घौंसला जी;
कोई कौननैं छायौ पिया परदेश
कोई कौननैं छायौ। राखियौ० ॥
चिरियन छायौ बेटी मेरो घौंसला जी
कोई बेटीनैं छायौ पिया परदेस ॥ राखियौ० ॥"

पुरुषों की निहालदे

"इतनी सुनिकैं नाऊ, का कहै मेरी सुनौ जी नरसी बात ॥
सिरसागढ़ में एकु साहु है जी जाय सबु जानै गुजरात ॥"

(७) **चँदना मल्हार**—लोक-कथा के अनुसार चँदना एक सेठ की पुत्री थी। वह समला सुनार से प्रेम करती थी। चँदना का पति जोगी का वेश रखकर सुनार के यहाँ जाता है और चँदना से भिक्षा में नौलखा हार ले आता है। ससुराल पहुँचने पर चँदना को उसका पति उसी हार को देता है। चँदना मल्हार में यही वर्णन है—

"आधी बिखे पै चँदना चलिदई जी
एजी कोई करि सोलह सिंगार।
जाइ जगायौ समला सुनार कौ जी॥"

§११६७—कुछ व्यक्तियों से सम्बन्धित सावन के गीत—

(१) **बींझा**—बींझा नाम की माई और उसके भानजे के पारस्परिक प्रेम के सम्बन्ध में बींझा गीत गाया जाता है।

"बींझा माई कैं आये भानजे"
और कहा रे आदर लैउँ।
बींझा मारू सोरठ "भूले जी राज॥"

(२) **चन्द्राबलि**—चन्द्राबलि नाम की लड़की को कुछ मुगल घेर लेते हैं। उस समय वह लड़की अपना सन्देश चील द्वारा पिता और ससुर के पास भेजती है। पिता और ससुर चन्द्रावलि को मुगलों के चंगुल से छुड़ाने का पूरा प्रयत्न करते हैं, परन्तु असफल रहते हैं। तब चन्द्रावलि अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आग में जलकर भस्म हो जाती है। इसी लोक-कथा के आधार पर चन्द्रावलि नाम के गीत प्रचलित हैं।

"गलिन गलिन मुगला फिरैं,
और छज्जेन फिरत पठान,
घेरि लई चन्द्राबली-जैसी राजकुमारि ॥"

(३) **मानौ गूजरी**—पानी भरने के लिए गई हुई 'मानौ' नाम की गूजरी को मुगल पकड़ लेते हैं। वह सतीत्व की रक्षा के लिए पूरा प्रयत्न करती है और अन्त में सफल भी होती है। इस लोक-कथा से सम्बन्धित विशेष गीत **मानौगूजरी** कहाते हैं।

"सोने की लाइ दै री मइया गागरी
कोई पनियाँ भरन हम जायँ मानौगूजरी।"

(४) **कलारिन**—कलारिन अपने पति के लिए दोपहरी की धूप में पानी लेने कुएँ पर जाती है, वहाँ एक यात्री पानी पीने के लिए आ जाता है। उन दोनों की बातों का वर्णन **कलारिन** नाम के गीतों में रहता है।

"अरी कलारिन चन्दा की चकमक कोर,
प्यारी टीक दुपहरी पानी नीकरी।"

(५) **नटिनी**—एक राजा की रानी नट पर मुग्ध होकर नटिनी बन जाती है। नटिनी का जीवन बिताने पर उसे रानीपन की याद आती है और **बिसूरती** है अर्थात् मन ही मन दुखी होती है। नटिनी गीत में यही वर्णन है—

"ननद भवज कौ है संग पनियाँ भरन दोऊ नीकरी जी महराज।
नाचै नट अनी-अनी भाँति मुरकि बजावै अपनी बाँसुरी जी महराज॥"

(६) **भैनभइया**—इस गीत में बहिन भाई के लिए पँचरंग पाग बनवाती है। पाग पहने हुए भाई को लोग जब देखते हैं तब उसे नजर लग जाती है। नजर दूर करने के लिए बहिन-भाई पर राई-नौंन उतारती है।

"कातुंगी न्हैनौं-न्हैनौं सूत, काति बुनाऊँ पँचरंग पागड़ी जी महराज।
पहरिंगे (भाई का नाम लेकर) से बीर पहरि चलिगें लोभी-चाकरी जी महराज॥"

(७) **मारूजी**—"आयौ सामन मास करेला मारू जी।
मारू जी भूला डरइयौ चम्पा बाग में जी राज॥"

(८) **बनजारा**—एक राजा की बेटी किसी बनजारे की बाँसुरी और बैन को सुनकर मुग्ध हो जाती है। बनजारे के घर में उसे नौकरानी बताया जाता है। इस अपमान के कारण वह आत्मघात कर लेती है। यही 'बनजारा' गीत में वर्णित है।

"काए की तेरी बाँसुरी रे आसिक बनजारे
काए कौ तेरौ बैनु जी।
हरे बाँस की बाँसुरी री राजा की बेटी
सौंने कौ मेरौ बैनु जी॥"

(९) **मनरा या चूड़ौ**—इस गीत में एक मनिहार किसी ननद की भौजाई को चूड़ा पह- ाने जाता है, किन्तु उसे कोई रङ्ग पसन्द नहीं आता। **मनरा** (मनिहार) या **चूड़े** में यही र्णन है।

"गलिन गलिन मनरा फिरै
अरी बीबी मनरा कूँ लेउ बुलाइ।
चूड़ौ तौ मेरी जान चूड़ौ तौ मेरे मन बसौ।"

(१०) **राँझा**—इस गीत में राँझे (हीर नाम की स्त्री से प्रेम करनेवाले एक पुरुष का नाम) के प्रेम का वर्णन रहता है। 'राँझा' ढोला की भाँति लोक-भाषा का मौखिक महाकाव्य है जिसकी नायिका हीरो या हीर है और नायक राँझा। राँझा नाम के नायक से सम्बन्धित मुक्तक गीत भी '**राँझा**' ही कहाते हैं। 'ढोला-मारू' की भाँति ही लोक में हीर-राँझे की भी प्रेम-कथा प्रसिद्ध है।[1]

(११) **धोबी**—

"उल्ली पारि धोवै धोवती,
लहरिया मेरौ भीजैगौ।
पल्ली पार सुई पाग,
लहरिया मेरौ भीजैगौ॥"

§११६८—पक्षियों से सम्बन्धित गीत—

(१) **मोरा**—एक स्त्री बाग में पानी भरने जाती है। वहाँ मोर को देखती है और फिर उसे पकड़वाकर मँगा लेती है। यही मोरा गीत में वर्णित है।

मोरा गीत

"भर भादौं की रैनि अँधेरी राजा की रानी पानी नीकरी जी।
काए की गगरी रे मोरा, काए की लेज[2], काहे जड़ाऊ धन की ईंडुरी जी॥"

(२) **कागा**—बहिन कउए को देखकर भाई के आगमन का सगुन समझती है और कउए से कहती है कि भाई आता हो तो उड़ जा। प्रातःकाल घर पर बैठकर कउआ बोले तो उससे स्त्रियाँ कहती हैं कि—"कोई आबतु होइ तौ उड़िजा।" कउए का तुरन्त उड़ जाना प्रिय के आगमन का सूचक है।

---

[1] पंजाब में हीर और राँझे का जन्म हुआ था। हीर स्याल जाति के मुसलमान के घर झंग नाम के प्रांत में हुई थी। राँझा खेड़ा जाति का मुसलमान था। वह तख्तहजारे में पैदा हुआ था। राँझा हीर के गुणों और रूप-सौंदर्य पर मुग्ध हो गया था और उसका सच्चा प्रेमी था। 'राँझा' नाम के गीतों में यही लोक-कहानी गायी जाती है।

[2] लेज=रस्सी।

कागा गीत

"उड़ि जा रे कागा, उड़ि चौं न जा रे।
आजु बिरन[1] घर आइऐ।
कागा बिचारौ उड़न न पायौ
तौ जूँ बिरन घर आइऐ॥"

§११६६—वस्तुओं से सम्बन्धित गीत—

(१) **हिंडोला**—सहेलियों सहित राधा को कृष्ण हिंडोले पर झुलाते हैं। यही इस गीत में वर्णित है—

"हिंडौलौ कुंज-बन डारौ रे।
झूलन आई राधिका प्यारी रे॥"

(२) **सिंदौरा**—इस गीत में सिंदौरा का वर्णन रहता है। सावन में मा अपनी बेटी के लिए और सास अपनी बहू के लिए कपड़े, बिन्दी, चूड़ी, मँहदी और मिठाई आदि सुहाग की चीजें भेजती है। उन्हें **सिंदौरा** कहते हैं।

"आज दौज कल्ल तीज है सिंदौरा रे।
कोई परसों है गलगल[2] चौथ॥"

(३) **महँदी**—इस गीत में बहिन महँदी पीसकर भाई के हाथ रचाती है और **मनखत**[3] (हर्ष) मानती है। भाई के रचे हुए हाथों को सुसराल में जब साली सलहज देखती हैं तब उपहास करती हैं। महँदी गीत—

"महँदी के लम्बे-चौड़े पात पपइया बोलौ।
सूँति मँगाई मलिया हात पपइया बोलौ॥"

(४) **चकई-भौंरा**—इस गीत में भाई द्वारा चकई-भौंरा घुमाने का वर्णन मिलता है।

(५) **अचरी**—वर्षा और बादलों के स्वागत और आगमन के सम्बन्ध में 'अचरी' नाम के गीत गाये जाते हैं। इन्हें स्त्रियाँ ही गाती हैं।

"कौन दिसा बदरा उठे री, अरी सासुलि कौन दिसा मैं बरसन हार।
रँगिदै गुलाबी-लाल, रँगिदै केसरिया-लाल चूँदरी जी॥"

(६) **नीबरिया**—एक स्त्री के आँगन में नीम का पेड़ खड़ा है। उसके देवर और ननद ने उसके पत्ते तोड़ लिये हैं। इस पर भौजाई ने ननद को सुसराल भेज दिया है और देवर को लम्बी नौकरी पर।

नीबरिया गीत

"मेरे आँगन नीबरिया को पेड़, कौनैं सताई
हरियल नीबरी जी महराज॥"

---

[1] बिरन = भाई।
[2] सावन मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी गलगल चौथ कहाती है।
[3] 'मनखत' का विपर्यय 'बिलग' प्रचलित है।

§११७०—**महीनों से सम्बन्धित गीतों के नाम**—

(१) **बारहमासी**—इस गीत में किसी महान् व्यक्ति के जीवन की गाथा बारह महीनों में विभक्त करके गाई जाती है।

"चैत पाछिले पाख राम नौमी कूँ जनम लियौ।
अवधपुरी सुखधाम सखिनि मिलि मंगलचार कियौ।
खबरि जब जसरत नैं पाई।
दिये दान गजराज गऊ दिन थोरे की ब्याई॥
हरीहर सुमिरौ रे भाई। जपिवे कूँ स्रीराम
न्हान कूँ स्रीगंगे माई॥"

(२ **चौमासौ**—इस गीत में असाढ़, सावन, भादों और क्वार के महीनों का वर्णन किया जाता है।

(३) **झाँझी**—क्वार सुदी दसवीं से पूर्णमासी तक लड़कियाँ छेददार एक मलरिया में छोटा सा दीपक रखकर घर-घर **झाँझी** (झँझी) नाम के गीत गाती फिरती हैं। मिट्टी की मलरिया भी **झाँझी**[1] कहाती है। लड़के **टेसू** नाम के गीत गाते हैं। टेसू के गीतों में टेसूराय की गायों और धन, सम्पति एवं वैभव का भी वर्णन रहता है।

झाँझी का गीत

"झाँझी के रे झाँझी के; फूल पचासी के।
सरमन त्यारी डाँड़ी, महोवा त्यारे फूल॥"
"बाबा जी के चेली-चेला भिच्छा माँगन आये जी।
भरि चुटकी मैंनैं भिच्छा डारी चूँदरिया रँगि लाये जी।
चूँदरिया के औरैं-ढोरैं चार मोती पाये जी॥"

टेसू के गीत

"इमली की जर में निकरी पतंग।
नौसै मोती नौसै रंग।"
"टेसू की गइयाँ चकपैदरियाँ,
सोलह ढला भुस खाइँ।"

§११७१—**होली के दिनों में गाये जानेवाले गीत**—होली के उल्लास और मनो-विनोद का आरम्भ **फुलैरा दौज** (फाल्गुन शुक्ला द्वितीया) से ही हो जाता है। इस दिन कन्याएँ **फुलैरा** (गीत-विशेष) गाती हुई घर-घर फूल देती फिरती हैं।

---

[1] लोककथा प्रसिद्ध है कि जब बभ्रुवाहन कुरुक्षेत्र में कौरवों की सहायता के लिए चला था तब मार्ग में नरकासुर की कन्या झिंझी से उसका प्रेम हो गया था। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण वेश धरकर बभ्रुवाहन से दान में उसका सिर माँग लिया और तीन लकड़ियों के ऊपर रख दिया। वियोग में झिंझी ने प्राण त्याग दिये। श्रीकृष्ण ने दोनों की मूर्तियाँ बनाकर दोनों का विवाह कर दिया। टेसू बभ्रुवाहन का और झाँझी झिंझी की प्रतीक है।

(१) **बालिबलूरी**—गाँव की होली में आग लग जाने पर लोग वहाँ से चिनगारी लाते हैं। उस चिनगारी से स्त्रियाँ अपनी **घरगुली** (घर की होलो) की **गूलरी** (गोबर की बनी हुई छेददार अर्धचन्द्राकार वस्तु) और **ढार-तरवार** (गोबर की बनी हुई ढालें और तलवारें) जलाती हैं। उसकी आग में जौ की बालें भूनती हुई जिस गीत को गाती हैं, वह **बालिबलूरी**[१] कहाता है।

"बालिबलूलरियाँ जौ की लामनियाँ।"
(घर में किसी लड़के या बड़ी उम्र के आदमी का नाम लेकर) मैंनि
बुलाइकैं जौ की लामनियाँ॥

(२) **चाँचरि**—स्त्रियाँ होली के दिनों में गलिहारों में मण्डली बनाकर घूमती और नाचती हुई ढोलक की ताल पर **चाँचरि** (सं० चर्चरी[२] > प्रा० चच्चरी[३] > चाचरी > चाँचरि) नाम का गीत गाती हैं। कबीर बीजक और जायसीकृत पद्मावत में 'चाँचर' शब्द का उल्लेख गीत के नाम के रूप में हुआ है जो होली और फाग से सम्बन्धित है।[४]

आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चर्चरी को गान-विशेष ही बताया है।[५] कालिदास कृत 'विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थांक में उत्तर प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश भाषा के कई चर्चरी पद पाये जाते हैं।

स्त्रियों की मंडली जिस उल्लास और उछल कूद के साथ 'चाँचरि' गाती है, उसी उमंग से पुरुषों की टोली ढप बजाती हुई और उछलती-कूदती हुई '**बसन्त**।' गीत गाती है। बसन्त ऋतु में गाये जानेवाले गीत 'बसन्ता' कहाते हैं।

(३) **पुरुषों का बसन्ता**[६]

होरी आई रे बसन्ता ढपु लै-लै
ढपु लै लै, मिरदंगु लै-लै

---

[१] डा० सत्येन्द्र जी ने इस गीत का नाम **बालि** लिखा है।
डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ३२६।

[२] हर्षदेवकृत रत्नावली नाटिका (अंक १) में मदनमहोत्सव का दृश्य इन शब्दों में बताया गया है—"पौराणासमुच्चरति चर्चरी ध्वनिः।"

[३] पारंभिय चच्चरीगीया
सुपासनाहचरित, सं० पं० हरगोविंददास त्रिकमचन्द शेठ, १९१८-१९, पृ० ५५।

[४] फगुआ लियौ छिनाइकैं बहुरि दियौ छिटकाय
चाँचर, कबीर साहेब का बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, पो० हरक, जिला बाराबंकी सं० २००७, पृ० ८४।

[५] फाग करहिं सब चाँचरि जोरी।
डा० माताप्रसाद (सम्पा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत, ३५२।५
अपभ्रंश में जिनदत्त सूरि की लिखी हुई 'चर्चरी' प्राप्त हुई है। उसके टीकाकार (जिन उपाध्याय) ने भी बताया है कि यह भाषानिबद्ध गान नाच-नाचकर गाया जाता है।
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : लोक साहित्य का अध्ययन, जनपद खण्ड १, अंक ३, पृ०

[६] चैत बसन्ता होइ धमारी।
डा० माताप्रसाद (सम्पा०) : जायसी ग्रंथावली, पदमावत, ३५३।१

(४) **झुमका**—यह होली के दिनों में ही स्त्रियों द्वारा गाया जानेवाला गीत है, जो नाचनाचं-र गाया जाता है। यह मंडली-गीत ही है।

(५) **होरी**—होरी नाम के गीत कई रागों में गाये जाते हैं, लेकिन उनके विषय रंग, गुलाल, पिचकारी आदि होते हैं। उनमें राधा और कृष्ण अथवा गोपी और कृष्ण के होली खेलने का वर्णन होता है।

होली नाम के गीतों को स्त्री और पुरुष दोनों गाते हैं। होली के गीत कई तरह की **राहों** (तर्जों) में गाये जाते हैं।

राजा बलि के द्वार मची होरी, राजा बलि के।
कौन के हाथ रँगीलौ ढपु सोहै,
तौ कौन के हाथ गुलाब की छड़ी॥ राजा बलि के॥

*　　　*　　　*

रंग मैं कैसैं होरी खेलूँ री जा सामलिया के संग।

§११७२—तहसील सादाबाद के गाँवों में 'होरी' गाने के साथ **धपंग** बजती है और नाच भी होता है। मंडली बनाकर पुरुष नाचते हैं। उसे **धपंग नाच** कहते हैं। बरसाने की स्त्रियाँ फागुन सुदी नौमी या दसवीं को नन्दगाँव के आदमियों पर डंडे मारती हैं। आदमी उनकी चोट लोहे की ढालों से रोकते हैं। वह डंडेबाजी **हुरंगा** कहाती है। नन्दगाँव और बरसाने का हुरंगा प्रसिद्ध है।

संस्कारों तथा लोकाचारों से सम्बन्धित गीत

§११७३—गर्भाधान संस्कार से लेकर मृत्यु तक के लोकाचार प्रायः गीतों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। उनमें **जन्म, मुंडन, चटनौ** (अन्नप्राशन), **कनछेदन, जनेऊ, ब्याह** और **गमी** (मृत्यु) के समय बहुत से लोकगीत स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। ये **नेगुले** या **टेउले के गीत** कहाते हैं। स्त्री को गर्भ रह जाने के अर्थ में **पाँव भारी हौंनौ** मुहावरा प्रचलित है। गर्भवती होने को **पेट रहनौ** भी कहते हैं।

§११७४—**जन्म के गीत** (१) **नाड़र**—यह गीत पुत्र-जन्म के दिन सर्वप्रथम गाया जाता है। इसे लोकगीतों में मंगलाचरण-जैसा समझिये। परमेश्वर, धरती माता, गंगामाई, सब देवी-देवता, अऊत-पितर और बड़े-बूढ़ों आदि के नामों सहित **नाड़रगीत** गाया जाता है—

नाड़रगीत

पनमेसुर से दीमानु खड़े हैं यौं काए की संका।
भुमिया भमानी सबु ही खड़े हैं तौ यौं काए की संका॥

(२) **बै**—यह गीत बैमाता (सं० विधिमाता) के स्वागत तथा शुभागमन के लिए गाया जाता है। बै गीत को **जैमा या सिक्का** (सगाई) और लगुन-ब्याह में भी स्त्रियाँ गाया करती हैं।

बै गीत

आऔ बै आऔ बै।
पइयाँ परति हूँ, लीलरिया करति हूँ॥

पूत कौ जनमु बहू कौ आमनु—
जौ बै देइ तौ पाइऐ ॥

(३) **सार**—किसी गर्भवती स्त्री का पति सार-पाँसे (एक खेल) खेलने में व्यस्त है। स्त्री के पेट में **जन्ति की पीर** (जनन पीड़ा) हो रही है। स्त्री के बुलाने पर वह घर आता है और समाचार जानकर तुरन्त **दाई** (सं० धात्रिका > धाइआ > धाई > दाई) को लिवाने चला जाता है और उसे बड़े सत्कार से लाता है। **सार गीत** में यही वर्णन है।

"अरे राजा रे अरे राजा सार खिलन्ते (जच्चा के पति का नाम लेकर)
कहा सार खेलियै अनियाँ।
सार तौ धारिऐ उठाइ, लई धनि कंठ लगाइ,
कही समझाय अहो अनियाँ।"

(४) **रनझाँझन**—इस गीत में पुत्रजन्म की प्रसन्नता में बधाई बजने और दान करने का वर्णन रहता है।

"बधाई बाजी नन्द महल मैं।
बाबा नन्द खिरक मैं ठाड़े देत गऊन के दान।
कारी कबरी धौरी धूमरि देत बुलाइ बुलाइ॥
बाबा नन्द हाट मैं ठाड़े सालू[1]-मिसरु बिसाइँ,
जैसौ भावै पहरि ओढ़ि घर जाउ,
बधाई बाजी नन्द महल मैं॥"

(५) **सोहिलौ**—इस गीत में गर्भिणी की हालत पहले महीने से नवें महीने तक क्रमशः बताई जाती है और फिर दसवें मास की पुत्रजन्म की प्रसन्नता का वर्णन होता है। सूर और तुलसी ने भी गीत विशेष के अर्थ में ही **'सोहिलौ'** शब्द का उल्लेख किया है।[2] बड़े-बड़े सोहिले गीत **मंगल** या **सोहर**[3] भी कहाते हैं।

"पहिलौ महीना जब लागियै
वाकौ फूल गह्यौ फलु लागियै।
दूजौ महीना जब लागियै
वाकौ थुकथुकियन मन लागियै॥"

---

[1] विशेष प्रकार के वस्त्र; मिसरू = लहँगा विशेष। सालू = चद्दर विशेष।

[2] "गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो) मन आखर दै मोहिं।"—सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १०।४०
"सहेली सुनु सोहिलो रे।"
—रामचन्द्र शुक्ल (संपा०): तुलसी ग्रन्थावली भाग २, गीतावली, ना० प्र० स० पद २।

[3] "सोहर" एक छन्द का भी नाम है जिसका व्यवहार तुलसीदास जी ने 'रामललानहछू' में किया है।

(६) **दुलरी**—पुत्र-जन्म के तीसरे दिन **सोभर** (सूतिगृह) के द्वार की दीवाल पर बाहर की ओर गोबर से **सतिये** (सं० स्वस्तिक) और मिट्टी की हाँड़ी पर **चरुए** (सं० चरुक) रक्खे जाते हैं। तब दुलरी नाम का गीत गाया जाता है। इस गीत में पत्नी पति से दुलरी-(एक आभूषण) बनवाने की माँग करती है।

"ए जी हमैं है दुलरिया की सार।
दुलरि गढ़वाऔ चुँदरि रँगवाऔ न रे॥"

(७) **तिलरी**—इस गीत में पुत्र-जन्म के हर्ष में उपहार-स्वरूप नन्द भौजाई से **तिलरी**[1] (पूर्णपात्र[1] के रूप में लिया हुआ आभूषण विशेष) ले लेती है। यह गीत भी चरुए-सतिये के दिन गाया जाता है। इसे '**बदनि**' गीत भी कहते हैं क्योंकि इसमें ननद भाभी से **बदनि** (होड़=शर्त) बदती है कि पुत्र होने पर मैं तिलरी ले लूँगी।

"ननद भबज दौनौं पनियाँ कूँ चालीं,
आपुस मैं बदि लई होड़, अहो मन अपनौ।
जौ भाभी त्यारैं होइँ नँदलाला,
लैंउँ गले को तिलरी, अहो मन अपनौ॥"

(८) **रोचन और कुआ देहरी**

पुत्र-जन्म के दूसरे दिन जच्चा के **माइके** (माता-पिता के घर) में पुत्र पैदा होने का शुभ समाचार नाई के हाथ एक रुपया और भेली देकर भिजवाते हैं। उस समय क्रमशः **रोचन** और **कुआ देहरी** नाम के गीत गाये जाते हैं। समाचार की चिट्ठी में हल्दी की गाँठें भी रक्खी जाती हैं और रोली के छींटे भी लगाये जाते हैं।

रोचन गीत

"हरद गहगही बहुत चहचही,
नउआ बेगि कुंडलपुर जाउ, रुकमिनी के बाप कैं।
बैठे पाँचौ पंडवा छठे नरायन, नउआ के नैं करयौ है जुहारु[2],
रुचन[3] लैकैं आइयै।"

कुआ देहरी गीत

"कौन के घर मैं चौक पुरे हैं
तौ कौन के सतिये द्वार।

---

[1] पूर्णपात्र—शुभ समाचार लानेवाले के लिए दिया हुआ उपहार—मो० वि०। आनन्द-हर्ष के समय उपहार-स्वरूप प्राप्त की हुई वस्तु के लिए बाणभट्ट ने कादम्बरी में 'पूर्णपात्र' पारिभाषिक शब्द लिखा है। राजा तारापीड अपनी रानी से कहता है—'कदा मे तनयजन्ममहोत्सवानन्दनिर्भरो हरिष्यति पूर्णपात्रं परिजनः।"—कादम्बरी, पूर्व भाग अनपत्यातताविषादः, बंगला संस्क०, १८४७ शकाब्दे, पृ० २४६।
"वर्द्धापकं यदानन्दादलङ्कारादिकं पुनः। आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णानकंच तत्।" इति हारावली।

[2] जुहारु=प्रणाम।

[3] रुचन=रोचन, रोली।

बबुल[१] के अँगना में चौक पुरे हैं
तौ ससुर के सतिये द्वार ॥
समधिन ते यौं कहियो जाइ, त्यारी बेटी नैं जाये नँदलाल।"

(३) **न्यौतौ**—इस गीत में पति जच्चा से पूछता है कि किस-किस व्यक्ति को निमन्त्रित किया जाय ? जच्चा अपने **पीहर** (सं० पितृगृह) वालों के नाम गिना देती है; लेकिन पति अपने कुनवा (कुटुम्ब) के लोगों को न्यौता दे देता है। यह बात जब जच्चा को मालूम पड़ती है तब वह ससुराल के लोगों को **घरलूटरिया** (घर लूटनेवाला) और **खउआ** (अधिक खानेवाला) बताती है। वह उनके प्रति **नौंक-टौंक** (व्यंग्य) भी मारती है।

न्यौतौ गीत

"गोरी ! आजु छठी की है राति,
कहौ कौन-कौनएँ न्यौतिकैं आउँ।"

§११७५—**छठी के दिन गाये जानेवाले गीत**—छठी के दिन गाये जानेवाले गीत छठी के दिन से बाद में **दस्ठौन** (नामकरण-संस्कार) तक प्रति दिन गाये जाते हैं। उनके नाम यहाँ अकारादि क्रम से लिखे जाते हैं।

(१) **कठुला**—इस गीत में सास जच्चा के ससुर से **पोते** (सं० पौत्र) के लिए कठुला (गले का एक भूषण) बनवाने के लिए कहती है।

"कठुला गढ़ाऔ बाबा राय।
बाबा गढ़वामैं, दादी देइगी पुवाय ॥"

(२) **कढ़ाउली-चमंचा**—इस गीत में जच्चा को खिलाई जानेवाली लपसी बनाने का वर्णन रहता है। वह लपसी कढ़ाई में बनती है और चमचा से घुटती है।

कढ़ाउली-चमंचा गीत

"काए की है कढ़ाउली मेरी जच्चा।
अरी बुअ काए कौ चमंचा री हुसियार,
नखड़ो जच्चा।"

(३) **काजर**—छठी की रात को ननद काँसे के बेले पर काजल पारकर बच्चे की आँखों में लगाती है। इस नेग के बदले में बेला ननद को ही दे दिया जाता है। **काजर गीत** में इसी बात का वर्णन रहता है।

(४) **कौम्हरी**—भौजाई **कौम्हरी** (उबले हुए गेहूँ-चना) नाइन से बँटवाती है। नाइन भूल से ननद के यहाँ भी कौम्हरी दे आती है। भाभी अपने पति को भेजकर ननद के यहाँ से उन कौम्हरियों को मँगा लेती है। इस अनादर तथा ओछेपन का उचित उत्तर देने की भावना से ननद भाभी के यहाँ मोती भेजती है। **कौम्हरी गीत** में इसी घटना का वर्णन रहता है।

---

[१] बबुल=बाबुल, पिता।

कौम्हरी गीत

"सपने में देखीं कौम्हरी जी महाराज।
सो नाइन मेरी सब-सबके घर बाँटि,
ननद कौ घर छेकियै जी महाराज॥"

(५) **चकई**—इस गीत में बालक द्वारा दादी से चकई माँगने का वर्णन किया जाता है।

"ऐसौ बिचरौ है बालक बिन्दा रे।
खेलन कूँ माँगै चन्दा रे॥
दादी पै चकई माँगै मेरौ ललना।
बाबा पै माँगै खिलौना रे॥"

(६) **चहरका**—यह गीत छठी की रात को सब गीतों के बाद में गाया जाता है। इसमें स्त्रियाँ **कुफर फारती हैं** अर्थात् गालियाँ बकती हैं। सूर ने 'चहरका' का उल्लेख किया है।[१]

(७) **जगमोहन लुगरा**—छठी के दिन बालक की बूआ झगला-टोपी लाती है जिन्हें **छटूकरी** कहते हैं। छटूकरी के बदले में उसे लहँगा-डुपट्टा दिया जाता है। उस लहँगे को **लुगरा** और **डुपट्टे** को **जगमोहन**[२] कहते हैं। **जगमोहन लुगरा गीत** में इसी बात का वर्णन रहता है।

"राजे ननदुलि बात चलाइऐ।
राजे जौ त्यारैं हौंइ नँदलाल जगमोहन लुगरा दीजियै॥"

(८) **झुंझुना**—इस गीत में बाबा, ताऊ और चाचा आदि के द्वारा बालक के लिए **सोने** का झुंझना गड़ाया जाता है और उस झुंझने से दादी, ताई और चाची आदि बालक को खिलाती हैं।

"सोने कौ झुंझुना बाजनौ।
वाके बाबा नैं गढायौ झुंझुना,
दादी के लड़ैते खेलि रे॥"

(९) **दामोदरिया**—इस गीत में जच्चा के लिए **गारी** (गाली) गाई जाती है। इसमें जच्चा को **तेताल** (चंचल, चंट और लड़ाका) बताया जाता है।

(१०) **दुर्गा-सुर्गा**—एक पुरुष की दो स्त्रियाँ हैं जिनके नाम दुर्गा और सुर्गा हैं। इस गीत में उन दोनों का वर्णन है।

"एक पुरिखु जाकैं द्वै बड़ नारि,
एक दुर्गा एक सुरगदे।
दुर्गा बसति नंगर के बीच, सुरगा नंगर की सौम पै॥"

(११) **धतूरौ**—

"आगैं नाचै, पीछैं नाचै, कौन की सेजनु जाइ धतूरौ।"

---

[१] "आनन्दित भई गोपी गावति चहरके"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३०

[२] "यह माना जाता है कि जगमोहन नाम की साड़ी अथवा फरिया और लुगरा नाम का लहँगा रुक्मिणी के पितृ-गृह में ही था।"
—डा० सत्येन्द्र : व्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० १८६

(१२) **नरिंगफल**—इस गीत में नरिंगफल का वर्णन रहता है। यह एक काल्पनिक फल है जिसे खाकर स्त्रियाँ गर्भवती हो जाती हैं।

पुरुष अपनी पत्नी के लिए नरिंगफल लेने के लिए जाता है। नरिंगफल के पास हर समय एक लाख पहरेदार और सवा लाख कुत्ते रहते हैं। वहाँ एक लाख दीपक जलते हैं। नरिंगफल गीत में इसी का वर्णन है।

नरिंगफल गीत

"राजा हमैं है नरिंगवा की साद नरिंगफल लाइयै।
कौन सौ वाकौ पेड़ु कहाँ फल लागि है,
कौन जनैं नँदलाल नरिंगफल खाइऐ॥"

(१३) **पालनौ**—इस गीत में दादी, ताई और चाची सोने का पालना बनवाती हैं और बच्चे को झुलाती हैं।

"मैं पालनौ गढ़वाऊँ ललन कूँ।
जब मेरौ लाला बबा कहि बोलै,
दूरि ते बाबा बुलाइदऊँ ललन कूँ॥"

(१४) **पीपर**—जच्चा को **पीपर** (एक गर्म मसाला जो खुरदरी फली-सा होता है) खाने के लिए दी जाती है लेकिन वह उसे नहीं खाती। पीपर गीत में इसी का वर्णन किया जाता है।

"ठाड़े ससुर बिनती[1] करैं, बहू बड़े घरन की हौ धीय,
पियौ चौं न पीपरिया।"

(१५) **मनगुर**—इस गीत में ननद लपसी समझकर धोखे में गोबर खा जाती है और फिर **ओकती फिरती** है अर्थात् वमन करती है। वह भौजाइयों का नाम लगाती है।

मनगुर गीत

"मन गुर मन गुर द्वै मन मैदा करौ।
करौ ओ (सास का नाम लेकर) लापसी॥"

(१६) **लोरी**—बालक को गोद में खिलाते हुए लोरी नाम के गीत गाये जाते हैं।

लोरी गीत

"खुस हैकैं कुँवर तुम खेलौ मैं लुंगी लोरियाँ।
दादी के अँगना खेलियौ मैं लुंगी लोरियाँ॥"

(१७) **सौंठि**—जच्चा के खाने के लिए **हरीरा** (आटा, घी, गुड़, सोंठ, अजवाइन, जीरा आदि से बनी हुई पतली लपसी) बनता है। उसके लिए पति सब सामान स्वयं लादकर लाता है लेकिन सोंठ भूल आता है। उसे दुबारा ला देने का वचन देता है। यही **सोंठ गीत** में वर्णन किया जाता है।

"सौंठि में भूलि गयौ बहू अब लाइदुङ्गो री।
कान मैं धनियौ लायो री, नाक में जीरौ लायौ री॥सोंठि०॥"

---

[1] बिनती = (सं० विज्ञप्ति > बिण्णत्ति > बिनती)

(१८) **सोयौ**—इस गीत में बच्चे की दादी बच्चे के बाबा को सोते से जगाती है और **नेगुले** (नेक के गीत) गानेवाली स्त्रियों को पान, बताशे और तिल-चावल देने के लिए कहती है। इस गीत को **तिलचामरी** भी कहते हैं।

सोयौ या तिलचामरी गीत

"सौत्रौ कै जागौ ललन के बाबा गामनहारी राज घर चलीं।
गामन हारिन देउ तमोल, गोद भरौ तिलचामरी ॥"

(१६) **बिहाई या जच्चा**—इन गीतों में घर के स्त्री-पुरुष बच्चा पैदा होने के सम्बन्ध में अपने-अपने लोकाचार करते हैं और बदले में नेग पाते हैं। कुछ बिहाई गीतों में राम और लव—कुश के जन्म का वर्णन भी रहता है।

बिहाई या जच्चा

"भये हैं अजुध्या मैं राम रानी कौसिल्या कैं।
दाई आमैं ललन जनामैं, ललन जनाई नेग,
माँगे राजा जसरत जी पै।"

"सीया ठाड़ी पछिताइँ, कुस बन मैं भये।
जौ घर होतीं सासुलि हमारी, चरुये देतीं धरवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होते ससुर हमारे, बसनी[1] देते लुटवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होतीं नन्दुलि हमारी, सतिये देतीं धरवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होतीं जिठनी हमारी, पलिका देतीं बिछवाइ" ॥कुस०॥
जौ घर होतीं द्यौरानी हमारी, बिजनी[2] देती ढुरवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होते दिबर हमारे, तीर देते सँधवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होते पंडित हमारे, रासि देते गिनवाइ ॥कुस०॥
जौ घर होतीं सखियाँ हमारी, मंगल[3] देतीं गवाइ ॥कुस०॥

§११७६—**दस्टौन (नामकरण) के दिन गाये जानेवाले गीत**—बच्चे के नामकरण संस्कार पर तीन लोकाचार प्रधान रूप से होते हैं—पहले छोछक[4] पहना जाता है, फिर जच्चा चौक पर बैठती है और पंडित द्वारा बच्चे का नाम रक्खा जाता है। इसके उपरांत कूआँ पुजता है।

§११७७—**छोछक पहनते समय गाये जानेवाले गीत (१) लाड़ू-खिचरी**—इस गीत में जच्चा अपने माइके से लड्डू-खिचरी मँगाती है।

"तू तौ रे उड़ि उड़ि काग सुलाखने।[5]
उड़ि उड़ि पीहर जाउ, कहियो मेरी माइ,

---

[1] सं० वस्निका (सं० वस्न = विक्रय द्रव्य)—बसनी = थैली।

[2] सं० व्यजनिका > बिजनी = छोटा पंखा।

[3] सोहिला, सोहर या मंगल गीत।

[4] जच्चा के पीहर से कपड़े, बच्चे के लिए गहने और खिलौने, कतरी, लड्डू, खिचड़ी आदि वस्तुएँ आती हैं; वे छोछक कहाती हैं।

[5] सुलाखन = सुलक्षण, शुभ लक्षणोंवाला।

धियर माँगे लाड़ुये।
कहियो भवज[1] ते जाइ, नंदुलि माँगै खीचरी ॥"

(२) छोछिक—इस गीत में जच्चा छोछक मँगाने के लिए अपने भाई को चिट्ठी लिखती है।

"चिट्ठी लिख रही भैनि बिरन कूँ छोछिकु अच्छौ लइयौ रे।
सासु कूँ लहँगा लइयौ रे, ननद कूँ चूँदरि[2] लइयौ रे।
ससुर मेरौ बहुत बड़ौ सौकीन, स्वापा[3] सबज रँगइयौ रे ॥"

(३) पौमचा, महँमद, महुअर या पीयरो—ढाई गज की एक ओढ़नी होती है जो लाल-पीली रंगी होती है। उसे **पौमचा, महँमद, महुअर** या **पीयरो** कहते हैं। उसे ओढ़कर ही जच्चा चौक पर बैठती है। पौमचा गीत में जच्चा पति से पौमचा मँगाती है। पौमचे जयपुर के प्रसिद्ध हैं, अतः वे **जैपुरी** भी कहाते हैं।

पौमचा या महुअर गीत

"पिया जैपुर जइयौ जी, लइयौ हमकूँ जैपुरी।
धनि ! नाम न जानूँ री, कैसी कहिऐ त्यारी जैपुरी ॥
पिया ! ढिंग ढिंग ऊदी[4] रे, कै पीरी कहिऐ जैपुरी ॥"

§११७८—चौक पर बैठते समय के गीत—

(१) चौक—इस गीत में बच्चे सहित जच्चा के चौक पर बैठने का वर्णन होता है।

चौक गीत

"कहाँ रे बाजे बाजने, कहाँ रे घुरत निसान।
मथुरा बाजे बाजने, गोकुल घुरत निसान ॥
बैठी जच्चा चौक पै, होरिल[5] कंठ लगाइ।
आई सहोद्रा[6] आरतैं, झगरत अपनौं नेगु ॥"

(२) हिरनी—इस गीत में हिरनी के जौ चरने का उल्लेख है।

"का गुन सरसौं पीयरी और का गुन करुओ तेल।
कौन की है जिअ कुलबहू और कौन की है जिअ धीअ ॥
हिरनी जौ चरै ॥"

(३) आरतौ—जच्चा की ननद चौक पर बैठी हुई जच्चा का आरता करती है। उस समय **आरतौ गीत** गाया जाता है।

---

[1] सं० भ्रातृजाया > भवज > भभज = भाभी।
[2] मलमल का रंगीन या छपा हुआ दुपट्टा।
[3] साफा, सिर पर बाँधने का मुड़ाइसा।
[4] हलके बैंजनी रंग की। धनि = स्त्री (सं० धन्या > प्रा० धन्ना > धन्ना, धनि)
[5] पुत्र।
[6] सुभद्रा, श्रीकृष्ण की बहिन, बच्चे की बूआ।

"बुँद बुँदियन बरसैगौ मेहु, झनकारिन माँगर[1] आरतौ।
तुम बैठौ जच्चा रानी चौक, त्यरी मानि[2] करिङ्गी आरतौ ॥"

§११७६—**कुआ पुजते समय के गीत—**

(१) **बरुन**—यह गीत कुआ पुजते समय गाया जाता है। जच्चा खुले हुए केशों से कुआ पूजती है (सं० बरुण>बरुन)।

"कुअटा की आवरिया बाकी महँमदि मैली होइ ॥"

(२) **बेंदी**—जच्चा कुआ पूजकर लौटने पर शृङ्गार करती और बिन्दी लगाती है। तदुपरान्त सास-जिठानी के पैर छूती है। उस समय **बेंदी गीत** गाया जाता है। इसमें जच्चा द्वारा बिन्दी लगाई जाती है।

"ए बो आठ जिठानी नौ द्यौरानी बेंदी देउ गढ़ाइ।
सुनत हौ, बेंदी देउ गढ़ाइ।"

(३) **बधायौ**—कुआ पुज जाने के बाद घर आ जाने पर **बधायौ गीत** गाया जाता है। विवाह में भाँवरों के दिन से लेकर माँड़वा सिरने तक बधाये[3] ही गाये जाते हैं।

बधायौ गीत

"सुभ की घड़िन मेरे अनँद बधायौ जी राज।
ससुर बिहाई म्हारी सासु कहाई जी राज ॥"

(४) **खेल के गीत**—मनोरञ्जन के लिए गाये जानेवाले फुटकर **गीत खेल के गीत** कहाते हैं। ये सबसे पीछे गाये जाते हैं।

"रे कहूँ देख्यौ कन्हइयाँ मुकटधारी।
गोकुल ढूँढ्यौ बिंदावन ढूँढ्यौ,
मथुरा ढूँढ़ी सारी रे ॥ कहूँ ॥"

§११८०—**मुंडन के गीत—(१) घोड़ी**—घोड़ी नाम के गीत मुंडन, कनछेदन और ब्याह में गाये जाते हैं।

"हरियाली घोड़ी बिदुकै रे लाला, साजन के द्वार पै।
सिर तेरे ककरे जी चीरा, साजन के द्वार पै।
तेरी लड़ियाँ लहरे लैरहीं लाला, साजन के द्वार पै ॥"

(२) **बरना**—बरने (दूल्हे) की वेश-भूषा और कार्य-प्रणाली को व्यक्त करनेवाले गीत **बरना** या **बन्ना** कहाते हैं।

"अधरपगधरनी कौ बरना रे।
बना तेरे कान मोती सोहै, बना तेरे गल में तोड़ा सोहै।

---

[1] मांगल, मंगलकारी।
[2] जच्चा की ननद या बेटी।
[3] "नित नव मंगल मोद बधाये।" —तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, २।१।१

सबज रँग केसरिया बरना रे ॥ अधर पग० ॥"

× × ×

"आजु मेरे लाड़िले नैं धनुस उठाइ लीयौ।
अवध कूँ जइयौ बरना, बाबाऐ संग लइयौ।
तोरि धनुस बारी सीया जी ऐ ब्याहिलइयौ ॥ आजु० ॥"

कनछेदन के गीत

(१) कनछिदनौ—इस गीत में नानी सोना मंगाकर घेवते के लिए कान की बाली बनवाती है। कनछेदन आदि में चलनवाली स्त्रियाँ कुछ नाज और कपड़े लेकर गीत गाती हुई आती हैं, उसे **चावआना** कहते हैं।

"मथुरा-सी नगरी जइयौ, पियरो-सौ सौनौं लइयौ।
समुद के मोती लै लला के कान बिंधइयौ।"

§११८१—**विवाह से सम्बन्धित गीत**—किसी के ब्याह में व्यवधान डालनेवाला **भाँजीमारा** कहाता है। इस प्रकार की व्यवधान पूर्ण बुराई-निन्दा को **भाँजी** कहते हैं। ब्याह (विवाह) के सिलसिले में मुख्तया चार रस्में की जाती हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—

(१) **सगाई**—इसे **जैमा**, **सिक्का**, **टीका**, और **तिलक** भी कहते हैं।
(२) **लगुन** (सं० लग्न)।
(३) **ब्याह**।
(४) **गौना** (सं० गमन>गवन>गौना)।

§११८२—**सगाई के गीत**—**बै**, **हस्तियरा**, **घोड़ी**, **बरना** और **खेल के गीत** ही क्रमशः सगाई पर गाये जाते हैं। इनमें हस्तियरा को छोड़कर पहले सभी का वर्णन कर चुके हैं। हस्तियरा गीत **गजहस्तियरा** भी कहाता है। इस गीत में **बरने** (दूल्हे) को गजहस्तियरा (हाथी) बताया जाता है (सं० वरणक>बरतअ>बरना, बन्ना)।

"ए बो कौनस कौ गजहस्तियरा, कजरी बन डोलै ?
ए बो कौनसे की लड़[1] सोहै, कुँवरि-सिंहासन सोवै ?"

§११८३—**लगुन के गीत**—**स्यामघना**—लड़कीवाले के यहाँ से लगुन (सं० लग्न) लेकर जो पुरोहित और नाई आते हैं वे **नेगी** कहाते हैं। जिस समय नेगी जिमाये जाते हैं उस समय **स्यामघना गीत** गाया जाता है।

"नेगी आये दूरि के, सुनि स्यामघना।
बोलौ भइया बन्द कूँ, सुनि स्यामघना ॥
लपझप[2] पुरियाँ सिकावती, सुनि स्यामघना।
नेगिन कूँ धमकि[3] जिमावती, सुनि स्यामघना ॥"

§११८४—**लड़की की लगुन के गीत**—(१) **लाड़ी या बरनी**—ये गीत लगुन से

[1] लड़=(लाड़ो) बेटी, प्रिय पुत्री।
[2] शीघ्रतापूर्वक
[3] धरती पर जोर से पाँव मारते हुए अर्थात् जल्दी-जल्दी पाँव रखते हुए।

ब्याह तक प्रतिदिन गाये जाते हैं। इन गीतों में **लाड़ी** (प्यारी बेटी) की लगुन भिजवाने तथा उसे चौक की चौकी पर बिठाने का वर्णन रहता है।

"चंदन चौकी कुँवरि मेरी बैठी, केस लये छिटकाइ।
केस सम्हारौ मेरी बारी-सी लड़लड़ी[1] ॥"

(२) **केबड़ौ**—इस गीत में लड़की अपने बाबा और ताऊ आदि से केवड़ा माँगती है।

"ए मैं माँगति ही बाबा केबड़ौ।
ए मैं माँगति ही ताऊ केबड़ौ ॥
हम दिङ्गे लगुन सजाइ, न दिङ्गे केबड़ौ।
जाकी आवति उत्तिम ब्यारि, महँकतु आवै केबड़ौ ॥"

(३) **भौंरा**—इस गीत में लड़की की माता भौंरे से पूछती है कि—हे भ्रमर! तुम सर्वत्र घूमते हो। मुझे बताओ कि कौन सा जमाई तुम्हें अच्छा लगा है?

"भौंरा! कौन गलिन तुम मानियै?
मैं तोइ पूछति बारी के भौंर, कौन से जमाई त्यारे मन बसे?"

§११८५—**भात न्योतने को चलते समय के गीत**—जब बहिन भात न्योंतने के लिए अपने घर से भाई के यहाँ को चलती है तब **बाँयचरा** और **भात** नाम के गीत गाये जाते हैं।

(१)—**बाँयचरा**—

"मैं तोइ जहाँ कूँ पठऊँ तहाँ जाउ रे मेरे भइया बाँयचरा।
तू दौरौ मथुरा कूँ जाउ रे मेरे भइया बाँयचरा,
रानी के जादौंराय न्यौंत रे ॥"

(२) **भात**—भात न्योंतने के लिए बहिन एक रुपया और गुड़ की भेली ले जाती है। **सासुर** (सुसराल) के मनुष्यों को जब न्योंता दिया जाता है तब छोटे सरवा में हल्दी से रँगे चावल दिये जाते हैं। निम्नांकित **भात गीत** में इसी बात को बताया गया है।

"गुड़ की रे डेली अपनौ पीहरु नौंतूँ,
मन की सरइयाँ अपनौ सासुरौ।
काहे के काजैं गोरी पीहरु नौंतौ,
तौ काहे के काजैं अपनौ सासुरौ।
भात के काजैं अपनौ पीहर नौंतूँ,
तौ नौते के काजैं अपनौ सासुरौ ॥"

(३) **धामस-धूमस**—ब्याह में तेल चढ़ाने के लिए जिन पाँच या सात स्त्रियों के हाथ में कलाया बाँधा जाता है वे **गौरनी** या **हथलगुन** कहाती हैं। नौगमाँगर के दिन वे हथलगुनें जौ कूटते हुए **धामस-धूमस** नाम का गीत गाती हैं। उस दिन घर में बड़ी **चौल** (चहल्-पहल) रहती है।

---

[1] लाड़लड़ी, प्यार की बेटी।

"पहलौ रे फूलु ईसुरऐ दीजौ।
दूसरौ फूलु धरतीऐ दीजौ ॥
तीजौरा फूलु दाई माईऐ दीजौ।
चौथौरा फूलु दई पितरनु दीजौ ॥"

(४) **बाय बन्द**—रतजगे के दिन सन्ध्या के समय **कजैतिन** (बरने की माता) जब **बाय-बन्द** (सं० वायुबंध) मूँदती है तब **बायबन्द** नाम का गीत गाया जाता है।

"आँधी मेहा तुम हूँ न्यौते, चारि दिना मोइ बकसि देउ।
दई-देबता तुम हूँ न्यौते, चारि दिना मोइ बकसि देउ ॥"

§११८६—**रतजगे की रात को गाये जानेबाले गीत**—(१) **साँझलड़ी**—यह गीत रतजगे की रात को सबसे पहले सन्ध्या समय गाया जाता है। इस गीत में **साँझ** (सं० सन्ध्या) का स्वागत किया जाता है।

"ए मेरी साँझ लड़ी आइ झमारी,
तुम बिन लाड़ी न पौढ़ियै।"

(२) **बड़दीबला**—यह गीत दीपक जलने के समय गाया जाता है। इसमें बरने की मा बरने से कहती है कि तू दादी से दीया माँग ले, मैं उसे जलाऊँगी।

"सासु पै माँगौ बड़ दीबला, लाला जोरि धरूँगी थमसार।
दीयौ जोरि धरूँगी थमसार[1] में, जहाँ पौढ़ैगी पतुरिया नारि ॥"

(३) **तिलबा**—

"सई साँझ के तिलबा मेरी ननदी फटके आधी रात।
फटके जायँ तौ फटकौ ननदी नायँ तौ धरौ उठाइ ॥"

(४) **रजना**—इस गीत में उत्तान शृङ्गार भरा रहता है। स्त्रियाँ उच्च स्वर में ऐसी तान और उमङ्ग से 'रजना' गाती हैं कि सारा गाँव जग पड़ता है।

"मेरी जल्दी ते खबरि सुधि लीजौ रजना।
मरिगई मरिगई रजना, पीरी परिगई रजना ॥ मेरी० ॥
हर्यौ नगीना आरसी, उँगरी मैं दुखु देइ।
ऐसे के पालैं परी, जो हँसै न ऊतरु देइ ॥
कारी परिगई रजना ॥ मेरी० ॥"

(५) **टौंना**—इस गीत में बरना या बरनी की वेश-भूषा का उल्लेख होता है और नजर न लगने के लिए टौंना कराने की बात कही जाती है।

"रानी के जमइया मैं तोकूँ टौंना कराऊँ।
टौंना करि मैंने जामा भेजौ,
अरे हँसि पहरौ जमइया मैं तोकूँ टौंना कराऊँ।"

---

[1] वह स्थान जहाँ बहू सोती है।

(६) **सुहाग**—सुहाग नाम के गीत लड़की के सौभाग्य के सम्बन्ध में गाये जाते हैं। सगाई के दिन जब सिंदूर माँग में भरा जाता है तब पहली बार बरनी पर सुहाग चढ़ता है। उसके बाद लड़की प्रतिदिन माँग में सिंदूर लगाती है। इसलिए सिंदूर सुहाग का प्रतीक बन गया है। **सुहाग** नाम के गीतों में उसी का वर्णन रहता है। लड़के के व्याह में जब बहू घर आ जाती है तब दम्पति-मिलन के संबंध में भी सुहाग गाये जाते हैं।

"मेरौ डिबिया भरौ सुहागु अम्मा अच्छैं रखियो री।"

× × ×

"आजु सुहाग की राति, चन्दा तुम उगियौ।
चन्दा तुम उगियौ, सुरज मति उगियौ,
आजु रँगीली की राति, चन्दा तुम उगियौ॥ आजु सुहाग०॥"

(७) **महँदी (म्हेंदी)**—बरना या बरनी के हाथों पर महँदी रचाती हुई स्त्रियाँ महँदी गीत गाती हैं।

"देबर के पिछुवार, बारी लाला राचन महँदी, किन बई मेरे लाल ?
बे धन सूँतन जाय। बारी लाला जिनके बिछुआ बाजने मेरे लाल॥"

§११८७—**बिहान गीतों के नाम**—रतजगे से विवाह के दिन तक प्रातःकाल ४ बजे से जो गीत गाये हैं वे 'बिहान' कहाते हैं। बिहान के कई प्रकार हैं। उनके नाम यहाँ अकारादि क्रम से लिखे जाते हैं (सं० विभान>बिहान)।

(१) **कूकुरा**—

"अटरियन रामचन्द जी चढ़िगये,
जागौ जागौ ओ रजन के पूत,
अब झरि लाग्यौ है कूकुरा।"

(२) **खुटमेबा**—

"(किसी पुरुष का नाम लेकर) लाये खुटमेबा री।
अपनी बहून के आगैं कुरई खुट मेवा री॥"

(३) **गंगा**—इस गीत में शंकर का विवाह गङ्गा से होता है।

"आरस गङ्गा पारस जमुना,
बीच चन्दन कौ रूखु है,
डारि पलकिया ईसुर बैठे गौरा लई बुलाइकैं।"

(४) **गुड़**—इस गीत में गीत गानेवाली स्त्रियाँ गुड़ माँगती हैं, किन्तु **कजैतिन** (बरना या बरनी की माता) इधर-उधर घूमती है।

"गुड़ दै री मेरी सदा सुहागिल में तेरी राति जगाई।
गुड़ माँगू तब इत उत डौलै, ऐरावति वैरावति डोलै॥"

(५) चकचूँदरिया—

"चकचूँदरिया लगाऊँ (किसी पुरुष का नाम लेकर) तिहारी ओ आँखैं।
तुम लौठी लौठा सोइ रहै हक जागे सबरी रातैं॥"

(६) डौमिनी—

"डौम पहारू दै गये बाबा-ताऊ-दरबार,
अब झर लागौ ओ डौमिनी॥"

(७) तुलसा—

"ऐसी तुलसदे लाड़िली, श्रीकिस्न की बड़नार।
आमन आमन कहि गये, बीते हैं बारह मास॥"

(८) **दाँतुन**—इस गीत में यह उल्लेख है कि रुक्मिणी यशोदा के लिए समय पर दाँतुन नहीं लाई। इस कारण श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को उसके पीहर पहुँचा दिया है।

"ए हरिजू भई है सकारे की बार,
माइ जसोदा दाँतुन माँगियै।
ए बेटा माँगी है दिन द्वै चारि
गरब गहीली ऊतरु ना दयौ॥"

(९) **दूती**—इस गीत में देवी-देवताओं, सधवाओं और बरने के मुख धोने का उल्लेख है।

"एक भरी रे सरइया दूध की,
दई देबता तुम मुख धोइयौ,
कै दूती बोलैगी॥"

(१०) **दौहनियाँ**—इस गीत में प्रातः गाय दुहने का उल्लेख है।

"बाबा हरी गुन गाउ सकारे की दौहनियाँ[१]।
त्यारे रोग-धोग मिट जायँ सकारे की दौहनियाँ॥"

(११) मुर्गा—

"बोलि मेरे मुरगा कुकुड़ूँ कूँ।
हतलड़[२] के घर जाइ,
तू बोलि मोरे मुरगा कुकुड़ूँकूँ॥"

(१२) **सुखमदरा**—इस गीत में सुखमदरा द्वारा सब स्त्री-पुरुषों को जगवाया जाता है।

"सुखमदरा रे सुखमदरा, पिरोहित जाय जगाय।
सब घरकेन कूँ जाय जगाय, सुखरंजन कूँ बलि जइयै जी राज॥"

---

[१] दौहनियाँ (दौहनी का बहुवचन; गाय-भैंस का दुहना)।

[२] बरना, दूल्हा (सं० वरणक=वरण करनेवाला)।

§११६८८—**तेल हल्दी चढ़ाते समय गाये जानेवाले गीत**—(१) **तेल**—हथलगुनों के पतियों का नाम लेकर तेल गीत गाया जाता है।

"सिरी किसन की बलइयाँ रुकिमिनि तेल चढ़ाइयै।
बासुदेब की बलइयाँ सतभामा तेल चढ़ाइयै॥"

(२) **हल्दी** (सं० हरिद्रा)

"ए मेरी हल्दीरा, हल्दी की लम्बी-चौड़ी गाँठि,
लहरि करैगौ लाड़न सुअना।
ए उड़ि लागैगी गोरे लड़लड़े के अङ्ग,
लहरि करैगौ लाड़न सुअना॥"

(३) **मरुअट**—बरना या बरनी के चेहरे पर **मानि** (बूआ या बहिन) रोली की लकीरें खींचती हैं और उन लकीरों पर भुसी और पान के छोटे-छोटे टुकड़े चिपका देती है। वे लकीरें **मरुअट** कहाती हैं। मरुअट लगाते समय जो गीत गाया जाता है वह भी **मरुअट** कहाता है।

"मैं तोइ पूछूँ सुअना बात, तो माथे मरुअट कौनैं दई ?
दूर दिसा ते आई सहोद्रा, माथे मरुअट उननैं दई।"

(४) **अगोर-पछोर**—तेल चढ़ जाने के बाद बरना या बरनी अपने आगे सूप में रक्खी हुई **कोरों** या **खीकरियों** (छोटी-छोटी पतली पूड़ियों) को सिर के ऊपर से पीछे को फेंकती है जिन्हें नाइन या हथलगुनें अपनी गोद में लेती जाती हैं। यह टेउला **अगोर-पछोर** कहाता है। उस समय जो गीत गवता है उसे भी **अगोर-पछोर** कहते हैं।

"खिकरी लै मेरी सौति नाइन खिकरी लै।
पूआ लै मेरी सौति नाइन पूआ लै॥"

(५) **उगटन** या **उबटन**—यह गीत बरने या बरनी को न्हिलाते समय गाया जाता है।

"जौ गेहूँ कौ उगटनौ, राई चमेली कौ तेलु।
लाड़न बैठे उगटने, आ मेरी दादी देखिलै॥"

(६) **हुल्लमार**—यह गीत घूरा पुजवाते समय स्त्रियाँ गाती हैं। पहली बार जिस दिन तेल चढ़ता है उस दिन सन्ध्या समय घूरा पुजता है।

"हुल्लमार हुल्लमार रे।
(किसी आदमी का नाम लेकर) कैं द्वै जोरुआँ[१];
एक कारी, एक गोरिआँ।"

§११८८६—**माँड़वे के दिन गाये जानेवाले गीत**—(१) **बूढ़े बाबू का ब्याह**—एक

[१] जोरू=पत्नी।

कुम्हारिन बूढ़े बाबू का **भंडारा** (कुम्हारिन की हड़िया जिसमें बूढ़े बाबू[१] देवता॰ के नाम पर खीकरी, हलुआ, कढ़ी, भात और चौमुखा दीपक रक्खा जाता है) भरती है और व्याह पढ़ती है। भण्डारे की हँड़िया **चङ्ग** कहाती है।

"सौंने कौ आसन सौंने कौ सिंहासन,
जापै बैठे बूढ़े घोड़ा पलान ॥"

(२) **अछूतौ**—अछूता पूजते समय जो विशेष गीत गाया जाता है वह 'अछूतौ'[२] कहाता है। स्त्रियाँ प्रातः नहा-धोकर किसी से छुये बिना कुम्हार का चाक पूजती हैं। पूजनेवालियों में **कजैतिन** (बरना या बरनी की मा) और बरना या बरनी मुख्य होते हैं।

"आन्नैं आन्नैं, दारी कजैतिन चली है कुम्हार कैं।
काहे के कान्नैं, एक हड़िया के कान्नैं।"

(३) **स्वामी**—बारहसेनी बनियों में अछूते के दिन **महपुजनि** या **मैपुजन** (नेगों के काम करानेवाली पुरोहितानी) थापा रखती है। उसके नीचे ढाई पाव चावल डालते हैं, जो **मोती** कहाते हैं। बरना या बरनी को बिठाकर कजैतिन पति सहित उस थापे को पूजती है। उस समय दो-दो रोटियाँ २१ जगह पत्तलों पर रक्खी जाती हैं जो **खूँट** कहाती हैं। तब महपुजनि **स्वामी गीत** गाती हैं।

"तुम मति जानों स्वामी गोबरु अछूतौ है।
गोबर बिगारौ गुबरीला नैं ॥"

इसी प्रकार अन्न, जल, स्त्री, बहू, बेटी आदि के सम्बन्ध में गाती हैं।

(४) **भात**—लड़की या लड़के के विवाह में भाई बहिन के यहाँ जब भात लेकर आता है तब जो विशेष गीत गाया जाता है उसे **भात** कहते हैं।

"ऊँची अटरिया चढ़िकैं देखूँ रे, भतइया मेरे आवत हैं।
सासु के आइ गये जिठानी के आइ गये।
परि मेरे न आये भतइया, भतइया मेरे आवत हैं ॥"

(५) **डालौ**—जिस समय **भातई लिये जाते हैं** अर्थात् घर में स्वागत करते हुए भात दे के लिए जब भातइयों को बुलाया जाता है तब **डालौ** नाम का गीत गाया जाता है।

---

१ बूढ़े बाबू की पूजा गुड़ और बाजरे के चून से शुक्रवार या शनिवार को भी होती है। य किसी के शरीर पर सफेद दाग-सा हो जाता है तो वह भी बूढ़ा बाबू कहाता है। वह स्त्री उस बा को लेकर कुम्हार का चाक पूजने जाती है। पूजने के बाद चाक की मिट्टी बच्चे के माथे पर लगा जाती है। बूढ़ा बाबू माह में भी पुजता है।

२ अछूता पुजते समय कुम्हारिन का भण्डारा होता है। उस कुम्हारिन के पास क्वारे ल को नहीं रहने देते। स्त्रियों का कहना है कि यदि बूढ़े बाबू के भण्डारे को क्वारे लड़के देख लें तो उ शरीर में बूढ़ा बाबू (सफेद कोढ़ की भाँति का एक दाग) हो जाता है। माह बदी दौज (द्विती तिथि) को बूढ़े बाबू की पूजा विशेष रूप से होती है।

"आकु अकीलौ ढाकु ढकोलौ।
तौऊ उरझत सुरझत आये भातई॥
त्यारी लुगाईन दिब्ला जोरे तौ।
ग्वाके उजारे आये भातई॥"

(६) **माँड़यौ**—यह गीत माँड़वा (सं० मंडप) गाड़ते समय गाया जाता है। **सवासी गीत** भी माँड़वा गड़ते समय गवता है। '**सवासी**' मान को कहते हैं।

"ए पहलौ री फल भट्टी पै धर दीजौ।
दूजौ री फल दाई कूँ दीजौ॥
तीजौ फल पंडित कूँ दीजौ।
वाकौ निरमल साहौ सोधियै॥"

(७) **सवासी गीत**—

"घोड़ा पै चढ़िकैं सवासी आइयै।
गाड़ी मैं बैठि बहुरिया आइयै॥
घोड़ा तौ बाँधौ छिनारि के ब्वाई घुड़सार मैं।
तुम बैठौ सजन के बीच॥"

§११६०—निकरौसी के समय के गीत (१) **धोबिन**—इस गीत में बरात के लिए धोबिन द्वारा कपड़े जल्दी धोने का उल्लेख है।

"ए मेरी धोबिन धोइ रजन के कापड़े।
लला के बाबा सजे हैं बराइती।
मैं कैसें धोऊँ तेरे कापड़े, मोपै झरकत बादर ओलरे।"

(२) **सेहुरौ**—म्हौर और सेहरा बँधते समय **सेहुरो गीत** गाया जाता है।

"बनौ री कुँवर कौ सेहुरौ मालिन दरबार।
सिर धरि मालिन नीकरी है बीच बजार।
कौन कौ नाती बिबाहियै॥"

(३) **सूत पुरन**—लड़के के विवाह में **निकरौसी**[१] के समय चार हथलगुनें लाल डुपट्टा बरने के सिर पर तान लेती हैं। उस डुपट्टे के चारों किनारों पर **मान** (सवासी) सूत पूरता है। उस समय 'सूत पूरन' गीत गाया जाता है।

"सूत की गाँठि दुहेली सूत ना पूरै।
अपनी माऐ चौं न लायौ छिनरि के सूत ना पूरै॥"

(४) **घुड़चढ़ी**—निकरौसी के समय जब बरना घोड़ी पर बैठकर बरात के साथ ब्याहने जाता है, तब घुड़चढ़ी नाम का गीत गाया जाता है।

---

[१] **निकरौसी**=विवाह के लिए जब लड़का अपने घर से चलता है, तब वह रस्म निकरौसी कहाती है। इसे केसौंड़ौ भी कहते हैं।

"लोग कहैं दूल्हौ कारौ ई कारौ। माइ कहै मेरौ जगत उजारौ ॥
लोग कहैं दूल्हौ इकिलौ ई इकिलौ। माइ कहै मेरौ जेठन बींदौ।
हाँसली तेरी चाल सुहामनी ॥"

(५) **कजरौठा**—जब लड़के की बरात लड़की ब्याहने के लिए चली जाती है तब स्त्रियाँ गोल घेरे में घूमती हुई **कजरौठा** और **बसूला** नाम के गीत गाती हैं। गोल घेरे में घूमना भी **कजरौठा** कहाता है।

"कजरौठा रे कौन के नाह बरात गये।"

(६) **बसूला**—

"हाँ बसूला कौनस के घर माँड़यो।
और कौनस के घर ब्याहु।
भानु खाइ घर आइयै।"

§११६१—**बरनी के द्वार पर बरात आने के समय गाये जानेवाले गीत**—(१) **तेलबारौठी**—बरनी के घर के द्वार पर बर सहित बराती आते हैं। वह रस्म **बारौठी** या **दरबज्जौ** कहाती है। स्त्रियाँ उस समय **तेल बारौठी** गीत गाती हैं।

"ए बर आवत हैं घमंडी के, मेरे बाबुल के द्वार पै।
ए काँ पै काँ पै झबरक दिबला, ए तेरी काहे की है बाती ॥
सौंने कौ झबरक दीबला, रूपे की है बाती ॥"

(२) **बिल्ली**—बारौठी के समय ही बिल्ली **गबती** (गायी जाती) है।

"मैंनैं भौत बुलाये थोरे आये री बिल्ली, परि कूँइ कूँइ कूँइ।
मैंनैं गोरे बुलाये कारे आये री बिल्ली, परि कूँइ कूँइ कूँइ ॥
तैंनैं (घर के किसी पुरुष का नाम लेकर) कौ हौपु न जानौ,
री बिल्ली परि कूँइ कूँइ कूँइ।
मैंनैं हतिया बुलाये पैदर आये री बिल्ली, परि कूँइ कूँइ कूँइ ॥"

(३) **चोरा-बारी**—जब मामा लड़की के कान में बाली पहनाता है और **चोरा** (एक वस्त्र) ऊपर उढ़ाकर लड़की के पाँव में बिछुए पहनाता है तब **चोरा-बारी** गीत गाया जाता है।

"ए बनु बोइ न रे लाड़ी के मामा, लाड़ी चोरौ माँगै।
ए बनु ओटि न री लाड़ी की माई, लाड़ी चोरो माँगे ॥"

(४) **भाँवरि**—जिस समय बर-बधू अग्नि प्रदक्षिणा करते हैं तब स्त्रियाँ **भाँवरि गीत** गाती हैं। बरनी बर के साथ सात भाँवरें फिरती है। ब्याह में **जूरी** (भाग्य) बलवती होती है।

"एरी पहली भाँवरि रे, तौऊ बेटी बाप की।
एरी दूजी भाँवरि रे, तौऊ बेटी बाप की ॥
(इस प्रकार छः भावरों के पश्चात् कहती हैं कि)
एरी सतई भाँवरि रे, तौ भई बेटी ससर की ॥"

(५) **घीयाभाती**—माँवरों के उपरान्त बर-बधू **कोहवर** को (सं० कोष्ठवर) में बायबन्द के पास ले जाते हैं। वहाँ स्त्रियाँ बरबधू को बताशे या घी-भात खिलाती हैं। उस समय **घीयाभाती** गीत गाया जाता है।

"कारी कौ जायौ री, कारौ खैंखरौ।
मेरी गोरी की जायी री, गोरी दमदमी ॥
भूखी कौ जायौ री, लपलप लै गयौ।
मेरी अघानी की जायी री, सूँघत धरि दयौ ॥"

(६) **करबलिया** —माँड़वे के नीचे समधी आदि ५-७ आदमी **बढ़ार** (सं० वृद्धाहार) को दावत जब खा रहे होते हैं तब करबलिया नाम की गारी गायी जाती है और **जौनार** तथा **गारी** भी।

"करबलिया री करबलिया।
जिअ कौन बड़े की है पाँति, महोवरि मेरी करबलिया ॥"

(७) **जौंनार या ज्यौंनार**—

"राजा जनक कराई जौंनार, जुगति सौं परसौ जी।
दौना और भोलुआ पातरि धोइ धोइ धरत अगार।
पूरी और कचौरी लड़ुआ परसत बारम्बार ॥जुगति०॥"

(८) **गारी**—

"महलाइत उजरी रे, मुड़ेली जाकी हरे-हरे, मुड़ेली जाकी अजबु बनी।
भीतर मैली बाहिर उजरी महलाइत जाकौ नामु ॥
बीच-बीच में छिके झरोका चाम कौ हैरह्यौ कामु ॥
झरोका जामैं हरे-हरे।
झरोका जामैं नौ रे छिके ॥[1]"

मुकटधर सामरौ रे लाला द्वै बापन कौ जाम[2]।
एकु अचम्भौ मैं सुनौं रे लाला, इनकैं एक माइ द्वै बाप।
एकु बापु मथुरा बसै, दूजौ गोकुल गाम ॥मुकट०॥

(९) **टीकौ**—यह गीत पलकाचार के समय टीके पर गाया जाता है। टीका करनेवाली का नाम लेते हुए **टीका** गीत गाया जाता है।

सासुलि टीके आई। ललाऐ बैलामन एकु रुपइया लाई ॥"

(१०) **बिदा**—(अ० बिदाअ्)—लड़की को बिदा करते समय **बिदा गीत** गाया जाता है।

"औरे रे कौरे गुड़ियाऊ छोड़ीं, रोबत छोड़ीं सहेलरी।
अब का रे बोलै कारी कोइलिया, छोड़ौ बबुल कौ रे देस ॥"

[1] "नौ पौरी तहँ दसवँ दुआरा।"—जायसी, पदमावत (भाव-साम्य)।

[2] जाम=जन्म (सं० जन्म > अप० जम्म > जाम)।
"कोवि द्रवक्कउ सो पडइ जेण समप्पइ जम्मु।" —हेमचन्द्र : प्राकृतव्याकरण।

§११६२—**बहू के घर आ जाने पर गाये जानेवाले गीत—**

(१) **जमसूऔ—**

जम सूऔ ऐ आली बहू जमसूऔ ऐ।

किसनचन्द रेसम डोर न री रुकमिनि ओ दखिन कौ चीर न ओ जमसूऔ ऐ।"

(२) **नैंतासूती—**एक डोरी में अटिया की इंडुरी **पोकर** (डालकर) उसे बर-बधू के सिर पर क्रमशः सात बार रखते हैं। तब स्त्रियाँ नैंतासूती गीत गाती हैं।

"मेरी नैंतासूती रे कै बहुअरि अन्नु लै।
मेरी अन्न अघानी रे कै बहुअरि धन्नु लै॥"

§११६३—**मौर सिराने के समय गाये जानेवाले गीत—**

(१) **हँसुला—**

"हँसुला सरनि गहति ऊँ पइयाँ परति ऊँ रे।
ससुर कौ अँगना रे कै हँसुला देबर जेठन फलियौरे॥"

(२) **सोइलरा—**

पूरब दिसा ते चलौ ऐ सोइलरा उतरौ ऐ गुअ सोरौं के घाट।
सोइलरा ओ दुर आइयै।"

(३) **सैंम—**

"पूरब दिसा ते सैंम चली माई, उपजे हैं नौ-दस पात,
तौ सैंम सुलाखनी।"

(४) **अऊतपितर—**

"ऐसे री अऊत हमारे मन भाये।
चौरे पट पर कुअटा खुदामैं।
मैंनि भानजिन नौंति जिमामैं।
कौने मैं बैठि बहूऐ डरपामैं॥"

§११६४—**बायना बाँटते समय के गीत**—(१) **ढोला**—यह स्त्रियों का पथ-गीत है स्त्रियाँ जब **चाब** (कुछ अनाज और एक कपड़ा) देने के लिए अथवा **बायना** (विवाह में बहू के यहाँ से आई हुई मिठाई और पकवान आदि) बाँटने के लिए मंडली बनाकर जाती हैं तब रास्ते में चलते-चलते सामूहिक रूप में **ढोला** गाया जाता है।

"अरे चन्दा, तेरी निरमल कहियै चाँदनी, अरे चन्दा, राजा की बेटी पानी नीकरी।
अरे कुअटा, तेरे ऊँचे-नीचे घाट रे, अरे कुअटा, तापै तौ धोबै छोरा धोबती।
अरे छोरा, तू मारू बैंगन तोरि ला, अरे छोरा, तब तक मैं धोऊँ तेरी धोबती॥"

§११६५—**गौने के समय का गीत**—

(१) **गौनियरा**—

"साजन गौने कूँ आये तौ चलनन्चलन कहैं।
चढ़ौ लाड़ी अलकी चढ़ौ लाड़ी पलकी, चढ़ौं सुख पालकी।
चलौं घर आपने, चाबौं नागर पान चलौं घर आपने॥"

§११६६—**अन्य विषय के गीत**—(१) **सिलहरा**—बैसाख के महीने में जौ-गेहूँ के खेत कट जाने के पश्चात् उनमें पड़ी हुई बालों को बीनने के लिए स्त्रियाँ खेत में जाती हैं। उस समय सामूहिक रूप से सिलहरा गाती जाती हैं। उन बालों को बीनना **सिल बीनना** कहाता है।

"रामचन्द कैं दस हर चलियौ तौ लछिमन कैं बड़ सीर।
सीया सिलियौ बीनियै औरु घौंटुन जौ की बालि॥"

(२) **चिरई**—

"चिरई आजु अघानी[1]।
हरी रे चिरइया नौं कहै हूँ उपजुज्ञी लछिमन खेत।
और जैऊँ ग्वाकी धनिअ के थार, चिरई आजु अघानी॥"

(३) **पुरोहे**—पैर चलते समय पुर लेनेवाला जिन विशिष्ट गीतों को गाता है वे **पुरोहे** कहाते हैं। पुरोहे पुरुष ही गाते हैं। पुरोहों का मुख्य विषय नीति, और भक्ति होरा है। पुरोहे प्रायः चौपाई, दोहे और कुण्डलियों में होते हैं।

"राम बढ़ाये सो बढ़े, बलु करि बढ़्यौ न कोइ।
बलु करिकैं रामनु बढ़्यौ, सो दयौ छिनक में खोइ॥"
भई! आइ गये राम॥[2]

लोकगीत

(विशेषतः पुरुषों द्वारा गाये जानेवाले गीत)

§११६७—**प्रबन्धात्मक लोकगीत**—आल्हा, ढोला, नरसी का भात, हीर-राँझा और महादेव का ब्याह नाम के लोकगीत लोक-कथाओं से सम्बन्धित हैं।

(१) **आल्हा**—गाँवों में आल्हा विशेष रूप से बरसात के दिनों (असाढ़, सावन या भादों) में गाई जाती है। आल्हा गानेवाला **अल्हैत** कहलाता है। आल्हा के गीतों का मुख्य विषय महोबे के आल्हा, ऊदल, मलखान और ब्रह्मा आदि की प्रशंसा और युद्ध-वर्णन होता है।

---

[1] तृप्त।

[2] जब पुर (चरस) धारछे में आ जाता है तब पुरोहे की अन्तिम कड़ी 'भई आइ गये राम' गाई जाती है। यदि चौमासों में वर्षा बिल्कुल न हो तो एक दिन गाँव की स्त्रियाँ भी पैर चलाती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से मेह बरस जाता है।

आल्हा[1] छन्द में गायी हुई कोई रचना लोक में आल्हा ही कही जाती है। कांग्रेस की आल्हा भी बहुत प्रचलित हैं।

आल्हा

सुमिरि भमानी जगदम्बा कूँ औरु सारद के चरन मनाइ।
आदि सरसुती तौकूँ ध्याऊँ मइया कंठ बिराजौ आइ॥

(२) **ढोला**—ढोला-मारू[2] की लोक-प्रसिद्ध कहानी के आधार पर **ढुलइये** (ढोला गाने-वाले) ढोला गाया करते हैं। ढोला कमसेकम दो आदमियों द्वारा गाया जाता है। ढुलइया चिकाड़ा बजाते हुए आगे गाता है और **ढुलकिआ** (ढोलक बजानेवाला) पीछे से है···हे···करते हुए **सुर** (स्वर) देता है। स्वर देनेवाले को **सुरइया** कहते हैं। किसी-किसी ढोले में **चिकड़िआ** (चिकाड़ा बजानेवाला) अलग से रहता है और ढुलइया खाली हाथ रहता है। उस समय ढुलइया ढोला गाते समय अपना बायाँ हाथ बायें कान पर रख लेता है। उस ढोले को **कनटेका ढोला** कहते हैं। जब ढुलइया चिकाड़ा बजाते हुए गाता है तब वह **चिकड़िया-ढोला** कहाता है।

ढोला मौखिक काव्य है जिसके अध्याय **पैरी** या **पहरी** कहाते हैं। एक पहरी (सं० प्रहरिका[3]) लगभग तीन घण्टे में समाप्त होती है। ढुलइयों का कहना है कि पूरे ढोले में ३६० पहरियाँ होती हैं। इस प्रकार के लम्बे कथा-गीत **पँवाड़ा** कहाते हैं।

ढोले की तर्ज में गाये जानेवाले अन्य प्रबन्धात्मक गीत भी **ढोला** कहाते हैं। अलीगढ़ जन-पद में **राधाचरन का ढोला** भी **नल के ढोले** की तरह प्रसिद्ध हो गया है।

ढोला तीन प्रकार का होता है—(१) छोटी ढब का ढोला। (२) लम्बीं ढब का ढोला (३) बिचौंदी ढब का ढोला।

(अ) **छोटी ढब का ढोला**—इसकी कड़ी (चरण) छोटी होती है और उस कड़ी में दो स्थानों पर तुक मिलती है। 'ढोला' नामक लोक-काव्य में नल-दमयन्ती की कथा और उन पर पड़ी हुई **औखा** (आपत्ति-काल) का वर्णन रहता है।

"नरबर बारौ भूपु, गाँठिरह्यौ सूपु, चलाइरह्यौ चाकी।
मारै सन्तरी मारु न आवै माखी[4]॥"

---

[1] आल्हा छन्द में ३१ मात्राएँ होती हैं। ८, ८, १५ पर यति होती है। अन्त में गुरु-लघु आते हैं। प्रसिद्ध कवि जगनिक ने इसी छन्द का प्रयोग किया था।

[2] नल के पिता का नाम पिरथम और माता नाम मंझा था। मंझा के पेट से नल जंगल में एक हौंस के अन्दर पैदा हुआ था। नल पर औखा (कष्ट) पड़ी। वह जंगलों में मारा-मारा फिरता रहा। दुर्गा ने उसकी सहायता की थी। नल के पुत्र का नाम ढोला और ढोले की पत्नी का नाम मारू या मरमन था। मरमन पिंगल के राजा बुध की पुत्री थी। ढोला को मालवा देश के राजा की कन्या रेबा भी ब्याही गई थी। नल पर जब बुरे दिन आये थे तब उसका राज्य (नरबरगढ़ का राज्य) उससे निकल गया था। वह जूए में सब कुछ हार गया था। अपनी पत्नी दुमैंती (दमयन्ती) को भी उसने छोड़ दिया था और छोटी-मोटी नौकरी करता फिरा था।

[3] सं० प्रहरक=लगभग ३ घण्टे का समय—मो० वि०।

[4] क्रोध।

(इ) **लम्बी ढब का ढोला**—इसकी कड़ी लम्बी होती है और उसमें चार या पाँच तुकें होती हैं।

"राधाचरन उठाइ बन्दूक, दाबि सन्दूक, न कीनी
चूक, लगाइ दई कूक[1], बढ़यौ आगे कूँ।
जाकौ हैरह्यौ सिथिल सरीर गयौ ढाके[2] कूँ॥"

(उ) **बिचौंदी ढब का ढोला**—सामान्यतः यही **ढब** या **राह** (तर्ज) अधिक प्रचलित है। इसमें पहली कड़ी छोटी और दूसरी बड़ी होती है फिर तीसरी छोटी और चौथी बड़ी होती है।

"नल के औखा परी पिछार।
घर घर नारि दुमैंती डोली काऊ नैं दयौ न अन्नु उधार॥
जे बिगरी के ठाट।
नरबर छोड़ि बसौ पिंगुल मैं नलु है गयौ बारह-बाट॥"

(३) **नरसी का भात, हीरराँझा** और **महादेव का ब्याह** नाम के गीत अनेक तर्जों में गाये जाते हैं। इन्हें **संबादी भजन** कहते हैं। जावरे गाँव के निवासी शिवराम के संबादी भजन बहुत प्रसिद्ध हैं। संवादी भजनों का मंगलाचरण **भेट** कहाता है। प्रायः दुर्गा या श्रीकृष्ण को मानते हुए ही भेट गाई जाती है।

भजन के मुख्य अंग तीन होते हैं—(१) **टेक** (२) **झड़** (३) **तोड़**। तोड़ के बाद तुरन्त टेक की आवृत्ति होती है। कभी-कभी बीच में दोहा, चौपाई, लावनी, छन्द हरिगीतिका छन्द, चौक, लहर आदि भ[illegible] डाल दी जाती हैं। चौक और लहर के उदाहरण क्रम से—

चौक

"भरि जेट कंठ चिपटायौ। गहि बाँह निकट बैठायौ।
सुखु भयौ गयौ धनु पायौ। कहि मिंतुर कैसैं आयौ॥"

लहर

"नरसी नैं फिर बचन सुनायौ रे।
गाड़ी की खातिर भइया तेरे ढिंग[4] आयौ रे॥
भात भरन सिरसागढ़ जाऊँ रे।
असबारिन के लइयाँ गाड़ी एक चाहूँ रे॥"

(४) आर्य समाज के **भजनीकों** (भजनों के गायक) द्वारा गाये जानेवाले भजन **समाजी** कहाते हैं।

(५) **राँझा**—ढोले की भाँति राँझा एक लोक-राग भी है। उसकी तर्ज के गीत भी **राँझा** कहाते हैं।

---

[1] आवाज़।

[2] ढाक के पेड़ों का जंगल।

[3] चौक में चार कड़ियाँ (चरण) होती हैं। प्रत्येक कड़ी में १४ मात्राएँ होती है अन्त में दो गुरु। चारों चरणों में एक ही तुक रहती है।

[4] (सं० दिक् > ढिंग = पास)।

आल्हा[1] छन्द में गायी हुई कोई रचना लोक में आल्हा ही कही जाती है। कांग्रेस की आल्हा भी बहुत प्रचलित हैं।

आल्हा

सुमिरि भमानी जगदम्बा कूँ औरु सारद के चरन मनाइ।
आदि सरसुती तौकूँ ध्याऊँ मइया कंठ बिराजौ आइ॥

(२) **ढोला**—ढोला-मारू[2] की लोक-प्रसिद्ध कहानी के आधार पर **ढुलइये** (ढोला गानेवाले) ढोला गाया करते हैं। ढोला कमसेकम दो आदमियों द्वारा गाया जाता है। ढुलइया चिकाड़ा बजाते हुए आगे गाता है और **ढुलकिआ** (ढोलक बजानेवाला) पीछे से है···है···करते हुए सुर (स्वर) देता है। स्वर देनेवाले को **सुरइया** कहते हैं। किसी-किसी ढोले में **चिकड़िआ** (चिकाड़ा बजानेवाला) अलग से रहता है और ढुलइया खाली हाथ रहता है। उस समय ढुलइया ढोला गाते समय अपना बायाँ हाथ बायें कान पर रख लेता है। उस ढोले को **कनटेका ढोला** कहते हैं। जब ढुलइया चिकाड़ा बजाते हुए गाता है तब वह **चिकड़िया-ढोला** कहाता है।

ढोला मौखिक काव्य है जिसके अध्याय **पैरी** या **पहरी** कहाते हैं। एक पहरी (सं० प्रहरिका[3]) लगभग तीन घण्टे में समाप्त होती है। ढुलइयों का कहना है कि पूरे ढोले में ३६० पहरियाँ होती हैं। इस प्रकार के लम्बे कथा-गीत **पँवाड़ा** कहाते हैं।

ढोले की तर्ज में गाये जानेवाले अन्य प्रबन्धात्मक गीत भी **ढोला** कहाते हैं। अलीगढ़ जनपद में **राधाचरन का ढोला** भी **नल के ढोले** की तरह प्रसिद्ध हो गया है।

ढोला तीन प्रकार का होता है—(१) छोटी ढब का ढोला। (२) लम्बीं ढब का ढोला (३) बिचौंदी ढब का ढोला।

(अ) **छोटी ढब का ढोला**—इसकी कड़ी (चरण) छोटी होती है और उस कड़ी में दो स्थानों पर तुक मिलती है। 'ढोला' नामक लोक-काव्य में नल-दमयन्ती की कथा और उन पर पड़ी हुई **औखा** (आपत्ति-काल) का वर्णन रहता है।

"नरबर बारौ भूपु, गाँठिरह्यौ सूपु, चलाइरह्यौ चाकी।
मारै सन्तरी मारु न आवै माखी[4]॥"

---

[1] आल्हा छन्द में ३१ मात्राएँ होती हैं। ८, ८, १५ पर यति होती है। अन्त में गुरु-लघु आते हैं। प्रसिद्ध कवि जगनिक ने इसी छन्द का प्रयोग किया था।

[2] नल के पिता का नाम पिरथम और माता नाम मंझा था। मंझा के पेट से नल जंगल में एक हौंस के अन्दर पैदा हुआ था। नल पर औखा (कष्ट) पड़ी। वह जंगलों में मारा-मारा फिरता रहा। दुर्गा ने उसकी सहायता की थी। नल के पुत्र का नाम ढोला और ढोले की पत्नी का नाम मारू या मरमन था। मरमन पिंगल के राजा बुध की पुत्री थी। ढोला को मालवा देश के राजा की कन्या रेवा भी ब्याही गई थी। नल पर जब बुरे दिन आये थे तब उसका राज्य (नरबरगढ़ का राज्य) उससे निकल गया था। वह जूए में सब कुछ हार गया था। अपनी पत्नी दुमैंती (दमयन्ती) को भी उसने छोड़ दिया था और छोटी-मोटी नौकरी करता फिरा था।

[3] सं० प्रहरक=लगभग ३ घण्टे का समय—मो० वि०।

[4] क्रोध।

(इ) **लम्बी ढब का ढोला**—इसकी कड़ी लम्बी होती है और उसमें चार या पाँच तुकें होती हैं।

"राधाचरन उठाइ बन्दूक, दाबि सन्दूक, न कीनी
चूक, लगाइ दई कूक[1], बढ़यौ आगे कूँ।
जाकौ हैरह्यौ सिथिल सरीर गयौ ढाके[2] कूँ॥"

(उ) **बिचौंदी ढब का ढोला**—सामान्यतः यही **ढब** या **राह** (तर्ज) अधिक प्रचलित है। इसमें पहली कड़ी छोटी और दूसरी बड़ी होती है फिर तीसरी छोटी और चौथी बड़ी होती है।

"नल के औखा परी पिछार।
घर घर नारि दुभैंती डोली काऊ नैं दयौ न अन्नु उधार॥
जे बिगरी के ठाट।
नरबर छोड़ि बसौ पिंगुल मैं नलु है गयौ बारह-बाट॥"

(३) **नरसी का भात, हीरराँझा** और **महादेव का ब्याह** नाम के गीत अनेक तर्जों में गाये जाते हैं। इन्हें **संवादी भजन** कहते हैं। जावरे गाँव के निवासी शिवराम के संवादी भजन बहुत प्रसिद्ध हैं। संवादी भजनों का मंगलाचरण **भेट** कहाता है। प्रायः दुर्गा या श्रीकृष्ण को मानते हुए ही भेट गाई जाती है।

भजन के मुख्य अंग तीन होते हैं—(१) **टेक** (२) **झड़** (३) **तोड़**। तोड़ के बाद तुरन्त टेक की आवृत्ति होती है। कभी-कभी बीच में दोहा, चौपाई, लावनी, छन्द हरिगीतिका छन्द, चौक, लहर आदि भ. डाल दी जाती हैं। चौक और लहर के उदाहरण क्रम से—

चौक

"भरि जेट कंठ चिपटायौ। गहि बाँह निकट बैठायौ।
सुखु भयौ गयौ धनु पायौ। कहि मिंतुर कैसैं आयौ॥"

लहर

"नरसी नैं फिर बचन सुनायौ रे।
गाड़ी की खातिर भइया तेरे ढिंग[4] आयौ रे॥
भात भरन सिरसागढ़ जाऊँ रे।
असबारिन के लइयाँ गाड़ी एक चाहूँ रे॥"

(४) आर्य समाज के **भजनीकों** (भजनों के गायक) द्वारा गाये जानेवाले भजन **समाजी** कहाते हैं।

(५) **राँझा**—ढोले की भाँति राँझा एक लोक-राग भी है। उसकी तर्ज के गीत भी **राँझा** कहाते हैं।

---

[1] आवाज़।

[2] ढाक के पेड़ों का जंगल।

[3] चौक में चार कड़ियाँ (चरण) होती हैं। प्रत्येक कड़ी में १४ मात्राएँ होती है अन्त में दो गुरु। चारों चरणों में एक ही तुक रहती है।

[4] (सं० दिक् > ढिंग = पास)।

"कौन दिसा ते भयौ तेरौ आमनौ रे परदेसी सिपाई ।
कौन दिसा कूँ तैने सुरति तौ लगाई ॥"

× × ×

"बाबुल ते रामा का कहै सुनि सासुलि मेरी ।
हाय हाय रामा नैं बचन सुनायौ ॥
जब ते आयौ बाबुल सहर मैं सुनि सासुलि मेरी ।
काहू पुरुष के रे मन नाहिं भायौ ॥"

§११६८—**विशिष्ट जातियों में गाये जानेवाले गीतों के नाम**—(१) **लहौचारी**—यह गीत धोबियों में गाया जाता है । चार-चार या छह-छह आदमियों की दो मण्डलियाँ बन जाती हैं । पहले आगे की मण्डली गाती है फिर पीछे वाली उसे दुहराती है । यह सामूहिक रूप में खड़े-खड़े गाया जाता है ।

"ठाड़ौ रहियो रे बबुरिया की ओट,
जियरबा बैरी तोई ते लग्यौ ।
सौंने को गड़ुआ गंगाजलु पानी,
पीजा पीजा रे बबुरिया की ओट, जियरबा बैरी तोईते लग्यौ ॥"

(२) **रागिनी**—धोबियों के कुछ विशेष गीत रागिनी कहाते हैं । रागिनी भी सामूहिक गीत है जो **हेकरा** (हे हे का स्वर) मारते हुए गाया जाता है ।

"........ए ननदी, ए ननदी कैसैं जाइ मेरौ जाड़ौ ए ननदी ।"

(३) **जद्दमड़ी**—सामूहिक रूप में गाया जानेवाला कुम्हारों का गीत जो जेठ-बैसाख में सूप बजाकर गाया जाता है **जद्दमड़ी** कहाता है ।

"जुरी कचैरी[1] जरजोधन[2] की, जुरौ है सब दरबार, सुनौ तौ मेरे भाइ ।"

(४) **दुपंगा**—यह गीत कुम्हारों में गाया जाता है । इसे दो मण्डलियाँ गाती हैं ।

"बारे कूँ, ब्याहि दई मैं बाबुल बारे कूँ ।"

(५) **बझूराग**—इस राग के गीत अहीरों में गाये जाते हैं ।

"बन में भये रे लरिका बन मैं भये ।
ए हो हमारे लरिका बन मैं भये ॥
आजु कूँ होते दिबर लछिमन से, कोई तीरु तौ लेती सधवाइ ।
हमारे लरिका बन मैं भयें ॥ बन मैं० ॥"

(६) **भानी**—मदारियों के गीत या लय सहित तुकबन्दियाँ जो तमाशा दिखाने के बाद रोटी-कपड़ा माँगने के लिए गाई जाती हैं, **भानी** कहाती हैं ।

(७) **बहर्रा**—खटीकों का एक गीत **बहर्रा** कहाता है । ब्याह के समय **बहर्रा** गाया जाता है ।

---

[1] सं० कृत्यगृह > ब्री० कचैरी ।

[2] दुर्योधन ।

"रोइ रहे रे, रोइ रहे रे मौहबे के नर-नारि ऊदल की सुनिकैं बीमारी।
ऊदलु म्हौं ते बोलतु नाएँ। ढौंएँ[1] अपनी खोलतु नाएँ॥
आल्हा ठाड़ैं ते खाइ पछार, रोइ रहे रे॥ रोइ रहे रे० ॥"

(८) **गोबरी**—यह गीत चमारों में गाया जाता है। इसमें इन्द्र भगवान् से वर्षा के लिए प्रार्थना की जाती है। खेती के सम्बन्ध में ही गोबरी गीत अधिक मिलते हैं।

"सबु सबु खेती करियो मेरे बलमा,
एकु मति करियो चैना तोइ समझाऊँ रे।
आईं चिरइयाँ चुगि गईं चैना,
अरे हाथ में रहि-गयौ पैना तोइ समझाऊँ रे॥"

(९) **सिड़रिया**—सावन-भादों में चमार लोग सिड़रिया नाम का गीत गाते हैं।

"आधी राति सिड़रिया रोवै,
कोई रोबै जार बेजार,
रैनि आधी पै रे हाँ।"

(१०) **जस**—देवी के गीत जो चमारों में गाये जाते हैं **जस** कहाते हैं।

"माता मेरी घर ते निकरी आँगन भई ठाड़ी, ठाड़ी सगुन बिचारै, लई रे।"

(११) **कुरसी**—महतरों के दो भेद हैं—(१) बालमीकी महतर (२) लालबेगी[2] महतर। लालबेगी महतरों में जब मटके की पूजा होती है तब **कुरसी** गायी जाती है।

कुरसी

"सौंने कौ छड़ा। सौंने कौ मड़ा।
सौंने को घोड़ा। सौंने को जोड़ा॥"

(१२) एक गीत जिसे मीरासी लोग शहनाई पर गाते हैं **हिन्दवानी रहमान** कहाता है।

§११९९—**बालकों द्वारा गाये जानेवाले गीत**—(१) क्वार में दशहरा से पूर्णमासी तक बालक टेसू माँगते हैं और गीत गाते हैं। वे गीत भी **टेसू** कहाते हैं।

"टेसू की गइया चकपैंदरिया, अस्सी ढला भुस खाय।
पानी पीबै ताल कौ, सो गुम्मु पेट्ट है जाय॥"

§१२००—**फेरीवालों तथा भिखारियों द्वारा गाये जानेवाले गीत—सरमन, भैरौं**

---

[1] आँख की पुतली के ऊपर नीचे के पलक।

[2] लालबेग को अपना पूर्वज माननेवाले लालबेगी महतर अपने को मुसलमान मानते हैं। बाल्मीकी महतर अपने को हिन्दू कहते हैं और महर्षि बाल्मीकि का वंशज मानते हैं। ये कार्तिक की पूर्णिमा को महर्षि बाल्मीकि का जन्मदिवस मनाते हैं। हेला, डुमार और पासी जाति के महतर लालबेगी हैं। ये लोग पूरब में अधिक पाये जाते हैं।

और **बमलहरी** नाम के गीत गाकर **भिकारी** भीख माँगा करते हैं। श्रवणकुमार के जीवन से सम्बन्धित गीत **सरमन** कहाते हैं। भोपे लोग भैरव के सम्बन्ध में गाये जानेवाले गीतों को **भैरौ** कहते हैं। महादेव की लीला और ब्याह के विशेष गीत **बमलहरी** कहाते हैं (सं० भिक्षाकारिक>भिक्खारिअ>भिखारी, भिकारी)।

साँप का विष झाड़नेवाले **बायगी** कहाते हैं। जिस आदमी को साँप काट लेता है उसे सामने बिठाकर बायगी थाली बजाते हुए कुछ गीत विष उतारने के लिए गाते हैं, वे गीत **खून** कहाते हैं। बाइगी के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—"कुठौर काठी सुसुर बायगी।" अर्थात् पुत्रबधू को साँप ने गुप्तांग पर काट लिया और ससुर बाइगी है। अब उससे विष किस तरह उतरवाये?

खून

"भीम उठे गरगज्जि भुम्मि पै गदा घुमाई।
काँपे तीनौं लोक खबरि बासुक नैं पाई॥
हाथ जोरि बासुक[1] भयौ ठाड़ौ, नाग लये बुलबाय।
सेबा में ठाड़े रहैं, दई अरदास[2] सुनाय॥"

वीरता के भावों का एक गीत **रजपूती** कहाता है। इसे लोधे और अहीर अधिक गाते हैं।

§१२०१—होली के आस-पास गाये जानेवाले विशेष गीत—फागुन के महीने में होली के आस-पास ग्रामीण नर-नारियों का हृदय झनकारें भरता है। पूर्णतः उल्लास में भरने के अर्थ में **'झनकारना'** क्रिया प्रचलित है।[3] होली नाम के गीत होली के दिनों में ही गाये जाते हैं। होली के कई प्रकार हैं—**चलती, पूरबी, जिकड़ी, ठेका, दुबोला, ख्याल, लँगड़ी** और **ब्रज की होली** नाम से होलियाँ प्रसिद्ध हैं।

गुँदेलौ (देवी के जागरन में गाया जाता है), **सोरठ, सोरंगा, घुड़बिजनियाँ, निधना, ठुमरी, ठप्पा, कब्वाली, यहरतबील, गूजरी, भंग, बरारी, देवगिरी, धानी, दादरा, चौबोला, हीरो, झूलना, रसिया** और **ख्याल** नाम के गीत भी गाये जाते हैं। गाँवों में होली के आस-पास गानेवालों की मण्डलियाँ इकट्ठी होती हैं और **रसियाई के भजन** गाती हैं। वे भजन **जिकड़ी** कहाते हैं। गानेवालों की सभा **फूलडोल** कहाती है। **फूलडोल** में जिकड़ी भजन को गा लेने के बाद पद्य में ही प्रश्न पूछा जाता है।

(१) सोरंगा

"अब ही तौ निबुआ कचकचे रे प्यारे,
मति काटौ बेपीर जी।
पाकन दै रस आन दै रे प्यारे,
होयँ तब तौ गम्भीर जी॥"

(२) कब्वाली

"मैंने पूछा पपीहा से ए पपीहा।
तेरा किसके बिरह में है जलता जिया।"

---

[1] वासुकि, सर्पराज।

[2] प्रार्थना, विनती।

[3] "सहज भाउ भादौं झनकारी।"
मंझन: मधुमालती (उसमानकृत चित्रावली की भूमिका, काशी ना० प्र० सभा पृ० ९)

(३) बहरतबील[1]

"मेरे छइया कन्हइया तू रोवै मती, तेरी मइया को होता सबर हो नहीं ।
जबकि मौसी नें झटका दिया गोद से बदी करने में रक्खी कसर ही नहीं ।।

(४) चौबोला

सांगीतों या **नौटंकियों** में चौबोले अधिक गाये जाते हैं । चौबोला नाम के लोक-गीत में पहले एक दोहा होता है फिर चार बोल (चार चरण) अट्ठाईस मात्राओं के होते हैं । पहले बोल के पूर्वार्द्ध में दोहे का अन्तिम चरण ज्यों का त्यों रक्खा होता है । चार बोलों के बाद एक दौड़ पड़ती है जिसमें चार कड़ियाँ (चरण) रहती हैं । पहली तीन कड़ियाँ १३-१३ मात्राओं की और चौथी २८ मात्राओं की होती हैं । वास्तव में तो अट्ठाईस मात्राओं वाले चार चरण ही 'चौबोला' कहे जाते हैं, जिनका उदाहरण निम्नांकित है—

"इत उत फूटी रौस देखि माली बढ़ि चल्यौ अगारी ।
चौपट्टा करि दई बाग की सूअर नैं फुलबारी ।।
आलू बैंगन मैंथी गोभी नास भई तरकारी ।
लइयो लठा नैंक जल्दी ते धंधा की म्हैतारी ।।"

(५) हीरो

ये गीत प्रायः दोहों के रूप में होते हैं । दोहे के पीछे १२ मात्राओं को एक छोटी-सी कड़ी और गायी जाती है ।

"अरे बिन्दावन बंसी बजी, और मोहे तीनों लोक ।
जो तीनों मोहे नहीं, सो रहे कौन से लोक ।।
स्याम सुधि लेउ मेरी ।"

(६) झूलना

यह लोक गीत पिंगल शास्त्र के झूलना[2] छन्द से भिन्न है । झूलना नाम के लोक-गीत में पहले एक दोहा होता है फिर ३२-३२ मात्राओं की चार कड़ियाँ (चरण) होती हैं ।

"मैं मूरख अज्ञान हूँ, माफ करौ अकसीर ।
महरि करौ जो औलिया, हे बागड़ के बीर ।।
बागड़ के बीर सुनौ बिनती नहिं कहने का कुछ ध्यान मुझे ।
करजोड़ करूँ बिनती स्वामी इस दम की हरदम लाज तुझै ।।
भूले आखर बतला देना नहिं दूजी मुझको बात सुझे ।
कहै 'जनकलाल'[3] दंगल अन्दर सब जग में जाहरपीर पुजै ।।"

---

[1] इसका हर एक चरण बहुत लम्बा होता है, इसलिए इसे बहरतबील (लम्बी बहर) कहते हैं ।

[2] प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ, अन्त में गुरु और लघु; और ७, ७, ७ और ५ मात्राओं पर यति । यही पिंगल-शास्त्र के झूलना का लक्षण है ।

[3] हाथरस निवासी जनकलाल और टोडरमल ने 'झूलना' बहुत लिखे हैं ।

(७) लामनी या लाबनी

लामनी या लाबनी नाम के गीत लावनी छन्द (२२ मात्रा का छन्द जिसके चरणान्त में गुरु होता है। २, १०, १० पर यति) में ही गाये जाते हैं। जैसे—

"दुख हरौ द्वारिकानाथ सरन मैं तेरी।" (ला० गणेशप्रसाद, फर्रुखाबाद)

एक प्रकार का लाबनी नामक लोकगीत बत्तीस मात्राओं का भी होता है, जैसे—

"कहुँ चौमुख दिबला घीअन के सजे सुबरन थार दिबारी में।"[१]

§१२०२—**रसिया और उसके भेद**—अलीगढ़ जनपद में रसिये बहुत गाये जाते हैं। ये यहाँ के सर्व-प्रिय गीत हैं। हाथरस तहसील में रसियों की और खुर्जे में ख्यालों की धूम मची रहती है। रसियाबाजी में खिच्चू[२] आटेवाले ने और लावनीबाजी अर्थात् ख्यालबाजी में हरवंश खुर्जेवाले ने नाम कर लिया है। अलीगढ़ के मौहल्ले जयगंज में पं० रोशनलाल शर्मा हिन्दुस्तान प्रेस वाले अलीगढ़ नगर के रसियेबाजों के उस्ताद माने जाते हैं। पंडित यज्ञदत्त 'यज्ञेश' जयगंज अलीगढ़ तथा ठा० जगनसिंह सेंगर भी ख्याल बनाते हैं। अकराबाड़ के गोवर्द्धनलाल रसियों में और त० कोल के गाँव नूरपुर निवासी पं० रामचन्द्र जी रसियों में प्रसिद्ध हैं।

रसिया गीत के विभाग

मुख्य रूप से रसिया गीत के तीन भाग हैं—(१) **टेक** आदि की कड़ी। (२) **जिकिड़ या भरती**=मध्य की कड़ियाँ। (३) **उड़ान, मिलान, तोड़ या टूटन**=अन्त की कड़ी जिसकी समाप्ति पर तुरन्त टेक की आवृत्ति की जाती है।

भरती की कड़ियों में छन्द या बहरों के योग से उस रसिये को **छन्द रसिया** और **बहर रसिया** भी कह देते हैं। रसिया गीत की भरती में पड़नेवाले छन्द की प्रत्येक कड़ी में १६ मात्राएँ होती हैं। छन्द की जगह पाँच कड़ी का **खमसा** (अ० खम्स=पाँच का समूह) डाल दिया जाय तो वह **खमसा रसिया** कहाता है। बहरों के नाम स्थानों के आधार पर हैं, क्योंकि उन स्थानों के लोक-गीतों में उनका विशेष प्रचार है। भरती में कभी-कभी कुछ कड़ियाँ विशेष ढङ्ग की गायी जाती हैं, जो **खंजरी, लहर** या **रंगत** कहाती हैं।

§१२०३—**बहरों के नाम**—(१) रौहतकी[३] बहर (२) हाथरसी बहर[४] (३) ब्रज बहर[५]।

---

[१] प्रसिद्ध लावनीबाज जनकवि पं० हरिवंशलाल खुर्जा निवासी द्वारा रचित।

[२] हाथरस के खचेरमल (खिच्चू आटेवाले) के अखाड़े की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—शेर-सिकन्दर, गोपी रघुवर, चन्दा पन्ना, खिच्चू-खुन्नो। हाथरस में गुल्लाभगत का भी रसियों का एक अखाड़ा है।

अलीगढ़ नगर के गुलजारी लाल का रसियों का अखाड़ा अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार बताता है—
बैरगलाल, मानिक चौक, लखमीचन्द मानिक चौक; गुलजारी लाल, चँदनिया।
बौहरे जगन्नाथ का अखाड़ा रसियाबाजी में प्रसिद्ध है। उसकी गुरु परम्परा इस प्रकार है—सुन्दरलाल, जगन्नाथ माहेश्वरी गोटेवाले, रामचन्द नूरपुर।

[३] पंजाब की रौहतक नामक तहसील के गाँवों में यह बहर (तर्ज) बहुत प्रचलित है।

[४] अलीगढ़ जिले की हाथरस तहसील में यह बहर बहुत गायी जाती है।

[५] मथुरा-वृन्दावन के आस-पास के गाँवों में यह बहर बहुत चलती है।

बहर

"अरे बागन में रोवै नारि, मेरौ कुमरु नाग-नैं खायौ।
जब ज्यादै रोमन लागी। रौहितास मूरछा जागी।
बोलन लागौ राजकुमार ॥ मेरौ० ॥"

रसिया गीत का चौक

साधारणतया एक रसिये में चार चौक होते हैं। टेक से लेकर उड़ान तक का भाग **चौक** कहाता है। **बहर, छन्द, खमस, लहर** आदि चौक के अन्तर्गत ही होते हैं। लम्बी बहर के रसिये की टेक—"मेरे पीहर में जलेबी लच्छेदार चना के लडुआचौं लायौ।"

रसिया

(**टेक**) "लज्जा भगतन की बचाई सो बचइयौ मेरे राम।
(**भरती**) पति ते छुटी दूरि भयौ बेटा, गयौ राजु और धाम।
(**उड़ान**) चक्रपती भंगी घर बिकि गये सो सब त्यारे काम ॥लज्जा०॥"

रंगत या लहर—

"दोऊ हाथ जोरि भरत ठाड़े कहैं सुनौं मात।
कित गये जननी बताइदै मोइ मेरे भ्रात।
सूनी सी अजुध्या चौं दिखाई देति कहा बात ॥"

लहर और छंद

लहर—"देखिकैं उदास बोले सुग्रीव ते भगमान। बालि कौ तौ एक बान में,
घटाऊँ अभिमान। बोले सुग्रीव मैंनैं सीया जी की ठानी ठान ॥"
छंद—"सीया ढूँढ़ि लैंउँगो जसु मैं। कोटिन बन्दर मेरे बस में।
बनिकैं मितुर दोउ आपुस में। भुज गहन लगे ॥"

§१२०४—**कड़ियों के आधार पर रसियों के नाम**—(१) दुकड़िया (२) तिकड़िया (३) साढ़े तिकड़िया (=साढ़े तीन कड़ियों का)।

(१) **दुकड़िया रसिया**—इसमें टेक के अतिरिक्त दो कड़ियाँ और होती हैं। पहली कड़ी **भरती** (अन्तरा) और दूसरी **टूटन** (स्थायी) कहाती है।

"कैसैं आयौ आजु अनमनौ रे बताइदै रघुबर मोइ।
भान रूप चहरा तेरौ हैरह्यौ ज्यौं बिन दीआ लोइ।
रही उदासी छाइ कुमर तेरी कहा चीज गई खोइ ॥कैसैं०॥"

(२) **तिकड़िया रसिया**—इसमें टेक के अतिरिक्त तीन कड़ियाँ एक तुकान्त की १६-१६ मात्राओं की होती हैं। तदुपरान्त उड़ान की एक कड़ी रहती है।

"अभिमन्यू राजकुमार चलिदयौ लड़िबे कूँ।
चल्यौ है करिकैं कोप करार।
संग में बीरन की भरमार ॥

अंग पै अभय कबच कूँ धारि।
पहुँचि बूह के बीच अरिन कूँ दई एक ललकार ।।चलिदयौ०।।"

(३) **साढ़े तिकड़िया रसिया**—इसमें टेक के अतिरिक्त साढ़े तीन कड़ियाँ होती हैं। पहली तीन कड़ियाँ १६-१६ मात्राओं सहित एक ही तुकान्त की और चौथी ८ मात्राओं की होती है।

"मंझा रुदनु करै महलन मैं। बारह बरस रही बिपतन मैं।
सुत मैंनैं जनमौ सन्तीबन में। भारी कष्ट सहे ।।"

§१२०५—**टेक के आधार पर रसियों के नाम**—(१) **छोटी ढब का रसिया**—जिसकी टेक कम मात्राओं की होती है वह **छोटी ढब का रसिया** कहाता है।

"रोइ रही महलन में, मलखान धबल की नारि।"

(२) **लम्बी ढब का रसिया**—जिसकी टेक में अधिक मात्राएँ होती हैं वह **लम्बी ढब का रसिया** कहाता है।

"बहना मैं दधि बेचन गई भेट भई मेरी स्याम ते।"

× × × ×

"पपिहा पिया पिया मति बोलै मेरे होति जिगर में पीर।"

(३) **ठड्डा रसिया**—इसकी टेक लम्बी ढब के रसिये से भी अधिक बड़ी होती है।

"बारे देवरिया मेरे अँगना मैं नीबरिया लगाइ दीजो।"

§१२०६—**बहर और छन्द के आधार पर रसियों के नाम**—(१) **रौहतकी बहर रसिया**—इसकी भरती अर्थात् जिकिड़ में रौहतक की तर्ज गाई जाती है।

"तुमनैं नाहक में बढ़ायौ बालम बैर, चुराई सीया रघुबर की।
रघुबर की सुकुमारी सीया, आप चुराकर लाये।
घट घट के जो अन्तरजामी, तिनते नहिं दहलाये ।।"

(२) ब्रज बहर रसिया

"जसोदा तेरे लाला नैं, मेरी दई ऐ मटुकिया फोरि।
गैल में बैठ्यौ रूपु बनाइ। संग के ग्वालऊ लये बुलाइ।
मटुकिया सिर ते लई उठाइ। अचक ते भरिलये दौना आइ।
गोरस की झंझा झोटिन में बइयाँ दई मरोरि ।। जसोदा० ।।"

(३) हाथरसी बहर रसिया

"हठ छोड़ि चुगाऔ गइयाँ, मति रोकै गैल कन्हइयाँ।
हठि जा कान्हा डगर छोड़ि मैं दधि बेचन कूँ जाउंगी।
अब तौ होति अबेर साँवरे कल्हि फेरि मैं आउंगी ।।
हाथ जोरि कैं करूँ बीनती, परूँ तिहारे पइयाँ ।। मति रोकै० ।।

(४) **छन्द रसिया**—दोहा, छन्द और तोड़ को क्रमशः रखते हुए छन्द रसिया गाया जाता है।

दोहा—"कहा कहूँ सखि आज की, कान्हा नैं लई घेरि।
बरजोरी मोते करी, ताही ते भई देर॥

छन्द—"हालत सुन तू नागर नट की।
फरिया फारी बइयाँ झटकी।
घेरैं ठाड़ौ गैल पनघट की।
तेरौ सामरिया॥"

(५) **खमसा रसिया**—इसमें क्रमशः दोहा, टेक, खमसा और तोड़ रहते हैं।

दोहा—"राजसिंह मेवाड़ के राणाकुल महराज।
चूड़ावत और चंड जी सैना के सिरताज॥"

टेक—चूड़ावत की सुहानी सुन्दर नारि छत्रानी रानी हाड़ी थी।
खमसा—समर भूमि में मुझको जाना पड़ेगा। तुझे धर्म अपना निभाना पड़ेगा।
जौ बैकुंठ पौंचूँ गती बीर पाकर। सती होके तुमको भी आना पड़ेगा।
वहाँ पर देखूँगा तुम्हारा दीदार॥चूड़ावत०॥"

§१२०७—**ख्याल और उसके प्रकार**—(क) ख्याल नाम लोक-गीत गानेवाले **ख्याल बाज** कहाते हैं। ख्यालबाजों में मुख्य दो अखाड़े हैं—(१) **कलगी** (फा० कलगी) (२) **तुर्रा** (अ० तुर्रा=पगड़ी आदि में लगा हुआ फुँदना)[1]

कलगीवाले शक्ति को पूजते हैं और कलगी को आदि शक्ति (माया शक्ति) का प्रतीक मानते हैं। उनके विचार से प्रकृति का ही नाम शक्ति है, सारे जगत् की रचना का मूल कारण भी वही एक आदि शक्ति है। कलगीवालों ब्रह्म (शिव) को मानते हैं उन का कहना है कि श्री कृष्ण के मुकुट में और हजरत मुहम्मद साहब के सिर पर कलगी विराजमान है, इसलिए उन्होंने अद्भुत कार्य कर डाले।

तुर्रेवाले 'पुरुष' या 'शिव' को मानते हैं। उनका कहना है कि हमारा तुर्रा पुरुष है और कलगी स्त्री है। स्त्री सदा पुरुष से छोटी रही है। कलगीवाले जब ख्याल आरंभ करते हैं तब पहले दुर्गा या पार्वती की स्तुति गाते हैं, जिसे वे **भेट** कहते हैं। तुर्रेवालों का भेट में कोई इष्ट देव नियत नहीं है; लेकिन वे राम, कृष्ण और महादेव आदि पुंलिङ्ग देवों ही की **भेट** कहते हैं।

(ख) **कलगीवाले अखाड़े की गुरु-शिष्य परम्परा**—नत्थूसिंह व कालियानसिंह। नत्थूसिंह की शिष्य परम्परा में क्रमशः निम्नांकित खलीफा प्रसिद्ध हैं—बैजाद मियाँ खुर्जा; अरमा साहब डिबाई; मेंड़ साहब खाई डोरा, अलीगढ़; अब्दुल लतीफ खाई डोरा।

(ग) **तुर्रेवाले अखाड़े की गुरुशिष्य परम्परा**—

तुखन गिरि और भैरों सिंह। तुखन गिरि की शिष्य परम्परा में निम्नांकित मनुष्य हैं। तुखनगिरि; हब्ब खाँ, टनटन पाड़ा अलीगढ़; यूनिस खाँ, हकीम की सराय अलीगढ़; वहीद, रहमान की सराय अलीगढ़।

कलगी को माननेवालों में एक अखाड़ा और भी है जिसे **लश्करी** कहते हैं। लश्करी अखाड़े के ख्यालबाज अपने को **टकसाली कलगी** का पूजक बताते हैं। ख्यालबाजों में **छत्तर** और **मुकट** नाम के भी अखाड़े होते हैं।

[1] **कलगी अखाड़े के प्रवर्तक शाहअली फकीर और तुर्रा अखाड़े के प्रवर्तक महात्मा तुखनगिरि थे। ये दोनों मध्यप्रदेश-निवासी थे।**

§१२०८—**तर्जों के विचार से ख्यालों के मुख्य भेद—**

(१) **ठड्डा ख्याल** या **खड़ी रंगत का ख्याल**

(२) **तबील ख्याल** या **लम्बी रंगत का ख्याल**

(३) **सिकिस्ता ख्याल** या **लँगड़ी रंगत का ख्याल**

(४) **बची रंगत का ख्याल**—इसके अन्तर्गत कई तरह की रंगतें होती हैं। **छोटी रंगत, डेढ़रंगत** और **लावनीख्याल** बची रंगत के ही भेद हैं। पिंगल शास्त्र में एक लावनी ३० मात्राओं की भी होती है जिसमें १६, १४ मात्राओं पर यति होती है। इसी लावनी के आधार पर गाया हुआ ख्याख **लावनी ख्याल** कहाता है।

(१) **खड़ी रंगत का ख्याल—**

"गैल चलत सखियन सूँ अटकै बानि बुरी नागर नट की।
ठाड़ौ रोकै गैल कन्हइयाँ सखी आजु बेढब अटकी ॥"

(२) **तबील ख्याल** या **लम्बी रंगत का ख्याल—**

"चल देख सखी जमुना तट पै मनमौहन बीन बजाइ रह्यौ।
रसभीनी सुरीली मुरली मैं अति अन्त मधुर-धुन गाइ रह्यौ ॥"

(३) **सिकिस्ता ख्याल** या **लङ्गड़ी रङ्गत का ख्याल**

"करिलै करनी कर ते सुन्दर जग में जौ तू आयौ है।
पुन्न भाग ते, तैनैं जा मानस तन कूँ पायौ है ॥"

(४) **बची रङ्गत का ख्याल**

छोटी रङ्गत

"आयौ सुन सखी सनूना। पति बिन सिंगार करूँ-ना ॥"

× × ×

"सपनौ साँच भयौ निसि कौ। छोड़ि अकेली चल्यौ सखी री।
वह पीतम किसकौ ॥"

ख्यालों में **काफिया** (तुकान्त) बदलने का एक हिसाब जो १२, ११ के खानों में बना रहता है **चन्द्रमा** या **तावीज** कहाता है। उसके प्रत्येक खाने में एक-एक शब्द लिखा रहता है। ताबीज की सहायता से ख्यालबाज ख्यालबाजी में दूसरे को हरा देता है।

§१२०९—**ख्यालबाजों** (ख्याल गानेवाले) के **अखाड़े** (मण्डली) जब कभी एक जगह इकट्ठे होते हैं, तब वे अपनी-अपनी **गवन्त** (गाने की कला) दर्शकों तथा श्रोताओं को दिखाते हैं। अन्त में वे **फटकेबाजी** (लानत-मलामत के ख्याल गाते हुए विरोधी पक्ष को नीचा दिखाने का ढंग) पर उतर आते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु विशेष पर रखकर जो बात कही जाती है, लेकिन उसका लक्ष्य किसी अन्य व्यक्ति की ओर ही होता है, उसे साहित्य में 'अन्योक्ति' कहते हैं। व्यंग्य, कटाक्ष, और लानत के भावों से भरी हुई अन्योक्ति लोक-अलंकार शास्त्र के अनुसार '**फटका**' कहाती है। उनके **जौरैं** (अ० जवार > जउर > जौर + ऐं = पास में) बैठा हुआ विपथी दल हारकर अपने **घर**[1] चला जाता है।

---

[1] डा० टर्नर ने 'नैपाली डिक्शनरी' में 'घर' (मकान) शब्द का मूल इंडोयूरोपियन भाषा के एक शब्द 'घोरो' (ghoro) माना है।

७६३

चन्दरमा या **ताबीज** [रेखा-चित्र ७६३]

§१२१०—**जिकड़ी भजन के भाग**—जिकड़ी भजन प्रायः फागुन-चैत में अधिक गाये जाते हैं। जिकड़ी के पाँच भाग हैं—(१) **गाह्यौ** (२) **टेक** (३) **साखी** या **फूल** (४) **झड़** (५) **उड़ान** या **टूटन**।

जिकड़ी के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"भूलि गये राग-रंग भूलि गये जिकड़ी। तीन चीज याद रहीं नौंन तेल लकड़ी।"[1]

(क) **गाह्यौ**—पहले छः कड़ियों का गाह्यौ होता है। इसमें चार कड़ियाँ **रोला** छन्द (११ + १३ मात्राएँ) की और अन्तिम दो उल्लाला छन्द (१३ + १३ मात्राएँ) की होती हैं।

"सत्य सुबन बलबान, भयौ जसु जग में छायौ।
सोचतु बारम्बार, कहा धनि! पापु कमायौ॥
उदय अस्त लौं राजु, सुनौ प्रानन को प्यारी।
को भोगैगौ राजु, बंसु नहिं चल्यौ अगारी॥
चलि बन में करि गुजरान, भजनु करैं भगमान कौ।
है जाङ्गे पूरन काम, चलौ राजु सब त्यागि कैं॥"

(ख) **टेक, साखी, झड़ावन और टूटन**—

टेक के पश्चात् टेकरा **साखी** या **फूल** एक कड़ी में और झड़ दो कड़ियों में होती है। झड़ के पश्चात् टूटन होती है।

---

[1] राग-रंग और जिकड़ी गाना सब भूल गये। केवल पेट भरने में काम आनेवाली तीन चीजें—नमक, तेल और लकड़ी ही याद रह गई अर्थात् केवल खाने-कमाने में ही लगे रहे। इस उक्त कहावत में 'जिकड़ी' शब्द के स्थान पर ८तहसील इगलास में 'चकड़ी' शब्द भी सुनने में आता है (चकड़ी = चतुरतायुक्त चंचलता)।

टेक—"निरबंसु भयौ दुखियानौ।"
साखी—"जापै ज्वाबु दयौ रानी नैं।"
झड़ावन—"पुन्नु करौओ मिलिगयौ पीया राजु यहाँ अपुढ़ारौ ई।"

कछू धर्म करौ कछू कर्म करौ,
तातें चलि जाय बंसु तिहारौ ई॥

टूटन—"तुमपै महरि करैं तिरलोकी लगिजाय ठीकु-ठिकानौ। निरबंसु०॥"

§१२११—जिकड़ी भजन के गाने के लिए दो मंडलिताँ होती हैं। **अगेड़िया जोट** (आगे गानेवाली मंडली) की गायी हुई कड़ी को **पिछेड़िया जोट** (पिछली मंडली) दुहराती है। पिछली मंडली सुर भी देती है। साखी कहते समय जो लम्बा सुर खींचा जाता है वह **हेकरा** कहाता है। सुर देने के लिए पिछेड़िया जोट 'थेईरा थेईरा थेईरा' भी कहती है। अगेड़िया जोट जब टूटन कह लेती है तब उसमें सुर मिलाने के लिए पिछली मंडली **'थेइरा'** तीन बार कहती है। टेक की आवृत्ति पर भजन की एक **झड़** या **चौक** पूरा हो जाता है। तब गाये हुए पूरे चौक को अगली मंडली का एक आदमी बिना बाजे के दुहराता है। उसे **अरथाना** कहते हैं। चौक के बीच में कहीं-कहीं चौपाई और ढोला की तर्जें भी अलग से गायी जाती हैं जो **रंगत** कहाती हैं। नामी जिकड़ी-मंडली **फूलडूलों** (जिकड़ी भजन गानेवालों का सम्मेलन) में रंगत की बहार अवश्य दिखाती है। साधारणतया एक जिकड़ी भजन में **चार-झड़ें** अर्थात् **चार चौक** होते हैं। चौक को अरथाते समय **रसिया** (रसियाई अर्थात् जिकड़ी भजन गाने वाला व्यक्ति) उसे बहुत धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक कहता है, **हुल्ल-हुल्ल** (लपड़-झपड़, शीघ्रता) नहीं करता। जिकड़ी भजनों के फूल-डोलों में **होड़** (प्रतियोगिता) चलती है और काफी **भब्भर** (शोरगुल) तथा **कुकहेरा** (आवाज़-ऊधम) मचता है।

अध्याय २

लोक-वाद्य

§१२१२—**हाथ से बजनेवाले बाजे**—(अकारादि क्रम से)

(१) इकतारा (२) इकनारिया (३) इन्दुरबाजा
(४) किंगरी (५) किन्नरी (६) कुड़मुड़ी
(७) खंजरी (८) खटतार (९) गड़गड़ी
(१०) घंटातरंग (११) चंग (१२) चमेली
(१३) चीमटा (१४) जलतरंग (१५) जील
(१६) झाँझ (१७) झालर (१८) झींगा
(१९) झुंझुना (२०) टलटलिया (२१) डुगडुगी
(२२) डौरू (२३) ढप (२४) ढोल

(२५) ढोलक (२६) ढोलका या ढुलका (२७) तंबूर
(२८) तबला (२९) तमूरा (३०) ताँसा
(३१) नगाड़ा (३२) पखावज (३३) फिटल
(३४) बम्ब या धोंसा (३५) बेला (३६) मजीरा
(३७) मदनभेरी (३८) मिरदंग (३९) मोरबीन
(४०) सारंगी (४१) सितार (४२) सुरसागर
(४३) सूपरा या फटका (४४) सौरंगी (४५) हुपंग

§१२१३—**मुँह से बजनेवाले बाजे**—(अकारादि क्रम से) (१) अनफूलन (२) अलगोजा (३) कलारनेंट (४) कारनेंट (५) टेंगर (६) तुन्ना या तूरना (७) तुरई (८) नफीरी (९) नसतरंग (१०) पँचमुखा नादी या संखा (११) पपइया (१२) पीपनी (१३) फनिया बैन (१४) बाँसुरी या बंसी (१५) मधुरिया बैन (१६) म्हौंचंग (१७) संख (१८) सरकल या भौंका (१९) सहनाई (२०) सिंगी।

§१२१४—**पाँवों से बजनेवाले बाजे**—(अकारादि क्रम से) (१) गलगला या घूँघरा (२) घुँघरू (३) पंसुरी।

§१२१५—**बाजों की नामावली का क्रम**—(१) मढ़े हुए बाजे (२) तारों के बाजे (३) फूँक से बजनेवाले बाजे (४) अन्य बाजे।

मढ़े हुए बाजे

(१) ढोलक के अंग-प्रत्यंग

§१२१६—काठ और बकरी की खाल से बना हुआ एक बाजा **ढोलक** कहलाता है। इसमें लम्बा और गोल अर्थात् अण्डाकार पोला काठ होता है जिसके दोनों सिरों पर खाल मढ़ी रहती है। पोले काठ को **घेरा** और मढ़ी हुई खाल को **पुरा** कहते हैं। ढोलक बजानेवाला **ढुलकिआ** कहाता है। ढुलकिआ के दाहिने हाथ की ओर का पुरा **मादा, मादीन** या **नारी** कहलाता है।[1] मादा पर ढुलकिआ अपनी उँगलियों की चोट मारता है जिसे **ताल** या **ताली** कहते हैं। ताल की ध्वनि मीठी और सुरीली होती है। ढुलकिआ के बायें हाथ की ओर का पुरा **नर** कहाता है। इसकी आवाज भारी और मोटी होती है। नर पर ढुलकिआ हथेली की चोट मारता है जो कि **थप्पी** या **गद्दा** कहाती है। थप्पी लगने पर जो नर में से आवाज निकलती है, उसे **गमका** कहते हैं। नर पुरे के ठीक बीच में गोल-गोल काला मसाला-सा लगा रहता है, उस मसाले को भी **गद्दा** ही कहते हैं।

§१२१७—स्त्रियों के गीतों में ढोलक प्रायः तीन तरह से बजती है—(१) **थप्पिया**—इसमें नर और मादा दोनों पुरों में थापी लगती है। (२) **लपेटिया**—इसमें मादा में **लपेटा** (उँगलियों की क्रमशः चोट) और नर में थप्पी लगती है (३) **नगड़िया**—यह लपेटा के ढंग पर ही बजती है; लेकिन जल्दी और ऊँची आवाज में बजायी जाती है। प्रायः स्त्रियों के नाचों में नगड़िया ढोलक ही बजती है।

---

[1] कुछ ढुलकिआ अपने दाहिने हाथ की ओर **नर** पुरा और बाँये हाथ की ओर **मादा** पुरा करके भी ढोलक को बजाते हैं।

दोनों पुरों के चारों ओर खाल से मढ़ी हुई दो गोल फच्चटें चढ़ी रहती हैं; वे **कौंड़री** कहाती हैं। दोनों कौंड़रियों में कई-कई छेद होते हैं जिन्हें **घर** कहते हैं। उन घरों में होकर एक लम्बी डोरी डाल दी जाती है जिसे **जोती** कहते हैं। जोती में पीतल या लोहे के कई छल्ले डाले जाते हैं। वे छल्ले **कौंडर** (सं० कुण्डल) कहाते हैं। कौंडरों से ढोलक के पुरे कस जाते हैं और उनमें से **ताल** और **गमका** ठीक तरह से निकलने लगते हैं। घरों में फँसी हुई जोती **कसान** कही जाती है। कसान में ही एक जगह अलग से एक छोटी-सी **डोरी** (देश० दवरिका > डवरिआ > डोरिआ > डोरी) और बाँध देते हैं। उसे **टँगैनी** कहते हैं। ढुलकिआ ढोलक बजाते समय अपनी दाहिनी टाँग को टँगैनी में डाल लेता है ताकि ढोलक अपनी जगह पर ही रहे, इधर-उधर हिले-डुले नहीं। जब दोनों पुरे सख्त और खिंचे हुए होते हैं, तब **चढ़ी ढोलक** कही जाती है। जब पुरे ढीले कर दिये जाते हैं तब **उतरी ढोलक** कहाती है। उतरी ढोलक ठीक नहीं बजती। वह **'ढब-ढब'** बोलती है। चढ़ी ढोलक के मादा पुरे में से **'कड़म-कड़म'** की आवाज निकलती है।

(२) मृदंग के अंग

§१२१८—मृदंग को जनपदीय बोली में **मिरदङ्ग** (सं० मृदंग) कहते हैं। **मिरदङ्ग** बनावट में लगभग ढोलक-सा ही होता है। इसके घेरे की लम्बाई ढोलक से कुछ अधिक होती है। यह सिरों पर कम चौड़ा और बीच में अधिक चौड़ा होता है। मृदंग का दाहिना पुरा **नर** और बाँया **नारी** कहाता है। इसकी कौंड़री के घरों में कस की **पटारें** (चमड़े की डोरियाँ) पड़ी हुई होती हैं जिनसे पुरे कसे रहते हैं। पटारों के नीचे लकड़ी की गट्टकें लगी रहती हैं। पटारों को **सिकंजे** (फा० शिकंजा) कहते हैं। मृदंग के पुरों पर आवाज के लिए गोंद मिला हुआ गेहूँ का आटा लगाया जाता है जो कि **लाग** कहाता है।

§१२१९—लोकवाद्यों में मृदंग बहुत प्राचीन है। बाल्मीकि रामायण में दुन्दुभि, मृदंग, वीणा और पणव बाजों का उल्लेख अयोध्या-वर्णन के प्रसंग में हुआ है।[1]
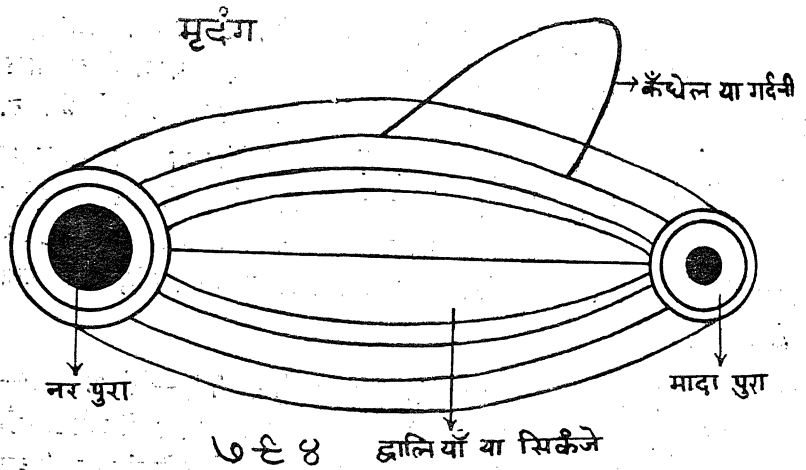
[रेखाचित्र ७६४]

[1] "दुन्दुभीभिर्मृदंगैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम्॥"
बाल्मीकि रामायण, प्रका० रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सन् १९४६, बाल० ५।१८

(३) ढोल के अंग

§१२२०—ढोल प्रायः दो तरह के होते हैं। छोटा ढोल तो **ढोल** ही कहाता है किन्तु बड़े ढोल को **बड़ढोल** कहते हैं। संभवतः यही प्राचीन काल की भेरी[1] है। छोटा ढोल **ताँसिया ढोल** भी कहाता है क्योंकि यह **ताँसे** (ताशा) के साथ ही अधिकतर बजाया जाता है। किसी वस्तु का मामूली काम का भी न रहना 'ढोल ते खाल जानौ' कहलाता है।

§१२२१—ताँसिया ढोल आकार में बड़ी ढोलक के समान होता है। इसके एक पुरे पर हत्थी और दूसरे पर **डंका** (बेत की टेढ़ी डण्डी) मारा जाता है। कौंड़री, जोती और कौंडर ढोलक के-से ही होते हैं। ढोल बजानेवाला **ढोलिया** कहाता है।

§१२२२—बड़े ढोल को **ढुलंगा** भी कहते हैं। प्रायः बरातों में चढ़त के समय ढुलंगा ही बजता है। ढुलंगे के पुरों का आकार लगभग रथ के पहियों के बराबर होता है। दाहिने हाथ की ओर का पुरा **नर** और बाईं ओर का **मादीन** (मादा) कहाता है। दोनों पुरे ही **डंकों** (एक लकड़ी जिसके एक सिरे पर कपड़े की गद्दक लगी रहती है) की चोटों से बजते हैं। नर का डंका बड़ा तथा भारी होता है और मादीन का डंका हलका होता है।

§१२२३—चौड़ा गोल तख्ता **हाँड़ी** कहाता है। हाँड़ी के दोनों किनारों पर गोलाई में लकड़ी जड़ी रहती है जिसे **घेरा** कहते हैं। ढुलंगे की हाँड़ी पर दो घेरे होते हैं। दोनों ओर पुरे और घेरे के बीच में **कौंड़र** या **कौंड़री** (सं० कुण्डलिका) होती है। कौंड़रियों के छेदों में जो डोरी पुही रहती है उसे **बरेस** कहते हैं। बरेस में कसने के लिए चमड़े के चौड़े-चौड़े छल्ले होते हैं जो **कसान** कहाते हैं। ढोलिया ढुलंगा को अपने गले में लटका सके, इसलिए उसमें एक चौड़ी पट्टी लगी रहती है जिसे **गर्दनी** या **कँधेल** कहते हैं। अन्दर हवा जाने के लिए ढुलंगे की हाँड़ी में एक छेद होता है जो **भोगली** या **ब्यारभोगली** कहाता है।

(४) ढुलके के अंग

§१२२४—ढुलंगा से छोटा **ढुलका** कहाता है। ढुलके की बनावट बिलकुल ढुलंगे की भाँति ही होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि ढुलके की हाँड़ी, घेरे और कौंड़री पीतल की होती हैं। पुरों को कसने के लिए ढुलके की हाँड़ी के ऊपर चारों ओर लोहे की **सरइयाँ** (सं० शलाका) और सरइयों में पीतल की **चुटकियाँ** लगी रहती हैं। चुटकियों के घुमाने से ढुलके के दोनों पुरे कस जाते हैं।

(५) तम्बूर के अंग

§१२२५—तम्बूर आकार में लगभग ढुलके के बराबर ही होता है। इसमें भी पीतल की हाँड़ी होती है। हाँड़ी पर चारों ओर सलाइयाँ और चुटकियाँ लगी रहती हैं। लेकिन तम्बूर ढुलके की तरह दोनों ओर डंके से नहीं बजाया जाता। इसको नुकीली दो लकड़ियों से एक ही ओर बजाया जाता है। उन डंडियों को **चोब** कहते हैं। तम्बूर के जिस पुरे पर चोबें लगती हैं, उसके नीचे की ओर भी खाल मढ़ी रहती है जो **मढ़ान** कहाती है और उस मढ़ान के ऊपर वृत्त के व्यास के रूप में तिहरी ताँतें बँधी रहती हैं। वे ताँतें **तंतनी** कहाती हैं। तंतनी से

---

[1] "शंखभेरीसहस्राणामहतानां समन्ततः।"
वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग ७८, श्लोक १९।

ही तम्बूर के ऊपरी पुरे में से **'तड़न्-तड़न्-सन्'** की आवाज निकलती है। पुरे की आवाज **'तड़-तड़'** और तंतनी की आवाज **'सन्नाटा'** कहाती है।
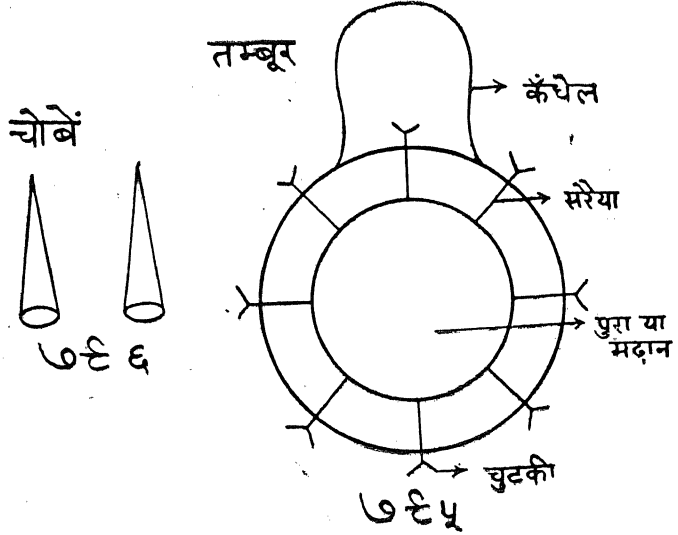
[चित्र-रेखा ७६५, ७६६]

(६) बम्ब या धौंसा

§१२२६—**बम्ब** नगाड़े अर्थात् दमामे से भी बड़ी होती है। इसे **धौंसा**[1] भी कहते हैं। प्रायः मन्दिरों और मसजिदों में बम्बें बजा करती हैं। बहुत बड़ी नाँद की तरह का बना हुआ लोहे का एक **घेरा** होता है। उस घेरे के मुँह पर खाल मढ़ी जाती है। उस खाल को **मढ़ान** कहते हैं। मढ़ान और घेरे के बीच में चमड़े की मोटी रस्सी चारों ओर बँधी रहती है जो **मुहार** कहाती
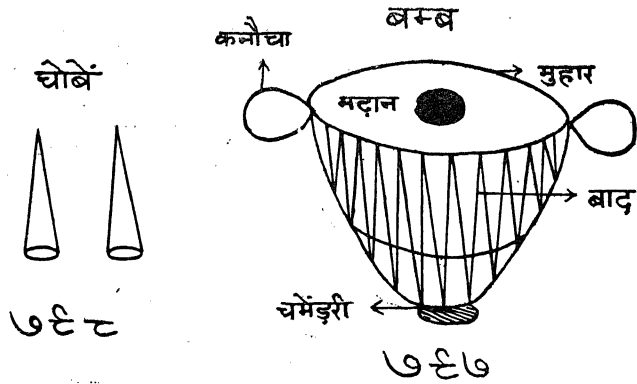
[रेखा-चित्र ७६७, ७६८]

है। मुहार के ठीक पीछे चमड़े की चौड़ी पत्ती लगी रहती है जिसे **बद्धी** (सं० बद्ध्री) कहते हैं। घेरे के नीचे चाम की बनी हुई एक गोल वस्तु लगी रहती है जो **चमेंड़री** (सं० चर्मन्+वै०

---

[1] बाजत दमामे लाखौं **धौंसा** आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़ै भारे की ॥
भूषण : शिवाबावनी, छं० ४५।

इएड्र) कहाती है। चमेंड़री और मुहार को आपस में कसते हुए चमड़े की पटारें जाल की भाँति घेरे के ऊपर फैली रहती हैं। उन पटारों को **बाद** या **बन्द** कहते हैं। बम्ब बड़ी-बड़ी **चोबों** से ही बजायी जाती है। बम्ब की आवाज को **दमदमा** या **दुन्दुमा** कहते है। संभवतः बाल्मीकि (रामायण, बालकाण्ड, ५।१८) ने 'दुन्दुभी' शब्द बम्ब के लिए प्रयुक्त किया है। बम्ब को उठाने के लिए उसमें चमड़े के दो **कौंड़े** (बड़े छल्ले) मुहार के पास इधर-उधर लगे रहते हैं। उन्हें **कनौचे** भी कहते हैं।

(७) नगाड़े के अंग

§१२२७—नगाड़े को **दमामा** या **नक्कारा** (अ० नक़्क़ारा) भी कहते हैं। इसका आकार बम्ब से छोटा होता है, परन्तु बनावट जैसी बम्ब की होती है ठीक उसी तरह की होती है। बम्ब में जिसे चमेंड़री कहते हैं, उसे ही नगाड़े में **पेंदी** कहते हैं। कौंड़ों की जगह नगाड़े में चमड़े के बड़े-बड़े छल्ले होते हैं जो **कान** या **कनौचे** कहाते हैं। नगाड़े की आवाज **गड़गड़ा** कहाती है। शेष अंगों के नाम वे ही हैं जो बम्ब के होते हैं। नगाड़ा बजानेवाला **नकारची** (फा० नक़्क़ारची) या **नगाड़िया** कहाता है।

(८) जील

§१२२८—इसकी बनावट बहुत छोटे नगाड़े की भाँति होती है। जील को **झील** भी कहते हैं। जील का पीछे का भाग जो मिट्टी (पकी हुई मिट्टी) का होता है **कूँड़ी** या **कूंडी** कहाता है। कूँड़ी के मुँह पर जो खाल मढ़ी रहती है वह **मढ़ान** कहाती है। जील प्रायः नगाड़े के साथ ही बजाई जाती है। वास्तव में नगाड़ा और जील मिलकर ही एक बाजा बनता है जिसे **नौबत** कहते हैं। नौबत में नगाड़ा यदि **नर** है तो जील **मादीन** (मादा) है। नर और मादा की मिली हुई आवाज को **घोर** कहते हैं। **'घुरना'** घोर से ही नाम धातु क्रिया बनी है। जनपदीय बोली में **'नौबत बजना'** के स्थान पर **'नौबत घुरना'** अधिक प्रचलित है। नौबत में **नफीरी** नाम का एक और बाजा भी बजता है जो मुँह से बजाया जाता है।

कुड़मुड़ी जील से छोटी होती है। छोटी जील को ही वास्तव में **'कुड़मुड़ी'** कहते हैं। छोटी कुड़मुड़ी **गड़गड़ी** कहाती है। जील, कुड़मुड़ी और गड़मड़ी की आवाज **'कुड़म-कुड़म'** कही जाती है। कुड़मुड़ी का **घेरा** भी पकी हुई मिट्टी का होता है जो सूरत-शक्ल में एक बड़े प्याले सा होता है।

[रेखा-चित्र ७९९, ७९९ (क)]
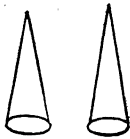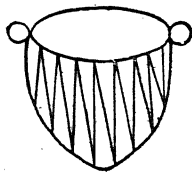
(९) ताँसा या पेटपीटा

§१२२९—ढोल के साथ में बजनेवाला बाजा **ताँसा** (ताशा) कहाता है। ताँसे को **पिटिआ**

या **बेटपीटा** भी कहते हैं क्योंकि यह बजानेवाले के पेट से चिपटा हुआ लटका रहता है। ताशे को बजानेवाला **पेटपीटरा** कहाता है। ताशे का ऊपर का भाग जो खाल से मढ़ा होता है **टिक्की** कहाता है। पीछे के भाग को **कुंडी** कहते हैं। कुंडी के किनारे-किनारे जो खाल लगी रहती है, वह **मगजी** कहाती है। मग़जी के पीछे चमड़े की एक डोरी होती है जिसे **कौंधनी** (सं० कायबन्धनी) कहते हैं। कुंडी के ठीक बीच में चमड़े की गोल वस्तु **इँडुरी** कहाती है। इँडुरी और कौंधनी में जो चमड़े की पटारें पड़ी रहती हैं, उन्हें **कसान** या **खैंच** कहते हैं। ताशे को गले में लटकाने में लिए उसी में एक रस्सी बँधी रहती है जिसे **कँधेल** कहते हैं। ताशा दो लकड़ियों से बजाया जाता है जिन्हें **जोड़ा** कहते हैं। ताशे के पीछे का भाग, जिसे **घेरा** या **कुंडी** कहते हैं, पकी हुई मिट्टी का बना हुआ होता है। घेरे की बनावट दही जमनेवाले कूँड़े की सी होती है। ताशे की आवाज **'तड़बड़-तड़बड़'** कहाती है।

पखावज
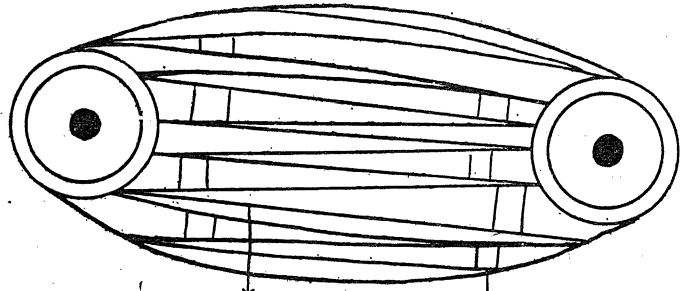
[रेखा-चित्र ८००]

(१०) पखावज

§१२३०—**पखावज** (त० माँट में इसे इकनरिया भी कहते हैं) ढोलक की भाँति की होती है। आकार में यह ढोलक से कुछ बड़ी होती है। पखावज (सं० पक्षातोद्य>प्रा० पक्खाउज्ज[1]>पखावज) का घेरा भी ढोलक के घेरे की भाँति लकड़ी का ही होता है, लेकिन पखावज के दोनों पुरों के बीच में काला-सा मसाला लगा रहता है। बाकी चीजें ढोलक की-सी ही होती हैं। मृदंग के पुरों से पखावज के पुरे गोलाई में बड़े होते हैं। **कसानों** (चमड़े की डोरियाँ) के नीचे **कसगिल्लियाँ** (लकड़ी की गट्टक) भी लगी रहती हैं।

(११) इन्दुरबाजा (इन्द्रबाजा)

§१२३१—भूत, प्रेत आदि का **खोर-खटका** (अनिष्टकारी प्रभाव) उतारने के लिए और साँप का विष दूर करने के लिए **स्याने** (भूत-प्रेतों की खोर उतारनेवाले) और **बाइगी** (साँप का विष उतारनेवाले) **इन्दुरबाजे** (सं० इन्द्रवाद्य) को बजाया करते हैं। इन्दुरबाजे को **नागबाजा** या **थारी** (सं० स्थालिका) भी कहते हैं। इन्द्रबाजा दो मिनट में तैयार कर लिया जाता है। पहले चलनी के घेरे पर एक मटका (बड़ा घड़ा) रखते हैं। फिर उस मटके के ऊपर

[1] पाइअसद्दमहण्णवो कोश, पृ० ६२०

फूल (काँसा) की थाली उल्टी रखकर एक डंडी से बजाते हैं। उस डंडी को **घेरनी** या **घेन्नी** कहते हैं। डंडी थाली में इस तरह मारी जाती है कि उसकी चोट थाली पर पड़ती है और साथ-साथ मटके पर भी। इन्दुरबाजा बजाना **'थारी धरना'** भी कहाता है। खोर उतारने के लिए जिस मनुष्य पर थारी धरी जाती है वह **दिवानौ** या **दिमानौ** (फा० दीवाना) कहाता है। दिवाना जब अपना सिर हिलाता है तब वह क्रिया **'खेलना'** कहाती है। यदि मुँह से वह कुछ कहता है तो उसे **'बक्कारना'** कहते हैं। खेलना और बक्कारना मिलाकर सामूहिक रूप में **'सिर आनां'** कहा जाता है। इन्दुरबाजे के साथ में कभी-कभी ढोलक भी बजती देखी गई है।
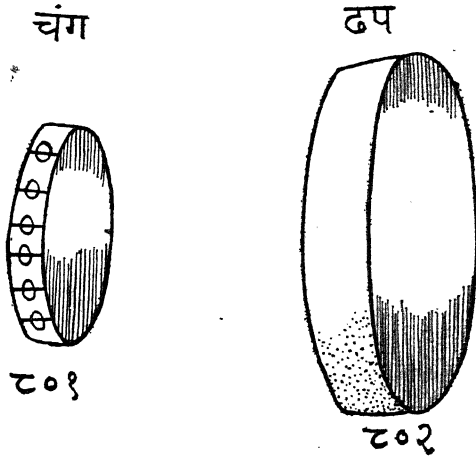
[रेखा-चित्र ८०१, ८०२]

(१२) **चंग**

§१२३२—**खंजरी, चंग** और **ढप** या **डफ** (अ० दफ़) नाम के बाजे बनावट में एक से ही होते हैं। खंजरी से बड़ी चंग और चंग से बड़ा ढप होता है। चंग एक ओर ही खाल से मढ़ी रहती है। इसका घेरा लकड़ी का बना हुआ होता है। यह आकार में थालीनुमा होती है। प्रायः **ख्याल** नाम का लोकगीत चंग पर ही गाया जाता है। खंजरी पर भी ख्यालबाज अपने ख्याल सुनाया करते हैं। ढप पर देवी (दुर्गा) के **छुन** (छन्द = गीत) गाये जाते हैं। ढप का घेरा एक ओर खाल से मढ़ा रहता है और दूसरी ओर (उल्टी तरफ) तनियों का जाल-सा बना रहता है। छोटा ढप **ढपली** या **ढपरी** कहाता है। बेकार घूमने के अर्थ में 'ढपरी चटकाइबौ' एक मुहावरा भी प्रचलित है। अलग-अलग मत हों तो कहा जाता है—"अपनी-अपनी ढपली अपनौ-अपनौ राज।"

§१२३३—चंग दोनों हाथों से बजती है। बाँये हाथ की **तन्नी उँगरिया** (सं० तर्जनी अंगुलिका) में एक लोहे या पीतल का छल्ला पहन लिया जाता है जिसे **टिपका** कहते हैं। चंग बजानेवाला टिपके को चंग के घेरे में मारता है और दाहिने हाथ से चंग का पुरा बजाता है। बाँये हाथ की तर्जनी उंगली **टिपकन्नी** और दाहिने हाथ की हथेली **तलथप्पी** कहाती है।

(१३) डौरू

§१२३४—डौरू (सं० डमरु) शंकर भगवान् का बाजा माना जाता है। जोगी लोग इसे बजाते हुए शंकर का ब्याह गाते हैं। जाहरपीर[1] (एक ग्राम-देवता) की जब जोति बजती है तब भी जोगी सारंगी के साथ डौरू को बजाते हैं। जोगी के सम्बन्ध में लोकोक्ति है—"घर कौ जोगी जोगना, आनगाँम कौ सिद्ध।"
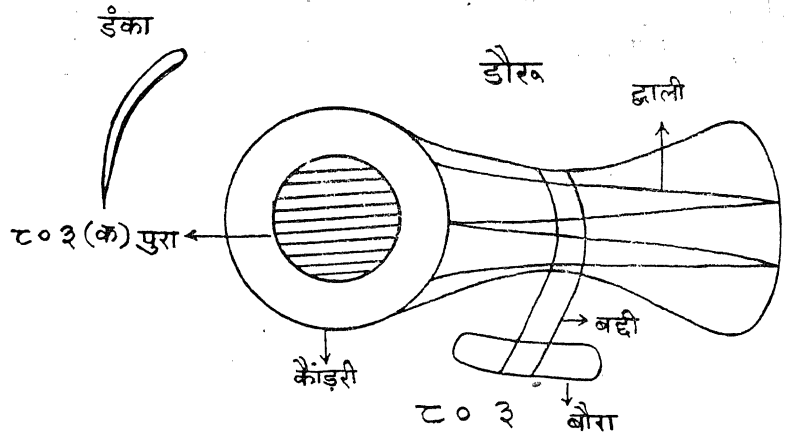
[रेखा-चित्र ८०३ से ८०३ (क) तक]

§१२३५—डौरू की बनावट डुगडुगी के समान होती है लेकिन इसके दोनों पुरे एक-से ही बनाये जाते हैं। इसका घेरा काठ का होता है जो बीच में गोल और गड्ढेदार होता है, इधर-उधर पुरों के पास घेरा बड़ा होता है। डौरू के पुरे बकरों की झिल्ली से मढ़े रहते हैं जिनके किनारों पर खाल से मढ़ी हुई गोल लकड़ी की **कौंड़री** लगी रहती है। उस कौंड़री में दो-दो अंगुल की दूरी पर **घर** (=छेद) बने रहते हैं जिनमें होकर सूतली पुही हुई होती है। उस सूतली को **द्वाली** कहते हैं। द्वालियों के ऊपर घेरे के ठीक बीच में कपड़े की एक पट्टी होती है जो **बद्दी** (सं० बद्ध्री) कहाती है। बद्दी में पकड़ने के लिए काठ की एक छोटी लकड़ी लगी रहती है जिसे **बौरा** कहते हैं। बद्दी को कड़ी और ढीली करने पर ही पुरे में से आवाज पतली और मोटी निकलती है। डौरू की आवाज '**बमका**' कहाती है। डौरू जिस टेढ़ी डण्डी से बजाया जाता है, उसे **डंका** कहते हैं।

---

[1] "नाथपन्थी जोगियों का कहना है कि जाहरपीर 'बाछल' नाम की स्त्री के गर्भ से गोरखनाथ के आशीर्वाद के फलस्वरूप पैदा हुआ था। यह चौहान ठाकुर था और बाद में मुसलमान धर्म में दीक्षित हुआ था।" गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में होनेवाले सन्तोषनाथ के एक शिष्य का नाम जाहरपीर भी था।

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ संप्रदाय, १९५० ई० पृ० १९४।

जाहरपीर और गुरु गुग्गा को एक ही माना जाता है।

श्री जगदीश सिंह गहलौत ने लिखा है कि गौगाजी, यह जिला हरियाना के गाँव मेहरी के चौहान राजपूत थे। सं० १३५३ में दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह द्वितीय के सेनापति अबू बक्र से युद्ध कर ये वीरगति को प्राप्त हुए। हिन्दू इन्हें देवता तुल्य मानकर भादों बदी ९ को इनकी जयन्ती मनाते हैं। मुसलमान इन्हें जाहरपीर के उपनाम से पूजते हैं।

—डा० सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २६२।

(१४) डुगडुगी

§१२३६—रीछ को नचानेवाला **मदारी** और बन्दर को नचानेवाला **कलन्दर** कहाता है। **डुगडुगी** को प्रायः मदारी और कलन्दर बजाया करते हैं।

डुगडुगी की घुण्डीदार डोरियाँ **तड़तड़िया** या **डंका** कहाती हैं। **घुंडियों को तड़ाके** कहते हैं। दोनों पुरियों के बीच की पोली लकड़ी **घेरी** कहाती है। घेरी के ऊपर **बँधी हुई सुतली कसान** कही जाती है। ढीली **ताला** (पुरियाँ) **कसानों** या **छालों** से ही कसी जाती हैं। **कसानों** के ऊपर घेरे पर चारों ओर लिपटी हुई डोरी **खैंच** कहाती है।

डुगडुगी
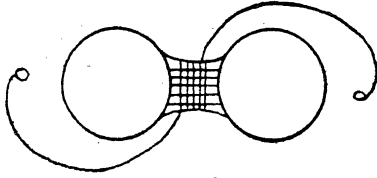
[रेखा-चित्र ८०४]

§१२३७—डुगडुगी बजाते समय डंकों की घुंडियाँ जब ताला या पुरी में लगती हैं तो जो ध्वनि निकलती हैं, वह **तड़बड़ा** कहाती है।

डुग्गी अर्थात् बायाँ तबला
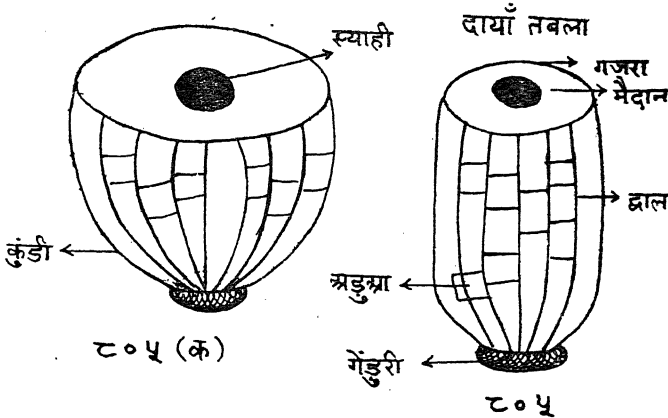
[रेखा-चित्र ८०५, ८०५ (क)]

(१५) तबला

§१२३८—तबला जोड़ी का बाजा है। दाँया **मादीन** या **नारी** और बाँया **नर** कहाता है। दाँये तथा बाँये दोनों मिलकर तबला कहाते हैं। दाँये को **तबला** और बाँये को **डुग्गी या धामा** कहते हैं। तबला बजानेवाला **तबलिया** या **तबलची** कहाता है।

§१२३९—दाँये की आकृति लम्बी होती है। इसका घेरा लकड़ी का बना हुआ होता है

जो ऊपर खाल से मढ़ा होता है। उस खाल को **पुरी** कहते हैं। पुरी के ठीक बीच में काला मसाला लगता है जिसे **स्याही** कहते हैं। पुरी के किनारे-किनारे चारों ओर चमड़े की गूथन होती है जो **गजरा, किनार** या **बैनी** कहाती है। गजरा और स्याही के बीच में पुरी का 'सफेद हिस्सा **मैदान** कहाता है। घेरे के पेंदे में चमड़े का एक गोल छल्ला रहता है जिसे **गैंडुरी** कहते हैं। गैंडुरी और गजरे में चमड़े की पतली पटारें कसकर बाँध दी जाती हैं जो **द्वाल** या **बद्दी** कहाती हैं। द्वालों के नीचे लकड़ी की गट्टकें लगी रहती हैं जिन्हें **अड़ुए** कहते हैं। द्वालों को अत्यन्त कसकर बाँधना **'हिर्रकर बाँधना'** कहाता है। अत्यन्त कसने के अर्थ में प्रसिद्ध जनपदीय क्रिया **'हिर्रना'** है।

§१२४०—डुग्गी अर्थात् बाँये तबले का घेरा मिट्टी का बना होता है जो **कुण्डी** कहाता है। कुण्डी के ऊपर जो द्वालें होती हैं उनमें चमड़े के छल्ले पड़े रहते हैं जिन्हें **कसान** कहते हैं। डुग्गी या धामा नाम का बाँया तबला हत्थी से बजता है। इसकी ध्वनि **गुम्माटा** कहाती है। धोबी **धोबी नाच** (धोबी लोगों का सामूहिक लोक नृत्य) में तबलों को कमर से बाँधकर खड़े-खड़े बजाता है।
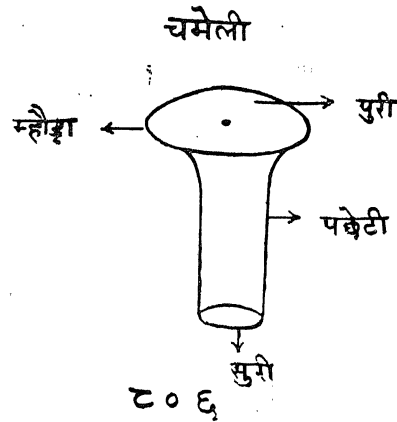
[रेखा-चित्र ८०६]

(१६) चमेली

§१२४१—**चमेली** जनपदीय बाजों में ताल-वाद्य है। इसकी सूरत-शकल चिलम-सी होती है। इसका घेरा मिट्टी का होता है जो आगे बड़ा और पीछे छोटा होता है। आगे का भाग **म्हौड़ा** और पीछे का **पछेटी** कहाता है। म्हौड़े पर खाल मढ़ी रहती है जिसे **पुड़ी** या **पुरी** कहते हैं। पुरी गोल होती है जिसका व्यास लगभग २४ अंगुल या १० इंच का होता है। चमेली पुरी पर डंडी मारकर बजाई जाती है। पछेटी के छेद में **बजवइया** (चमेली बजानेवाला) उँगलियाँ डाल लेता है। छेद को **सुरी** कहते हैं। सुरी को बन्द करने और खोलने पर चमेली की आवाज में फर्क पड़ता रहता है।

(१७) हुपंग या धपंग

§१२४२—**धपंग** या **हुपंग** बाजा कुछ-कुछ चमेली की-सी आकृति का ही होता है लेकिन उसमें एक तार और पड़ता है। इसका घेरा काठ या मिट्टी का ही होता है जो चिलम से मिलता-जुलता है। घेरा एक ओर खाल से मढ़ा रहता है। इसके बीच में होकर एक ताँत या तार जाता है जिसके एक सिरे पर एक छोटी लकड़ी बँधी रहती है। उस लकड़ी को **हत्था** कहते हैं। लम्बी-चौड़ी गप्प भरी बात करने के अर्थ में 'धपंग मारनौ' मुहावरा प्रचलित है।
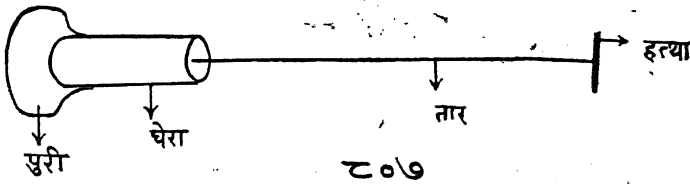
[रेखा-चित्र ८०७]

बजाते समय हुपंग के घेरे को बगल में दबाकर एक हाथ से हत्था पकड़ लेते हैं। इस प्रकार तने हुए तार या ताँत को उँगली से बजाते हैं। हुपंग बजते समय **'तुनकबम'** की आवाज करती है। त० माँट में हुपंग को **'भपंग'** और खैर में **घुपंग** भी कहते हैं। यह धोबिया नाच और **कुम्हर नाच** (धोबी-कुम्हारों के नाच) में बजायी जाती है।
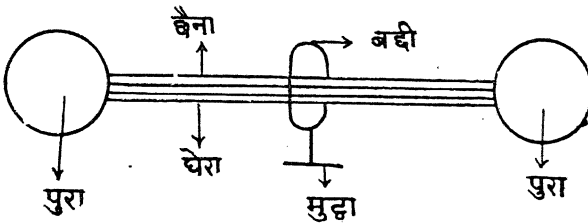
[रेखा-चित्र ८०८]

(१८) मदनभेरी

§१२४३—मदनभेरी का रूप डमरू से मिलता-जुलता है। डमरू का घेरा काठ का बनाया जाता है लेकिन मदनभेरी के पुरों के बीच में एक पोला बाँस होता है जो घेरा कहाता है। इस घेरे के ऊपर काँसे के तार लगे रहते हैं जो **छैना** कहाते हैं। घेरे के बीच में एक मोटी डोरी पड़ी रहती है जिसे मदनभेरी बजाते समय कड़ी ढीली करते रहते हैं। उस डोरी को **बँधनी** या **बद्दी** कहते हैं। बद्दी को कड़ी करके बजइया छैनों को भी दबाता रहता है ताकि ताल का स्वर बदलता हुआ निकले। पुरों के चारों ओर किनारे-किनारे चमड़े की गूथन होती है जिसे **किनार** कहते हैं। किनार से घिरा हुआ भाग **पुरा** या **पुड़ा** कहाता है जो **डंके** (बेंत की खमदार छोटी डंडी) से बजाया जाता है। मदनभेरी की आवाज डमरू से अधिक बारीक और मीठी होती है। डमरू के नाद में भारीपन होता है और मदनभेरी के में कोमलता।

(१६) इकनारिया

§१२४४—मदनभेरी और मृदंग के बीच का एक बाजा **नारी या इकनारिया** कहाता

८०९ इकनारिया
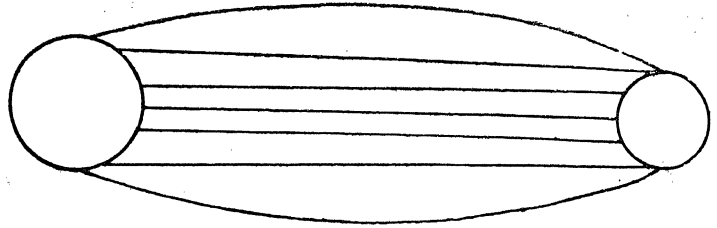
[रेखा-चित्र ८०९]

है। इकनारिया के घेरे की लम्बाई लगभग दो हाथ या डेढ़ हाथ होती है। इसका एक पुरा बड़ा और एक छोटा होता है। इकनारिया प्रायः मन्दिरों में आरती और कीर्तन के समय बजा करती है।

तारों के बाजे
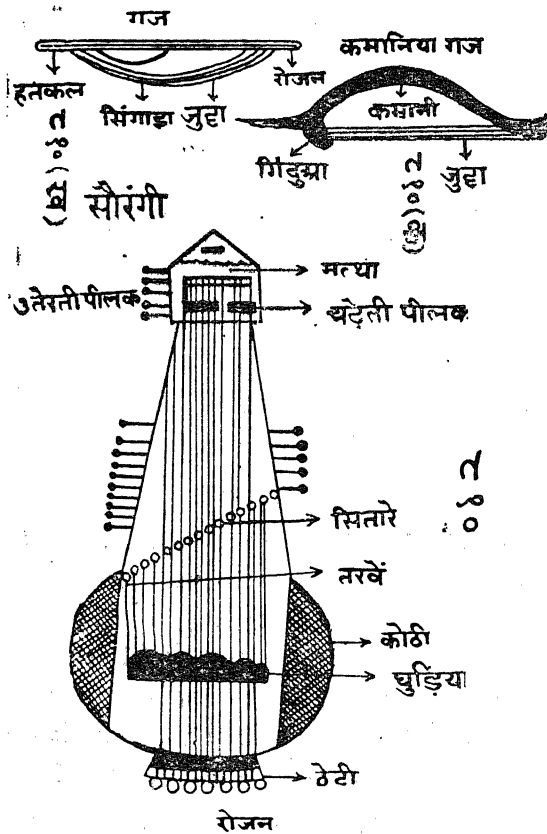
[रेखा-चित्र ८१० क, ख]

(१) सौरंगी

§१२४५—**सौरंगी** आकार में सारंगी से बड़ी होती है। बड़ी सौरंगी को **मीरासिया सारंगी** या **जहाजी सारंगी** भी कहते हैं। इसमें बहुत से तार होते हैं और आकार भी काफी बड़ा होता है। सौरंगी से भी बड़ा बाजा **सुरसागर** कहाता है जिसमें सौरंगी से भी अधिक तार होते हैं। सौरंगी और सुरसागर महफिली साज हैं।

§१२४६—छोटी सौरंगी **जोगियानी सारंगी** भी कहाती है। इसे प्रायः जोगी लोग जाहरपीर की जोति में बजाते हैं। इसमें अधिकतर तीन **रौदे** (ताँत की डोरियाँ) और सात **तुरपें** (पीतल के पतले तार) होती हैं। तारों को कड़ा और ढीला करने के लिए सौरंगी के बीच में दाहिनी ओर लकड़ी की सात खुँटियाँ लगी रहती हैं। रौदों को कसने के लिए ऊपर तीन खुँटियाँ लगी रहती हैं जिन्हें **कान** कहते हैं। सारंगी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"कान खिंचैं तो बोलैगी। नहीं तानि पिछौरी सोवैगी ॥"[1]

§१२४७—सौरंगी **जनानी** (स्त्री) कही जाती है। इसलिए कपड़े के जिस खोल में वह रक्खी जाती है उसे **घँघरिया** कहते हैं। सौरंगी का घेरा काठ का बना होता है। घेरे के प्रत्येक भाग के नाम लगभग वे ही हैं जो एक स्त्री के शरीर के हिस्सों के होते हैं।

(अ) घेरे के हिस्सों के नाम

§१२४८—पूरा घेरा मुख्य तीन हिस्सों में बँटा रहता है—ऊपरी भाग **सिर**, बीच का भाग **छाती** या **पसली** और नीचे का भाग **कोठी** कहाता है। कोठी में बना हुआ गहरा खोखला जिस पर खाल मढ़ी रहती है **गुलियाई** कहा जाता है। कोठी के नीचे किनारे पर लकड़ी की एक किनारी-सी निकली रहती है जिसके छेदों में रौदे और तुरपें बाँधी जाती हैं। उस किनारी को **ठेटी** या **ठोड़ी** कहते हैं। कोठी पर मढ़ी हुई खाल के ऊपर खाँचेदार एक पत्ती (काठ या हाथी दाँत की) खड़ी हालत में लगाई जाती है जो **घुड़िया** कहाती है। सौरंगी के रौदे या तुरपें घुड़िया के ऊपर साधते हुए ठेटी से सम्बन्धित की जाती हैं।

§१२४९—जहाजी सारंगी लगभग दो हाथ लम्बी और पौन हाथ चौड़ी होती है। इसकी कोठी की गुलियाई में एक खड़ा डण्डा लगा रहता है जिसे **पिठारी** या **रीढ़ा** कहते हैं। जहाजी सारंगी में कम से कम ३८ तार होते हैं जिन्हें **तरवें** कहते हैं। ताँत के तीन तार **रौदे** कहाते हैं जो स्वर के होते हैं लेकिन तरवें **साँस** (मन्द झंकार) दिया करती हैं। रौदों की बदलती हुई आवाजें **बोलकाट** कहाती हैं। उनके बजाने को **बोलकाटना** कहते हैं। जहाजी सारंगी में सामने का ऊपरी हिस्सा **मत्था** या **माथा** कहाता है। मत्थे के नीचे महरावदार एक दरवाजा-सा बना रहता है जिसे **मुँहानी** कहते हैं। मत्थे और मुँहानी के बीच में हाथीदाँत की एक खड़ी पत्ती लगी रहती है जो **तारगैन** कहाती है। तारगैन के ऊपर सधते हुए ११ तार नीचे की ओर चले जाते हैं। तारगैन के कुछ नीचे की ओर दाँई-बाँई तरफ छोटी-छोटी दो गट्टकें-सी लगी रहती हैं जिन्हें **पीलक** कहते हैं। बाँई पीलक **चढ़ेती** और दाहिनी **उतरेती** कहाती है क्योंकि चढ़े हुए (ऊँचे) स्वरों के तार चढ़ेती पीलक पर और उतरे हुए (नीचे) स्वरों के तार उतरेती पीलक पर रहते हैं।

---

[1] यदि सारङ्गी के कान ठीक तरह से खींचे जायँगे तो बजैगी अन्यथा चादर तानकर सोती रहेगी।

§१२५०—जहाजी सारंगी की छाती पर एक सीध में कम से कम १५ छेद होते हैं जो **सितारे** कहाते हैं। इनमें से हर एक के अन्दर एक तरव पुही रहती है। इस तरह कुल ३६ तरवें होती हैं। इनके अतिरिक्त दाहिनी ओर दो तार और होते हैं जो **चिक्करी** कहाते हैं। कुल मिलाकर जहाजी सारंगी में कम से कम ३८ तरवें काम में आती हैं। तारगैन वाली तरवों को जिन खुंटियों से कड़ा-ढीला किया जाता है वे सौरंगी के ऊपरी हिस्से में लगी रहती हैं। सितारों की तरबों की खुंटियाँ घेरे की छाती के दाहिनी ओर होती हैं। सौरंगी जिस चीज से बजाई जाती है, उसे **गज** कहते हैं।

(इ) गज के अंग

§१२५१—लकड़ी की डण्डी जिसके सिरे पर एक छेद होता है, **डाँड़ी** या **गज** कहाती है। सिरे पर का छेद, जिसमें घोड़े की पूँछ के बाल पो दिये जाते हैं, **रोजन** कहाता है। यदि डाँड़ी कुछ खमदार होती है तो कमानी कहाती है। कमानी की मूँठ **हतकल** कहाती है। हथकल से कुछ आगे की ओर कपड़े और सूत के डोरों से बनाया हुआ ऊँचा-सा बँधाव होता है जिसे **गिंदुआ** कहते हैं। सारंगी अथवा चिकाड़े के गजों में प्रायः गिंदुआ ही होता है लेकिन जहाजी सारंगी के गजों में गिंदुआ की जगह लकड़ी या हाथीदाँत का बना हुआ घोड़ा-सा लगाया जाता है जिसे **सिंगाड़ा** कहते हैं। गज के बाल सिंगाड़े के ऊपर चिपटाते हुए आगे रोजन में बाँध दिये जाते हैं। किसी-किसी गज में बजने के लिए तार में छोटे-छोटे घुँघरू भी डाल दिये जाते हैं जिन्हें **पंसुरी** कहते हैं। घोड़े के बालों को सामूहिक रूप में **जुट्टा** कहते हैं। जुट्टे में **बैरोजा** (एक सफेद मसाला) लगता है जिससे सारंगी के तार ठीक बजते हैं।

(२) सारङ्गी और चिकाड़ा
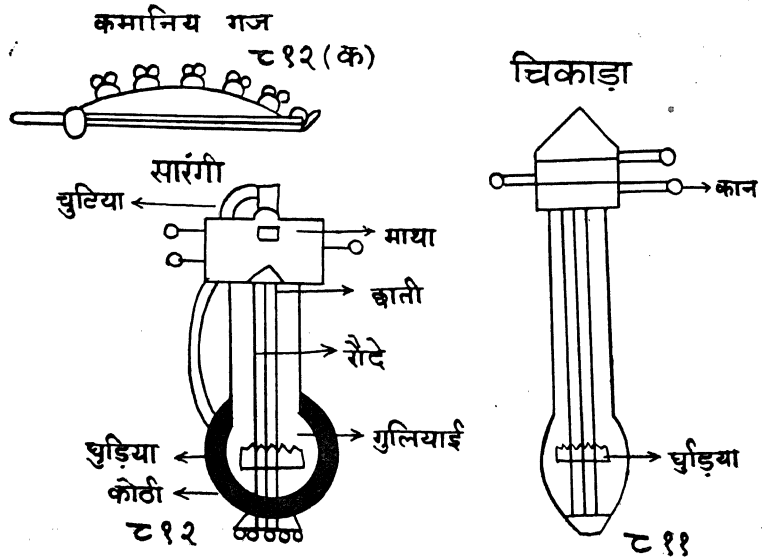
[रेखा-चित्र ८११, ८१२, ८१२ (क)]

§१२५२—लोक-वाद्यों में **सरङ्गी** या **सारंगी** और **चिकाड़े** (चिकाड़े को किंगरा भी कहते हैं) बहुत प्रचलित हैं। सारंगी जनाना और चिकाड़ा मर्दाना बाजा है। दोनों बाजे आकार

तथा बनावट में एक-से ही होते हैं। घेरे के अंगों के नाम उसी प्रकार होते हैं जिस प्रकार कि जहाजी सारंगी में। सारंगी और चिकाड़े में ताँत की तीन-तीन डोरियाँ ही होती हैं जो **रौदा** कहाती हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि सारंगी में दो रौदे नारी और एक नर होता है लेकिन चिकाड़े में दो नर और एक नारी होती है। प्रायः बीर, रौद्र तथा भयानक रसों के लोकगीत जैसे ढोला, आल्हा आदि चिकाड़े पर ही गाये जाते हैं लेकिन शान्त एवं करुण रस के **गोपीचन्द**[1], **निहालदे** आदि गीत सारंगी पर सुनाये जाते हैं। छोटे चिकाड़े को **किंगरी** भी कहते हैं।

§१२५३—नर रौदे की आवाज गर्राहट और नारी की रूँ-रूँ कहाती है। यदि गर्राहट और रूँ-रूँ ठीक तरह नहीं मिलती तो उस आवाज को **कनसुरी** कहते हैं। ठीक मिल जाने पर आवाज **सुरमिली** कहाती है।

§१२५३ (क)—कोठी के नीचे लगी हुई ठेटी के तीन **रोजनों** (छिदों) में ताँत के तीन टुकड़े बँधे रहते हैं जो **द्याली** कहाते हैं। इन तीनों द्यालियों में अलग-अलग तीनों रौदे बाँध दिये जाते हैं। सारंगी के सिर के ऊपर एक छोटी-सी खुंटी होती है जिसमें चौलर-पँचलर सुतली बाँध दी जाती है और उस चौलरी सुतली का दूसरा सिरा सारंगी की कोठी के पीछे बाँध दिया जाता है। उस चौलरी सुतली को **चोटी** या **बन्दनी** कहते हैं। किन्तु चिकाड़े में न चोटी बँधती है और न ऊपर सिरे पर खुंटी होती है।
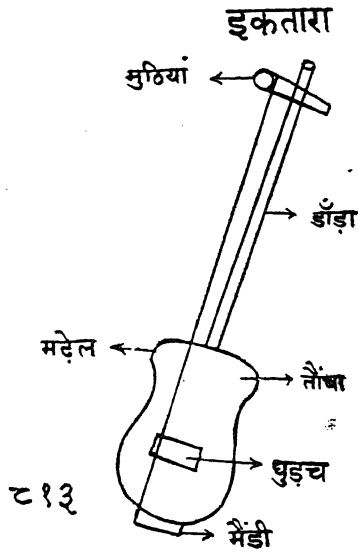
इकतारा

[रेखा-चित्र ८१३]

(३) इकतारा और किंगरी

§१२५४—**इकतारा** में एक ही तार होता है जिसे उँगली से बजाते हैं। एक तार होने के कारण ही यह **इकतारा** (एक तारा) कहाता है। कुछ कृष्ण-भक्त **भिखारी** (सं० भिक्षाकारिक >

---

[1] "भर्तृहरि की बहिन मयनावती के पुत्र गोपीचन्द बंगाल के राजा थे। ये जालंधर के शिष्य होकर योगी हो गये थे।" गोपीचन्द के जीवन से सम्बन्धित गीत भी 'गोपीचन्द' कहाते हैं।

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ संप्रदाय, पृ० १६६

भिक्खारिअ > भिखारी) इकतारे पर गीत गाते हैं और भीख माँगते हैं। महात्मा सूरदास भी इकतारे पर कृष्ण-लीला के पद गाया करते थे। इकतारे की आवाज **'तुनक'** कहाती है।

इकतारे में मुख्य तीन हिस्से होते हैं—**तौंबा, डाँड़ा** और **तार**।

§१२५५—कड़ुए गोल कद्दू को **तितलौका** कहते हैं। इसी का दूसरा नाम **तौंबरा** भी है। खोखला किया हुआ सूखा तितलौका **तौंबा** (सं० तुम्बक > तुम्बअ > तुम्बा > तौंबा) कहाता है। तौंबा को आधा काटकर उसको ऊपर से खाल से मढ़ दिया जाता है वह मढ़ा हुआ भाग **मढ़ेल** कहाता है। तौंबा की लम्बाई के रुख में आर-पार दो छेद करके उनमें एक लम्बी लकड़ी डाल देते हैं। उस लकड़ी को **डाँड़ा** (सं० दण्ड) कहते हैं। डाँड़े के सिरे पर लकड़ी की एक खुंटी लगी रहती है जिसे **मुठिया** (सं० मुष्टिका) कहते हैं। तार को कड़ा-ढीला मुठिया से ही किया जाता है क्योंकि तार का ऊपरी **ठोक** (सिरा) मुठिया में ही लिपटा होता है। तौंबा के नीचे डाँड़े की जो नोंक या सिरा निकला रहता है उसे **मैंड़ी** कहते हैं। इकतारे का तार मैंड़ी से लेकर मुठिया तक तानकर बाँध दिया जाता है। तौंबा की मढ़ेल के ऊपर एक लकड़ी लगाई जाती है जिस पर तार सधता है और कुछ ऊँचा भी हो जाता है। उस लकड़ी को **घुड़िया** या **घुड़च** कहते हैं। इकतारा **सुरबाजों** (सं० स्वरवाद्य) में गिना जाता है। इकतारे की भाँति का एक बाजा और होता है
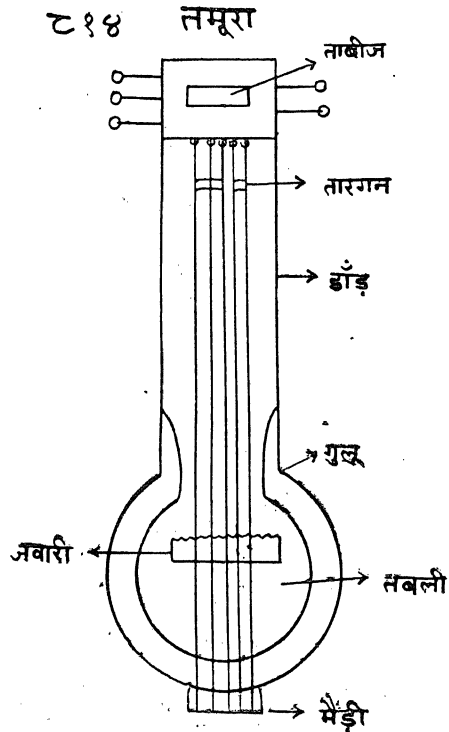
[रेखा-चित्र ८१४]

जिसमें ताँत के दो-तीन रौदे सारंगी की तरह के होते हैं। उसे **किंगड़ी, किंगड़िया** या **किंगरी** कहते हैं। किंगरी सारंगी की भाँति गज की रगड़ से बजाई जाती है। कबीर और जायसी ने

किंगरी[1] का उल्लेख किया है। किंगरी के नीचे के भाग में खाल से मढ़ा हुआ कुल्हड़-सा होता है। किंगरी से बड़ा बाजा **किंग** कहाता है जो आकृति में किंगरी-सा होता है।

(४) तमूरा

§१२५६—तमूरे को **तम्बूरा, तन्तूरा, तानपूरा** या **तानतमूरा** भी कहते हैं। यह इकतारे का बड़ा भइया है। जहाँ इकतारे में एक तार होता है वहाँ इसमें पाँच तार होते हैं। पाँचों तारों को कसने के लिए डाँड़े के सिरे पर इसमें पाँच खुंटियाँ लगी रहती हैं। तमूरे का डाँड़ा चौड़ी लकड़ी का बना होता है जिसके ऊपरी सिरे पर एक चौड़ी पत्ती लगी रहती है जिसे **ताबीज** (अ० तावीज़) कहते हैं। ताबीज के नीचे तारों के लिए जो छेद होते हैं उन्हें **रोजन** कहते हैं। रोजनों के नीचे तारों को साधने के लिए बराबर-बराबर दो पत्तियाँ लगी रहती हैं जो **तारगन** या **तारगैन** कहाती हैं। तौंबे और डाँड़े के बीच में लकड़ी का बना हुआ एक खमदार हिस्सा होता है जिसे **गुलू** कहते हैं। तौंबा और गुलू को आपस में जोड़नेवाली हलकी-हलकी लकड़ी की पत्तियाँ **पाते** कहाती हैं। मढ़ेल की जगह तमूरे के तौंबे पर लकड़ी का एक ढक्कन-सा लगा रहता है जिसे **तबली** कहते हैं। इकतारे में मढ़ेल के ऊपर की जो लकड़ी घुड़िया कहाती है, उसे तमूरे में **जवारी** कहते हैं जोकि तबली के ऊपर लगी रहती है। तमूरे की आवाज **'तुनतुना'** कहाती है।
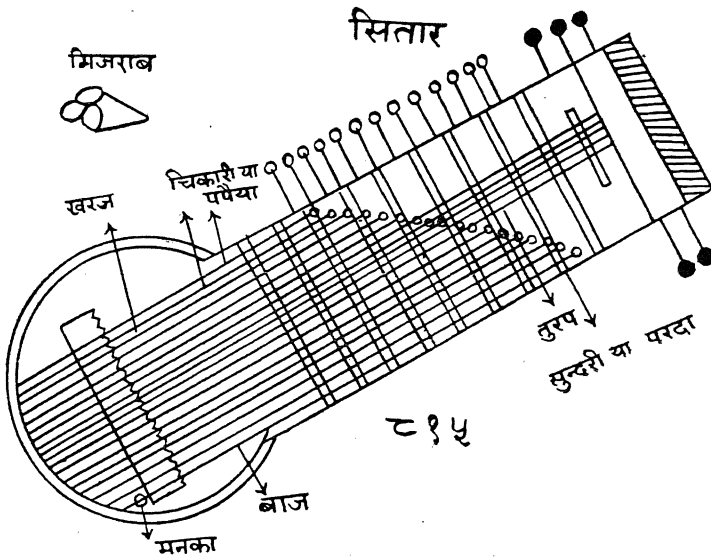
[रेखा-चित्र ८१५]

(५) सितार

§१२५७—**सितार** तमूरे तथा इकतारे का ही भाई बन्द है। इसमें सात तार होते हैं

---

[1] "जगत गुर अनहद कींगरी बाजै, तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागै।"
—कबीर ग्रंथावली, काशी ना० प्र० सभा, पदावली १५३
"हाड़ भए झुरि किंगरी, नसैं भईं सब ताँति॥"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपा०) : पदमावत, जायसी ग्रंथावली, दो० ३६१
—रामचन्द्र शुक्ल : जायसी-ग्रंथावली, पदमावत, ३१।२

जो उँगली में पहने गये एक छल्ले द्वारा बजाये जाते हैं। उस छल्ले को **मिजराब** (अ० मिज़राब) कहते हैं।

§१२५८—सात तारों के अतिरिक्त भी सितार में अन्य तार होते हैं जो बारीक होते हैं और सात तारों के नीचे डाँड़े से मिले हुए रहते हैं। वे **तुरप** कहाते हैं। प्रायः ग्यारह तुरपें सितार में हुआ करती हैं। सात तारों में से बाँई ओर से गिने जाने पर अन्तिम दो तार **पपइया** या **चिकारी** कहाते हैं। डाँड़े पर पुरे हुए पाँच तारों में से पहला तार **बाज** कहाता है। दूसरे और तीसरे को **जोड़ा** कहते हैं। चौथा पंचम और पाँचवा **खरज** (सं० षड्ज) कहाता है। सितार के डाँड़े में जगह-जगह पीतल के मोटे खमदार तार बँधे रहते हैं जिन्हें **परदे** या **सुन्दरियाँ** कहते हैं जिनको दबाने से स्वर ऊँचा-नीचा निकलता है। ऊँचे **सुर** (स्वर) को **तार** (सं० तार, बीच के को **मद्ध** (सं० मध्य) और नीचे सुर को **मन्द** (मन्द्र[१]) कहते हैं। संगीत के तीन स्वर-सप्तकों में मन्द पहला स्वर-सप्तक है।

§१२५९—तुरपों के तारों को कसने के लिए सितार के डाँड के बीच भाग में किनारे पर खुंटियाँ लगी रहती हैं। मैंड़ी और जवारी के बीच में 'बाज' नाम के तार में एक मूँगा पड़ा रहता है जिसे **मनका** कहते हैं। शेष अंगों के नाम वे ही हैं जो तानपूरे के होते हैं।
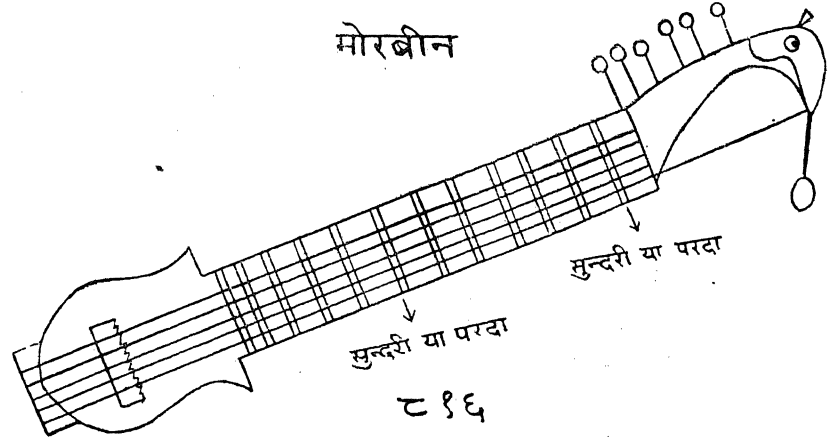
[रेखा-चित्र ८१६]

(६) मोरबीन

§१२६०—मोरबीन की शक्ल कुछ कुछ मोर की-सी होती है। यह सितार और सारंगी को मिलाकर बनाया हुआ नये ढंग का बाजा है। मोरबीन रङ्ग-ढंग में **इसराज** की तरह की ही होती है। इसके डाँड़े में **सुन्दरियाँ** (पीतल के मोटे तार या परदे) लगी रहती हैं। पीतल के कई तार होते हैं जिस तरह कि सितार में होते हैं। लेकिन मोरबीन के तार गज से बजाये जाते हैं जैसे कि सारंगी बजाई जाती है।

§१२६० (क)—मोरबीन को बजाने के लिए चतुर **बजइया** (बजानेवाला व्यक्ति) होना चाहिए। **सिलबिल्ला** (=मूर्ख-सा, अनाड़ी) बजइया तो अपनी **भद्द** (अप्रतिष्ठा, बदनामी) हो

---

[१] "तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं, शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।"
मृच्छकटिक, निर्णयसागर, अष्टम संस्करण, अंक ५, श्लोक ५२।

कराता है। मोरबीन का बजाना सीखने के लिए चेलों को अपने उस्तादों (गुरु) की बड़ी सेवा करनी पड़ती है और **कुन्नस** (तु० कोरनिश = खातिर-खुशामद) भी बजानी पड़ती है। उस्ताद लोग पहले चार-छह महीने तक तो चेले को **टल्लेनवीसी** (बेगार, इधर-उधर के काम) में ही रखते हैं। उस्ताद की टल्लेनवीसी को जो चेले **लूत** या **भाभई** (परेशानी) समझते हैं, वे तो चले जाते हैं लेकिन जो उस्ताद के हर काम में लगे रहते हैं, वे **रल्ले-झल्ले के बजइयों** (नामी वादक) में नाम कमाते हैं।
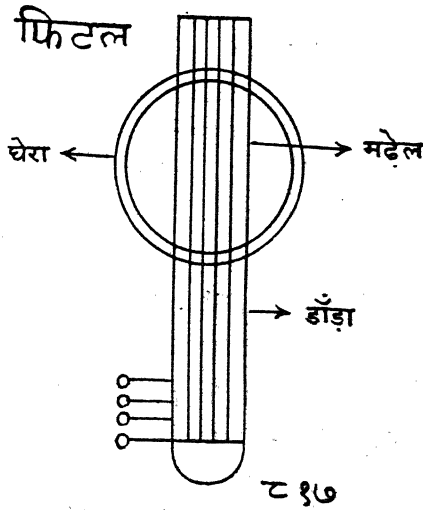
[रेखा-चित्र ८१७]

(७) फिटल

§१२६१—**फिटल** आकार में उल्टे चिकाड़े की भाँति होता है। ऊपरी भाग में लकड़ी का गोल **घेरा** होता है जिसमें होकर एक छोटा-सा डंडा ठोक दिया जाता है। घेरे का आकार छोटी थाली या बेले की भाँति का होता है। डंडा घेरे के किनारों में ठुका होता है। उस घेरे को खाल से मढ़ दिया जाता है। वह हिस्सा **मढ़ेल** कहाता है। डंडे को **डाँड़ा** कहते हैं। डाँड़े के नीचे के सिरे में खुंटियाँ लगी रहती हैं जिनमें पीतल के तार बाँधे जाते हैं। ये तार **गज** से बजाये जाते है। वास्तव में फिटल जनपदीय जीवन के मनोविनोद में काम आनेवाला बढ़िया बाजा है।

फूँक से बजनेवाले बाजे

(१) बाँसुरी या बंसी

§१२६२—**मुरली, बाँसुरी** या **बंसी** (सं० वंशिका) पोले बाँस की डण्डी की बनती है। यह फूँक से नीचे के **होठ** (सं ओष्ठ) पर रखकर आड़ी करके बजाई जाती है। इसके सिरे पर एक छेद होता है जिसमें बजइया (बजानेवाला) अपने मुँह की फूँक मारता है। उस छेद को **फुंकी** अथवा **फूँकी** कहते हैं। नीचे की ओर छह से लेकर नौ तक छेद होते हैं जो **सुरेंती** कहाते हैं। सुरेंती पर बंसी-बजइया की उँगलियाँ चलती रहती हैं और बदलते स्वर निकलते रहते हैं। उँगलियाँ चलाना **बोल काटना** भी कहाता है। त० कोल और त० हाथरस में कुछ लोग इसे केवल **बंसी** नाम से ही पुकारते हैं और सीधी बजनेवाली को बाँसुरी।
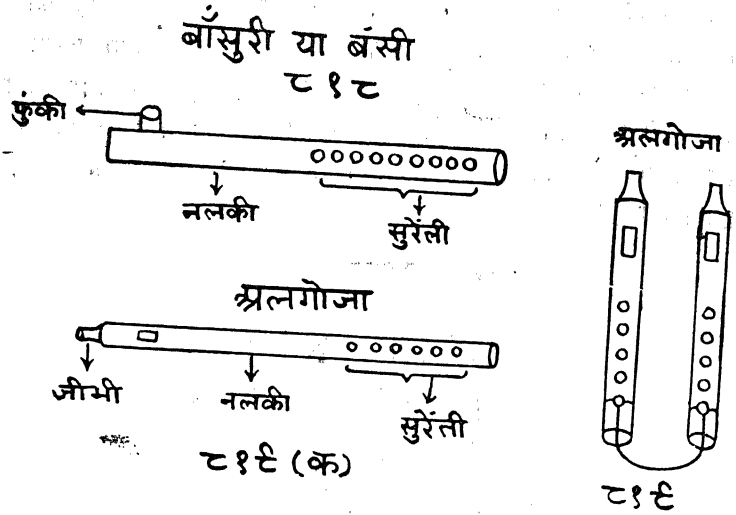
[रेखा-चित्र ८१८, ८१९, ८१९ (क)]

(२) अलगोजा

§१२६३—**अलगोजे** की बनावट भी बंशी की भाँति ही होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि अलगोजे में फुंकी नहीं होती बल्कि ऊपर सिरे पर एक छेददार डाट लगाई जाती है जिसे **जीभी** कहते हैं। उस जीभी को मुँह में देकर साँस की सहायता से अलगोजा बजाया जाता है। बजते समय अलगोजा सीधा रहता है। एक साथ दो अलगोजे[१] भी बजाये जाते हैं। जीभी से कुछ ही नीचे नलकी में पीछे की ओर एक छेद होता है जिसे **निखादी** (सं० निषादिन्) या **सौसरा** (सं० सुषिर = छिद्र—अमर० १।८।१) कहते हैं।
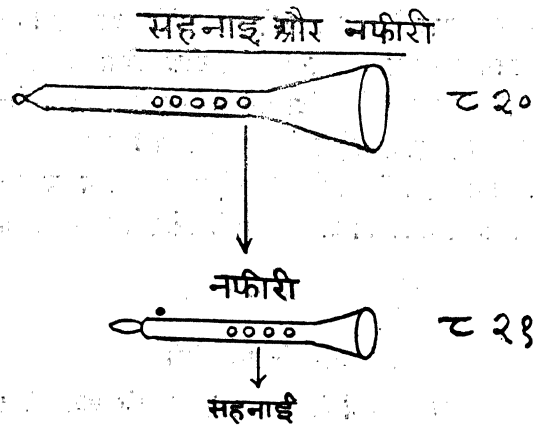
[रेखा-चित्र ८२०, ८२१]

(३) नफीरी और सहनाई

§१२६४—**नफीरी** और **सहनाई** (फा० शहनाई) बनावट में बिलकुल एक-सी होती हैं। दोनों नगाड़े के साथ बजाई जाती हैं।

[१] कुछ लोग कोल और हाथरस तहसीलों में अलगोजे के जोड़े को तो अलगोजा और एक को बाँसुरी नाम से पुकारते हैं।

प्रायः बड़े आकार की **नफीरी** और छोटे आकार की **सहनाई** कही जाती है। **डट्ठौन** (सं० दशोत्थान) और **ब्याह** (सं० विवाह) के अवसर नौबत घुरती है जिसमें नगाड़े और झील (जील) के साथ नफीरी या सहनाई बजा करती है।

युद्ध के समय भेरी, दुन्दुभि, नफीरी शहनाई आदि बजे बजा करते थे। तुलसीदास जी ने भेरी (डंके की चोट से बजानेवाला एक बाजा) के साथ नफीरी और शहनाई का भी उल्लेख किया है।[1]
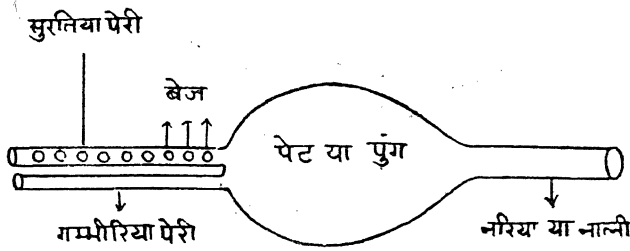
[रेखा-चित्र ८२२]

(४) फनियाँ बैन

§१२६५—**फनियाँ** बैन को **बरुए** (सँपेरे) ही अधिकतर बजाते हैं, इसलिए इसे **सँपेरा** **बैन** भी कहते हैं। यह एक लम्बी **तौंबी** (सं० तुम्बिका) में से बनाया जाता है, इसलिए **तौंबिया** **बैन** भी कहाता है। तौंबी में ऊपर गर्दन-सी निकली होती है और नीचे गोल पेट-सा होता है। अन्दर से वह तौंबी खोखली होती है। गर्दन की भाँति का हिस्सा **नरिया** या **नाली** कहाता है। बैन के **पुंग** (पेट) के नीचे पोली दो नलियाँ लगी रहती हैं जो **पेरी** कहाती हैं। नरिया में मुँह से जो फूँक मारी जाती है वह आवाज करती हुई दोनों पेरियों में से निकलती है। उनमें अन्दर पत्ते लगे रहते हैं जिन्हें **परदे** कहते हैं।

§१२६६—दाहिनी पेरी में नौ छेद होते हैं। यह पेरी **सुरतिया** कहाती है क्योंकि यही स्वर निकालती है। सुरतिया के छेद **बेज** (सं० बेध्य > बेझ > बेज) कहाते हैं। सुरतिया पेरी में एक छेद नीचे की ओर होता है जिसे बरुआ बैन बजाते समय अँगूठे से दबा लेता है और बेजों पर अँगुलियाँ रखता है। नीचे के छेद को **लौहरिया** या **फरलिया** कहते हैं।

§१२६७—बाँई ओर की पेरी **गम्भीरिया** कहाती है क्योंकि इसका स्वर गंभीर (मोटा) होता है। बजते समय इसमें से '**भौंओं**...' की आवाज लगातार निकलती रहती है। बैन की मुख्यतः स्वर-लहरी दो तरह की होती है—(१) **लहरा** (२) **सहरा**। साँप प्रायः **लहरा** नाम की स्वर-लहरी पर ही लहर लेता है।

---

[1] "भेरि नफीरि बाज सहनाई।"
तुलसीदास : रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, ७६।२
"बाजहिं भेरि नफीरि अपारा।"
—वही, लंकाकाण्ड, ४१।२
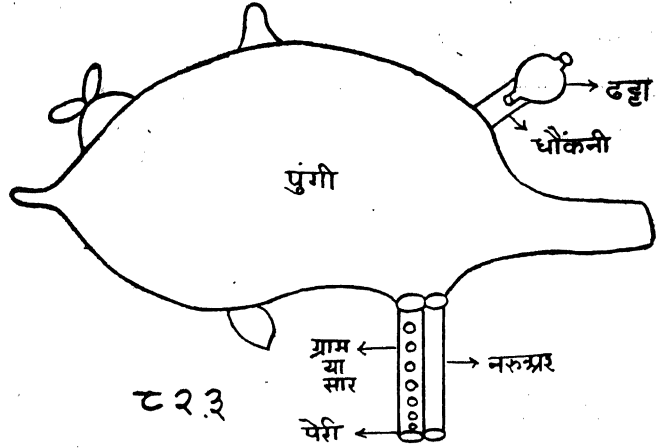
[रेखा-चित्र ८२३]

(५) मधुरिया बैन

§१२६८—**भोपे** (भैरों को पूजनेवाले) लोग ही प्रायः मधुरिया बैन बजाया करते हैं, इसलिए इसे **भोपिया बैन** भी कहते हैं। **भोपे भैरों** (सं० भैरव=एक देवता) की प्रशंसा तथा प्रार्थना सम्बन्धी गीत बैन बजाकर गाते हुए भीख माँगते फिरते हैं, जिसे **भीखीं** कहते हैं।

§१२६९—**मधुरिया बैन** बकरी की खाल का बनाया जाता है। खाल की अगली दो टाँगों में से एक टाँग की खाल फूँक भरने में और दूसरी स्वर बजाने में काम आती है। उसमें फूँक भरने के लिए छेददार लकड़ी की एक गट्टक लगी रहती है जिसे **ढट्टा** कहते हैं। बाँस की चिरी हुई नली जिस पर हुक्के की-सी नगाली का टुकड़ा लगा रहता है, **नरुआ** कहाती है। नरुआ पर लगी हुई नगाली को जिसमें नौ छेद होते हैं **पेरी** कहते हैं। पेरी के छेद **सार** या **गिराम** (सं० ग्राम[1]) कहाते हैं। खाल का वह भाग, जो फूँक भर जाने से फूल जाता है, **पुंगी** कहाता है।

§१२७०—दो भोपे कभी-कभी बैन बजाते हुए आपस में चाबुकमारी भी करते हैं। उसे **बाद खेलना** या **गौठ मारना** कहते हैं। एक भोपे का दूसरा जोड़ीदार भोपा **जोटिया** कहाता है। बाद खेलते समय जितने पैंतरे और कलाबाजियाँ दिखाई जाती हैं वे सब **लीलागरी** कहाती हैं। लीलागरी में चाबुक की चटक और पैंतरों के अनुसार ही बैन के स्वर बैनिये (बैन बजानेवाले) निकालते हैं। चाबुक में तीन हिस्से होते हैं—(१) मूठिया (२) साँकरी (३) लंगर। पकड़ने का हिस्सा **मूठिया** कहाता है। लोहे की पतली संकल को **साँकरी** कहते हैं। साँकरी में जो तुर्रेदार कोड़ा बँधा रहता है वह **लंगर** कहाता है। चाबुक के लंगर की चटक पर बैन का स्वर भी खास तौर का

---

[1] स से लेकर नी तक के स्वरों का समुदाय 'ग्राम' कहाता है, अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद नाम के स्वरों को 'ग्राम' कहते हैं।
"स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते।"—शार्ङ्गदेवप्रणीत संगीत रत्नाकर
"स्फुटीभवद्ग्राम विशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणंमहतीं मुहुर्मुहुः।"—शिशुपाल बध, १।१०

बजती है। बैन की उस ध्वनि को **चटका बीन** या **लीलागरिया बीन** कहते हैं। लीलागरी में कोड़ा खानेवाला **लड़ूँरा** या **निगुरा** और कोड़ा मारनेवाला **गुरू** कहाता है। निगुरे के शरीर में **कोड़ा** और सगुरे (गुरु वाला) में **चामटी** (कोड़ा में बँधी हुई ताँत) मारी जाती है। बाँह पर चामटी की चोट झेलना **लड़ूँरिया झेल** कहाती है।

§१२७१—भैरों बाबा से सम्बन्धित कुछ लोक-गीतों में प्रायः पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा ही अधिक मिलती है। अतः भोपे उन गीतों को '**ललना**'[1] नाम से पुकारते हैं।
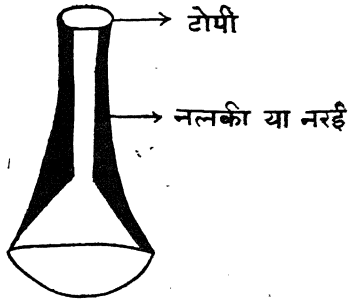
[रेखा-चित्र ८२४]

(६) नसतरङ्ग

§१२७२—नसतरङ्ग गले की नस से बजती है। इसकी बनावट **नफीरी** की भाँति होती है, लेकिन यह आकार में नफीरी से बड़ी होती है। नसतरङ्ग के ऊपरी सिरे को **टोपी** कहते हैं। नसतरङ्ग बजानेवाला टोपी को अपनी गर्दन की नस पर लगा लेता है और मुँह में से गुनगुनाहट भरी साँस निकालता है। उस साँस से नसतरङ्ग की टोपी में लगे हुए मकड़ी के जाले में भी **गुन्नाहट** (गुनगुनाहट) पैदा हो जाती है। यह तानपूरे की भाँति **सुर** (स्वर) देने के लिए बजायी जाती है

नसतरंग में टोपी से नीचे को पोली लकड़ी **नलको** या **नरई** कहाती है।

(७) तुरई

§१२७३—तुरई (सं० तूर्य[2]) पीतल या सींग की बनी होती है। यह स्वर-वाद्य है। यह बरात की चढ़त के समय अन्य बाजों के साथ बजाई जाती है। ब्याह में बरात की चढ़त के समय

---

[1] "बाबा भैरों जी, मेरे कारिहा की कसक मिटाइ।
जौ होइगी मेरैं छोहरी, मैं तो मरूँगी जहर बिस खाइ ॥१॥
जौ होइगौ मेरैं छोहरा, दैंउँ मद को मैं धार चढ़ाइ ॥२॥ 'ललना लोकगीत'।
(त० कोल के एक भोपा से प्राप्त)

[2] "अरातिभिर्युधि सहयुध्वनो हतांजिघृक्षव : श्रु तरणतूर्यनिःस्वनाः।"।
—माघ : शिशु० १७।३४

प्रायः **कलारनेट, कारनेट टैंगर, अनफूलन** और **भौंका** नाम के बाजे भी बजवाये जाते हैं। ये सब स्वस्वाद्य ही हैं जो फूँक से बजते हैं। साँप की गुंजल्क की भाँति का एक बाजा, जो फूँक से बजाया जाता है, **जलेबिया तुरई** या **इमरती तुरई** कहाता है।
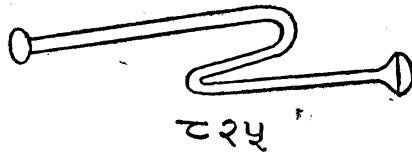
[रेखा-चित्र ८२५]

(८) संख और संखा

§१२७४—प्रायः मन्दिरों में आरती के समय संख बजा करता है। यह पूजा के समय का बाजा है। लेकिन नाथपन्थी जोगियों पर एक विशेष प्रकार का शंख होता है जिसमें पाँच मुँह होते हैं। उसकी आवाज सादा शंख से बहुत तेज होती है। उसे जोगी लोग **पँचमुँहा नादी** या **संखा** कहते हैं।

(९) पपइया

§१२७५—पीतल के पत्ते से बनी हुई एक चौड़ी सीटी-सी होती है जिसे मुँह की साँस से बजाया जाता है। यह लगातार एक-सा ही सुर (स्वर) देता है। इसे **पपइया** या **काजू** कहते हैं।

किसी धातु की **पत्ती** या **बगनर** (नरकुल) की पोली नली से बनाया हुआ एक बाजा **पीपनी** कहाता है। इसे बच्चे अपने मनोविनोद के लिए बजाया करते हैं।

(१०) म्हौंचंग

§१२७६—**म्हौंचंग**[१] (मुँहचंग) मुँह से बजायी जाती है। बजइया इसे दोनों होठों के बीच में दाँये-बाँये सरकाते हुए बजाता है। इसमें स्वरों के छेदों की दुहरी लाइन होती है। प्रायः म्हौं-चंग-बजइया की मूँछें रगड़ खाकर टूट जाया करती हैं। होली गाते समय **फगुआ नाच** (पुरुष नचकइया और स्त्रीवेशधारी नचकइये का मिलकर नाचना) नाच नाचते हैं। मर्दाना नचकइया (नर्तक) **रसिया** और जनाना **गोरी** कहलाता है। फगुआ नाच में ढोल, मृदंग, झाँझ आदि के साथ-साथ म्हौंचंगें भी बजती हैं।

---

[१] "ढोल मृदंग झाँझ ढप बाजैं और बाजत म्हौंचंग।
रसिया गोरी होरी नाचैं खेलैं फाग-फबंग ॥"

(ता० सादाबाद में सुना हुआ होली लोकगीत)

(११) सिंगी

§१२७७—**सींग या सिंगी**[1] (सं० शृंगिन्) बाजा किसी पशु के सींग (सं० शृंग>प्रा० सिंग>सींग) का बना हुआ होता है। प्रायः यह शैव और गोरखपंथी साधुओं के पास रहता है। यह बिगुल की भाँति आवाज़ करता है। सिंगी बजाकर भीख माँगनेवाले गोरखपंथी साधू सींगिया बाबा कहाते हैं।
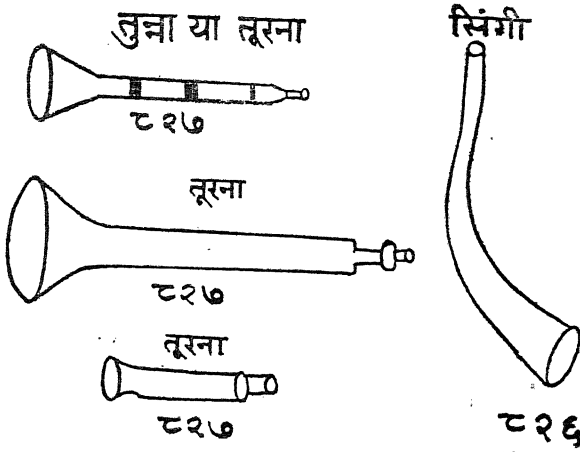
[रेखा-चित्र ८२६, ८२७]

(१२) तुन्ना या तूरना

§१२७८—कोल-जनपद के क्षेत्र में कार्तिक शुक्ला द्वितीया को प्रातः ४-५ बजे गोवर्धन जगाने के लिए कोली आता है, जिसे **गुधनजगा** कहते हैं। उसके पास पीतल या लोहे की पोली नली का बना हुआ एक बाजा होता है जिसे बजाकर वह गोधन जगाता है। उस बाजे को **तुन्ना** या **तूरना** कहते हैं। इसीसे मिलता-जुलता एक बाजा **नरसिंगा** कहाता है जो प्रायः नागा साधुओं पर रहता है।

अन्य बाजे

(१) घंटातरंग

§१२७९—घंटातरंग प्रायः बरात की चढ़त पर बजाया जाता है। इसमें दस घण्टे लगे रहते हैं जो **थाली** या **तयौ** भी कहाते हैं। यह एक साथ दो मोंगरियों से बजाया जाता है। एक लम्बे डंडे में कुछ पतली **सरइयाँ** पड़ी रहती हैं जिनके बीच में घण्टे बँधे रहते हैं। प्रत्येक घण्टे में ऊपर-नीचे एक-एक छेद होता है। घण्टातरंग की आवाज **'टन-टन'** कहाती है। पाँच-पाँच घण्टों की पंक्ति अलग-अलग **तलपंती** कहाती है।

---

[1] "हृदय सिंगी टेर मुरली, नैन खप्पर हाथ।"
—सूरसागर, काशी·ना० प्र० सभा, १०।३६१४
"दहिने संख न सिंगी पूरे।" —जायसी-ग्रंथावली, हिंदुस्तानी एकेडेमी, पदमावत, ३६७।२
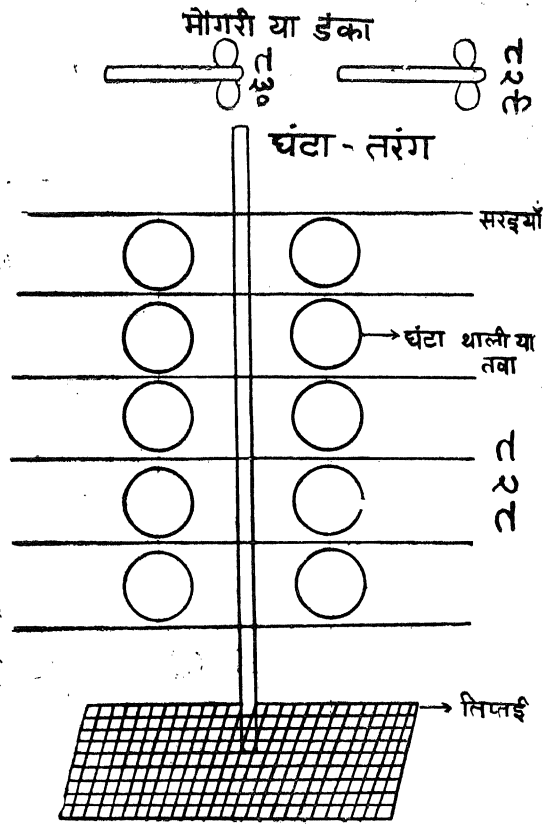
[रेखा-चित्र ८२८ से ८३० तक]

(२) जलतरंग

§१२८०—पानी से भरकर चीनी के १४ प्याले लकड़ी से बजाये जाते हैं। जलतरंगिया
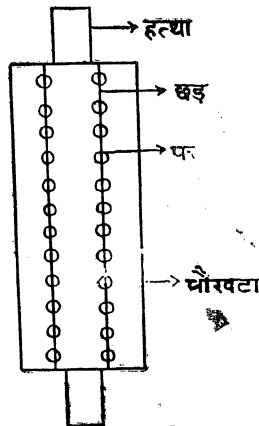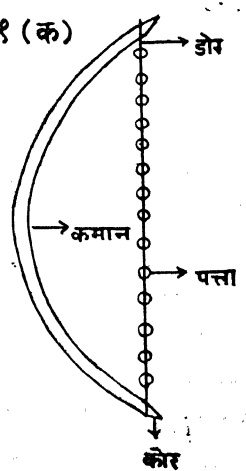
[रेखा-चित्र ८३१, ८३१ (क)]

(जलतरंग बजानेवाला) अपनी दाईं-बाईं ओर ७-७ प्याले रखकर उन्हें बजाता है। यह बाजा **जलतरंग** कहाता है।

(३) झींगा

§१२८१—झींगे दो तरह के होते हैं—(१) **छड़िया** (२) **कमानियाँ**। छड़िया के चौखटे की छड़ों में पत्ते पड़ते हैं और कमानियाँ की डोरी में पत्ते डाले जाते हैं।

तलवार, लाठी, गदका, बनैती आदि के खेल दिखानेवालों की मण्डली **अखाड़ा** कहाती है। कई अखाड़ों का जमघट **दंगल** कहाता है। झींगा अखाड़े या दंगल का बाजा है। प्रायः राम-लीला में काली के मेले पर झींगों की धुन **बनैतियों** (बनैती फिरानेवाले) में **हौंस** और **हुलास** (सं० उल्लास) भर देती है। झींगे की आवाज़ से बनैती फिरानेवालों को और अधिक **हुमहुमी** (जोश) आती है।

झींगा में से लेजम की-सी आवाज निकलती है। लकड़ी का आयताकार एक **चौखटा** (सं० चतुःकाष्ठ) होता है जिसमें दो तरफ पकड़ने के लिए **हत्थे** लगे रहते हैं। चौखटे के बीच में लोहे की दो छड़ें होती हैं जिनमें लोहे या पीतल के गोल पत्ते पड़े रहते हैं। चौखटे को ऊपर-नीचे करने से पत्ते बजते हैं और **छम-छमा-छम** की ध्वनि निकलती है।

(४) चीमटा
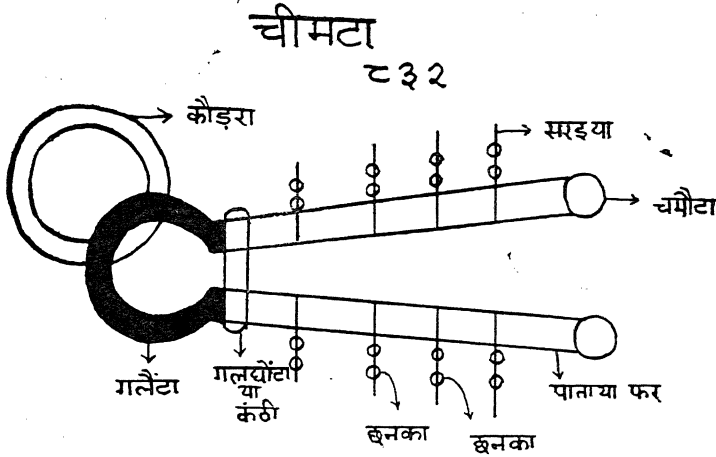
[रेखा-चित्र ८३२]

§१२८२—**चिमटा** या **चीमटा** गोरखपन्थी और शैव साधुओं का ताल वाद्य है। लोहे की एक मोटी पत्ती दुहरी मोड़ दी जाती है। ऊपर और नीचे की पत्तियाँ **पाते** या **फर** कहाती हैं। **गलैंटे** (सिर पर मोड़ की जगह) में लोहे का एक बड़ा-सा गोल छल्ला पड़ा रहता है जिसे **कौंड़ा** या **कौंड़रा** (सं० कुण्डलक) कहते हैं। गलैंटे से आगे फरों को कसे हुए एक पत्ती पड़ी रहती है जो **गलघौंटा** या **कंठी** कहाती है। चीमटे के दोनों पातों पर लोहे की खुण्टियाँ लगी रहती हैं जिनमें पीतल के गोल पत्ते पड़े रहते हैं। वे पत्ते **छनका** कहाते हैं। ऊपर के पाते पर खुण्टियाँ ऊपर की ओर और नीचे के पाते में नीचे की ओर होती हैं। दोनों पातों के बीच का

फासला **फड़ैंाच** कहाता है। पाते या फर का आगे का चौड़ा हिस्सा **चौंटा** या **चमौटा** कहाता है।

चिमटा दोनों हाथों से बजाया जाता है। बायें हाथ से **कौंड़रे** को पाते में मारते जाते हैं और दाहिने हाथ की उँगलियों और अँगूठे की सहायता से दोनों पातों को झटके के साथ बजाते हैं। इसी तरह बजाते हुए गोरखपन्थी साधु अलख जगाया करते हैं। **बंभोले बाबाओं** (शैव साधुओं) का कहना है कि चिमटा में से **'जय शंकर की'** ध्वनि निकलती है। कौंड़रा **'जय'** और पाते **'शंकर की'** ध्वनि निकालते हैं।

(५) टलटलिया

§१२८३—**टलटलिया** को **घंटरिया** भी कहते हैं। यह प्रायः ठाकुर जी की पूजा के समय बजाई जाती है। बजते समय टलटलिया में से 'टल-टल' की आवाज निकलती है, इसीलिए इसका नाम **टलटलिया** पड़ गया है। यह आकार में घण्टे से छोटी होती है। टलटलिया का ऊपरी भाग, जिसे पकड़कर बजाते हैं, **मूँठ** कहाता है। नीचे के हिस्से को **म्हौंटी** या **म्हौंटिया** कहते हैं। म्हौंटिया के अंदर एक डोरा लटका रहता है जिसके सिरे पर पीतल की छेददार एक गोली-सी बँधी रहती है। डोरे और गोली को सामूहिक रूप में **जीभ** (सं० जिह्वा) कहते हैं। पीतल की गोली **टुलटुली** या **टुनटुनी** कहाती है। टलटलिया जब हिलाई जाती है तब टुलटुली म्हौंटिया में लगकर टलटल की आवाज़ करती है।

§१२८४—घण्टा भी ठाकुर जी की पूजा में काम आता है। वह काँसे तथा पीतल को मिलाकर बनाया जाता है। टलटलिया में जिसे टुलटुली कहते हैं उसे घण्टे में **टल्ला** कहते हैं। टल्ला टुलटुली से बड़ा होता है। घण्टे के शेष अंगों के नाम वे ही हैं जो टलटलिया के हैं।
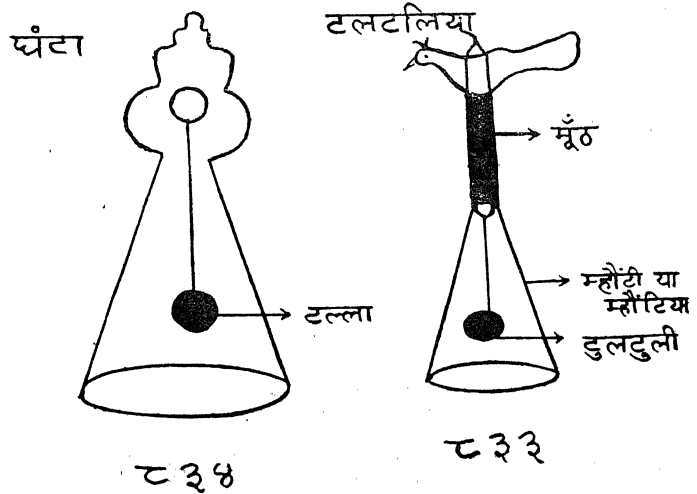
[रेखा-चित्र ८३३, ८३४]

(६) किन्नरी

§१२८५—किन्नरी बाजा एक लोहे के डण्डे से तैयार किया जाता है। यह लय और ताल से सम्बन्ध रहता है। प्रायः **कहरबा** नाच के समय किन्नरी बजाई जाती है। हाथ भर का लोहे का एक डण्डा होता है जिसका नीचे का सिरा नोंकीला होता है। उसे धरती पर रख लेते हैं

और सीधे हाथ में **हथिया** (लोहे का एक गोल टुकड़ा) लेकर उसे **किन्नरी** (लोहे का एक डण्डा) में मारते हैं जिससे 'किटकिन' की ध्वनि होती है। किन्नरी की लय और ताल मँजीरों की लय-ताल से बहुत मेल खाती है।

किन्नरी
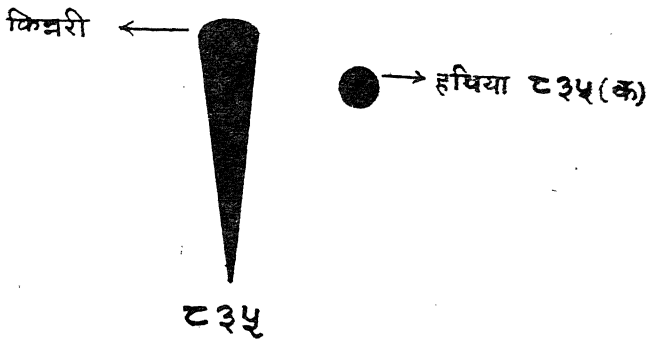
[रेखा-चित्र ८३५, ८३५ (क)]

(७) सूपरा या फटका

§१२८६—भंगियों के **चूहर-नाच** में सूप (सं० शूर्प) बजाया जाता है जिसे **सूपरा** या **फटका** कहते हैं। यह बाजा एक छोटी लकड़ी से बजाया जाता है जिसे **पिटकनी** कहते हैं। सूप बजते समय जब एक आदमी नाचता है तब उस नाच को **फटका नाच** भी कहते हैं। चूहर-नाच में तो चार-पाँच **चूहरे** (भंगी) नाचते हैं, लेकिन फटका-नाच में और नचकइये नाचना बंद कर देते हैं। केवल एक ही नाचता है। कभी-कभी **बंडा**[1] या **हीरासींग** (नाच में एक विदूषक अर्थात् मसखरा बनता है जिसे **बंडा** या **हीरासींग** कहते हैं) भी फटका बजाने लगता है और बजाते-बजाते रानी (जनाना नचकइया) के ऊपर फिरा देता है। इस क्रिया को **सदका** कहते हैं।

प्रायः **जद्दमड़ी** नाम का लोक-गीत सूपरा या फटका नाम के बाजे पर ही गाया जाता है।

(८) खटतार

§१२८७—खटतार लकड़ी और लोहे से बना हुआ बाजा है। काठ के बने हुए जोड़ों से ताल ली जाती है, इसीलिए इसे **खटतार** (सं० काष्ठताल) कहते हैं। **जिकड़ी भजनों** (कथात्मक लोक-गीतों में एक विशेष प्रकार के गीत जो होली के आस-पास फूलडोलों में गाये जाते हैं। इन्हें **रसियाई भजन** भी कहते हैं) में ढोलक के साथ खटतारें अवश्य बजती हैं।

---

[1] चमारों के नाच में जिसे **हीरासींग** कहते हैं उसे ही धोबियों और भंगियों के नाच में **बंडा** कहते हैं। भारतीय नाटकों में जो स्थान विदूषक का है ठीक वही स्थान **स्वाँग** (एक लोक-नाटक) में **हीरासींग** (हीरासिंह) या **बंडे** का है। स्वांग में नायक **राजा** और नायिका **रानी** कहाती है। 'रानी' बननेवाला वास्तव में पुरुष ही होता है लेकिन स्त्री-वेश धारण कर लेता है। ऐसे नर्तक के लिए संस्कृत में 'भृकुंश' शब्द (मो० वि० कोश) प्रचलित था। हाथरस के नथाराम की मंडली स्वाँग करने में प्रसिद्धि पा चुकी है। अलीगढ़ जनपद का स्वाँग 'नौटंकी' का भाई ही कहा जा सकता है।

खटतारों की जोड़ी
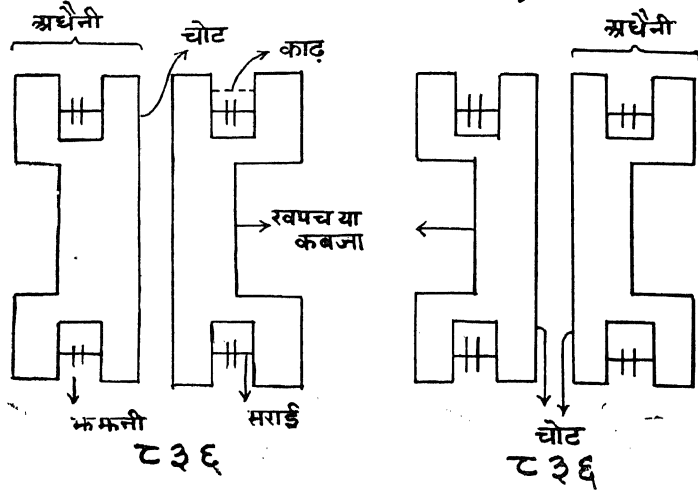
[रेखा-चित्र ८३६]

§१२८८—खटतारों की जोड़ी ही अधिकार बजाई जाती है। एक खटतार के दो हिस्से होते हैं और प्रत्येक हिस्से को **अधैनी** कहते हैं। दो अधैनियाँ मिलकर एक खटतार कहाती हैं। दोनों खटतारें **जोड़ी** कही जाती हैं। इस तरह एक जोड़ी में चार अधैनियाँ होती हैं।

§१२८९—बजाते समय दोनों अधैनियाँ जहाँ मिलती हैं, उस अंग को **चोट** कहते हैं। अधैनी के ऊपर-नीचे जो चूल्हेनुमा हिस्सा बना रहता है उसमें पतली कील पड़ी रहती है जिसे **सराई** कहते हैं। सराई जिन छेददार दो गोल पत्तियों में पुही रहती हैं, उन पत्तियों को **पाते** या **झंझरी** कहते हैं। जितनी जगह में सराई लगी रहती है, वह फासला **काढ़** कहलाता है। खटतार को जिस जगह हाथ में पकड़ते हैं, वह **खाँचेदार** हिस्सा **कबजा** कहाता है। खटतार की जोड़ी के बजते समय **'खट-छपक-छप'** की आवाज निकलती है।

[रेखा-चित्र ८३७, ८३८]

(९) झाँझ और मँजीरा
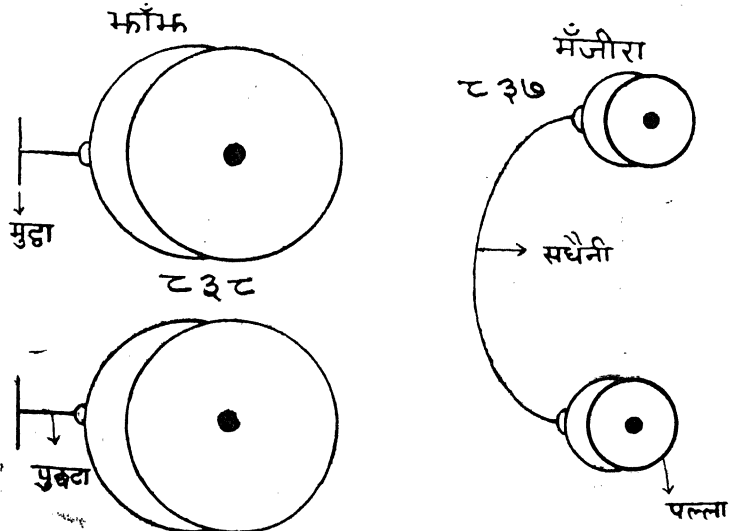
§१२९०—झाँझों और मँजीरों की जोड़ी ही होती है। झाँझें[1] अलग-अलग होती हैं लेकिन मँजीरों की जोड़ी एक डोरी में पुही रहती है। झाँझों के गोलाकार पल्ले, जो काँसे के बने होते हैं, प्रायः मन्दिरों में आरती के समय और कीर्तन में बजाये जाते हैं। झाँझ बजानेवाला **झाँझिआ** या **झाँझिया** कहाता है। झाँझ के ठीक बीच में एक छेद होता है; उसमें सुतली का एक टुकड़ा डालकर उस टुकड़े के आगे के सिरे में गाँठ मार देते हैं और पीछे कपड़े की एक गद्दी-सी बाँध देते हैं जिसे पकड़कर झाँझ बजायी जाती है। कपड़े की उस गद्दी को **मुट्ठा** या **पुछेटी** कहते हैं। मँजीरों में एक ही लम्बी डोरी होती है जो **सधैनी** कहाती है।

§१२९१—मँजीरों (सं० मंजीर) के पल्ले कुछ-कुछ दीवले-से या कटोरीनुमा होते हैं। वे झाँझों के पल्लों से बहुत छोटे होते हैं। झाँझों की आवाज़ **'झन्झन्'** और मजीरों की **'किट्किन्'** कहाती है। **जिकड़ी भजन** (होली के आसपास सामूहिक रूप में गाये जानेवाला एक विशेष लोकगीत) में ढोलक के साथ खटतार और मँजीरे बजा करते हैं।

[रेखा-चित्र ८३९, ८४०]

(१०) झालर
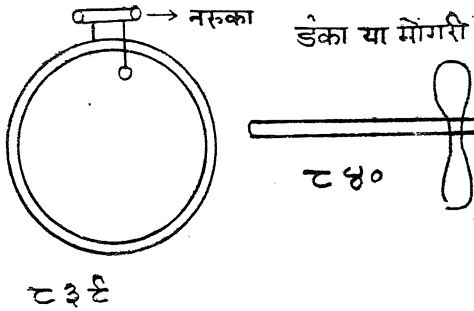
§१२९२—झालर को **झल्लरी** और **झालरी** भी कहते हैं। प्रायः **झालरें** काँसे और भर्त की बनती हैं। बिना किनारे की थाली के समान ही इसका आकार होता है। **घड़ियाल** और झालर की एक ही बिरादरी है। घड़ियाल आकार में झालर के बड़ा और मोटा होता है। झालर के किनारे पर एक छेद होता है जिसमें एक डोरी पड़ी रहती है। उस डोरी में बाँस की एक मोटी नली डाल देते हैं जिसे पकड़कर झालर बजाते हैं। बाँस की पोली नली को **नरुआ** कहते हैं। **झालर** या **झालरी** (सं० झल्लरिका) जिस लकड़ी से बजाई जाती है, उसे **मोंगरी** (सं० मुद्गरिका) या **डंका** कहते हैं। झालरें प्रायः मन्दिरों में **आरती** के समय या **बिमान** (बेटे, नाती, पन्ती वाले सम्पन्न मृत पुरुष की अरथी) ले जाते समय बजा करती हैं।

(११) बेला

§१२९३—बेला **चमरनाच** या **चमन्नाच** (चमारों का सामूहिक नाच) के समय बजने-

[1] "डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नंद-भवन गये।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२४
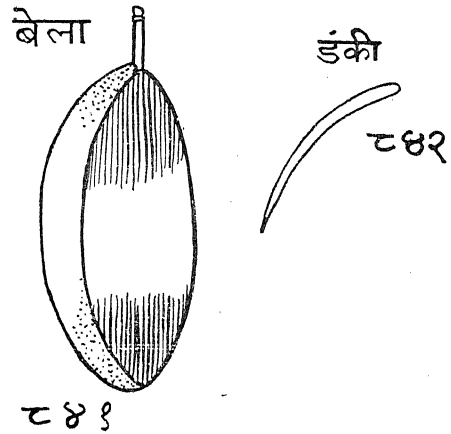
[रेखा-चित्र ८४१, ८४२]

वाला मुख्य लोक-वाद्य है। इसका आकार छोटी थाली के बराबर होता है और यह काँसे
बनाया जाता है। किनारे पर एक छेद करके उसमें एक डोरी डाल लेते हैं और झालर
भाँति **मौंगरी, डंडी** या **डंकी** से बजाते हैं। इसकी आवाज **'टनटनाहट'** कहाती है।

[रेखा-चित्र ८४३]

(१२) झुंझुना
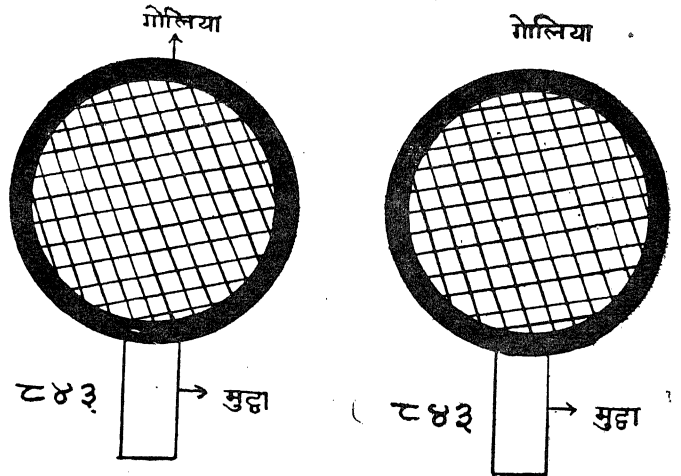
§१२६४—झुंझुनों की जोड़ी होती है। प्रायः **खटीकिया-नाच** (खटीक लोगों का ना
में **बंसी** (सं० वंशिका) के साथ झुंझुनों की जोड़ी बजती है। पोले दो नारियलों में छोटी-छो
कंकड़ियाँ डाल कर उनमें अलग-अलग दो छोटी-छोटी लकड़ी ठोक दी जाती हैं जिन्हें **मुट्ठा**
मुठिया कहते हैं। नारियलों को **गोलिये** कहते हैं। **झुंझुनिया** (झुंझुने बजानेवाला) अ
दोनों हाथों में एक-एक झुंझुना ले लेता है और **नचकइया** के पाँवों के **ठुमके** (नाच में दो
पाँवों का क्रमशः संचालन-विशेष) के साथ बजाता है। ठुमके के समय जिस तरह पाँव की **पंसु**

कपड़े की एक पट्टी जिस पर बजनेवाले घुंघरू टँके रहते हैं) बजती हैं, उसी तरह झुंझुने भी लय और ताल देते हैं।

(१३) घूँघरा या गलगला

§१२९५—**देवी** (नगरकोट की भवानी माता) की **जात** (सं० यात्रा) के लिए जिन दिन **जाती** (सं० यात्री) जाते हैं, उससे एक दिन पहले **भगत** (देवी का हवन और जागरन करानेवाला व्यक्ति भगत कहाता है। यह जाति का कोरी होता है) देवी की पूजा कराता है। रात भर **बैराठ**[1] और **छन** (=छन्द अर्थात् देवी की स्तुति के गीत) गाये जाते हैं। उन्हें **जागन्न** या **जागरन** कहते हैं। जागरन गाते समय भगत कमर में घूँघरा बाँधकर नाचता भी है। कपड़े की एक लम्बी पट्टी पर काँसा मिली हुई पीतल की पोली-पोली बड़ी गोलियाँ टंकी रहती हैं जिनमें बजने के लिए लोहे की गिट्टियाँ पड़ी रहती हैं। उन पोली गोलियों को **घूँघरा** या **गलगला** कहते हैं।

(१४) घुँघरू और पंसुरी
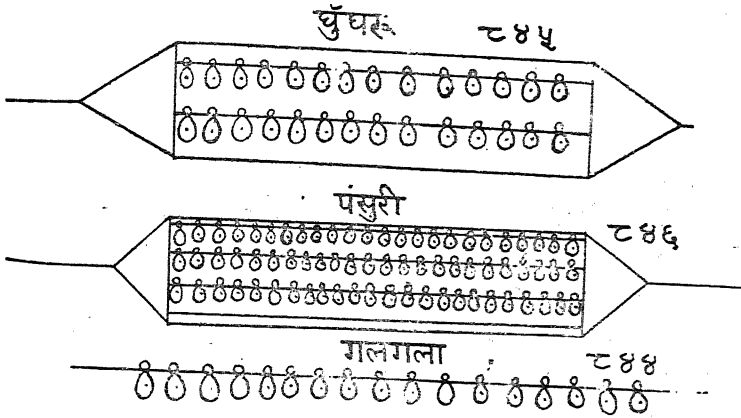
[रेखा-चित्र ८४४ से ८४६ तक]

§१२९६—घूँघरों या गलगलों से छोटी गोलियाँ, जिनमें कंकड़ियाँ पड़ी रहती हैं, **घुँघरू** कहाती हैं। जब घुँघरुओं को एक पट्टी पर कई पाँतियों में टाँक दिया जाता है तब वह पट्टी **पंसुरी** कहाती हैं। प्रायः नचकइये लोक-नृत्यों के अन्दर पाँवों में पंसुरी बाँधकर ही नाचा करते हैं।

अध्याय ३

लोक-नृत्य

§१२९७—विशेष त्योहारों, लोकाचारों और देवी-देवताओं की मनौती मनाने के अवसरों पर गाँवों में नाच नाचे जाते हैं। मनो-विनोद के समय कुछ लोक-गीतों (रसिया, होली और सांगीत) को गाते हुए लोग नाचते भी हैं। स्त्रियों का नृत्य **जनाना नाच** और पुरुषों का **मरदाना नाच** कहाता है। यदि कोई आदमी स्त्री की वेश-भूषा धारण करके स्त्रियों की भाँति

---

[1] महाभारत के विराट् पर्व की कथा जो ग्राम्य गीतों में गाई जाती है, वह देवी के जागरन के समय बैराठ पुकारी जाती है। 'बैराठ' को भगत ही सुनाता है।

नाचता है तो उस समय वह **जनानी** कहाता है। जब मरदाना नाच गम्भीर, सरस और संयत होता है तब वह **भलमा** कहाता है। उद्धतता और हास्य से भरे हुए मरदाने नाच को **बंडा-नाच**[1] कहते हैं। यदि जनाना नाच और बंडा-नाच साथ-साथ दिखाया जाता है तो वह **गुलमा नाच** कहाता है। जब जनाना, भलमा और बंडा नाम के नाच एक साथ दिखाये जाते हैं तब सामूहिक रूप में उन्हें **सलगट्टा** नाच कहते हैं। नचकइया जिस नाच को स्वतंत्र रूप से अपने पर आश्रित होकर नाचता है वह नाच **इकोसरा** कहाता है लेकिन जो नाच दूसरे के नाच पर आधृत होता है वह **लग्गा** कहाता है। बंडा-नाच इकोसरा नहीं, बल्कि लग्गा है क्योंकि जो मनुष्य बंडा-नाच नाचता है वह जनानी के नाच पर आधृत रहता है। होली के दिनों में कुम्हार, धोबी, चमार, और कोरी जाति के लोगों की **चौपई** (नाच-गाने की मंडली) निकलती है। उसमें प्रायः दो मनुष्य या एक मनुष्य स्त्री-वेश में जनाना नाच नाचता है और उसके साथ में नाचता हुआ **बंडा** (एक प्रकार का विदूषक) हँसी-मजाक की चेष्टाएँ करता है। बंडे की आंगिक चेष्टा **धुर्रियाई** कहाती है। उसका गाना **धुर्रा राग** कहाता है।

§१२६८—गीतात्मक लोक-नाटकों में हाथरस के **स्वाँग** और ब्रज के (विशेषतः मथुरा-वृन्दावन के) **रास** बहुत प्रसिद्ध हैं। स्वांग और रास में वादन तथा नर्तन के साथ गायन भी होता है। स्वाँग के गीत **सांगीत** कहाते हैं। काव्यशास्त्र की दृष्टि से सांगीत दृश्य-काव्य के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें गीतात्मक रूपक कहा जा सकता है। यही बात रास के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भाव की दृष्टि से सांगीत में रति की प्रधानता है और रास में भक्ति की और कृष्ण की लीलाओं की। राधा-कृष्ण के मन्दिरों में सावन-भादों के महीनों में रास बहुत होते हैं।

§१२६९—सांगीत के प्रदर्शन के समय किसी राजा के यहाँ पुत्रजन्मोत्सव आदि प्रसन्नता-सूचक अवसरों पर दर्बार लगता है और उसमें नाच-गाना होता है। उस नाच को भी **स्वाँग** कहते हैं। स्वाँग करनेवाले व्यक्तियों को **स्वाँगिया** कहते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित जो घटनाएँ और क्रियाएँ गीत और नाच के द्वारा प्रदर्शित की जाती हैं वे **रास-लीला** कहाती हैं। रास-लीला करनेवाले व्यक्ति **रासधारी** कहाते हैं। रासधारियों में प्रायः सात लड़के गोपियों का रूप धरते हैं। एक कृष्ण बनता है और एक **मंसुखा** नाम का कृष्ण का सखा जो बहुत-कुछ विदूषक का-सा काम करता है। गोपियों में एक राधा अवश्य होती है। श्रीकृष्ण प्रत्येक गोपी के साथ नाचते हैं। फिर सब गोपियाँ गोलाईदार घेरे में खड़ी हो जाती हैं और घेरे के केन्द्र-स्थान में श्रीकृष्ण रहते हैं[2]। बीच में कृष्ण और उनके चारों ओर मंडल बनाकर परिक्रमा देती हुई गोपियाँ नाचती हैं। इसके उपरांत श्रीकृष्ण मंडलाकार घेरे की पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। उनके दाँये-बाँये गोपियाँ रहती हैं। फिर वे एक दूसरे का हाथ पकड़ते हुए नाचते हैं। इस तरह श्रीकृष्ण किन्हीं दो गोपियों के बीच में जाकर खड़े हो जाते हैं और परस्पर हाथ पकड़कर घेरे में ही नाचते हैं। इस प्रकार का नाच **रास** कहाता है। श्रीकृष्ण का केन्द्र-स्थान पर खड़े हुए अपनी जगह पर ही चारों ओर घूमना **चाँईमाँई** और मंडलाकार घेरे में सब गोपियों का घूमना **चकफेरा** कहाता है। रास ताल एवं लय पर आश्रित है। पद-चाप को बतानेवाले तबले के बोल **ताथइया** कहाते हैं।

[1] धनंजय (दशरूपक १।६।-१०) के अनुसार बंडा-नाच देशी नृत्त के समत्त माना जा सकता है। बंडा-नाच उद्धत होता है, अतः वह तांडव की श्रेणी में भी आ सकता है।

[2] "मंडलेन तु यन्नृत्तं हल्लीमकमिति स्मृतम्। एकस्तत्र तु नेतास्याद् गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥ तदिदंहल्लीसकमेव तालबन्धविशेषयुक्तं रासएवेत्युच्यते॥" भोजराजः सरस्वती कण्ठाभरण, पृ० ३०६।

बाण, शंकर और रूपगोस्वामी ने **रास** (सं० रास) नाम के नाच का वर्णन करते हुए **'रासक'**[१] और 'रास'[२] शब्द का उल्लेख किया है। रास एक प्रकार से मण्डली-नृत्त है।[३]

स्वाँगों में **निहालदे, हीरराँझा, नवलदे** और **ढोलामारू** अधिक खेले जाते हैं।

§१३००—**अलीगढ़ क्षेत्र की स्वाँग-रास-मंडलियों के नाम**—तहसील हाथरस में इन्दरमन के शिष्य **नथाराम की स्वाँग-मंडली** बहुत प्रसिद्ध है। तहसील खैर के निवासी **प्यारे स्वाँगिया** की मंडली भी काफी नाम कमा चुकी है। रासों के लिए **मौजी, डल्ला** और **रामस्वरूप की मंडलियाँ** पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी हैं।

§१३०१—**नाच में शरीर के अंगों की गतियों के नाम**—शरीर को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) सिर (२) धड़ (३) टाँगें। बाहें धड़ के अन्तर्गत आ जाती हैं। चहरा और गर्दन सिर के अन्तर्गत हैं।

§१३०२—**सिर से सम्बन्धित गतियों के नाम**—जब नचकइया (नर्तक) आँखों की पुतलियों को क्रमशः दाँये-बाँये कोए की ओर चलाता है तब पुतलियों की वह हरकत **आँख का डोरा** कहाती है। गर्दन को क्रमशः आगे-पीछे मटकाना **नार का डोरा** या **गलगलिया मटकन** कहाता है। गर्दन को दाँये-बाँये रुख से चलाना **बाजिया चितौन** कहाता है। आँख के डोरे के लिए **'फिराना'** क्रिया का और नार डोरे के लिए **'चलाना'** क्रिया का प्रयोग होता है यथा—**आँख का डोरा फिराना** और **नार का डोरा चलाना**।

§१३०३—**धड़ से सम्बन्धित गतियों के नाम**—(क) नाचते समय बाँहों को स्थिर रखते हुए कलाई पर से हाथ को विभिन्न हरकतों के साथ मोड़ना तथा घुमाना **करइया** कहाता है। नृत्यशास्त्र के अनुसार अंग की विशेष स्थिति या चेष्टा 'मुद्रा' कहाती है। आँख, भौं और मुँह के द्वारा 'भाव-मुद्रा' और बाँह, हाथ तथा उँगलियों के द्वारा 'अनुकरण-मुद्रा' व्यक्त की जाती है। भाव-मुद्रा के लिए लोक भाषा में **मनगत** और अनुकरण मुद्रा के लिए **बनगत** शब्द प्रचलित हैं। नाचते समय जब कोई अंग ऊपर को जाता है तब वह हरकत **चढ़न्ती ढब** कहाती है। जब अंग नीचे की ओर आता है तब उस हरकत को **ढरन्ती ढब** कहते हैं। यदि अंग वहाँ का वहीं रहता है तो **आरामी** ढब कहाती है।

---

[१] "अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद् यत्र नृत्यन्ति नायकाः।
पिंडीबद्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम्॥"—शंकर
अर्थ—आठ, सोलह या बत्तीस व्यक्ति मंडल बनाकर जब नृत्य करें तब वह **रासनृत्य** कहलाता है।

[२] "रैणवावर्तमंडलीरेचक **रास-रस** रभसारब्धनर्तनारम्भारभटी नटाः।"
—बाण : हर्षचरित, निर्णयसागर, पंचम संस्क०, पृ० ४८।
बधूश्च तडिदुज्ज्वला प्रतिहरिद्वयं मध्यतः,
सखीधृत कराम्बुजा नटति पश्य रासोत्सवे।
—रूपगोस्वामी, उज्ज्वलनीलमणि, निर्णयसागर प्रेस, द्वितीय सं०, १९३२ ई०, पृ० ५१८।

[३] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि रास और हल्लीसक की परम्पराएँ किसी समय एक दूसरे से सम्बन्धित हो गईं क्योंकि शंकर ने मंडलीनृत्य को 'हलीसक' कहा है जिसमें एक पुरुष नेता के रूप में स्त्री-मंडल के बीच में नाचता है। इसे ही भोज ने 'सरस्वती कंठाभरण' में 'हल्लीसक नृत्य' कहा है। 'तदिदं हल्लीसकमेव तालबन्धविशेषयुक्तं रास एवेत्युच्यते"—सरस्वती कंठा०, पृ० ३०९।
हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३३।

(ख) जनाना नचकइया एक जगह खड़ी हुई दशा में जब काफी देर तक चारों ओर इस तरह घूमता रहता है कि उसका लहँगा गोल घेरे के रूप में हो जाता है, तब उस गति को **गिरदी** या **घुमइयाँ** कहते हैं। दो-चार चक्कर लेते हुए घूमना **फिरकइयाँ** कहाता है। फिरकइयों के समय धड़ को आगे-पीछे झुकाने को **झूमक** कहते हैं। कमर को गोलाई में दाँये-बाँये झुकाना **करिहा-न्हचौरी** कहाता है।

कमर के दाँये-बाँये रुख की हरकत **लचका** कहाती है। **कूल्हुओं** (दाँई और बाँई जाँघों के ऊपर के भाग) को जब दाँये-बाँये रुख क्रमशः चलाया जाता है तब उस हरकत को **कूल्हुआ लचकन** कहते हैं। दोनों कूल्हू क्रम से जब ऊपर नीचे चढ़न्ती-ढरन्ती ढब में किये जाते हैं तब वह हरकत **कूल्हुआ मटकन** कहाती है।

(ग) **पेड़ू** (नाभि से ठीक नीचे का भाग) को साँस की सहायता से आगे-पीछे हरकत देना **पेड़ू चलाना** कहाता है। उस गति को **पेड़ुआ चलगत** कहते हैं।

कमर और कूल्हू जब एक विशेष गति में लचकाये और मटकाये जाते हैं, तब वह गति **भाँड़ी** कहाती है। भाँड़ी विशेषतः मरदाने नाच की ही आंगिक चेष्टा है। भाँड़ी के समय नचकइया बहुत इतराता है। **इतरा** विशेषण से **इतराना** क्रिया बनी है (सं० इत्वर[1] > इतरा)।

§१३०४—**टाँगों से सम्बन्धित गतियों के नाम**—जनाने नाच में बाँई या दाँई ओर टाँगों को क्रम से जल्दी-जल्दी साथ-साथ चलाते हुए तथा दोनों पाँव ऊपर-नीचे करते हुए एक सरपट-सी भरना **थिरक** या **थिरकन** (सं० अस्थिरकरण) कहाता है। इसके लिए **'थिरकना[2]'** क्रिया प्रचलित है। जब एक पाँव का पंजा एड़ी उठाते हुए धरती पर बार-बार मारा जाता है तब उस हरकत को **ठेपर** कहते हैं। तबले में ठेके की ताल पर जब पाँवों की हरकत की जाती है और धड़ को स्थिर रक्खा जाता है तब उसे **ठुमका** कहते हैं। यह ठेके के नाच की प्रारम्भिक गति है। दूर से दौड़ते हुए आना और एकदम ताली बजाकर खड़ा हो जाना **सपट्टा** कहाता है। मरदाने नाच में पाँवों की एक हरकत **नहना** कहाती है। इसमें नचकइया अपने पाँवों को क्रम से आगे-पीछे चलाता रहता है, लेकिन स्थान नहीं बदलता।

जनाने नाच

§१३०५—**बाजों की ताल के आधार पर नाचों के नाम** (१) **कहरवा**—तबले या ढोलक के बजने की एक विशेष धुन **कहरवा** कहाती है। उस धुन के अनुसार ही जब नचकइये के पाँव चलते हैं तो उस नाच को भी **कहरवा** नाम से पुकारते हैं। आंगिक चेष्टाओं एवं गतियों के आधार पर कहरबे के कई प्रकार हैं—

(१) कूल्हुआ कहरबा (२) पेडुआ कहरबा (३) कूल्हुआ बदल (४) पेडुआ लौटन (५) व्रज का कहरबा (६) व्रज कहरबा-बदल।

(क) **कूल्हुआ कहरबा**—इस नाच में कहरबे की ताल में तबला या ढोलक बजती रहती है और नचकइया उसी ताल के अनुसार अपने दाँये-बाँये कूल्हुओं को क्रमशः ऊपर-नीचे की ओर मटकाता है। इस नाच में कहरबे की धुन के साथ-साथ कुल्हुआ मटकन दिखाई जाती है। इस नाच में ढोलक के साथ **थारी** (एक लोकवाद्य जिसमें लोटे के ऊपर काँसे की औंधी थाली रख-कर उसे डंडी से बजाते हैं) भी बजती है।

---

१ "चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव"—(बाण, हर्षचरित, बम्बाई, सन् १९१८ ई०, पृ० १९)

२ "पद-बिनु कैसें नाच थिरकि रिझाइहै।"

जगन्नाथदास 'रत्नाकर : उद्धवशतक, इंडियन प्रेस, प्रयाग १९४१, छं० ४६।

(ख) **पेड़ुआ कहरवा**—इस नाच में भी कहरवे की धुन के अनुसार पेडू (नाभि और कौंधनी के बीच का अंग) को आगेपीछे चलाया जाता है।

(ग) **कूल्हुआ बदल**—इसमें कहरवे की धुन के आधार पर नचकइये का केवल एक कूल्हू (दाँयाँ या बाँयाँ) मटकता है। उस समय एक स्थिर रहता है। यदि दाँयाँ कूल्हू मटकता है तो बाँयें हाथ से विभिन्न **बनगतें** दिखाई जाती हैं। कुछ समय बाद जब बाँयाँ कूल्हू मटकने लगता है तब दाँयें हाथ और बाँह से **बनगतें** की जाती हैं।

(घ) **पेड़ुआ लौटन**—इस नाच में नचकइया पहले एक दिशा में खड़े होकर पेड़ू की चलगत दिखाता है। फिर इसी तरह पींठ पीछे घूमकर पेड़ू चलाता है। इसी प्रकार चारों ओर पेड़ुआ चलगत दिखाता है।

(ङ) **ब्रज का कहरवा**—नचइया पहले अपने शरीर को आगे को ओर झुकाता है और दोनों बाहों को गोलाई में आगे को मिलाते हुए उलटे पाँव पीछे को हटता है। फिर एक साथ फिरकइयाँ लेता है। फिरकइयों के समय दाँयें हाथ का अँगूठा दाँयें कूल्हू पर और बाँयें हाथ का बायें कूल्हू पर रक्खा रहता है। ये सब गतियाँ कहरवे की धुन के सहारे पर ही होती हैं।

(च) **ब्रज कहरवा-बदल**—इसमें पहले एक स्थान पर खड़े होकर शरीर आगे को झुकाया जाता है फिर उसी दशा में आगे को बढ़कर दोनों बाँहें सिर के आगे गोलाई में बाँधी जाती हैं और फिर कूल्हुओं पर अँगूठे रखकर फिरकइयाँ लगाई जाती हैं।

(२) **ठेका**—ढोलक या तबले की एक विशेष धुन **ठेका** कहाती है। ठेके के अनुसार नाचा जानेवाला नाच ठेका कहाता है। इसमें प्रायः दाहिने पाँव की ठेपर और ठुमका लगाया जाता है। इस नाच में नचकइये की छाती ऊपर-नीचे क्रम से चढ़ती-उतरती रहती है। दोनों बाहें और हाथों की कलाइयाँ विभिन्न प्रकारों से हरकत करती रहती हैं। छाती से लेकर कौंधनी तक का शरीर स्थिर रहता है। पाँव ठेके पर चलते रहते हैं और तबले के बोलों से मेल मिलाती हुई पंसुरियाँ बजती रहती हैं।

(३) **लहरा**—इस नाच में मधुरिया बैन (बकरी की खाल से बनाया हुआ बैन जिसे प्रायः भोंपे बजाते हैं) से एक विशेष धुन बजाई जाती है जिसे **लहरा** कहते हैं। उसी लहरे से मिलती हुई ढोलक भी बजती है। नचकइया घुटने मोड़कर बैठ जाता है और अपने लहँगे को चारों ओर गोलाई में फैला लेता है। घूँघट से मुँह ढककर पीछे की ओर कमर झुकाते हुए चारों ओर लहर लेता है। उस समय नचकइये की गर्दन की गति लहरे की धुन के अनुसार कुछ हरकत करती रहती है। इसके बाद एक घुटने को उठाकर उस टाँग के पाँव को धरती से मारते हुए पंसुरी बजाई जाती है। इसे **भैंरों नाच** भी कहते हैं। इसी नाच में जब घूँघट उठा दिया जाता है और नचइया ओढ़नी का ठोक मुँह में देकर तथा उसके नीचे के भाग के दोनों सिरों को दोनों हाथों से पकड़कर और मुँह में हवा-सी भरते हुए गर्दन को लचकाता रहता है तब उसे **बरुआबैन** या **नागनाच** कहते हैं। उक्त दोनों नाच लहरा नाच के ही अन्तर्गत आते हैं। क्योंकि ये लहरे की धुन पर ही नाचे जाते हैं।

(४) **दादरे का नाच**—इस नाच में चलती ढोलक बजती है। उसी चलती ढोलक की धुन के अनुसार नाचनेवाली स्त्री के पाँव भी जल्दी-जल्दी पड़ते रहते हैं। इसे **चलतानाच** भी कहते हैं। ब्याह, दस्ठौन आदि अवसरों पर प्रायः यही नाच-नाचा जाता है।

§१३०६—**पक्षियों और विशेष वस्तुओं के आधार नाचों के नाम**—(१) **मोर नाच**—इस नाच में स्त्री या जनाना नचकइया अपने लहँगे को दाँई-बाँई ओर से कुछ उठाकर

चारों ओर घूमते हुए नाचता है। लहँगे की उठान से नचकइये को **मोर** का प्रतीक मान लिया है क्योंकि मोर भी अपनी **डढ़ीरें** (मोर पँच) उठाकर नाचा करता है। कभी-कभी मोर-नाच में एक साथ दो स्त्रियाँ भी नाचती हैं।

(२) **गुजरिया या गगरिया नाच**—नाचनेवाली स्त्री इस नाच में अपने सिर पर पाँच-पाँच घड़े तले-ऊपर रख लेती है। इस नाच में गर्दन स्थिर रहती है और शेष शरीर हरकत करता रहता है। इसी को **मटुकिया नाच** भी कहते हैं। यह नाच जोड़े से होता है। दो स्त्रियाँ साथ-साथ नाचती हैं। उनके अंगों की गति साथ-साथ होती है और वह भी एक-सी ही। कभी-कभी इस नाच में सबसे ऊपर की गागर पर जलता हुआ चौमुखा दीपक या जल से भरा पानी का लोटा भी रख लिया जाता है। गुजरिया[१] नाच गुजरात के **गर्वा नाच** की याद दिला देता है। कभी-कभी गुजरिया नाच मंडली के रूप में होता है। चार-छह स्त्रियाँ एक साथ गोल घेरे में नाचती हैं। एक ओर पुरुषों की मंडली भी नाचती है। स्त्रियों के मुँह घूँघटों से ढके रहते हैं। वे नाचते समय अपने हाथों के अँगूठों से **सींग** या **सिंगट्टा** (मुट्ठी बाँधकर अँगूठे ऊपर उठाते हुए दाँये-बाँये चलाना) दिखाती हैं।

(३) **चरखा**—इस नाच में वीरासन मारकर नचकइया बैठता है और नाचते हुए चरखा कातने की भाँति दोनों हाथों से संकेत करता है।

(४) **तरवारी**—दो आदमियों को खड़ा कर लिया जाता है। उनके कन्धों पर दो लम्बी तलवारें रखी जाती हैं। नचकइया उनके ऊपर नाचता है।

(५) **बतासिया नाच**—इसे **कथकिया नाच** भी कहते हैं। इस नाच में एक फर्श पर बताशों की पंक्ति लगा ली जाती है। नचकइया अपने पाँव कहरबे की धुन से मिलाते हुए इस तरह बताशों के बीच में रखता है कि बताशे नहीं फूटते।

(६) **थरिया नाच**—इस नाच में नचकइया अपनी दोनों हथेलियों पर दो थालियाँ रख-कर नाचता है। हाथों को विभिन्न दिशाओं में घुमाया जाता है; लेकिन हाथों पर से थालियाँ नहीं गिरतीं।

(७) **लाठी का नाच**—इसमें तरवारी नाच की भाँति दो आदमी खड़े हो जाते हैं। उनके कन्धों पर दो लाठियाँ रख देते हैं। उन पर खड़े होकर नचकइया नाच नाचता है।

(८) **लूका**—इस नाच में दो-दो जोड़ी स्त्रियाँ या जनाने नचकइये मुँह में जलती हुई **सेंटी** (सन की लकड़ी) दबाकर नाचते हैं। एक जोड़े के दोनों व्यक्तियों की हरकतें एक-सी ही होती हैं।

§१३०७—**विशेष जातियों के नाच**—जातियों के आधार पर **चमरनाच**, **कुम्हरनाच** और **धोबिया नाच** भी प्रसिद्ध हैं। ये सामूहिक नाच हैं जो मंडली के रूप में नाचे जाते हैं। इनमें बाजेवाले भी तबला-ढोलक आदि खड़े-खड़े बजाते हैं। गूजरों का एक विशेष नाच **डाड़ौं** कहाता है। इसमें स्त्रियों की मंडली अलग और पुरुषों की अलग नाचती है। प्रायः होली के दिनों में डाड़ौं नाच देखे जा सकते हैं। ढप बजते हैं और दो-तीन स्त्रियाँ मिलकर साथ-साथ नाचती हैं। गूजरों में पुरुष भी गलिहारों में चलते-चलते डाड़ौं नाच नाचते हैं।

---

[१] ब्रज प्रान्त के गाँवों में 'गुजरिया नाच' विशेष नाच है यह लोकप्रिय नाच कृष्ण के प्रेम को प्रकट करता है। लोगों का कहना है कि कृष्णचन्द्र जी को चन्द्रावली बहुत प्यारी थी। वह गूजरी ही थी। वह श्रीकृष्ण की याद में नाचा करती थी। गुजरिया नाच में वैसा ही भाव रहता है।

§१३०८—**कुछ अन्य नाचों के नाम**—(१) **नाला**—इस नाच में दोनों हाथों को मोड़कर छाती पर रख लेते हैं। स्त्री या जनाना नचकइया पीछे को झुकता जाता है और अपना सिर चित्त हालत में धरती पर टेक देता है लेकिन पाँव चलते रहते हैं।

(२) **सड़प्पा**—इसमें तीन स्त्रियाँ पहले एक पंक्ति में खड़ी हो जाती हैं; फिर ताली बजाकर एक साथ काफी दूर तक आगे चलती हैं और नाचती हुई फिर अपनी जगह आ जाती हैं। इसी प्रकार बार-बार होता रहता है।

(३) **चुटकी**—इस नाच में कम से कम चार स्त्रियाँ नाचती हैं। उनकी चुटकियाँ और ताली एक विशेष लय और ताल से बजती रहती हैं।

(४) **मनबसा**—इस नाच में एक व्यक्ति स्त्री वेश में नाचता है और दूसरा पुरुष-वेश में। दोनों एक दूसरे के हाथों को पकड़कर और आमने-सामने खड़े होकर **आँख का डोरा** फिराते हैं और **नार का डोरा** चलाते हैं। गर्दन को दाँये-बाँये चलाना **नार का डोरा चलाना** कहाता है।

(५) **असानी**—इस नाच में नचकइया बाँया हाथ बाँई ओर सीधा सतर कर लेता है और सीधे हाथ को कुहनी पर से ४५° के कोण पर मोड़ते हुए सीधी आँख के पास छुवाता है। फिर नीचे की ओर दाँई-बाँई दृष्टि डालते हुए दोनों कूल्हुओं को क्रमशः मटकाता है।

(६) **चरकला**—इस नाच में नारी के दोनों हाथों पर जलते हुए दो दीपक रहते हैं। सिर के ऊपर रक्खी हुई गागर के ऊपर एक थाल रहता है, जिसमें आठ दीपक जलते हुए रखे जाते हैं। नाचते समय सरपट भरने पर भी दीपक बुझते नहीं हैं।

(७) **अचका**—यह जोड़े का नाच है। इसमें दो स्त्रियाँ एक-सी पोशाक पहिनकर साथ-साथ नाचती हैं। बहुत धीरे से दोनों स्त्रियों के पाँव उठते हैं और आगे बढ़ाकर रक्खे जाते हैं। इसमें दोनों स्त्रियों के अंगों की हरकत बिलकुल साथ-साथ और **अचक-पचक** (धीरे-धीरे) होती है।

(८) **बैठका**—दोनों पाँवों पर बैठते हुए और दोनों हाथों को आगे तथा दाँये-बाँये घुमाते हुए यह नाच दिखाया जाता है।

(९) **गुड़ीका**—इसमें नचकइया दोनों हाथों को इस तरह घुमाता और चलाता है कि मानों पतंग उड़ा रहा हो।

(१०) **झमेला**—होली के दिनों में स्त्रियाँ मंडली बनाकर गलियों **गिरारों** (गलिहारों) में गाती हुई नाचती हैं। वह नाच झमेला कहाता है।

(११) **पठानिया नाच**—इस नाच को स्त्री पठान के रूप में मर्दाना वेश रखकर नाचती है। जब लड़के की बरात ब्याहने चली जाती है तब उस रात को स्त्रियाँ नाटक-सा करती हैं। जिसे **खोइया** कहते हैं। उसी में ही एक नाच **पठानिया** कहाता है।

§१३०९—**मर्दाने नाच**—मर्दाने नाचों में **बण्डा नाच** एक खास नाच है। इसके कई प्रकार हैं जिन्हें नीचे लिखा जाता है। बंडे के नाचों में तीन अंगों की हरकतें प्रधान हैं—छाती, कमर और टाँगें। इन तीनों के आधार पर मुख्यतः क्रम से नाचों के तीन भेद हैं—(१) **छतेला नाच** (२) **करिहा नाच** (३) **टँगेड़ा नाच**।

§१३१०—**छतेले नाच के भेद** (क) **छाती तोरा**—इस नाच में बंडा अपने दोनों हाथों के अँगूठे छाती पर रख लेता है। हाथों की मुट्ठियाँ-सी बँधी रहती हैं। दाँया हाथ छाती पर दाँई

ओर और बाँयाँ हाथ छाती पर बाँईं ओर रहता है। नचकइया छाती को आगे निकालते हुए कुछ पीछे की ओर पीठ झुकाये रहता है। वह इस हालत में साँस के द्वारा छाती को आगे-पीछे चलाता है। कभी-कभी छाती का एक भाग ही चलता है। दाँईं ओर का भाग स्थिर रहता है तो बाँईं ओर का हरकत करता है। इसी तरह इसका विलोम भी किया जाता है। इसी नाच में छाती का दाँयाँ पक्ष जब **चढ़न्ती ढब** (ऊर्ध्व दशा) में होता है तब बायाँ पक्ष **ढरन्ती ढब** (निम्न दशा) में दिखाया जाता है।

(ख) **लकड़भग्गा**—इस नाच में छाती और दोनों हाथ काम करते हैं। नचकइया छाती आगे की ओर झुकाकर और दोनों बाँहों को कुहनी पर से नीचे को मोड़कर झटके-से पाँव रखता है। वास्तव में इस नाच के अंदर **लकड़भग्गे** (एक पशु जो आकार में कुत्ते से बड़ा होता है। इसे भोकड़ा भी कहते हैं। यह मांसाहारी होता है) की चाल की नकल की जाती है। उसी के नाम पर इस नाच का नाम भी **लकड़भग्गा** पड़ गया है।

(ग) **कुम्होंदरा**—इस नाच में कमर आगे-पीछे की जाती है और दोनों हाथों से ऐसी हरकत की जाती है मानों कोई फावड़े से मिट्टी खोद रहा हो।

§१३११—**करिहा नाच के भेद**—(क) **भाँड़ी तोरा**—करिहा नाचों में यह नाच बहुत प्रसिद्ध है। भाँड़ी नाच दिखाने के अर्थ में **तोरना** और **मारना** क्रियाओं का प्रयोग होता है यथा—**भाँड़ी तोरना** अथवा **भाँड़ी मारना**।

इस नाच में नचकइये का पेड़ू, कमर और कूल्हू विशेष रूप से हरकत करते हैं। कमर को चारों ओर घुमाया जाता है और पेड़ू को मटकाया जाता है।

(ख) **चकरेटी**—इस नाच में दोनों हाथों को आगे करके उनकी एक जगह मुट्ठी बाँध ली जाती है और कमर तथा कूल्हुओं को कुम्हार के चाक की भाँति घुमाया जाता है। चाक को जिस डंडे से घुमाया जाता है उसे **चकरेटी** कहते हैं। उसी के नाम पर इस नाच का नाम पड़ गया है। चाक घुमाने में कुम्हार के हाथ जिस तरह हरकत करते हैं, उसी तरह नचकइया चकरेटी नाच में अपने हाथ चलाता है और कमर हाथों के साथ-साथ चाक की भाँति घूमती है। नचकइया इस नाच में अपने शरीर का रुख भी चारों ओर जल्दी-जल्दी बदलता रहता है।

(ग) **ऐंठा या मरोरा**—इस नाच में कमर कुछ-कुछ चकरेटी नाच की तरह ही हरकत करती है; किन्तु नचकइये का शरीर एक ही दिशा में रहता है। इस नाच में कमर इंठी हुई हालत में दिखाई देती है।

(घ) **दुहरा ऐंठा**—इस नाच में ऐंठे का विलोम भी किया जाता है अर्थात् कमर के कूल्हू कुछ क्षण यदि दाँये से बाँये घूमते हैं तो थोड़ी देर बाद बाँये से दाँये भी घुमाये जाते हैं।

(ङ) **हूला**—इस नाच में पेट और पेड़ू लचकता और मटकता है। दोनों हाथों को एक जगह मिलाकर मुट्ठी बाँधते हैं और फिर उस मुट्ठी को आगे-पीछे बार-बार किया जाता है।

§१३१२—**टँगेड़ा नाच के भेद**—(क) **उटक्का**—इस नाच में पंजों के बल पर एड़ी उठाकर उछलते हुए नाचा जाता है।

(ख) **लँगड़ा**—इसमें नचकइया एक टाँग उठाकर पेड़ू पर दोनों हाथ रखते हुए मटकता है और धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

(ग) **टहोका**—इस नाच में दोनों टाँगें चौड़ाकर पेडू आगे को ही मटकाया जाता है। इस तरह नचकइया आगे बढ़ता चलता है। जब पेडू को लगातार पीछे की ओर मटकाया जाता है और नचकइया भी पीछे को चलता है तब वह **उलटा टहोका** कहाता है।

(घ) **कुदक्का**—इस नाच में दोनों पाँव एक साथ उठाये जाते हैं और कूल्हू मटकाये जाते हैं। इसमें नचकइया कूदता हुआ-सा दिखाई देता है।

§१३१३—**अन्य मर्दाने नाचों के नाम**—(क) **कहरवा**—इस नाच में नचकइये का पेडू अधिक चलता है और कहरवे के धुन में बजती हुई ढोलक की ताल के सहारे पाँव हरकत करते हैं।

(ख) **पैकिया नाच**—ब्याह-शादियों में जब किसी की बरात चढ़ती है तब दो आदमी जनाने वेश में जनाना नाच नाचते चलते हैं उनके साथ एक छोटा लड़का भी नाचता है। कागज का बना हुआ हंस या मोर होता है जिसकी पीठ और पेट में बालक घुसने के लिए आर-पार बड़ा-सा छेद होता है। लड़का अपनी कमर में उस हंस को फँसाकर छोटे-छोटे कदमों के साथ नाचता चलता है। नाचने में वह दाँये, आगे और बाँये रुख भी बदलता है। लड़के के उस नाच को **पैकिया नाच** और उस लड़के को **पैक** कहते हैं।

(ग) **चट्टा नाच**—यह मण्डली नाच है। इसमें कुछ मर्द **चट्टे** (छोटी-छोटी दो लकड़ियाँ जो बजाने के काम आती हैं) बजाते हुए नाचते हैं। जिस गिनती को दो से पूरी तरह बाँट सकें वह **पूनी** और जो दो से न बँट सके वह **ऊनी** कहाती है। चट्टा नाच में मर्दों की संख्या पूनी ही होती है अर्थात् ८, १० या १२ आदि। चट्टा बजाने वाले नचकइये एक गोल घेरे में खड़े होकर अपनी दाँई-बाँई ओर के आदमी के चट्टे में चट्टा मारते रहते हैं और घूमते हुए तथा बैठते हुए नाच भी दिखाते चलते हैं। चट्टा नाच प्रायः बरात चढ़ने पर या काली देवी का मेला निकलने के समय दिखाया जाता है।

§१३१४—**हिजड़ा नाच या जनखा नाच**—जब किसी के लड़का पैदा होता है तब **दस्टौन** (नामकरण संस्कार) के दिन बधाई देने के रूप में हिजड़े नाचने-गाने के लिए आते हैं। हिजड़ों में एक व्यक्ति नाचता है और शेष उसकी ताली के साथ-साथ अपनी भी तालियाँ बजाते हैं। हिजड़ों के नाच की विशेषता ताली है। इनके नाच जनाने नाचों के अन्तर्गत ही आते हैं। वैसे जनखा नाच में मधुरता के साथ कुछ उद्धतता भी होती है। धनंजय की परिभाषा के अनुसार यह नाच न लास्य है और न ताण्डव का समकक्षी।[1] इसे दोनों का मिला-जुला रूप कह सकते हैं।

§१३१५—**मन्दिरों के विशेष मर्दाने नाच**—(१) **जिनेन्द्र-रिझावन**—यह नाच दिगम्बर जैनियों के मन्दिरों में भादों के महीने में **दस लच्छिनी** (दश लाक्षणी[2]) मनाने के संबंध

---

[1] मधुरोद्धत भेदेन तद्द्वयं द्विविधं पुनः।
लास्य ताण्डव रूपेण नाटकाद्युपकारकम्॥
—धनंजय, : दशरूपक, प्रकाश १, श्लोक १०।

[2] दशलाक्षणी पर्व भाद्रपद शुक्ला पंचमी से अन्तचौदस (सं० अनन्त चतुर्दशी) तक मनाया जाता है।

में होता है। **अनन्तचौदस** (अनन्त चतुर्दशी = भाद्रपद शुक्ला १४) को महावीर स्वामी की मूर्ति के आगे एक-एक करके कुछ मनुष्य मूक नृत्य करते हैं। नाचते समय मूर्ति की ओर ही नाचनेवाले की निगाह रहती है। नाचनेवाला नाचते समय सिर पर पगड़ी या टोपी पहनता है और कमर में केसरिया फेंटा बाँधता है। पाँवों में पंसुरी बँधी रहती हैं।

(२) **नरसींगा**—कृष्ण के मन्दिरों में शेर का चहरा पहनकर एक नाच नाचा जाता है जो **नरसींगा** कहाता है। छोटे-छोटे लड़के **नरसींगा नाच** नाचते हैं। यह नाच **नरसिंग चौदस** (वैशाख शुक्ला १४) को होता है। मथुरा में यह गलियों में भी हुआ करता है।

—

अध्याय ४

लोक-संस्कार और नेगचार

यज्ञोपवीत संस्कार

§१३१६—हिन्दुओं में विभिन्न वर्णों के दृष्टिकोण से पृथक्-पृथक् आयुओं में एक संस्कार होता है जिसे **जनेऊ** कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों के बालकों का जनेऊ सात वर्ष से सोलह वर्ष तक की आयु के अन्तर्गत हो जाता है। प्रायः लोक में अब यह संस्कार विवाह के दिन से दो-एक दिन पूर्व ही करा दिया जाता है। जनेऊ में बटे हुए तीन तारों का **तिल्लर** या **तिहल्लर** (तीन लर का) डोरा होता है। जनेऊ का शास्त्रीय नाम 'यज्ञोपवीत' है और 'यज्ञोपवीत' शब्द से ही **जनेऊ** शब्द विकसित है—सं० **यज्ञोपवीत** > प्रा० **जरणोवईय** > **जणोउई** > **जनेउई** > **जनेऊ**। इस संस्कार के समय जो एक गीत गाया जाता है, उसे **जनेउआ गीत** कहते हैं।

जनेउआ गीत

"पंडित कौ पूतु, जनेऊ होत्वै।
एकु जनेऊ, द्वै जनेऊ, तीजौ जनेऊ, बाँम्हनु होत्वै॥
'संकर' कौ भतीजौ बाँह्मनु होत्वै।
'गंगाधर' कौ पूतु, जनेऊ होत्वै॥"

§१३१७—इस प्रकार आदमियों के नाम ले लेकर जनेउआ गीत **बइअरबानियों** (स्त्रियों) द्वारा गाया जाता है। गीत की पंक्तियों से स्पष्ट संकेत मिल रहा है कि यज्ञोपवीत संस्कार होने पर ही बालक ब्राह्मण वर्ण का माना गया है। इससे पूर्व उसकी ब्राह्मण संज्ञा नहीं थी।

विवाह-संस्कार

§१३१८—यज्ञोपवीत के उपरान्त होनेवाला प्रमुख संस्कार विवाह ही है जिसकी भूमिका में कई छोटे-छोटे लोकाचार तथा रस्में होती हैं। **ब्याह** (विवाह) की पक्कावढ़ करने के लिए सर्व-

प्रथम जो रस्म लड़कीवाले की ओर से लड़केवाले के यहाँ होती है; उसे **पक्की** या **भेंट**[1] कहते हैं। इसमें लड़केवाले को तथा उसके **भाई-बन्द** (सं० भ्रातृ-बन्धु) को रुपयों की भेंट दी जाती है। इससे पहले कहीं-कहीं **गोद** (सं० क्रोड) की रस्म होती है, जिसमें लड़केवाला लड़की को देखकर अपनी स्वीकृति देता है और मिठाई, मेवा, फल आदि से विवाहकांक्षिणी लड़की की गोद भर देता है।

§१३१६—भेंट या पक्की के बाद एक रस्म होती है, जिसे **तिलक**, **टीका**, **सगाई**, **सिक्का** या **जैंमा** कहते हैं। इसमें नाई या नाई तथा पुरोहित लड़कीवाले के यहाँ से परात, लड्डू, गिलास, कपड़े का थान और रुपये आदि लड़केवाले के घर ले जाते हैं। यह सामग्री लड़के का तिलक करने के उपरान्त उसे अर्पित कर दी जाती है। जो **नाई** (वै० स्नापित>नापित>णाविअ>नाइअ>नाई) और पुरोहित सिक्का लेकर लड़केवाले के यहाँ जाते हैं, वे उस समय **नेगी** कहाते हैं क्योंकि उनके द्वारा **नेग** अर्थात् रस्म की जाती है। राजीखुशी से आने के अर्थ में '**साईं सिक्का आना**' मुहावरा भी प्रचलित है। भविष्य में विचार बदल जाने के अर्थ में '**साईं के सौ ख्याल होना**' मुहावरा है।

§१३२०—लड़का या लड़की की जन्म-कुंडली का सूक्ष्म विवरण जिस लम्बे से कागज पर पंडित लिखता है, उसे **टेबा** या **टीपना** कहते हैं। लड़का-लड़की के टेबाओं के ग्रह आदि मिला कर जब विवाह बनाया जाता है, तब उसे **ब्याह सुझाना** कहते हैं। ब्याह सूझ जाने पर तथा सिक्का चला जाने पर **लगुन** (सं० लग्न>लगन>लगुन) जाती है। लगुन के बाद **माँड़वा** (सं० मण्डप>मंडव>माँड़वा>माँड़वा) होता है और फिर बरात जाती है। बरात जब गाँव में घुसने को होती है तब लड़कीवाले के यहाँ से दो-चार आदमी बरात में आते हैं और एक रुपया बरात के किसी मान्य जन को दे करके '**राम-राम**' (प्रणाम) करते हैं। इस प्रकार का स्वागत **आगौनी** (अगबानी<सं० अग्रगमनिका) कहाता है। फिर बरात का गाँव में प्रविष्ट होना **चढ़त** कहाता है। चढ़त के बाद **बरात** (सं० वरयात्रा>बरजात>बरआत>बरात) जहाँ ठहरती है, वह स्थान **जनवाँसौ** या **जनमासौ** (वै० जन्यवास+क जन्य=बराती। वास=स्थान) कहाता है। जनवासा ले लेने पर **बारौनियाँ**, **बारौठी** और **भाँवरों** की रस्में होती हैं। 'बारौठी' का दूसरा नाम **दरबज्जौ** भी है। 'बारौठी' का विकास संभवतः सं० 'द्वारावस्थिति' से है—सं० द्वारावस्थिति>प्रा० वारवट्ठिइ>वारउट्ठिइ>बारौठी=बरातियों की द्वार पर स्थिति। बारौठी की रस्म वास्तव में लड़कीवाले के घर के दरवाजे पर ही होती है। इसीलिए इस रस्म का अन्वर्थ नाम 'बारौठी' पड़ा है। जिस प्रकार विवाह के लिए शुभ घड़ी का शोधन **ब्याह सुझाना** कहाता है, उसी प्रकार **गौने** (द्विरागमन) का शोधन **आँचर सुझाना** कहाता है।

§१३२१—किसी लड़के को विवाह के लिए यदि लड़कीवाले के आदमी देखने आएँ और और उस समय कुछ द्वेषी मनुष्य लड़के के सम्बन्ध में ऐसी बात कहें जिनसे कि उस लड़के का विवाह पक्का न हो, तो उसे **भाँजी मारना** कहते हैं। टूटने के अर्थ में संस्कृत में भाववाचक संज्ञा शब्द 'भञ्जिका' है। इसी से **भाँजी** शब्द व्युत्पन्न है—सं० भञ्जिका>भञ्जिआ>भाँजी। उपर्युक्त वार्तालाप-प्रणाली जुड़नेवाले विवाह-सम्बन्ध को तोड़ देती है। इसीलिए इसका नाम **भाँजी** पड़ा है।

---

[1] इसे अवधी में 'बरोक' कहते हैं। (बर रोक>बरोक) 'बारोक' का यह ध्वनिपरिवर्तन-भेद समाक्षर लोप (Haplology) कहाता है।

§१३२२—विवाह आदि शुभ अवसरों पर विवाहित बहिन-बेटियाँ जब अपने **मायके** अर्थात् **पीहर** (सं० पितृगृह) जाती हैं तब अपनी ससुराल से पूरी-पकवान से भरी हुई एक डलिया ले जाती हैं। शुभ शकुन की यह डलिया उस समय **बींध** कहाती है।

§१३२३—लगुन आदि की रस्म पर बिरादरी भाई लड़कीवाले के नाम पर जो रुपया, दो रुपया देते हैं; वह **ब्यौहार** या **चलन** कहाता है। वे लोग **ब्यौहारी** (सं० व्यवहारिन्>व्यवहारी> ब्यौहारी) कहाते हैं। जिस ब्यौहार में रुपया आदि नहीं दिया जाता, बल्कि केवल भोजन आदि ही किया जाता है, उसे **ठड़िया ब्यौहार** कहते हैं।

§१३२४—लगुन से पहले की रस्म **पीरी चिट्ठी** कहाती है। लगभग एक महीने पहले लड़कीवाला पंडित से एक चिट्ठी लिखवाकर लड़केवाले के यहाँ भेजता है जिसमें विवाह की तिथि अंकित होती है। इसमें पंडित द्वारा **हरदी** (सं० हरिद्रा) के पीले छींटे भी लगाये जाते हैं। मुसलमानों में इसी प्रकार की चिट्ठी **'लाल खत'** कहाती है। 'पीरी चिट्ठी' शब्द की व्युत्पत्ति संभवतः इस प्रकार है—सं० पीत चेष्टित>प्रा० पीअर चिट्ठिय>पीरी चिट्ठी। प्राकृत में 'पीअर' और 'पीअल' दोनों ही शब्द मिलते हैं। हिन्दी 'पीला' शब्द प्रा० 'पीअल' से ही विकसित है (सं० हरिद्र; फा० जरिद्र>जर्द=पीला)।

§१३२५—जो **नेगचार** या **टेउले** (रीति-रस्म) विवाह के अवसर पर किये जाते हैं, वे विभिन्न प्रकार के हैं। रतजगे को अर्थात् तेल पवने की रात को **सुहाग**, **टौना**, **बरना**, **घोड़ी**, **लाड़ी** (बरनी), **महदी**, **काजर**, **मालिन**, **खेलके** आदि गीत गाये जाते हैं। विभिन्न नेगों के गीत जब एक साथ एक-एक करके गाये जाते हैं तो **खेल के गीत** कहाते हैं।

§१३२६—लड़के के विवाह के अवसर पर लगुन से दो-तीन दिन बाद कुम्हारिन प्रायः मिट्टी के ६ बर्तन लाती है—एक **मटका**; एक **नाँद** (सं० नन्दा); एक **गागर** (सं० गर्गरी), एक **करयौ** (सं० करक), एक **घल्ला** (छोटा घड़ा) और एक **चपटिया** (छोटी और बड़े पेट की घल्लिया)। इन छहों बर्तनों को **छकड़ी** कहते हैं।

§१३२७—लगुन से तीन-चार दिन बद **बरना** (सं० वरणक=वर) या **बरनी** (सं० वरणीया=बरी जानेवाली कन्या) पर तेल चढ़ाने के लिए पाँच सधवा स्त्रियाँ चुन ली जाती हैं, जिन्हें गौरनी या **हथलगुन** कहते हैं। वे हथलगुनें एक दिन गेहूँ आगे रखकर उनमें हाथ चलाती हैं। यह क्रिया **गेहूँ किराना** कहाती है। हल्दी कूटी जाती है जिसे **हद्द-हाथ** का नेग कहते हैं। सं० हरिद्रा-हस्त>प्रा० हलिद्दा-हत्थ>हलिद्द-हत्थ>हल्द-हाथ>हद्द-हाथ—यह विकास-क्रम है। इस नेग-चार को **नौग-माँगर** भी कहते हैं। ब्राह्मण आदि कुछ जातियों में कहीं-कहीं नौग-माँगर अन्य विधि से किये जाते हैं। प्रायः पाँच हथलगुन सवा पाँच सेर **जौ** (सं० यव>जउ>जौ) लेकर सूप में फटकती हैं। तब पाँचों हथलगुनों के हाथ में और प्रत्येक के **सूप** (वै० सूर्प, सं० शूर्प> प्रा० सुप्प>सूप=अनाज साफ करने की एक वस्तु) में **कलायौ** (कलावा) बाँध दिया जाता है। वे जौ फटकती जाती हैं और **लाड़ी** (बरनी से सम्बन्धित गीत विशेष) गाती जाती हैं। उन जौओं को छरा जाता है। ओखली में घनकुटे (मूसल) से कूटने के अर्थ में **छरना** क्रिया प्रचलित है। छरे हुए जौओं से जो भात-जैसी चीज तैयार होती है, उसे **घाटौ** कहते हैं। माँड़वे के दिन एक रस्म होती है, जिसे **अछूता** कहते हैं। उस अछूते के दिन वह **घाटौ** खाया जाता है। जौ कूटने की रस्म **जौ हाथ** (सं० यवहस्त) कहाती है। इसे **नौग** भी कहते हैं। (सं० 'हरिद्र', फा० **'जर्द'** ब्रज० **'हद्द'**)।

§१३२८—ब्याह से पहले एक रस्म **रतजगौ** होती है। इस रात को स्त्रियाँ सोती नहीं हैं बल्कि गीत आदि गाती रहती हैं। मूँज की एक चूड़ी-सी, जिसमें कलावा बँधा रहता है, **तुन** (सं० तृण) कहाती है। रतजगे से एक दिन पहले बरना या बरनी चौक पर बैठाई जाती है और उसके सिर पर तुन रखी जाती है। इस रस्म को **तुन धरन** कहते हैं।

§१३२९—**फर दबनी** नाम का लोकाचार लड़के के ब्याह में होता है। नौंग के दिन कुटे हुए जौ के आटे की गुझियाँ-सी बनाई जाती हैं, जिन्हें **फर** कहते हैं। जिस दिन बहू आती है उस दिन उसके पाँवों से फर दबवाये जाते हैं। यही रस्म **फर दबनी** कहाती है।

§१३३०—कहीं-कहीं रतजगे से एक दिन पहले पाँच हथलगुनें बाजरा या जौ कूटती हैं। इस नेगचार को **धामसधूमस** कहते हैं।

§१३३१—रतजगे की रात को गेहूँ के आटे की **पापरी** (छोटी और पतली पूरी) सिकती है। इसे **तेल पवनौ** भी कहते हैं। तेल चढ़ने के दिन जब **करहइया** (कढ़ाई) रखी जाती है तब यह गीत भी गाया जाता है—

"ओछी करहइआ पूरौ तेल।
सुकिया बैठी मैदा घोलि ॥"

§१३३२—रतजगे के दिन एक नेग यह भी होता है कि पाँच हथलगुनें गेहूँ के आटे को परात में रखकर हाथ से कुरेदती हैं। यह क्रिया **किनक पुकारना** कहाती है। किनक पुकारने का नेग सन्ध्या समय से पहले ही हो जाता है ताकि जंगल में **सिरकटा** (शृगाल) बोलने न पावें।

§१३३३—ब्याह में जिस चूल्हे पर नेग का सामान सिकता है, वह चूल्हा **तिमन** कहाता है। रतजगे के दिन **मानि** (वर या कन्या की फूआ) सूप में रखकर **आम** की लकड़ियाँ लाती है। उन्हें पाँच हथलगुनें तिमन में रख देती हैं और फिर उन्हें पूजती हैं। उन लकड़ियों का पूजन **छेई पूजन** (सं० छेदिता-पूजन) कहाता है। छेई पूजन रतजगे की रात से पहले हो जाता है। अगले दिन तेल चढ़ता है। कहीं-कहीं घूरे में गड़ी हुई कील का पूजन भी **छेई-पूजन** (सं० छेदिका पूजन) कहाता है।

§१३३४—बरना या बरनी की माता या अन्य कोई सधवा स्त्री जो नाते में मा के समान हो, **कजैतिन** कहाती है। कजैतिन रतजगे के दिन कोरे **सरवा** (सं० शरावक=मिट्टी का छोटा सकोरा) में एक सुपाड़ी, एक हल्दी की गाँठ और एक टका पैसा रखकर उसे तिमन के ऊपर दीवाल पर औंधा चिपका देती है और ऊपर से हल्दी लगा दी जाती है। यह नेग-चार **बायबन्द मूँदना** कहाता है। बायबन्द में देवी-देवता रहते हैं। देवी-देवताओं को दिया जानेवाला **पकवान** (पक्वान्न) **नेवज** (सं० नैवेद्य>प्रा० णेविज्ज>नेवज) कहाता है। बारहसेनी बनियों में पूजन आदि के कुछ नेगचार ब्राह्मणी कराती है, जो **मैपुजनि** कहाती है।

§१३३५—ऊन के कपड़े के टुकड़े में **राई** (सं० राजिका>राइआ>राई), **नौन** (सं० लवण>लउन>नउन>नौन), **भुसी, हल्दी** और सुपाड़ी की गाँठ बाँधी जाती है। लोहे का एक छल्ला कलावे में बाँधा जाता है। कलावे में ५-७ गाँठें कसकर बाँधी जाती हैं, जिन्हें पंडित और हथलगुनें ही लगाती हैं। इसे **कँकना** (सं० कंकण) कहते हैं।

§१३३६—ब्याह में तेल चढ़ने की रस्म प्रमुख है। हथलगुनें बर या बरनी के कान, **घोंटू** (घुटना) और हाथों पर तेल छुवाकर शरीर पर हल्दी मलती हैं। इसी समय **कँकना** भी बँधता है। बहन **मरुअट** (रोली) लगाती है। मुँह पर रोली से गोलाईदार रेखाएँ खींचना **मरुअट काढ़ना** कहाता है। तब बरने की भाभी काजल लगाती है और बहन या फूफी (बूआ) **आरतौ** करती है। एक थाल में रोली, चावल, जलता हुआ दीपक आदि मांगलिक वस्तुएँ रखते हैं और बरने के मुख के आगे उस थाल को घुमाते हैं यह क्रिया **आरतौ करनौ** कहाती है। तेल चढ़ते समय बरना या बरनी की गोद में मोटी-मोटी पाँच पूड़ियाँ रख दी जाती हैं, जो **हतौना** कहाती हैं। 'आरता' शब्द सं० आरात्रिक से व्युत्पन्न है। हल्दी मिला हुआ गेहूँ का आटा और तेल का मिश्रण **उबटन** (सं० उद्वर्तन > प्रा० उब्बट्टण > उबटन) कहाता है। प्रायः तेल तीन बार या पाँच बार चढ़ता है। प्रथम बार का तेल शनिवार को नहीं चढ़ता।

§१३३७—तेल चढ़ने के बाद **कजैतिन** (बरना या बरनी की माता) बरना या बरनी को **चौके** (रसोई-घर) के एक कोने में ले जाती है और दो हाँड़ियों में उसे उभकवाती है। इस नेग-चार को **कोर दिखाना** या **कोहवर दिखाना** कहते हैं। सं० कोष्ठवर > कोट्ठवर > कोहवर—यह विकास-क्रम संभव है।

§१३३८—माँड़वे के दिन अर्थात् अछूते के दिन कुम्हारिन एक **हँड़िया** (सं० भाण्डिका > हंडिआ > हँड़िया) लाती है। उसे कढ़ी और बाजरा आदि से भर दिया जाता है। उसे **'बूढ़े बाबू कौ भण्डारौ'** कहते हैं—सं० भाण्डागार > प्रा० भाण्डार > हिं० भंडार। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि 'भाण्डार' शब्द संस्कृत में भी मिलता है। परन्तु यह वास्तव में प्राकृत शब्द है। संस्कृत साहित्य में पीछे के द्वार में घुस बैठा है। बूढ़े बाबू के भंडारे की हँड़िया को **चंग** कहते हैं। माँड़वे के दिन **ठौमर** (जो की मिँगी का भात) भी बनता है।

§१३३९—तेल चढ़ते समय बरना या बरनी सूप में रखी हुई **खीकरियों** (पतली तेल की पूड़ियाँ) को सिर के ऊपर से पीछे फेंकती है जिन्हें हथलगुनें लेती जाती हैं। कहीं-कहीं उन्हें नाइन (नाई की पत्नी) लेती है। इस रस्म को **अगोर-पछोर** कहते हैं।

§१३४०—तेल चढ़ने के दिन बरने के साथ एक छोटी तथा क्वारी लड़की बिठा दी जाती है, जो **बनेगरी** कहाती है। बरने के पीछे घोड़ी पर एक छोटा बच्चा भी बिठाया जाता है जिसे **बनेगरा** कहते हैं। तेल चढ़ने के दिन एक देवी पुजती है जिसे **सीअल** कहते हैं। संभवतः सं० शीतला से 'सीअल' की व्युत्पत्ति है। आठ खीकरियाँ, दो पैसे और एक गुड़ की डेली से सीअल की पूजा होती है (सं० शीतला > प्रा० सीअल > सीअल = एक देवी जिसकी पूजा से चेचक नहीं निकलती)।

§१३४१—घूरे पूजने की रस्म भी तेल चढ़ने से पहले ही होती है। इस दिन बरना या बरनी को घूरा पुजवाने ले जाते हैं। लौटते समय रास्ते में कजैतिन चारों दिशाओं में **चार फर** (आटे को चार लोइयाँ) फेंकती है। रास्ते में स्त्रियाँ **साँझलरी** और **दीबलरा** नाम के गीत भी गाती हैं।

§१३४२—ब्याह में माँड़वे के दिन सात हतलगुनें माँड़वे के नीचे बैठकर अलग-अलग सात पत्तलों पर भोजन करती हैं। प्रत्येक पत्तल पर पाँच **फुलके** (पतली बड़ी रोटियाँ विशेष), एक चँदिया, एक खीकरी, एक पूआ, कढ़ी, चावल और **सिकिन्न** (मीठा मिला हुआ मट्ठा) परसी जाती है। प्रत्येक पत्तल पर रक्खी हुई पाँचों रोटियाँ अर्थात् फुलके **खूँट** कहाते हैं। सं० 'शिखरिणी' से 'सिकिन्न' शब्द विकसित है—सं० शिखरिणी > शिखरन > सिकरन > सिकिन्न।

§१३४३—बरनी या बरने का बहनोई या फूफा घर के आँगन में एक डंडा-सा गाड़ता है जिसमें आम की एक डाली और सात सरवे (सं० शराव) बाँधे जाते हैं; उसे **माँड़यौ** (सं० मंडप>माँड़वा) कहते हैं। इन सात सरवों के बीच भाग में छेद किया जाता है और उन छेदों में कलावा पिरोकर सरवे उस डंडे से बाँधकर लटका दिये जाते हैं। इन्हें **सरइया** कहते हैं। संस्कृत में इन्हें 'शाराजिर' कहते थे (देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, प्रथम संस्क०, पृष्ठ ७२)।

§१३४४—माँड़वे के दिन **बूढ़ौ बाबू** नाम का एक ग्राम देवता पूजा जाता है। कुम्हारिन एक हाँड़ी में कढ़ी, बाजरा, चावल, उर्द की दाल की चँदिया आदि सामान रखवा लेती है। इसीमें **नेवज** (सं० नैवेद्य>नेवज=देवता के नाम पर चढ़ाया जानेवाला पकवान) भी रखवा लिया जाता है। इस संपूर्ण सामग्री को सामूहिक रूप में **अछूतौ** कहते हैं। अछूते की **हँड़िया** (सं० भाण्डिका>प्रा० हंडिआ>हँड़िया) के ऊपर घी का चौमुखा दीपक भी जलाया जाता है। तब कुम्हारिन कुछ बोलती जाती है। इस प्रकार बूढ़े बाबू की पूजा की जाती है। **बइअरों** अर्थात् **बइअरबानियों** (स्त्रियों) का विश्वास है कि यदि बूढ़ा बाबू पूजा न जाय तो घर के बच्चों के शरीर पर सफेद-सफेद दाग हो जाते हैं (सं० भार्या>बइअरि)। उन सफेद दागों को भी **बूढ़ौ बाबू** ही कहते हैं। बूढ़े बाबू की **खोर** (अनिष्टकारी प्रकोप) हो जाने पर **उतारा** किया जाता है अर्थात् राई-नोंन इक्कीस बार ऊपर से नीचे उतारते हैं।

§१३४५—वर के सिर पर **म्हौर** (सं० मुकुट) बाँधा जाता है और मुँह के आगे मोती या फूलों की लड़ियों की एक वस्तु मुँह ढकने के लिए बाँधी जाती है जिसे **सेहरा** कहते हैं। **बन्ने** (=बरना) के म्हौर बँधता है और **बन्नी** (सं० बरणीया>बरनी>बन्नी) के **म्हौरी**।

§१३४६—लड़केवाला अपने घर से जब बरात लेकर अपने लड़के को ब्याहने के लिए चलता है, उसी दिन स्त्रियों द्वारा एक लोकाचार मनाया जाता है, जिसे **निकरौसी** कहते हैं। निकरौसी से कुछ घंटे पूर्व **केसौंड़ा** होता है। केसौंड़े के समय नाई द्वारा वर के सिर के बाल भी ठीक किये जाते हैं और माथे पर अर्द्धचन्द्राकार रूप में उस्तरे से हजामत बनाई जाती है जिसे **सींक** कहते हैं। निकरौसी के समय वर घोड़ी पर बैठकर कुएँ तक जाता है। पीछे बहिन **सोहनी** (सं० शोधनी>सोहनी=बुहारी, झाड़ू) की पीली **सींकें** (सं० इषीका) फेरती चलती है इसे **सींकें बारनौ** कहते हैं। **केसौंड़े** (सं० केश>मुण्ड+क) के समय दूल्हे की **चुटिया** (चोटी<सं० चूडिका) में लाल-पीले रंग का सूत भी गुहा जाता है, जिसे **कलायौ** या **कलावा** (सं० कलापक> कलावअ>कलावा) कहते हैं। निकरौसी के समय दूल्हे की मा बलइयाँ लेती है और तिनका तोरती है। जब निकरौसी घोड़े पर चढ़कर की जाती है तो उसे **घुड़चढ़ी** भी कहते हैं। ब्रज क्षेत्र का 'केसौंड़ा' अवध के 'नहछू' का भाई-बन्द-सा ही मालूम पड़ता है। सं० नखक्षुधित (धातु√ क्षुध् से नख)>प्रा० नहछुहिअ>नहछू—यह विकास-क्रम सम्भव है। 'नहछू' की रस्म के समय वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और वे रँगे भी जाते हैं। सं० 'क्षुधित' शब्द का एक अर्थ 'रक्त' या 'लाल किया हुआ' भी है।

§१३४७—केसौंड़े के उपरान्त वर कपड़े पहनकर जब चौकी पर बैठ जाता है, तब **मान** (वर का बहनोई या फूफा) उसके ऊपर सूत पूरता है। सूत पूरते समय दूल्हे के सिर के ऊपर एक **कन्द का टूँक** या **टुँकेला** (लाल कपड़े का एक टुकड़ा) ताना जाता है। उस पूरे हुए सूत की सात लड़ करके तथा उसमें आम का एक पत्ता बाँध करके **कठुला, हाँस** या **हँसुला** (सं० अंस+

ले) बनाया जाता है, जिसे दूल्हे की माता पहनती है। कन्द का जो टुकड़ा दूल्हे के ऊपर ताना जाता है उसे **चँदोआ** या **चँदउआ** कहते हैं। माता उस कठुले को तभी पहनती है, जब ब्याह में वह **कजैतिन** का काम करती हो।

§१३४८—निकरौसी के समय एक लोक-गीत गाया जाता है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"जनकपुरी कूँ बरना तुम अब जइयौ।
तिरिया जाति अचपली कहियै,
सारी सर्‌हज घीयाभाती मति खइयौ॥
जनकपुरी कूँ बरना तुम अब जइयौ॥"—(तहसील कोल से प्राप्त)

§१३४९—कुआँ पूजने के उपरान्त दूल्हा अपनी मा का स्तन मुँह में देता है। इसे **आँचरप्यामन** (सं० अंचल>आँचर) कहते हैं। उस समय निम्नांकित गीत भी गाया जाता है—

"दूध कौ करि मोलु बरना।
गाय कौ दूध, भैंसि कौ है दुधवा॥
मइया कौ मोल अमोल बरना।
दूध कौ करि मोल बरना॥"—(तहसील कोल से प्राप्त)

जब दूल्हे की माता कुएँ में पाँव लटकाकर बैठ जाती है तब स्त्रियाँ दूल्हे से कहलवाती हैं कि "मइया! कूआ में मति गिरै, मैं तोकूँ बहू लाङ्गो।" तभी स्त्रियाँ यह गीत भी गाती हैं—

"सींक डराय, सींक डराय;
तेरी मइआ नैं रोपे ऐँ पाँय।"—(तहसील कोल से प्राप्त)

§१३५०—कुआँ पूजने के उपरान्त दूल्हा जब घोड़ी पर चढ़कर चल देता है, तब स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं—

"तोइ मइआ कौ मोहु न आयौ,
दुलारौ मेरौ डिगरि गयौ।"—(तह० कोल से प्राप्त)

§१३५१—निकरौसी के समय ही दूल्हे का बहनोई घोड़ी की लगाम पकड़ता है। इस रस्म को **बाग मोड़ना** कहते हैं—(सं० वल्गा>वग्गा>बाग)।

§१३५२—दूल्हे की बरात चले जाने के बाद स्त्रियाँ घर आ जाती हैं और कजैतिन एक थाली में दही रखकर सात कन्याओं के अथवा सात **सुहागिल** (सधवा) स्त्रियों के पाँव लगती है। इसके उपरान्त स्त्रियाँ गोलाकार रूप में खड़ी होकर एक गीत गाती हैं, जिसे **कजरौठा** कहते हैं। 'सुहागिल' का विलोम **राँड़** या **विधवा** शब्द है (वै० धातु[1] √विध्=अलग रहना; विधवा=अलग रहनेवाली)।

§१३५३—लड़कीवाले के गाँव में जहाँ लड़के की बरात ठहरती है, उस स्थान को **जनवासा** या **जनमासा** (वै० जन्य, ऋग्वेद, + सं० वास=बरातियों के ठहरने का स्थान) कहते हैं।

---

[1] 'विधु' (आकाश में अलग रहनेवाला अर्थात् चन्द्रमा) और 'विधुर' (अलग रहनेवाला) शब्दों के मूल में √विध् धातु ही है।

गाँवों में प्रायः गाँव से अलग खेतों में ही जनवासा दिया जाता है। कुछ जातियों (ब्राह्मण तथा वैश्य आदि) में जनवासे में ही बरात आ जाने पर एक लोकाचार किया जाता है, जिसे **खेत** (सं० क्षेत्र) कहते हैं। लड़के को रुपये, कपड़े, कलश आदि वस्तुएँ खेत में दी जाती हैं। यह सब काम खेत में ही संपन्न होता है अर्थात् **जनवासे** (वै० जन्यवास + क > जन्नवासअ > जनवासा) में।

§१३५४—बारहसेनी बनियों में लड़कीवाले के द्वार पर जब बरात आ जाती है, तब लड़के को चौकी पर बिठाकर उसके सिर के ऊपर सूत पूरा जाता है। लड़के के हाथ में काँकन (सं० कंकण > कंगन > काँकन, कंगना > कँगना) बँधता है और लड़के के अँगूठे पर हल्दी लगती है। इस संपूर्ण क्रियाकलाप को **सेवर** कहते हैं। सेवर की रस्म कुछ-कुछ बारौठी से मिलती-जुलती होती है।

§१३५५—लड़की वाले के द्वार पर लकड़ी की बनी हुई एक चिड़िया लटका दी जाती है जिसे **तोरन** कहते हैं। बनियों तथा जैनियों में बरात आनेवाले दिन लड़का लड़कीवाले के द्वार पर जाता है और उस तोरण में तीर मारता है। यह रस्म **तोरन बींधी** (सं० तोरण-वेध) कहाती है। संस्कृत में बहिर्द्वार के अवयव विशेष के लिए 'तोरण' शब्द का प्रयोग होता था। उसमें लटकाई हुई लकड़ी की चिड़िया भी फिर साहचर्य लक्षणा के आधार पर 'तोरण' कहलाई। तोरन-बींधी के अवसर पर ही स्त्रियों और बरनी के द्वारा बरने का सर्व-प्रथम स्वागत किया जाता है। सास उस समय बरने की **बलइयाँ** लेती है। इस रस्म को **द्वाराचार** भी कहते हैं।

§१३५६—किसी-किसी जाति (विशेषतः बारहसेनी जाति) में एक रस्म दरवाजे (बारौठी) के समय होती है, जिसे **लाई** कहते हैं। इसमें बरनी (दुलहिन) परदे की आड़ में खड़ी होकर बरने (दूल्हे) पर चावल अथवा जौ फेंकती है। संस्कृत साहित्य में खीलों के लिए **लाजा** और खीलों के परिमाण के लिए **लाजि** शब्द आये हैं। भुने हुए धानों का परिमाण अर्थात् 'लाजि' से बरनी बरने का स्वागत किया करती होगी। इसीलिए परम्परागत रूप में **लाई** (सं० लाजिका > लाइआ > लाई) नाम की रस्म अब तक चली आ रही है।

§१३५७—लड़कीवाले के यहाँ बारौठी से पहले एक रस्म लड़केवाले की ओर से होती है, जिसे **बरमनियाँ** या **बरैनुआँ** कहते हैं। बरना का बहनोई जौ से भरा हुआ तथा हल्दी मिले आटे से लिहसा हुआ बन्द **मल्सा** (मिट्टी का पात्र विशेष) लड़कीवाले के घर लाता है। माँड़वे के नीचे उसे पंडित बिठाता है और पूजन कराता है। स्त्रियाँ तब उसकी पीठ पर हल्दी के **थापे** (हथेली सहित उँगलियों के निशान) लगाती हैं। जादौं ठाकुरों के विवाह में पुरोहित ही बरमनियाँ ले जाता है। मिट्टी का वह मल्सा भी **बरमनियाँ** कहाता है। **बरात** (सं० वरयात्रा) की विदाई के समय वह बरमनियाँ वापिस दे दिया जाता है। लड़के का बहनोई उसे रास्ते में किसी छौंकरा के पेड़ पर लटका देता है। 'छौंकरा' को संस्कृत में 'शमी' कहते हैं।

§१३५८—बरमनियाँ के उपरान्त **बारौठी** अर्थात् दरवाजे की रस्म होती है। तब लड़की-वाला वर को पाँच बर्तन भी देता है जिनको सामूहिक रूप में **पँचैंड़ा** कहते हैं। बारौठी के समय स्त्रियाँ बरातियों के लिए गालियाँ गाती हैं। वे प्रायः **समधी-समधिन** (वर के पिता और माता) के लिए गाई जाती हैं। सं० सम्बन्धी > समधी—यह विकास-क्रम संभव है। गालियों में समधी को **बुत** (सं० बुद्ध, फा० बुत > बुत = मूर्ख), **उजबक** (तु० उज़बक), **धरैला** (धरी अर्थात् रखैल स्त्री से उत्पन्न), **बेहा** (फा० बेहया = निर्लज्ज) आदि कहा जाता है। यदि कोई पुरुष किसी स्त्री को अनियमित रूप से वासनातृप्ति के लिए रख लेता है अर्थात् विवाह किये बिना ही रखता है तो वह

स्त्री **धरी** या **रखैल** कहाती है। उस धरी से उत्पन्न हुआ लड़का **धरैला** कहाता है। समधिन के लिए गालियों में **धरी, ऊतरी, हजारो, बेसा** आदि नामों से बखान किया जाता जाता है। 'ऊतरी' को भोजपुरी में **ऊढ़री** कहते हैं। संस्कृत-साहित्य में 'ऊढ़ा' शब्द आया है। वह नायिका जो स्वपति से प्रेम न करके, किसी अन्य पुरुष से प्रेम सम्बन्ध रखती है और संभोग कराती है **ऊढ़ा** कहाती है। इसे ही ब्रजभाषा में **उतरी** या **ऊतरी** और भोजपुरी में **ऊढ़री** कहते हैं। जो स्त्री एक हजार पुरुषों से संभोग कराती है, वह **हजारो** कहाती है। **'बेसा'** शब्द सं० वेश्या (रंडी वार-विलासिनी) से व्युत्पन्न है। रंडी के अर्थ में **दारी** शब्द भी प्रचलित है। गाली देते समय सास के अर्थ में **गौहजी** शब्द भी चलता है।

§१३५९ – जनवासे में बरात आ जाने पर **बढ़ई** लकड़ी के खूँटे गाड़ने जाता है। उन खूँटों को तब **मेख** नाम से ही पुकारते हैं। ठीक लक्ष्य पर लक्ष्य मारने के लिए **'रेख पै मेख मारिबौ'** कहा जाता है। **'बढ़ई'** शब्द सं० 'बर्धकि' से और **'मेख'** शब्द फा० मेख़ से व्युत्पन्न हैं (सं० बर्धकि>वड्ढइ>बढ़ई)।

१३६०—लड़के (दूल्हे) के लिए उसका मामा **म्हौर,** जूता, कपड़ा आदि लाता है जिसे **भात** कहते हैं। जो धारण किया जाय उसे संस्कृत में 'भृत' कहते हैं। संभवतः सं० भृत से हिन्दी **'भात'** शब्द व्युत्पन्न है। यदि मामा भात में अन्य सामग्री नहीं ला सकता तो कम से कम **म्हौर-पन्हइयाँ** तो अवश्य ही लाता है। सं० मुकुट प्रणद्धिका से 'म्हौरपन्हइयाँ' की व्युत्पत्ति संभव है। सं० मुकुट प्रणद्धिका > म्हौर पन्हइयाँ)।

§१३६१—लड़की के ब्याह में लड़की का मामा लड़की के लिए कम से कम **चोरौ-बारी** अवश्य लाता है। ओढ़ने के लिए एक ओढ़नी-सी **चोरौ** कहाती है। कानों में पहना जानेवाला भूषण विशेष **बारी** कहाता है। संस्कृत में बारी या बाली के लिए 'वालिका' शब्द मिलता है। डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने 'काशिका' से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'बाली' की व्युत्पत्ति के लिए संस्कृत-शब्द 'वल्ली' (वल्लीहिरण्यम्=बाली के लिए सोना) का भी उल्लेख किया है। अतएव ब्रजभाषा का 'बारी' शब्द दोनों शब्दों से ही सम्भव है—सं० बालिका>बालिआ> बाली>बारी अथवा सं० बल्ली>बाली>बारी।

§१३६२—बरमनिया और बारौठी की रस्मों के बीच में एक रस्म और होती है, जिसे **कनेऊ** कहते हैं। सं० कर्ण वेधः[1]>प्रा० कण्ण-वेहु>कन्नेउ>कनेऊ—यह विकास-क्रम सम्भव है। कनेऊ के समय मामा लड़की के कानों में बालियाँ पहनाता है। मामा उस समय **भातई** कहाता है क्योंकि वह भात भी लाता है। भातई का शुभागमन प्रसन्नता प्रदान करता है। अतः ब्रज में उसके आने के लिए **झमकारना** क्रिया का प्रयोग होता है। प्रयोग पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'आकर बिराजना' के अर्थ में **'झम कारना'** क्रिया प्रचलित है।

§१३६३—लड़कीवाला जब विवाह से दूसरे दिन बरात को अपने यहाँ रख लेता है, तब उस दिन को **बढ़ार** का दिन कहते हैं। इस दिन सन्ध्या को बरातियों को अधिक तथा विशेष भोजन परोसा जाता है—सं० वृद्धाहार (वृद्ध + आहार) > प्रा० बड्ढाहार > बड्ढार>बढ़ार। किसी

---

[1] संस्कृत के अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द का प्रथमा विभक्ति में प्रयुक्त विसर्गान्त पद अपभ्रंश में उकारान्त हो गया है, जैसे सं० दशमुखः>अप० दहमुहु—(दे० हेमचन्द्र अपभ्रंश का व्याकरण, ८।४।३३१)।

सामान (सामग्री) का समाप्त हो जाना **सपरना** कहाता है। सेनापति ने इसका प्रयोग किया है— "जाकें कहै आदि सभा परब सपरति सो, भारत की अनी किधौं बनी वर नारी है"— (कवित्तरत्नाकर १।३५)।

§१३६४—बढ़ार के दिन प्रातःकाल आठ बजे के लगभग दूल्हे और उसके अनब्याहे साथियों को भोजन कराया जाता है। इस नेगचार को **कुँवर कलेऊ** (सं० कुमार-कल्यवर्त=कुमारों का प्रातराश) कहते हैं।

§१३६५—बढ़ार के दिन जनवासे से लड़केवाला लड़कीवाले के घर मिठाई फल, मेवा, कपड़े, आभूषण, खिलौने आदि सामग्री भेजता है जिसमें बरनी के सुहाग की वस्तुएँ भी होती हैं। उस सम्पूर्ण सामग्री को **बरीपुरी** कहते हैं। सम्भवतः यह मूल शब्द 'भरीपूरी' है।

§१३६६—लड़केवाले के घर पर विवाह के दिन से दूसरे दिन स्त्रियों द्वारा एक **नेगचार** (रस्म) सम्पन्न किया जाता है, जिसे गौरनी **गौन्नी** कहते हैं। इसमें सब हतलगुनें **माँड़वे** के पास बैठकर कढ़ी, चावल और **नेवज** (पकवान) से गौरी (सं० गौरी>व्रज० गौर) का पूजन करती हैं और फिर वहीं बैठकर एक साथ खाना खाती हैं। हतलगुनों के भोजन कर लेने के उपरान्त ही घर के अन्य व्यक्ति भोजन करते हैं (सं० नैवेद्य>नेवज)।

§१३६७—जिस दिन दूल्हा बरात लेकर लड़की ब्याहने के लिए जाता है, उस दिन की रात को उस घर की स्त्रियाँ और गाँव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर विवाह का एक रूपक (नाटक) जैसा करती हैं और साथ में अश्लील श्रृङ्गारात्मक कुछ खेल भी करती हैं। उस अभिनयात्मक रस्म को **खोइआ** कहते हैं। स्त्रियों के विनोद तथा वासना की **हुलहुली** (सं० हुलहुली=आनन्दोद्रेक से उत्पन्न स्त्रियों का अस्पष्ट गान या कथन) अच्छी तरह पूरी हो जाती है। 'खोइआ' नाम के नाटक में एक पठान भी बनता है। खोइए के पठान को कामी पुरुष का प्रतिरूप ही समझना चाहिए। 'पठान' शब्द पश्तो भाषा से आया हुआ प्रतीत होता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—पश्तो० पश्तान, या पख्तान>हिं० पठान—(देखिए, भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, प्रथम संस्क०, पृष्ठ १०१)।

§१३६८—जिस दावत में किसी घर के सब स्त्री, पुरुष, बच्चों आदि को निमंत्रित कर दिया जाता है, उस निमंत्रण को **झराँ न्यौतौ** या **चूल्हि कौ न्यौतौ** कहते हैं। दावत खाने के लिए **पाँति खाना** बोला जाता है। दावत खाने के लिए एक बार में जितने व्यक्ति बैठते हैं, उसे **पंगत** कहते हैं—सं० पंक्ति>पंगति>पंगत। पंगति बैठने से पहले और दावत खाने के पश्चात् आदमियों के हाथ भी धुलाये जाते हैं। अतएव भोजन कराने के अर्थ में **'हाथ धुलाना'** एक मुहावरा भी बन गया है। यदि किसी दावत में गाँव भर का प्रत्येक व्यक्ति न्योत कर जिमाया जाता है, तो उसे **नगर पाँति** कहते हैं। जब दावत में पूरी पस (सं० प्रसृति) भरकर बूरा परसा जाता है तो उसे **बुकटा भर** कहते हैं।

§१३६९—ब्याह के दिन लड़कीवाले के यहाँ घर की सब स्त्रियाँ भाँवरों से पहले **जच्चा, लाड़ी, घोड़ी** आदि गीत गाती हैं। इन सब गीतों का सामूहिक नाम **सतगठा** है। फिर माँड़वे के नीचे सब **बड़अरबानियाँ** (स्त्रियाँ) खड़ी होकर एक दूसरी को मिठाई देती हैं। यह रस्म **पसर** कहाती है।

§१३७०—जब दूल्हा और दुलहिन अग्नि-प्रदक्षिणा मंडप के नीचे करते हैं तब उसे **भाँवर** या **फेरे** कहते हैं। वह क्रिया **भाँवर परनौ** या **फेरे परनौं** कहाती है। सं० भ्रमर>भँवर>

भाँवर—यह विकास-क्रम संभव है। भाँवरों के समय पंडित, पुरोहित आदि सभी ब्राह्मणों को **बनी** (सं० वरणी=दक्षिणा) दी जाती है।

§१३७१—भाँवरों के समय कुछ स्त्रियाँ कन्यादान का पुण्य प्राप्त करने के लिए **चौलाई** से कन्यादान लेती हैं। जो स्त्री चौलाई से कन्यादान लेना चाहती है, वह चार बर्तन—प्रति बर्तन एक फेरे पर—चावलों या बताशों से भरकर वर को देती जाती है। उन चारों बर्तनों को **चौलाई** कहते हैं। अन्य स्त्रियाँ भी व्रत रखती हैं और इच्छानुसार कुछ वस्तुएँ (आभूषण, रुपये आदि) लोई में रख देती हैं। वर-बधू के पाँव पूजकर चली जाती हैं। यह रस्म **कन्यादान** कहाती है। आटे की उस लोई से सबसे पहले लड़की (बधू) की माता कन्यादान लेती है।

§१३७२—लड़की के ब्याह के समय भाँवरों पर मंडप के नीचे चार **मलरियाँ** (मिट्टी के बर्तन विशेष) रखी जाती हैं जो कुम्हारिन द्वारा लाई जाती हैं, उन्हें **चौरी** कहते हैं।

§१३७३—भाँवरों के समय बधू के माथे पर खजूर के पत्ते की बनी हुई एक वस्तु बाँधी जाती है जिसे **म्हौरी** कहते हैं (सं० मुकुटिका>मउडिआ>मउरिआ>मौरी>हकार के आगम से म्हौरी)।

§१३७४—बायबन्द के चारों ओर सूर्य के प्रतीक रूप में जो चिह्न बनाया जाता है, उसे **चाकबाँस** कहते हैं। चाकबाँस की आकृति दीवाल पर बनाई जाती है—

अपने घर पर वर अपनी बधू के साथ चाकबाँस लपसी से पूजता है जब कि बरात लड़की-वाले के यहाँ से विदा होकर वापिस आ जाती है।

§१३७५—विवाह के समय प्रायः सभी **अऊत-पितर** मनाये और पूजे जाते हैं। हिंदुओं की यह धारणा है कि पुत्रहीन पुरुष मरने के उपरान्त **अऊत** बनता है। पुत्रहीना नारी **अऊती** कहाती है। स्त्रियों में **अऊती-राँड़** की गाली बहुत प्रचलित है। पुत्रों वाला पुरुष मरने के बाद **पितर** बनता है (सं० अपुत्र-पितर>प्रा० अउत-पितर>अऊत-पितर)।

§१३७६—यज्ञ, देव-पूजा आदि के लिए लाई हुई अग्नि **बैसान्दुर** (सं० बैश्वानर) कहाती है। लोकोक्ति भी प्रचलित है—"मेरे घर ते आगि लाई नाम धरौ बैसान्दुरी।" अर्थात् किसी विशेष व्यक्ति से सारी बातें मालूम करने पर भी ऐसा रूप दिखाना कि वह स्वयं ही मौलिक चिंतक है, तब यह कहावत कही जाती है।

§१३७७—भाँवरों के बाद बर-बधू एक **कोठे** (सं० कोष्ठ) में जाते हैं, जिसकी एक दीवाल पर **बायबन्द** बना रहता है। वहाँ दूल्हे को **घीयाभाती** (सं० घृत-भक्त) खवाई जाती है। तब स्त्रियाँ निम्नांकित गीत गाती हैं, जिसमें दूल्हे की निन्दा और दुलहिन (बरनी) की प्रशंसा होती है (लोक-गीत)—

"कारी कौ जायौ[१] कारौ-खैंकरौ[२]।
मेरी गोरी की जाई, गोरी दमदमी[३]॥
भूखी कौ जायौ लपलप[४] लै गयौ।
अघानी[५] की जाई छूवत धरि दयौ॥"

—(तहसील कोल के गाँव शेखूपुर में सुना हुआ)

[१] जात उत्पन्न।
[२] बहुत काला।
[३] चमकदार।
[४] शीघ्रतापूर्वक जीभ निकालकर।
[५] तृप्ता, भरे पेट की।

§१३७८—विवाह से दूसरे दिन या तीसरे दिन लड़कीवाले के यहाँ वर-वधू मंडप के नीचे एक पलँग पर बैठते हैं। तब चलनवाली स्त्रियाँ और पुरुष वर का टीका करते हैं, बताशा खिलाते और रुपये देते हैं। यह रस्म **पलकाचारा** या **पलकाचार** (सं० पर्यंकाचार>पल्यंकाचार>पलकाचार) कहाती है। उस समय कन्यादान लेनेवाली स्त्रियाँ पलँग की **परिकम्भा** (सं० परिक्रमा> परिकम्मा) लगाती हुई जौ **गेरती** (डालती) जाती हैं। यह रस्म **जौ बइबौ** कही जाती है। परिक्रमा लगानेवाले व्यक्ति प्रत्येक परिक्रमा पर लड़का-लड़की के पैर पूजते हैं।

§१३७९—लड़की की विदा के अवसर पर लड़कीवाले की ओर से छाक, मट्ठे, लड्डू, कपड़ा, बर्तन, आभूषण, पलँग आदि सामान दिया जाता है जिसे **दाति** या **सोबादाइजा** कहते हैं।

§१३८०—पलकाचार के समय वर से माँड़वे के छप्पर में से एक फूँस का तिनका खिंचवाया जाता है, जिसे **गूथ खुलाई** कहते हैं। गूथ खुलाई के बदले में दूल्हे को कोई पशु, सवारी या अन्य अभीष्ट वस्तु मिल जाती है। तह० कोल में कुछ लोग इस रस्म को **घूत खुलाई** भी कहते हैं। फोड़ा अच्छा हो जाने पर शरीर पर उसका बना निशान भी **घूत** कहाता है।

§१३८१—**बरात** (सं० बरयात्रा>बरजात>बरआत > बरात) **बिदा** (अ० विदाअ) होने से कुछ समय पहले **पट्टा** या **मिलनी** की रस्म होती है। इसमें समधी, मान आदि पट्टे पर बैठकर मिलते हैं और एक दूसरे के मुँह पर गुलाल मलते हैं। कन्या-पक्ष के रिश्तेदार वर-पक्ष के हमजोली रिश्तेदारों को एक या दो रुपये भेंट करते जाते हैं। समधी की मिलनी **बड़ी मिलनी** कहाती है जो श्रद्धानुसार ५ रु० ११ रु० या २१ रुपयों से होती है।

§१३८२—पलकाचारे की रस्म के उपरान्त लड़की जनवासे में जाती है। वहाँ पैसों और कुछ रुपयों से भरी हुई थैली में हाथ डालकर मुट्ठी भरती है। उन पैसों को बाहर निकालकर रखती है। इस प्रकार तीन मुट्ठियाँ भरकर पैसे निकालती है। ये पैसे वर के बहनोई को मिल जाते हैं। यह रस्म **रहस बधायौ** कहाती है। (सं० वर्धापक > बधावा > बधावौ।

§१३८३—जब बरात बिदा होने को तैयार हो जाती है, तब बेटेवाला गोटे और कपड़े के बन्दनवारों को लड़कीवाले के घर में द्वारों पर बाँध देता है और नेग का रुपया भी प्राप्त करता है। इसे **बन्दनवार बाँधना** कहते हैं। सर्वप्रथम बन्दनवार माँड़वे में ही बाँधा जाता है।

§१३८४—जब लड़के का पिता अर्थात् समधी बन्दनवार बाँध देता है तब समधिन (लड़की की माता) द्वारा समधी के मुँह पर हलदी मली जाती है, जिसे **मुँह मड़ई** कहते हैं।

§१३८५—**बरात** बिदा होते समय बर लड़कीवाले के यहाँ बनी हुई भट्टी में लात मारकर बरात के साथ बिदा होता है। यह रस्म **भट्टी लात** कहाती है।

§१३८६—बिदा के समय लड़की के सिर के बाल गुहकर बाँधे जाते हैं और माँग भरते हैं। इस रस्म को **सिरगूँदी** कहते हैं।

§१३८७—लड़कीवाले की ओर से कपड़े आदि जो विवाह की सामग्री दी जाती है उसे **दाति**, **दानदहेज** या **सोबादाइजा** कहते हैं (अ० जहेज़>हिं० दहेज)।

§१३८८—लड़की के बिदा हो जाने के उपरांत लड़कीवाला बैठने के काम आनेवाली जाजम या फर्श का कोना उलट देता है। इसे **बिछइया उलटन** कहते हैं। इसका भाव यह होता है कि लड़की का विवाह हो गया, एक बड़े उत्तरदायित्व से मुक्ति हुई। लड़कीवाले को तब ही कुछ आराम और **फुरसत** (अवकाश) मिलती है। 'फुरसत' के लिए अलीगढ़ की जनबोली का ठेठ शब्द **'सोपतौ'** है।

§१३८९—जब दूल्हा अपनी दुलहिन को लेकर बरात सहित अपने घर वापिस आ जाता है तब घर के मुख्य द्वार पर **मान** (दूल्हे की विवाहित फूफी या बहिन) खड़ी होकर द्वार रोकती है। उस समय मान को दो-एक रुपया नेग में मिलता है। यह रस्म **द्वार-रुकाई** या **द्वार-रुपाई** कहाती है।

§१३९०—बहू के घर आ जाने पर स्त्रियाँ उसे गोद में लेकर नचाती हैं। फिर **उगड़नी** नाम का **नेगचार** (रस्म) किया जाता है। इस नेगचार में **माखज** का होना आवश्यक है। घी, गुड़ और मैदा के बने हुए लोए-से **जावड़े** कहाते हैं। गुड़ तथा मैदा से बनी हुई गोल सुपाड़ी-सी **सिड़ूरी** कहाती है। गुड़ तथा मैदा के बने हुए पेड़ों को **पितर** या **पिटर** कहते हैं। **पेड़ा** नाम की मिठाई प्रायः खोए और बूरे से बनती है किन्तु पिठर मैदा में गुड़ मिलाकर बनाये जाते हैं। सं० पिंडक > पिंडअ > पिंडा > पेंड़ा > पेड़ा—यह विकास-क्रम संभव है। आर० पिशल ने अपने 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' नामक ग्रंथ में 'पेड़ा' को सं० पिंड > शौरसेनी प्राकृत 'पिंड' से विकसित माना है (दे० 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण', प्रका० राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सन् १९५८ ई०, पृ० २०७)। गुड़ तथा मैदा की चँदियाँ-सी जो घी में सिक जाती हैं, **माइँ** कहाती हैं। जावड़े, सिड़ूरी, पिटर और माइँ को सामूहिक रूप में **माखज** कहते हैं। मिट्टी के पाँच **मल्ले** (बर्तन विशेष) जब माखज से भर दिये जाते हैं, तब उन्हें **मामथे** कहते हैं। दो चौक आटे से पूरे जाते हैं और उन पर मामथे रख दिये जाते हैं तब दूल्हा-दुलहिन वहाँ बिठाये जाते हैं और उनसे उन मामथों को पुजवाया भी जाता है। यह नेगचार ही **उगड़नी** कहाता है। उन मामथों का **पकवान** (पक्वान्न) कुनबे के लोगों में बाँट दिया जाता है।

§१३९१—बहू के ससुराल में आ जाने पर एक नेगचार होता है, जिसे **नैंतासूती** कहते हैं। इसमें **नेती** (सं० नेत्रिका > नेत्तिआ > नेती = मथानी अर्थात् रई में लपेटी जानेवाली रस्सी) और **सूती** (सं० सूत्रिका > सूत्तिआ > सूती = कच्चे सूत की अटिया) काम में आती है। बरना-बरनी को बिठाकर दो हथलगुनें इस नेगचार को करती हैं। रई (मथानी) की रस्सी में कच्चे सूत की बनी हुई गोल ईंड़री-सी पोह ली जाती है। उसे सात बार हथलगुनें बरना-बरनी के सिर से छुवाती हैं। इस रस्म को **नैतासूती** (सं० नेत्रकसूत्रिका) कहते हैं।

§१३९२—दुलहिन के ससुराल में आ जाने पर चलनवालों के घर जो मिठाई या पकवान बाँटा जाता है, उसे **बाइनौ** कहते हैं। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में 'बाइना' के लिए 'वायण' शब्द लिखा है—"वायण भोज्योपायनम्"—(देशीनाममाला ७।५७)। पाइअसद्दमहण्णवो नामक प्राकृतकोश में भी 'वायण' शब्द को देश्य ही माना गया है। इसके लिए संस्कृत में **'वायन'** और **'बायनक'** शब्द हैं। 'रत्नावली' नाटिका के प्रथम अंक में रानी वासवदत्ता वसन्तक नाम के ब्राह्मण से कहती है—"अज्ज! सोत्थिवाअणं पडिच्छेहि। "अर्थात्" आर्य! स्वस्तिवायनं प्रतीच्छ।" सारांश यह है कि कोई ब्राह्मण आशीर्वाद देने से पूर्व जो वस्तु यजमान से प्राप्त करता है, उसे 'स्वस्तिवायन' कहते हैं। बहुत संभव है कि संस्कृत साहित्य में यह शब्द लोक-जीवन से लेकर अपना लिया गया हो। बाण ने कादम्बरी में 'पूर्णपात्र' शब्द का प्रयोग भी एक विशिष्ट अर्थ में किया है। पुत्र आदि उत्पन्न होने की प्रसन्नता में जो प्रिय वस्तु किसी के द्वारा पिता या माता से ले ली जाती है, तब वह ली हुई वस्तु 'पूर्णपात्र' कहाती है।

जब लड़की **माइके** (माता का निवास-स्थान) से ससुराल में आती है तब माता के यहाँ से उसके साथ पाँच थैलियों में मिठाई, मेवा, चूड़ी कलावा आदि रख दिया जाता है। उन थैलियों को **लाड़ कोथरी** कहते हैं।

§१३६३—एक मिट्टी का बर्तन जिसमें विवाह के समय अछूता निकालकर रखते हैं **भड़ेली** कहाता है। विवाह में बने हुए सब पकवानों तथा अन्य भोज्य सामग्री में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर **अऊतपितर** के नाम का रख देते हैं। वह भोज्य सामग्री **अछूता** कहाती है।

§१३६४—बरात वापिस आ जाने पर लड़केवाले के घर कुछ पूए, लड्डू और बीस गुँझियाँ सिकती हैं। इन तीनों चीजों को सामूहिक रूप में **पामड़ौ** कहते हैं। दान-दहेज में जब बहुत ज्यादा माल-टाल और रुपया-पैसा आता है तो लोग कहते हैं कि 'छोरीवारे नैं तौ छोरावारे के घर मैं माल **बबराइदौ**' अर्थात् खूब पेलकर दिया। यहाँ **बबराना** क्रिया बड़ी सार्थक है।

§१३६५—जिस दिन बरना बरनी सहित अपने घर आ जाता है, उसी दिन लड़के की मा मैदा, घी और गुड़ का बहुत बड़ा गिंदौरा-सा बनवाती है। इसके ऊपर बड़ा-सा लड्डू भी रखा जाता है। यह **घैंड़ा** कहाता है। घैंड़े को **कजैतिन** (बरने की मा) छै बारमा थे से लगाकर **भातई** को दे देती है। लड़के के ब्याह में भात लानेवाले व्यक्ति को **भातई** कहते हैं।

§१३६६—जिस दिन बरात लौटकर लड़केवाले के घर आ जाती है, उस दिन **मान** (बरने की फूफी) घर के मुख्य द्वार के दोनों **कौरों** (संस्कृत में इन्हें 'द्वारोपान्त' कहते हैं) पर गेरू से **बेल** और **घोड़ी** काढ़ती है अर्थात् बनाती है। द्वार की चौखट के ऊपर और दाँये-बाँये बेल तथा दोनों कौरों पर एक-एक घोड़ी बनाई जाती है।

§१३६७—**कँकना** (सं० कंकण) खुलने के उपरान्त एक दिन दूल्हा-दुलहिन बाग में जाकर छड़ीमार खेलते हैं, अर्थात् वे एक दूसरे में पतली संटी मारते हैं। इस नेगचार को **बागछरी** (फा० बाग+सं० शरिका >बागछरी) कहते हैं। बागछरी से पहले माँड़वा सिरा दिया जाता है। बहू के ससुराल में आ जाने पर सोमवार या बृहस्पतिवार को कंकण खोला जाता है। यह रस्म **ककना-बर** कहाती है।

§१३६८—बहू के आ जाने पर एक दिन मुख देखने की रस्म की जाती है जिसे **म्हौंदिख-रौनी** कहते हैं। इसमें प्रायः स्त्रियाँ आकर बहू का मुख देखती हैं और रुपये देती हैं। वयस्क वर-बधू हों तो **सुहाग रात** (सं० सौभाग्यरात्रि) की रस्म भी चार-पाँच दिन बाद मना ली जाती है जबकि देवी-देवता पूज लिये जाते हैं। कोई-कोई बहू मुँह दिखाने में बड़े **ठनगन** (नखरे) दिखाती है। 'खुशामद' के अर्थ में ठेठ जनपदीय शब्द '**मनामनौ**' है। शरीर में बड़ी और भारी तथा आयु में अधिक बहू को स्त्रियाँ **बबंगरा** कहती हैं। जिस प्रकार निकृष्ट भाव का द्योतक शब्द **बबंगरा** है, उसी प्रकार पेट के लिए '**नरि**' शब्द और 'मुँह' के लिए '**थूथरौ**' एवं 'खाना' क्रिया के लिए **लीलिबौ** या **ठेसनौ** है।

§१३६९—विवाह से दसवें दिन बरनी के भाई आदि बरनी को ससुराल से लिवाने के लिए जाते हैं और साथ में कुछ मिठाई और पकवान भी ले जाते हैं। इस रस्म को **दसईं** (सं० दशमी) कहते हैं।

§१४००—विवाहवाली साल में लड़कीवाला लड़केवाले के यहाँ चाँदी की बनी हुई एक स्त्री की मूर्ति और एक पुरुष की मूर्ति कपड़े, मिठाई, फल आदि सहित भेजता है। यह रस्म **लौंदरी-लौंदरा** कहाती हैं। चाँदी की स्त्री-मूर्ति **लौंदरी** और पुरुष-मूर्ति **लौंदरा** कहाती है।

§१४०१—ब्याहवाली साल में लड़के की माता सकट के दिन लड़के को गोद में बिठाकर

१४ जगह सात-सात पूए और तिलकुट रखती है। फिर उन्हें मंस देती है। दान की भावना से पूजोपरान्त किसी को देना **मंसना** कहाता है। मंसे हुए वे पूए और तिलकुट **कुड़बारौ** कहाते हैं।

§१४०२—विवाह से एक वर्ष उपरान्त या तीसरी साल में **आँचर** अर्थात् **गौने** या **चाले** (द्विरागमन) की रस्म होती है। इन्हें **गाँठें** (सं० ग्रन्थि) भी कहते है। गौने के बाद लड़की एक बार मायके में आकर जब फिर ससुराल जाती है तब उसे **रौनौ** कहते हैं। स्त्रियों के स्तनों को **आँचर** कहते हैं। स्त्रियों की धोती का वह भाग जो स्तनों को ढकता है। वह भी **आँचर** कहाता है।

मृत्यु-संस्कार

§१४०३—किसी व्यक्ति के प्राण निकलने से कुछ समय पहले जो गड़गड़ आवाज के साथ मुँह से साँस निकलती है, उसे **गड़गड़ा चलनौ** कहते हैं। नाड़ी चलना बन्द हो जाने पर भी जब मनुष्य की मृत्यु नहीं होती तो कहा जाता है कि **नर चल रह्यौ** है। मनुष्य का जब पूरी तरह प्राणान्त हो जाता है तब उसके लिए **मरनौ**, **चल बसनौ**, **सिधारनौ**, **गुजर जानौ**, **आँखें-मिचनौ** और **देह होनौ** क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

§१४०४—किसी मनुष्य के शव को **मरैठौं** या **मरघट** (श्मशान) को ले जाने के लिए बाँस, कफन, कलावा, सामग्री, घी, कंडा, लकड़ी आदि चीजें मँगाई जाती हैं। इन सबको सामूहिक रूप में **सामान** या **मुर्दे कौ सामान** कहते हैं। कफन को अलीगढ़ की जनपदीय ब्रज-भाषा में **कफ्फन** और सामग्री को **सामगीरी** कहते हैं। मुर्दे को **काँठी** (बाँस की नसेनी-सी) पर चित्त रखने के बाद उसकी छाती पर जौ के आटे का एक गोला-सा बनाकर रखा जाता है, जिसे **पिंड** कहते हैं।

§१४०५—**मरैठों** (मरघटों) को जब मुर्दा ले जाया जाता है तब रास्ते में पिंड बदला जाता है; यह प्रक्रिया **पिंडौती** कहाती है। मुर्दे को रास्ते में देखकर रास्तागीर (राहगीर) उसके पीछे-पीछे कम से कम ५ कदम अवश्य चल लेते हैं। इसे **पँचपैंड़ी भरना** कहते हैं।

§१४०६—मुर्दे को जलाना प्रारम्भ करना **दाग देना** कहाता है। दाह-संस्कार के समय **ल्हास** (फा० लाश) पर जो लकड़ियाँ लगाई जाती हैं, उन्हें **ठोक लकड़ियाँ** कहते हैं। मुर्दे की खोपड़ी फोड़कर उसमें घी-सामग्री डालना **कपार-किरिया** कहाता है।

§१४०७—मृत्यु से तीसरे दिन मृतक के घर के आदमी मिलकर नहाते हैं और एक पचल पर रखे हुए पिंड पर जल चढ़ाते हैं। यह क्रिया **जल-पातर देना** कहाती है। यह तीसरा दिन **तेइया** कहाता है। इसी दिन तिल दिये जाते हैं और मृतक से सम्बन्ध-विच्छेद किया जाता है। इसीलिए **तिलांजलि** अन्वर्थ नाम प्रसिद्ध हुआ। नवें दिन **न्हान-धोमन** होता है। इसका **नौवाँ** नाम प्रचलित है। ग्यारहवें दिन किसी नदी की धारा में मृतक के **फूल** (जली हुई हड्डियों के टुकड़े) बहाये जाते हैं। फूल-विसर्जन का यह ग्यारहवाँ दिन **ग्यारस** या **अग्यारी** कहाता है। मथुरा में फूल विसर्जन की क्रिया **किरिया डालना** भी कहाती है। मृत्यु के तेरहवें दिन **तेरहीं** (तेरहवीं) होती हैं।

§१४०८—मरघट में मुर्दे को फूँककर जब घर को लौटते हैं तब किसी कुएँ के पास बैठकर सब लोग नीम की पत्तियाँ चबाते हैं और कंकड़ियाँ पीछे को अर्थात् मरघट की दिशा में फेंकते हैं।

इसे **कंकरी डालना** कहते हैं। किसी बात से सम्बन्ध विच्छेदन करने के लिए **कंकरी डालना** मुहावरे का प्रयोग भी किया जाता है।

§१४०९—मृत्यु से तेरहवें दिन तक स्त्रियाँ इकट्ठी होकर शोक व्यक्त करने के लिए रोया करती हैं। यह रोना-धोना **स्यापौ** कहाता है। इसे मरे की **रोजराहट** या **रोआ-पीटन** भी कहते हैं।

§१४१०—मृतक के घर-कुनबे के लोग मृत्यु से तीसरे-चौथे दिन नाई से बाल कटाते हैं। इसे **बरकटौ** कहते हैं। इस दिन कढ़ी-भात भी बनता है। स्त्रियों की गालियों में एक गाली **कढ़ी करना** भी है। उसके मूल में इसी बरकटे के दिन की ओर संकेत है। बरकटे में सिर के बाल उस्तरे से पूरी तरह मूँड़ दिये जाते हैं। यदि किसी शुभ दिन नाई किसी व्यक्ति के सारे शरीर के बाल काटता है तो उसे **बरबरी** कहते हैं।

§१४११—बरकटे के दिन मृतक के घर की स्त्रियाँ भी नहाती हैं। प्रायः सोमवार या वृहस्पतिवार को बरकटा किया जाता है। बरकटे के दिन स्त्रियों के आगे एक पत्ता रखा जाता है जिसपर थोड़ा-थोड़ा कढ़ी-भात आदि सब सामान रखा जाता है। उस पत्ते को स्त्रियाँ पाँव से दबा कर घर से बाहर फेंक आती हैं। इस क्रिया को **पत्ता फाड़नौ** कहते हैं।

§१४१२—जब किसी के यहाँ मौत हो जाती है तब यदि कोई **पड़ौस** (सं० प्रतिवेश) की स्त्री या रिश्तेदारी की स्त्री आती है तो उस घर की स्त्रियाँ मुँह ढककर रोने लगती हैं। इस **ढब** (तरह, भाँति) से मुँह ढकने को **म्हौंपल्लौ लैबौ** कहते हैं। कभी-कभी वास्तव में **रोज** (रोना) नहीं आता है तो भी मुँह ढककर रोने को दिखाती हैं। स्त्रियाँ मुँह पल्ला लेकर रोने का **मूढ़ा** (बहाना) भी कर लेती हैं।

§१४१३—मृतक के घरवाले **कठौटी** (सं० काष्ठपात्र > कठौता > कठौटा का स्त्रीलिंग) के नीचे उर्द की दाल की एक रोटी और छनी हुई राख रख देते हैं। इस सम्बन्ध में लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिस योनि में जीवात्मा जाता है, उसके निशान उस राख पर बन जाते हैं। उस दिन कहीं-कहीं गरुड़ पुराण की कथा भी होती है। इस प्रकार के लोकाचार को **सरगछाप** कहते हैं।

§१४१४—**तेरहीं** (तेरहवीं) या **कनागतों** (कन्यागत = कन्या राशि पर आया हुआ सूर्य जब कि श्राद्ध किये जाते हैं) में मृत पुरखे के नाम पर भोजन का कण धरती पर डाल दिया जाता है। उस अन्न-कण को **किनका** कहते हैं।

§१४१५—तेरहवीं के बाद मृत्यु से एक वर्ष उपरान्त का श्राद्ध (संस्कार) **बरसी** या **बस्सी** कहाता है। एक-एक महीने पर होनेवाले संस्कार को **मासी** कहते हैं। नाती-पंतीवाले बुड्ढे की मौत पर उसकी काँठी सजाई जाती है जो **बिमान** कहाती है। बिमान सजाकर निकाला जाता है।[1]

---

[1] छान्दोग्य उपनिषद् (अध्याय ८) के इन्द्र-विरोचन-संवाद में विरोचन ने देह को ही आत्मा बताने की चेष्टा की है। संभवतः इसी कारण मृत-शरीर को सज-धज के साथ विदा देने की प्रथा है।

अध्याय ५

लोक-क्रीड़ा-विनोद

जिला अलीगढ़ में खेले जानेवाले खेलों के नाम—

(१) घर के खेल (२) मैदान के खेल

§१४१६—घर के खेलों के नाम—

(१) अटकन-बटकन
(२) अठारै गोटी या बग्गवरि
(३) आम-आम
(४) इल्ली-दुल्ली
या
एली-दोली
(५) काऊ की चाँदि पै चिलम-दरा
(६) खुलखुला (=कौड़ियों का एक खेल)
(७) गंगा जी की आर-पार (=आमने-सामने के दो चबूतरों के बीच में खेला जानेवाला एक खेल)
(८) गंगा में डुबुकु-डुबुक (=गलियों में चबूतरों के बीच खेला जानेवाला एक खेल)
(९) गाइ-गुप्पु
(१०) गिटट्ठू (=छोटी लड़कियों का एक खेल)
(११) गुपक
(१२) गोटमार
(१३) घपोल
या
बारैगोटी
(१४) चउआ डेली
(१५) चङ्गा-पै,
या
चङ्गा-पौ
या
चिड़िया गोट
या
अट्ठाचङ्गा
(१६) चाँई-माई
(१७) चित्त-पट्ट
या
सन्-बेगम
या
सन्-मूरत
या
सन्-पुतरिया
(१८) चीया डारी-डारा
(१९) चीया-फोरी
(२०) चुरी-कौंड़ुआ
(२१) चूतिया चक्कर (=८-८ गोटों का एक खेल)
(२२) चैंमैं-चैंमैं
(२३) चोर-काँकरी
या
पेट-काँकरी
(२४) चौपड़ या चौफड़
(२५) छै गोटी
(२६) झन्न कटोरी झनन्-झनन्
(२७) झू-झू पाऊँ
या
राजा की छान
(२८) ठड्डा-बैठा (=गोटों का खेल)
(२९) ढपरी के ढपरा
या
थपरी के थपरा
या
धपरी के धपरा
(३०) तखरी मार
(३१) तासमार
या
पत्तामार
या
गंजफा
(३२) तिकतिक
या
तिकतिकिया (=गिट्टुओं का एक खेल)
(३३) तितोड़ा
(३४) तिन्तू
(३५) तीप जसु
या
तीपुदस
(३६) दस गोटी
(३७) दुबक पिछौरी
(३८) देखतभूली
(३९) नक्कमूठी (=कौड़ियों का एक खेल)
(४०) नौ गोटी या नौ गुट्टा
(४१) पचगुट्टा
(४२) बंक
(४३) बामन गोटी
(४४) बिजमक्को
(४५) बिज्जो
(४६) बिलन्दी-बिलन्दा

(४७) बीजनी-बीजना
(४८) बीसा
(४९) भैंसा-बाँधी
या
भैंसा-बंदी
(५०) लठिया चोर
(५१) सतगोटी
(५२) सतरंज
(५३) सुई ढूँढ़नौ
(५४) सूअर-घेरी
(५५) स्याँप-पार
(५६) स्याँप-सीढ़ी
(५७) हुक्का-हुक्की

मैदान के खेलों के नाम—

(१) अमरूद लपक
(२) आती-पाती
(३) आम कौ भौंरा
(४) आलू-चम्मच
(५) इकटंगा
(६) ईंट खुटक्का
(७) ईख-ईख
(८) कबड्डी
या
भड़ू या हूहुआ
(अ) उसासी भड़ू
(आ) गैर उसासी भड़ू
(इ) गाड़ौ छुई भड़ू
(ई) गाड़ौ फार भड़ू
(९) कनकउआ उड़ानौ
(१०) काँय-काँय टउआ
या
डंका पोत
या
डंडा टुकाई
या
टोका डंडा
या
हरियल डंडा
या
झिल्ला मोर
(११) किलकिल काँटी
या
होरी किलकिल्ला
(१२) किसान लोखटी
(१३) कूआ-भौंरो
या
पैरि-पैरि
(१४) कूलरीमार
(१५) कोरट
(१६) कौंड़ुआ सिकार
(१७) कौड़ा-जंगालसाई
या
गौमटी मार
(१८) खत्ता मारना
(१९) गगरा गगरिया
(२०) गिल्तर मार
(२१) गुच्चकदानी
(२२) गुच्ची पाड़ौ
(२३) गुल्ली डंडा
या
गिल्ली डंडा
(२४) गुच्ची मार
या
गोली टीच
(२५) गेड़ीपार
(२६) गैंद बच्ची
(२७) गैंद बल्ला
(२८) गैंदतड़ी
(२९) घरुआ पातौ
(३०) चनुआमार
(३१) चउआ ढेरी
(३२) चना, मटर, सरसों
या
ठाड़ी सरसों करै सलाम
(३३) चकई के चकधम
(३४) चकई मार
(३५) चील झपट्टा
या
चपतमार
(३६) चुनचुन मूँगा
(३७) चैंटीमार
(३८) चोरसिपाई
(३९) चौकड़ीकूद
(४०) छींटामार (=बम्बे, तालाब आदि के पानी में खेला जानेवाला एक खेल)।
(४१) छूईछूआ
(४२) जेबकट्ट
(४३) टीलो
(४४) ठेका
या
पैंता
या
लम्बी कूद
(४५) डाँड़ी चोर
(४६) डिब्बी डिब्बा
(४७) ढुकी मींचना
या
धाई मिचक्का
या
आँख-मिचौनी
(४८) तारी पीटन
(४९) तीन टुलिया
(५०) धमधममलूका
या
लिललिल घोड़ी
या
मीयाँ घोड़ी
या
अन्धौ-भैंसा
(५१) नौरता (=नवरात्रियों

में क्वारी लड़कियों का एक खेल)
(५२) पत्थरगाड़ी
(५३) पहेड़ू
(५४) पाई-पाई
(५५) पिल-पिलो
(५६) पिल्लपिल्ल
(५७) बगुला-बगुली
या
कउग्रा-कउग्रनी (= पानी में चुटकी मारने का एक खेल)
(५८) बग्घी घोड़ा
या
घोड़ा-गाड़ी
(५९) बारैगोटा (बारहगोटा)
या
सूजापट्टी
या
भम्बातक्कू
या
तक्कूपट्टी
(६०) बाल-टोच
(६१) बिज्जुलमार
(६२) बित्ती
या
चड्डीचड्डा
(६३) बिस-इमरत
(६४) बेलतोरनौ
(६५) बैंगनमार
(६६) भंगी की पातरि
भिनिन्-भिनिन्
(६७) भार-भार
या
राई-नौन
(६८) मेड़-बकरियाँ
(६९) मौंटि
(७०) मच्छी-पानी
या
मच्छी मच्छी कित्तौ पानी
(७१) मुरगाझपट्टा
(७२) मूस बिलइग्रा
(७३) लँगड़ी चाल
(७४) लगे साँतिया
या
लबे साँतिया
या
डंडा-टोक
(७५) लालबहू (= तालाब या बम्बे के पानी में डुबकी लगाकर ईंट ढूँढ़ने का एक खेल)
(७६) ल्हैटूमार
या
भौंरामार
(७७) सतगुच्ची
(७८) सुरंगधइग्रा
(७९) सूग्रा भागि, बिलइग्रा ग्राई।
(८०) हसनगढ़
या
ऊँची कूद
(८१) हुलंग लौठो
या
डीका लठिया

——

अध्याय ६

§१४१८—पहलवानों की कुश्तियों के दावों (पेचों) के नाम—

(१) अड़ंगा या टँगड़ी
(२) ग्रन्टी (ग्रंटी)
(३) ग्राड़े पटे
(४) इकटंगा पटे
(५) इक पटा
(६) इकलंगी टाँग
(७) इकहत्ती पुट्ठी
(८) उखेड़-फंक (पहलवान का कमर से पाँवों तक का हिस्सा उखेड़ कहाता है)
(९) उठान की निखाल
(१०) उल्टा
(११) कड़ा
(१२) कत्ती कौ हाथ
(१३) कमर की सखी
(१४) कमर पटे
(१५) कलमतरास
(१६) कल्सरी
(१७) कलाजंग
(१८) कस (भीतरी)
(१८/ग्र) कसेटा
(१९) कानसराई
(२०) कीली
(२१) कुन्दा
(२२) कुप्पा ढाक
(२३) कैंची
(२४) कैरे पटे
(२५) कोल्हू लाट की टाँग
(२६) कूल्हौ
(२७) खैंच
(२८) खैंच कौ हाथ
(२८/ग्र) गिरह
(२९) गोला-लट्टू
(३०) चन्टी (चंटी)
(३१) चपरास
(३२) चरखा
(३३) चलत
(३४) चीमटा
(३५) जाँघिया निखाल

(३६) जोड़ (=विपक्षी को चित करने का एक दाव)
(३७) झाड़ कौ हाथ
(३८) झोली
(३९) टँगफँसा पटे
(४०) ढाक
(४१) ढिब्बी
(४२) ढेंकुरी
४३ तब्रा क फाड़
(४४) तारकसी या मोतीचूर
(४५) तेगा
(४६) तेगालपेट
(४७) दस्ती (काट की); दस्ती (लंगूरी)
(४८) दुहरी टाँग
(४९) धरती पकड़
(५०) धोबिया पाट या धोबी पाट
(५१) नारि झोक-पटे
(५२) निकर पटे
(५३) निबाजबन्द
(५३/अ) पउआ
(५४) पकड़
(५५) पटे
(५६) पिछपुट्ठी
(५७) पुट्ठा कलाजंग
(५८) पुट्ठी
(५९) पुट्ठी (सादा)
(६०) पुस्तंग
(६१) बकरी पछाड़ा
(६२) बगली (बंगली)
(६३) बगली निखाल
(६४) बगली बैठक-मोच (विशेष—इस दाव से ही गामा पहवान ने जैविस्को को कुश्ती में पछाड़ा था)।
(६५) बन्द
(६६) बलथम
(६७) बाल साँकड़ा
(६८) बाहरी दस्ती
(६९) बाहरी निखाल
(७०) बाहिल्ली टाँग
(७१) बैठक
(७२) भीतरी दस्ती
(७३) भीतरी निखाल
(७४) भैंसा-डार
(७४/अ) मच्छी-गोता
(७५) मल्हाई घिस्सा
(७६) मुल्तानी
(७६/अ) मोचिया पंजा
(७७) मोटा
(७८) रेला या अरेरा
(७९) रोम
(८०) रौंद का उल्टा
(८१) रौंद की निखाल
(८२) रौंद के पटे
(८३) लुकान
(८४) सखी
(८५) सण्टी (संटी)
(८६) सवारी
(८७) साँड़ी
(८८) हतकट्टी
(८९) हत्थी या हत्ती
(९०) हलक्खून या हलखून
(९१) हैदरी घिस्सा

§१४१९—हथियार चलाने के कुछ हाथों के नाम—

(अ) भाले के हाथ—

(१) कोख-फैंक
(२) गरैंदुआ
(३) घूम
(४) फैंकमार

(आ) बाने के हाथ—

(१) इकरुखा
(२) दुरुखा
(३) जंगा दुरुखा
(४) अगपिच्छी मार
(५) चार निसान
(६) बारह कला
(७) बारह कला-उछरैमा
(८) पैरिया काट
(९) सूदी घूम
(१०) उल्टी घूम
(११) बगली

(इ) बनैती के हाथ—

(१) जनेउआ
(२) मुट्ठे कौ हाथ
(३) म्हौं लपेट

(ई) लाठी के हाथ—

(१) उपल्ली घाई
(२) निचिल्ली घाई
(३) कनपुटी
(४) घूम
(५) दुहरौ हाथ
(६) चौमुखी

(उ गदके के हाथ—

(१) सलामी
(२) धज
(३) घाई मिलान
(४) दुहरी घाई
(५) बजरंग पैंतरा
(६) लपेट

——

अध्याय ७

§१४२०—देवी-देवताओं के नाम—

(अ) देवताओं के नाम—

(१) कारसवारौ (कारस एक गाँव का नाम है)।

(२) **कुआवारौ**

(३) **खईस** (यह भूत, जिन्द, चुड़ैल आदि की कोटि का नीची श्रेणी का माना जाता है)।

(४) खुसाली (इसे गड़रिया जाति के लोग पूजते हैं)।

(५) खौंटा (यह विशेषरूप से विवाह में पुजता है—लोधों और काछियों में)।

(६) गुल्जारी देब (इसे चमार लोग गुंजारी देब कहते हैं और विवाह के समय पूजते हैं)।

(७) चितरासीबारौ (यह भंगियों में पुजता है)।

(८) जाख या जखइआ (सं० यक्ष>जक्ख>जाख) (जखइया की जात पचौं, तह० सिकन्दराराऊ में)

(९) जाहरपीर या गुँदगुदापीर

(१०) जेनखा बीर

(११) झिलमिला जोगी (इसे स्याने और मदारी विशेषरूप से पूजते हैं)।

(१२) टौंटा खईस

(१३) घनीपुरवारौ (गाँव घनीपुर अलीगढ़ से ३ मील दक्षिण-पूर्व में है)।

(१४) घाँघू भगत (यह विशेषतः कुम्हारों में पुजता है)।

(१५) नगरसैन (तहसील हाथरस के गाँव तमना को गढ़ी में इसकी जात लगती है)।

(१६) पंचपीर (चाँमड़, काली, सइयद, बुंदेलौ और पथवारी मिलकर पंचपीर कहाते हैं। ये पाँचों ग्राम-देवता गाँव की रक्षा करते हैं। ग्रामीण जनों का विश्वास है कि इन्हें समय-समय पर पूजने से गाँव पर कभी आपत्ति नहीं आती)।

(१७) पीरचोंकरा (यह अतरौली के पास में है जहाँ कि इसकी जात लगती है)।

(१८) बच्छी बहादुर (अलीगढ़ नगर में कठपुला के पास इसका थान बना हुआ है)।

(१९) बाबरौ बाबा (खैर तहसील के सैरोई गाँव में इसकी जात लगती है)।

(२०) बाबा गोरखनाथ

(२१) बाबा मदार

(२२) बाला (यह जाहरपीर का भानजा बताया जाता है)।

(२३) बीरदेव

(२४ बीर मुहम्मद्

(२५) बूढ़ौ बाबू (यह विवाह के समय पुजता है। सौमना तथा द्यौरऊ के पास इसकी जात भी लगती है)।

(२६) भज्जू बाबा (यह चमारों में पुजता है। इसका स्थान बागड़ देश माना जाता है)।

(२७) भुमियाँ (बच्चों और पशुओं का कष्ट और अनिष्ट हर लेते हैं। अनिष्ट के लिए जनपदीय शब्द **खोर** या **दफेला** है। **दई-देवता** (सं० देवी देवता) को प्रतिनिधि के रूप में पूजनेवाला व्यक्ति **दौधरा** कहाता है)।

(२८) भैरौं बाबा

(२९) भैरौं मतबारौ (इसे विशेषतः बैन बजानेवाले भोपा पूजते हैं)।

(३०) महकासुर (तहसील अतरौली के गँगीरी स्थान में इसकी जात लगती है)।

(३१) मालिकपीर

(३२) मीयाँ (लोधा आदि जातियों में पुजता है)।

(३३) लाँगुरा (नगरकोटवाली माता के साथ इसको भी पूजा होती है।)

(३४) लालमन (तहसील कोल में चमार, गड़रियों आदि में पुजता है)।

(आ) देवियों के नाम—

(१) अजायतपुरबारी (अजायतपुर एक गाँव का नाम है)।

(२) करनबासबारी (जिला बुलन्दशहर में गंगा नदी के किनारे करनवास एक गाँव है)।

(३) करौलीबारी माता (करौली गाँव में इसका मन्दिर है और जात लगती है)।

(४) कल्यानी

(५) कसाइन

(६) कसूमी माता

(७) कामरूबारी (सं० कामरूप>कामरू)

(८) काली

(९) केला देवी

(१०) कौड़ियाबारी (तहसील सिकन्दराराऊ में कौड़ियागंज एक स्थान है)।

(११) खादरवारी या हकली देवी।
(१२) गुरगार्य की माता (गुड़-गाँव पंजाब में एक स्थान है)।
(१३) गैड़ी माता (इसे बंजारे पूजते हैं)।
(१४) गोरखटीलेबारी (इसका मन्दिर बागड़ में है)।
(१५) चंडी (इसे विशेषतः स्याने पूजते हैं)।
(१६) चाँमड़ (सं० चामुण्डा = शबर-निषाद-संस्कृति की एक देवी—(डा० वासुदेव शरण अग्रवाल)
(१७) चिन्तपूरनी (नगरकोट की एक देवी)।
(१८) चुनिया कुम्हारी (इसे जादूगर पूजते हैं)।
(१९) चौंड़ेरेबारी माता (चौड़ेरा एक गाँव है)।
(२०) जलफदा देवी
(२१) जालपा
(२२) जैन्ती माता
(२३) झँगीराबादबारी (बुलन्दशहर जिले में जहाँगीराबाद एक स्थान है जहाँ इस माता की जात लगती है)।
(२४) दयाकुंडबारी
(२५) दुर्गा देबी
(२६) धौरागढ़बारी
(२७) नगरकोटवारी या भवानी।
(२८) नदायेबारी
(२९) नयेबासबारी
(३०) नरीसैंभरीबारी
(३१) नौना चमारी
(३२) पथवारी (यह प्रसिद्ध ग्राम-देवी है)।
(३३) पवन जोगिनी (यह दुर्गा के साथ रहती है)।
(३४) पिपरौल की माता।
(३५) पैंड़ौतबारी
(३६) बराईबारी
(३७) बेलौनबारी अर्थात् बेला भवानी
(३८) भम्भो तेलिन
(३९) मंसा देबी
(४०) मसानी
(४१) रासो देबी
(४२) साँमल पिंडी
(४३) सिमावईबारी (सासनी के पास तह० हाथरस में सिमावई एक गाँव है)।
(४४) सोभा बेड़िनी (इसे स्याने पूजते हैं।
(४५) हिंगुलाजबारी।

सगुन-असुगन

§१४२१—(१) क्वार के महीने में गेहूँ, जौ आदि का बोना **बामनी** कहाता है। यदि मुहूर्त के दिन खेत को पूरी तरह बोने के लिए किसान के पास समय न हो तो वह कम से कम उस दिन खेत में ५-६ कूँड़ों में तो बुवाई कर ही देता है। उस क्रिया को **पवा लैबौ** कहते हैं। प्रायः बुद्धवार को बामनी की जाती है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"बुद्धु बामनी; सुक्कुरु लामनी ॥"

अर्थात् बुवाई बुद्धवार को और कटाई शुक्रवार को करनी चाहिए।

(२) यात्रा के समय पश्चिम दिशा को जाना सोमवार शनिवार में शुभ माना गया है।

"सौंम सनीचर पूरब काल।
पच्छिम जाइ तौ होइ निहाल ॥"

अर्थात् सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा में यात्रा की जाएगी तो मृत्यु की आशंका होगी। पश्चिम दिशा में उन दिनों की यात्रा प्रसन्न करेगी।

(३) यात्रा करनेवाले को मार्ग में पहले हिरन मिले, दूसरी बार गीदड़ मिले फिर भैंस पर चढ़ा हुआ ग्वाला आ रहा हो और तीन कोस की दूरी तक तेली मिल जाये तो समझ लो कि उसके सिर पर मौत खेल रही है—

"एकै हिरनां दूजे स्यार। भैंस चढ़न्तौ आवै ग्वार ॥
तीन कोस पै मिलजाइ तेली। मानौ मौति सीस पै खेली ॥"

(४) सगुन बनने के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—

"तौ तू सगुन जानि लै समनक, घोड़ा की असबारी।
आखतधरी भरी गागरि होइ, पूत संग महतारी ॥
सजी फौज राजा की आवै, सूर-बीर छबि छाये।
करि सिङ्गार पतुरिया आवै, नीके सगुन बताये ॥"

अर्थात् यात्री के आगे यात्रा के समय **गैल** (रास्ते) में यदि सामने से **घोड़े** (द्रविड़०[1] घोटक; सं० घोटक>घोड़ा) पर चढ़ा हुआ कोई पुरुष आ रहा हो, बिना टूटे चावलों या जौओं सहित पानी से भरा हुआ घड़ा आ रहा हो। पुत्र सहित कोई स्त्री आती हुई दिखाई दे। राजा की सेना सजी हुई आ रही हो और उसके शूरवीर हर्षोल्लास में हों। कोई बेड़नी या वेश्या शृङ्गार किये हुए आती हुई दिखाई दे तो समझना चाहिए कि **गैलाऊ** (रास्तागीर) का सगुन बन गया। उसकी यात्रा सफल होगी।

(५) छींक यदि पीठ-पीछे हो तो अच्छी मानी जाती है। दो छींकें एक साथ हों तो शुभ हैं—

"एक नाक द्वै छींक। काम बनैं पैंतीस ॥"—(त० कोल में)

(६) **बिलइआ** अर्थात् **बिल्ली** (द्रविड़ भाषा में पिल्ली; विडाली) **गैल** (रास्ता) काट दे तो यात्री का सगुन बिगड़ जाता है [द्रविड़० विडाली > सं० विडाली] :—

"बिलइआ की काट। नाँठि कौ ठाठ।"

न्यौरा (सं० नकुल) और **स्याम चिरइआ** (श्यामा चिड़िया) के दर्शन शुभ माने जाते हैं। इनसे सगुन बन जाता है।

---

[1] कैल्डवेल के मतानुसार 'अटवी' आदि टवर्गीय ध्वनियोंवाले शब्द द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत में आये हैं।

परिशिष्ट

(अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के व्याकरण-संकेत)

परिशिष्ट

अलीगढ़ जनपद की कोल तहसील की बोली के कुछ परसर्ग—

§१४२२—**नैं**—यह परसर्ग प्रायः कर्ताकारकीय पद तथा कर्मकारकीय पद के उपरांत प्रयुक्त होता है। जैसे—

(१) **छोरा नैं**[1] पानी पी लयौ। (लड़के ने पानी पी लिया)।

(२) तू **पौहेन् नैं** हाँकि। (तू पशुओं को हाँक)। [अप० चरि (हेम० व्या० ८।४।३८७।१) >ब्रज० चरि = तू चर]।

पूर्वी हिन्दी की बोलियों में इस परसर्ग का प्रयोग नहीं मिलता। पूर्वी पंजाबी में कर्ताकारकीय पद के साथ इसके दर्शन होते हैं। अलमोड़े की कमायूनी बोली में इसका रूप 'ले' (कर्ता कारक तथा करण कारक में) होता है। मारवाड़ी तथा रोहतक जिले की हरियानी बोली में **नैं** का प्रयोग कर्मकारक में होता है। गुजराती में **ने** कर्म और संप्रदान कारक में आता है। कर्ता के साथ मराठी में **नी** परसर्ग मिलता है; किन्तु गुजराती का **नी** सम्बन्धद्योतक है।

तहसील कोल की बोली के **नैं** परसर्ग का विकास इस प्रकार संभव है—(सं० लग्य > प्रा० लग्गिओ > लग्गि > लागि, लइ > ले > ने, नैं)।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी 'ने' का विकास सं० कर्ण से और ट्रम्प महोदय संस्कृत की विभक्ति-प्रत्यय 'एन' से मानते हैं। (पं० किशोरीदास बाजपेयी का मत भी ट्रम्प के मत से मिलता-जुलता हुआ है—इन > नइ > ने)।

§१४२३—**ऐ**—यह परसर्ग कोल की बोली में कर्मकारकीय पद के साथ प्रयुक्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्रजभाषा की 'हिं' विभक्ति का विकसित रूप है। तहसील कोल में **ऐ** के स्थान पर **इ** भी बोला जाता है; जैसे तू **रामइ** मारि अथवा तू **राम ऐ** मारि अथवा तू **राम ई ऐ** मारि। (तू राम ही को मार)। [सं० स्मिन् > म्हि > हि > इ, ऐ।]

§१४२४—**कूँ**—इसका प्रयोग कर्मकारक में होता है और कभी सम्प्रदान में भी। सूरसागर में इसका रूप '**कौं**' मिलता है। उदा० तुम् **छोरा कूँ** पढ़ाओ—(तह० कोल)।

'**कूँ**' के समानांतर पूर्वी पंजाबी में **नूँ**[2]; मारवाड़ी में **नैं** तथा **नूँ**; हरियानी में **नैं**; मराठी में **ला** (बहु वचन में **ना**) और गुजराती में **नैं** मिलता है। पुरानी बैसवाड़ी में इसका रूप **कुँ** या **कु** था। बुलन्दशहर जिले की बरन तहसील में इसका रूप **कू** हो जाता है और त० बागपत की कौरवी में **कूँ** [सं० कक्षं > कक्खं > काखं > काहं > कहँ, कहुँ > कउँ > **कौं** > **कूँ**]।

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में 'को' परसर्ग है। यही 'को' ब्रज के '**कूँ**' का स्थानापन्न है। पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी 'को' का विकास प्रा० आहं से मानते हैं। उनके मतानुसार 'सों' का विकास प्रा० सुन्तों से संभव है।

---

[1] दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कौं।—सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०।२८७

[2] बीम्स ने 'नुँ' लिखा है (बीम्स, कंपरेटिव ग्रामर०, वौल्यूम दूसरा, १६७२ ई०, पृ०२५३)

§१४२५—**के लैँ**—संप्रदान के अर्थ में ये दो परसर्ग साथ-साथ भी आते हैं। जैसे गु धन् **के लैँ** बड़ी म्हैन्ति कर्त्वै। (वह धन के लिए बड़ी महनत करता है)।

इसके समानान्तर रौहतक जिले की हरियानी में **की लियाँ** और पूर्वी पंजाबी में **दे वास्ते** हैं। इसके स्थान पर गुजराती में **माटे** और मराठी में **साठीं** या **करिताँ** का प्रयोग होता है।

तहसील कोल में **के लैँ** के स्थान पर **के ताईं** का प्रयोग भी होता है। **ताईं** को जल्दी में **तईं** भी कह देते हैं। केलॉग ने **तईं** की व्युत्पत्ति सं० 'स्थाने[1]' से मानी है। बहुत संभव है कि **के लैँ** का विकास सं० 'कृते लब्धे' से हुआ हो। त० कोल में—"मैंनैं हरी **के लैँ** काम् कर्यौ ऐ।" (मैंने हरी के लिए काम किया है)।

§१४२६—**ते**—इस परसर्ग का प्रयोग कोल तहसील की बोली में करण तथा अपादान कारकों के साथ प्रायः होता है। जैसे—

(१) छोरिन् नैं स्याँप ऐ **आँखिन् ते** देखौ ऐ (लड़कियों ने साँप को आँखों से देखा है)।

(२) आम् के **पेड़ ते** सब पत्ता झरि परे (आम के पेड़ से सब पत्ते झड़ पड़े)। अपादान के 'ते' के समानान्तर हरियानी में **तै** और पूर्वी पंजाबी में **तौं** का प्रयोग होता है, किन्तु करण-कारकीय पद के साथ पंजाबी में **नाल** परसर्ग आता है। अपादान कारक के साथ मारवाड़ी में **सूँ**, गुजराती में **थी** और मराठी में **हून, हूण** या **ऊन** परसर्ग आते हैं। करण कारक में भी गुजराती में **थी** ही होता है (सं० तरिते>प्रा० तरिए>तइए>**ते**)। सं० तस् से भी **ते** का विकास सम्भव है)। सूरसागर में प्रायः '**तैं**' का प्रयोग मिलता है। तुलनात्मक रूप में भी '**ते**' का प्रयोग होता है—"जि भींति पेड़ **ते** नीची ऐ" (यह दीवाल पेड़ से नीची है)।

§१४२७—**कौ**—इसका प्रयोग प्रायः भेदक[2] प्रत्यय के रूप में होता है। जैसे—

(१) **छोरा की** पट्टी याँ धरी ऐ (लड़के की पट्टी यहाँ रक्खी है)। लेकिन "छोरा **के** समुईं पट्टी धरी ऐ" में **के** परसर्ग है।

(२) **छोरा कौ** बस्ता याँ धरौ ऐ (लड़के का बस्ता यहाँ रक्खा है)। लेकिन "छोरा **के** आगैं बस्ता धरौ ऐ।" में **के** परसर्ग है।

कौ, की, के के समानान्तर पूर्वी पंजाबी में **दा, दी, दीआँ, दे,** गुजराती में **नो, नी, ना** और मराठी में **चा, ची, चे** का प्रयोग होता है। (सं० कृतः>कओ>को, **कौ**; पुलिंग बहुबचन में **के**, स्त्रीलिंग एक बचन-बहुबचन में **की**)। पूर्वी हिन्दी की छत्तीसगढ़ी बोली में स्त्रीलिंग-पुंलिंग रूप 'के' ही रहता है; जैसे—राजा **के** बेटा; राजा **के** बेटी। अलीगढ़ क्षेत्र की बोली में राजा **कौ** बेटा, राजा **की** बेटी।

§१४२८—**मैं (में)**—इसका प्रयोग तहसील कोल की बोली में अधिकरण कारकीय पद के साथ मिलता है। जैसे—(१) हम् सब् जने **घर मैं** घुसिङ्गे (हम सब लोग घर में घुसेंगे)।

'**मैं**' के समानान्तर पूर्वी पंजाबी में **विच**, गुजराती में **माँ** और मराठी में **मध्ये** तथा **आँत्** का प्रयोग मिलता है। त० बागपत की कौरवी में इसके लिए **मा** रूप है। (सं० मध्ये>प्रा० मज्झे, मज्झि>माँझि>माहिं>महिं>मइँ>**मैं**)।

कैं[3] (के यहाँ)—गोपाल के **बाप कैं**[3] चोरी है गई। (गोपाल के बाप के चोरी हो गई) **चैंटीकैं** ऊ जीउ ऐ (चींटी के भी जीव है अथवा चींटी में भी जीव है)।

---

[1] सं० स्थाने=हिं० ताईं, तईं (बीम्स, कंपरेटिव ग्रामर, सन् १८७५, पृ० २१८)

[2] देखिए पं० किशोरीदास बाजपेयी, हिन्दी शब्दानुशासन, सं० २०१४, पृ० ३०२

[3] पं० किशोरीदास बाजपेयी के अनुसार यह सम्बन्ध-विभक्ति है।

§१४२६—**पै**—इसका प्रयोग प्रायः अधिकरण के अर्थ में मिलता है। कभी-कभी कर्ता और कर्म के अर्थ में भी किया जाता है। जैसे—(१) कउआ **पेड़् पै** बैठौ ऐ (कउआ पेड़ पर बैठा है)।

(२) हरी रोजु ग्वाके **घर् पै** जात्वै परि गु मिल्तु ई ना एँ (हरी रोज उसके घर पर जाता है परन्तु वह मिलता ही नहीं है)।

(३) अब् **मोपै** नाइँ चलौ जातु (अब मुझसे नहीं चला जाता)। "काँटौ लागौ रे देवरिया **मौपै** गैल् चलौ नाइँ जाइ।" (एक लोक गीत से)। 'पै' के समानान्तर पूर्वी पंजाबी में **उत्ते**; गुजराती में **पर** और मराठी में **वर** का प्रयोग मिलता है [सं० उपरि > प्रा० परि > पर > **पै**]। सं० 'प्रति' से भी '**पै**' की व्युत्पत्ति सम्भव है—सं० प्रति > प्रा० पइ > पै। (सं० 'सः गृहं प्रति आगतः)।' सूर ने लिखा भी है—"जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिरि **जहाज पै** आवै।"—सूरसागर। "**कृपासिन्धु पै** केवट आयौ"—(सूरसागर ६।४१)।]

प्राकृत में 'अग्गम्मि' (आग में), घरम्मि (घर में) आदि रूप होते हैं। पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी इस 'म्मि' से '**में**' की व्युत्पत्ति मानते हैं।

§१४३०—तहसील कोल की बोली और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों के परसर्ग[1]

	तह० कोल,	**तह० गुन्नौर** (बदायूँ),	**तह० जलेसर** (एटा),	**तह० बरन** (बुलंदशहर)
कर्ता	**नैं**	नैं	नैं	नैं
कर्म	**कूँ**	कूँ	कूँ	कू[2]
करण	**ते**	सैं	तैं	सू
संप्रदान	**कूँ**	कूँ	कूँ	कू
अपादान	**ते**	सैं	तैं	सू
सम्बन्ध	**कौ**	को	कौ	कौ
अधिकरण	**मैं**	मैं	मैं	मैं
"	**पै**	पै	पै	पै

तहसील कोल की बोली के कुछ सर्वनाम पदों की व्युत्पत्तियाँ—

§१४३१—**पुरुषवाचक सर्वनाम**—हूँ (उत्तम पुरुष, एक वचन)।

[सं० अहं > अप० हमुं > हौं, हूँ]। **मैं** (उत्तम पुरुष, एक वचन) [सं० मया > प्रा० मए > अप० मइँ > **मैं**। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि 'मैं' में जो अनुनासिकता है, उसका कारण 'एन' है अर्थात् सं० मया + एन से **मैं** का विकास हुआ है। 'मया' के साथ 'एन' की कल्पना असंगत-सी प्रतीत होती है। 'मइँ' की अनुनासिक 'इँ' ध्वनि ने ही 'मैं' को प्रभावित

---

[1] हिन्दी तथा ब्रजभाषा में परसर्ग विश्लिष्टावस्था में हैं। ऐसी प्रवृत्ति आर्य परिवार की भाषाओं में फारसी के अन्तर्गत भी मिलती है। 'उसको' के स्थान पर कोल तहसील में 'ग्वा कूँ' बोला जाता है। इसके लिए फारसी 'ऊ रा' है; अर्थात् फा० रा, हिं० को।

[2] बीम्स ने 'कू' के सम्बन्ध में लिखा है कि यह दक्षिणी भारत की विभ्रष्ट हिन्दुस्तानी—बोली में भी मिलता है—(बीम्स, कंपरेटिव ग्रमर, वोल्यूम II, १८७२ ई०, पृ० २२८)

किया है। 'ने' के स्थान पर 'नैं' उच्चारण होता है; इसमें भी 'न्' की अनुनासिकता ही कारण है।] (सं० मया > अप० मइँ (हेम० व्याक० ८।४।४७७) > मैं)।

(२ **पुरुषवाचक सर्वनाम—हम** (उत्तम पुरुष, बहु वचन)।

[सं० अस्म > प्रा० अम्ह*[1] > हम्म* > **हम**। सं० अस्म + कर > अप० अम्हार > हमार, हमारा, **हमारौ**। सं० मम + कार्य > ममकेर ममेर + आ > मेरा, **मेरौ**। सं० मम + स्मिन् > मोहिं > **मोइ**। सं० मम + कर्त्तं > **मोकूँ**। अप० अम्हेंहिं (हेम० व्या० ८।४।३७१।१) > **हमैं**।

(३) **पुरुषवाचक सर्वनाम—तू** (मध्यम पुरुष, एक वचन)।

[सं० त्वम् > प्रा० तुमं—(पिशल, प्रा० भा० व्याकरण §४२०) > अप० तुहुँ [हेम० व्या० ८।४।३६८ (१)] > तूँ, **तू**। सं० तव + कर्त्तं > **तोकूँ**। सं० युष्म + कार्य > तुम्हारा; तुम्हारौ, **त्यारौ**]।

(४) **पुरुषवाचक सर्वनाम—तुम** (मध्यम पुरुष, बहु वचन)।

[सम्भावित तुष्मे* > प्रा० तुम्हे पिशल, प्रा० भा० व्याकरण §४२२ > तुम्हें। युष्म > प्रा० तुम्ह > तुम]।

§१४३२—(१) **निश्चय वाचक सर्वनाम—जि, गि** (निकटतावाची, एक वचन)।

[सं० एषः > प्र० एसो > अप० एहो > यह > यै > यि > जि > गि। ज् ध्वनि ग में बदलती है जैसे जैंती > गैंती]।

(२) **निश्चयवाचक सर्वनाम—बु, गु** (दूरबाची, एक बचन)।

[सं० असौ > प्रा० असो > अप० अहो > ओह > वह > वो > बु > बु। 'गि' के सादृश्य से 'बु' भी '**गु**' हो गया है]।

§१४३३—**अनिश्चयवाचक सर्वनाम—कोई** (प्राणिवाची), कछू (अप्राणिवाची)।

[सं० कोऽपि > प्रा० कोवि > कोइ > **कोई**]।

[सं० कश्चित् > प्रा० संभावित—कच्छु > **कछू**]।

§१४३४—**सम्बन्ध वाचक सर्वनाम— जो, सो, जिन, तिन**।

[सं० यः > प्रा० जो > **जो**। सं० सः > प्रा० सको > अप० सओ > **सो**]।

[सं० येषाम् > जाणं > **जिन**। सं० तेषाम् > ताणं > **तिन**]।

§१४३५—**निजवाचक सर्वनाम—आप, आपस, अपनौ**।

[सं० आत्मन् > अप्पा > आपा > **आप**। सं० आत्मस्य > प्रा० आपस्स > **आपस**। सं० आत्मनक > प्रा० अप्पणअ > अपणा, अपना, **अपनौ**]।

§१४३६—**प्रश्नवाचक सर्वनाम—को, का, किन**।

[सं० कः > **को**। सं० केषां > काणं > **किन**]।

---

[1] * इस पुष्प चिह्न से चिह्नित शब्द अनुमानित हैं।

§१४३७—अलीगढ़ की बोली और अन्य कुछ प्रान्तीय भाषाओं के वचनों में अविकारी रूप

अलीगढ़ की बोली	पंजाबी	मारवाड़ी	गुजराती	मराठी
एक व० — बहु व०	एक व० — बहु व०	एक व० — बहु व०	एक व० — बहु व०	एक व० — बहु व०
(१) छोरा[1] — छोरा	मुंडा — मुंडे	छोरो — छोरा	छोकरो — छोकराओ; छोकरा	मुलगा — मुलगे
(२) छोरी — छोरी	कुड़ी — कुड़ीआँ	छोरी — छोर्‌याँ	छोकरी — छोकरिओ	मुलगी; मुली — मुली
पद प्रातिपदिक विभक्ति-प्रत्यय	पद प्रातिपदिक विभक्ति-प्रत्यय	पद प्रातिपदिक विभक्ति-प्रत्यय	पद प्रातिपदिक विभक्ति-प्रत्यय	पद प्रातिपदिक विभक्ति-प्रत्यय
छोरा = छोर् + /—आ/	मुंडा = मुंड् + /—आ/	छोरो = छोर् + /—ओ/	छोकरो = छोकर् + /—ओ/	मुलगा = मुलग् + /—आ/
छोरी = छोर् + /—ई/	कुड़ी = कुड़् + /—ई/	छोरी = छोर् + /—ई/	छोकरी = छोकर् + /—ई/	मुलगी = मुलग् + /—ई/
[अविकारी रूप बहु वचन में 'छोरा' 'छोरी' ही रहता है। किन्तु 'छोरी' का बहु वचन में विकारी रूप[2] 'छोरिन्' हो जाता है और 'छोरा' का 'छोरन्'।]	मुंडे = मुंड् + /—ए/	छोरा = छोर् + /—आ/	छोकराओ } = छोकर् + /—आओ/	मुलगे = मुलग् + /—ए/
	कुड़ीआँ = कुड़् + /—ईआँ/	छोर्‌याँ = छोर् + /—याँ/	छोकरा } = छोकर् + /—आ/	मुली = मुल् + /—ई/[3]
			छोकरिओ = छोकर् + /—इओ/	

[1] अलीगढ़ की बोली में पुंलिंग एक वचन संज्ञा शब्द अकारान्त भी हैं और औकारान्त भी जैसे छोरा, घोड़ा, भैंसा आदि और माथौ, सुहागौ, पामरौ आदि। ये आकारान्त पुंलिंग एक वचन संज्ञाएँ खड़ी बोली से प्रभावित हैं और खड़ी बोली पर पंजाबी का प्रभाव है।

[2] तिर्यक् रूप। (विकारी रूप)।

[3] जिस प्रकार संस्कृत के पुंलिंग शब्द आत्मन् और अग्नि हिन्दी में आकर स्त्रीलिंग हो गये हैं, उसी प्रकार अरबी के पुंलिंग शब्द ईजाद उम्र, औलाद, क़तार, क़द्र कै, किताब खता, मशाल, गौज सुबह, हद आदि में आकर स्त्रीलिंग होगये हैं।

§१४३८—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के कुछ शब्दों का रूपगत लिंगात्मक तथा अर्थात्मक अध्ययन—

पुंलिंग शब्द	अर्थ	स्त्रीलिंग शब्द	अर्थ
(१) **अँगूठा**	हाथ या पाँव में उँगलियों के पास का एक अंग विशेष।	(१) **अँगूठी**	हाथ की उँगलियों में पहना-जानेवाला एक लघु आभूषण।
(२) **आम**	बड़ा तथा पका हुआ एक फल।	(२) **आमी** या **अमिया**	कच्चा तथा छोटा एक फल।
(३) **कुंदा**	एक गोल वस्तु जिसमें संकल और ताला लगता है।	(३) **कुंदो**	नये बुने हुए कपड़े की पिटाई विशेष ताकि वह गफ हो जाय।
(४) **छातौ**	एक वस्तु जिसके द्वारा वर्षा, धूप आदि से रक्षा की जाती है।	(४) **छाती**	स्त्रियों का सीना या उरोज (स्तन)।
(५) **डोल**	धातु का पात्र-विशेष जो पानी के काम में आता है।	(५) **डोली**	स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे दो कहार कंधों पर उठाकर चलते हैं।
(६) **डोरा**	पतला और छोटा सूत्र।	(६) **डोरी**	मोटी और लम्बी सूत्रिका।

§१४३९—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के कुछ क्रियापदों का रूपात्मक तथा अर्थात्मक अध्ययन—

(१) **पढ़ौ; पढ़ियौ**—(आज्ञा अर्थ में भविष्यत् काल द्योतक)—तुम् जा किताब ऐ **पढ़ौ**; तुम् जा किताब ऐ पढ़ियौ (=तुम इस किताब को पढ़ो; तुम इस किताब को पढ़ना)।

पढ़ौ—(निश्चयार्थ में भूतकाल द्योतक)—हरी नैं पाठु **पढ़ौ या पढ़्यौ**। (=हरी ने पाठ पढ़ा)।

पढ़ो—(निश्चयार्थ में अतिभूतकाल द्योतक)—हरी नैं पाठु **पढ़ो** (=हरी ने पाठ पढ़ा था)।

(२) **जाइगौ**[१] (कर्तृ वाच्य में भविष्यत् काल द्योतक)—गोपालु अपूने घर् **जाइगौ** (=गोपाल अपने घर जाएगा)।

जाइगौ (कर्मवाच्य में सहायक क्रिया के रूप में)—मं.पै गु पाठु न पढ़ौ **जाइगौ** (=मुझ पर वह पाठ नहीं पढ़ा जाएगा)।

जाइगौ (भाववाच्य में सहायक क्रिया के रूप में)—छोरा पै न चलौ **जाइगौ** (=लड़के से न चला जाएगा)।

(३) **ऐ**, (रूप से सामान्य वर्तमान, किन्तु अर्थ से भविष्यत् भी)—कल्लि छुट्टी **ऐ** (=कल छुट्टी है अर्थात् कल छुट्टी होगी)।

(४) **चल्लौ ऊँ** (रूप से अपूर्ण वर्तमान, किन्तु अर्थ से भविष्यत् भी)—मैं अब **ई** त्यारे संग **चल्लौ ऊँ** (=मैं अभी तुम्हारे साथ चल रहा हूँ अर्थात् मैं अभी तुम्हारे साथ चलूँगा)।

(५) **गयौ** (रूप से भूत, किन्तु अर्थ से भविष्यत् भी)—जौ मैं कल्लि दिल्ली **गयौ**, तौ तुमकूँ ऊँ संग लै जांगो (=यदि मैं कल दिल्ली गया तो तुमको भी साथ ले जाऊँगा)।[२]

---

[१] अलीगढ़ की बोली में 'गौ' भविष्यत् काल का भी द्योतक है और भूतकाल का भी जैसे 'मोहन चलौ गौ' (=मोहन चला गया भूतकाल)। इसके अतिरिक्त 'गौ' वर्तमान काल में सहायक क्रिया के रूप में भी आता है जैसे 'मोपै पामरौ हैगो' (=मुझपर फावड़ा है।)

[२] "आजु पाँच तारीख ऐ" में 'पाँच' रूप की दृष्टि से गणवाची संख्याद्योतक विशेषण है, किंतु अर्थ की दृष्टि से यह क्रमवाची संख्याद्योतक विशेषण है (पाँच=पाँचवीं)।

कर्मवाच्य का स्वरूप

(६) **कटिरौ ऐ**[1] (अपूर्ण वर्तमान, स्वतः कर्मवाच्य)—आम कौ पेड़ **कटिरौ ऐ** (=आम का पेड़ कट रहा है)।

(७) **काटौ जाइरौ ऐ** (अपूर्ण वर्तमान, कृत कर्मवाच्य)—आम कौ पेड़ **काटौ जाइरौ ऐ** (=आम का पेड़ काटा जा रहा है)।

§१४४०—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के समस्त पदों और व्यस्त पदों में अर्थ-भेद—

समस्त पद	व्यस्त पद
(१) **मूँगफरी** (एक मामूली-सी सूखी मेवा)	(१) मूँग की फरी अथवा मूँग और फरी।
(२) **गुलाब जामुन** (एक मिठाई)	(२) गुलाब और जामुन अथवा गुलाब के रंग जैसी जामुन।
(३) **हातीपाउँ** (एक रोग)	(३) हाती कौ सौ पाउँ अथवा हाती कौ पाउँ।
(४) **देवमन** (घोड़े की एक किस्म)	(४) देव को मन (=मणि) अथवा देव और मन
(५) **जरौबुभौ** (नाराज अथवा द्वेषी)	(५) जरौ भयौ और बुभौ भयौ
(६) **कानसराई** (एक कीड़ा)	(६) कान की सराई अर्थात् कान में परनबारी सराई।

§१४४१—उच्चारण भेद से शब्दार्थ-भेद (अलीगढ़ क्षेत्र की बोली में)—

अखंड उच्चारण	खंडशः उच्चारण
(१) **बरीपुरी** (विवाह की एक रस्म)	(१) **बरी, पुरी** (बरी=एक पेड़, पुरी=बस्ती)
(२) **बरसौना** (एक प्रकार का छोटा छबड़ा जिससे खलिहान में अनाज बरसाते हैं)।	(२) **बरसौ, ना** (=बरसो न)
(३) **बइअरबानी** (स्त्री)	(३) **बइअर, बानी** (=स्त्री, बोली)
(४) **हैगयौ** (हो गया, हुआ) **हैगौ**[2]	(४) **है, गयौ** (उपस्थित है, गया)
(५) **हरबागौ** (हल के बैलों की रस्सी)	(५) **हर, बागौ** (प्रत्येक बागा। पुरुष के शरीर पर पहने जानेवाले विशेष पाँच वस्त्र **बागौ** कहाते हैं)।

---

[1] डा० हरदेव बाहरी ने ऐसे प्रयोगों को Active use of Passive action बताया है Hindi-Semantics (page 367) कुछ वैयाकरण इसे कर्तृवाच्य भी मानते हैं अर्थात् 'आम कौ पेड़' कर्ता है। 'कटना' कुटना, पिटना अकर्मक क्रियाएँ हैं। इनकी धातुओं के उपधा स्वर को दीर्घ करने से सकर्मक क्रियाएँ बन जाती हैं जैसे काट्, कूट्, पीट् धातुएँ।

[2] जिस प्रकार अलीगढ़ की बोली में भूतकालीन 'य' की अन्तर्भुक्ति होकर 'हैगौ' रूप बनजाता है, उसी प्रकार त० बागपत की कौरवी में 'खाएगा' का खागा, और 'करता है' का करै हो जाता है।

§१४४२—**अलीगढ़ की बोली के कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों की द्विरुक्तियाँ तथा अर्थ-भेद—**

(१) **पट्** , **पट्पट्** , **पटापट्**

हरी नैं मौहना कूँ **पट्** मार् दौ।
जि **पट्पट्** कहाँ है रही ऐ ?
घोड़ा सड़क् पै **पटापट्** कर्तौ दौरौ चलौ गौ।
मामले ऐ जल्दी तै करि; चित्त करि, कै **पट्ट** करि।

(२) **टन्** , **टन्टन्** , **टनाटन्**

घड़ी नैं **टन्** करी ऐ।
हमनैं **टन्टन्** सुनी ऐँ। [यहाँ **ऐं** में अनुनासिकता पूर्ववर्ती '**नी**' के कारण है]।
घंटा **टनाटन्** बजतु रह्यौ।

शब्द		अर्थ
(१) पट्पट्	=	शीघ्रता द्योतक ध्वन्यात्मक द्विरुक्ति।
(२) पटापट्[1]	=	विलम्बित ध्वन्यात्मक द्विरुक्ति।[1]
(३) टन्टन्	=	द्रुतध्वनि-द्विरुक्ति।
(४) टनाटन्[2]	=	विलम्बित ध्वनि-द्विरुक्ति।[2]

§१४४३—**अलीगढ़ की बोली के कुछ क्रियापदों में निषेधात्मक क्रियाविशेषणों के योग से परिवर्तन—**

(१) मुरारी कौ छोरा याँ **हत्वै**।	(=मुरारी का लड़का यहाँ है)।
(२) मुरारी कौ छोरा याँ नाइँ[3] **हतु**।	(=मुरारी का लड़का यहाँ नहीं है)।
(३) गि छोरी रोजु **पढ़त्यै**।	(=यह लड़की रोज पढ़ती है)।
(४) गि छोरी रोजु नाइँ[4] **पढ़ति**।	(=यह लड़की रोज नहीं पढ़ती)।
(५) छोरा मलूकु **ऐ**।	(=लड़का अच्छा है)।
(६) छोरा मलूकु ना **ऐं**।	(=लड़का अच्छा नहीं है)।
(७) छोरी अच्छी **ऐ**।	(=लड़की अच्छी है)।
(८) छोरी नाइँ[5] अच्छी।	(=लड़की अच्छी नहीं है)।
(९) कमला कैं छोरा **भयौ ऐ**[6]।	(=कमला के लड़का हुआ है)।
(१०) कमला कैं छोरा नाइँ[7] **भयौ**।	(=कमला के लड़का नहीं हुआ)।

§१४४४—**अलीगढ़ की बोली के कुछ वाक्यों के अर्थों में मूर्तीकरण तथा प्राणीकरण—**

---

[1], [2] यह अर्थ-भेद प्रथम शब्द की आकारान्तताके कारण है। अथवा कहिए कि समस्त पद की मध्यवर्ती 'आ' ध्वनि के कारण है।

[3], [4] [5] नाइँ <नाहिं<सं: नहि = नहीं।

[6], [7] भयौ ऐ (भयौ है) पूर्ण वर्तमान काल है। पूर्ण वर्तमान 'गयौ ऐ' का कौरवी बोली में जारया है होता है। अलीगढ़ की कोल तहसील में करत्बै; मेरठ की बागपत तहसील में करै। त० कोल में करतो, त० बागपत में करै हागा (=करता था)। निषेधात्मक क्रिया-विशेषण 'नाइँ' के योग से सहायक क्रिया लुप्त हो जाती है।

(१) अमूर्त का मूर्तीकरण--

(अ) मोइ बड़ी भारी चिन्ता ई, अब जीउ हरौ है गयौ (=मुझे बड़ी भारी चिन्ता थी, अब जी हरा हो गया)।

(आ) देखौ दिन कैसौ फूल्यौ ऐ ? (=देखो, दिन कैसा फूला है !)

(इ) जाकी बोली नैंक ठाड़ी है (=इसकी बोली जरा खड़ी है)।

(ई) बनी बात सब बिगरि गई; मोइ का मालिम् ई कै मौति ग्वाके समुई ई ठाड़ी ऐ (=बनी बात सब बिगड़ गई, मुझे क्या मालूम थी कि मृत्यु उसके सामने ही खड़ी है)।

(२) निष्प्राण का प्राणीकरण--

(अ) गामु जौरैं आइगो (=गाँव निकट आ गया)।

(आ) सड़क् समियाँ राति चली ऐ (=सड़क सारी रात चली है)।

(इ) मैंनैं तब् दिमाकु दौरायौ (=मैंने तब दिमाग दौड़ाया)।

(ई) सूज्जु निकर्यौ और् किरन् फैंकँल् लग्यौ (=सूरज निकला और किरणें फैंकने लगा)।

(उ) मोपै जादै नाइँ बोलौ जातु, कल्लि ते अवाज् बैठि गई ऐ (=मुझसे अधिक नहीं बोला जाता; कल से आवाज़ बैठ गई है)।

§१४४५—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली की कुछ विधेयात्मक क्रियाएँ—

(१) कर्ता से प्रभावित[1]—(अ) तू घर जइयो (=तू घर जाना)।

(आ) तुम घर जइयौ (=तुम घर जाना)।

(इ) हरी किताब पढ़रबै (=हरी किताब पढ़ता है)।

(ई) कमला किताब पढ़त्यै (=कमला किताब पढ़ती है)।

(उ) छोरा किताब पढ़तएँ (=लड़के किताब पढ़ते हैं)।

(ऊ) छोरी किताब पढ़रयैं (=लड़कियाँ किताब पढ़ती हैं ।

(२) मुख्य कर्म से प्रभावित[2]—(अ) छोरा नैं रोटी खाई (=लड़के ने रोटी खाई)।

(आ) छोरा नैं अमरूद खायौ (=लड़के ने अमरूद खाया)।

(इ) हरी नैं गोपाल कूँ कितबा पढ़ाई (=हरी ने गोपाल को किताब पढ़ाई)।

(ई) हरी नैं सीता कूँ किताब पढ़ाईं (=हरी ने सीता को किताबें पढ़ाईं)।

(उ) सीता नैं गोपाल ऐ पाठु पढ़ायौ (=सीता ने गोपाल को पाठ पढ़ाया)।

(ऊ) सीता नैं गोपाल ऐ पाठ पढ़ाये (=सीता ने गोपाल को पाठ पढ़ाये)।

---

[1] इसे कर्तृवाच्य भी कह सकते हैं। ("छोरा घर आवै; छोरी घर आवै" भी कर्तृवाच के तिङन्त प्रयोग हैं) [आवै = आता है, आती है]।

[2] इसे कर्मवाच्य भी कह सकते हैं। (देखिए केलॉग, हिन्द्री ग्रामर, §७८१)।

(३) **स्वतंत्र एकरूपिणी**[1]—(अ) हरी नैं सीता कूँ **देख्यौ** (=हरी ने सीता को देखा ।

(आ) सीता नैं हरी कूँ **देख्यौ** (=सीता ने हरी को देखा)।

(इ) हरी नैं छोरिन् कूँ **देख्यौ** (=हरी ने लड़कियों को देखा)।

(ई) छोरी नैं हरी कूँ **देख्यौ** (=लड़की ने हरी को देखा)।

(उ) छोरिन् नैं हरी कूँ **देख्यौ** (=लड़कियों ने हरी को देखा)।

(ऊ छोरिन् नैं छोरन् कूँ **देख्यौ** (=लड़कियों ने लड़कों को देखा)।

(ए) छोरी ते **चलौ**[2] नाइँ **जातु** (=लड़की से चला नहीं जाता)।

(ऐ) छोरा ते **चलौ** नाइँ **जातु** (=लड़के से चला नहीं जाता)।

(ओ) छोरा कूँ बी. ए. तक **पढ़नौ चइयै** (=लड़के को बी. ए. तक पढ़ना चाहिए)।

(औ) छोरन् कूँ बी. ए. तक **पढनौ चइयै** (=लड़कों को बी. ए तक पढ़ना चाहिए)।

§१४४६—**अलीगढ़ क्षेत्र की बोली की कुछ क्रियाओं के अर्थ**[3] **और उनके काल**—

(अ) निश्चयार्थ	**काल**
(१) गु चल्त्वै; बुचलै [=वह चलता है][4]	सामान्य वर्तमान काल
(२) गु चल्यौ ऐ (चलौ ऐ)	पूर्ण वर्तमान काल
(३) गु चल्यौ (चलौ)[2]	सामान्य भूतकाल
(४) गु चल्यो (चलो)	पूर्ण भूतकाल
(५) गु चलतो या चल्रह्यो	अपूर्ण भूतकाल
(६) गु चलैगो, कल्लि ऐंतबार जौ ऐ	सामान्य भविष्यत् काल

(इ) सम्भावनार्थ	**काल**
(१) स्याइत् ऐ पानी बरसै	भविष्यत् काल
(२) रामु करै, त्यारी जीत हैजाइ	” ”
(३) स्याइत् गु घर् गयौ होइ	भूतकाल
(४) मैं पूछि लूँ, स्याइत् गु मेरे संग चल्तु होइ	भविष्यत् काल

(उ) सन्देहार्थ	**काल**
(१) गु अब् दिल्ली ते चलौ होइगौ	भूतकाल
(२) गु गैल में चल्रह्यौ होइगो	वर्तमान काल

---

[1] क्रिया का ऐसा प्रयोग भाववाच्य भी कहा जा सकता है। इसमें क्रिया न कर्ता से प्रभावित होती है और न कर्म से।

[2] भूतकाल में चलो (त० कोल में) और चल्यौ (त० खैर में) अलीगढ़ में दोनों रूप प्रचलित हैं। विशेष—हिन्दी में भी तिङन्त क्रियाएँ हैं जो कर्ता के लिंग परिवर्तन से अपना रूप नहीं बदलती—देखिए—पं० किशोरीदास बाजपेयी कृत 'हिन्दी शब्दानुशासन'

[3] यहाँ यह अँग० 'Mood' के हिन्दी-पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

[4] यदि वाक्य 'नाइँ' के योग से निषेधात्मक बनता है तो सहायक क्रिया नहीं आती जैसे—"गु नाइँ चल्तु।"

(क) संकेतार्थ	काल
(१) जौ मोपै आजु रुपिया होतौ, तौ रौनक् करिकैं दिखाइ देतौ	वर्तमान काल
(२) जौ मैं इल्हाबाद् गयौ, तौ ङ्वाँ ते अमरूद् लाङ्गो	भविष्यत् काल

(ख) आज्ञार्थ	काल
(१) तुम मेरे सँग् चलियौ	भविष्यत् काल
(२) तू चलि और हरी ते कइ कै गु ऊ चलै	भविष्यत् काल
(३) मैं चलूँ, तू चलि और कमूला चलै, तबई रागु ठीक् बनैगौ।	भविष्यत् काल
(४) तुम बिना[1] धोबती ई न्हाऔ	भविष्यत् काल

§१४४७—अलीगढ़ की बोली के शब्द-समूह की बानगी—

तत्सम शब्द (संस्कृत शब्द)	तद्भव शब्द (संस्कृत से विकसित शब्द)	देशज शब्द[2]	विदेशी शब्द
		(१) पेड़	(१) मालिक (अ०)
(१) पिंड (सं०)	(१) नाइ (सं० नाभि)	(२) गड़बड़	(२) दुनिया (अ०)
(२) काल "	(२) दराँत (सं० दात्र)	(३) ठंडाई	(३) कुन्नस (तु० कोरनिश)
(३) काली "	(३) खन (सं० क्षण)	(४) टनटन	(४) चकल्लस (तु० चक्कलश)
(४) कील "	(४) कन (सं० कण)	(५) पड़ापड़	
(५) पाप "	(५) पतसोखा (सं० पत्रशोषक)	(६) तलावेली	(५) तमाकू (पुर्त० टोबैको)
(६) मन्दिर "	(६) ढीलौ (सं० शिथिल)	(७) डींगर	(६) नै (फा० नै)
(७) पूजा "	(७) नौन (सं० लवण)	(८) चुटइया	(७) कोट (अँग० कोट)
(८) रास "	(८) सड़ाँसी (सं० संदंशिका)	(९) सैनक	(८) मुसक (फा० मशक)
(९) लीला "	(९) नोराती (सं० नवरात्रिका)	(१०) ठोमर	(९) बटन (अँग० बटन)
(१०) संगति "	(१०) अँगरखा (सं० अंगरक्षक)		(१०) रकेब (अ० रिकाब)

§१४४८—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के वे कुछ शब्द-युग्म जो भिन्न अर्थ रखते हुए भी एक पुरखे की सन्तान हैं—

---

[1] इस वाक्य का 'बिना' यहाँ पूर्वसर्ग है और 'धोती के बिना' में 'बिना' परसर्ग है। तुलसी ने भी 'बिनु' का प्रयोग पूर्वसर्ग और परसर्ग के रूप में किया है—"बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।" "कर बिनु कर्म करै विधि नाना।"

[2] प्रस्तुत ग्रन्थ में देशज, देश्य और देशी शब्दों का प्रयोग 'देशज' के अर्थ में ही किया गया है। डा० बाबूराम जी सक्सेना के मतानुसार देशी और देशज शब्दों में अन्तर है। उनका मत है कि 'देशी' वे शब्द हैं जो हिन्दी में भारत देश की अन्य भाषाओं से लिये गये हैं जैसे गल्प, छैला, पिल्ला आदि। (डा० बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा-विज्ञान, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २०१३ वि०, पृ० १२६)।

पुरखा	सन्तान	
(१) सं० आर्द्र	(१) ओदौ	(२) आलौ
(२) सं० भद्र	(१) भद्दौ	(२) भलौ
(३) सं० ज्वलन	(१) जरनौ	(२) बरनौ
(४) सं० बलीवर्द	(१) बैल[1]	(२) बद्ध
(५) सं० पाशिका	(१) पासी	(२) फाँसी
(६) सं० कक्ष	(१) काँख	(२) कूँ
(७) सं० शून्य	(१) सुन्न	(२) सूनौ
(८) सं० कर्ण	(१) कान	(२) कनै (=पास)
(९) सं० चक्र	(१) चाक	(२) चक्का
(१०) सं० मथित	(१) मठा	(२) मथ्यौ, मथौ।

§१४४६—अपभ्रंश और अलीगढ़ की बोली के ध्वनि-समूह—

(१) अपभ्रंश ध्वनि-समूह अर्थात् शौरसेनी अपभ्रंश-ध्वनि-समूह—

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए[2], ए, ओ[3], ओ।

व्यंजन—क्, ख्, ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्।
ट्, ठ्, ड्, ड़्, ढ्, ढ़्, ण्। त्, थ्, द्, ध्, न्, न्ह्।
प्, फ्, ब्, भ्, म्, म्ह्। य्, र्, ल्, व्, व्, वँ्।
स्, ह्।

(२) अलीगढ़ की बोली का ध्वनि-समूह—

स्वर—अ̱, अ, आ, इ़, इ, ई, उ़, उ, ऊ, ए[2], ए, ऐ, ऐ, ओ[3], ओ, औ, औ।
(अनुनासिक ँ)।

व्यंजन—क्, ख्[4], ग्, घ्[5], ङ्।
च्, छ्[4], ज्, झ्[5], ञ, ज़्*[6]।
ट्, ठ्[4], ड्, ड़्, ढ्[5] ढ़्।
त्, थ्[4], द्, ध्[5], न्, न्ह्[5]।
प्, फ्[4], ब्, भ्[5], म्, म्ह्[5]।
य्, र्, र्ह्[5], ल्, ल्ह्[5], व्, व्।
स्, ह्।

---

[1] बैल < बइल < बइलि < सं० बली। 'बली' से 'बइलि' का विकास अपिनिहिति कहा जाएगा। 'बइलि' से 'बैल' के विकास को अभिश्रुति कहेंगे। अपिनिहिति एक प्रकार से असंयुक्त वर्णों के मध्य में आगत श्रुति-सी ही है, जिसका स्वर उस शब्द में पहले से रहता है।

[2] ह्रस्व ए।

[3] ह्रस्व ओ।

[4] इनमें दुर्बल प्राणता है। अतः ये अघोष प्राण कहाते हैं (क्+:=ख्)।

[5] इनमें सबल प्राणता है। अतः ये सघोष प्राण कहाते हैं (ग्+ह्=घ्)।

[6] अलीगढ़ की बोली में यह बिलकुल नई ध्वनि है, जैसे—जाइ ज़ौं कल्लेउ।

भाषा	स्वर	व्यंजन
अपभ्रंश	१०	३७
अलीगढ़ की बोली	१७ + १	३८

§१४४६—(अ) अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के सबल, निर्बल और मिश्र संयुक्त व्यञ्जनों के कुछ शब्द—

(१) सबल संयुक्त व्यञ्जनों के शब्द[1]—

अड्डौ, कक्खी, कट्टर, कद्दूकस, गड्ढौ, गग्गया, गट्टा, छद्दर, पुट्ठे, बद्धी, भुड्डी, फड्डा, चिरग्ग्या, मच्छर, मक्का, मक्खी, मुड्ढ, भट्टा, बग्घी, टट्टू, गप्प, थप्पड़ ।

(२) निर्बल संयुक्त व्यजनों के शब्द[2]—

अन्नी, कल्सा, तिल्लर, तुर्रा, धम्मक, भन्न, भँगर्रा, कन्न्या, कल्लर, हल्लनी, सल्लो ।

(३) मिश्र संयुक्त व्यञ्जनों के शब्द[3]—

खैल्टा, अम्बारी, कल्छार, गन्धी, बर्ध ।

§१४५०—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन के प्रकार—

अ—[आगम]

(१) आदि स्वरागम (Prothesis) और पुरोहिति या पूर्वागम—काल > अकाल । स्तुति > इस्तुति । स्कूल > इस्कूल ।

प्रबल > अपरबल । [शब्द के आदि में व्यंजन के पहले अपूर्ण उच्चरित 'इ' अथवा 'उ' के आगम को 'पुरोहिति' कहते हैं । यह एक प्रकार से श्रुति ही है ।]

(२) संयुक्त वर्ण-मध्य स्वरागम[4] (Anaptyxis), स्वरभक्ति या विप्रकर्ष—भ्रम > भरम । कर्म > करम । रक्त > रकत । पर्व > परब । लग्न > लगन । [असंयुक्त वर्णों के मध्य में एक

---

[1] पंचम (अनुनासिक) वर्ण को छोड़कर शेष सब कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग व्यंजन सबल कहाते हैं ।

[2] प्रत्येक वर्ग का अनुनासिक व्यंजन, य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स् और ह् व्यंजन निर्बल कहाते हैं । अलीगढ़ की बोली में 'श्' 'ष्' ध्वनि नहीं है । 'ण्' भी नहीं हैं ।

[3] सबल और निर्बल व्यंजनों के संयोगवाले शब्द मिश्र संयुक्त व्यंजन के शब्द हैं ।

[4] सं० मुण्डवासस् > ब्रज० मुड़ाइसौ । यहाँ मध्य-स्वरागम है क्योंकि इ का उच्चारण पूर्ण है ।

विशेष प्रकार का स्वरागम अपिनिहिति (Epenthesis) कहाता है जैसे **बली** से **बइलि**। '**बइलि**' से '**बैल**' का विकास अभिश्रुति है। अपिनिहिति भी एक प्रकार की पूर्वश्रुति ही है, क्योंकि यहाँ उच्चारण अपूर्ण होता है।]

(३) **अन्त स्वरागम**—सुन्दरता > सुन्दरताई। दवा > दवाई। विद्वत्ता > बिद्दुताई।

(१) **आदि व्यञ्जनागम**—ओष्ठ > होंट। उल्लास > हुलास। अस्थि > हड्डी। अ० अकीक़ > हकीक।[1]

(२) **मध्य व्यञ्जनागम**—सुनर > सुन्दर। शाप > स्राप। समन > सम्मन।

(३) **अन्त व्यंजनागम**—

भ्रू > भौं > भौंह्। उमरा > उमराव्।

(१) **आदि अक्षरागम**—

खालिस—निखालस। मुर्गाबी—जलमुर्गाबी।

(२) **मध्य अक्षरागम**—

सूनु > सुवन। आलस्य > आरकस। खल > खरल।

(३) **अन्त अक्षरागम**—

अ० बला > बलाइ। अंक > आँकड़ौ।

इ—[**लोप** (Elision)]

(१) **आदि स्वरलोप**—

अर्द्धमन[2] > अधौन > धौन। अशानिका > अयानी > यानी। अहाता > हातौ।

(२) **मध्य स्वरलोप**—

शरद् पूर्णिमा > सर्द पूनौ। कर्पट > कपड़ा।

(३) **अन्त स्वरलोप**—

रेखा > रेख्। शिला > सिल्। परीक्षा > परख्।

(१) **आदि व्यंजनलोप**—

स्कन्ध > कन्धा। स्थान > थान। स्थाली > थारी।

(२) **मध्य व्यंजनलोप**—

कोकिल > कोइल। कार्तिक > कातिक। कायस्थ > कायथ। मजदूर > मजूर।

(३) **अन्त व्यंजनलोप**—

हमारौ—हमाओ। आम्र > आम्। निम्ब नीम्।

(१) **आदि अक्षरलोप** (Apheresis)—

त्रिशूल > सूल। शहतूत > तूत।

---

[1] इन शब्दों के अपूर्ण उच्चरित 'ह्' को **पूर्व श्रुति** भी कह सकते हैं। खाये को यदि खाये या खावे बोला जायेगा तो यह य्, व् का आगम परश्रुति कहायेगा। त० बागपत की कौरवी बोली में 'य्' श्रुति स्पष्ट सुनाई पड़ती है जैसे 'घोड़ी' के लिए 'घोयड़ी'।

[2] 'मन वैदिक शब्द है—"मना हिरण्यया"—ऋग्वेद। (देखिए इसी पुस्तक का ७८वाँ पृष्ठ)

(२) **मध्य अक्षरलोप**—

फलाहार > फरार । भाण्डागार > भंडार । प्रापण > पानौ ।

(३) **अन्त अक्षरलोप** (Apocope)—

माता > मा । गुह्य > गू । भ्रातृजाया > भबज । मौक्तिक > मोती ।

(४) **समाक्षरलोप** (Haplology)—

नाककटा > नकटा । खरीददार > खरीदार । मानस-सरोवर > मानसरोवर ।

उ—[**विपर्यय** (Metathesis)]

(१) **स्वर विपर्यय** (पार्श्ववर्ती)—

खुजली > खजुली ।

(२) **स्वर विपर्यय** (दूरवर्ती)—

पागल > पगला । फाटक > फटका ।

(३) **व्यंजनविपर्यय** (पार्श्ववर्ती)—

फाँसौ—साँफौ । चिह्न > चिन्‍ह । मत्‌लब्—मत्‌बल् । कीचट—चीकट । उकसाना—उसकाना ।

(४) **व्यंजनविपर्यय** (दूरवर्ती)—

फा० मुकल्चा > मुचिल्का ।

(५) **अक्षरविपर्यय** (पार्श्ववर्ती) —

अ० अज़रक > अरजक ।

(६) **अक्षरविपर्यय** (दूरवर्ती)—

लखनऊ—नखलऊ ।

क—[**समीकरण** (Assimilation)][1]

(१) **पुरोगामी समीकरण** (Prograssive Assimilation)—चक्र > चक्का । पत्र > पत्ता । जुल्म > जुलुम ।

(२) **पश्चगामी समीकरण** (Regressive Assimilation)—मतजा—मज्जाय[2] । मार्डाल—माड्डारि । नीलः > लीलो । गरज—गज्ज । मर्द—मद्द । हर्ज—हज्ज ।

[**विषमीकरण** (Dissimilation)]

(१) **पुरोगामी विषमीकरण** (Progressive Dissimilation)—लांगूल > लंगूर । काक > काग । तिलक > टिकली ।

(२) **पश्चगामी विषमीकरण** (Regressive Dissimilation)—दरिद्र > दलिद्दर ।

ख—[**घोषीकरण** (Vocalization)]

काकः > कागा । आकाशः > आगासु । मकरः > मगरु ।

ग—[**अघोषीकरण** (Devocalization)]

अदद—अदत । मदद—मदत्ति । खूबसूरत—खपसूरत ।

---

[1] इसे सावर्ण्य, सारूप्य या अनुरूपता भी कहते हैं ।

[2] 'य्' श्रुति का आगम हो जाता है । 'मरजा' के लिए समीकरण रूप 'मज्जा' बोला जाता है ।

घ—[प्राणीकरण (Aspiration)]

बेष > भेस । शुष्क > सूखौ । दधि > दही—धई ।

ङ—[अप्राणीकरण (De-aspiration)]

पौधा—पौदा । दूध—दूद । एक आध—एक आद ।

च—[मात्रा-भेद]

आलाप>अलाप । बादाम > बदाम ।

छ—[अनुनासिकता (Nasalization)]

(१) अकारण अनुनासिकता (Spontaneous Nasalization)—पाशक > पासअ > पासा > फाँसौ । सर्प > सप्प > साँप, स्याँप । सत्य > साँच । हसन > हँसनौ ।

(२) सकारण अनुनासिकता—कंकण > कँगना । आम्र > आँम् । कर्म > काँम्* । नन्दा > नाँद । दन्त > दाँत । पंचमः > पाँचमौ ।

§१४५१—अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के कुछ एकाक्षरी तथा द्विअक्षरी शब्द—

एकाक्षरी शब्द	द्विअक्षरी शब्द[९]	
(१) छै[१] (एक संख्या)	(१) लत्/ता	(कपड़ा)
(२) ताक्[२] (दृष्टि, तिखाल)	(२) लं/गूर्	(एक जानवर)
(३) ज्वाब्[३] (उत्तर, आवाज)	(३) ज्वा/रौ	(दो बैलों की जोड़ी)
(४) पान्[४] (एक पत्ता)	(४) माँ/झौ	(एक औज़ार)
(५) दाम्[५] (पैसा-टका)	(५) पार/छौ,	(कुएँ के किनारे के पास चरस ढालने का स्थान)
(६) नौन्[६] (नमक)	(६) पौ/नी	(रुई की मुलायम पोली बत्ती-सी)
(७) बौ[७] (लम्बाई की एक नाप)	(७) कु/म्हार्	(मिट्टी के बर्तन बनानेवाला)
(८) रौ[८] (पानी की बाढ़)	(८) धो/बिन्	(कपड़ा धोनेवाली)

§१४५२—प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा काल के आदि स्वरों और व्यजनों का अलीगढ़ की बोली में ध्वनि-स्वरूप[१०]

(अ)

सं० अग्नि > अग्गि > **आगि** ।

" अभ्यंजन>अब्भिगण>**भीजनौ** ।

" अनिष्ट>अणिट्ठ>**अनैंठ्** ।

" अम्लिका>अंबिलिया>**इमिली** ।

" अंगुलिका>अंगुलिआ>**उँगरिया** ।

(आ)

" आभीर > आभीर > **अहीर्** ।

" आमलक>आमलग>**आमरौ** ।

---

* आम, काम शब्दों की उच्चारणावस्था 'आँम्, काँम्' के रूप में है । अघोष व्यंजन ध्वनि के पूर्व वाले न्, म् भी अनुनासिक बोले जाते हैं जैसे नाँक, माँट (= नाक, माट) ।

[१], [७] [८] मुक्ताक्षर हैं (Open Syllable)

[२], [३], [४], [५] और [६] बद्धाक्षर हैं (Close Syllable)

[९] 'से/ली/स/मन्/द्' जैसे पंचाक्षरी शब्द अलीगढ़ की बोली में बहुत कम हैं ।

[१०] शब्द विकास की तीन श्रेणियाँ तालिका में दिखाई गई हैं प्रथम श्रेणी प्राचीन भारतीय आर्यभाषाकल की; द्वितीय मध्यभारतीय भारतीय आर्यभाषाकाल की; और तृतीय आधुनिक भारतीय आर्यभाषाकाल की द्योतक है ।

(इ)

सं० इत्वर > इत्तर > **ईतरौ** ।

" इन्धन > इंधण > **ईंधन्** ।

(ई)

सं० ईश्वर > ईसर > **ईसुर्** ।

(उ)

" उपविष्ट > उवविट्ठ > **बैठौ** ।

" उष्ट्र > उट्ट > **ऊँट** ।

" उद्गार > उग्गार > **उगार्** ।

" उपाध्याय > उवज्झाय > **ओझा** ।

(ऊ)

सं० ऊर्ण > उण्ण > **ऊन्** ।

(ऋ)

सं० ऋद्धि > रिद्धि > **रिद्धी** ।

" ऋषि > रिसि > **रिसी** ।

" ऋण > रिण > **रिन** ।

(ए)

सं० एक > एक > **एकू** ।

(ऐ)

सं० ऐक्य > एक्क > **एकौ** ।

" ऐषमस् > ० > **एसौं** ।

(ओ)

सं० ओष्ठ > ओट्ठ > **होट्** ।

(औ)

सं० कौशलेश > ० > **कौसलेस्** ।

(क)

सं० काष्ठ > कट्ठ > **काठ्** ।

" कुष्ठी > कुट्ठी > **कोढ़ी** ।

(ख)

सं० खर्जू > खज्जू > **खाजु** ।

" खट्वा > खट्टा > **खाट्** ।

(ग)

सं० गर्जर > गज्जर > **गाजर** ।

(घ)

सं० घर्म > घम्म > **घाम्** ।

(च)

सं० चर्मन् > चम्म > **चाम्** ।

" चञ्चु > चंचु > **चौंच्** ।

(छ)

सं० छत्रं > छत्तो > **छातौ** ।

" छादन > छायण > **छान्** ।

(ज)

सं० जय > जय > **जै** ।

" जर्जरित > जज्जरिय > **झिरझिरौ** ।

(झ)

सं० झरझर > झरझर > **झर्झर्** ।

(ट)

सं० टङ्कार > टंकार > **टंकार्** ।

(ठ)

सं० ठक्कुर > ठक्कुर > **ठाकुर्** ।

(ड)

सं० डमरुक > डलरुअ > **डमरू, डौरू** ।

(ढ)

सं० ढौकितः > ढोवियो > **ढोयौ** ।

(त)

सं० तडाग > तडाअ > **ताल**[२] ।

" तथ्य > तह > **तह्** ।

" ताल > ताड > **ताड़**[३] ।

" तिलकः > टिक्को > **टीकौ**[४] ।

(थ)

(स्तन) > थण > **थन्** ।

(द)

सं० दर > दर > **डर्** ।

" दंश > डंस > **डाँस** ।

" दीपक > दीअअ > **दीआ** ।

" द्वात्रिंशत् > वत्तीस > **बत्तीस्** ।

---

२ ३ ४ दन्त्य और मूर्धन्य ध्वनियों में संस्कृत और प्राकृत के अन्तर्गत पारस्परिक परिवर्तन संस्कृत की तवर्ग हुआ है ।।ध्वनियाँ प्राकृत में टवर्ग में परिवर्तित हुई हैं। इसे मूर्धन्य भाव का नियम कहते हैं।

(ध)

सं० धवलः > धवलो > **धौरौ**

(न)

सं० निद्रा > णिद्दा > **नींद्** ।

सं० प्रियतरः > पिआरो > **प्यारौ** ।

,, पितृ गृह > पिइहर > **पीहर्** ।

,, प्रस्तर > पत्थर > **पाथर्** ।

,, पिधान > पिहाण > **पिहान्** ।

,, प्रभूत > बहुत्त > **भौत्** ।

(फ)

सं० फाल्गुन > फागुण > **फागुन्** ।

,, फुप्फुसः > पुप्फसो > **फैंफड़ो** ।

(ब)

सं० बिन्दु > बिन्दु > **बूँद्** ।

,, बली > बइल्ल > **बैल** ।

(भ)

सं० भैक्ष > भिक्ख > **भीक्** ।

,, भ्राष्ट्र > भट्ठ > **भार्** ।

,, भ्रातृक > भाइअ > **भइया** ।[1]

(म)

सं० मृत्तिका > मट्टिआ > **माँटी** ।

,, मेघ > मेह > **मेह्** ।

(य)

सं० यात्रा > जत्ता > **जात्** ।

,, याज्ञिक > जाक्खिय > **जखइया** ।

(र)

सं० राजिका > राइआ > **राई** ।

वैदिक० रुक्ष > रुक्ख > **रूख** ।

,, रोदनं > रोअनो > **रोनौ** ।

(ल)

सं० लिक्षा > लिक्खा > **लीख्** ।

(व)

सं० वर्द > बलद्द > **बद्ध** ।

,, विष्ठा > ० > **भिस्टा** ।

,, व्यतीत > ० > **बीतौ** ।

,, वेला > वेला > **बेर** (अबेर) ।

(श)

सं० शिङ्घ > सिंघ > सूँघ

,, शुष्कः > सुक्ख > **सूखौ** ।

,, शिक्षा > सिक्खा > **सीख्** ।

,, शोक[2] > सोग > **सोग्** ।

(ष)

सं० षष् > छ > **छै** ।

,, षष्ठी > छट्ठी > **छठि, छठी** ।

(स)

सं० स्ताघ > त्थाह > **थाह** ।

,, सकलः[2] > सकल > **सगरौ** ।

,, सत्य > सच्च > **साँच्** ।

,, सन्धि > संधि > **सैंधूँ** ।

(ह)

सं० हरिणी > हरिणी > **हिन्नी** ।

(क्ष)

सं० क्षोभ > छोभ > **छोह्** ।

,, क्षुरप्रः > खुरप्पो > **खुरपौ** ।

,, क्षत्रिय > ० > **छत्री** ।

,, रक्षा > रक्खा > **राख्** ।

(त्र)

सं० त्रुट् > टुट्ट > **टूट्** ।

,, त्रासन > तासण > **ताँसनौ** ।

(ज्ञ)

सं० ज्ञातिगृह > णाइहर > **नइहर्** ।

,, अज्ञान > अजाण > **अजान्** ।

---

[1] अलीगढ़ जनपद की इगलास तहसील के कुछ गाँवों में भइया के स्थान पर 'भग्ग्या' बोला जाता है अर्थात् ऐसे शब्दों में व्यंजनसंयोग और व्यंजन-गुच्छ साथ-साथ मिलता है जैसे चिरग्ग्या, बिलग्ग्या, गग्ग्या, भग्ग्या, हग्ग्वा, कग्ग्वा, खग्ग्वा आदि, न्यार, प्यार, स्यार, क्वार आदि ऐसे शब्द भी हैं जिनमें आदि व्यंजन गुच्छ मिलता है ।

[2] संस्कृत की मध्यवर्ती या अन्त्य कठोर स्पर्शध्वनियाँ अलीगढ़ की बोली में सामान्यतया कोमल हो गई हैं । जैसे 'क्' का ग्, हुआ है और 'ट' का 'ड़' हुआ है सं० काक > काग । सं० घोटक > घोड़ा ।

§१४५३—भारतीय आर्य भाषाएँ और अलीगढ़ क्षेत्र की बोली

मूल प्राकृत
- वैदिक भाषा
  - १ उदीच्या भाषा
    - ब्राचड़
      - सिंधी
    - केकय, टक्क आदि
      - लहँदा
      - पूर्वी पंजाबी
  - २ दाक्षिणात्या भाषा
    - मराठी
  - ३ प्रतीच्या भाषा
    - लाटी
    - सौराष्ट्री
      - शौरसेनी अप०
        - गुजराती
        - राजस्थानी
    - आभीरी
  - ४ मध्यदेशीया भाषा
    - महाराष्ट्री या शौरसेनी प्रा० (ई० पू० २०० से ६०० ई० तक)
      - शौरसेनी अप० (ई० ६०० से १००० ई० तक)
        - पश्चिमी हिन्दी (ई० १००० से आज तक)
          - हरियानी
          - खड़ी
          - ब्रजभाषा
            - **अलीगढ़ क्षेत्र की बोली** (यह बोली उकारबहुला तथा औकार बहुला है और पश्चगामी समीकरण की प्रवृत्तिवाली भी है)
          - कन्नौजी
          - बुंदेली
    - पाली
  - ५ प्राच्या भाषा
    - अर्धमागधी
      - पूर्वी हिन्दी
        - अवधी
        - बघेली
        - छत्तीसगढ़ी
    - मागधी
      - असामी
      - बँगला
      - उड़िया
      - बिहारी
        - मगही
        - मैथिली
        - भोजपुरी

[ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी]

१ शौरसेनी प्रा०; २ अर्द्ध मागधी प्रा०; ३ मागधी प्रा० (ई० पू० २०० से ६०० ई० तक)

- शौरसेनी प्रा०
  - शौरसेनी (गद्यात्मक)*
    - शौरसेनी अप० (ई० ६०० से १००० ई० तक)
      - पश्चिमी हिन्दी (ई० १००० से आज तक)
        - हरियानी १
        - खड़ी २
        - ब्रज ३
          - **अलीगढ़ क्षेत्र की बोली**
        - कन्नौजी ४
        - बुंदेली ५
  - महाराष्ट्री (पद्यात्मक)*

*यह दोनों (महाराष्ट्री और शौरसेनी) एक ही प्राकृत की दो शैलियाँ थीं।

§१४५४—हिन्दी प्रदेश की उपभाषाएँ और अलीगढ़ क्षेत्र की बोली—

(क) बिहारी वर्ग—

(१) मैथिली उपभाषा—(यह हिन्दी की बोली नहीं है)।
(२) मगही उपभाषा— ,, ,, ,,
(३) भोजपुरी उपभाषा

(ख) पूर्वी वर्ग—

[1] { (४) अवधी उपभाषा
(५) बघेली उपभाषा }
(६) छत्तीसगढ़ी उपभाषा

(ग) पश्चिमी वर्ग—

[2] { (७) बाँगरू या हरियानी उपभाषा
(८) खड़ीबोली उपभाषा }
[3] { (९) ब्रजभाषा उपभाषा (**अलीगढ़ क्षेत्र की बोली** इसी की पुत्री है।)
(१०) कन्नौजी उपभाषा }
(११) बुन्देली उपभाषा

(घ) राजस्थानी वर्ग—

(१२) जयपुरी उपभाषा
(१३) मालवी उपभाषा
(१४) मेवाती उपभाषा
(१५) मारवाड़ी उपभाषा

(ङ) पहाड़ी वर्ग—

(१६) पश्चिमी पहाड़ी उपभाषा
(१७) मध्य पहाड़ी उपभाषा

विशेष—नैपाल और पंजाब को हिन्दी-प्रदेश के अन्तर्गत नहीं माना गया। अतः पूर्वी पहाड़ी अर्थात् नैपाली उपभाषा और पंजाबी उपभाषा हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं में नहीं आती हैं।

§१४५५—अलीगढ़ जनपद की कोल तहसील के एक लोक-दृष्टान्त के आधार पर वाक्यरचना का संश्लेषणात्मक अध्ययन—

एक् पोत् असाढ़ लगतई एक् सूअरिया नैं आठ बचा डारे और अपई खुड़ी में परी रई।

---

[1] डा० धीरेन्द्र जी वर्मा के नवीन मत के अनुसार ये दोनों एक उपभाषा के उपरूप हैं।
[2] ,, ,, ,, ,, ,, ,,
[3] ,, ,, ,, ,, ,, ,,

—(डा० धीरेन्द्र जी वर्मा का लेखक के नाम-पत्र, दिनाङ्क ३१. १. ५८ ई०)

ब्याइबे से बाद ग्वाइ बड़े जौंहर् की प्यास् लगी। गु सूअरत् ते[1] बोली कै नैंक् मेरे लैं पानी लै आऔ; प्यास् के मारैं मेरी जान् निकर् रई ऐ। सूअरन् नैं जा घड़ी सूअरिया की बास् सुनी, ताई घड़ी गु गँगाई लङ् अगासऐ देखँल् लगौ। गँगाई लङ् ते सीरी-सीरी ब्यारि चल्ति भई देक्कैं सूअरु सूअरिया ते कहँल्लगो—"नैंक् देर् की बातऐ, धीरद्धरि; अब सूअरा ब्यारि चलँल्लगी ऐ। ईसुन्नैं चाई तो एक् लह्मा मैं ई ऐसो मेहु मारैगो कै तेरी खुड़ी पानी ते तलातल् भज्जाइगी। तब् तू भिक्कैं पानी पी लइयो।"

[ईसादेबी, जादौं ठाकुर जाति, बेगड़ी, सामाजिक स्तर मध्यम, उम्र ५५ साल, गाँव शेखू-पुर, तहसील कोल, जिला अलीगढ़। गाँव अलीगढ़ नगर से पूर्व दिशा में १४ मील।]

(१) साधारण वाक्य—

"ब्याइबे के बाद् ग्वाइ बड़े जौंहर् की प्यास् लगी।"

(क) बड़े जौंहर् की प्यास—उद्देश्य।[2]

(ख) ब्याइबे के बाद ग्वाइ लगी—**विधेय**।[3]

(२) मिश्र वाक्य—

"गु सूअरत् ते बोली कै नैंक् मेरे लैं पानी लै आऔ; प्यास् के मारैं मेरी जान् निकर्रई ऐ।"

(क) गु सूअरत् ते बोली—**प्रमुख उपवाक्य**

(ख) (कै) नैंक् मेरे लैं पानी लै आऔ—**संज्ञा उपवाक्य**; (क) का **आश्रित**।

(ग) प्यास के मारैं मेरी जान् निकर्रई ऐ—**संज्ञा उपवाक्य**, (क) का **आश्रित**; (ख) का **समान पदी**।

(३) संयुक्त वाक्य—

"एक पोत् असाड़ लगतई एक् सूअरिया नैं आठ् बच्चा डारे और अपई खुड़ी मैं परी रई।"

(क) एक पोत् असाड़ लगतई एक सूअरिया नैं आठ् बच्चा डारे—**प्रमुख उपवाक्य**।

(ख) (और) [एक सूअरिया] अपई खुड़ी मैं परी रई—प्रमुख उपवाक्य; (क) का **समानपदी**।

---

[1] **सूअर् ते = सूअरत् ते—इस प्रकार के पार्श्ववर्ती पश्चगामी समीकरण की प्रवृत्ति तहसील कोल की बोली में अधिक है।**

[2] **कर्मकारकीय संज्ञाएँ भी उद्देश्य हो सकती हैं जैसे "पेड़ु काटौ जाइगौ।" "नौकरु काम् पै भेजौ जाइगौ"—इन वाक्यों में पेड़ु और नौकरु कर्म कारक में हैं, किन्तु उद्देश्य हैं। इन दोनों वाक्यों की क्रियाएँ कर्मवाच्य में हैं।** ब्रजभाषा में स्वतः कर्मवाक्य के भी उदाहरण मिलते हैं जैसे—"छोरा पै स्याँपु नाईं मर् सकैगौ।"

[3] भाववाच्य में क्रिया—विधेय एकरूप रहता है(कर्म के तिर्यक् रूप सहित)—(१) छोरा नैं छोरी कूँ बुलायौ (२) छोरी नैं छोरा कूँ बुलायौ। (३) छोरन् नैं छोरिन् कूँ बुलायौ (४) छोरिन् नैं छोरन् कूँ बुलायौ।

कर्मवाच्य में क्रियाविधेय प्रधानकर्म से प्रभावित होता है—(१) रामनैं छोरा ऐ किताब पढ़ाई। (२) राम नैं छोरी ऐ ग्रन्थ पढ़ायौ। [रूपात्मक भूतकालीन क्रिया कभी-कभी भविष्यत् काल का भी अर्थ देती है, जैसे—"तुम ठहरौ, मैं अभाल एक लह्मा मैं आयौ।"]

(१) उपर्युक्त साधारण वाक्य के उद्देश्य तथा विधेय का विश्लेषण—

(क) बड़े जौंहर की—उद्देश्यांश, **कर्ता विस्तारक**।

(ख) प्यास्—मूल उद्देश्य, **कर्ता**।

(ग) ग्वाइ—विधेयांश, **कर्म**।

(घ ब्याइवे के बाद—विधेयांश, **क्रियाविशेषण; क्रिया—विस्तारक**।

(ङ) लगी—विधेयांश, **क्रिया** (समापिका)।

§१४५६—अलीगढ़ की बोली के वाक्यों में विधेयों के प्रयोगात्मक रूप—

(१) **संज्ञा के रूप में विधेय**—हमनैं (हमन्नैं) मौंहना भलौ **आदिमी** पायौ। हमैं गु **चोरु** मालिम् परौ।

(२) **सर्वनाम के रूप में विधेय**—जि (गि) आदिमी **को** ऐ? जि (गि) ओढ़नी **कौन की** ऐ?

(३) **विशेषण के रूप में विधेय**—हरिया नैं छोरा **मलूकु** देख्यौ। ग्वाइ किताब **गंदी** मिली।

(४) **वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप में विधेय**—मैंनें ग्वाइ **बैठतुभयौ** देख्यौ। छोरा नैं छोरी **रोवति**[१] छोड़ी।

(५) **भूतकालिक कृदन्त के रूप में विधेय**—कमलेस नैं छोरी **जगीभई** देखी। मैं कुर्सी पै **बैठे भये** साब् ते मिल्यौ (मिलौ)।

(६) **क्रियाविशेषण के रूप में विधेय**—चलौ, तुमन्नै मामलौ **ठीक-ठाक** तै कर् दौ (कद्दौ)।

(७) **क्रियार्थक संज्ञा के रूप में विधेय**—मोइ तेरो **झाँकनौं** अच्छौ नाइँ लगतु। मैंनें ग्वाके घर **उठिबौ-बैठिबौ** बन्द कद्दौ ऐ।

§१४५७—क्रिया विधेयों के प्रयोगात्मक रूप—

(१) **मूलक्रिया के रूप में विधेय—गई** भैंसि पानी मैं। मोइ अब पतौ **मिलौ**।[२]

(२) **यौगिक क्रिया के रूप में विधेय**—ग्वानैं मोपै कोल्हू **चलवायौ**। मोती कौ छोरा **उठिबैठि सकतै** कै नाइँ?

(३) **संयुक्त क्रिया के रूप में विधेय**—मेरौ ज्वाबु •सुन्तई, गु **उठि बैठ्यौ** (**उठिबैठौ**)। मेरी बात पूरी ऊ न भई कै खचेरा मोपै **अराइपरौ**। कमलाकैं छोरा **हैगयौ** (**है गौ**)।

---

[१] "औरे रे कौरे गुड़िया ऊ छोड़ीं रोवति छोड़ीं सहेलरी।
अब का रे कूकै दारी कारी कोइलिया छोड़ौ, बबुल कौ देस जी।"
—(तहसील कोल का एक लोकगीत)

[२] कर्ता से सम्बन्धित पूरक संज्ञाएँ (यहाँ विशेषण नाम देना अधिक उपयुक्त है) अपना लिंग कर्ता के अनुसार रखती हैं—जैसे—"मेरी बेटी मेरी **जीबनमूर** ऐ।" "मानकौरि की छोरी बड़ी **चोर** ऐ।"

§१४५८—अलीगढ़ जनपद की विशेषण सहित कुछ संज्ञाएँ—

ऋजु रूप में मुक्त संज्ञाएँ

(पुं०) (स्त्री०)

एक व०—कारौ[1] घोड़ा; कारी घोड़ी।
बहु व०—कारे घोड़ा; कारी घोड़ी।

(पुं०) (स्त्री०)

एक व०—मलूकु छोरा; मलूक् छोरी
बहु व०—मलूक् छोरा; मलूक् छोरी।
एक व०—बढ़िया छोरा; बढ़िया छोरी।

ऋजु रूप में बन्द (आवद्ध) संज्ञाएँ

(पुं०) (स्त्री०)

एक व०—अच्छौ घर्[2] अच्छी बात्
बहु व०—अच्छे घर्; अच्छी बात्

(स्त्री०) (स्त्री०)

एक व०—बढ़िया[3] रास्; बढ़िया खाट्
बहु व०—बढ़िया रास्[3]; बढ़िया खाट्
" "—बढ़िया बैल्; बढ़िया भैंस्

§१४५९—अलीगढ़ की जनपदीय बोली में पुंलिंग संज्ञा शब्दों के ऋजु रूप—

एक वचन		बहु वचन
(१) छोरा; मानि; मोती	—	(१) छोरा; मानि; मोती
(२) गड्डु; घरु; मोरु; घीउ	—	(२) गड्ड; घर्; मोर्; घीअ
(३) उल्लू	—	(३) उल्लू
(४) पाँड़े	—	(५) पाँड़े

§१४६०—अलीगढ़ की जनपदीय बोली में पुंलिंग संज्ञा शब्दों के तिर्यक् रूप—

एक वचन		बहु वचन
(१) छोरा; मानि; मोती	—	(१) छोरन्; मानिन्; मोतीन्
(२) गड्ड; घर्; मोर्; घीअ	—	(२) गड्डन्; घरन्; मोरन्; घीअन्
(३) उल्लू		(३) उल्लून्; उल्लुन्
(४) पाँड़े	—	(४) पाड़ेन्
(५) पामरे	—	(५) पामरेन्

§१४६१—अलीगढ़ की जनपदीय बोली में स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के ऋजु रूप—

एक वचन		बहुवचन
(१) खाट्	—	(१) खाट्
(२) गप्प	—	(२) गप्प
(३) चिरइया, गइया[4]	—	(३) चिरइयाँ, गइयाँ (चिरइया, गइया)

---

[1] यदि 'घोड़ा' अपने तिर्यक् एक वचन रूप में आयेगा तो विशेषण 'कारे' हो जाएगा जैसे कारे घोड़ा नैं। बहु वचन में कारे घोड़न् कूँ।

[2] एक वचन में ऋजु रूप 'अच्छौ घरु' भी होता है और तिर्यक् रूप 'अच्छे घर'। बहु वचन में ऋजु रूप अच्छे घर और बहु वचन में तिर्यक् रूप अच्छे घरन्।

[3] 'बढ़िया' विशेषण अप्रभावित है; शेष विशेषण लिंग वचन से प्रभावित हैं। 'रास्' शब्द यहाँ अनाज के ढेर के अर्थ में प्रयुक्त है।

[4] 'गगय्या', चिरगय्या', भी प्रचलित हैं।

(४) जाति	—	(४) जाति
(५) देबी	—	(५) देबी
(६) बहू	—	(६) बहू
(७) परै	—	(७) परै
(८) सल्लो, खज्जो, लल्लो-चप्पो	—	(८) सल्लो; खज्जो, लल्लो-चप्पो
(९) बौ	—	(९) बौ

§१४६१—अलीगढ़ की जनपदीय बोली में स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के तिर्यक् रूप—

एक वचन		बहु वचन प्रातिपदिक; विभक्ति
(१) खाट्	—	(१) खाटन्—[खाट्/—अन्/]
(२) गप्प	—	(२) गप्पन्—[गप्प्/—अन्/]
(३) चिरइआ; (चिरइया)	—	(३) चिरइअन्—[चिरइ/—अन्/][1]
(४) जाति	—	(५) जातिन्—[जाति/—इन्/]
(५) देबी	—	(५) देबिन्—[देब्/—इन्/][2]
(६) बहू	—	(६) बहून्—[बह्/—ऊन्/]
(७) बै; परै	—	(६) बैन्; परैन्—[पर्/—ऐन्/]
(८) सल्लो	—	(८) सल्लो—[सल्ल्/—ओन्/]
(९) बौ	—	(९) बौन्—[ब्/—/औन्]

---

[1] बहु वचन में दो रूप प्रचलित हैं—(१) चिरइअन् (२) चिरइआन्। ('य्' श्रुति के आगम के साथ चिरइयन् और चिरइयान् भी बोला जाता है)।

[2] बहु वचन में दो रूप प्रचलित हैं—(१) देबिन् (२) देबीन्।

शब्दानुक्रमणी

[शब्द के साथ अंकित पहली संख्या ग्रन्थ के पृष्ठ की द्योतक है और दूसरी संख्या अनुच्छेद की द्योतक है। अक्षर-क्रम अँ, अं, अ, आँ, आं, आ, इ, इं, इ, ईँ, ईं, ई, उँ, उं, उ आदि के रूप में है।]

(आँ)

(आ)

(उ)

(ऊँ)

(किं)

(कि)

(कुँ)

(कुं)

(कु)

(कुँ)

(कू)

(के)

(कैं)

(कै)

(कों)

(को)

(कौं)

(कौ)

(खँ)

(खं)

(ख)

(खाँ)

(खा)

(गँ)

(ग)

(गाँ)

(गा)

(गूँ)

(गू)

(गें)

(गे)

(गैं)

(गै)

(गों)

(गो)

(गौं)

(गौ)

(घँ)

(घं)

(घ)

(घाँ)

(घि)

(चुं)

(चु)

(चू)

(छाँ)

(छा)

(छिं)

(छि)

(झँ)

(झं)

(झ)

(झाँ)

(टी)

(टुँ)

(टु)

(टूँ)

(टू)

(टें)

(टे)

(तं)

(त)

(ताँ)

(ता)

(ति)

(ती)

(तु)

(दि)

(दी)

(दु)

(दू)

(दो)

(दौं)

(दौ)

(ध)

(नाँ)

(ना)

(नि)

(नी)

(नु)

(ने)

(नैं)

(नै)

(नों)

(नौं)

(नौ)

(पाँ)

(पू)

(पें)

(पे)

(पैँ)

(पै)

(पो)

(पौं)

(पौ)

(फँ)

(फं)

(फ)

(ब)

(बिँ)

(बिं)

(बुँ)

(बुं)

(बु)

(बू)

(बें)

(बे)

(भँ)

(भं)

(भ)

(भै)

(भों)

(भो)

(भौं)

(भौ)

(मँ)

(मं)

(म)

(माँ)

(मा)

(मिं)

(मि)

(मीं)

(मी)

(मुँ)

(मुं)

(मु)

(मूँ)

(मू)

(में)

(मे)

(मैं)

(मै)

(मों)

(मो)

(मौं)

(मौ)

(या)

(रँ)

(रं)

(र)

(लाँ)

(ला)

(लि)

(ली)

(लु)

(लू)

(ले)

(लै)

(लो)

(लौँ)

(लौ)

(सँ)

(सं)

१ २ ३ यह दन्त्य 'ल्' मेरठ की कौरवी में मूर्धन्य 'ल्' बोला जाता है।

(सिं)

सिं

(सि)